



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री  
**सुविधिसागर जी महाराज**

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

**जिनवाणी-महोत्सव**



**सहस्रग्रन्थसंग्रह**

\* जन्मदिवस 19-03-1971

\* मुनिदीक्षा-11-05-1989

\* आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सम्मत्तिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)



# गोममटरसार-कर्मकाण्ड

(प्रथम भाग)

ग्रन्थकर्ता  
परम पूज्य आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज

द्वयटीका  
कर्णाटकवृत्ति और जीवतत्त्वप्रदीपिका

सम्पादक-अनुवादक  
डॉक्टर आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

प्रकाशक  
भारतीय ज्ञानपीठ



(परम्परानायक)



परम पूज्य चरित्र-चक्रवर्ती,  
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज  
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)



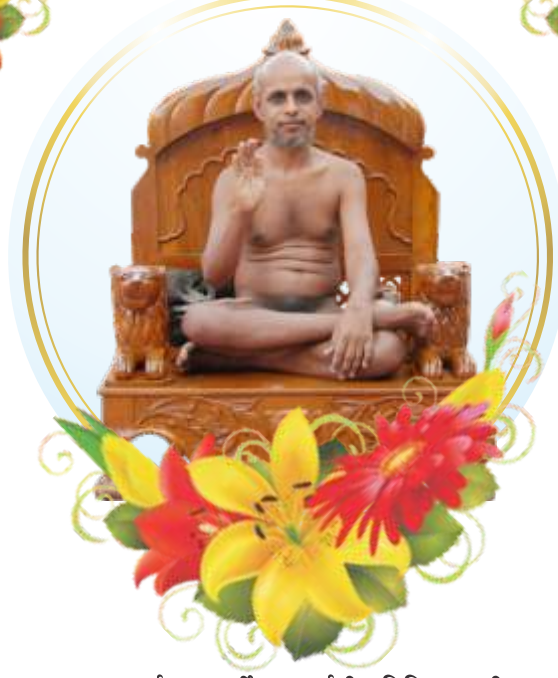
परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,  
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,  
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार



आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित

# गोम्मटसार

( कर्मकाण्ड )

भाग-१

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये  
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री



## गोम्मटसार

जैन-धर्म के जीवतत्त्व और कर्मसिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या करनेवाला महान् ग्रन्थ है 'गोम्मटसार'। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (दसवीं शताब्दी) ने इस बृहत्काय ग्रन्थ की रचना 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' और 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' के रूप में की थी। डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये और सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री के सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ से सन् १९७८-१९८१ में प्राकृत मूल गाथा, श्रीमत् केशववर्ण विरचित कर्णाट वृत्ति जीवतत्त्व-प्रदीपिका, संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत प्रस्तावना के साथ पहली बार चार बृहत् जिल्दों (गोम्मटसार जीवकाण्ड, भाग १,२ और गोम्मटसार कर्मकाण्ड, भाग १,२) में प्रकाशित हुआ था। और अब जैन धर्म-दर्शन के अध्येताओं एवं स्वाध्याय-प्रेमियों को समर्पित है ग्रन्थ का यह नया संस्करण, नयी साजसज्जा के साथ।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित

# गोम्मटसार

( कर्मकाण्ड )

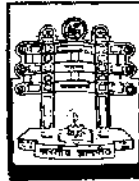
भाग-१

[ श्रीमत्केशववर्णिविरचित कर्णाटवृत्ति, संस्कृत टीका जीवतत्त्वप्रदीपिका,  
हिन्दी अनुवाद तथा प्रस्तावना सहित ]

सम्पादन एवं अनुवाद

डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री



भारतीय ज्ञानपीठ

---

तृतीय संस्करण : १९६६ □ मूल्य १६५.०० रुपये

---

## भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ६, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में

स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित

एवं

उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

## मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण)

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-११० ०३२

---

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित



# GOMMAṬASĀRA

(KARMAKĀṆḌA)

*of*

ACHARYA NEMICHANDRA SIDDHANTACHAKRAVARTI

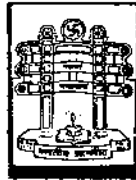
VOL. I

[ With Karmāṭa-vṛtti, Sanskrit Tikā Jivatattvapradīpikā,  
Hindi Translation & Introduction ]

*by*

Dr. A. N. Upadhye

Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri



BHARATIYA JNANPITH

---

Third Edition : 1999 □ Price Rs. 195.00

---

## **BHARATIYA JNANPITH**

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 • Vikrama Sam. 2000 • 18th Feb. 1944

### **MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA**

Founded by

Late Sahu Shanti Prasad Jain

In memory of his late Mother Smt. Moortidevi  
and

promoted by his benevolent wife  
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical,  
puranic, literary, historical and other original texts  
available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi,  
Kannada, Tamil etc., are being published  
in the respective languages with their  
translations in modern languages.

Also

being published are  
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies,  
art and architecture by competent scholars,  
and also popular Jain literature.

•

General Editors (First Edition)

Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri  
Dr. Jyoti Prasad Jain

Published by

**Bharatiya Jnanpith**

18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at : Nagri Printers, Delhi-110032

---

All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

## प्रस्तावना

### कर्मसिद्धान्त

गोमटसारका प्रथम भाग जीवकाण्ड जीवसे सम्बद्ध है और उसका यह दूसरा भाग कर्मकाण्ड कर्मसे सम्बद्ध है। साधारण रूपमें जो कुछ किया जाता है उसे कर्म या क्रिया कहते हैं। जैसे खाना, पीना, चलना, बोलना, सोचना आदि। किन्तु यहाँ कर्म शब्दसे केवल क्रियारूप कर्म विवक्षित नहीं है। महापुरुषाणमें कर्मरूपी ब्रह्माके पर्याय शब्द इस प्रकार कहे हैं—

विधिः स्रष्टा विधाता च दैवं कर्म पुराकृतम् ।

ईश्वरश्चेति पर्याया विज्ञेयाः कर्मवेषसः ॥ ४।३७ ॥

अर्थात् विधि, स्रष्टा, विधाता, दैव, पुराकृत कर्म, ईश्वर ये कर्मरूपी ब्रह्माके वाचक शब्द हैं।

कर्मका आशय—

यहाँ कर्म शब्दसे इसी विधाताका ग्रहण अभीष्ट है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि जो जीवित है एक दिन के मरणको प्राप्त होते हैं और उनका स्थान नये प्राणी लेते हैं। जीवन और मरणकी यह प्रक्रिया अनादिसे चली आती है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि संसारमें विषमताका साम्राज्य है—कोई अमीर है कोई गरीब। आज जो अमीर है कल वह गरीब हो जाता है और गरीब अमीर बन जाता है। कोई सुन्दर है कोई कुलूप। कोई बलवान् है कोई कमजोर। कोई रोगी है कोई नीरोग। कोई बुद्धिमान् है कोई मूर्ख। यदि यह विषमता विभिन्न कुलोंके या देशोंके मनुष्योंमें ही पायी जाती तब भी एक बात थी। किन्तु एक कुलकी तो बात ही क्या, एक ही माताकी कोखसे जन्म लेनेवाली सन्तानोंमें भी यह पायी जाती है। एक भाई सुन्दर है तो दूसरा असुन्दर। एक भाई बुद्धिमान् है तो दूसरा मन्दबुद्धि। एक भाई शरीरसे स्वस्थ है तो दूसरा जन्मसे रोगी। जिन देशोंमें समाजवाद है वहाँ भी इस प्रकारकी विषमता वर्तमान है। मनुष्योंकी तो बात क्या, पशु योनिमें भी यह विषमता देखी जाती है। एक के कुत्ते हैं जो पेट भरनेके लिए मारे-मारे फिरते हैं, जिन्हें खाज और घाव हो रहे हैं। दूसरे के कुत्ते हैं जो पेट-भर दूध-रोटी खाते हैं और मोटरोंमें घूमते हैं। इसका क्या कारण है। इसपर विचारके फलस्वरूप ही दर्शनोंमें आत्मवाद, परलोकवाद और कर्मवादके सिद्धान्त अवतरित हुए हैं। इस कर्मवादके सिद्धान्त को आत्मवादी जैन सांख्ययोग, नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक आदि दर्शन तो मानते ही हैं अनात्मवादी बौद्धदर्शन भी मानता है। इसके लिए राजा मिलिन्द और स्थविर नागसेनका निम्न संवाद द्रष्टव्य है—

राजा बोला—भन्ते ! क्या कारण है कि सभी आदमी एक ही तरहके नहीं होते ? कोई कम आयु-वाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्रे, कोई सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बड़े प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँचे कुलवाले, कोई बेवकूफ, कोई होशियार क्यों होते हैं ?

स्थविर बोले—महाराज ! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ एक-जैसी नहीं होतीं ? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तीती, कोई कड़वी, कोई कसैली और कोई मीठी होती है ?

भन्ते ! मैं समझता हूँ कि बीजोंके भिन्न-भिन्न होनेसे ही वनस्पतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

प्रस्ता०—१

महाराज ! इसी तरह सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होनेसे वे सभी एक तरहके नहीं हैं । कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले होते हैं ।

भगवान् (बुद्ध) ने भी कहा है—हे मानव ! सभी जीव अपने कर्मोंसे ही फलका भोग करते हैं । सभी जीव कर्मोंके आप मालिक हैं । अपने कर्मोंके अनुसार ही नाना योनियोंमें उत्पन्न होते हैं । अपना कर्म ही अपना बन्धु है, अपना कर्म ही अपना आश्रय है, कर्म ही से ऊँचे और नीचे होते हैं ।

—मिलिन्द प्रश्न, पृ. ८०-८१ ।

इसी तरह ईश्वरवादी भी मानते हैं । न्यायमंजरीकार ( पृ. ४२ ) ने कहा है—“संसारमें कोई सुखी है, कोई दुःखी है, किसीको खेती आदि करनेपर विशेष लाभ होता है, किसीको उलटी हानि होती है । किसीको अचानक सम्पत्ति मिल जाती है, किसीपर बैठे-बैठाये बिजली गिर जाती है । ये सब बातें किसी दृष्ट कारणकी वजहसे नहीं होतीं, अतः इनका कोई अदृष्ट कारण मानना चाहिए ।”

**अन्य दर्शनोंमें कर्मका स्वरूप—**

उक्त कर्मसिद्धान्तके विषयमें ऐकमत्य होते हुए भी कर्मके स्वरूप और उसके फलदानके सम्बन्धमें मतभेद है—परलोकवादी सभी दार्शनिकोंका मत है कि हमारा प्रत्येक अच्छा या बुरा कार्य कर्तापर अपना संस्कार छोड़ जाता है । उस संस्कारको नैयौयिक और वैशेषिक धर्म या अधर्मके नामसे कहते हैं । योग उसे कर्माशय कहते हैं और बौद्ध उसे अनुशय आदि कहते हैं ।

बौद्धग्रन्थ मिलिन्द प्रश्न ( पृ. ३९ ) में लिखा है—

“( मरनेके बाद ) कौन जन्म ग्रहण करता है और कौन नहीं ?

जिनमें क्लेश ( चित्तका मैल ) लगा है वे जन्म ग्रहण करते हैं । और जो क्लेशसे रहित हो गये हैं वे जन्म ग्रहण नहीं करते ।

भन्ते ! आप जन्मग्रहण करेंगे या नहीं ?

“महाराज ! यदि संसारकी ओर आसक्ति लगी रहेगी तो जन्मग्रहण कर्हंगा । और यदि आसक्ति छूट जायेगी तो नहीं कर्हंगा ।”

योगदर्शनमें कहा है—पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं जो विलष्ट भी होती हैं और अविलष्ट भी होती हैं । जिन वृत्तियोंका कारण क्लेश होता है और जो कर्माशयके संचयके लिए आधारभूत होती हैं उन्हें विलष्ट कहते हैं । अर्थात् ज्ञाता अर्थको जानकर उससे राग या द्वेष करता है और ऐसा करनेसे कर्माशयका संचय होता है । इस प्रकार धर्म-अधर्मको उत्पन्न करनेवाली वृत्तियाँ विलष्ट होती हैं । विलष्ट जातीय अथवा अविलष्ट जातीय संस्कार वृत्तियोंसे होते हैं और वृत्तियाँ संस्कारसे होती हैं । इस प्रकार वृत्ति और संस्कारका चक्र सर्वदा चलता रहता है । १-५ व्यास भाष्य ।

सांख्यकारिका ( ६७ ) में कहा है—

‘धर्म-अधर्मको संस्कार कहते हैं । उसीके निमित्तसे शरीर बनता है । सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होने पर धर्मादि पुनर्जन्म करनेमें समर्थ नहीं रहते । फिर भी संस्कारवश पुनः ठहरा रहता है । जैसे कुलालके दण्ड-का सम्बन्ध दूर हो जाने पर भी संस्कारवश चाक घूमता है ।’

प्रशस्तपाद भाष्य ( पृ. २८०-२८१ ) में कहा है—

‘राग और द्वेषसे युक्त अज्ञानी जीव कुछ अधर्म सहित किन्तु प्रकृष्ट धर्ममूलक कामोंके करनेसे ब्रह्म-लोक, इन्द्रलोक, प्रजापति लोक, पितृलोक और मनुष्यलोकमें अपने आशयके अनुरूप दृष्टशरीर, इन्द्रिय-

१. ‘स कर्मजन्मसंस्कारो धर्माधर्मो गैरोच्यते’—न्यायमं, ( उत्तर भाग ) पृ. ४४ ।

२. क्लेशमूलः कर्माशयः ॥ २-१२ ॥ योग द. ।

३. ‘मूलं भवस्यानुशयः’ ।—अभिधर्म. ५-१ ।



विषय और दुःखादिको प्राप्त करता है। तथा कुछ धर्मसहित किन्तु प्रकृष्ट अधर्ममूलक कामोंके करनेसे प्रेतयोनि, तिर्यग्योनि वगैरह स्थानोंमें अनिष्ट शरीर, इन्द्रियविषय और दुःखादिको प्राप्त करता है। इस प्रकार अधर्मसहित प्रवृत्तिमूलक धर्मसे देव, मनुष्य, तिर्यच और नरकोंमें ( जन्म लेकर ) पुनः-पुनः संसारबन्ध करता है ॥'

न्यायमंजरीकारने भी उक्त मतको ही व्यक्त करते हुए कहा है—'देव, मनुष्य और तिर्यग्योनिमें जो शरीरको उत्पत्ति देखो जाती है, प्रत्येक वस्तुको जाननेके लिए जो ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, और आत्माका मनके साथ जो सम्बन्ध होता है वह सब प्रवृत्तिका ही परिणाम है। सभी प्रवृत्तियाँ क्रियारूप होनेसे यद्यपि क्षणिक हैं किन्तु उनसे होनेवाला आत्मसंस्कार, जिसे धर्म या अधर्म कहा जाता है, कर्म-फलभोग पर्यन्त स्थिर रहता है।'

इस प्रकार विभिन्न दार्शनिकोंके उक्त मन्तव्योंसे यह स्पष्ट है कि कर्म नाम क्रिया या प्रवृत्तिका है। यद्यपि वह क्षणिक है किन्तु उसका संस्कार फलकाल तक स्थायी रहता है। संस्कारसे प्रवृत्ति और प्रवृत्तिसे संस्कारको परस्पर अनादि है। इसीका नाम संस्कार है। किन्तु जैनदर्शनमें कर्मभाव संस्काररूप नहीं है। उसका स्वरूप आगे कहते हैं—

**जैनदर्शनमें कर्मका स्वरूप—**

जैन दर्शनमें कर्मके दो प्रकार कहे हैं—एक द्रव्यकर्म और दूसरा भावकर्म। यद्यपि अन्य दर्शनोंमें भी इस प्रकारका विभाग पाया जाता है और भावकर्मको तुलना अन्य दर्शनोंके संस्कारके साथ तथा द्रव्यकर्मको तुलना योगदर्शनकी वृत्ति और न्यायदर्शनकी प्रवृत्तिके साथ की जा सकती है तथापि दोनोंमें मौलिक अन्तर है, जैन दर्शनमें कर्म केवल एक संस्कार मात्र ही नहीं है किन्तु एक वस्तुभूत पदार्थ है जो रागो, द्वेषो जीवकी क्रियाका निमित्त पाकर उसकी ओर आकृष्ट होता है और दूध-पानीकी तरह उसके साथ घुल-मिल जाता है। यह पदार्थ है तो भौतिक किन्तु उसका कर्मनाम इसलिए रूढ़ हो गया; क्योंकि वह जीवके कर्म अर्थात् मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रियाके साथ आकृष्ट होकर जीवके साथ बंध जाता है।

आशय यह है कि जहाँ अन्य दर्शन राग और द्वेषसे आविष्ट जीवकी क्रियाको कर्म कहते हैं और इस कर्मके क्षणिक होने पर भी तज्जन्य संस्कारको स्थायी मानते हैं वहाँ जैनदर्शनका मत है कि राग-द्वेषसे आविष्ट जीवकी प्रत्येक क्रियाके साथ एक प्रकारका द्रव्य आत्माकी ओर आकृष्ट होता है और उसके राग-द्वेष रूप परिणामोंका निमित्त पाकर आत्माके साथ बन्धको प्राप्त होता है तथा कालान्तरमें वही द्रव्य आत्माको अच्छा या बुरा फल मिलनेमें निमित्त होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

आचार्य कुन्दकुन्दने पंचास्तिकायमें कहा है—

ओगाढगाढणिचिदो पोगलकाएहि सव्वदो लो गो ।

सुहुमेहि बादरेहि य णंताणतेहि विविहेहि ॥६४॥

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ मदा पोगला सभावेहि ।

गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥६५॥

अर्थ—यह लोक सर्वत्र सब ओरसे अनन्तानन्त विविध प्रकारके सूक्ष्म और बादर कर्मरूप होने योग्य पुद्गलोंसे ठसाठस भरा है। जहाँ आत्मा है वहाँ भी ये पुद्गल काय वर्तमान रहते हैं। संसार अवस्थामें प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाविक चैतन्य स्वभावको न छोड़ते हुए अनादि कालसे कर्मबन्धनसे बद्ध होनेके कारण अनादिसे मोह, राग-द्वेष आदि रूप अविशुद्ध ही परिणाम करता रहता है। वह जब जहाँ मोक्षरूप, रागरूप, द्वेषरूप अपने भाव करता है तब वहाँ उसके उन भावोंको निमित्त करके जीवके प्रदेशोंमें परस्पर

अवगाह रूपसे प्रविष्ट हुए पुद्गल स्वभावसे ही कर्मकाताको प्राप्त होते हैं। जैसे लाकड़ने अपने योग्य चन्द्र और सूर्यकी प्रभाको पाकर पुद्गल सम्बन्ध सन्ध्या, मेघ, इन्द्रधनुष रूपसे बिना किसी अन्य की स्वयं परिणमन करते हैं वैसे ही अपने योग्य जीवके परिणामोंको निमित्त करके पुद्गल कर्म भी बिना किसी अन्य कर्ताके अनेक कर्मरूप परिणमन करते हैं।

उन पुद्गलोंको भी कर्म शब्दसे ही कहते हैं क्योंकि जीवकी मन, वचन, कायकी क्रियाका निमित्त पाकर वे उस रूप स्वयं परिणमन करते हैं। जीवकी क्रियाके साथ इस प्रकारके पौद्गलिक कर्मबन्धनको अन्य किसी दर्शनने स्वीकार नहीं किया है। यह केवल जैन सिद्धान्तका ही मत है।

**जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है—**

जैनदर्शन सृष्टिका कर्ता-धर्ता-हर्ता कोई ईश्वर नहीं मानता। यह विश्व अनादि और अनन्त है। इसे किसीने न तो बनाया और न कोई सर्वथा नष्ट करता है। परिणमन वस्तुका स्वभाव है, अतः परिणमन सदा हुआ करता है। छह द्रव्योंमें-से जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंका संयोग-वियोग सदा चलता रहता है। इसीका नाम संसार है। जैसे खानसे सोना मेल मिट्टीको लिये हुए ही निकलता है उसी तरह संसारमें अनादि कालसे जीव अशुद्ध दशाके कारण भ्रमण करते हैं। यदि ऐसा न माना जाये तो अनेक आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं। यदि जीवको प्रारम्भसे ही शुद्ध मान लिया जाये तो उसकी अशुद्धता सम्भव नहीं है। आन्तरिक अशुद्धताके बिना नवीन कर्मका बन्ध कैसे हो सकता है। यदि शुद्ध जीव भी बन्धनमें पड़ने लगे तो बन्धनको काटनेका उरदेश और उसका आचरण ही व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए जीवका प्रारम्भिक रूप जो अनादि है अशुद्ध ही है।

तत्त्वार्थसूत्रमें बन्धका लक्षण इस प्रकार कहा है—

‘सकषायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः’ इसकी टीका सर्वार्थसिद्धिका आशय यहाँ दिया जाता है—

कषायके साथ रहनेसे सकषाय कहलाता है। सकषायके भावको सकषायत्व कहते हैं। उससे अर्थात् सकषाय भावसे। यह हेतुनिर्देश है। यह बतलाता है कि जैसे उदरकी पाचक शक्तिके अनुरूप आहारका ग्रहण होता है, उसी प्रकार तीव्र मन्द या मध्यम जैसा कषायभाव होता है उसके अनुरूप कर्मोंमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है। यह ज्ञान करानेके लिए हेतुनिर्देश किया गया है।

शंका—आत्मा तो अमूर्तिक है, उसके हाथ नहीं है, तब वह कर्मोंको कैसे ग्रहण करता है।

इसी शंकाको दूर करने लिए ‘जीव’ शब्द रखा है। जो जीता है अर्थात् प्राणधारण करता है, जिसके पीछे आयुर्कर्म लगा है वह जीव है। ‘कर्मयोग्यान्’ पाठसे भी काम चल सकता था। उसके स्थानमें जो ‘कर्मणो योग्यान्’ पाठ रखा है वह विशेष अर्थका ज्ञान करानेके लिए है। वह विशेष अर्थ है—‘कर्मणो जीवः सकषायो भवति।’ कर्मके निमित्तसे जीव सकषाय होता है। जो कर्मसे रहित है उसके कषाय नहीं होती। इससे यह बतलाया है कि जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है। इससे यह आशंका दूर हो जाती है कि अमूर्त जीव मूर्त कर्मसे कैसे बन्धता है। यदि ऐसा न माना जाये अर्थात् बन्धको अनादि न मानकर सादि माना जाये तो आत्यन्तिक शुद्धताके धारी सिद्ध जीवकी तरह शुद्ध जीवके कर्मबन्ध ही नहीं हो सकता।

दूसरा अर्थ होता है—कर्मके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है। इस तरह ‘कर्मणः’का पहला अर्थ ‘कर्मके कारण’ बदलकर ‘कर्मके योग्य’ हो जाता है। ‘पुद्गल’ शब्द बतलाता है कि कर्म पौद्गलिक है। इससे जो दर्शन अदृष्टको आत्माका गुण मानते हैं उनका निराकरण हो जाता है क्योंकि यदि अदृष्ट (कर्म) आत्माका गुण हो तो वह उसके संसारपरिभ्रमणमें कारण नहीं हो सकता।

अतः मिथ्यादर्शन आदि अभिनिवेशमें भीगे हुए आत्माके सब समयोंमें योग्यविशेषसे कर्मरूप होनेके

योग्य पुद्गलोंके, जो सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही और अनन्तानन्त प्रदेशी होते हैं—विभागरहित उपश्लेषको बन्ध कहते हैं। जैसे एक विशेष पात्रमें डाले गये विभिन्न रसवाले बीज पुष्प फलोंका परिणमन मदिराके रूपमें हो जाता है उसी प्रकार आत्मामें स्थित पुद्गलोंका योग और कषायके वशसे कर्मरूपसे परिणमन होता है इसीको बन्ध कहते हैं।

इस तरह जैसे जीव और पुद्गल दोनों अनादि हैं। उसी प्रकार दोनोंका सम्बन्ध भी अनादि है। जीवके अशुद्ध रागादि भावोंका कर्म कारण है और जीवके अशुद्ध रागादि भाव उस कर्मके कारण हैं। आशय यह है कि पूर्वमें बद्ध कर्मके उदयसे जीवके रागादि भाव होते हैं, और रागादि भावोंको निमित्त करके जीवके नवीन कर्मका बन्ध होता है। वे नवीन बन्धे कर्म जब उदयमें आते हैं तो उनका निमित्त पाकर जीवके पुनः रागादि भाव होते हैं और उन भावोंका निमित्त पाकर पुनः नवीन कर्मबन्ध होता है। इस प्रकार जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है।

पञ्चास्तिकायमें जीव और कर्मके इस अनादि सम्बन्धको जीवपुद्गल कर्मचक्रके नामसे अभिहित करते हुए लिखा है—

‘जो खलु संसारत्यो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।  
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२८॥  
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते ।  
तेहि दु विसयगहणं तत्तो रागो व दोसो वा ॥१२९॥  
जोयदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्रवालमि ।  
इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिषणो सणिषणो वा ॥’

अर्थ—जो जीव संसारमें स्थित है अर्थात् जन्म और मरणके चक्रमें पड़ा है उसके राग और द्वेषरूप परिणाम होते हैं। परिणामोंसे नये कर्म बन्धते हैं। कर्मोंसे गतियोंमें जन्म लेना पड़ता है, जन्म लेनेसे शरीर होता है। शरीरमें इन्द्रियां होती हैं। इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होता है। विषयोंके ग्रहणसे राग व द्वेषरूप परिणाम होते हैं। इस प्रकार संसाररूपी चक्रमें पड़े हुए जीवके भावोंसे कर्म और कर्मसे भाव होते रहते हैं। यह प्रवाह अभव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनन्त है और भव्य जीवकी अपेक्षा सादिमात्र है।

**जीव और कर्ममें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध—**

खानिशा तत्त्ववर्चामें प्रथम शंका यह उपस्थित की गई थी—‘द्रव्यकर्मके उदयसे संसारी आत्माका विकारभाव और चतुर्गति भ्रमण होता है या नहीं ?

इसके समाधानमें कहा गया है कि द्रव्यकर्मोंके उदय और संसारी आत्माके विकारभाव तथा चतुर्गति भ्रमणमें व्यवहारसे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। और अपने इस कथनके सम्बन्धमें समयसारकी गाथा ८०-८२ उद्धृत की गयी है।

अमृतचन्द्रजीने अपनी टीकामें कहा है—‘यतः जीवके परिणामोंको निमित्त करके पुद्गल कर्मरूपसे परिणमन करते हैं और पुद्गल कर्मोंको निमित्त करके जीव भी परिणमन करता है। इस प्रकार जीवके परिणाम और पुद्गलके परिणाममें पारस्परिक हेतुत्वकी स्थापना करनेपर भी परस्परमें व्याप्य-व्यापक भावका अभाव होनेसे जीव और पुद्गलके परिणामोंमें कर्ता कर्मभाव सिद्ध न होनेपर भी निमित्त-नैमित्तिक भावका निषेध न होनेसे एक दूसरेके निमित्तमात्र होनेसे ही दोनोंका परिणाम होता है।

अध्यात्ममें कर्ता-कर्म भाव दो द्रव्योंमें नहीं माना जाता है। क्योंकि उनमें व्याप्य-व्यापक भावका अभाव होता है। जहाँतक हम जानते हैं जीव और कर्ममें कर्ताकर्म भाव जो उपादान मूलक होता है कोई नहीं मानता। फिर भी निमित्तको हेतुकर्ता माननेवालोंका ऐसा भाव है कि जीव और कर्म दोनों परस्परमें

प्रेरक निमित्त है। अर्थात् जीवके परिणामोंसे प्रेरित होकर पुद्गल कर्मरूप परिणमन करता है। और पुद्गलकर्मसे प्रेरित होकर जीव रागादिरूप परिणमन करता है। और इस प्रकारके कथन कर्मकी बलवत्ता दिखानेके लिए किये-भो-गये-हैं। प्रवचनसार गाथा ११७ में कहा है—‘नाम संज्ञावाला कर्म अपने स्वभावसे आत्माके स्वभावको अभिभूत करके उसे मनुष्य तिर्यंच नारकी अथवा देव करता है।’

कर्मसिद्धान्तसे सम्बद्ध जितना भी कामिक साहित्य मिलता है प्रायः उस सबमें कर्मका वर्णन निमित्त-कर्ताके रूपमें मिलता है। जैसे, जो ज्ञानको आवरण करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है, जो दर्शनको आवरण करता है वह दर्शनावरणीय कर्म है। इसी तरह षट्खण्डागमकी जीवस्थान चूलिकामें धवला टीकाके अन्तर्गत व्युत्पत्ति करते हुए मोहनीयकी व्युत्पत्ति की गयी है जो मोहित किया जाता है वह मोहनीय है। इसपरसे जो शंका और समाधान किया गया है वह द्रष्टव्य है—

मोहणीयं ॥८॥

‘मुह्यत इति मोहनीयम्। एवं संते जीवस्य मोहणीयत्वं पसजदि त्ति णासंक्खिज्जं, जीवादो अभिण्णम्हि योग्गलदब्बे कम्मसण्णिदे उदयारेण कत्तारत्तमारोविय तथा उत्तोदो’ (पृ. ११)।

शंका—ऐसी व्युत्पत्ति करनेपर तो जीवको मोहनीयत्व प्राप्त होता है।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जीवसे अभिन्न और कर्म नामवाले पुद्गल-द्रव्यमें उपचारसे कर्तृत्वका आरोप करके उस प्रकारकी व्युत्पत्ति की गयी है।

बीरसेन स्वामीका उक्त कथन सर्वत्र लगा लेना चाहिये। कर्म संज्ञावाले पुद्गलद्रव्यमें उपचारसे कर्तृत्वका आरोप करके कर्मसिद्धान्तमें निमित्तकर्ताके रूपमें कथन किया गया है ऐसा माननेमें कोई विसंगति नहीं है।

कर्मसिद्धान्तका समस्त वर्णन द्रव्यकर्म प्रधान है। द्रव्यकर्मको लेकर ही उसमें वर्णन किया गया है। षट्खण्डागमके वर्णणाखण्डके अन्तर्गत प्रकृति अनुयोगद्वारमें (पृ. १३पृ. २०५) प्रकृतिमें निक्षेपोंका वर्णन करते हुए नोप्रागमद्रव्य प्रकृतिके दो भेद किये हैं—कर्मप्रकृति और नोकर्मप्रकृति। और कर्मप्रकृतिके ज्ञानावरणादि भेद किये हैं। अतः कर्मसिद्धान्तमें पुद्गलद्रव्य कर्मको लेकर ही वर्णन मिलता है। किन्तु कुन्दकुन्द स्वामीने अपने ग्रन्थोंमें जीव और कर्मके विवेचनमें व्यवहारके साथ निश्चय या परमार्थ स्थितिको भी स्पष्ट किया है।

यहाँ हम पञ्चास्तिकाय गा. ५७-६० से उसकी टीकाका विवरण उपस्थित करते हैं—

गाथा ५७ की टीकामें कहा है—‘व्यवहारनयसे जीव द्रव्यकर्मका अनुभवन करता है। और वह अनुभूयमान द्रव्यकर्म जीवके भावोंका निमित्तमात्र कहा जाता है। उसके निमित्तमात्र होने पर कर्ता जीवके द्वारा कर्मभूत भाव किया जाता है। इस तरह जो जिस प्रकारसे जीवके द्वारा भाव किया जाता है वह जीव उस भावका उस प्रकारसे कर्ता होता है।’

उक्त कथनमें उदयागत द्रव्य कर्मोंको जीवके भावोंका निमित्तमात्र कहा है। तथा जीवको ही अपने भावका कर्ता कहा है। जीव द्रव्यका परिणमन जीवमें होता है और पुद्गल द्रव्य का परिणमन पुद्गलमें होता है। जिस समय जीव स्वतन्त्र रूपसे अपने भाव करता है उसी समयमें कर्मका उदय भी होता है। इस तरह दोनोंमें निमित्त नैमित्तिकपणा घटित होता है।

कर्मकी उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाएँ होती हैं। और उसीको निमित्त करके जीवके औदयिक औपशमिक आदि भाव होते हैं। इसलिये गाथा ५२ में भावको कर्मकृत कहा है। क्योंकि कर्मके बिना उदयादि नहीं होते।

इसपरसे गाथा ५९ में यह पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया है, यदि जीवका औदयिकादिरूपा भाव कर्म-कृत है तो जीव उसका कर्ता नहीं हुआ और जीवको कर्ता माना गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है

कि जीव द्रव्यकर्मका कर्ता है। किन्तु ऐसा कैसे ही सकता है; क्योंकि निश्चयनयसे आत्मा अपने भावको छोड़ अन्य कुछ भी नहीं करता ?'

इसके समाधानमें कहा है— व्यवहारसे निमित्तमात्र होने के कारण जीवभावका कर्म कर्ता है। और जीवभाव कर्मका कर्ता है। किन्तु निश्चय से न तो जीवभावोंका कर्ता कर्म है और न कर्मका कर्ता जीव-भाव है। किन्तु वे कर्ता के बिना भी नहीं होते। अतः निश्चयसे जीवभावोंका कर्ता जीव है और कर्मपरिणामोंका कर्ता कर्म है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि द्रव्यकर्मके निमित्तमात्र होनेपर भी जीव अपने भावके करनेमें स्वतन्त्र कैसे कहा जा सकता है इस प्रसंगमें हम अकलंकदेवके तत्त्वार्थराजवातिकसे एक उद्धरण देना उचित समझते हैं। पाँचवें अध्यायके प्रथम सूत्रके व्याख्यानमें कहा है कि 'धर्माधर्माकाशपुद्गलाः' यहाँ पर बहुवचन स्वतन्त्रताका बोध करानेके लिए कहा है। वह स्वातन्त्र्य क्या है? धर्मादिद्रव्य जो गति आदि उपकार करनेके लिए प्रवृत्त होते हैं ऐसा वे स्वयं ही परिणमन करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति पराधीन नहीं है। यही स्वातन्त्र्य यहाँ विवक्षित है। इसपर शंका की गयी—परिणामियोंमें परिणाम बाह्य द्रव्यादिनिमित्त-वश पाया जाता है। स्वतन्त्र मानने पर उसका विरोध होता है। समाधानमें कहा गया है—नहीं, बाह्य तो निमित्तमात्र है। गति आदि रूपसे परिणमन करनेवाले जीव पुद्गल गति आदि उपग्रहमें धर्मादिके प्रेरक नहीं हैं।

जीव और कर्ममें भी जो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है वह प्रेरणामूलक नहीं है। अर्थात् न तो जीव-कर्म पुद्गलोंको कर्म रूप परिणमन करनेमें प्रेरक होता है और न उदयागत कर्म जीवको अपने भाव करनेमें प्रेरक होते हैं। यदि कर्मको प्रेरक निमित्त माना जायेगा तो जीवकी मुक्तिमें बाधा उपस्थित होगी। यद्यपि ऐसा भी कथन मिलता है। सोमदेव उपासकाध्ययन में कहा है—

‘प्रेर्यते कर्म जीवेन जीवः प्रेर्यत कर्मणा ।

एतयोः प्रेरको नान्यो नौनाविकसमानयोः ॥’ १०६ ॥

किन्तु उक्त कथनमें जीव और कर्मकी स्थितिमें किसी अन्य प्रेरक ईश्वर आदिका निषेध किया है। जीवके अशुद्ध रागादिभावोंका कारण कर्म है और कर्मके कारण रागादिभाव हैं। किन्तु न तो पुद्गलकर्म जीवको रागादिभाव करनेके लिए प्रेरित करता है और न रागादिभाव पुद्गलकर्मोंको कर्म रूप होने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रवचनसारमें कहा है—‘कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गलस्कन्ध अर्थात् जिनमें कर्मरूप परिणमन करनेकी शक्ति है वे पुद्गलस्कन्ध जीवके साथ एक क्षेत्रमें रहते हैं और जीवके परिणाममात्र बाह्य साधनका आश्रय लेकर स्वयमेव कर्मरूपसे परिणमन करते हैं, जीव उनको परिणमाता नहीं है’ अतः यह निश्चित होता है कि पुद्गलस्कन्धोंका कर्मरूप करने वाला आत्मा नहीं है ॥१६९॥

आगे पुद्गलबन्ध, जीवबन्ध और उभयबन्धका स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

कर्मोंका स्निग्धता और लक्षता रूप स्पर्श विशेषोंके द्वारा जो परस्परमें एकत्व रूप परिणमन होता है वह केवल पुद्गलबन्ध है और जीवका ओपाधिक मोह राग द्वेष वर्मायों के साथ एकत्वरूप परिणाम होता है वह केवल जीवबन्ध है। तथा जीव और कर्म पुद्गलोंके परस्परमें एक दूसरेके परिणाममें निमित्त होनेसे जो विशिष्टतर परस्पर अवगाह है वह उभयबन्ध अर्थात् पुद्गल जीवात्मकबन्ध है ॥१७७॥

यह आत्मा लोकाकाशके समान असंख्यातप्रदेशी होनेसे सप्रदेशी है। उसके प्रदेशोंमें कायवर्गणा, वचनवर्गणा और मनोवर्गणाका अवलम्बन पाकर जैसा परिस्पन्द होता है उसी प्रकारसे कर्मपुद्गल स्वयं परिस्पन्द वाले होते हुए उसमें प्रवेश करते हैं और ठहर जाते हैं। और यदि जीवके मोह राग द्वेष रूप भाव होते हैं तो बन्धको प्राप्त होते हैं। इस तरह द्रव्यबन्धका कारण भावबन्ध है ॥१७८॥ रागरूप परिणत

आत्मा ही नवीन द्रव्यकर्मसे बन्धता है और रागरहित आत्मा कर्मोंसे छूटता है। अतः निश्चयसे रागपरिणाम ही बन्ध है वही द्रव्यबन्धका साधकतम है ॥१७९॥

इस प्रकारसे आगममें बन्धकी व्याख्या है।

स्वयंका अर्थ अपने रूप नहीं—

प्रवचनसार, समयसार आदिमें इस प्रकरणमें अनेक स्थानोंमें 'स्वयं' शब्द आता है। 'स्वयं' शब्दका अर्थ स्पष्ट है—'अपने-आप' अर्थात् किसीसे प्रेरित होकर नहीं। जैसे हरिवंशपुराणके श्लोकमें कहा है—

'स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।

स्वयं भ्राम्यति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥'

'आत्मा स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है। स्वयं संसारमें भ्रमण करता है और स्वयं उससे छूटता है।' इसी प्रकार प्रवचनसारगाथा १६९ की टीकामें भी जो 'स्वयं' शब्द आया है उसका अर्थ भी वही है—अपनेआप।

समयसारमें भी गाथा ११६, ११८, १२१, १२२, १२३, १२४ में 'स्वयं' पद आया है। उनका अर्थ प्रथम हिन्दी टीकाकार पं. जयचन्दजीने सर्वत्र 'अपनेआप' किया है। यहाँ हम टीकानुसार अर्थ देते हैं—

यदि पुद्गलद्रव्य जीवमें आप स्वयं नहीं बैठा है, और कर्मभावसे आप नहीं परिणमता है तो वह पुद्गलद्रव्य अपरिणामी ठहरता है। अथवा कर्मवर्गणा आप कर्मभावसे नहीं परिणमती है तो संसारका अभाव ठहरता है। अथवा सांख्यमतका प्रसंग आता है। यदि जीव पुद्गलद्रव्यको कर्मभावसे परिणमाता है तो आप नहीं परिणमते हुए पुद्गलद्रव्यको चेतनजीव कैसे परिणमाता है। अथवा यदि पुद्गलद्रव्य आप ही कर्मभावसे परिणमता है तो जीव पुद्गलद्रव्यको कर्मभावसे परिणमाता है यह कथन मिथ्या ठहरता है।

तथा जीव कर्मसे स्वयं नहीं बैठा हुआ क्रोधादिभावसे आप नहीं परिणमता तो वह जीव अपरिणामी हुआ। ऐसा होनेपर संसारका अभाव आता है। यदि कोई ऐसा तर्क करे जो क्रोधादि रूप पुद्गल कर्म है वह जीवको क्रोधादि रूप परिणमाता है अतः संसारका अभाव नहीं होगा। तो यहाँ दो पक्ष हैं—जो पुद्गलकर्म क्रोधादि हैं वे अपनेआप अपरिणमतेको परिणमते हैं कि परिणमतेको परिणमते हैं। प्रथम तो जो आप नहीं परिणमता हो उसको परिणमानेको पर समर्थ नहीं होता; क्योंकि आपमें जो शक्ति नहीं उसे पर उत्पन्न नहीं कर सकता। यदि स्वयं परिणमता है तो उसे परिणमानेवाले परकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वस्तुकी शक्ति परकी अपेक्षा नहीं करती 'अतः यह ठहरा कि जीव परिणाम स्वभाववाला स्वयं है।'।

ऊपर सर्वत्र टीकाकार पं. जयचन्दजीने 'स्वयं' का अर्थ अपनेआप ही किया है, अतः अपनेरूप अर्थ करना ठीक नहीं।

आचार्य बादिराजजीने अपने एकीभाव स्तोत्रमें लिखा है—

'एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो'

जो कर्मबन्ध स्वयं ( अपनेआप ) मेरे साथ एकीभावकी तरह प्राप्त हुआ है।

अतः यथार्थमें न तो जीव कर्मको प्रेरित करता है और न कर्म जीवको प्रेरित करता है। दोनों दो स्वतन्त्र विभिन्न द्रव्य हैं। दोनों ही परिणामी हैं। दोनोंमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धमात्र है। पुरुषार्थ सिद्धयुपायमें कहा है—

'इस संसारमें जीवकृत रागादिरूप परिणामोंका निमित्तमात्र पाकर पुद्गल स्वयं ही कर्मरूपसे परिणत हो जाते हैं। और अपने चिदात्मक रागादिभाव रूपसे स्वयं ही परिणमन करनेवाले उस चेतन आत्माके भी पौद्गलिक कर्म निमित्तमात्र होते हैं। इस प्रकार यह आत्मा कर्मकृत भावोंसे असमाहित होते हुए भी अज्ञानो जनोंको सयुक्तके समान प्रतिभासित होता है और इस प्रकारका प्रतिभास ही संसारका बीज है। इस विपरीत



अभिनिवेशको दूर करके और अपने आत्मस्वरूपको सम्यक् रूपसे निश्चित करके उससे विचलित न होना ही पुरुषार्थ-मोक्षकी सिद्धिका उपाय है । ( १२-१५ श्लो. )

अतः यह सिद्ध होता है कि जीव और पुद्गलकर्ममें निमित्त-नैमित्तिकभाव है । किन्तु यह कथन भी बाह्यदृष्टिसे है । अन्तर्दृष्टिसे तो जीवके भावोंमें और कर्ममें निमित्त-नैमित्तिकभाव है, जीव और कर्ममें नहीं । क्योंकि यदि स्वयं जीवका कर्मका नामत्त मान लिया जायेगा तो वह सदा ही कर्ता बना रहेगा और इस तरह मुक्ति नहीं हो सकेगी ।

कर्म और जीवमें परस्परमें निमित्त-नैमित्तिक भावको लेकर प्रवचनसार गाथा १२१ की टीकामें जो कथन किया है वह भी द्रष्टव्य है—

उसकी उत्पत्तिकामें कहा है—परिणामात्मक संसारमें किस कारणसे पुद्गलका सम्बन्ध होता है जिससे वह मनुष्यादि पर्यायरूप होता है ? इसके समाधानमें कहा है—‘वह जो आत्माका संसार नामक परिणाम है वहां द्रव्यकर्मके श्लेषका कारण है ।

प्रश्न—उस प्रकारके परिणामका कारण कौन है ?

उत्तर—उसका कारण द्रव्यकर्म है । क्योंकि द्रव्यकर्मसे संयुक्त होनेसे ही उस प्रकारका परिणाम पाया जाता है ।

प्रश्न—ऐसा होनेसे इतरतराश्रय दोष आता है, क्योंकि उस प्रकारके परिणाम होनेपर द्रव्यकर्मका श्लेष होता है और उसके होनेपर उस प्रकारके परिणाम होते हैं ?

उत्तर—नहीं आता, क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्मके साथ सम्बद्ध आत्माका जो पूर्वका द्रव्यकर्म है उसको कारण रूपसे स्वीकार किया है । इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म उसका कार्य होनेसे और पुराना द्रव्यकर्म उसका कारण होनेसे आत्माका उस प्रकारका परिणाम द्रव्यकर्म ही है । अतः आत्मा आत्मपरिणामका कर्ता होनेसे उपचारसे द्रव्यकर्मका भी कर्ता है । परमार्थसे आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं है ।

कर्मका कर्ता-भोक्ता कौन—पहले बतला आये हैं कि जैन धर्ममें केवल जीवके द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मोंका नाम कर्म नहीं है, किन्तु जीवके कामोंके निमित्तसे आकृष्ट होकर जो पुद्गल परमाणु उस जीवसे बन्धको प्राप्त होते हैं वे भी कर्म कहे जाते हैं । तथा उन पुद्गल परमाणुओंके फलोन्मुख होनेपर उनके निमित्तसे जीवमें जो काम-क्रोधादि भाव होते हैं, वे भी कर्म कहे जाते हैं । पहले प्रकारके कर्मोंको द्रव्यकर्म और दूसरे प्रकारके कर्मोंको भावकर्म कहते हैं । जीवके साथ उनका अनादि सम्बन्ध है । इन कर्मोंके कर्तृत्व और भोक्तृत्वके बारेमें जब हम निश्चयदृष्टिसे विचार करते हैं तो जीव न तो द्रव्य-कर्मोंका कर्ता ही प्रमाणित होता है और न उनके फलका भोक्ता ही प्रमाणित होता है; क्योंकि द्रव्यकर्म पौद्गलिक हैं, पुद्गल द्रव्यके विचार हैं, उनका कर्ता चेतन जीव कैसे हो सकता है । चेतनका कर्म चैतन्यरूप होता है और अचेतनका कर्म अचेतनरूप । यदि चेतनका कर्म भी अचेतनरूप होने लगे तो चेतन-अचेतनका भेद नष्ट होनेसे महान् संकर दोष उपस्थित होगा । अतः प्रत्येक द्रव्य स्वभावका कर्ता है, परभावका कर्ता नहीं है । जैसे जल स्वभावसे शीतल होता है । किन्तु आगके सम्बन्धसे उष्ण हो जाता है । यहाँ उष्णताका कर्ता जल नहीं है । उष्णता तो आगका धर्म है । जलमें उष्णता आगके सम्बन्धसे आती है । अतः आगन्तुक है । आगका सम्बन्ध छूटते ही चली जाती है । इसी प्रकार जीवके अशुद्ध भावोंका निमित्त पाकर जो पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं उनका कर्ता स्वयं पुद्गल ही है, जीव उनका कर्ता नहीं है । जीव तो अपने भावोंका कर्ता है । जैसे सांख्यके मतमें पुरुषके संयोगसे प्रकृति-का कर्तृत्व गुण व्यक्त हो जाता है । और वह सृष्टि प्रक्रियाको उत्पन्न करना शुरू कर देता है तथापि पुरुष अकर्ता ही कहा जाता है, उसी तरह जीवके राग-द्वेषादि रूप अशुद्ध भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य उसकी ओर स्वतः आकृष्ट होता है, उसमें जीवका कर्तृत्व नहीं है । जैसे यदि कोई सुन्दर युवा पुरुष

कार्यवश बाजारसे जाता है और कोई सुन्दरी उसपर मोहित होकर उसकी अनुगामिनी बन जाती है तो इसमें पुरुषका क्या कर्तृत्व है। कर्त्री तो वह स्त्री है, पुरुष तो उसमें निमित्त मात्र है। उसे तो इसका पता भी नहीं रहता।

समयसारमे कहा है—

जीवपरिणामहेतुं कम्मत्तं पुगला परिणमति ।

पुगलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥ ८६ ॥

ण वि कुब्बदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।

अण्णोणणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥ ८७ ॥

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।

पुगलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८८ ॥

अर्थ—जीव तो अपने रागद्वेषादिरूप भाव करता है। उन भावोंको निमित्त करके कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गल कर्मरूप परिणत हो जाते हैं। तथा कर्मरूप परिणत पुद्गल जब फलीन्मुख होते हैं, तो उनका निमित्त पाकर जीव भी रागद्वेषादिरूप परिणमन करता है। यद्यपि जीव और पुद्गल दोनों एक दूसरेको निमित्त करके परिणमन करते हैं तथापि न तो जीव पुद्गल कर्मोंके गुणोंका कर्ता है और न पुद्गलकर्म जीवके गुणोंका कर्ता है। किन्तु दोनों परस्परमें एक दूसरेको निमित्त करके परिणमन करते हैं। अतः आत्मा अपने भावोंका ही कर्ता है, पुद्गल कर्मकृत समस्त भावोंका कर्ता नहीं है।

सांख्यके दृष्टान्तसे किन्हीं पाठकोंको यह भ्रम होनेकी सम्भावना है कि जैनधर्म भी सांख्यकी तरह जीवको सर्वथा अकर्ता और प्रकृतिकी तरह पुद्गलको ही कर्ता मानता है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। सांख्यका पुरुष तो सर्वथा अकर्ता है किन्तु जैनोंकी आत्मा सर्वथा अकर्ता नहीं है। वह आत्माके स्वाभाविक भाव ज्ञान दर्शन सुख आदिका और वैभाविक भाव राग-द्वेष आदिका कर्ता है, किन्तु उनको निमित्त करके पुद्गलोंमें जो कर्मरूप परिणमन होता है उसका वह कर्ता नहीं है। सारांश यह है कि वास्तवमें तो उपादान कारणको ही किसी वस्तुका कर्ता कहा जाता है। निमित्त कारणमें जो कर्ताका व्यवहार किया जाता है वह तो व्यावहारिक है, वास्तविक नहीं है। वास्तविक कर्ता तो वही है, जो स्वयं कार्यरूप परिणत होता है। जैसे घटका कर्ता मिट्टी ही है कुम्हार नहीं। कुम्हारको जो लोकमें घटका कर्ता कहा जाता है उसका केवल इतना ही तात्पर्य है कि घट पर्यायमें कुम्हार निमित्त मात्र है। वास्तवमें तो घट मिट्टीका ही एक भाव है अतः वही उसका कर्ता है। जो बात कर्तृत्वके सम्बन्धमें कही गयी है वही भोक्तृत्वके सम्बन्धमें भी जाननी चाहिए। जो जिसका कर्ता नहीं वह उसका भोक्ता कैसे हो सकता है। अतः आत्मा जब पुद्गल कर्मोंका कर्ता ही नहीं तो उनका भोक्ता कैसे हो सकता है। वह अपने जिन राग-द्वेषादिरूप भावोंका संसारदशामें कर्ता है उन्हींका भोक्ता भी है। जैसे व्यवहारमें कुम्हारको घटका भोक्ता कहा जाता है क्योंकि घटको बेचकर जो कुछ कमाता है उससे अपना और परिवारका पोषण करता है। किन्तु वास्तवमें तो कुम्हार अपने भावोंको ही भोगता है। उसी तरह जीव भी व्यवहारसे स्वकृत कर्मोंके फल-स्वरूप सुख-दुःखादिका भोक्ता कहा जाता है। वास्तवमें तो अपने चैतन्य भावोंका ही भोक्ता है। इस प्रकार कर्तृत्व और भोक्तृत्वके विषयमें निश्चय दृष्टि और व्यवहारदृष्टिके भेदसे द्विविध व्यवस्था है।

निश्चय और व्यवहार—

आगममें कथनकी दो शैलियाँ प्रचलित हैं उनमेंसे एकको निश्चय और दूसरीको व्यवहार कहते हैं। ये दोनों दो नय हैं। नय वस्तुस्वरूपको देखनेकी दृष्टिका नाम है। जैसे हमारे देखनेके लिए दो आँखें हैं वैसे ही वस्तुस्वरूपको देखनेके लिए भी दो नयरूप दो दृष्टियाँ हैं। एक नयदृष्टि स्वाश्रित है अर्थात् वस्तुके

स्वाश्रित स्वरूपको देखती है और दूसरी नयदृष्टि पराश्रित है—परके निमित्तसे होनेवाले भावोंको भी उस वस्तुका मानकर देखती है। स्वाश्रित दृष्टि निश्चयनय है और पराश्रित दृष्टि व्यवहारनय है। आगममें इन दोनों नयोंमें जाव और कर्मका कथन किया गया है। निश्चय और व्यवहारकथनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. व्यवहारनय कहता है जीव और शरीर एक है। निश्चयनय कहता है जीव और शरीर कभी भी एक नहीं हैं। इन दोनों कथनोंमें-से किसका कथन यथार्थ है और किसका कथन असत्य है यह मोटी बुद्धिवाला भी जान सकता है। क्योंकि मृत्यु होनेपर शरीर पड़ा रहता है और जीव निकल जाता है। अतः जीव और शरीर एक नहीं हैं। इसी तरह आत्मामें कर्मका निमित्त पाकर होनेवाले जो भावादि हैं वे भी व्यवहारसे जीव या जीवके कहे जाते हैं किन्तु यथार्थमें तो वे जीव नहीं हैं। उदाहरणके लिए व्यवहारसे कर्मबन्धके कारण जीवको मूर्तिक कहा जाता है। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये चार गुण होते हैं उसे मूर्तिक कहते हैं। किन्तु जीवमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि नहीं होते। यदि होते तो जीव और पुद्गलमें कोई अन्तर नहीं रहता। इसी तरह कर्मसिद्धान्तमें वर्णित वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अनुभागस्थान, योगस्थान, स्थितिवन्धस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान, यहाँ तक कि गुणस्थान और जीव समास भी जीवके नहीं हैं। क्योंकि ये सभी पुद्गल द्रव्यके संयोगसे निष्पन्न होते हैं।

इसीसे समासार ( गा. ५६ ) में कहा है कि रूपसे लेकर गुणस्थान पर्यन्त भाव व्यवहारनयसे जीवके कहे हैं। क्योंकि व्यवहारनय पर्यायाश्रित होनेसे पुद्गलके संयोगवश अनदि सिद्ध बन्धपर्यायको लेकर परके भावोंको परका कहता है। किन्तु निश्चयनय द्रव्याश्रित होनेसे केवल जीवके स्वाभाविक भावको ही जीवका कहता है और प्रभावका निषेध करता है इसलिए निश्चयसे ये जीवके नहीं हैं।

ये सब संसारी जीवोंमें ही पाये जाते हैं। मुक्तजीवोंमें नहीं पाये जाते। इससे सिद्ध है वे सब कर्मके सम्बन्धसे होनेसे आगन्तुक हैं उनके साथ जीवका तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, संयोग सम्बन्ध मात्र है। संयोग सम्बन्ध दो भिन्न द्रव्योंमें ही होता है।

यदि उक्त सबको जीवका कहा जायेगा तो जीव और अजीवमें कोई अन्तर नहीं रहेगा। इसी तरह ऐकेन्द्रिय, दोहन्द्रिय, तेहन्द्रिय, चौहन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त ये सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ हैं। इन्हींके मेलसे चोदह जीव समास बनते हैं। तब उन्हें जीव कैसे कहा जा सकता है? जैसे किसी व्यक्तित्व जन्मसे ही घीका घड़ा देखा था, वह घीसे भिन्न घड़ेको जानता नहीं था उसको समझानेके लिए कहा जाता है कि जो यह घीका घड़ा कहा जाता है वह मिट्टी से बना है घीसे नहीं बना। किन्तु उसमें घी रखा जाता है इससे उसे घीका घड़ा कहा जाता है। इसी प्रकार अज्ञानी लोग अनादिसे अशुद्ध जीवको ही जीव जानते हैं, शुद्ध जीवको नहीं जानते। उनको समझानेके लिए कहा गया है कि यह जो वर्णादि वाला जीव है वह ज्ञानमय है वर्णादिमय नहीं है। अतः प्रसिद्धिवश जीवको वर्णादिमान व्यवहारसे कहा है।

इसी प्रकार जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है ये पुद्गलिक मोहकर्मके उदयसे कहे गये हैं। अतः जैसे जैसे पैदा हुए जो ही होते हैं उसी तरह ये भी पुद्गल ही हैं जीव नहीं हैं। इसी तरह राग, द्वेष, मोह, कर्म, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अव्यवस्थान, अनुभागस्थान, योगस्थान, बन्धस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान, स्थितिवन्धस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान आदि भी पुद्गल कर्म पूर्वक होनेसे पुद्गल ही हैं जीव नहीं हैं। व्यवहारसे ही इन्हें आगममें जीव कहा है क्योंकि ये परके निमित्तसे जीवमें होते हैं। ऐसी स्थितिमें व्यवहारको सर्वथा सत्य कैसे कहा जा सकता है। वह तो केवल व्यवहार रूपसे ही सत्य है। परमार्थ सत्य तो निश्चयनयका ही विषय है क्योंकि वह जीवके वास्तविक स्वरूपको कहता है जो नित्य अविनाशी है, परके निमित्त से नहीं होता है।

हमने पूर्वमें कहा है कि व्यवहार पराश्रित होता है पर निमित्तसे होनेवाले भावोंको भी जीवका

कहता है और निश्चयनय स्वाश्रित होता है। इसीसे पहला असत्य और दूसरा सत्य कहलाता है। जैसे जीवकी संसारदशा व्यवहारसे है निश्चयसे नहीं है। तब क्या जीवकी संसारदशा झूठी है? क्या वह संसारी नहीं है? ऐसा प्रश्न होता है। इसका उत्तर है कि जीवकी संसारदशा झूठी नहीं है सच्ची है किन्तु उस दशाको जीवका स्वरूप मानना असत्य है। व्यवहारनय उसे जीवका मानता है। यदि हम व्यवहारनयको सर्वथा सत्य मान बैठें तब तो मुक्ति की चर्चा ही व्यर्थ हो जायेगी। अतः जो केवल व्यवहारको ही यथार्थ मानकर उसीमें रमे रहते हैं उन्हें तो सम्यक्त्वको प्राप्ति तीन कालमें नहीं हो सकती; क्योंकि उसके लिए आत्माका ज्ञान आवश्यक है और आत्माके ज्ञानके लिए अनात्माका ज्ञान आवश्यक है। आत्मा और अनात्माका भेदज्ञान होनेपर ही सम्यक्त्व हो सकता है और यह ज्ञान निश्चय दृष्टिके बिना सम्भव नहीं है क्योंकि वही दृष्टि आत्माके शुद्ध स्वरूपका बोध कराती है।

प्रवचनसार गा. १८३ में कहा है—

जो जीव और पुद्गलके स्वभावको निश्चित करके यह नहीं देखता कि जीव स्व है और पुद्गल पर है। वही मोहवश परद्रव्यको अपना मानता है और उसमें आसक्ति करता है। इस प्रकार भेदविज्ञान न होनेसे जीव परद्रव्यासक्त होता है और भेदज्ञान होनेसे परसे आसक्ति त्याग 'स्व' में प्रवृत्त होता है।

आगे प्रवचनसार गा. १८९ की टीकामें निश्चय और व्यवहारका अविवेक दर्शाते हुए अमृतचन्द्रजीने जो कहा है वह व्यवहार और निश्चय विषयक सब शंकाओंका निराकरण करता है। उन्होंने कहा है—

'रागपरिणाम ही आत्माका कर्म है, वही पुण्य-पापरूप है। रागपरिणामका ही आत्मा कर्ता है, उसीका ग्रहण करनेवाला और उसीका त्याग करनेवाला है, यह शुद्ध द्रव्यका निरूपण करनेवाला निश्चयनय है, और पुद्गल परिणाम आत्माका कर्म है वही पुण्य-पापरूप है, आत्मा पुद्गल परिणामका ही कर्ता है, उसीको ग्रहण करता और छोड़ता है, यह अशुद्ध द्रव्यका कथन करनेवाला व्यवहारनय है। ये दोनों भी नय हैं क्योंकि शुद्धता और अशुद्धता दोनों प्रकारसे द्रव्यकी प्रतीति होती है किन्तु यहाँ (अध्यात्मशास्त्रमें) निश्चयनय साधकतम होनेसे ग्रहण किया गया है। क्योंकि साध्यके शुद्ध होनेसे द्रव्यकी शुद्धताका प्रकाशक होनेसे निश्चयनय साधकतम है किन्तु जीवके अशुद्ध स्वरूपका प्रकाशक व्यवहारनय साधकनय नहीं है।

उक्त कथनमें व्यवहार और निश्चयका कथन तथा दोनोंकी उपयोगिता और अनुपयोगिता अथवा साधकतमता और असाधकतमताको स्पष्ट कर दिया है।

चूँकि सापेक्षनय सत्य और निरपेक्षनय मिथ्या होते हैं। अतः जैसे निश्चय निरपेक्ष व्यवहार मिथ्या है उसी प्रकार व्यवहार निरपेक्ष निश्चय भी मिथ्या है। किन्तु हेय और उपादेयकी दृष्टिसे व्यवहारनय द्वारा प्रतिपादित जीवका अशुद्ध स्वरूप हेय है और निश्चय प्रतिपादित शुद्ध स्वरूप उपादेय है। उसीको प्राप्तिके लिए सब प्रयत्न है।

किन्तु व्यवहार हेय होते हुए भी प्रारम्भसे ही सर्वथा हेय नहीं है। व्यवहार नयके बिना परमार्थका उपदेश भी अशक्य है। जैसे 'आत्मा' कहनेपर जिन्हें आत्माका परिज्ञान नहीं है, व कुछ भी नहीं समझते। किन्तु जब व्यवहार नयका अवलम्बन लेकर कहा जाता है कि जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यस्वरूप है वह आत्मा है तो वह समझ जाते हैं। किन्तु ऐसा कहनेपर भी अखण्ड-अभेदरूप आत्माकी प्रतीति न होकर खण्ड-भेदरूप आत्माकी प्रतीति होती है जो यथार्थ नहीं है क्योंकि आत्मा तो अखण्ड-अभेदरूप है। यदि कोई व्यवहारके द्वारा प्रतिपादित खण्ड-भेदरूप स्वरूपको ही यथार्थ मान बैठे तो वह मिथ्याज्ञानी ही कहा जायेगा। इस प्रकार जहाँ परमार्थका प्रतिपादक होनेसे व्यवहार उपयोगी है वहाँ यथार्थ स्वरूपका बोध न करा सकनेसे त्याज्य भी है। इसीलिए अमृतचन्द्रजीने कहा है—

'एवं....व्यवहारनयोऽपि परमार्थप्रतिपादकत्वात् उपन्यसनीय....व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः।' ( गा. टीका )

इसलिए व्यवहारनयको परमार्थका प्रतिपादक होनेसे स्थापित करना तो योग्य है किन्तु उसको सर्वथा उपादेय मानकर उसका अनुसरण करना योग्य नहीं है। इसीसे समयसार गा. ७ में कहा है—

‘ज्ञानोक्तं चारित्र्यं, दर्शनं, ज्ञानं व्यवहारसे कहे हैं। निश्चयसे न ज्ञान है, न चारित्र्य है, न दर्शन है वह तो ज्ञायक मात्र है।’

तथा गाथा १६ में कहा है—

‘साधुको दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यका निरन्तर सेवन करना योग्य है। किन्तु निश्चयसे उन तीनोंको आत्मा ही जानो।’

अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य आत्माके ही पर्याय हैं, कोई भिन्न वस्तु नहीं हैं, अतः साधुको एक आत्माकी ही आराधना करना चाहिए।

इस तरह व्यवहार भी किन्हीं जीवोंके लिए किन्हीं अवस्थाओंमें उपयोगी होता है। इसीसे आगममें जो कथन किया गया है वह व्यवहार प्रधान है क्योंकि उसके बिना परमार्थका बोध नहीं होता। अतः परमार्थका ज्ञान करानेके लिए आगममें भी व्यवहारप्रधान कथनका निषेध मिलता है। उदाहरणके लिए गोमटसारके जीवकाण्डमें बीस प्ररूपणाओंके द्वारा जीवका कथन किया है। अन्तमें कहा है—

गुणजीवठाणरहिया सण्णा पञ्जत्तिपाणपरिहोणा।

सेस णवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति ॥

सिद्ध सदा शुद्ध होते हैं उनमें गुणस्थान, जीवसमाप्त, संज्ञा, पर्याप्त, प्राण तथा चौदह मार्गणाओंमें से नौ मार्गणा नहीं होतीं। अर्थात् बीसमें-से केवल छह प्ररूपणाएँ शुद्ध जीवमें होती हैं। अतः चौदहका कथन व्यवहारमूलक है। उससे ही संसारी जीव जीवका यथार्थ स्वरूप समझनेमें समर्थ होते हैं।

**समयसारोक्त बन्धका कथन—**

समयसारमें भी बन्धतत्त्वका कथन है। उसका भी सार यहाँ दिया जाता है—

जैसे कोई पुष्य शरीरमें तेल लगाकर धूलसे भरी भूमिमें खड़ा होकर व्यायाम कर्म करते हुए अनेक प्रकारके उपकरणोंसे सचित्त-अचित्त वस्तुका घात करते हुए धूलसे लिप्त हो जाता है। उसके धूलसे लिप्त होनेका कारण क्या है? भूमिका स्वभावसे ही धूलभरा होना तो कारण नहीं है। यदि ऐसा हो तो जिनके शरीरमें तेल नहीं लगा है उनके भी धूलसे लिप्त होनेका प्रसंग आता है। यही बात शस्त्रोंसे व्यायाम करनेके सम्बन्धमें भी जानना तथा अनेक उपकरणोंसे सचित्त-अचित्त वस्तुका घात करनेके सम्बन्धमें भी जानना। अतः न्यायबलसे यही सिद्ध होता है कि उस पुरुषका तेलसे लिप्त होना ही धूलसे लिप्त होनेका कारण है।

इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि आत्मामें रागादि करता हुआ स्वभावसे ही कर्मयोग्य पुद्गलोंसे भरे लोकमें मन-वचन-कायकी क्रिया करते हुए अनेक प्रकारके उपकरणोंके द्वारा सचित्त-अचित्त वस्तुओंका घात करते हुए कर्मरूपी धूलि बाँधता है। इसमें उसके बन्धका कारण क्या है? लोकका स्वभावसे ही कर्मपुद्गलोंसे भरा होना यदि कारण हो तो लोकके अग्रभागमें विराजमान सिद्धोंके भी कर्मबन्धनका प्रसंग आता है। मन-वचन-कायकी क्रिया भी बन्धका कारण नहीं है। यदि हो तो यथाख्यात संयमके चारियोंके भी कर्म-बन्धनका प्रसंग आता है। अनेक इन्द्रियोंका होना भी बन्धमें कारण नहीं है, यदि हो तो केवलज्ञानियोंके भी बन्धका प्रसंग आता है। सचित्त-अचित्त वस्तुका घात भी बन्धका कारण नहीं है। यदि हो तो समितिधोंके पालक मुनिराजोंके भी कर्मबन्धनका प्रसंग आता है। अतः न्यायबलसे यह निष्कर्ष निकलता है कि उपयोगमें रागादिका करना ही बन्धका कारण है ॥२३७-२४१॥

आगे रागको अज्ञानमय अध्यवसाय बतलाकर उसे ही बन्धका कारण कहा है। यथा—

मैं अन्य जीवोंको मारता हूँ या अन्य जीव मुझे मारते हैं जिसके ऐसा अध्यवसाय है वह अज्ञानो होनेसे मिथ्यादृष्टि है। और जिसके नहीं है वह ज्ञानी होनेसे सम्यग्दृष्टि है ॥२४७॥

क्योंकि जीवोंका मरण अपने आयुक्रमके क्षय होनेसे ही होता है और आयुक्रमको कोई दूसरा हर नहीं सकता। वह तो अपने उपभोगसे ही क्षय होता है। अतः कोई कभी भी किसी अन्यका मरण नहीं कर सकता। अतः मैं अन्य जीवोंको मारता हूँ और अन्य जीव मुझे मारते हैं इस प्रकारका अध्यवसाय निश्चय ही अज्ञान है। इसी तरह मैं अन्य जीवोंको जिलाता हूँ और अन्य जीव मुझे जिलाते हैं ऐसा अध्यवसाय निश्चयसे अज्ञान है। क्योंकि जीवन तो जीवोंके अपने आयुक्रमके उदयसे ही होता है। उसके अभावमें नहीं होता। और आयुक्रम कोई किसीको दे नहीं सकता। वह तो अपने परिणामोंसे ही बँधता है।

मैं अन्य जीवोंको दुखी या सुखी करता हूँ और अन्य जीव मुझे दुखी या सुखी करते हैं ऐसा अध्यवसाय निश्चय ही अज्ञान है। क्योंकि सब जीव अपने-अपने कर्मके उदयसे दुखी और सुखी होते हैं। उसके अभावमें उनका सुखी-दुखी होना सम्भव नहीं है। और अपना कर्म कोई किसीको दे नहीं सकता, उसका उपार्जन तो अपने परिणामोंसे ही होता है। अतः कोई कभी भी किसीको दुखी-सुखी नहीं कर सकता।

अतः अन्य जीवोंको मैं मारता हूँ, या नहीं मारता हूँ, उन्हें सुखी या दुखी करता हूँ इस प्रकारका जो अज्ञानमय अध्यवसाय है वही स्वयं रागादिरूप होनेसे उसके शुभ या अशुभ बन्धका कारण होता है।

जीवोंके प्राणोंका घात अपने कर्मादयकी विविधतावश कभी होता है और कभी नहीं होता। किन्तु जो मारनेका अध्यवसाय किया जाता है वह निश्चयसे बन्धका हेतु होता है। इसी प्रकार अहिंसाका अध्यवसाय करना पुण्यबन्धका हेतु है। सारांश यह है कि बन्धका कारण अध्यवसाय है, बाह्य वस्तु बन्धका कारण नहीं है वह तो केवल अध्यवसानका कारण है। अध्यवसानके निषेधके लिए ही बाह्य वस्तुका निषेध है। बाह्य वस्तुके आश्रयके बिना अध्यवसान नहीं होता। इसलिये बाह्यवस्तु परम्परासे बन्धका कारण होती है साक्षात् नहीं, साक्षात् बन्धका कारण तो अध्यवसान ही है। अतः अन्य जीवोंको मैं सुखी करता हूँ या दुःखी करता हूँ इत्यादि अध्यवसान मिथ्या है क्योंकि परका भाव परमें व्यापार नहीं करनेसे स्वार्थ क्रियाकारी नहीं होता।

स्व और परका भेदज्ञान न होनेपर जो जीव संकल्प-विकल्प करता है उसे अध्यवसान कहते हैं। यही बन्धका कारण है। यह कषायके उदयरूप होता है। कषायके उदयसे ही कर्मोंमें स्थितिवन्ध और अनुभागबन्ध होता है। कषायके उदयके अभावमें केवल योगसे तो प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध ही होते हैं। अतः बन्धका प्रमुख कारण कषायोदयरूप अध्यवसान ही होता है। किन्तु आगममें बन्धके कारण चार या पाँच कहे हैं।

मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग ये पाँच हैं और प्रमादके बिना चार हैं। तत्त्वार्थसूत्र अ. ८।१ में पाँच कारण कहे हैं। समयसार, गोम्मटसार आदिमें प्रमादको नहीं लिया है इसपरसे यह आशंका होना स्वाभाविक है कि जब बन्धके चार प्रकार हैं और उनके दो ही कारण कहे हैं तब मिथ्यात्व और अविरतिको बन्धका कारण क्यों कहा ?

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि बन्धके ये कारण क्रमसे ही दूर होते हैं, प्रथम गुणस्थान मिथ्यादृष्टिमें बन्धके पाँचों कारण रहते हैं। दूसरे चतुर्थतक मिथ्यात्व नहीं रहता। शेष चार रहते हैं। पाँचवेंमें एक देश अविरतिके साथ बन्धके तीन कारण रहते हैं। छठेमें प्रमाद कषाय योग रहते हैं। सातवेंसे दसवें तक कषाय योग दो ही कारण रहते हैं। आगे तेरहवें तक केवल एक योग रहता है। अतः दसवें गुणस्थान तक चारों बन्ध होते हैं, आगे केवल प्रकृतिबन्ध प्रदेशबन्ध ही होते हैं। इस तरह इन चारों बन्धोंके

कारण कषाय योग प्रारम्भसे ही रहते हैं फिर भी मिथ्यात्व अविरति और प्रमादको भी बन्धके कारणोंमें कहा है ।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मोहनीय कर्मके दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय । दर्शन मोहनीयका भेद मिथ्यात्व है और चारित्र मोहनीयका भेद कषाय है । उस कषायको चार जातियाँ हैं, उनमेंसे प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय है । इसका और मिथ्यात्वका ऐसा गठबन्धन है कि एकके बिना दूसरा नहीं जाता । जब दोनोंका ही उपशम आदि होता है तभी जीवको सम्यक्त्व होता है । किन्तु पहले गुणस्थानमें १६ प्रकृतियोंकी बन्धको व्युच्छिन्ति होती है । ये सोलह प्रकृतियाँ केवल पहले गुणस्थानमें ही बँधती हैं आगे मिथ्यात्वका उदय न होनेसे नहीं बँधती हैं । अतः उनके बन्धका मुख्य कारण मिथ्यात्व ही है । अतः मिथ्यात्वको बन्धका कारण कहा है ।

मिथ्यात्वके उदयके साथ अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंका उदय तो रहता ही है । फिर भी दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्वका उदय न होनेसे अनन्तानुबन्धीका उदय होते हुए भी उक्त सोलह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता । अतः उनके बन्धका प्रमुख कारण मिथ्यात्व ही है । अतः कषाय और योगके साथ मिथ्यात्वको भी बन्धका कारण माना गया है । अविरति या असंयमके तीन प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी कषायके उदयरूप, अप्रत्याख्यानवरण कषायके उदयरूप और प्रत्याख्यानवरण कषायके उदयरूप । इस तरह उसे भी बन्धके कारणोंमें गिनाया है ।

**जीव और कर्मके बन्धका स्वरूप—**

जीव एक पृथक् स्वतन्त्र द्रव्य है और पौद्गलिक कर्म एक पृथक् स्वतन्त्र द्रव्य है । इसीसे शुद्ध जीवके साथ पौद्गलिक कर्मका बन्ध नहीं होता किन्तु कर्मसे बद्ध अशुद्धजीवके साथ ही पौद्गलिक कर्मका बन्ध होता है । यह बन्ध संयोगपूर्वक हो जाता है । संयोगके बिना तो हो नहीं सकता । किन्तु जीव और कर्मका बन्ध संयोगपूर्वक होनेपर भी केवल संयोगमात्र नहीं है । जैसे दो परमाणुओंका संयोग होनेपर भी यदि उनमें बन्ध न हो तो द्वयणुक आदि स्कन्ध नहीं बन सकते । इसी तरह जीवका कर्मके साथ बन्ध भी केवल संयोगमात्र नहीं है ।

सर्वार्थसिद्धिमें ( ५।३३ ) सूत्रकी उत्पत्तिकामें यह शंका उठायी है कि द्वयणुक आदि लक्षण संवात संयोगसे ही हो जाता है या कुछ विशेषता होती है । समाधानमें कहा है कि संयोगके होनेपर एकत्व परिणमन रूपा बन्धसे संघातकी उत्पत्ति होती है ।

इसी सर्वार्थसिद्धिमें ( २।७ ) सूत्रकी टीकामें शंका की गयी है—यदि कर्मबन्ध रूप पर्यायकी अपेक्षा जीव मूर्त है तो कर्मबन्धके आवेशसे आत्माका ऐक्य ही जानेपर दोनोंमें भेद नहीं रहेगा । उत्तरमें कहा है, बन्धकी अपेक्षा एकत्व है, लक्षणभेदसे नानात्व है ।

इससे स्पष्ट है कि जीव और कर्मका बन्ध भी दो परमाणुओंके बन्धकी तरह ही होता है । पञ्चास्तिकाय भाष्या ६७ की टीकामें अभूतचन्द्रजीने लिखा है—

‘जीवा हि मोहरागद्वेषस्निग्धत्वात् पुद्गलस्कन्धाश्च स्वभावस्निग्धत्वात् बन्धावस्थायां परमाणुद्वन्द्वानि-  
वान्योन्यावगाहग्रहणप्रतिबद्धत्वेनावतिष्ठन्ते ।’

‘जीव तो मोह, राग, द्वेषसे स्निग्ध है, और पुद्गलस्कन्ध स्वभावसे स्निग्ध है । अतः बन्धदशामें दो परमाणुओंकी तरह परस्परमें अवगाहके ग्रहण द्वारा प्रतिबद्ध रूपसे रहते हैं ।’

सर्वार्थसिद्धि ( ५।३७ ) में कहा है—“ऐसा बन्ध होनेसे पूर्व अवस्थाओंको त्यागकर उससे भिन्न एक तीसरी अवस्था उत्पन्न होती है । अतः उनमें एकरूपता आ जाती है । अन्यथा सफेद और काले तन्तुके समान संयोग होनेपर भी पाणिनामिक न होनेसे सब अलग-अलग ही स्थित रहेगा । परन्तु उक्त विधिसे बन्ध



होनेपर ज्ञानावरणादि कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति बनती है ।”

इन उक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है कि जीव और कर्मका बन्ध भी उसी प्रकार होता है जैसा दो परमाणुओं-का बन्ध होता है । वह केवल एक क्षेत्रावगाहरूप ही नहीं है । जयसेनाचार्यने ‘अन्योन्यावगाहेन संश्लिष्टरूपेण प्रतिबद्धाः’ लिखा है । और आचार्य पूज्यपादने ‘अविभागेन उपश्लेषः’ लिखा है । आचार्य अमृतचन्द्रजीने ‘विशिष्टतरः परस्परमवगाहः’ लिखा है ।

पंचाध्यायी उत्तरार्द्धमें यह शंका को गयी है कि बद्धता और अशुद्धतामें क्या अन्तर है । उसके उत्तरमें कहा है—

बन्धः परगुणकारा क्रिया स्यात्पारिणामिकी ।

तस्यां सत्यामशुद्धत्वं तद्द्वयोः स्वगुणच्युतिः ॥ १३० ॥

“परगुणकार जो पारिणामिकी क्रिया होती है उसीका नाम बन्ध है और उसके होनेपर उन दोनोंका अपने-अपने गुणसे च्युत हो जाना अशुद्धता है ।” इस तरह अशुद्धता बन्धका कारण भी है और कार्य भी है । क्योंकि बन्धके बिना अशुद्धता नहीं होती ।

इस प्रकार शुद्धनयसे जीव शुद्ध है किन्तु व्यवहारनयसे अशुद्ध भी है । शुद्धनय एक और निर्विकल्पक होता है अतः शुद्धनयसे जीव एक चैतन्यस्वरूप है । और व्यवहारनय अनेक और सविकल्पक है । उसके विषय जीवादि नौ पदार्थ हैं । यद्यपि शुद्धनय ही मोक्षमार्गमें उपयोगी माना गया है व्यवहारनय नहीं माना गया । तथापि शुद्धनयकी तरह व्यवहारनय भी न्यायप्राप्त है । क्योंकि जब एक ही जीव अनादि सन्तान-बन्ध पर्यायमात्रसे विवक्षित होता है तब जीव-अजीव आदि नौ पदार्थरूप होता है । यद्यपि ये नौ पदार्थ पर्यायधर्मा होते हैं किन्तु ये केवल जीवकी ही पर्याय नहीं हैं । उसके साथ उपरतिरूप उपाधि लगी हुई है । यह उपाधि अनादिकालसे है । इस उपरतिकी उपाधि मानकर यदि उपेक्षित कर दिया जाये तो नौ पदार्थ नहीं बन सकते । क्योंकि ये नौ पदार्थ जीव और पुद्गलसे भिन्न स्वतन्त्र द्रव्य नहीं हैं और न ये केवल जीव या केवल पुद्गलके होते हैं, किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे परस्परमें सम्बद्ध जीव और पुद्गलके होते हैं । सारांश यह है कि एक ही जीव नौ पदार्थरूप ही रहा है । किन्तु उस दशामें भी वह शुद्ध अनुभवमें आता है क्योंकि जो उपरति है वह उपाधि होनेसे अभूतार्थ है ।

यह सब कथन पंचाध्यायीके उत्तरार्द्धमें विस्तारसे किया है ।

अतः जीव और कर्मका सम्बन्ध केवल परस्पर एकक्षेत्रावगाह मात्र ही नहीं है किन्तु विशिष्ट उपश्लेष रूप होता है । तभी तो उसके प्रकृतिबन्ध आदि चार भेद होते हैं और वह जीवके संसार परिभ्रमणका कारण होता है और उसके विनाशके लिए प्रयत्न करना पड़ता है ।

कर्म फल कैसे देते हैं—

अन्य दर्शनोंमें भी जीवको कर्म करनेमें स्वतन्त्र माना है किन्तु उसका फल भोगनेमें परतन्त्र माना है । उनकी दृष्टिसे जड़ कर्म स्वयं अपना फल नहीं दे सकता । अतः ईश्वर उसे उसके कर्मोंके अनुसार फल देता है । किन्तु जैनधर्ममें तो ऐसा कोई ईश्वर नहीं है । अतः जीव स्वयं ही कर्म करता है और स्वयं ही उसका-फल भोगता है । उदाहरणके लिए एक व्यक्ति दूध पीकर पुष्ट होता है और दूसरा व्यक्ति शराब पीकर मतवाला होता है । क्या इसके लिए किसी दूसरेकी आवश्यकता है ? दूधभक्षक शक्ति है अतः उसको पीनेवाला स्वयं बलशाली होता है और शराबमें मादकशक्ति है अतः उसे पीनेवाला स्वयं मतवाला होता है । इसी प्रकार जो अच्छे कार्योंके द्वारा शुभ कर्मका बन्ध करता है उसकी परिणति स्वयं अच्छी होती है और जो बुरे कार्योंके द्वारा अशुभ कर्मका बन्ध करता है उसकी परिणति स्वयं बुरी होती है । पूर्व जन्मके अच्छे-बुरे संस्कारवश ही ऐसा होता है ।

आशय यह है कि जीवकी प्रत्येक कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाको निमित्त करके जो पुद्गल कर्म परमाणु जीवकी ओर आकृष्ट होते हैं और राग-द्वेषका निमित्त पाकर उससे बँध जाते हैं उन कर्म परमाणुओंमें भी शराब और दूधकी तरह अच्छा या बुरा करनेकी शक्ति होती है जो चैतन्यके सम्बन्धसे व्यक्त होकर उसपर अपना प्रभाव डालती है तथा उससे प्रभावित हुआ जीव ऐसे कार्य करता है जो उसे सुखदायक या दुःखदायक होते हैं। यदि कर्म करते समय जीवके भाव अच्छे होते हैं तो बँधनेवाले कर्म परमाणुओंपर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है और कालान्तरमें अच्छा फल मिलनेमें निमित्त होते हैं। यदि भाव बुरे होते हैं तो उसका प्रभाव भी बुरा पड़ता है और कालान्तरमें फल भी बुरा मिलता है। अतः जीवकी फल भोगनेमें परतन्त्र माननेकी आवश्यकता नहीं है। यदि ईश्वरको फलदाता माना जाता है तो जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्यका घात करता है तब घातकको दोषका भागो नहीं होना चाहिए; क्योंकि उस मनुष्यके द्वारा ईश्वरने मरनेवालेको मृत्युका दण्ड दिया है। जैसे राजा जिन व्यक्तियोंके द्वारा अपराधियोंको दण्ड देता है वे व्यक्ति अपराधी नहीं माने जाते; क्योंकि वे राजाकी आज्ञाका पालन करते हैं। उसी तरह किसीका घात करनेवाला भी जिसका घात करता है उसके पूर्वकृत कर्मोंका फल भुगताता है क्योंकि ईश्वरने उसके पूर्वकृत कर्मोंकी यही सजा नियत की, सभी तो उसका वध हुआ। यदि कहा जाये कि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है अतः घातकका कार्य ईश्वरप्रेरित नहीं है किन्तु उसकी स्वतन्त्र इच्छाका परिणाम है, तो कहना होगा कि संसारदशामें कोई भी प्राणी वास्तवमें स्वतन्त्र नहीं है सभी अपने-अपने कर्मोंसे बँधे हैं। महाभारतमें भी लिखा है—‘कर्मणा बध्यते जन्तुः।’ प्राणी कर्मसे बँधता है। और कर्मकी परम्परा अनादि है। ऐसी परिस्थितिमें ‘बुद्धिः कर्मानुसारिणी’ अर्थात् प्राणियोंकी बुद्धि कर्मके अनुसार होती है, इस न्यायके अनुसार किसी भी कामको करने या न करनेमें मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। इसपर-से यह आशंका होती है कि ऐसी दशामें तो कोई भी जीव मुक्तिलाभ नहीं कर सकेगा क्योंकि जीव कर्मसे बँधा है और कर्मके अनुसार जीवकी बुद्धि होती है। किन्तु ऐसी आशंका ठीक नहीं है क्योंकि कर्म अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। अतः अच्छे कर्मका अनुसरण करनेवाला बुद्धि मनुष्यकी सन्मार्गकी ओर ले जाती है और बुरे कर्मका अनुसरण करनेवाली बुद्धि मनुष्यको कुमार्गकी ओर ले जाती है। सन्मार्गपर चलनेसे क्रमशः मुक्तिलाभ और कुमार्गपर चलनेसे कुगति लाभ होता है। अस्तु,

जब उक्त प्रकारसे जीव कर्म करनेमें सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है तब घातकका घातरूप कर्म उसकी दुर्बुद्धिका ही परिणाम कहा जायेगा, और बुद्धिकी दुष्टता उसके किसी पूर्वकृत कर्मका फल होना चाहिए। किन्तु जब हम कर्मका फल ईश्वराधीन मानते हैं तो उसका प्रेरक ईश्वरकी ही कहा जायेगा।

किन्तु यदि हम ईश्वरको फलदाता न मानकर जीवके कर्मोंमें ही स्वतः फलदानकी शक्ति मान लेते हैं तो उक्त समस्या हल हो जाती है। क्योंकि मनुष्यके पूर्वकृत बुरे कर्म उसकी आत्मापर इस प्रकारके संस्कार डाल देते हैं जिससे वह क्रुद्ध होकर हत्या तक कर बैठता है।

किन्तु ईश्वरको फलदाता माननेपर हमारी विचार-शक्ति कहती है कि किसी विचारशील फलदाता-को किसी व्यक्तिके बुरे कर्मका फल ऐसा देना चाहिए जो उसकी सजाके रूपमें हो, न कि दूसरोंको उसके द्वारा सजा दिलवानेके रूपमें। उक्त घटनामें ईश्वर घातकसे दूसरेका घात कराता है; क्योंकि उसे उसके द्वारा दूसरेको सजा दिलानी है। किन्तु घातककी जिस दुर्बुद्धिके कारण वह परका घात करता है उस बुद्धिको दुष्ट करनेवाले कर्मोंका उसे क्या फल मिला। अतः ईश्वरको कर्मफलदाता माननेमें इसी तरह अन्य भी अनेक अनुपपत्तियाँ खड़ी होती हैं। जिनमें-से एक इस प्रकार है—

किसी कर्मका फल हमें तत्काल मिल जाता है, किसीका कुछ माह बाद मिलता है, किसीका कुछ वर्ष बाद मिलता है, और किसीका इस जन्ममें नहीं मिलता। इसका क्या कारण है? कर्मफलके भोगमें यह समयकी विषमता क्यों देखी जाती है। ईश्वरेच्छाके सिवाय इसका कोई सन्तोषजनक समाधान

ईश्वरवादियोंकी ओरसे नहीं मिलता। किन्तु कर्ममें ही फलदानकी शक्ति माननेवाला जैनकर्म-सिद्धान्त उक्त प्रश्नोंका बुद्धिगम्य समाधान करता है जैसा आगे बतलाया जायेगा।

## ९. कर्मके भेद

कर्मके दो भेद हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म। द्रव्यकर्मके मूल भेद आठ हैं और उत्तर भेद एक ही अङ्गतालीस तथा उत्तरोत्तर भेद असंख्यात हैं। ये सब पुद्गलके परिणामरूप हैं क्योंकि जीवकी परतन्त्रतामें निमित्त होते हैं। और भावकर्म चैतन्यके परिणामरूप क्रोधादि भाव हैं उनका तो प्रत्येक जीवको अनुभव होता है ; क्योंकि जीवके साथ उनका कथंचित् अभेद है। इसीसे वे पारतन्त्र्य स्वरूप हैं, परतन्त्र्यतामें निमित्त नहीं हैं। द्रव्यकर्म परतन्त्र्यतामें निमित्त होता है और भावकर्म चैतन्यका परिणाम होनेसे पारतन्त्र्यस्वरूप होता है। यही दोनोंमें भेद है। जहाँ कर्मसिद्धान्त विषयक ग्रन्थोंमें द्रव्यकर्मकी प्रधानतासे कथन मिलता है वहाँ अध्यात्ममें भावकर्मकी प्रधानतासे वर्णन मिलता है। सब कर्मोंमें प्रधान मोहनीय कर्म है। वही संसारपरिभ्रमणका मुख्य कारण है। प्रवचनसार गा. ८३-८४ में कहा है कि द्रव्य-गुण पर्यायके विषयमें जीवका जो मूढ़ भाव है, जिसका लक्षण तत्त्वको न जानना है, वह मोह है। उससे आच्छादित आत्मा परद्रव्यको आत्मद्रव्य रूपसे, परगुणको आत्मगुण रूपसे और परपर्यायको आत्मपर्याय रूपसे जानता है। अतः रात-दिन पर-द्रव्यके ग्रहणमें लगा रहता है। तथा इन्द्रियोंके वशमें होकर जो पदार्थ रुचता है उससे राग करता है, जो नहीं रुचता उससे द्वेष करता है। इस प्रकार मोह-राग द्वेषके भेदसे मोहके तीन प्रकार अध्यात्ममें कहे हैं। ये सब भावमोह हैं। यह भावमोह कार्य भी है और कारण भी। पूर्वमें बद्धकर्मके उदयसे होता है इसलिए तो कार्य है और नवीन बन्धका कारण होनेसे कारण है। भावमोहको दूर किये बिना द्रव्यमोहसे छुटकारा नहीं हो सकता। क्योंकि भावमोहका निमित्त मिलने पर ही पौद्गलिक कर्म मोहादि द्रव्यकर्म रूप परिणत होते हैं। उनके उदयमें ज्ञानी विवेकी जीव मोहरूप परिणत नहीं होता अतः द्रव्यमोहका नवीन बन्ध नहीं होता। अतः यथार्थमें भावकर्मकी प्रधानता है, द्रव्यकर्मकी नहीं। किन्तु कर्म-सिद्धान्त द्रव्यकर्म प्रधान है। इसीसे कर्मकाण्डके प्रारम्भमें कर्मके दो भेद करके लिखा है—

‘पुगलपिण्डो दब्बं तस्सत्तो भावकम्मं तु ॥६॥

अर्थात् पुद्गलके पिण्डको द्रव्यकर्म कहते हैं और उसमें जो शक्ति है उसे भावकर्म कहते हैं। उक्त गाथाकी जीवतत्त्वप्रदीपिका टीकामें लिखा है—

‘पिण्डगतशक्तिः कार्ये कारणोपचारात् शक्तिजनितज्ञानादिवर्त्त भावकर्म भवति ।’

‘उस पुद्गलपिण्डमें रहनेवाली फल देनेकी शक्ति भावकर्म है। अथवा कार्यमें कारणके उपचारसे उस शक्तिसे उत्पन्न अज्ञानादि भी भावकर्म है।’ इस प्रकार कर्म-सिद्धान्तमें पौद्गलिक कर्मोंकी मुख्यतासे वर्णन मिलता है। यद्यपि भावकर्म द्रव्यकर्ममें निमित्त होता है और द्रव्यकर्म भावकर्ममें निमित्त होता है। दोनों ही अज्ञादि होनेसे आगे-पीछेका प्रश्न नहीं है। फिर भी गौणता और मुख्यताकी दृष्टिका भेद है। द्रव्यकर्मकी मुख्यतामें कहा जाता है कि द्रव्यकर्मका निमित्त न मिले तो भावकर्म नहीं हो सकते। और भावकर्मकी मुख्यतामें कहा जाता है कि भावकर्मका निमित्त न मिले तो पुद्गल पिण्ड द्रव्यकर्म रूप नहीं हो सकता। दोनों ही कथन दृष्टिभेदसे यथार्थ हैं। किन्तु सुमुक्षुके लिए प्रथम कथनसे द्वितीय कथन अधिक उपयोगी है। प्रथम कथनसे तो यही ध्वनित होता है कि पुद्गल कर्मोंने ही चेतनको बाँध रखा है। और उनपर हमारा कोई जोर नहीं है। अतः परसे बाँधा जानकर जीव निराश हो जाता है। किन्तु जब वह जानता है कि मेरे भावकर्म ही मेरे बन्धनके मूल हैं उनका निमित्त पाकर पौद्गलिक पिण्ड द्रव्यकर्म रूप होते हैं, तब वह अपने भावोंको सम्हालनेकी चेष्टा करता है। द्रव्य मोहके उदयमें भी भेदज्ञानके द्वारा मोहित नहीं होता। और इस तरह सस्यकत्वको प्राप्त करके कर्मोंके बन्धनसे सदाके लिए छूट जाता है।

अतः पुद्गलपिण्डकी शक्तिरूप भावकर्म तज्जनित अज्ञानादि रूप भावकर्मके अभावमें निष्फल होकर झड़ जाते हैं। पुद्गल पिण्डको शक्ति प्रदान करनेवाले जीवके भावकर्म ही हैं, जो जीवकी ही करतूत है।

उक्त दो भेद अन्य दर्शनोंमें नहीं मिलते। प्रायः शास्त्रकारोंने कर्मके भेद दो दृष्टियोंसे किये हैं—एक विपाकका दृष्टिसे और दूसरा विपाककालकी दृष्टिसे। कर्मका फल किस-किस रूप होता है और कब होता है प्रायः इन्हीं दो बातोंको लेकर भेद किये गये हैं। कर्मके भेदोंका उल्लेख तो प्रायः सभी दर्शनकारोंने किया है किन्तु जैनतर दर्शनोंमेंसे योगदर्शन और बौद्धदर्शनमें ही कर्माशय और उसके विपाकका कुछ विस्तृत वर्णन मिलता है और विपाक तथा विपाककालकी दृष्टिसे कुछ भेद भी गिनाये हैं परन्तु जैनदर्शनमें उसके भेद-प्रभेदों और विविध दशाओंका बहुत ही विस्तृत और सांगोपांग वर्णन है। तथा जैनदर्शनमें कर्मोंके भेद तो विपाककी दृष्टिसे ही गिनाये हैं किन्तु विपाकके होने, न होने, अमुक समयमें होने वगैरहकी दृष्टिसे जो भेद हो सकते हैं उन्हें कर्मोंकी विविध दशाके रूपमें चित्रित किया है। अर्थात् कर्मके अमुक-अमुक भेद हैं और उनको अमुक-अमुक अवस्थाएँ होती हैं। अन्य दर्शनोंमें इस तरहका श्रेणिविभाग नहीं पाया जाता। जैसा आगे स्पष्ट किया जाता है।

कर्मके दो भेद अच्छा और बुरा तो सभी मानते हैं। इन्हें ही विभिन्न शास्त्रकारोंने शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, कुशल-अकुशल, शुक्ल, कृष्ण आदि नामोंसे कहा है। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न दर्शनकारोंने विभिन्न दृष्टियोंसे विभिन्न भेद किये हैं। गीतामें (१।१८) सात्त्विक, राजस, तामस भेद पाये जाते हैं। संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण भेद भी किये गये हैं। किसी मनुष्यके द्वारा किया गया जो कर्म है, चाहे वह इस जन्ममें किया गया हो या पूर्व जन्ममें, वह सब संचित कहा जाता है। इसीका दूसरा नाम अदृष्ट और भीमा-सर्कोके मतमें अपूर्व है। इन नामोंका कारण यह है कि जिस समय कर्म या क्रिया की जाती है उसी समयके लिए वह दृश्य रहती है। उस समयके भीत जानेपर वह स्वरूपतः शेष नहीं रहती, किन्तु उसके सूक्ष्म अतएव अदृश्य अर्थात् अपूर्व और विलक्षण परिणाम ही शेष रह जाते हैं। उन सब संचित कर्मोंको एक साथ भोगना सम्भव नहीं है। क्योंकि उनमेंसे कुछ परस्पर विरोधी अर्थात् अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके फल देनेवाले हो सकते हैं। उदाहरणके लिए कोई संचित कर्म स्वर्गप्रद और कोई नरक ले जानेवाला होता है। अतएव संचितमेंसे जितने कर्मोंके फलोंको भोगना पहले प्रारम्भ होता है उतनेको प्रारब्ध कहते हैं।

लोकमान्य तिलकने अपने गीतारहस्यमें (पृ. २७२) क्रियमाण भेदको ठीक नहीं माना है। उन्होंने लिखा है—

‘क्रियमाण....का अर्थ है जो कर्म अभी हो रहा है अथवा जो कर्म अभी किया जा रहा है। परन्तु वर्तमान समयमें हम जो कुछ करते हैं वह प्रारब्ध कर्मका ही परिणाम है। अतएव क्रियमाणको कर्मका तीसरा भेद माननेके लिए हमें कोई कारण नहीं दीख पड़ता।’

वेदान्त सूत्रमें (४।१।१५) कर्मके प्रारब्ध कार्य और अनारब्ध कार्य दो भेद किये हैं। लोकमान्य इन्हें ही संचित मानते हैं।

योगदर्शनमें कर्माशयके दो भेद किये हैं—एक दृष्ट जन्मवेदनीय और दूसरा अदृष्ट जन्मवेदनीय। जिस जन्ममें कर्मका संचय किया है उसी जन्ममें यदि वह फल देता है तो उसे दृष्ट जन्मवेदनीय कहते हैं और यदि दूसरे जन्ममें फल देता है तो उसे अदृष्ट जन्मवेदनीय कहते हैं। दोनोंमेंसे प्रत्येकके दो भेद हैं—एक नियत विपाक, दूसरा अनियत विपाक।

बौद्धदर्शनमें कर्मके भेद कई प्रकारसे गिनाये हैं। यथा—सुखवेदनीय, दुःखवेदनीय, न दुःखसुखवेदनीय तथा कुशल, अकुशल और अव्याकृत। दोनोंका आशय एक ही है—जो सुखका अनुभव कराये, जो दुःखका अनुभव कराये और जो न दुःखका और न सुखका अनुभव कराये। प्रथम तीन भेदोंके भी दो भेद हैं—एक नियत, दूसरा अनियत। नियतके तीन भेद हैं—दृष्टधर्मवेदनीय, उपपद्यवेदनीय और अपरपर्याय-

वेदनीय । अनियतके दो भेद हैं—विपाककाल अनियत और अनियत विपाक । दृष्टधर्मवेदनीयके दो भेद हैं—सहसा वेदनीय और असहसा वेदनीय । शेष भेदोंके भी चार भेद हैं—विपाककाल अनियत । विपाकानियत, विपाकनियत विपाककाल अनियत, नियतविपाक नियतवेदनीय और अनियत विपाक अनियत-वेदनीय ।

किन्तु जैनदर्शनमें वर्णित कर्मके भेदोंकी तुलनाके योग्य कोई भेद अन्य दर्शनोंमें वर्णित पूर्वोक्त भेदोंमें नहीं पाया जाता । योगदर्शनमें कर्मका विपाक तीन रूपसे बतलाया है—जन्मके रूपमें, आयुके रूपमें और योगके रूपमें । किन्तु अमुक कर्माशय आयुके रूपमें अपना फल देता है, अमुक कर्माशय जन्मके रूपमें अपना फल देता है और अमुक कर्माशय भोगके रूपमें अपना फल देता है यह बात वहाँ नहीं बतलायी है । यदि यह भी वहाँ बतलाया गया होता तो योगदर्शनके आयुविपाकवाले कर्माशयकी जैनदर्शनके आयुकर्मसे और जन्मविपाकवाले कर्माशयकी नामकर्मसे तुलना की जा सकती थी । किन्तु वहाँ तो सभी कर्माशय मिलकर तीनरूप फल देते हैं । जो कर्माशय दृष्टजन्मवेदनीय होता है वह केवल दो ही रूप फल देता है, जन्मान्तरमें न जानेसे उसका विपाक जन्मरूपसे नहीं होता । अन्य दर्शनोंमें वर्णित कर्मके जो भेद पहले गिनाये हैं वे जैनदर्शनमें वर्णित कर्मोंकी विविध दशाएँ हैं जिनका कथन आगे करेंगे ।

**कर्मशास्त्र अध्यात्मशास्त्र है—**

जिसमें एक आत्माको लेकर कथन किया जाता है उसे अध्यात्मशास्त्र कहते हैं । इस प्रकार अध्यात्मशास्त्रका उद्देश्य आत्माके स्वरूपका विचार है । द्रव्यसंग्रह ( गा. ५७ ) और समयसारकी टीकाके अन्तमें 'अपनी शुद्ध आत्मामें अबिष्टानको अध्यात्म' कहा है । यही अध्यात्मका प्रयोजन है । द्रव्य संग्रहकी गा. १३ में कहा है—

मगगणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।

विण्णेया संसारी सब्बे सुद्धा ह सुद्धणया ॥

अर्थ—संसारी जीव अशुद्धनयकी दृष्टिसे चौदह मार्गणा तथा चौदह गुणस्थानोंको अपेक्षा चौदह प्रकारके होते हैं और शुद्धनयसे सब जीव शुद्ध हैं ।

इसकी टीकाके अन्तमें टीकाकारने कहा है कि उक्त गायिकाके तीन पदोंसे 'गुणजीवा पज्जति' इत्यादि गायामें जो बीस प्ररूपणा कही हैं, वे षडवल, जयषडवल, महाषडवल नामक तीन सिद्धान्त ग्रन्थोंके बीजपद रूप हैं, उनको सूचित किया है और गायिकाके चतुर्थ पद 'सब्बे सुद्धा ह सुद्धणया' से पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार नामक तीन प्राभूतोंके बीजपदको सूचित किया है ।

इस तरह उक्त गायामें सिद्धान्त या आगम और अध्यात्म दोनोंकी ही कथनीको संगृहीत बतलाया है । साथ ही दोनोंके भेदको भी स्पष्ट किया है । और दोनोंके पारस्परिक सम्बन्धको भी सूचित किया है । उक्त टीकाके अनुसार अध्यात्ममें आत्माके पारमार्थिक शुद्ध स्वरूपका वर्णन होता है और आगम या सिद्धान्तमें उसके व्यावहारिक स्वरूपका कथन होता है । मोक्षके अभिलाषीको इन दोनों ही स्वरूपोंको जानना आवश्यक है, क्योंकि एक उसके शुद्ध स्वरूपको बतलाता है तो दूसरा उसके वर्तमान अशुद्ध स्वरूपको । और अशुद्धता उसके ही कर्मोंका परिणाम है । अतः जबतक वह अपनी वर्तमान परिणतिके कारण कलापोंसे परिचित न होगा तबतक उससे छूटनेका प्रयत्न नहीं करेगा । इस दृष्टिसे कर्मशास्त्र भी अध्यात्म शास्त्रका ही अंग है । इसीसे समयसार नामक अध्यात्मशास्त्रमें संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्वके साथ आसव और बन्धतत्त्वका भी विवेचन है । उनके विना शेष तत्त्वोंका कथन ही निरर्थक हो जाता है ।

हमारे सामने आत्मा दृश्य नहीं है । दृश्य हैं मनुष्योंके विविध रूप और पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि । जो हमें चलते-फिरते दृष्टिगोचर होते हैं, उनमें कुछ समझदार हैं तो कुछ नासमझ । इन्हींके द्वारा हम जड़

और चेतनके भेदको जाननेका प्रयत्न करते हैं। और तब उनकी विविध दशाओंका कारण उनके कर्मको बखानते हैं। कर्मसिद्धान्त प्रकट करता है कि जीवकी इन विविध दशाओंका कारण उनका कर्म है। कर्मका अमुक कारणोंसे आस्रव और बन्ध होता है। तथा उनका अमुक परिणाम होता है।

केवल अध्यात्मशास्त्र अर्थात् आत्माके शुद्ध स्वरूपका निरूपण करनेवाले शास्त्रके अध्ययनसे आत्माका एकांगी ज्ञान होता है और केवल उस ज्ञानके बलसे शुद्धात्माको प्राप्त करना शक्य नहीं है। इसीसे आचार्य कुन्दकुन्दने पंचास्तिकाय और प्रवचनसारकी रचना की। इन तीनोंके अध्ययनसे द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, छह द्रव्योंका स्वरूप आदि अनेक आवश्यक बातोंका ज्ञान होता है। फिर भी कर्मसिद्धान्तका ज्ञान नहीं होता। और कर्मसिद्धान्तका ज्ञान न होनेसे शरीरकी रचना, उसमें इन्द्रियोंकी रचना, इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाला विषयोंका ग्रहण, उससे होनेवाला रागरूप भावकर्म, उससे नवीन कर्मका बन्ध, बन्धसे पुनर्जन्म आदिका ज्ञान नहीं होता है। उस ज्ञानसे ही शरीर और इन्द्रियोंमें आत्मबुद्धिकी भावना दूर होती है और आत्मामें ही आत्मबुद्धिका विकास होता है; क्योंकि जबतक प्रत्यक्ष अनुभवमें आनेवाली वर्तमान अवस्थाओंके साथ आत्माके सम्बन्धका सच्चा स्पष्टीकरण न हो तब तक दृष्टि उधरसे हटकर अपनी ओर नहीं लग सकती। जब यह ज्ञान होता है कि ये सब रूप वैभाविक हैं, कर्मजन्यविकार हैं तब आत्मस्वरूपकी यथार्थ जिज्ञासा होती है। उसी अवस्थामें आत्माके शुद्ध स्वरूपका उपदेश कार्यकारी होता है।

समयसारमें शुद्ध जीवके स्वरूपके वर्णनमें लिखा है—गुणस्थान, मार्गणास्थान, योगस्थान, उदयस्थान, अनुभागस्थान, बन्धस्थान, स्थितिवन्धस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान आदि जीवके नहीं हैं। इन सबका कथन कर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थोंमें है। जिसने उन्हें पढ़ा नहीं वह कैसे इनसे भेदबुद्धि कर सकेगा। अतः कर्मशास्त्र अध्यात्मशास्त्रका अभिन्न अंग है और जो उसकी उपेक्षा करके केवल समयसारमें रमते हैं वे समयसारके मात्र ज्ञाता हो सकते हैं अनुभवविता और प्राप्ता नहीं हो सकते।

पं. टोडरमलजी ने अपने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थके आठवें अध्यायमें चारों अनुयोगोंकी उपयोगिता और प्रयोजन बतलाते हुए करणानुयोगके सम्बन्धमें लिखा है—

“कितने ही जीव कहते हैं कि करणानुयोगमें गुणस्थान मार्गणादिका व कर्मप्रकृतियोंका कथन किया....सो उन्हें ज्ञान लिया कि ‘यह इस प्रकार है’, इसमें अपना कार्य क्या सिद्ध हुआ। या तो भक्ति करे, या व्रतदानादि करे या आत्मानुभव करे, इससे अपना भला है।”

उससे कहते हैं—परमेश्वर तो वीतराग हैं, भक्ति करनेसे प्रसन्न होकर कुछ करते नहीं हैं। भक्ति करनेसे कषाय मन्द होती है, उसका स्वयमेव उत्तम फल होता है। सो करणानुयोगके अभ्याससे उससे भी अधिक मन्द कषाय होती है इसलिए इसका फल अति उत्तम होता है। तथा व्रत-दानादि तो कषाय घटानेके बाह्य निमित्तके साधन हैं और करणानुयोगका अभ्यास करनेपर वहाँ उपयोग लग जाये तब रागादिक दूर होते हैं सो यह अन्तरंग निमित्तका साधन है इसलिए यह विशेष कार्यकारी है। तथा आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है परन्तु सामान्य अनुभवमें उपयोग टिकता नहीं। और नहीं टिकता तब अन्य विकल्प होते हैं। वहाँ करणानुयोगका अभ्यास हो तो उस विचारमें उपयोग लगाता है। यह विचार वर्तमान भी रागादि घटाता है और आगामी रागादि घटानेका कारण है इसलिए यहाँ उपयोग लगाना। जीव कर्मोंके नाना भेद जाने, उनमें रागादिक करनेका प्रयोजन नहीं है। इसलिए रागादि बढ़ते नहीं हैं। वीतराग होनेका प्रयोजन जहाँ-तहाँ-प्रकट होता है इसलिए रागादि मिटानेका कारण है। कितने ही कहते हैं—करणानुयोगमें कठिनता बहुत है इसलिए उसके अभ्यासमें खेद होता है।

उनसे कहते हैं—यदि वस्तु शीघ्र जाननेमें आये तो वहाँ उपयोग उलझता नहीं है तथा जानी हुई वस्तुको बारम्बार जाननेका उत्साह नहीं होता, तब पाप कार्योंमें उपयोग लगाता है। इसलिये अपनी बुद्धि के अनुसार कठिनतासे भी जिसका अभ्यास होता जाने उसका अभ्यास करना। तथा तू कहता है—खेद

होता है। परन्तु प्रमादो रहनेमें तो धर्म है नहीं। प्रमादसे सुखी रहे वहाँ तो पाप ही होता है इसलिए धर्मके अर्थ उद्यम करना ही योग्य है ऐसा विचारकर करणानुयोगका अभ्यास करना।' (पृ. २९०-२९१)

कर्मशास्त्र करणानुयोगसे सम्बद्ध है। अतः उसकी उपयोगिता निर्विवाद है। यह अनेक प्रकारके आध्यात्मिक शास्त्रीय विचारोंकी खान होनेसे उसका महत्त्व अध्यात्मशास्त्रसे कम नहीं है। यह ठीक है कि अनेक लोगोंकी कर्मप्रकृतियोंकी संख्या गणनामें उल्लेखन प्रतीत होती है और इसीसे उन्हें कर्मशास्त्र रचिकर नहीं लगता। किन्तु इसमें कोई दोष नहीं है, प्रत्युत सांसारिक विषयोंमें भटकते हुए मनको रोकनेके लिए यह एक अच्छा साधन है। विपाकविचयको इसीसे धर्मध्यानके भेदोंमें गिनाया है। उसके चिन्तनमें एकाग्रता आती है उसका अभ्यासी अपने आत्माके परिणामोंके उतार-चढ़ावकी सरलतासे आँककर अपना कल्याण करनेमें समर्थ होता है। अतः अध्यात्मरसिक मुमुक्षुको अध्यात्मके साथ कर्मशास्त्रका भी अभ्यास करना चाहिये।

विषय परिचय तथा तुलना—

कर्मकाण्डकी गाथा संख्या ९७२ है। उसमें नौ अधिकार हैं—(१) प्रकृति समुत्कीर्तन (२) बन्धोदय सत्त्व (३) सत्त्वस्थानभंग (४) त्रिचूलिका (५) स्थान समुत्कीर्तन (६) प्रत्यय (७) भाव चूलिका (८) त्रिकरण चूलिका (९) कर्म स्थिति रचना।

प्रथम खण्ड जीवकाण्डकी प्रस्तावनामें हम यह लिख आये हैं कि यह एक संग्रहग्रन्थ है, षट् खण्डागम तथा उसकी ध्वलाटीकाके आधारपर इसका संकलन हुआ है। कर्मकाण्डमें ग्रन्थकारने अपने सम्बन्धमें लिखा है—

अह चक्रेण य चक्रो छवखंडं साहियं अविग्नेण ।

तह मइचक्रेण मया छवखंडं साहियं होदि ॥

अर्थात् जैसे चक्रवर्ती चक्रके द्वारा निर्विघ्नता पूर्वक छह खण्डोंको साधता है वैसे ही मैंने अपनी बुद्धि रूपी चक्रके द्वारा छह खण्डोंको साधा है।

यह छह खण्ड षट्खण्डागम हैं। अतः ग्रन्थकारने मुख्य रूपसे उसीका अनुगम इस ग्रन्थकी रचनामें किया है। किन्तु पंचसंग्रह नामक ग्रन्थ गोम्मटसार तथा ध्वलाटीकासे पूर्वमें रचा गया था और उसमें भी वही विषय है जो गोम्मटसारमें है। अतः उसका भी प्रभाव इस ग्रन्थपर हो सकता है जैसा आगेके विवरणसे प्रकट होगा।

## १. प्रकृति समुत्कीर्तन—

प्रथम अधिकारका नाम प्रकृति समुत्कीर्तन है। ग्रन्थकारने प्रथम गाथामें प्रकृति समुत्कीर्तनको कहनेको प्रतिज्ञा की है।

षट् खण्डागमके प्रथमखण्ड जीव स्थानकी चूलिकामें तीसरा सूत्र है—

‘इदाणि पयडि समुत्कीर्तणं कस्सामो ।’

इसका टीकामें अर्थ किया है—प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण। तथा लिखा है कि प्रकृति समुत्कीर्तन को जाने बिना स्थान समुत्कीर्तन आदिको नहीं जाना जा सकता। उसके दो भेद हैं—मूल प्रकृति समुत्कीर्तन और उत्तर प्रकृति समुत्कीर्तन।

आगे चूलिकामें सूत्रकारने क्रमसे सूत्रोंद्वारा आठों कर्मोंका नाम और फिर प्रत्येकके उत्तर भेदोंका कथन किया है और टीकाकार वीरसेनने अपनी ध्वलामें प्रत्येकका व्याख्यान किया है। और इस तरह प्रकृति समुत्कीर्तन नामक चूलिकाके मूल सूत्र छियालीस हैं।

किन्तु आचार्य नेमिचन्द्रजीने अपने कर्मकाण्डमें गाथा ८ से २१ तक मूल प्रकृतियोंके नाम, उनका कार्य, क्रम आदि बतलाकर गाथा २२ में उनकी उत्तर प्रकृतियोंके भेदोंकी संख्यामात्र बतलायी है तथा आगे दर्शनावरणके भेद पाँच निद्राओंका स्वरूप तीन गाथाओंसे कहा है। गाथा २६ में दर्शन मोहके भेद मिथ्यात्वका तीन रूप होनेका कथन किया है। गाथा २७ में नामकर्मके भेद शरीर नामकर्मके संयोगी भेदोंका कथन है। गाथा २८ में शरीरके आठ अंग बतलाये हैं। गाथा २९-३२ में किस संहननसे मरकर किस गतिमें जीव जाता है इसका कथन है। ३३ वीं गाथामें आतप और उष्ण नामकर्ममें अन्तर बतलाया है। इस तरह कुछ प्रकृतियोंका विशेष कार्यमात्र बतलाया है। इसको लेकर कई दशक पूर्व अनेकान्त पत्रमें बड़ा विवाद चला था और इसको त्रुटि बतलाते हुए उसकी पूर्तिका भी प्रयत्न किया गया था। यह सब विवाद बीरसेवा मन्दिरसे प्रकाशित पुरातन जैन वाक्य सूचीकी प्रस्तावना ( पृ. ७५ आदि ) में दिया है।

उस समय स्व. पं. लोकनाथजीने मूडबिंद्रीके सिद्धान्त मन्दिरके शास्त्रभण्डारमें जीवकाण्ड कर्मकाण्डकी मूल प्रतियोंको खोजकर ३० दिसम्बर सन् ४० को स्व. पं. जुगलकिशोरजी मुख्तारको सूचित किया था कि विवादस्थ कई गाथाएँ इस प्रतिमें सूत्ररूपमें हैं और वे सूत्र कर्मकाण्डके प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार की जिस-जिस गाथाके बाद मूल रूपमें पाये जाते हैं उनकी सूचनाके साथ उनकी एक नकल भी भेजी थी। स्व. मुख्तार सा. ने पुरातन जैन वाक्य सूचीकी अपनी प्रस्तावनामें वे सूत्र दिये हैं।

मुख्तार सा. ने लिखा था—ऐसा मालूम होता है कि गद्यसूत्र टीका-टिप्पणका अंश समझे जाकर लेखकोंकी कृपासे प्रतियोंमें छूट गये हैं और इसलिए उनका प्रचार नहीं हो पाया। परन्तु टीकाकारोंकी आँखोंसे वे सर्वथा ओझल नहीं रहे हैं। उन्होंने अपनी टीकाओंमें इन्हें ज्योंके त्यों न रखकर अनुवादित रूपमें रखा है और यही उनकी सबसे बड़ी भूल हुई है जिससे मूल सूत्रोंका प्रचार रुक गया है और उनके प्रभावमें ग्रन्थका यह अधिकार त्रुटिपूर्ण जँचने लगा। चुनाँचे कलकत्तासे जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था द्वारा दो टीकाओंके साथ प्रकाशित इस ग्रन्थकी संस्कृत टीकामें ( और तदनुसार भाषा टीकामें भी ) ये सब सूत्र प्रायः ज्योंके त्यों अनुवादके रूपमें पाये जाते हैं जिसका एक नमूना २५वीं गाथाके साथ पाये जानेवाले सूत्रोंका इस प्रकार है—

मूल—“वेदनीयं दुविहं सादावेदनीयमसादावेदनीयं चेद् ।

मोहणीयं दुविहं दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेद् ॥

दंसणमोहणीयं बंधादो एयविहं मिच्छत्तं ।

उदयं पडुच्च तिविहं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं सम्मत्तं चेद् ॥”

सं. टीका—“वेदनीयं द्विविधं सातावेदनीयमसातावेदनीयं चेति ।

मोहनीयं द्विविधं दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति ।

तत्र दर्शनमोहनीयं बन्धविवक्षया मिथ्यात्वमेकविधं ।

उदयं सत्त्वं प्रतीत्य मिथ्यात्वं सम्याग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्व प्रकृतिश्चेति त्रिविधम् ॥”

आदरणीय स्व. मुख्तार सा. की सम्भावनाको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सम्भव है ऐसा ही हो। कर्मकाण्डपर उपलब्ध प्रथम टीका कर्नाटक भाषामें जीवतत्त्वप्रदीपिका है। उसीका रूपान्तर संस्कृत टीका है। दोनों टीकाओंमें मूल गाथाओंकी संख्या ९७२ है किन्तु मूडबिंद्रीवाली मूल प्रतिमें गाथा संख्या ८७२ है ऐसा स्व. पं. लोकनाथजीने सूचित किया था। सम्भव है क्रमसंख्यामें सौ की भूल हो गयी हो। लेखकोंके प्रमादसे ऐसा हो जाता है। किन्तु कर्नाटक टीकाके रचयिताको जो करणानुयोगक प्रकाण्ड पण्डित थे और जिन्हें सिद्धान्त चक्रवर्ती अभयसूरिका शिष्यत्व प्राप्त था, ऐसा भ्रम कैसे हुआ कि उन्होंने मूलकी टीका-टिप्पण समझकर मूलमें सम्मिलित नहीं किया और उसका अनुवाद अपनी टीकामें दिया, यह चिन्त्य है।



दि. प्राकृत पञ्चसंग्रहके दूसरे अधिकारका नाम भी प्रकृतिसम्वत्कीर्तन है। उसको भी मंगलगाथामें प्रकृतिसम्वत्कीर्तनको कहनेकी प्रतिज्ञा की गयी है। उसमें बारह गाथाएँ हैं और कुछ प्राकृत सूत्र हैं।

प्रथम चार गाथाओंमेंसे मंगल गाथाको छोड़कर शेष तीन गाथाएँ कर्मकाण्डमें २०, २१, २२ संख्याको लिये हुए पायी जाती हैं। २२वीं गाथामें थोड़ा-सा परिवर्तन किया गया है।

पञ्चसंग्रहमें आठों कर्मोंकी प्रकृतियोंकी संख्या बतलाकर प्रकृतियोंके नामादिका कथन गद्य सूत्रों द्वारा ही किया गया है। उसीका अनुसरण नेमिचन्द्राचार्यने भी किया था ऐसा मूढ़बिद्रीके भण्डारकी कर्मकाण्डकी प्रतिसे ज्ञात होता है। पञ्चसंग्रहमें गद्य सूत्रोंके द्वारा क्रमसे सब प्रकृतियोंका निर्देश किया है। कर्मकाण्डमें बीच-बीचमें गाथासूत्र देकर प्रकृतियोंके सम्बन्धमें आवश्यक उपयोगी कथन भी किया है। अतः मूढ़बिद्रीकी कर्मकाण्डकी प्रतिमें वर्तमान गद्य गाथासूत्र कर्मकाण्डके अंग हो सकते हैं। कर्मकाण्डकी कन्नड़ और संस्कृत टीकामें उन सूत्रोंका भाषान्तर अक्षरशः पाया जाना भी उसका समर्थन करता है।

इस प्रकृतिसम्वत्कीर्तनमें चार वातिकर्मोंकी सर्वधाती और देशधाती प्रकृतियाँ तथा सब कर्मोंकी पुण्य और पाप या प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियाँ नामोल्लेखपूर्वक गिनायी हैं। तथा विपाककी अपेक्षा उनके चार भेदों में भी पृथक्से गिनायी हैं। वे भेद हैं—पुद्गलविपाकी, भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी। आगे कर्ममें चार निक्षेपोंको घटित किया है। इसी प्रसंगमें जायकशरीर नोप्रागम द्रव्यकर्मके तीन भेदोंमेंसे भूत शरीरके च्युत-च्यवित और त्यक्त भेदोंका स्वरूप कहा है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें चारों निक्षेपोंको सुगम बतलाकर नोकर्म द्रव्यकर्मका ही विवेचन किया है। जिस-जिस प्रकृतिका जो-जो उदयफलरूप कार्य होता है उस-उस कार्यमें जो बाह्य वस्तु निमित्त होती है उस वस्तुको उस प्रकृतिका नोकर्म कहते हैं। इस कथनके साथ यह प्रथम अधिकार समाप्त होता है।

यहाँ हम चूलिकामें आगत आठ कर्म सम्बन्धी आठ सूत्रोंको धवलाटोकाका संक्षिप्त अनुवाद उपस्थित करते हैं उससे पाठक आठों कर्मों का स्वरूप समझ सकेंगे।

जाणावरणीयं ॥ ५ ॥

जो ज्ञानको आवरण करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है।

शंका—ज्ञानावरणके स्थानपर ज्ञानविनाशक क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनका विनाश नहीं होता। यदि ज्ञान और दर्शनका विनाश माना जाये तो जीवका भी विनाश हो जायेगा; क्योंकि लक्षणसे रहित लक्ष्य नहीं पाया जाता।

शंका—ज्ञानका विनाश नहीं माननेपर सभी जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान—उसमें कोई विरोध नहीं है; क्योंकि अक्षरका अनन्तवां भाग नित्य उद्घाटित रहता है ऐसा सूत्रमें कहा है। अतः सब जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध है।

शंका—यदि ऐसा है तो सब अवयवोंके साथ ज्ञानकी उपलब्धि होना चाहिए।

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि आवरण किये गये ज्ञानके भागोंकी उपलब्धि माननेमें विरोध आता है।

शंका—आवरण सहित जीवमें आवरण किये गये ज्ञानके भाग क्या हैं अथवा नहीं हैं ? यदि हैं तो उन्हें आवरित नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जो सर्वात्मना सत् हैं उनको आवरित माननेमें विरोध आता है। यदि नहीं हैं तो उनका आवरण नहीं माना जा सकता; क्योंकि आश्रयमाणके अभावमें आवरणके अस्तित्वका विरोध है।

समाधान—द्रव्याधिक नयका अवलम्बन करनेपर आवरण किये गये ज्ञानके भाग सावरण जीवमें भी होते हैं ; क्योंकि जीवद्रव्यसे भिन्न ज्ञानका अभाव है । अथवा ज्ञानके विद्यमान अंशोंसे आवृत ज्ञानके अंश अभिन्न हैं ।

शंका—ज्ञानके आवृत और अनावृत अंश एक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि राहु और मेघोंके द्वारा सूर्य और चन्द्रके आवृत और अनावृत भागोंमें एकता पायी जाती है ।

शंका—ज्ञानको आक्रियमाण कैसे कहा ?

समाधान—अपने विरोधी द्रव्यका सामीप्य होनेपर भी जो मूलसे नष्ट नहीं होता उसे आक्रियमाण कहते हैं और दूसरेको आवारक कहते हैं । विरोधी कर्मद्रव्यका सामीप्य होनेपर भी ज्ञानका निर्मूल विनाश नहीं होता । वैसा होनेपर जीवके विनाशका प्रसंग आता है । इसलिए ज्ञान आक्रियमाण है और कर्मद्रव्य आवारक है ।

शंका—जीव से भिन्न पुद्गल के द्वारा जीवके लक्षण ज्ञानका विनाश कैसे किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि जीवद्रव्यसे भिन्न घट-पट, स्तम्भ, बन्धकार आदि पदार्थ जीवके लक्षण ज्ञानके विनाशक पाये जाते हैं । अतः ज्ञानका आवारक पुद्गल स्कन्ध जो प्रवाहरूपसे अनादि बन्धनबद्ध है वह ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है ।

दर्शनावरणीय ॥६॥

दर्शन गुणको जो आवारण करता है वह दर्शनावरणीय कर्म है । जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व असंयम कषाय और योगके द्वारा कर्मरूपसे परिणत होकर जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त है और दर्शनगुणका प्रतिबन्धक है वह दर्शनावरणीय है ।

वेदनीय ॥७॥

जो वेदन या अनुभवन किया जाता है वह वेदनीय कर्म है ।

शंका—इस व्युत्पत्तिसे तो सभी कर्मोंके वेदनीय होनेका प्रसंग आता है ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि रुद्धिवश कुशल शब्दकी तरह विवक्षित पुद्गलपुंजमें ही वेदनीय शब्दकी प्रवृत्ति है । अथवा जो वेदन करता है वह वेदनीय कर्म है । जीवके सुख-दुःखके अनुभवनमें कारण जो पुद्गल स्कन्ध मिथ्यात्व आदि प्रत्ययवश कर्मरूप परिणत होकर जीवके साथ सम्बद्ध होता है वह वेदनीय कहाता है ।

शंका—उसका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—उसके अभावमें सुख और दुःखरूप कार्य नहीं हो सकते । कार्य कारणके अभाव में नहीं होता ; क्योंकि ऐसा नहीं देखा जाता ।

मोहणीय ॥८॥

जो मोहित किया जाता है वह मोहनीय कर्म है ।

शंका—ऐसी व्युत्पत्तिसे जीवके मोहनीय होनेका प्रसंग आता है ।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए ; क्योंकि जीवसे अभिन्न और कर्म संज्ञावाले पुद्गल द्रव्यमें उपचारसे कर्मत्वका आरोप करके उस प्रकारकी व्युत्पत्ति की है ।

अथवा जो मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है ।

आठवं ॥९॥

जो भवधारणके प्रति जाता है वह आयुर्कर्म है । जो पुद्गल मिथ्यात्व आदि कारणोंके द्वारा नरक आदि भवधारण करनेकी शक्तिसे परिणत होकर जीवमें बद्ध होते हैं वे आयु नामक होते हैं ।

शंका—उस आयुर्कर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यदि आयुर्कर्म न हो तो देह की स्थिति नहीं हो सकती ।

णामं ॥१०॥

जो नाना प्रकारकी रचना करता है वह नामकर्म है । शरीर, संस्थान, संहनन, वर्ण, गन्ध आदि कार्योंके करनेवाले जो पुद्गल जीवसे बद्ध हैं वे नाम संज्ञावाले हैं ।

गोदं ॥११॥

जो उच्च-नीचकुलका बोध कराता है वह गोत्रकर्म है । उच्च और नीच कुलोंमें उत्पादक जो पुद्गल स्कन्ध मिथ्यात्व आदि कारणोंसे जीवसे सम्बद्ध होता है उसे गोत्र कहते हैं ।

अन्तरायं चेदि

जो दोके मध्यमें आता है वह अन्तराय है । दान, लाभ, भोग, उपभोग आदिमें विघ्न करनेमें समर्थ पुद्गल स्कन्ध अपने कारणोंसे जीवसे सम्बद्ध होता है उसे अन्तराय कहते हैं ।

इस प्रकार मूल प्रकृतियाँ आठ ही हैं, क्योंकि आठ कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले कार्योंसे अतिरिक्त कार्य नहीं पाया जाता । अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायके समागमसे उत्पन्न इन आठ कर्मोंके द्वारा एक-एक जीवके प्रदेशोंमें सम्बद्ध अनन्त परमाणुओंसे अनादिसे सम्बद्ध अमूर्त भी जीव मूर्तताको प्राप्त होकर घूमते हुए कुम्हारके चाककी तरह संसारमें भ्रमण करता है ( षट्खं., पु. ६, पु. ६-१४ ) ।

## २. बन्धोदयसत्त्वाधिकार—

दूसरे अधिकारके प्रारम्भमें नेमिनाथ भगवान्को नमस्कार करके बन्ध, उदय, सत्त्वसे युक्त स्तवको गुणस्थान और मार्गणाओंमें कहनेकी प्रतिज्ञा की है और उससे आगेकी गाथामें स्तव, स्तुति और धर्मकथाका स्वरूप कहा है ।

षट्खण्डागमके अन्तर्गत वेदनाखण्ड पुस्तक ९ में आगमोंमें उपयोगके भेद सूत्र द्वारा इस प्रकार कहे हैं—

‘जा तत्त्व वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेक्खणा वा थयथुद्धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया’ ॥५५॥

इस सूत्रकी घवलाटीकामें कहा है—सब अंगोंके विषयोंकी प्रधानतासे बारह अंगोंके उपसंहारको स्तव कहते हैं । बारह अंगोंमें एक अंगके उपसंहारका नाम स्तुति है । एक अंगके एक अधिकारका नाम धर्मकथा है ।

कर्मकाण्ड गाथा ८८ में भी तीनों का यही स्वरूप प्रकारान्तरसे कहा है—समस्त अंगसहित अर्थका विस्तार या संक्षेपसे जिसमें वर्णन होता है उस शास्त्रको स्तव कहते हैं, सो कर्मकाण्डमें बन्ध, उदय, सत्त्वरूप अर्थका कथन समस्त अंगसहित यथायोग्य विस्तार या संक्षेपसे कहा गया है अतः उसे स्तव नाम दिया है ।

आगे बन्धके चार भेदोंके उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट जघन्य अजघन्य भेद किये हैं और उन उत्कृष्ट आदिके भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेद किये हैं। आगे उनका स्वरूप कहा है।

अनादि अनन्त—जिस बन्ध या उदयकी परम्पराका प्रवाह अनादिकालसे बिना किसी रुकावटके चला आता है, मध्यमें न कभी व्युच्छिन्न हुआ, न होगा उस बन्ध या उदयको अनादि अनन्त कहते हैं। ऐसा बन्ध या उदय अभंग जीवके ही होता है।

अनादिसान्त—जिस बन्ध या उदयकी परम्पराका प्रवाह अनादिकालसे बिना रुके चले आनेपर भी आगे व्युच्छिन्न होनेवाला है उसे अनादिसान्त कहते हैं। यह भव्यके ही होता है।

सादिसान्त—जो बन्ध या उदय बीचमें रुककर पुनः प्रारम्भ होता है और कालान्तरमें व्युच्छिन्न हो जाता है उसे सादिसान्त कहते हैं। सादि अनन्त भंग घटित नहीं होता; क्योंकि जो बन्ध या उदय सादि होता है वह अनन्त नहीं होता।

इस प्रकरणमें कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वका विवेचन गुणस्थानों और मार्गणाओंमें किया गया है। यह विवेचन आठों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंको लेकर किया है। भेद विवक्षामें आठों कर्मोंको प्रकृति संख्या एक सौ अड़तालीस होती है। किन्तु अभेद विवक्षामें बन्ध प्रकृतियोंकी संख्या एक सौ बीस और उदय प्रकृतियोंकी संख्या एक सौ बाईस है। इसका कारण यह है कि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण नामकर्मके बीस भेदोंमेंसे अभेद विवक्षामें चार ही लिये जाते हैं तथा पाँच बन्धन और पाँच संघात नामकर्मोंको शरीर नामकर्ममें सम्मिलित कर लेते हैं। अतः सोलह और दस—छब्बीस प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। तथा बन्ध केवल एक मिथ्यात्वका ही होनेसे बन्ध प्रकृतियोंकी संख्यामेंसे सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति कम हो जाती हैं। अतः उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस और बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ बीस होती हैं।

प्रत्येक गुणस्थानमें प्रकृतियोंकी तीन दशाएँ होती हैं—बन्ध, अबन्ध, बन्धव्युच्छित्ति। उदय, अनुदय, उदयव्युच्छित्ति। सत्त्व, असत्त्व, सत्त्वव्युच्छित्ति।

जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध, उदय और सत्ता होती है उसमें उतनी बन्ध, उदय, सत्त्वमें रहती है। जितनेका बन्ध, उदय, सत्त्व नहीं होता उतनी अबन्ध, अनुदय, असत्त्वमें रहती हैं। और जिन प्रकृतियोंका बन्ध, उदय या सत्ता जिस गुणस्थानसे आगे नहीं होती, उनकी बन्ध, उदय, सत्त्वव्युच्छित्ति उस गुणस्थानमें होती है। जैसे प्रथम गुणस्थानमें एक सौ बीस बन्ध प्रकृतियोंमेंसे एक सौ सत्रह का बन्ध होता है, तीनका बन्ध नहीं होता। तथा एक सौ सतरहमेंसे सोलह प्रकृतियाँ आगेके गुणस्थानोंमें नहीं बँधती हैं। अतः एक सौ सतरहका बन्ध, तीनका अबन्ध, सोलहकी बन्धव्युच्छित्ति कही जाती है।

षट्खण्डागमके तीसरे खण्डका नाम बन्ध स्वामित्व विचय है। जिसका अर्थ होता है—बन्धके स्वामीपनेका विचार। इसका अतुर्थ सूत्र है—

“एदेसि चोदसण्हं जीवसमासाणं पयडिबन्धवोच्छेदो कादव्वो होदि।”

अर्थ—“इन चौदह गुणस्थानोंमें प्रकृतिबन्धके व्युच्छेदका कथन कर्तव्य है।” इसकी टीका ध्वलामें यह प्रश्न उठाया है कि यदि यहाँ प्रकृतिबन्धव्युच्छेदका कथन है तो इसका नाम बन्धस्वामित्वविचय कैसे घटित हुआ? उत्तरमें कहा है—“इस गुणस्थानमें इतनी प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।” ऐसा कहनेपर उससे नीचेके गुणस्थान उन प्रकृतियोंके बन्धके स्वामी हैं यह सिद्ध होता है।

जैसे सूत्र पाँचमें कहा है—पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कोन बन्धक है और कोन अबन्धक है ?

छठे सूत्रमें कहा है—मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षयक उक्त प्रकृतियोंके बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें उक्त प्रकृतियोंके बन्धका विच्छेद होता है अतः ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

इसी प्रकार सूत्रोंमें प्रत्येक प्रकृतिके बन्ध और अबन्धके सम्बन्धमें प्रश्न और उत्तर किया गया है। इसीके आधारपर गोम्मटसारमें गुणस्थानों और मार्गणाओंमें बन्ध, अबन्ध और बन्धव्युच्छित्तिका विचार किया गया है।

पाँचवें सूत्रकी ध्वलाटीकामें बीरसेन स्वामीने सूत्रको देशामर्षक मानकर तेईस प्रश्न उठाये हैं और उनका समाधान किया है। वे प्रश्न इस प्रकार हैं—

१. किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्तिसे पूर्व होती है ?
२. किन प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति बन्धव्युच्छित्तिसे पूर्व होती है ?
३. किनकी दोनों व्युच्छित्ति एक साथ होती हैं ?
४. अपने उदयमें बन्ध किनका होता है ?
५. परप्रकृतियोंके उदयमें बन्ध किनका होता है ?
६. अपने और परके उदयमें बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ?
७. सान्तरबन्धी कौन है ?
८. निरन्तरबन्धी कौन है ?
९. सान्तर-निरन्तरबन्धी कौन हैं ?
१०. सनिमित्तक बन्ध किनका होता है ?
११. अनिमित्तक बन्ध किनका है ?
१२. गतिके साथ बँधनेवाली कौन प्रकृतियाँ हैं ?
१३. गतिके बिना बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ?
१४. किन्नरी गतिवाले जीव किन प्रकृतियोंके स्वामी हैं ?
१५. कितनी गतिवाले स्वामी नहीं हैं ?
१६. बन्धकी सीमा किस गुणस्थान तक है ?
१७. क्या अन्तिम समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति होती है ?
१८. क्या प्रथम समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति होती है ?
१९. या बीचके समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति होती है ?
२०. किनका बन्ध सादि है ?
२१. किनका बन्ध अनादि है ?
२२. किनका बन्ध ध्रुव है ?
२३. किनका बन्ध अध्रुव है ?

इन प्रश्नोंमें-से बीरसेन स्वामीने विषम प्रश्नोंका उत्तर दिया है। चूँकि बन्धव्युच्छेदका कथन सूत्रोंमें ही है अतः उसे छोड़कर उदयव्युच्छेदका कथन किया है। और उसके अन्तमें एक उपसंहार गाथा दी है—

दस चदुरिगि सत्तारस अटु य तह पंच चैव चउरो य ।

छच्छक्क एग दुग दुग चोदस उगुतीस तेरसुदय विदी ।

यह गाथा कर्मकाण्डके उदय प्रकरणमें है और इसका क्रमांक २६३ है। इस उदयव्याख्यातकी

वर्त्तके प्रारम्भमें बीरसेन स्वामीने कहा है—मिथ्यात्व आदि दस प्रकृतियोंकी उदयकी व्युत्पत्ति मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है यह महाकर्म प्रकृति प्राभृतका उपदेश है ।

जूर्णसूत्रकर्ता यतिवृषभाचार्यके उपदेशसे मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें पाँच प्रकृतियोंका उदयव्युत्पत्ति होता है क्योंकि उनके मतसे चार जाति और स्थावर प्रकृतियोंका उदयव्युत्पत्ति सासादन गुणस्थानमें होता है ।

गोम्मटसार कर्मकाण्डमें भी इस मतभेदका कथन है । कर्मकाण्डमें त्रिचूलिकानामक अधिकारके अन्तर्गत नौ प्रश्नचूलिकामें उक्त तेईस प्रश्नोंमें-से नौ प्रश्नोंका कथन है । शेषमें-से कुछका कथन बन्धाधिकार और उदयाधिकारमें है ।

इस अधिकारके प्रारम्भमें प्रकृतिबन्धके कथनके पश्चात् स्थितिबन्धका कथन है । यह कथन जीव-स्थानकी चूलिकाके अन्तर्गत छठे और सातवीं चूलिकाका श्रृणी है । छठी चूलिकामें मूल प्रकृतियों और उत्तर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति, आबाधा तथा निषेक रचनाका कथन है । और सातवीं चूलिकामें उनकी जघन्यस्थिति आदिका कथन है । यथा—

पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस साग-रोपम कोडाकोडी है ॥ ४ ॥

उनका तीस हजार वर्ष आबाधाकाल है ॥ ५ ॥

आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है ॥ ६ ॥

(—षट्खं. पु. ६, पृ. १४६-१५०)

इसी प्रकार जघन्य स्थिति आदिका भी कथन है ।

किन्तु कर्मकाण्डमें संज्ञोपञ्चेन्द्रियसे लेकर असंज्ञोपञ्चेन्द्रिय, चौहन्द्रिय, तेहन्द्रिय, दोहन्द्रिय, एकेन्द्रिय और उनके अवान्तर भेदोंमें जो स्थिति बन्धका निरूपण है वह यहाँ नहीं है । और न स्थिति बन्धके स्वामियोंका कथन यहाँ है ।

कर्मकाण्डमें स्थितिबन्धके बाद अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्धका कथन है वह भी यहाँ नहीं है । अबलामें प्रश्न किया गया है कि यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तथा अनुभागबन्ध क्यों नहीं कहा ? उत्तरमें कहा है—अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके अविनाभावि प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धका कथन किये जावे पर उनका कथन स्वतः सिद्ध है । तथा प्रदेशबन्धसे योगस्थान सिद्ध होते हैं । ( ये योगस्थान जगत त्रेणिके अस्तंस्यातर्वे भाग मात्र है । ) क्योंकि योगके बिना प्रदेशबन्ध नहीं हो सकता ।

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धके द्वारा यहाँ चारों ही बन्धका कथन हो जाता है ।

पञ्चसंग्रहके शतक नामक चतुर्थ अधिकारमें भी चारों बन्धोंका कथन है । उसमें बन्धके नौ भेद किये हैं—सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, प्रकृतिस्थानबन्ध, भुजाकारबन्ध, अल्पतरबन्ध, अवस्थित-बन्ध और स्वामित्वकी अपेक्षा बन्ध । और क्रमसे उनका कथन किया है । कर्मकाण्डमें आदिके चार भेदोंका कथन तो इसी अधिकारमें किया है । शेषका कथन पाँचवें बन्धोदय सत्त्वयुक्त स्थान समुत्कीर्तन अधिकारमें किया है । सादिबन्ध आदिका निरूपण दोनोंमें समान है । इतना ही नहीं किन्हीं गाथाओंमें भी समानता है । यथा—

साह अणाह य धुव अद्दुयो य बंधो तु कम्मछवकस्स ।

तहए साहयसेसा अणाह धुवसेसओ आठ ॥ ३२५ ॥

—पञ्चसंग्रह ।

सादि अणादी ध्रुव अद्भुतो य बंधो दु कम्मच्छक्कत्स ।

तदियो सादि य सेसो अणादि ध्रुव सेसगो आळ ॥ १२२ ॥

—कर्मकाण्ड ।

पञ्चसंग्रहमें बन्धके नवम भेद स्वामित्वकी अपेक्षा बन्धके कथनमें गुणस्थान और मार्गणाओंमें बन्ध, बन्धव्युच्छित्ति आदिका कथन है । तदनन्तर स्थितिवन्धका कथन है, जैसा कर्मकाण्डके इस दूसरे अधिकारमें है । किन्तु पञ्चसंग्रहसे कर्मकाण्डके कथनमें विशेषता है । कर्मकाण्डमें एकेन्द्रिय आदि जीवोंके होवेवाले स्थितिवन्ध का भी कथन है जो पञ्चसंग्रहमें नहीं है । अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका कथन पञ्चसंग्रहमें भी है और कर्मकाण्ड उसका ऋणी हो सकता है किन्तु कर्मकाण्डके कथनमें उससे विशेषता भी है । प्रदेशबन्धका कथन करते हुए पञ्चसंग्रहमें तो समय प्रबद्धका विभाग केवल मूल कर्मोंमें ही कहा है किन्तु कर्मकाण्डमें उत्तर-प्रकृतियोंमें भी कहा है । तथा प्रदेशबन्धके कारणभूत योगके भेदों और अवयवोंका भी कथन किया है यह कथन पञ्चसंग्रहमें नहीं है । इस प्रकरणमें पञ्चसंग्रहकी कई गाथाएँ संगृहीत हैं ।

उदयप्रकरणमें कर्मोंके उदय उदीरणा आदिका कथन गुणस्थान और मार्गणाओंमें है । प्रत्येक गुणस्थान और मार्गणामें प्रकृतियोंके उदय, अनुदय उदयव्युच्छित्तिका कथन है । सत्त्व प्रकरणमें भी गुणस्थान और मार्गणाओंमें प्रकृतियोंके सत्त्व, असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्तिका कथन है । मार्गणाओंमें बन्ध, उदय, सत्त्वादिका कथन अन्यत्र नहीं मिलता । आचार्य नेमिचन्द्रने उसे स्वयं फलित करके लिखा प्रतीत होता है । उदय और सत्त्व प्रकरणकी अन्तिम गाथामें इसकी झलक मिलती है । यथा—

कम्मेवाणाहारे पयडोणं उदयमेवमादेसे ।

कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥ ३३२ ॥

कम्मेवाणाहारे पयडोणं सत्तमेवमादेसे

कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥ ३५६ ॥

—कर्मकाण्ड ।

अर्थात् यह कथन आचार्यनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने किया है ।

### ३. सत्त्वस्थान भंगाधिकार—

तीसरे अधिकारका नाम सत्त्वस्थान भंगाधिकार है । इसकी प्रथम गाथामें जिसका क्रमांक ३५८ है, भगवान् महावीरको नमस्कार करके सत्त्वस्थानकी भंगोंके साथ कहनेकी प्रतिज्ञा की है । और आगेकी गाथामें कहा है—पिछले अधिकारके अन्तमें जो सत्त्वस्थानका कथन किया है वह आयुके बन्ध और अबन्धका भेद न करके किया है । इस अधिकारमें भंगके साथ कथन है ।

एक समयमें एक जीवके संख्याभेदको लिये हुए जो प्रकृति समूहका सत्त्व पाया जाता है उसे स्थान कहते हैं । और समान संख्यावाली प्रकृतियोंमें जो प्रकृतियोंका परिवर्तन होता है उसे भंग कहते हैं । जैसे किन्हीं जीवोंके मनुष्यायु देवायुके साथ एक सौ पैतालीसका सत्त्व पाया जाता है और किन्हीं जीवोंके तिर्यचायु नरकायुके साथ एक सौ पैतालीसका सत्त्व पाया जाता है । यहाँ भंगभेद होता है । एक जीवके दो आयुकी सत्ता रह सकती है । एक आयु भुज्यमान—जो वह भोग रहा है, एक आयु बध्यमान—जो उसने आगामी भवकी बाँधी है । जिसने अभी परभवकी आयुका बन्ध नहीं किया उसके एक भुज्यमान आयुकी सत्ता रहती है ।

देवगतिमें और नरकगतिमें मनुष्य और तिर्यंच दो ही आयुका बन्ध होता है । मनुष्य और तिर्यंचोंमें चारों आयुका बन्ध हो सकता है । किन्तु सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच देवायुका ही बन्ध करते हैं । तथा

सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मनुष्यायुका ही बन्ध करते हैं ! जिस स्थानमें चारों आयुकी सत्ता रहती है उसमें चारों आयुके बन्धको लेकर बारह भंग बढ़ायुके होते हैं—यथा

१. भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु ।
२. भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यंचायु ।
३. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु ।
४. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु ।
५. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु ।
६. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु ।
७. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु ।
८. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु ।
९. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु ।
१०. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु ।
११. भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु ।
१२. भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु ।

इनमेंसे जिन भंगोंमें दोनों आयु समान हैं केवल भुज्यमान और बध्यमानका ही भेद वे भंग पुनरुक्त होनेसे अपुनरुक्त पाँच ही भंग बढ़ायुके होते हैं । और अबढ़ायुके चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं । इस प्रकार प्रत्येक गुणस्थानमें स्थानों और भंगोंका कथन इस अधिकारमें है ।

इस अधिकारकी अन्तिम गाथामें ग्रन्थकारने कहा है—इन्द्रनन्दि गुरुके पासमें सकल सिद्धान्तको सुनकर कनकनन्दी गुरुने सत्त्वस्थानका कथन किया ।

स्व. पं. जुगल किशोरजी मुस्तारने पुरातन वाक्यसूची ( पृ. ७२-७४ ) की प्रस्तावनामें लिखा है कि उक्त सत्त्वस्थान ग्रन्थ विस्तरसत्त्व त्रिभंगीके नामसे आराके जैन सिद्धान्तभवनमें मौजूद है । उसमें साफ तौरपर इन्द्रनन्दिको ही गुरुरूपसे उल्लेखित किया है । इस सत्त्वस्थानको नेमिचन्द्रने अपने गोमटसारमें प्रायः ज्योंका त्यों अपनाया है । आराकी उक्त प्रतिके अनुसार प्रायः ८ गाथाएँ छोड़कर मंगलाचरण और अन्तिम गाथा सहित सब गाथाओंको अपने ग्रन्थका अंग बनाया है । कहीं-कहीं भेद भी है । उक्त प्रस्तावनामें उसका विवरण देखा जा सकता है । इस तरह यह अधिकार कनकनन्दिके उक्त सत्त्वत्रिभंगीका ऋणी है ।

#### ४. त्रिचूलिकाधिकार—

इस अधिकारमें तीन चूलिकाएँ हैं—नवप्रश्नचूलिका, पंचभागहारचूलिका, और दशकरणचूलिका । पहली नौ प्रश्नचूलिकामें नौ प्रश्नोंका समाधान किया है । ये नौ प्रश्न इस प्रकार हैं—१. उदय व्युच्छित्तिके पहले बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है । २. उदयव्युच्छित्तिके पीछे बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ? ३. उदयव्युच्छित्तिके साथ बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है । ४. अपने उदयमें बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं, ५. अन्यके उदयमें बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ? ६. अपने तथा परके उदयमें बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ? ७. निरन्तर बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ? ८. जिनका सान्तरबन्ध होता है वे प्रकृतियाँ कौन हैं ? ९. जिनका निरन्तर बन्ध भी होता है और सान्तरबन्ध भी, वे प्रकृतियाँ कौन हैं । इन नौ प्रश्नोंका उत्तर इस चूलिकामें दिया है ।

प्रा० पंचसंग्रहके तीसरे अधिकारके अन्तमें नौ प्रश्नचूलिका आती है । तथा षट्खण्डागमके अन्तर्गत तीसरे खण्ड बन्धस्वामित्व विचयकी धवला टीकामें ( पृ. ८, पृ. ७-१७ ) उक्त नौ प्रश्न उठाकर उनका



समाधान किया है। तथा उनके समर्थनमें कुछ आर्ष गाथाएँ भी दी हैं। उन्हींके आधारसे यह नौ प्रश्न चूलिका ली गयी प्रतीत होती है।

पंच भागहार चूलिकामें उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम इन पाँच भागहारोंका कथन है। इन भागहारोंके द्वारा शुभाशुभकर्म जीवके परिणामोंका निमित्त पाकर अन्य प्रकृतिरूप परिणामन करते हैं। जैसे शुभ परिणामोंके निमित्तसे पूर्वबद्ध असातावेदनीय कर्म सातावेदनीय रूप परिणत हो जाता है। किस-किस प्रकृतिमें कौन-कौन भागहार सम्भव हैं और किस-किस भागहारकी कौन-कौन प्रकृतियाँ हैं यह सब कथन भी है। चूँकि पाँचो भागहार एक भाजक राशिसे समान हैं अतः उनका परस्परमें अल्पबहुत्व भी बतलाया है। पंचसंग्रहमें यह कथन नहीं है।

तीसरी दशकरण चूलिकामें बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उदीरणा, सत्ता, उदय, उपशम, निवृत्ति, निकाचना इस दस करणोंका कथन किया है और बतलाया है कि कौन करण किस गुणस्थान तक होना है। कर्मपरमाणुओंका आत्माके साथ सम्बद्ध होना बन्ध है। यह सबसे पहली क्रिया है। करण नाम क्रियाका है। इसके बिना आत्माका कोई करण नहीं होता। कर्मकी दूसरी क्रिया या अवस्था उत्कर्षण है। स्थिति और अनुभागके बढ़नेको उत्कर्षण कहते हैं। तीसरा करण अपकर्षण उससे विपरीत है, अर्थात् स्थिति और अनुभागके घटनेको अपकर्षण कहते हैं। बन्धके बाद ही ये दोनों करण होते हैं। किसी अशुभकर्मका बन्ध होनेके पश्चात् यदि जीव शुभपरिणाम करता है तो पूर्व बद्ध कर्ममें स्थिति अनुभाग घट जाता है। इसी तरह अशुभकर्मकी अघन्य स्थिति बाँधकर यदि कोई और भी अधिक पापकार्यमें रत रहता है तो उसकी स्थिति अनुभाग बढ़ जाता है। बाँधनेके बाद कर्मके सत्तामें रहनेको सत्त्वकरण कहते हैं। कर्मका अपना फल देना उदय है। नियत समयसे पूर्वमें फलदानको उदीरणा कहते हैं। उदीरणासे पहले अपकर्षण द्वारा कर्मकी स्थितिको घटा दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति पूरी आयु भोगे बिना असमयमें ही मर जाता है तो उसे आयुकर्मकी उदीरणा कहते हैं। एक कर्मका दूसरे सजातीय कर्मरूप होनेको संक्रमण करण कहते हैं। संक्रमण मूल कर्म-प्रकृतियोंमें नहीं होता अर्थात् न ज्ञानावरण दर्शनावरणरूप या किसी अन्यकर्मरूप होता है और न दर्शनावरण या मोहनीय आदि ज्ञानावरणरूप होते हैं। किन्तु एक कर्मके अवान्तर भेदोंमेंसे एक भेद अन्य सजातीय प्रकृतिरूप हो सकता है। जैसे सातावेदनीय असातावेदनीयरूप और असातावेदनीय सातावेदनीय रूप हो जाता है। किन्तु आयुकर्मके भेदोंमें संक्रमण नहीं होता। नरककी आयु बाँध लेनेपर मरकर नरकमें ही जन्म लेना होगा।

कर्मका उदयमें आनेके अयोग्य होता उपशम है। उसमें संक्रमण और उदयका न हो सकना निश्चित है। और उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उदयका न हो सकना निकाचना है। कर्मोंमें-ये दसकरण होते हैं। ये सब जीवके भावोंपर ही अवलम्बित हैं। अन्य किसीका इनमें कर्तृत्व नहीं है।

#### ५. बन्धोदयसत्त्वयुक्तस्थानसमुत्कीर्तन—

एक जीवके एक समयमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध, उदय, सत्त्व सम्भव है उनके समूहका नाम स्थान है। इस अधिकारमें पहले आठों मूलकर्मोंको लेकर और फिर प्रत्येक कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंको लेकर बन्ध स्थानों, उदय स्थानों और सत्त्व स्थानोंका कथन है। जैसे मूल कर्मोंका कथन करते हुए कहा है कि तीसरे गुणस्थानके सिवाय अप्रमत्त पर्यन्त छह गुणस्थानोंमें एक जीवके आयुकर्मके बिना सातका अथवा आयुकर्म सहित आठका बन्ध होता है। तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थानमें आयुके बिना सात कर्मोंका बन्ध होता है। दसवें गुणस्थानमें आयु और मोहनीयके बिना छह ही कर्मोंका बन्ध होता है। ग्यारहवें आदि तीन गुणस्थानोंमें एक वेदनीय कर्मका ही बन्ध होता है। और चौदहवें गुणस्थानमें एक भी कर्मका बन्ध नहीं होता। अतः आठ कर्मोंके चार बन्ध स्थान है—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक, एक प्रकृतिक।

इसी तरह दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मोंका उदय होता है। ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानमें मोहनीयके बिना सात कर्मोंका उदय होता है। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें चार कर्मोंका उदय होता है। अतः आठ कर्मोंके तीन उदयस्थान होते हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक।

ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों कर्मोंकी सत्ता रहती है। बारहवें गुणस्थानमें मोहनीयके बिना सात कर्मोंकी सत्ता रहती है। तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानमें चार कर्मोंकी सत्ता रहती है। अतः आठों कर्मोंके तीन सत्त्व स्थान हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। इसी तरहका कथन प्रत्येक कर्मके विषयमें किया गया है। आठों कर्मोंमेंसे वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंमेंसे एक जीवके एक समयमें एक ही प्रकृतिका बन्ध होता है और एकका ही उदय होता है। तथा ज्ञानावरण और अन्तरायको पाँचों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध, उदय और सत्त्व होता है। अतः इनको छोड़कर शेष दर्शनावरणाय, मोहनीय और नामकर्ममें बन्धस्थानों, उदयस्थानों और सत्त्वस्थानोंका कथन बहुत विस्तारसे किया है।

प्रत्येकके कथनके पश्चात् त्रिसंयोगी भंगोंका कथन है अर्थात् बन्धमें उदय-सत्त्व, उदयमें बन्ध और सत्त्व, और सत्त्वमें बन्ध और उदयका कथन किया है। फिर बन्धादिमेंसे दो को आधार और एकको आधेय बनाकर कथन किया है। पंचसंग्रहके अन्तर्गत शतक और सप्ततिका अधिकारमें भी उक्त कथन है। कर्मकाण्डका उक्त कथन उसका ऋणी हो सकता है। कुछ गाथाएँ भी दोनोंमें समान हैं।

इस प्रकरणमें प्रसंगवश आगत कर्मविषयक अन्य भी ज्ञातव्य विषय हैं। यह अधिकार बहुत विस्तृत है। इसमें ३३४ गाथाएँ हैं।

## ६. प्रत्ययाधिकार—

इस अधिकारमें कर्मबन्धके कारणोंका कथन है। मूल कारण चार हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग और इनके भेद क्रमसे पाँच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह सब मिलकर सत्तावन होते हैं। इन्हीं मूल और उत्तर प्रत्ययोंका कथन गुणस्थानोंमें किया गया है कि किस गुणस्थानमें बन्धके कितने प्रत्यय होते हैं। और उनके भंगोंका भी कथन है। प्रा. पंचसंग्रहके ण्तकाधिकारके प्रारम्भमें यह कथन बहुत विस्तारसे है। कर्मकाण्डमें केवल पच्चीस गाथाओंमें है तो पंच संग्रहमें सवा सौ गाथाओंमें। प्रारम्भको दो मूल गाथाएँ दोनों ग्रन्थोंमें समान हैं। उनमें कहा है 'प्रथम गुणस्थानमें उक्त चारों प्रत्ययोंसे कर्मबन्ध होता है। बादके तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वको छोड़ शेष तीन प्रत्ययोंसे कर्मबन्ध होता है। पाँचवें गुणस्थानमें एक देश असंयम कषाय और योगसे कर्मबन्ध होता है। उससे ऊपरके पाँच गुणस्थानोंमें कषाय और योगसे कर्मबन्ध होता है। ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, गुणस्थानमें केवल योगसे कर्मबन्ध होता है।

आगे गुणस्थानोंमें उत्तर प्रत्ययोंका कथन है। अन्तमें दोनों ही ग्रन्थोंमें कर्मबन्धके विशेष कारण कहे हैं जो तत्त्वार्थसूत्रके छठे अध्यायके अन्तमें कहे हैं। दोनों ग्रन्थोंमें ये गाथाएँ प्रायः समान हैं। पंचसंग्रहमें इन्हें मूल गाथा कहा है। अतः ये गाथाएँ पंचसंग्रहसे ही ली गयी जान पड़ती हैं। इस प्रकार यह कथन कर्मकाण्डमें पंचसंग्रहसे संग्रहीत होना चाहिए।

## ७. भावचूलिका—

इस अधिकारमें औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक भावोंका तथा उनके भेदोंका कथन करके गुणस्थानोंमें उनके स्वसंयोगी और परसंयोगी भंगोंका कथन किया है।

उसके पश्चात् 'असिदि सदं किरियाणं' आदि प्राचीन गाथा आती है जिसमें कहा है कि क्रियावादियोंके एक सौ अस्सी, अक्रियावादियोंके एक सौ चौरासी, अज्ञानवादियोंके सड़सठ और वैयक्तिकोंके बत्तीस, इस तरह तीन सौ तरेसठ मत हैं। आगे इन तीन सौ तरेसठ मतोंको उपपत्ति दी गयी है। इसे सूत्रकृतांगके प्रथम श्रुतस्कन्धके बारहवें अध्यायनमें भी उक्त मतोंकी चर्चा है। और टीकाकार शीलांकने अपनी टीकामें उनकी उपपत्ति भी दी है। किन्तु दोनोंमें अन्तर है। अमृतगतिके पंचसंग्रह (पृ. ४१ आदि) में भी यह सब कथन है जो कर्मकाण्डका ऋणी प्रतीत होता है, क्योंकि प्रा. पंचसंग्रहमें यह कथन नहीं है।

अन्तमें एक गाथाके द्वारा जो सन्मति तर्कमें (का. ३, गा. ४७) भी है, कहा गया है जितने वचनके मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं। और जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय हैं। परसमयोंका कथन मिथ्या है क्योंकि वे सर्वथा वैसा मानते हैं और जैनोंका कथन यथार्थ है क्योंकि वे स्याद्वादी हैं।

#### ८. त्रिकरणचूलिका—

इस अधिकारमें अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणका स्वरूप वर्णित है। जीवकाण्डके प्रारम्भमें भी इन तीनोंका स्वरूप गुणस्थानोंके प्रसंगसे कहा है। इन तीनोंका स्वरूप बतलानेवाली गाथाएँ भी वे ही हैं जो जीवकाण्डमें हैं। किन्तु यहाँ मूलग्रन्थकारने स्वयं अंकसंदृष्टिके द्वारा इन करणोंको समझाया है।

#### ९. कर्मस्थिति रचनाधिकार—

प्रति समय बँधनेवाले कर्मपरमाणु आठों कर्मोंमें या सात कर्मोंमें विभाजित हो जाते हैं और प्रत्येक कर्म प्रकृतिको प्राप्त कर्मनिषेकोंकी रचना उसकी स्थितिके अनुसार आबाधाकालको छोड़कर हो जाती है, अर्थात् बन्धको प्राप्त वे कर्मपरमाणु उदयकाल आनेपर क्रमशः प्रति समय एक-एक निषेकके रूपमें खिरने प्रारम्भ होते हैं। उनकी रचनाको ही कर्मस्थिति रचना कहते हैं। उसीका कथन इस अधिकारमें विस्तारसे है। संक्षेपमें यह कथन दूसरे अधिकारके अन्तर्गत स्थिति बन्धाधिकारमें भी किया है, फलतः इस अधिकारमें जो ९१४ से ९२१ तककी गाथाएँ हैं वे सब उस अधिकारमें आती हैं। वहाँ उनका क्रमांक १५४-१९२ है।

बँधनेके पश्चात् कर्म तत्काल फल नहीं देता, कुछ समय बाद फल देता है और उस समयको आबाधाकाल कहते हैं। यह आबाधाकाल कर्मकी स्थितिके अनुसार होता है। एक कोटी-कोटी सागर की स्थितिमें एक सौ वर्ष आबाधाकाल होता है। अर्थात् यदि किसी कर्मकी स्थिति एक कोटी-कोटी सागर बँधी हो तो वह कर्म सौ वर्षके बाद अपना फल देना प्रारम्भ करता है। और सौ वर्ष कम एक कोटी-कोटी सागर काल तक अपना फल देता रहता है। अतः उस कर्मकी निषेक रचना सौ वर्ष कम एक कोटी-कोटी सागरके समयप्रमाण होती है। प्रति समय एक-एक निषेक उदयमें आता रहता है। आयुर्कर्मकी आबाधामें अपवाद है। उसकी निषेक रचना जितनी आयु बाँधी है उतने समयप्रमाण होती है क्योंकि आयुर्कर्मके स्थितिबन्धमें उसका आबाधाकाल सम्मिलित नहीं है। इसी आबाधाकालके कारण कोई कर्म देरमें फल देता है और कोई तत्काल फल देता है।

इस अधिकारके अन्तमें ग्रन्थकारकी प्रशस्ति गाथा ९६५ से ९७२ तक है। उसमें ग्रन्थकारने इस ग्रन्थकी रचनामें निमित्त चासुपडरायके ही क्रिया-कलापोंका वर्णन किया है। अपने सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा।

इस प्रकार इस ग्रन्थका विषय-परिचय जानना। यह ग्रन्थ कर्मसिद्धान्तका सिरपौर जैसा है। इसमें पूर्ववर्चित कर्मसिद्धान्त-विषयक ग्रन्थोंका सार आ जाता है।

## कुछ दिग्म्बर-श्चेताम्बर मतभेद—

श्चेताम्बर परम्परामें भी कर्मविषयक साहित्य विपुल है। यहाँ उसके आधारपर कुछ विशेषताओं तथा मतभेदोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

१. कर्मकाण्डमें केवल ध्रुवबन्धिनी और ध्रुवोदयी तथा उसकी विपक्षी प्रकृतियोंको ही बतलाया है। किन्तु पंचम कर्मग्रन्थमें ध्रुव सत्ताका और अध्रुव सत्ताका प्रकृतियोंको भी गिनाया है। १३० प्रकृतियाँ ध्रुव सत्ताका हैं और २८ अध्रुव सत्ताका हैं। दोनोंका जोड़ १५८ है जो उदयप्रकृतियों की संख्यासे ३६ अधिक है। इसका कारण यह है कि बन्ध और उदयमें नामकर्मकी वर्णादि चारको ही गिना है। इसी तरह पाँच बन्धन और पाँच संघातको पृथक् न गिनाकर शरीरनामकर्ममें ही सम्मिलित कर लिया है। और बन्धन-नामकर्मके १५ भेदोंको भी शरीरनामकर्ममें अन्तर्भूत कर लिया है अतः  $१६ + ५ + १५ = ३६$  बढ़ जाती है।

इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि ध्रुवबन्धिनी और ध्रुव उदयवाली प्रकृतियोंकी संख्या अध्रुव बन्धिनी और अध्रुव उदयवाली प्रकृतियोंकी संख्यासे बहुत कम है। किन्तु सत्तामें विपरीत वशा है। इसका कारण यह है कि जो प्रकृति बन्धदशामें है और जिसका उदय हो रहा है उन दोनों की ही सत्ताका होना आवश्यक है। अतः बन्ध और उदय प्रकृतियाँ सत्तामें रहती ही हैं। तथा मिथ्यात्व दशामें जिनकी सत्ता नियमसे नहीं होती, ऐसी प्रकृतियाँ कम ही हैं। इन कारणोंसे ध्रुव सत्ताका प्रकृतियोंकी संख्या अधिक है और अध्रुव सत्ताकी कम। त्रसादि बीस, वर्णादि बीस और तेजसकामाँग सप्तकी सत्ता सभी संसारो जीवोंके रहती है अतः ये ध्रुव सत्ताका हैं। सैंतालीस ध्रुवबन्धिनी ध्रुवसत्ताका हैं। तीनों वेदोंकी सत्ता ध्रुव है। क्योंकि उनका बन्ध क्रमशः होता रहता है। संस्थान, संहनन, जाति, वेदनीय द्विक भी ध्रुव सत्ताका हैं। हास्य, रति और अरति शोककी सत्ता नीवें गुणस्थान तक सभी जीवों के रहती है। इसी प्रकार उच्छ्वास आदि चार, विहायोयुगल, तिर्यग्द्विक और नीच गोत्रकी भी सत्ता सर्वदा रहती है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेसे पहले सभी जीवोंके ये प्रकृतियाँ सदा रहती हैं इसीसे इन्हें ध्रुव सत्ताका कहा है। शेष २८ अध्रुव सत्ताका हैं। क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्रकी सत्ता अभव्योंके तो होती ही नहीं, बहुतसे अवयवोंके भी नहीं होती। तेजकाय-वायुकायिक जीव मनुष्यद्विककी उद्वेलना कर देते हैं अतः उनके मनुष्यद्विककी सत्ता नहीं होती। वैक्रियक आदि ग्यारह प्रकृतियोंकी सत्ता अनादि निगोदिया जीवके नहीं होती। तथा जो जीव उनका बन्ध करके एकेन्द्रियमें आकर उद्वेलना कर देते हैं उनके भी नहीं होती। सम्यक्त्वके होते हुए भी तीर्थकरनाम किसीके होता है किसीके नहीं होता। स्थावरोंके देवायु-नरकायुका, अहमिन्द्रोंके तिर्यगायुका, तेजकाय, वायुकाय और सप्तम नरकके नारकियोंके मनुष्यायुका बन्ध न होनेके कारण उनकी सत्ता नहीं है। तथा संयम होनेपर भी आहारक सप्तक किसीके होते हैं किसीके नहीं होते। तथा उच्चगोत्र भी अनादि निगोदिया जीवोंके नहीं होता। उद्वेलना हो जानेपर तेजकाय, वायुकायके भी नहीं होता। अतः ये अट्टाईस प्रकृतियाँ अध्रुव सत्ताका हैं।

गुणस्थानोंमें कुछ प्रकृतियोंकी ध्रुव सत्ता और अध्रुव सत्ताका कथन करते हुए कहा है—

आदिके तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वकी सत्ता अवश्य होती है। आगे असंयत सम्यग्दृष्टि आदि अः७ गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वकी सत्ता होती भी है, नहीं भी होती। सासादनमें सम्यक्त्व मोहनोयकी सत्ता नियमसे होती है। किन्तु शेष मिथ्यादृष्टि आदि दस गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व मोहनोयकी सत्ता होती भी है, नहीं भी होती। सासादन और मिश्र गुणस्थानोंमें मिश्र प्रकृतिकी सत्ता नियमसे रहती है शेष मिथ्यादृष्टि आदि नौ गुणस्थानोंमें उसकी सत्ता भजनीय है। इसी प्रकार आदिके दो गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धोंकी सत्ता नियमसे रहती है शेष तीसरे आदि नौ गुणस्थानोंमें उसकी सत्ता भजनीय है। मिथ्यात्व आदि सभी गुणस्थानोंमें आहारक सप्तककी सत्ता भजनीय है। दूसरे और तीसरे गुणस्थानके सिवाय शेष सभी गुणस्थानोंमें तीर्थकर-

की सत्ता विकल्पसे होती है। तीर्थंकर और आहारककी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नहीं आता। तीर्थंकरकी सत्तावाला यदि मिथ्यात्वमें आता है तो अन्तर्मुहूर्त के लिए आता है।

२. कर्मकाण्ड गाथा २६ में कहा है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वकपी भावयन्त्रके द्वारा मिथ्यात्व प्रकृतिका द्रव्य मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप हो जाता है। श्वेताम्बर परम्परामें कामिकोंको तो यही मत मान्य है किन्तु सैद्धान्तिकोंका मत भिन्न है। विशेषावश्यक भाष्यकी गाथा ५३० की टीकामें हेमचन्द्रसरिने लिखा है—

सैद्धान्तिकोंका मत है कि कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उस प्रकारकी सामग्रीके मिलनेपर अपूर्वकरणके द्वारा मिथ्यात्वके तीन पुंज करता है और शुद्ध पुंज अर्थात् सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुभव न करता हुआ, औपशमिक सम्यक्त्वको प्राप्त किये बिना ही, सबसे पहले क्षायोपशमिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। तथा कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव यथाप्रवृत्त आदि तीन करणोंको क्रमसे करके अन्तरकरण करनेपर औपशमिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। किन्तु वह मिथ्यात्वके तीन पुंज नहीं करता। इसीसे औपशमिक सम्यक्त्वके छूट जानेपर वह जीव नियमसे मिथ्यात्वमें आता है।.....किन्तु कर्मशास्त्रियोंका मत है कि सभी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्ति के समय यथाप्रवृत्त आदि तीन करणोंको करते हुए अन्तरकरण करते हैं और ऐसा करनेपर उन्हें औपशमिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। ये जीव मिथ्यात्वके तीन पुंज अवश्य करते हैं। इसीलिए उनके मतसे औपशमिक सम्यक्त्वके छूट जानेपर जीव क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, सम्यक्मिथ्यादृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि होता है।

तथा श्वे. कर्म प्रकृति उसकी चूर्णि और श्वे. पंचसंग्रहके रचयिताओंका मत है कि उपशम सम्यक्त्वके प्रकट होनेसे पहले अर्थात् मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें द्वितीय स्थितिमें वर्तमान मिथ्यात्वके तीन पुंज करता है। और लब्धिसारके मतसे जिस समय सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसी समय तीन पुंज करता है।

३. कर्मकाण्ड गा. ३३३ में सासादन गुणस्थानमें आहारकका सत्त्व स्वीकार नहीं किया है। किन्तु श्वे. कर्मग्रन्थमें स्वीकार किया है। कर्मकाण्ड गा. ३७३ से यह स्पष्ट है कि सासादनमें आहारककी सत्ताको लेकर कर्मशास्त्रियोंमें मतभेद है। एक पक्ष उसकी सत्ता मानता है, दूसरा पक्ष नहीं मानता।

४. कर्मकाण्ड गा. ३९१ में 'णत्थि अणं उवसमगे' पदके द्वारा यह बतलाया है कि उपशमश्रेणिमें अनन्तानुबन्धीके सत्त्वको लेकर कामिकोंमें मतभेद है। श्वे. परम्पराकी कर्मप्रकृति और कर्मग्रन्थमें भी अनन्तानुबन्धीकी सत्ताको लेकर मतभेद है। कर्मप्रकृति और पंचसंग्रहमें सातवें गुणस्थान तक ही अनन्तानुबन्धीकी सत्ता स्वीकार की गयी है किन्तु कर्मग्रन्थमें ग्यारहवें गुणस्थान तक सत्ता स्वीकार की गयी है। कर्मप्रकृतिका मत है जो चारित्रमोहनोयके उपशमका प्रयास करना है वह अवश्य ही अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करता है। कर्मकाण्डमें दोनों मतोंको स्थान दिया गया है।

५. तीर्थंकरनामकर्मकी जघन्य स्थिति भी अन्तःकोटी-कोटी सागर बतलायी है। उसको लेकर श्वेताम्बर कर्मसाहित्यमें शंका-समाधान इस प्रकार है—

शंका—यदि तीर्थंकरनामकर्मकी जघन्यस्थिति भी अन्तःकोटीकोटी सागर है तो तीर्थंकरकी सत्तावाला जीव तिर्यचगतिमें जाये बिना नहीं रह सकता। क्योंकि उसके बिना इतनी दीर्घ स्थिति पूर्ण नहीं हो सकती। किन्तु तिर्यचगतिमें तीर्थंकरनामकी सत्ताका निषेध किया है। तथा तीर्थंकरके भवसे पूर्वके तीसरे भवमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होना बतलाया है। अन्तःकोटी-कोटी सागरकी स्थितिमें यह भी कैसे बन सकता है ?

समाधान—तीर्थकर नामकर्म की स्थिति कोटि-कोटि सागर प्रमाण है और तीर्थकरके भवसे पहलेके तीसरे भवमें उसका बन्ध होता है। इसका आशय यह है कि तीसरे भवमें उद्वर्तन-अपवर्तनके द्वारा उस स्थितिको तीन भवोंके योग्य कर लिया जाता है। शास्त्रकारोंने तीसरे भवमें जो तीर्थकर प्रकृतिके बन्धका विधान किया है वह निकाचित तीर्थकर प्रकृतिके लिए है। निकाचित प्रकृति अपना फल अवश्य देती है किन्तु अनिकाचित तीर्थकर प्रकृतिके लिए कोई नियम नहीं है वह तीसरे भवसे पहले भी बँध सकती है—विशेषणवती गा. ७९-८०।

६. आयुबन्ध तथा उसकी आबाधाके सम्बन्धमें मतभेदको दर्शाते हुए श्वे. पंचसंग्रहमें रोचक चर्चा इस प्रकार है—

देवायु और नरकायुकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर है। तिर्यंचायु और मनुष्यायुकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पत्य है। तथा चारों आयुओंकी आबाधा एक पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण है।

शंका—आयुके दो भाग क्षीत जानेपर जो आयुका बन्ध कहा है वह असम्भव होनेसे चारों गतियोंमें नहीं घटता। क्योंकि भोगभूमिया, मनुष्य और तिर्यंच कुछ अधिक पत्यका असंख्यातवाँ भाग शेष रहनेपर परभवकी आयु नहीं बाँधते, किन्तु पत्यका असंख्यातवाँ भाग शेष रहनेपर ही परभवकी आयु बाँधते हैं। तथा देव और नारक भी अपनी आयुके छह माससे अधिक शेष रहनेपर परभवकी आयु नहीं बाँधते, किन्तु छह मास आयु शेष रहनेपर ही परभवकी आयु बाँधते हैं। परन्तु उनकी आयुका त्रिभाग बहुत होता है। तिर्यंच और मनुष्योंकी आयुका त्रिभाग एक पत्य तथा देव और नारकोंकी आयुका त्रिभाग ग्यारह सागर होता है।

उत्तर—जिन तिर्यंच और मनुष्योंकी आयु एक पूर्वकोटि होती है उनकी अपेक्षासे ही एक पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण आबाधा बतलायी है। तथा यह आबाधा अनुभूयमान भव सम्बन्धी आयुमें ही जाननी चाहिए, परभव सम्बन्धी आयुमें नहीं। क्योंकि परभव सम्बन्धी आयुकी दलरचना प्रथम समयसे ही हो जाती है उसमें आबाधाकाल सम्मिलित नहीं है। अतः एक पूर्वकोटिकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंकी परभव सम्बन्धी आयुकी उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण होती है। शेष देव, नारक और भोगभूमियोंके परभवकी आयुकी आबाधा छह मास होती है। और ऐकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय जीवोंके अपनी-अपनी आयुके त्रिभाग प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा होती है। अन्य आचार्य भोगभूमियोंके परभवकी आयुकी आबाधा पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहते हैं।—गाथा २४४-२४८।

चन्द्रसूरिरचित संग्रहणीसूत्रमें इसी बात को और भी स्पष्ट करके लिखा है—कहा है—देव, नारक और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य और तिर्यंच छह मासकी आयु शेष रहनेपर परभवकी आयु बाँधते हैं। शेष निरुपक्रम आयुवाले जीव अपनी आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर परभवकी आयु बाँधते हैं। और सोपक्रम आयुवाले जीव अपनी आयुके त्रिभागमें अथवा नौवें भागमें, अथवा सत्ताईसवें भागमें परभवकी आयु बाँधते हैं। यदि इन त्रिभागोंमें भी आयुका बन्ध नहीं कर पाते तो अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें परभवकी आयु बाँधते हैं। गो. कर्मकाण्डमें आयुबन्धके सम्बन्धमें साधारण रूपसे तो यही कथन किया है। किन्तु देव, नारक और भोगभूमियोंकी छह मास प्रमाण आबाधाको लेकर उसमें मौलिक भेद है। कर्मकाण्डके मतानुसार छह मास शेष रहनेपर आयुबन्ध नहीं होता, किन्तु उसके त्रिभागमें आयुबन्ध होता है। यदि उस त्रिभागमें भी आयुबन्ध न हो तो छह मासके नौवें भागमें आयुबन्ध होता है। सारांश यह है कि जैसे कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंचोंमें अपनी-अपनी पूरी आयुके त्रिभागमें परभवकी आयुका बन्ध होता है उसी प्रकार देव, नारक और भोगभूमिजोंमें अन्तिम छह मासके त्रिभागमें आयुबन्ध होता है। दिग्म्बर परम्परामें यही मत मान्य है। केवल भोगभूमिजोंको लेकर मतभेद है। किन्हींका मत है कि उनमें नौ मास आयु शेष रहनेपर उसके

त्रिभागमें परभवकी आयुका बन्ध होता है । ( देखो कर्मकाण्ड गा. १५८ की टीका तथा गा. ६४० ) । इसके सिवाय एक मतभेद और भी है । यदि आठों त्रिभागोंमें आयुबन्ध न हो तो अनुभूयमान आयुका एक अन्तर्भूत काल शेष रहनेपर परभवकी आयु नियमसे बँध जाती है । यह सर्वमान्य मत है । किन्तु किन्हींके मतसे अनुभूयमान आयुका काल आवलोके असंख्यातवें भाग प्रमाण शेष रहनेपर परभवकी आयुका बन्ध नियमसे हो जाता है ( देखो कर्मकाण्ड गा. १५८ और उसकी टीका ) ।

### सम्पादनादिके सम्बन्धमें

यतः कर्मकाण्ड गोम्मटसारका हो दूसरा भाग है अतः इसकी भी कन्नड़ टीकाकी प्रतिलिपि आदिके सम्बन्धमें पूर्व कथन ही जानना चाहिए । संस्कृत टीकाका आधार कलकत्ता संस्करण ही रहा है । दिल्लीके जैनमन्दिरसे लाला पन्नालालजी अग्रवाल द्वारा एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी । किन्तु तीसरे प्रकरणसे उसमें जो टीका मिली उसमें भेद होनेसे उसे छोड़ देना पड़ा और प्रयत्न करनेपर भी संस्कृत टीकाकी कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मकाण्डपर संस्कृतकी अन्य भी टीकाएँ थीं । कलकत्ता संस्करण एक-दो स्थानमें टिप्पणमें सूचित किया है कि अभयचन्द्र सूरिके नामांकित टीकामें विशेष पाठ मिलता है । हमने उस पाठको कन्नड़ टीकासे मिलाया तो बिल्कुल मिल गया । इसीसे हमने वह विशेष पाठ और उसका हिन्दी अर्थ भी, जो पं. टोडरमलजीकी टीकामें नहीं है अलगसे इसी में दे दिया है । हमें ऐसा लगता है कि कन्नड़ टीका अभयचन्द्रसूरिकी संस्कृत टीकाका रूपान्तर तो नहीं है । कन्नड़ टीकाकार केशववर्णी अभयसूरि सिद्धान्त चक्रवर्तीके शिष्य थे । और उन्होंने ई. १३५९ में अपनी कन्नड़ टीका रची थी ।

कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकाओंकी प्रतियाँ प्राप्त होनेपर उनके तुलनात्मक अध्ययनसे ही प्रकृत विषय-पर प्रकाश पड़ सकता है ।

श्रीस्थाद्वादमहाविद्यालय  
भदैनरी, वाराणसी  
१-१-८०

}

—कैलाशचन्द्र शास्त्री

## विषय-सूची

|                                              |      |                                              |       |
|----------------------------------------------|------|----------------------------------------------|-------|
| १. प्रकृति समुत्कीर्तन                       | १-६० | कर्मभूमिकी स्त्रियोंके संहनन                 | २१    |
| मंगलाचरण                                     | १    | आतप और उष्ण नामकर्मका उदय किनके              | २२    |
| प्रकृति शब्दका अर्थ                          | २    | गोत्र कर्म और अन्तराय कर्मके भेद             | २२    |
| जीव और शरीरका अनादि सम्बन्ध                  | २    | ज्ञानावरण और दर्शनावरणकी प्रकृतियाँ          | २३    |
| जीवके द्वारा प्रतिसमय कर्म-नो-कर्मका ग्रहण   | ३    | वेदनीयके भेद                                 | २४    |
| समयप्रबद्धका प्रमाण                          | ३    | मोहनीयकी प्रकृतियोंका स्वरूप                 | २४-२५ |
| प्रतिसमय उदय और सत्ताका परिमाण               | ४    | आयु-कर्मकी प्रकृतियोंका स्वरूप               | २६    |
| कर्मके भेद और उनका स्वरूप                    | ४    | नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वरूप                | २७-३२ |
| कर्मके आठ भेद और उनमें घाति-अघाती भेद        | ५    | गोत्र और अन्तरायकी प्रकृतियोंका स्वरूप       | ३३    |
| आठों कर्मोंके नाम                            | ५    | नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें अभेद विवक्षासे |       |
| घाती और अघाती कर्म                           | ६    | गमित प्रकृतियाँ                              | ३३    |
| जीवके गुण, जिन्हें कर्म घातते हैं            | ६    | बन्ध प्रकृतियोंकी संख्या                     | ३४    |
| आयु-कर्मका कार्य                             | ७    | उदय प्रकृतियोंकी संख्या                      | ३५    |
| नामकर्मका कार्य                              | ७    | सत्त्व प्रकृतियोंकी संख्या                   | ३६    |
| गोत्रकर्मका कार्य                            | ७    | सर्वघाती प्रकृतियाँ                          | ३६    |
| वेदनीय कर्मका कार्य                          | ८    | देशघाती प्रकृतियाँ                           | ३६    |
| कर्मोंके नामोंके क्रममें हेतु                | ८    | प्रशस्त प्रकृतियाँ                           | ३७    |
| अन्तरायका कार्य तथा उसे अन्तमें रखनेमें हेतु | ९    | अप्रशस्त प्रकृतियाँ                          | ३८    |
| आयु नाम गोत्रके क्रममें हेतु                 | ९    | कषायोंका कार्य                               | ३९    |
| वेदनीयको मोहनीयसे प्रथम रखनेमें हेतु         | १०   | कषायोंका वासनाकाल                            | ४०    |
| आठों कर्मोंका स्वरूप दृष्टान्त द्वारा        | ११   | पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ                      | ४०    |
| कर्मोंके उत्तर भेदोंकी संख्या                | १२   | भवविपाकी और क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ         | ४१    |
| स्थानगृद्धि और निद्रानिद्राका स्वरूप         | १२   | जीवविपाकी प्रकृतियाँ                         | ४२    |
| प्रचला-प्रचला और निद्राका स्वरूप             | १३   | ओताके तीन भेद और उनका स्वरूप                 | ४३    |
| प्रचलाका स्वरूप                              | १३   | चार निक्षेपोंका लक्षण                        | ४४-४५ |
| मिथ्यात्वके तीन भेद कैसे                     | १४   | नामकर्म और स्थापनाकर्मका स्वरूप              | ४५    |
| मोहनीय तथा नाम कर्मकी प्रकृतियाँ             | १६   | द्रव्यकर्मके भेद और उनका स्वरूप              | ४६    |
| औद्यारिक आदि पाँच शरीरोंके अंग               | १७   | नोआगम द्रव्यकर्मके भेद                       | ४६    |
| आठ अंग और उपांग                              | १९   | भूत शरीरके तीन भेद                           | ४७    |
| संहननके चारक जीवोंकी स्वर्ग तथा              |      | कदलीघात मरणका स्वरूप                         | ४७    |
| नरकमें उत्पत्ति                              | १९   | ज्यावित और त्यक्तका स्वरूप                   | ४७    |



|                                            |        |                                                       |     |
|--------------------------------------------|--------|-------------------------------------------------------|-----|
| त्यक्त शरीरके तीन भेद                      | ४८     | गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके बन्धकी व्युत्पत्तिका       |     |
| भक्तप्रतिज्ञाके कालका प्रमाण               | ४८     | कथन                                                   | ६६  |
| इंगिनी और प्रायोपगमन मरणका स्वरूप          | ४९     | बन्ध व्युत्पत्तिमें दो नयसे कथन                       | ६७  |
| भाविज्ञायक शरीरका स्वरूप                   | ४९     | मिथ्यात्व गुणस्थानमें व्युत्पन्न प्रकृतियाँ           | ६९  |
| तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्मके भेद       | ५०     | सासादनमें व्युत्पन्न प्रकृतियाँ                       | ७०  |
| आगम भावकर्मका स्वरूप                       | ५१     | असंयत और देश संयतमें व्युत्पन्न प्रकृतियाँ            | ७०  |
| नोआगम भावकर्मका स्वरूप                     | ५१     | प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरणमें व्युत्पन्न प्रकृतियाँ | ७१  |
| उत्तर प्रकृतियोंमें नामादि निक्षेप         | ५१     | अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें                    | ७२  |
| मूल प्रकृतियोंके नोकर्म द्रव्यकर्म         | ५२     | उपशान्त आदि तीन गुणस्थानोंमें केवल                    |     |
| मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणके नोकर्म       | ५३     | साताका बन्ध                                           | ७३  |
| अवधि और मनःपर्यय ज्ञानावरणके नोकर्म        |        | गुणस्थानोंमें बन्ध और अबन्धका कथन                     | ७६  |
| द्रव्यकर्म                                 | ५४     | नरकगतिमें बन्धादि कथन                                 | ७८  |
| पाँचों निद्राओंके नोकर्म                   | ५४     | तिर्यंच गतिमें बन्धादि कथन                            | ८३  |
| चार दर्शनावरणोंके नोकर्म                   | ५४     | मनुष्यगतिमें बन्धादि कथन                              | ८६  |
| साता-असाता वेदनीयके नोकर्म                 | ५४     | देवगतिमें बन्धादि कथन                                 | ९०  |
| सम्भक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यक्     |        | इन्द्रियमार्गणामें कथन                                | ९७  |
| मिथ्यात्वके नोकर्म                         | ५५     | सासादन गुणस्थान किन तिर्यंचोंके नहीं होता—            | १०० |
| अनन्तानुबन्धी आदिका नोकर्म                 | ५६     | असकाय, मनोयोग और वचनयोगमें कथन                        | १०१ |
| स्त्रीवेद आदि नोकषायोंका नोकर्म            | ५६     | औदारिक मिश्रकाय योगमें कथन                            | १०२ |
| नरकायु आदिका नोकर्म                        | ५७     | वैक्रयिक और आहारक काययोगमें बन्धादि कथन               | १०४ |
| गति, जाति, शरीर नामकर्मके नोकर्म           | ५७     | वैक्रयिक मिश्रकाय योगमें                              | १०५ |
| पाँच शरीर नामकर्मोंके नोकर्म               | ५८     | कार्मणकाययोगमें                                       | १०६ |
| बन्धन आदि नामकर्मोंके नोकर्म               | ५८     | स्त्रीवेदमें                                          | १०७ |
| आनुपूर्वीका नोकर्म                         | ५८     | नपुंसकवेदमें                                          | १०८ |
| स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ स्वर आदिका नोकर्म | ५९     | पुरुषवेदमें                                           | १०९ |
| उच्च और नीच गोत्र तथा दानान्तराय आदिका     |        | कषायमार्गणामें                                        | ११० |
| नोकर्म                                     | ५९     | ज्ञानमार्गणामें                                       | ११० |
| वीर्यान्तरायका नोकर्म                      | ५९     | संयममार्गणामें                                        | ११२ |
| नोआगम भावकर्मका स्वरूप                     | ६०     | दर्शनमार्गणामें                                       | ११४ |
|                                            |        | लेख्यमार्गणामें                                       | ११४ |
| २. बन्धोदय सत्त्वाधिकार                    | ६१-५९५ | भव्यमार्गणामें                                        | ११६ |
| नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा ✓                  | ६१     | सम्यक्त्वमार्गणामें                                   | ११६ |
| स्तव, स्तुति, धर्मकथाका स्वरूप ✓           | ६१     | संज्ञीमार्गणामें                                      | ११९ |
| बन्धके भेद और उनके उत्कृष्ट आदि भेद        | ६२     | आहारमार्गणामें                                        | १२० |
| उत्कृष्ट आदिके सादि-आदि भेद                | ६२     | मूल प्रकृतियोंमें सादि-आदि भेद                        | १२१ |
| उदाहरण द्वारा उनका स्पष्टीकरण              | ६३     | सादि आदि भेदोंका लक्षण                                | १२२ |
| गुणस्थानोंमें प्रकृतिबन्धके नियम           | ६४     | उत्तर प्रकृतियोंमें सादि आदि भेद                      | १२३ |
| साथैकर प्रकृतिबन्धके विशेष नियम            | ६५     | ४७ ध्रुव प्रकृतियोंमें चारों भेद                      | १२३ |

|                                                                                                 |     |                                                            |     |
|-------------------------------------------------------------------------------------------------|-----|------------------------------------------------------------|-----|
| शेष प्रकृतियोंमें सादि और अधुव बन्ध हो क्यो ?                                                   | १२४ | उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा                                     | १८६ |
| मूल प्रकृतियोंमें स्थितिबन्ध                                                                    | १२६ | निषेकका स्वरूप                                             | १८७ |
| उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध                                                         | १२६ | निषेक रचनाका क्रम                                          | १८८ |
| उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कारण                                                                      | १३० | अनुभागबन्धका कारण                                          | १९१ |
| उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसके ?                                                                     | १३० | उत्तर प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागबन्ध किसके                  | १९१ |
| संक्लेश परिणामोंको रचना अंक संदृष्टि द्वारा                                                     | १३४ | जघन्य अनुभागबन्ध किनके                                     | १९४ |
| मूल प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध                                                               | १३६ | मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागके सादि-आदि भेद        | २०० |
| तीर्थकर और आहारकका जघन्य स्थितिबन्ध कब, किसके ?                                                 | १३७ | उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागबन्धमें सादि-आदि भेद | २०१ |
| आयुर्कर्मके भेदोंका जघन्य स्थितिबन्ध                                                            | १३७ | घातिकर्मोंमें अनुभागका स्वरूप                              | २०२ |
| एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना                                 | १३८ | उत्तर प्रकृतियोंमें-से मिथ्यात्वमें अनुभागका स्वरूप        | २०३ |
| त्रैराशिक द्वारा अन्य प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्धको लाने का विधान                 | १३९ | मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंमें अनुभागका दर्शक यन्त्र          | २०५ |
| संज्ञो, असंज्ञो चतुष्टय और एकेन्द्रियको आबाधा जघन्य स्थितिबन्धका साधक करणसूत्र                  | १४३ | देशघाति १७ प्रकृतियोंमें लता, दाह आदि रूप अनुभाग           | २०५ |
| अंक संदृष्टि द्वारा स्पष्टीकरण                                                                  | १५१ | समस्त प्रकृतियोंमें शैल आदि तीन रूप अनुभाग                 | २०६ |
| चौदह जीवसमासोंमें उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्धका विभाग                                          | १५९ | नोकषायोंमें अनुभाग                                         | २०६ |
| स्थितिबन्धके अट्टाईस विकल्प                                                                     | १६१ | अघातिकर्मोंमें गुड़, खाँट रूप अनुभाग                       | २०७ |
| उनमें-से आदिके चौबीस भेदोंकी स्थितिका आयाम लानेके लिए अन्तराल भेदोंका त्रैराशिकों द्वारा विभाजन | १६१ | अनुभागका यन्त्र                                            | २०८ |
| उनमें आबाधाकालका प्रमाण                                                                         | १६५ | प्रदेशबन्धका कथन                                           | २०९ |
| एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्ध और आबाधाके भेदोंका तथा कालका प्रमाण                               | १६५ | एकक्षेत्र-अनेकक्षेत्रका लक्षण                              | २०९ |
| दो-इन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्ध और आबाधा कालके भेदोंका तथा कालका प्रमाण                          | १६६ | योग्य और अयोग्य पुद्गल द्रव्य                              | २१० |
| त्रोन्द्रिय आदि जीवोंमें कथन                                                                    | १६८ | उनमें सादि-अनादिका प्रमाण                                  | २१० |
| उक्त सब कथन मनमें रखकर शलाका निक्षेपण संज्ञिपंचेन्द्रिय भेदोंके कथनमें विशेषता                  | १७० | उसको लानेकी विधि                                           | २१२ |
| जघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीव                                                                   | १७९ | समयप्रबद्धका प्रमाण                                        | २१७ |
| स्थितिके अजघन्य आदि भेदोंमें सादि-आदि भेद आबाधाका लक्षण                                         | १८० | समयप्रबद्धमें आठों कर्मोंका भाग                            | २१७ |
| मूल प्रकृतियोंमें आबाधा                                                                         | १८२ | वेदनीयकी अधिक भाग क्यो ?                                   | २१८ |
| अन्तः कोटी-कोटी सागरकी स्थितिकी आबाधा आयुर्कर्मकी आबाधा                                         | १८३ | अन्य कर्मोंको उनकी स्थितिके अनुसार विभाग विभागका अनुक्रम   | २१९ |
|                                                                                                 | १८४ | मूलकर्मको मिले द्रव्यका उसकी उत्तर प्रकृतियों में विभाग    | २२१ |
|                                                                                                 |     | घातिकर्मोंमें सर्वघाती-देशघाती द्रव्यका विभाग              | २२२ |
|                                                                                                 |     | सर्वघाती द्रव्य लानेके लिए प्रतिभागहारका प्रमाण            | २२५ |
|                                                                                                 |     | सर्वघाती-देशघाती द्रव्यके विभागका क्रम                     | २२९ |
|                                                                                                 |     | उत्तर प्रकृतियोंमें विभाग                                  | २३० |

|                                                    |     |                                                     |     |
|----------------------------------------------------|-----|-----------------------------------------------------|-----|
| ज्ञानावरणका विभाग                                  | २३२ | चौरासी पदोंके द्वारा अल्पबहुत्वका विधान             | ३४२ |
| दर्शनावरणका विभाग                                  | २३३ | उपपाद आदि योगस्थानोंके निरन्तर प्रवर्तनेका          |     |
| अन्तरायका विभाग                                    | २३५ | काल                                                 | ३५१ |
| मोहनोय कर्मका विभाग                                | २३६ | जीवोंकी संख्याकी यथाकार रचना                        | ३५९ |
| नोकषायरूप पिण्ड प्रकृतिके द्रव्यका विभाग           | २४१ | अंक संदृष्टि द्वारा कथन                             | १६१ |
| नोकषायोंके निरन्तर बन्धका काल                      | २४३ | यथार्थ कथन                                          | ३७० |
| अन्तराय कर्म और नामकर्मके द्रव्यका विभाग           | २४६ | योगस्थानोंमें समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण          | ३८८ |
| मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध के सादि-     |     | निरन्तर योगस्थानोंका प्रमाण                         | ३९१ |
| आदि भेद                                            | २५० | सान्तर योगस्थानोंका प्रमाण                          | ३९२ |
| उत्तर प्रकृतियोंमें उक्त भेद                       | २५१ | योगस्थानोंमें आदि और अन्तस्थान                      | ३९३ |
| उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी सामग्री                      | २५२ | चारों बन्धोंके कारण                                 | ३९४ |
| मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व   |     | योगस्थान आदिका अल्पबहुत्व                           | ३९४ |
| गुणस्थानोंमें                                      | २५३ | गुणहानि यन्त्र                                      | ४१२ |
| उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व | २५४ | त्रिकोण रचनाका अभिप्राय                             | ४१४ |
| मूल प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामी         | २५६ | उदयका निरूपण                                        | ४२७ |
| उत्तर प्रकृतियोंमें उक्त कथन                       | २५६ | गुणस्थानोंमें कुछ प्रकृतियोंके उदयका नियम           | ४२७ |
| गुणस्थानोंमें एक जीवके एक कालमें बँधनेवाली         |     | आनुपूर्वीके उदयका विशेष नियम                        | ४२८ |
| प्रकृतियोंका निदर्शक यन्त्र                        | २५९ | गुणस्थानोंमें उदय व्युच्छित्ति                      | ४२९ |
| उसका भाव                                           | २५९ | गुणस्थानोंमें मतान्तरसे उदय व्युच्छित्ति            | ४३३ |
| योगस्थानोंके भेद                                   | २६१ | प्रत्येक गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्तिकी प्रकृतियों- |     |
| उपपाद योगस्थानका स्वरूप                            | २६२ | का कथन                                              | ४३४ |
| उपपादके भेदोंका दर्शक यन्त्र                       | २६३ | केवलीके साता-असाताजन्य सुख-दुःख नहीं                | ४३८ |
| परिणाम योगस्थानका स्वरूप                           | २६४ | केवलीके परोपहृष्यों नहीं                            | ४४० |
| एकान्तानुवृद्धि योगस्थान                           | २६६ | गुणस्थानोंमें उदय और अनुदयका कथन                    | ४४२ |
| योगस्थानके अवयव                                    | २६६ | उदीरणाका कथन                                        | ४४३ |
| उन अवयवोंका स्वरूप                                 | २६७ | उदीरणा व्युच्छित्तिका कथन                           | ४४४ |
| एक योगस्थानमें सब स्पर्धक आदिका प्रमाण             | २३८ | गुणस्थानोंमें उदीरणा और अनुदीरणा प्रकृतियों-        |     |
| अंक संदृष्टि द्वारा कथन                            | २६९ | का कथन                                              | ४४७ |
| अर्थ संदृष्टि द्वारा कथन                           | २७४ | गति आदि मार्गणाओंमें प्रकृतियोंके उदय               |     |
| स्थान, गुणहानि, स्पर्धक, वर्गणा, वर्ग, अविभाग      |     | सम्बन्धी नियम                                       | ४४८ |
| प्रतिच्छेदका स्वरूप                                | ३१० | नरकगतिमें उदययोग्य प्रकृतियाँ                       | ४५१ |
| जघन्य वृद्धिका प्रमाण                              | ३१० | प्रथम नरकमें उदय व्युच्छित्ति                       | ४५२ |
| जघन्य योगस्थानका कथन                               | ३१२ | द्वितीयादि नरकोंमें उदय व्युच्छित्ति                | ४५३ |
| प्रदेशोंकी प्रधानतासे कथन                          | ३३१ | तिर्यंच गतिमें उदयव्रिक                             | ४५५ |
| जघन्य स्थानसे उत्कृष्ट पर्यन्त जघन्य स्पर्धकोंकी   |     | पंचेन्द्रिय और पर्याप्ततिर्यंचमें                   | ४५७ |
| वृद्धि होनेपर उत्तरोत्तर एक स्थान उत्पन्न          |     | योनिमती और अपर्याप्त तिर्यंचमें                     | ४५९ |
| होता है                                            | ३३३ | मनुष्यगतिमें उदययोग्य प्रकृतियाँ                    | ४६१ |
| अपूर्व स्पर्धक होनेका विधान                        | ३३४ | मनुष्यगतिमें उदय व्युच्छित्ति                       | ४६२ |

|                                 |     |                                            |     |
|---------------------------------|-----|--------------------------------------------|-----|
| पर्याप्त मनुष्यमें उदयादि त्रिक | ४६५ | कपोत लेख्यामें उदयादि                      | ५३० |
| मानुषीमें उदयादि तीन            | ४६७ | तीन शुभ लेख्यामें उदयादि                   | ५३२ |
| भोगभूमिज, मनुष्य और तिर्यचोंमें | ४७० | भग्य मार्गणामें उदयादि                     | ५३८ |
| देवगतिमें उदयादि तीन            | ४७३ | उपशम सम्यक्त्व मार्गणामें                  | ५३९ |
| अनुदिश आदिमें उदयादि            | ४७५ | वेदक सम्यक्त्व मार्गणामें                  | ५४१ |
| इन्द्रियमार्गणामें कथन          | ४७७ | क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणामें               | ५४२ |
| विकलत्रयमें कथन                 | ४७८ | संज्ञो मार्गणामें उदयादि                   | ५४५ |
| पंचेन्द्रियोंमें कथन            | ४७९ | असंज्ञीमार्गणामें उदयादि                   | ५४७ |
| कायमार्गणामें कथन               | ४८१ | आहार मार्गणामें उदयादि                     | ५४९ |
| त्रसकाय मार्गणामें कथन          | ४८५ | अनाहार मार्गणामें उदयादि                   | ५५० |
| योगमार्गणामें कथन               | ४८६ | गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंकी सत्ता           | ५५३ |
| अनुभय वचन योगमें कथन            | ४८९ | क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका क्रम        | ५५४ |
| औदारिक काययोगमें कथन            | ४९१ | अनिवृत्तिकरणमें क्षययोग्य प्रकृतियाँ       | ५५७ |
| औदारिक-मिश्रकाययोगमें कथन       | ४९३ | अयोगी गुणस्थानमें सत्त्वव्युच्छिष्टि       | ५५९ |
| वैक्रियिक काययोगमें कथन         | ४९६ | गुणस्थानोंमें सत्त्वादि तीन                | ५६१ |
| वैक्रियिक-मिश्रकाययोगमें कथन    | ४९८ | चारित्रमोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंके उपशमका |     |
| आहारक काययोगमें कथन             | ४९९ | विधान                                      | ५६३ |
| कर्मणकाययोगमें कथन              | ५०० | मार्गणाओंमें सत्त्वादि तीन                 | ५६५ |
| वेदमार्गणामें कथन               | ५०३ | नरकगतिमें सत्ता                            | ५६६ |
| पुरुष वेदमें उदयादि             | ५०५ | तिर्यचोंमें सत्तादि तीन                    | ५६९ |
| स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें       | ५०६ | मनुष्योंमें सत्तादि तीन                    | ५७० |
| क्रोध-कषायमार्गणामें            | ५१० | देवगतिमें सत्तादि तीन                      | ५७५ |
| अनन्तानुबन्धो रहित क्रोधमें     | ५१२ | इन्द्रिय और कायमार्गणामें सत्तादि तीन      | ५७७ |
| कुमति-कुश्रुत ज्ञानमें          | ५१३ | उद्वेलन प्रकृतियाँ                         | ५७९ |
| विभंगज्ञानमें उदयादि            | ५१४ | कौन जीव किस प्रकृतिकी उद्वेलना करता है     | ५७९ |
| पाँच सम्यग्ज्ञानोंमें उदयादि    | ५१५ | योगमार्गणामें सत्तादि                      | ५८१ |
| मनःपर्ययज्ञानमें उदयादि         | ५१७ | औदारिक मिश्रयोगमें सत्तादि                 | ५८३ |
| केवलज्ञानमें उदयादि             | ५१८ | कर्मणकाययोगमें सत्तादि                     | ५८४ |
| संयम मार्गणामें उदयादि          | ५१९ | वेदमार्गणा आदिमें सत्तादि                  | ५८५ |
| परिहारविशुद्धिमें उदयादि        | ५१९ | कषायमार्गणामें सत्तादि                     | ५८६ |
| यथाख्यातमें उदयादि              | ५२१ | ज्ञानमार्गणामें सत्तादि                    | ५८६ |
| देशसंयम और असंयममें             | ५२१ | संयममार्गणामें सत्तादि                     | ५८७ |
| दर्शन मार्गणामें                | ५२२ | दर्शनमार्गणामें सत्तादि                    | ५८८ |
| अक्षुदर्शनमें उदयादि            | ५२४ | लेख्यामार्गणामें सत्तादि                   | ५८८ |
| अक्षुदर्शनमें उदयादि            | ५२५ | अभग्यमें सत्ता                             | ५९१ |
| अवधिदर्शन-केवलदर्शनमें          | ५२८ | सम्यक्त्व मार्गणामें सत्ता                 | ५९२ |
| लेख्या मार्गणामें               | ५२८ | संज्ञी-मार्गणामें सत्ता                    | ५९३ |
| कुष्ण और नील लेख्यामें          | ५२८ | आहार मार्गणामें सत्ता                      | ५९३ |

|                                                |         |                                               |     |
|------------------------------------------------|---------|-----------------------------------------------|-----|
| अनाहारकमें सत्ता                               | ५९४     | उपशमश्रेणिके अपूर्वकरण आदिमें स्थान और        |     |
| ३. सत्त्वस्थानभंगाधिकार                        | ५९६-६४६ | भंग                                           | ६३४ |
| नमस्कारपूर्वक भंग सहित सत्त्वस्थानका           |         | उसमें घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम              | ६३५ |
| कथन करनेकी प्रतिज्ञा                           | ५९६     | क्षपक अपूर्वकरणमें स्थान-भंग                  | ६३६ |
| गुणस्थानोंमें स्थान और भंगके भेदोंके प्रकार    | ५९७     | क्षपक अनिवृत्तिकरणमें भंग                     | ६३७ |
| गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका सत्त्व              | ५९७     | क्षपक अनिवृत्तिकरणमें भंग                     | ६३८ |
| गुणस्थानोंमें स्थानोंकी संख्या                 | ५९९     | सूक्ष्म साम्पराय और क्षीणकषायोंमें स्थान तथा  |     |
| गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या                   | ६००     | भंग                                           | ६३९ |
| मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंकी प्रकृति संख्या | ६०१     | संयोग और अयोग केवलीमें भंग                    | ६४१ |
| घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम                     | ६०२     | उपशमश्रेणिके अनन्तानुबन्धी सहित आठ            |     |
| अठारह स्थानोंके पचास भंग                       | ६०३     | स्थानोंमें मतभेद                              | ६४२ |
| सासादन और मिश्रमें स्थान                       | ६१६     | क्षपक श्रेणिके अनिवृत्ति गुणस्थानमें कषायोंके |     |
| सासादनमें घटायी प्रकृतियाँ                     | ६१७     | क्षपणमें मतभेद                                | ६४२ |
| मिश्रमें घटायी गयी प्रकृतियाँ                  | ६१८     | क्षपक अनिवृत्तिकरणके स्थानों और भंगोंमें      |     |
| सासादन मिश्रमें भंगोंकी संख्या                 | ६१८     | मतभेद                                         | ६४३ |
| असंयतमें चालीस स्थानोंकी उपपत्ति               | ६२२     | मतान्तरसे गुणस्थानोंमें स्थानोंकी संख्या      | ६४३ |
| असंयतमें घटायी गयी प्रकृतियाँ                  | ६२४     | मतान्तरसे गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या        | ६४४ |
| असंयतमें भंगोंकी संख्या                        | ६२५     | सत्त्वस्थानके अभ्यासका फल                     | ६४५ |
| देशसंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें स्थान और भंग     | ६३१     | सिद्धान्त चक्रवर्तीकी उपाधिकी सार्थकता        | ६४६ |

आचार्यप्रवर श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्त्तिरचित

## गोम्मटसार

( कर्मकांड )

श्री केशवणविरचित टीका सहित

पणमिय शिरसा नेमि गुणरत्नविभूषणं महावीरं ।

सम्पतरयणणितयं पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥१॥

प्रणम्य शिरसा नेमि गुणरत्नविभूषणं महावीरं । सम्यक्त्वरत्ननिलयं प्रकृतिसमुत्कीर्तनं  
वक्ष्यामि ॥

वक्ष्यामि । कं । प्रकृतिसमुत्कीर्तनं प्रकृतीनां ज्ञानावरणादिमूलोत्तरभेदभिन्नानां समुत्की- ५  
र्तनमस्मिन्निति प्रकृतिसमुत्कीर्तनो ग्रन्थस्तं । आदौ किं कृत्वा । प्रणम्य । नमस्कृत्य । कं । नेमि ।  
नेमितीर्थंकरपरमदेवं । केन । शिरसा । उत्तमाङ्गेन । कथंभूतं । गुणरत्नविभूषणं । गुणा एव  
रत्नानि । तान्येव विभूषणानि यस्यासौ गुणरत्नविभूषणस्तं । पुनरपि कथंभूतं । महावीरं वि  
विशिष्टापीं लक्ष्मीं राति ददातीति वीरः । महाश्चासौ वीरश्च महावीरस्तं । भूयः किंभूतं ।  
सम्यक्त्वरत्ननिलयं । आत्मस्वरूपोपलब्धिलक्षणः सम्यग्भावः सम्यक्त्वं । शायिकसम्यक्त्वं वा । १०  
तदेव रत्नं तस्य निलय आश्रयस्तमिति ।

सम्यक्त्वरत्ननिलयानुं गुणरत्नविभूषणानुं महावीरानुमप्य नेमितीर्थंकरपरमदेवं नमस्कारमं  
माडि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिगल स्वरूपनिरूपणमं माळप ग्रन्थमं पेळदपेने बुदाचार्य्यन प्रतिज्ञे ॥  
प्रकृतिये देने दोडे पेळदपं—

वक्ष्यामि । कं ? प्रकृतिसमुत्कीर्तनं—प्रकृतीनां ज्ञानावरणादिमूलोत्तरभेदभिन्नानां समुत्कीर्तनमस्मिन्निति १५  
प्रकृतिसमुत्कीर्तनो ग्रन्थः तं । आदौ किं कृत्वा ? प्रणम्य—नमस्कृत्य । कं ? नेमि—नेमितीर्थंकरपरमदेवं । केन ?  
शिरसा—उत्तमाङ्गेन । कथंभूतं ? गुणरत्नविभूषणं—गुणा एव रत्नानि तान्येव भूषणानि यस्यासौ गुणरत्न-  
विभूषणस्तं । पुनरपि कथंभूतं ? महावीरं—विशिष्टां ईं—लक्ष्मीं राति ददातीति वीरः महाश्चासौ वीरश्च  
महावीरः तं । भूयः किंभूतं । सम्यक्त्वरत्ननिलयं आत्मस्वरूपोपलब्धिलक्षणः सम्यक्त्वं शायिकसम्यक्त्वं वा  
तदेव रत्नं तस्य निलय आश्रयः तं । एवं विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारपूर्विका प्रकृतिसमुत्कीर्तनकथनप्रतिज्ञा २०  
आचार्यस्य ज्ञातव्या ॥१॥ प्रकृतिः का ? इति चेदाह—

—गुणरूपी रत्न ही जिनके भूषण हैं, जो विशिष्ट 'ई'—लक्ष्मीको देता है वह वीर है  
किन्तु जो महान् वीर होने से महावीर है, तथा आत्मस्वरूपकी उपलब्धिरूप सम्यक्त्व,  
अथवा शायिकसम्यक्त्वरूपी रत्नके जो आश्रय हैं उन नेमिनाथ तीर्थंकर परमदेवको मस्तक-  
से नमस्कार करके, जिसमें ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे भिन्न २५  
प्रकृतियोंका कथन है, उस प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक ग्रन्थको कहूँगा । इस प्रकार विशिष्ट  
देवताको नमस्कार करके प्रकृतिसमुत्कीर्तनका कथन करनेकी प्रतिज्ञा आचार्यने की है ॥१॥

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।

कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

प्रकृतिः शीलं स्वभावः जीवांगयोः अनादिः संबंधः । कनकोपले मलमिव तयोरस्तित्वं स्वतःसिद्धं ॥

- ५ प्रकृतिये दोडं शीलमे दोडं स्वभावमे बुदत्थं । कारणांतरनिरपेक्षमप्युवं स्वभावमे बुदु । अग्निगूर्ध्वज्वलनमुं वायुविगे तिर्यग्गमनमुं नीरिग निम्नगमनमुं मे तु स्वभावो, हि स्वभाववन्तऽमपेक्षत इति । कयोः स्वभावः एदिते दोडे जीवांगयोः जीवकर्मणोः जीवस्वभावमुं कम्मस्वभावमुं मे बुदत्थमल्लि रागादिपरिणमनमात्मन स्वभावमक्कुं । रागाद्युत्पादकत्वं कम्मस्वभावमक्कुमंतादोडे इतरेतराश्रयदोषमागि बक्कुमे दोडे तद्दोषपरिहारार्थमागि अनादिः संबंधः एदु पेळत्पट्टुदु ।
- १० जीवकर्मगळ संबंधकनादित्वमं टप्पुदरिमा दोषं पोहंदवक्के दृष्टांतमं तोरिदपरु । कनकोपले मलमिव कनकोपलदोळ सुवर्णमलंगळगे संबंधमे तते अनादिः संबंधः एदिदरिदमे अमूर्तो जीवः मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यत इति चोद्यमपाकृतं भवति ।

जीवकम्मंगळस्तित्वमे तु सिद्धमे दोडे पेळदपरु । तयोरस्तित्वं जीवकम्मंगळस्तित्वं स्वतः-सिद्धमे बुदु पेळत्पट्टुदवे ते दोडे अहं प्रत्ययवेद्यत्वादिदमात्मास्तित्वमुं ओध्वं दरिद्रनोव्वं श्रीमन्तनितु

- १५ विचित्रपरिणमनदत्ताणदं कम्मस्तिस्त्वमं सिद्धमे दु ज्ञातव्यमक्कुं ।

संसारिजीवं कम्मनो कम्मंगळु तनगेमाळप प्रकारमं पेळवपरु—

प्रकृतिः शीलं स्वभाव इत्यर्थः । सोऽपि कारणान्तरनिरपेक्षता अग्निवायुजलानामूर्ध्वतिर्यग्निम्नगमनवत् । सहि स्वभाववन्तमपेक्षते इति । कयोः सः ? जीवाङ्गयोः—जीवकर्मणोः । तत्र रागादिपरिणमनमात्मनः स्वभावः रागाद्युत्पादकत्वं तु कर्मणः तदेतरेतराश्रयदोषः तत्परिहारार्थं तयोः जीवकर्मणोः संबंध अनादिरित्युक्तम् ।

२० क इव ? कनकोपले मलमिव स्वर्णपाषाणे स्वर्णपाषाणयोः संबन्धस्य अनादिरिव । अनेन अमूर्तो जीवः मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यते ? इत्यप्यपास्तं । तयोरस्तित्वं कुतः सिद्धं ? स्वतः सिद्धं । अहंप्रत्ययवेद्यत्वेन आत्मनः दरिद्रश्रीमदादिविचित्रपरिणामात् कर्मणश्च तत्सिद्धेः ॥२॥ संसारिणां कर्मनो कर्मग्रहणप्रकारमाह—

प्रकृति किसे कहते हैं ? यह कहते हैं—

- २५ जैसे अग्निका ऊर्ध्वगमन, वायुका तिर्यग्गमन और जलका नीचेको गमन स्वभाव है उसी प्रकार अन्य कारण निरपेक्ष जो होता है उसे प्रकृति या शील या स्वभाव कहते हैं । ये तीनों शब्द एकार्थक हैं । यहाँ जीव और कर्मके स्वभावसे प्रयोजन है । रागादि रूप परिणमन आत्माका स्वभाव है तथा रागादि उत्पन्न करना कर्मका स्वभाव है । किन्तु ऐसा होनेसे इतरेतराश्रय दोष आता है इसलिए उस दोषको दूर करनेके लिए जीव और कर्मके सम्बन्ध को अनादि कहा है । जैसे स्वर्णपाषाणमें स्वर्ण और पाषाणका सम्बन्ध अनादि है उसी तरह जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है । इससे यह तर्क निरस्त कर दिया कि अमूर्त जीव मूर्त कर्मसे कैसे बंधता है । अब प्रश्न होता है कि जीव और कर्मका अस्तित्व कैसे सिद्ध होता है तो उत्तर है कि स्वतःसिद्ध है । क्योंकि आत्मा तो 'मैं' इस प्रत्ययसे जाना जाता है और कोई दरिद्र और कोई श्रीमान् देखा जाता है इससे कर्मका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥२॥

संसारी जीव कर्म-नोकर्म को कैसे ग्रहण करता है, यह कहते हैं—

देहोदयेन सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्मं ।

पडिसमयं सव्वंशं तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥३॥

देहोदयेन सहितो जीवः आहरति कम्मं नोकम्मं । प्रतिसमयं सर्वांगैस्तप्तायसपिंडमिव जलं ॥

देहोदयेन कार्मणशरीरनामकर्मादयजनितयोगबोडने । सहितो जीवः सहितनप्प जीवन् ।  
आहरति आहरिसुगुं । कम्मं ज्ञानावरणाद्यष्टविधकम्ममं । मत्तं देहोदयेन औदारिकवैक्रियिकाहारक- ५  
तैजसशरीरनामकर्मादयंगळोडने । सहितो जीवः सहितनप्प जीव । आहरति आहरिसुगुं । नोकम्मं  
औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीर नोकम्ममं आव कालदोळाहरिसुगुमे दोडे प्रतिसमयं तदुदयद  
समयं प्रति समयं प्रति । सव्वंगैः सव्वात्मप्रदेशैः जगच्छ्रेणीघनप्रमितजीवप्रदेशंगळिदमाहरिसुगु-  
मदक्के दृष्टांतं तोरिदपरु । तप्तायसपिंडं अयसि भवमायसं तच्च तत्पिंडं च आयसपिंडं । तप्तं च १०  
तवायसपिंडं च तप्तायसपिंडं । काष्ढ कब्बुनद गुंडु जलमिव जलमं तन्न सव्वप्रदेशंगळिदमेतु  
पोगुंमंते जीवन् तन्न सव्वप्रदेशंगळिदं शरीरनामकर्मादयहेतुविदं कम्ममुं नोकम्ममुं प्रतिसमय-  
मुमाहरिसुगुमेबुदत्थं । जीवं प्रतिसमयमुं कम्मनोकम्मपरमाणुगळनेनितनाहरिसुगुमे बोडे पेळदपरु ।

सिद्धान्तमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।

समयप्रबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं ॥४॥

सिद्धानामनंतैकभागमभव्वसिद्धादणंतगुणमेव । समयप्रबद्धं बध्नाति योगवशतस्तु विसदृशं ॥ १५

सिद्धराशिप्रमाणं नोडलनंतैकभागमनभव्वसिद्धराशियं नोडलुमनन्तगुणमप्युवं । समय-  
प्रबद्धमने । तु मत्ते योगवशदिदं विसदृशमप्युदं कट्टुगुं । समये समये प्रबध्यत इति समयप्रबद्धः

देहाः—औदारिक—वैक्रियिकाहारक—तैजस—कार्मणनामकर्माणि । तत्र कार्मणनामोदयजनितयोगेन  
सहितो जीवः ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म आहरति । शेषोदयेन सहितः तत्तत्संशं नोकर्म आहरति । कदा ?  
इति चेत् प्रतिसमयं तदुदयकाले समयं समयं प्रति । कथं ? सर्वाङ्गसर्वात्मप्रदेशैः किंत् ? तप्तायसपिंडं २०  
जलमिव—यथा तप्तं अयोभवं पिंडं सर्वप्रदेशैर्जलमाहरति तथा शरीरनामोदयसहितजीवः प्रतिसमयं कर्म  
नोकर्म आहरतीत्यर्थः ॥३॥ कति तत्परमाणूनाहरति ? इति चेत्—

सिद्धराश्यनन्तैकभागं । अभव्वसिद्धेभ्यो अनंतगुणं तु—पुनः योगवशाद् विसदृशं समयप्रबद्धं बध्नाति ।

देहसे मतलब है औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणनामकर्म-इनमेंसे  
नामकर्मके उदयसे उत्पन्न योगसे सहित जीव ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कर्मको २५  
करता है । शेष शरीरनामकर्मके उदयसे सहित जीव उस नामवाले नोकर्मको ग्रहण  
करता है । कब ग्रहण करता है ? इसका उत्तर है कि उसका उदय रहते हुए प्रति समय ग्रहण  
करता है । तथा जैसे तथा हुआ लोहपिण्ड सब प्रदेशोंसे जलको ग्रहण करता है उसी तरह  
शरीरनामकर्मके उदयसे सहित जीव सब आत्मप्रदेशोंसे कर्म-नोकर्मको ग्रहण करता है ॥३॥

प्रति समय कितने परमाणुओंको ग्रहण करता है, यह कहते हैं—

सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्वराशिसे अनन्तगुणे परमाणुरूप समयप्रबद्धको  
बाँधता है । योगके वशसे कमती-बढ़ती परमाणुओंके समूहरूप समयप्रबद्धका बाँधता है । ३०



एदितन्वर्त्यनाममनुक्त कर्मनोकर्मसमयप्रबद्धममुक्तप्रमाणमं प्रतिसमयं कट्टुगमेदु पेळदु मत्तं प्रतिसमयमुदयमुं सत्वमुमेनिते बुदं पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळदवं ।—

जीरदि समयपबद्धं पओगदोऽणेगसमयबद्धं वा ।

गुणहाणीण दिवड्डं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥५॥

- ५ जीर्यते समयप्रबद्धः प्रयोगतोनेकसमयबद्धो वा । गुणहानीनां द्व्यर्थाः समयप्रबद्धो भवेत्सत्त्वं ॥

- प्रतिसमयमोदु काम्मणसमयप्रबद्धमुदयिसुगुं । सातिशयक्रियेयोळात्मन सम्यक्त्वादिप्रवृत्तियं प्रयोगमेदुदु कारणदि मेणेकावश निज्जराविवक्षोयिदमनेकसमयप्रबद्धं प्रतिक्षणमुदयिसुगुं । द्व्यर्था-  
गुणहानि प्रमितसमयप्रबद्धं प्रतिसमयं सत्वमक्कुमल्लि शिष्यनेदवं । प्रतिक्षणमोदु समयप्रबद्धं  
१० बंधमण्णुदोदु समयप्रबद्धं फलदानपरिणतियिनुदयिसिगळिसुगुमण्णुदरितेन्तु मत्तं सत्त्वं द्व्यर्थागुणहानि-  
मात्रसमयप्रबद्धमेदोदुत्तरमं मुन्नं जीवकांडोळु पेळद त्रिकोणरचनाभिप्रायदिदं पेळदुदु ।

कर्ममके सामान्यादिभेदप्रभेदमं गाथाद्वयेदिदं पेळदपरु ।

कम्मत्तणेण एकं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।

योगलपिंडो दव्वं तस्सत्तो भावकम्मं तु ॥६॥

- १५ कर्मत्वेनैकं द्वयं भाव इति भवति द्विविधं तु पुद्गलपिंडो द्वयं तच्छक्तिर्भावकर्मं तु ॥

समये समये प्रबध्यते इति समयप्रबद्धः ॥४॥ अथ प्रतिसमयमव बंधं प्रमाणयित्वा उदयसत्त्वे प्रमाणयति—

- प्रतिसमयमेकः कार्मणसमयप्रबद्धः जीर्यते उदेति, वा अथवा सातिशयक्रियोपेतस्य आत्मनः सम्यक्त्वादि-  
प्रवृत्तिलक्षणप्रयोगेन हेतुना एकादशनिजराविवक्षया अनेकसमयप्रबद्धो जीर्यते । द्व्यर्थागुणहानिमात्रसमय-  
प्रबद्धः प्रतिसमयं सत्त्वं भवति । ननु प्रतिक्षणमेकः समयप्रबद्धो बध्नाति एको गलति तदा सत्त्वेऽप्येक एव  
२० स्यात् कथं द्व्यर्थागुणहानिमात्रः ? तन्न प्रागुत्तरत्रापि त्रिकोणरचनायां व्यक्तप्रतिपादनात् ॥५॥ कर्मणः  
सामान्यादिभेदप्रभेदान् गाथाद्वयेनाह—

अर्थात् योगके अनुसार ही कर्मपरमाणुओंका बन्ध होता है । समय-समयमें जो बँधता है उसे समयप्रबद्ध कहते हैं ॥४॥

प्रति समय होनेवाले बन्धका प्रमाण कहकर उदय और सत्त्वका प्रमाण कहते हैं—

- २५ प्रतिसमय एक कार्मण समयप्रबद्धको निर्जरा अर्थात् उदय होता है । अथवा सातिशय  
क्रिया सहित आत्माके सम्यक्त्व आदिकी प्रवृत्तिरूप प्रयोगके कारण जो निर्जराके ग्यारह  
स्थान कहे हैं उनकी विवक्षासे एक समयमें अनेक समयप्रबद्धको निर्जरा करता है । तथा  
प्रति समय डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्धका सत्त्व होता है ।

- शंका—जब प्रति समय एक समयप्रबद्ध बँधता है और एक ही निर्जीर्ण होता है तो  
३० सत्त्वमें भी एक ही होना चाहिए, डेढ़ गुण-हानि प्रमाणकी सत्ता कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी शंका उचित नहीं है, क्योंकि पहले (जीवकाण्डमें) योगमार्गणामें  
त्रिकोण रचनाके द्वारा इसे स्पष्ट किया है और आगे भी करेंगे ॥५॥

कर्मके सामान्य आदि भेद-प्रभेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

मुन्नमुद्देशिसत्पट्ट सामान्यकर्म कर्मत्वेतिदमोदु । तु मत्ते द्रव्यकर्म भावकर्मभेदविदं  
द्विविधमवकुमलिल पुद्गलपिडं द्रव्यकर्ममे बुद्धकुमा पुद्गलपिडद अज्ञानादिजननशक्ति भावकर्म-  
मेदु पेळत्पट्टदुदु । अथवा पुद्गलपिडाज्ञानादिजननशक्तिसंजातजीवाज्ञानादियुं भावकर्ममेदु  
पेळत्पट्टदुदुते दोडे कार्ये कारणोपचारः एवो न्यायदिजीवाज्ञानादियुं तच्छक्तियेदितु पेळत्पट्ट-  
दुदुदरिवमुभयदोळं भावकर्मत्व सिद्धमादुदु ॥

५

तं पुण अट्टविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा ।

ताणं पुणं घादित्ति अघादित्ति य होति सण्णाओ ॥७॥

तत्पुनरष्टविधं वा अष्टाचत्वारिंशच्छतमसंख्यलोको वा । तेषां पृथक् घातीत्यघातीति च  
भवतः संज्ञे ॥

तत्पुनः मुपेळद सामान्यदोळु विवक्षितद्रव्यकर्ममष्टविधमवकुमथवा अष्टाचत्वारिंशच्छत- १०  
विधमुमथवा असंख्यातलोकविधमुमपुदु । तेषां पृथक् तदष्टविधमुमष्टाचत्वारिंशच्छतविधमुम-  
संख्यातलोकविधमुं पृथक्-पृथक् घातिमुमदुमघातिमुमेदु संज्ञे द्वे भवतः संज्ञेगळेरेडपुवु ।  
यथोद्देशस्तथा निर्देशः एवो न्यायविदं प्रथमोद्दिष्टाष्टविधमं तद्घात्यघातिभेदंगळं पेळत्वेडि गाथाद्वयमं  
पेळदपरु :—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं ।

१५

आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्टपयडीओ ॥८॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य चावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुष्यं नामगोत्रमन्तराय इत्यष्टौ प्रकृतयः ॥

प्रागुक्तं सामान्यकर्म कर्मत्वेन एकं । तु-पुनः द्रव्यभावभेदाद्विविधं । तत्र द्रव्यकर्म पुद्गलपिण्डी भवति ।  
पिण्डगतशक्तिः कार्ये कारणोपचारात् शक्तिजनिताज्ञानादिर्वा भावकर्म भवति ॥६॥

तत्पुनः सामान्यं कर्म अष्टविधं वा अष्टवत्वारिंशच्छतविधं वा असंख्यातलोकविधं भवति तेषां च २०  
अष्टविधादीनां पृथक्-पृथक् घात्यघातीति संज्ञे स्तः ॥७॥ यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायात् प्रथमोद्दिष्टा-  
ष्टविधं तद्घात्यघातिभेदो च गाथाद्वयेनाह—

पहले कहा सामान्य कर्म कर्मत्वरूपसे एक है । तथा द्रव्य और भावके भेदसे दो  
प्रकार है । उनमेंसे द्रव्यकर्म पुद्गलपिण्ड है । और उस पिण्डमें रहनेवाली फल देनेकी शक्ति  
भावकर्म है । अथवा कार्यमें कारणके उपचारसे उस शक्तिसे उत्पन्न हुए अज्ञानादि भी भाव- २५  
कर्म हैं ॥६॥

वह सामान्य कर्म आठ प्रकार है अथवा एक सौ अड़तालीस प्रकार है अथवा  
असंख्यात लोक प्रकार है । उन आठ प्रकार आदि रूप कर्मोंकी पृथक्-पृथक् घाती और  
अघाती संज्ञा है ॥७॥

उद्देशके अनुसार निर्देश होता है इस न्यायसे प्रथम कहे आठ भेद और उनके घाति- ३०  
अघाति भेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

ज्ञानावरणमुं दर्शनावरणमुं वेदनीयमुं मोहनीयमुमायुष्यमुं नाममं गोत्रमुमन्तरायमुमं विदु मूलप्रकृतिगळे टप्पुवु ॥

आवरणमोहविग्धं घादी जीवगुणघादणत्तादो ।

आउगणामं गोदं वेयणियं तद् अघादित्ति ॥९॥

५ आवरणमोहविघ्नं घाति जीवगुणघातनात् । आयुर्ननामगोत्रं वेदनीयं तथा अघातीति ॥

ज्ञानावरणमुं दर्शनावरणमुं मोहनीयमुमन्तरायमुमं बी नालकुं प्रकृतिगळु घातिगळपुवेके दोडे जीवगुणघातकत्वदिदं । आयुष्यमुं नाममुं गोत्रमुं वेदनीयमुमं बी नालकुं प्रकृतिगळु तथा न, ज्ञाना-  
वरणादिगळते जीवगुणघातकगळत्तदु कारणमागियघातिगळे दु पेळल्पट्टुवु ॥

जीवगुणमं पेळदपरः—

१० केवलणाणं दंसणमणंतविरियं च खयियसम्मं च ।

खयियगुणे मदि यादी खयोवसमिये य घादी दु ॥१०॥

केवलज्ञानं दर्शनमनंतवीर्यं च क्षायिकसम्यक्त्वं च । क्षायिकगुणान् मत्यादीन् क्षायोप-  
शमिकांश्च घ्नन्ति तु ॥

११ केवलज्ञानमुमं केवलदर्शनमुममनन्तवीर्यमुमं क्षायिकसम्यक्त्वमुमं च शब्ददिदं क्षायिक-  
चारित्रमुमं द्वितीयं च शब्ददिदं क्षायिकदानादिगळन्तिती क्षायिकगुणंगळनू । तु मत्तं मतिश्रुता-  
वधिमनःपर्ययमुमं बी क्षायोपशमिक गुणंगळनू । घ्नन्ति केडिसुववे विदु घातिगळपुवु ॥

अनंतरज्ञानावरणादिपाठक्रमवकुपपत्तियं पेळलवेडियायुराविकम्मंगळ काय्यमं पेळदपरः—

ज्ञानावरणं दर्शनावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमुमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतयोऽष्टौ ॥८॥

२० ज्ञानावरणं दर्शनावरणं मोहनीयं अन्तरायश्चेति चत्वारि घातिसंज्ञानि स्युः, कुतः ? जीवगुणघातकत्वात् ।  
आयुष्यं नाम गोत्रं वेदनीयं चेति चत्वारि तथा जीवगुणघातकप्रकारेण न इत्यघातिसंज्ञानि स्युः ॥९॥ तान्  
जीवगुणानाह—

केवलज्ञानं केवलदर्शनं अनन्तवीर्यं क्षायिकसम्यक्त्वं च शब्दात्क्षायिकचारित्रं द्वितीयचशब्दात् क्षायिक-  
दानादीश्च क्षायिकान् । तु—पुनः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यान् क्षायोपशमिकांश्च गुणान् घ्नन्तीति घातीनि  
॥१०॥ आयुःकर्मकार्यमाह—

२५ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ये आठ मूल  
प्रकृतियाँ हैं ॥८॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ये चार कर्म घाती कहे जाते हैं, क्योंकि  
जीवके गुणोंके घातक हैं । आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय ये चार उस प्रकारसे जीवके गुणोंके  
घातक नहीं हैं अतः अघाती कहे जाते हैं ॥९॥

३० उन जीवके गुणोंको कहते हैं—

केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और 'च' शब्दसे क्षायिक  
चारित्र तथा दूसरे 'च' शब्दसे क्षायिक दान आदि क्षायिक गुणोंको, व मति, श्रुत, अवधि  
और मनःपर्ययज्ञान नामक क्षायोपशमिक गुणोंको ये कर्म घातते हैं इससे ये घाती हैं ॥१०॥

आयुःकर्मका कार्य कहते हैं—

कम्मकयमोहवद्धित्य संसारम्मि य अणादिजुत्तम्मि ।

जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥११॥

कर्मकृतमोहवद्धितसंसारे चानादियुक्ते । जीवस्यावस्थानं करोत्यायुर्हलीव नरं ॥

ज्ञानावरणाद्यष्टविधप्रकृतिगळोळायुः कर्मोदयं हलिव्वनरं चोरनप्प नरनं स्थूलकाष्ठ  
शृङ्खलाविशेषमेतु कालं सिल्लिकसि पिडिदिप्पुदंते कर्मकृतज्ञानासंयममिथ्यात्वमेव मोहत्रयविदं ५  
वद्धितसंसारबोळनादियुक्तबोळ जीवकवस्थानमं चतुर्गतिगळोळुमाळकुं ॥

नामकर्मकार्यमं पेळवपरु :—

गदियादिजीवभेदं देहादी पोगगलाण भेदं च ।

गदियंतरपरिणमणं करेदि णामं अणेयविहं ॥१२॥

गत्याविजीवभेदं देहादिपुद्गलानां भेदं च । गत्यंतरपरिणमनं करोति नाम अनेकविधं ॥ १०

गत्याद्यनेकविधमप्य नामकर्म । जीवभेदं नारकादि जीवपर्यायमुमनौदारिकादिशरीरंगळ  
पुद्गलभेदमुमं । गतियिदं गत्यंतरपरिणमनमुमं । करोति माळकुमपुर्दारदं । जीवविपाकियुं  
पुद्गलविपाकियुं क्षेत्रविपाकियुमेदितु नामकर्म त्रिविधमवकुं । च शब्दविदं भवविपाकियुमवकुं ॥

गोत्रकर्मकार्यमं पेळवपरु :—

संताणक्रमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।

उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं ॥१३॥

संतानक्रमेणागतजीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा । उच्चं नीचं चरणं उच्चं नीचं भवेद्गोत्रं ॥

संतानक्रमदिदमागतजीवाचरणवके गोत्रमेव संज्ञेयवकुमल्लियुच्चाचरणमुच्चैर्गोत्रमवकुं ।

नीचाचरणं नीचैर्गोत्रमवकुं ॥

आयुः कर्मोदयः कर्मकृते अज्ञानासंयममिथ्यात्ववधिते अनाद्यौ संसारे चतुर्गतिषु हलिरिव स्वलिद्रवियं- २०  
त्रितत्त्वादाकाष्ठविशेष इव जीवस्यावस्थानं करोति ॥११॥ नामकर्मकार्यमाह—

गत्याद्यनेकविधं नामकर्म नारकादिजीवपर्यायभेदं औदारिकादिशरीरपुद्गलभेदं गत्यन्तरपरिणमनं  
च करोति तेन तत् जीवपुद्गलक्षेत्रविपाकि भवति । चशब्दाद्भवविपाकि च ॥१२॥ गोत्रकर्मकार्यमाह—

संतानक्रमेण आगतजीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा भवति । तत्र उच्चाचरणम् उच्चैर्गोत्रम् । नीचा-

आयुर्कर्मका उदय कर्मके द्वारा किये गये और अज्ञान, असंयम तथा मिथ्यात्वके द्वारा २५  
वृद्धिको प्राप्त हुए अनादि संसारकी चार गतियोंमें जीवको उसी प्रकार रोके रहता है जैसे  
एक विशेष प्रकारका काष्ठ अपने छिद्रमें पैर डालनेवाले व्यक्तिको रोके रहता है ॥११॥

नामकर्मका कार्य कहते हैं—

गति आदिके भेदसे अनेक प्रकारका नामकर्म जीवके नारक आदि पर्यायभेदको,  
औदारिक आदि शरीररूप पुद्गलके भेदको तथा एक गतिसे दूसरी गतिमें परिणमनको ३०  
करता है । इसीसे वह जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और 'च' शब्द से  
भवविपाकी है ॥१२॥

गोत्रकर्मका कार्य कहते हैं—

सन्तानक्रमसे आये हुए जीवके आचरणकी गोत्र संज्ञा है । उच्च आचरणको उच्च  
गोत्र और नीच आचरणको नीच गोत्र कहते हैं ॥१३॥ ३५

वेदनीयकार्यमं पेळदपरु ॥

अक्खाणं अणुभवनं वेयणियं सुहसरूपं सादं ।

दुक्खसरूपमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥१४॥

अक्षाणामनुभवनं वेदनीयं सुखस्वरूपकं सातं । दुःखस्वरूपमसातं तद्वेदयतीति वेदनीयं ॥

- ५ इन्द्रियविषयानुभवनं इन्द्रियविषयावबोधनं वेदनीयं वेदनीयमेबुदा वेदनीयं सुखस्वरूपं सातमेबुदक्कुं दुःखस्वरूपमसातमेबुदक्कुं । तद्वेदयतीति सत्सुखदुःखंगळं वेदिसुगुमरियिसुगुमेदितु वेदनीयमेब सजेयाबुदु ॥

अत्थं देक्खिय जाणदि पच्छा सदहदि सत्तभंगीहिं ।

इदि दंसणं च णाणं सम्मत्तं होति जीवगुणा ॥१५॥

- १० अत्थं दृष्ट्वा जानाति पश्चाच्छ्रद्धधाति सप्तभंगीभिः । इति दर्शनं च ज्ञानं सम्यक्त्वं भवन्ति जीवगुणाः ॥

संसारिजीवं अत्थं बाह्यात्थमं । दृष्ट्वा कंडु । जानाति अरिगुं मरिबुवं सप्तभंगीभिः सप्तभंगिगळिदं निश्चयिसि । पश्चाच्छ्रद्धधाति बळिकं नंबुगुं । इति ई प्रकारविदं । दर्शनमुं ज्ञानमुं सम्यक्त्वमुं जीवगुणंगळप्पुवु ॥

- १५ इवरावरणंगळे पाठक्रममनुपपत्तिपूर्वकं पेळदपरु :—

अब्भरहिदादु पुव्वं णाणं तत्तो हि दंसणं होदि ।

सम्मत्तमदो विरियं जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥१६॥

अभ्यहितात्पूर्वं ज्ञानं ततो हि दर्शनं भवति । सम्यक्त्वमतो वीर्यं जीवाजीवगतमिति चरमे ॥

- २० चरणं नीचैर्गोत्रम् ॥१३॥ वेदनीयकर्मकार्यमाह—

इन्द्रियाणां अनुभवनं विषयावबोधनं वेदनीयं । तच्च सुखस्वरूपं सातं दुःखस्वरूपमसातं ते सुखदुःखे वेदयति-ज्ञापयति इति वेदनीयम् ॥१४॥

संसारी जीवः अर्थं दृष्ट्वा जानाति । तमेव पुनः सप्तभंगीभिर्निश्चित्य पश्चात् श्रद्धधाति इत्यनेन प्रकारेण दर्शनं ज्ञानं सम्यक्त्वं च जीवगुणा भवन्ति ॥१५॥ तदावरणानां पाठक्रममुपपत्तिपूर्वकमाह—

- २५ वेदनीय कर्मका कार्य कहते हैं—

इन्द्रियोंके विषयको जाननेरूप अनुभवनको वेदनीय कहते हैं । वह सुखरूप साता है और दुःखरूप असाता है उसे जो अनुभव कराता है वह वेदनीय है ॥१४॥

संसारी जीव अर्थको देखकर जानता है । पुनः उसे ही सात भंगोंके द्वारा निश्चित करनेके पश्चात् श्रद्धान करता है । इस प्रकारसे दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व जीवके

- ३० गुण हैं ॥१५॥

उन गुणोंके आवरणोंके पाठका क्रम उपपत्तिपूर्वक कहते हैं—

अभ्यर्हितात्पूज्यात् पूज्यमपुद्गरिदं ज्ञानं पूर्वमवकुं । हि तथा हि अहंने लघुध्यजाद्यदत्पा-  
जच्यमेकमेदितु पूज्यपदवके पूर्वं निपतनमुंष्टपुद्गरिदं । ततः बलिकं । दर्शनं भवति दर्शनमवकुं ।  
अतः बलिकं सम्पत्त्वं सम्पत्त्वमवकुं । जीवाजीवगतमिति जीवदोळमजीवदोळमवकुंनेदितु वीर्यं  
चरमदोळपठिसत्पट्टदु ॥

घादीवि अघादिं वा णिस्सेसं घादणे असक्कादो ।

५

णामतियणिमित्तादो विग्घं पठिदं अघादि चरिमम्मि ॥१७॥

घात्यप्यघातिवन्निःशेषं घातनेऽशक्यात् । नामत्रयनिमित्ताद्विघ्नं पठितमघातिचरमे ॥

घातिकर्ममादोडमंतरायकर्ममघातिकर्मदंते निःशेषमाणि जीवगुणघातनदोळ शक्तिरा-  
हिसादिदमुं नामगोत्रवेदनीयंगळं निमित्तमागुळळुदरिवमुमघातिगळ चरमदोळ विघ्नं पठि-  
सत्पट्टदु ॥

१०

आउवलेण अवट्टिदि भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु ।

भवमस्सिय णीचुच्चं इदि गोदं णामपुव्वं तु ॥१८॥

आयुर्बलेनावस्थितिर्भवस्थेति नाम आयुः पूर्वं तु । भवमाश्रित्य नीचोच्चमिति गोत्रं  
नामपूर्वं तु ॥

आयुर्बलाधानदिदमवस्थितियक्कुमाउदवकेदोडे नामकर्मकार्यगतिलक्षणमप्य भवस्य  
भववकेदिदु कारणमाणि । तु मत्ते नाममायुष्यकर्ममं पूर्वमागुळळुदादुदु । तु मत्ते भवमनाश्रित्ये  
नीचत्वमुमुच्चत्वमुमेदिदु कारणमाणि गोत्रकर्म नामकर्ममं पूर्वमागुळळुदादुदु ।

१५

अभ्यर्हितात् पूज्यात् ज्ञानं पूर्वं पठितं हि तथाहि—“लघुध्यजाद्यदत्पाजच्य” इति सूत्रसंज्ञावात् ।  
ततो दर्शनं भवति । अतः सम्पत्त्वम् । वीर्यं तु जीवाजीवगतमिति चरमे पठितम् ॥१६॥

अंतरायकर्म घात्यपि अघातिवत् निःशेषजीवगुणघातेऽशक्यात् नामगोत्रवेदनीयनिमित्ताच्च अघातिनां  
चरमे पठितम् ॥१७॥

२०

तु-पुनः-आयुर्बलाधानेन अवस्थितिः नामाकार्यगतिलक्षणभवस्थेति हेतोः नामकर्म आयुष्कर्मपूर्वकं  
भवति । तु-पुनः भवमाश्रित्येव नीचत्वमुच्चत्वं चेति हेतोः गोत्रकर्म नामकर्मपूर्वकं ॥१८॥

पूज्य होनेसे ज्ञानको पहले कहा क्योंकि व्याकरणके सूत्रमें कहा है कि अल्प अशर-  
वालेसे जो पूज्य होता है उसका पूर्व निपात होता है । उसके पश्चात् दर्शन कहा है, उसके  
पश्चात् सम्पत्त्व कहा । और वीर्य तो जीव-अजीव दोनोंमें पाया जाता है इसलिए अन्तमें  
पढ़ा है । इस प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायका पाठकम जानना ॥१६॥

२५

अन्तराय कर्म घाती होनेपर भी अघातीके समान है क्योंकि वह जीवके समस्त गुण-  
को घातनेमें असमर्थ है । तथा नाम, गोत्र और वेदनीयके निमित्तसे अपना कार्य करता है  
इसलिए उसका पाठ अघाति कर्मोंके अन्तमें किया है ॥१७॥

नामकर्मका कार्य जो भव है उस भवकी अवस्थिति आयुर्कर्मके बलाधानसे होती है,  
आयुर्कर्मके बिना भवका ठहरना सम्भव नहीं है । अतः नामकर्मसे पहले आयुर्कर्म कहा । तथा  
भवको लेकर नीचपना-उच्चपना होता है इसलिए गोत्रकर्मसे पहले नामकर्म कहा है ॥१८॥

३०

घादिव वेयणीयं मोहस्य बलेण घाददे जीवं ।

इदि घादीणं भज्जे मोहस्सादिम्मि पठिदं तु ॥१९॥

घातिबद्देदनीयं मोहस्य बलेन घातयति जीवं । इति घातीनां मध्ये मोहस्यादौ पठितं तु ॥

घातिकर्ममेतन्ते वेदनीयकर्म मोहनीयकर्मवेनिसिद्ध रत्यरतिप्रकृत्युदयबलविवमे जीवं

५ जीवं । घातयति सुखदुःखरूपसातासातनिमित्तेन्द्रियविषयानुभवनदिदं केडुवंतु माळकुमेदितु घातिगळ मध्यदोळ मोहनीयकर्मवादियोळ पठियसत्पददुडु ॥

पाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं ।

आउगणामं गोदंतरायमिदि पठिदमिदि सिद्धं ॥२०॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य चावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायमिति पठितमिति

१० सिद्धं ॥

ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायमेवितु मुपेळ्व पाठ-  
क्रममी प्रकारविवं सिद्धमादुदी भूलप्रकृतिगळगे निरुक्तिगळपेळ्वपुमदेतंदोडे ज्ञानमावृणोतीति  
ज्ञानावरणीयं । तस्य का प्रकृतिः ज्ञानप्रच्छादनता । किंवत् देवतामुखवस्त्रवत् । दर्शनामावृणोतीति  
दर्शनावरणीयं । तस्य का प्रकृतिः दर्शनप्रच्छादनता । किंवत् राजद्वारे प्रतिनियुक्तप्रतिहारवत् ।

१५ वेदयतीति वेदनीयं । तस्य का प्रकृतिः सुखदुःखोत्पादनता । किंवत् मधुलिप्तासिधारावत् । मोहय-  
तीति मोहनीयं । तस्य का प्रकृतिः मोहोत्पादनता । किंवत् मद्यधुत्तूरमदनक्रोदववत् । भवधारणा...

घातिकर्मवत् वेदनीयं कर्म मोहनीयविशेषरत्यरत्युदयबलेनैव जीवं घातयति सुखदुःखरूपसातासातनिमि-  
तन्द्रियविषयानुभवनेन हृतीति घातिनां मध्ये मोहनीयस्य आदौ पठितम् ॥१९॥

ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयम् आयुर्नाम गोत्रम् च अन्तरायः इति प्रागुक्तपाठक्रम एवं  
२० सिद्धः । तेषां निरुक्तिरुच्यते-ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? ज्ञानप्रच्छादनता । किंवत् ?  
देवतामुखवस्त्रवत् । दर्शनामावृणोतीति दर्शनावरणीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? दर्शनप्रच्छादनता । किंवत् ?  
राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतिहारवत् । वेदयतीति वेदनीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? सुखदुःखोत्पादनता । किंवत् ?  
मधुलिप्तासिधारावत् । मोहयतीति मोहनीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? मोहोत्पादनता । किंवत् मद्यधुत्तूरमदन-

२५ घातिकर्मकी तरह वेदनीयकर्म मोहनीयके भेद रति और अरतिके उदयका बल पाकर  
ही जीवका घात करता है अर्थात् सुख-दुःखरूप साता-असातामें निमित्त इन्द्रियोंके विषयोंका  
अनुभवन कराकर घात करता है इसलिए घातिकर्मोंके मध्यमें और मोहनीयके पहले  
वेदनीय कहा है ॥१९॥

३० इस प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र,  
अन्तराय पहले कहा पाठक्रम सिद्ध होता है । उनकी निरुक्ति कहते हैं । जो ज्ञानको आवृत  
करता है, आच्छादित करता है वह ज्ञानावरणीय है । जैसे देवताके मुखपर वस्त्र  
डालनेसे वह वस्त्र देवताका विशेष ज्ञान नहीं होने देता, वैसे ही ज्ञानावरण ज्ञानको  
आच्छादित करता है । जो दर्शनको आवृत करता है वह दर्शनावरणीय है । जैसे राजद्वार-  
पर बैठा द्वारपाल राजाको नहीं देखने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण दर्शनगुणको आच्छा-  
दित करता है । जो सुख-दुःखका वेदन अर्थात् अनुभवन कराता है वह वेदनीय है । जैसे

गच्छतीत्यायुः । तस्य का प्रकृतिः भवधारणता । किंवत् शृङ्खलाकोळमे'बुदर्थं । हलिवत् । नाना मिनोतीति नाम । तस्य का प्रकृतिः नरनारकादिनानाविधकरणता । किंवत् चित्रकावरत् । उच्चनीचं मयतीति गोत्रं । तस्य का प्रकृतिः उच्चनीचत्वप्रापकता । किंवत् कुंभकारवत् । दातृपात्रयोर्न्तरमेतीत्यन्तरायः । तस्य का प्रकृतिः विघ्नकरणता । किंवत् भण्डागारिकवत् ॥  
ज्ञानावरणादिप्रकृतिगच्छने यो पेळ्द हृष्टांतमं पेळ्दपरु —

५

पडपडिहारसिमउजाहलिचिचकुलालभंडयारीणं ।

जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥२१॥

पटप्रतीहारासिमद्यहलिचित्रकुलालभण्डागारिकाणां । यथैतेषां भावास्तथापि च कर्माणि मन्तव्यानि ।

देवतामुखवस्त्रमुं राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहारनुं मधुलिप्रासिधारेयुं मद्यमुं हळियुं चित्रकनुं १०  
कुलालनुं भण्डागारिकनुमं च यथैतेषां भावाः एतिवर भावंगळु तथापि च आ प्रकारंगळिदमे  
कर्माणि मन्तव्यानि कर्मंगळु बगेयलपडुवउ ।

उत्तरप्रकृतिगळुत्पत्तिक्रममं पेळ्दपरु :—

कोद्ववत् । भवधारणाय एति गच्छतीति आयुः । तस्य का प्रकृतिः ? भवधारणता । किंवत् ? हलिवत् । नाना  
मिनोतीति नाम । तस्य का प्रकृतिः ? नरनारकादि नानाविधकरणता । किंवत् ? चित्रकवत् । उच्चनीचं १५  
गमयतीति गोत्रं । तस्य का प्रकृतिः उच्चनीचत्वप्रापकता । किंवत् ? कुंभकारवत् । दातृपात्रयोर्न्तरमेतीति  
अन्तरायः । तस्य का प्रकृतिः ? विघ्नकरणता । किंवत् ! भण्डागारिकवत् ॥२०॥ उक्तदृष्टान्तानाह—

देवतामुखवस्त्र-राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहार-मधुलिप्रासिधारा-मद्य-हलि-चित्रक-कुलाल-भण्डागारि-  
काणां एतेषां भावा यथा तथैव कर्माणि मन्तव्यानि ॥२१॥ उत्तरप्रकृत्युत्पत्तिक्रममाह—

शहद लपेटी तलवारकी धारको चाटनेसे पहले सुख और फिर दुःख होता है । वैसे ही २०  
वेदनीय कर्म सुख-दुःखमें निमित्त होता है । जो जीवको मोहित करता है वह मोहनीय है ।  
जैसे मदिरा, धतूरा या मादक कोदोंका सेवन करनेसे नशा होता है और सेवन करनेवाला  
असावधान हो जाता है वैसे ही मोहनीय आत्माको मोहित करनेमें निमित्त होता है । जो  
नवीन भव धारण करनेमें निमित्त है वह आयु है । जैसे सांकल या काठ आदिका फन्दा  
मनुष्यको नियत स्थानमें रोके रखता है वैसे ही आयुकर्म भी जीवको अमुक भवमें रोके २५  
रखनेमें निमित्त होता है । जो नाना प्रकारके कार्य करता है वह नामकर्म है । जैसे चित्रकार  
अनेक प्रकारके चित्र बनाता है वैसे ही नामकर्म जीवको नर नारक आदि रूप करता है ।  
जो उच्च-नीच कहानेमें निमित्त है वह गोत्रकर्म है । जैसे कुम्हार मिट्टीके छोटे-बड़े बरतन  
बनानेमें निमित्त है वैसे ही गोत्र जीवको उच्च-नीच बनानेमें निमित्त है । जो दाता और  
पात्रके मध्यमें आकर विघ्न डालता है वह अन्तराय है । जैसे भण्डारी दान देनेमें विघ्न ३०  
करता है उसी प्रकार अन्तरायकर्म दान आदिमें विघ्न करता है ॥२०॥

इस प्रकार देवताके मुखपर पड़ा वस्त्र, राजद्वारपर खड़ा द्वारपाल, शहद लपेटी  
तलवार, मदिरा, हलि, चित्रकार, कुम्हार और भण्डारीका जैसा स्वभाव होता है वैसे ही  
स्वभाव इन कर्मोंका भी जानना ॥२१॥



पंच णव दोष्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।

तेउत्तरं सयं वा दुगपणगं उत्तरा होंति ॥२२॥

पंच नव द्व्यष्टाविंशति चतुस्त्रिनवति त्र्युत्तरशतं वा द्विपंचोत्तरा भवन्ति ॥

ज्ञानावरणाविमल्लगे यथासंख्यमाणुत्तरप्रकृतिगळु पंच नव द्व्यष्टाविंशति चतुस्त्रिनवति

- ५ त्र्युत्तरशतं वा द्विपंचभेदगळु भवन्ति अप्पुवु । अवे ते दोड—ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्न्नामगोत्रमन्तरायमेदिवु मूलप्रकृतिगळुक्कुमल्लि ज्ञानावरणीयं पंचविधमक्कुमाभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणीयमुं केवलज्ञानावरणीयमुमेदिवु । दर्शनावरणीयं नवविधमक्कुं स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयमुमेदिवु ।

१०

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य ।

णिदाणिदुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घाडिदुं सक्को ॥२३॥

स्त्यानगृद्ध्युदयेनोत्थापिते स्वपिति कम्मं करोति जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन च न दृष्टिमुद्घाटितुं शक्तः ॥

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकम्मोदयदिदमेति येन्विसिदोडं स्वपिति निद्रेगेदुं । कम्मं करोति

- १५ निद्रेयोळ्केलसमं माळकुं । जल्पति च मानुमनाडुं । निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकम्मोदयदिदमेति नेच्चरिसिदोडं दृष्टिगळं तेगेयलु शक्तनल्लं ।

- ज्ञानावरणादीनां यथासंख्यमुत्तरभेदा पंच नव द्वौ अष्टाविंशतिः चत्वारः त्रिनवतिः त्र्युत्तरशतं वा द्वौ पञ्च भवन्ति । तद्यथा ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्न्नामगोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतयः । तत्र ज्ञानावरणीयं पंचविधं—आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणीयं केवलज्ञानावरणीयं चेति । दर्शनावरणीयं नवविधं स्त्यानगृद्धि-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-निद्रा-प्रचला चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं चेति ॥२२॥

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयोदयेनोत्थापितेऽपि स्वपिति । निद्रायां कर्म करोति । जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन बहुधा सावधानीक्रियमाणोऽपि दृष्टिमुद्घाटयितुं न शक्नोति ॥२३॥

- २५ ज्ञानावरण आदिके उत्तर भेद क्रमानुसार पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, तिरानवे अथवा एक सौ तीन, दो और पाँच होते हैं । उनका विवरण इस प्रकार है—ज्ञानावरणीयके पाँच भेद हैं—मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय । दर्शनावरणीयके नौ भेद हैं—स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ॥२२॥

- ३० स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयके उदयसे उठानेपर भी सोता है । सोते हुए कर्म करता है, बोलता है । निद्रानिद्राके उदयसे सावधान करनेपर भी दृष्टि उघाड़नेमें समर्थ नहीं होता ॥२३॥

पयलापयलुदयेण य वह्दि लाला चलन्ति अंगाइं ।

णिद्दुदये गच्छन्तो ठाइ पुणो बइसइ पडेइ ॥२४॥

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्मोदयेन च वहति लाला चलन्त्यंगानि । निद्रोदये गच्छन् तिष्ठति पुनरुपविशति पतति ॥

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्मोदयदिदमुं । वहति लाला लोळि वारिदं सुरिगुं । चलन्त्यंगानि अययवंगेत्तुगुं । निद्रादर्शनावरणीयकर्मोदयदोळु । गच्छन् नडेयुत्तं । तिष्ठति निदिवकुं । पुनरुपविशति मत्ते कुळिळक्कुं । पतति ओरगुं । ९

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि ।

ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मंदं ॥२५॥

प्रचलोदयेन च जीवः ईषदुम्मील्य स्वपिति सुप्तोपि ईषदोषज्जानाति मुहुर्महुः स्वपिति मंदं ॥ १०

प्रचलादर्शनावरणीयकर्मोदयदिदं जीवः जीवं ईषदुम्मील्य ओष्पच्चिकण्ठेरदु स्वपिति निद्रोदयेगुं । सुप्तोपि निद्रो गेयत्पट्टनागियुं ईषदोषज्जानाति इति नितितनेत्तरुगुं । मुहुर्महुः मरळे मरळे । मंदं गाढमागि । स्वपिति निद्रोदयेगुं ।

वेदनीयं द्विविधमक्कं । सातवेदनीयमुमसातवेदनीयमुमेदितु । मल्लि रतिमोहनीयकर्मोदयबलदिदं जीवक्के सुखकारणेंद्रियविषयानुभवनं माडिसुगुं सातवेदनीयं । जीवक्के दुःखकारणेंद्रियविषयानुभवनं माडिसुगुमरतिमोहनीयकर्मोदयबलदिदमसातवेदनीयं ॥ १५

मोहनीयं द्विविधमक्कं । दर्शनमोहनीयमुमेदु चारित्रमोहनीयमेदितल्लि दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षेयिदं मिथ्यात्वमेकविधमेयक्कुमुदयमुमं सत्त्वमुमं कुरुत्तु मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेदित्तु त्रिविधमक्कुमवक्कुपत्तियं पेळदपरु । २०

प्रचलाप्रचलोदयेन मुखात् लाला वहन्ति । अङ्गानि चलन्ति । निद्रोदयेन गच्छन् तिष्ठति । स्थितः पुनरुपविशति । पतति च ॥२४॥

प्रचलोदयेन जीवः ईषदुम्मील्य स्वपिति । सुप्तोऽपि ईषदोषज्जानाति । मुहुर्महुर्मन्दं स्वपिति । वेदनीयं द्विविधं—सातवेदनीयमसातवेदनीयं चेति । तत्र रतिमोहनीयोदयबलेन जीवस्य सुखकारणेंद्रियविषयानुभवनं कारयति तत्सातवेदनीयं । दुःखकारणेंद्रियविषयानुभवनं कारयति अरति मोहनीयोदयबलेन तदसातवेदनीयं । मोहनीयं द्विविधं दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति । तत्र दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षया मिथ्यात्वमेकविधं भवति उदयं सत्त्वं प्रतीत्य मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति त्रिविधं ॥२५॥ तस्योपपत्तिमाह— २५

प्रचलाप्रचलाके उदयसे मुखसे लार वहती है, अंग चलते हैं । निद्राके उदयसे चलता हुआ ठहरता है, पुनः बैठता है और पड़कर सो जाता है ॥२४॥

प्रचलाके उदयसे जीव कुछ-कुछ आँख खोले सोता है । सोता हुआ भी कुछ-कुछ जानता है । बार-बार मन्द सोता है । वेदनीयके दो भेद हैं—सातवेदनीय और असातवेदनीय । रतिमोहनीयके उदयके बलसे जीवके सुखके कारण इन्द्रियविषयका अनुभवन जो कराता है वह सातवेदनीय है । और अरतिमोहनीयके उदयके बलसे जो दुःखके कारण इन्द्रियविषयका अनुभवन कराता है वह असातवेदनीय है । मोहनीयके दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय । उनमें-से दर्शनमोहनीयका बन्धकी विवक्षामें एक भेद ३५

जंतेण कोद्वं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण ।

मिच्छं दव्वं तु तिहा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥२६॥

यंत्रेण कोद्ववत् प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रेण । मिथ्यात्वद्रव्यं तु त्रिधा असंख्यातगुण-  
हीनद्रव्यक्रमात् ॥

- ५ यंत्रेण कोद्ववत् हारविकन कल्लिदं हारवकेष धान्यमेतु बीसिदोडे हारवकुमक्कियं  
तुच्चुगल्लुमेदि तु त्रिप्रकारमप्पुदंते । तु मत्ते । प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रादिदं मिथ्यात्वद्रव्यं  
मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिस्वरूपदिदमसंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमविदं । त्रिधा स्यात्  
त्रिःप्रकारमप्पुदंते दोडे—दर्शनमोहनीयं बंधविवर्क्षीयं मिथ्यात्वमेकप्रकारमेयक्कुमप्पुदंतिदमायु-  
वर्जितज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं सत्वमक्कुं । स ० १२-।  
१० इदनेळुं कम्मंगळो पसुगेयं साडिदोडे मोहनीयक्के त्रैराशिकसिद्धिमिति तु द्रव्यमक्कु स ० १२  
७।

मिदरोळु देशघातिसर्वघातिविभागनिमित्तमनन्त भागहारविदं भागिसिदोडे बहुभागं देशघाति  
गळगक्कुमेकभागं सर्वघातिसंबंधिद्रव्यमिति तक्कु स ० १२- मी द्रव्यमं मिथ्यात्वमुं षोडश-  
७। ख

कषायंगळुं सर्वघातिगळपुहरिदं पदिनेळक्कं पसलोडमोदु मिथ्यात्वकम्मंसंबंधिद्रव्यमिति तक्कु  
स ० १२- मिदं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालमंतर्मुहूर्तंसदर प्रथमसमयं मोदलोडु चरमसमय-  
७। ख १७

- १५ यंत्रेण धरट्टेन कोद्वो दलितो यथा तुषतंडुलकणिकारूपेण त्रिधा भवति तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्व-  
भावयंत्रेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिस्वरूपेण असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण त्रिधा भवति । तद्यथा—  
आयुर्वजितसप्तकर्मद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं स ० १२-तत्सप्तभिर्भक्तं मोहनीयस्य  
स्यात् स ० १२- । तत्रानन्तबहुभागो देशघातिनः इत्येकभागः सर्वघातिनः स ० १२-तच्चे मिथ्यात्व-  
७  
षोडशकषायेभ्यो दातुं सप्तदशभिर्भक्तं मिथ्यात्वस्यैतावत् स ० १२- । इदं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालांतर्मुहूर्तस्य  
७ ख १७

- २० मिथ्यात्व है । किन्तु उदय और सत्त्वकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व  
प्रकृति तीन भेद हैं ॥२५॥

ये तीन भेद कैसे होते हैं इसकी उपपत्ति कहते हैं—

- जैसे चाकीसे दलनेपर कोदोंके भूसी, चावल और कनरूपसे तीन भेद होते हैं उसी  
प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप भावयन्त्रसे एक मिथ्यात्वप्रकृतिका द्रव्य ( परमाणु समूह )  
२५ क्रमसे असंख्यातगुण हीन द्रव्यरूपसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप  
तीनमें विभाजित हो जाता है । उसका विवरण इस प्रकार है—आयुको छोड़ सातकर्मोंका  
द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । उसमें सातसे भाग देनेपर  
मोहनीयका द्रव्य होता है । उसमें अनन्तसे भाग देनेपर बहुभाग देशघाती द्रव्य है और एक  
भाग सर्वघाती द्रव्य है । उस सर्वघातीद्रव्यको मिथ्यात्व और सोलह कषायोंमें देनेके लिए  
३० सतरहसे भाग देनेपर मिथ्यात्वका द्रव्य होता है । प्रथमोपशम सम्यक्त्वके काल अन्तर्मुहूर्तके

पर्यंतं प्रतिसमयमुं गुणसंक्रमभागहारविदमपकर्षिसिक्तोऽु असंख्यातगुणहीनक्रमविदं मिथ्यात्व  
सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिरूपमागि मूर्धं पुंजंगळं माळुकुमंतु माडुतिरलुमा प्रथमोपशम-  
सम्यक्त्वकालचरमसमयदोळ मिथ्यात्वद्रव्यमुं मिश्रप्रकृतिद्रव्यमुं सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमुंमितिपुंवु :-

| ^ मि |                   | ^ मि        |             | ^ सं |  |
|------|-------------------|-------------|-------------|------|--|
| ०    | स a १२- गु        | स a १२-a    | स a १२- १   |      |  |
| ०    | ब्र ७ ख १७ a गु a | ७। ख १७। गु | ७। ख १७। गु |      |  |
| २१   | ३                 | २ ९ ना      | ३           |      |  |
| ००   | शक्ति। ध्वं ना    | ५ ख         | ५ ९ ना      |      |  |
| ००   |                   |             | ख ख         |      |  |

मिथ्यात्वमेतु मिथ्यात्वभाणि माडल्पदुदुवेवोडे—अतिच्छापनावलिमात्रस्थिति ह्यासमाणि माडल्प-  
दुदुवेववत्थं । ई विधानमं मनबोळिरिसियसंख्यातगुणहीनद्रव्यकर्मदिदं मिथ्यात्वद्रव्यं त्रिप्रकार-  
मकुर्मंदाचार्य्यनिव पेळल्पदुदुबु । चारित्रमोहनोयं द्विविधमक्कं । कषायवेदनीयं नोकषायवेद-

प्रथमसमयात्प्रभृति चरमसमयपर्यंतं प्रतिसमयं गुणसंक्रमभागाहारेण अपकृष्यापकृष्य असंख्यातगुणहीनक्रमेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण त्रिपञ्जीकरोति तथा सति तच्चरसमयेऽप्येवं तिष्ठति—

|    | मि<br>^     | मि<br>^     | सं<br>^     |
|----|-------------|-------------|-------------|
| ०  | १-०         |             |             |
| ०  | स अ १२-गु   | स अ १२-अ    | स अ १२-। १  |
| ०  | १-          | १-          |             |
| ०  | ७ ख १७ अ गु | अ ख १७ गु अ | १-          |
| ०  | १-          |             | ७ ख १७ गु अ |
| ०  | अ           | ३           |             |
| २१ | ३           | व ९ ना      | व ९ ना      |
| ०  | व ९ ना      | ख           | ख ख         |
| ०  | शक्ति       | शक्ति       | शक्ति       |
| ०  |             |             |             |
| ०  |             |             |             |
| ०  |             |             |             |

मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वकरणं तु अतिस्थापनाबलिमात्रं पूर्वस्थितावूनितमित्यर्थः । एतद्विधानं मनसि कृत्वा असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण मिथ्यात्वद्रव्यं त्रिधा स्यात् इति आचार्येणोक्तम् ।

प्रथमसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय गुणसंक्रम भागहारके द्वारा उस मिथ्यात्वके द्रव्यको अपकर्षण कर-करके मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूपसे तीन पुंज करता है। उसमें मिथ्यात्वका जितना द्रव्य होता है उससे असंख्यातगुणा हीन सम्यक्-मिथ्यात्वका और उससे भी असंख्यातगुणा हीन सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य होता है। ऐसा होनेपर अन्तिम समयमें भी ऐसा ही रहते हैं। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जो द्रव्य-मिथ्यात्वरूप ही था उसका मिथ्यात्व करना कैसा ? इसका समाधान यह है कि मिथ्यात्वकी

नोयसुमेदितवरोळ् कषायवेदनीयं षोडशविधमक्कं । क्षपण्यं कुरुत्तु अनंतानुबन्धि क्रोधमानमाया-  
लोभमप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं । क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं  
लोभसंज्वलनमेदितुंप्रक्रमद्रव्यं कुरुत्तु प्रक्रमद्रव्यमेदुदु विभंजनद्रव्यमेदुदत्यमबं कुरुत्तु अनंतानु-  
बन्धिलोभमायाक्रोधमानं । संज्वलनलोभमायाक्रोधमानं । प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं । अप्रत्या-  
५ ख्यानलोभमायाक्रोधमानमेदितु ॥ नोकषायवेदनीयं नवविधमक्कं :—पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदं रत्यरति-  
हास्यशोकभयजुगुप्सायेदितु ॥

आयुष्यं चतुर्विधमक्कं । नरकायुष्यं तिर्यग्मनुष्यदेवायुष्यमेदितु । नामकर्म द्वाचत्वारिं-  
शद्विधमक्कं । पिण्डापिण्डभेददिदं । गति जाति शरीर बन्धन संघातसंस्थान अंगोपांग संहनन वर्णं  
गन्ध रस स्पर्श आनुपूर्व्यअगुरुलघुक उपघात परघात उच्छ्वास आतप उद्योत विहायोगति त्रस  
१० स्थावर बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त प्रत्येक साधारणशरीर स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुभग  
दुर्भग सुस्वर दुस्वर आदेय अनादेय यशस्कीर्ति अयशस्कीर्ति निर्माण तीर्थंकरनाममेदितिल

चारित्रमोहनीयं द्विविधं—कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं चेति । तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधं  
क्षपणां प्रतीत्य अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभं, अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं, प्रत्याख्यानक्रोधमानमाया-  
लोभं, क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति । प्रक्रमद्रव्यं विभंजनद्रव्यं प्रतीत्य  
१५ अनन्तानुबन्धिलोभमायाक्रोधमानं संज्वलनलोभमायाक्रोधमानं प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं अप्रत्याख्यान-  
लोभमायाक्रोधमानं चेति । नोकषायवेदनीयं नवविधं पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदं रत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्सायेदितु ।  
आयुष्यं चतुर्विधं नरकायुष्यं तिर्यग्मनुष्यदेवायुष्यं चेति । नामकर्म द्वाचत्वारिंशद्विधं पिण्डापिण्डप्रकृतिभेदेन  
गतिजातिशरीरबन्धनसंघातसंस्थानाङ्गोपाङ्गसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शानुपूर्व्यागुरुलघुक उपघातपरघातोच्छ्वासातपो-  
द्योतविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तप्रत्येकसाधारणशरीरस्थिरास्थिर-शुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वर-  
२० दुःस्वरादेयानादेयशोष्यशस्कीर्तिनिर्माणतीर्थंकरनामेति ।

जो पूर्ण स्थिति थी उसमें-से अति स्थापनावली प्रमाण कम कर दिया । यह विधान मनमें  
रखकर आचार्यने असंख्यातगुणाहीन क्रमसे मिथ्यात्व द्रव्य तीन रूप किया ऐसा कहा है ।

चारित्रमोहनीयके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय । उनमें-से  
कषायवेदनीयके सोलह भेद हैं । जिस क्रमसे उनका क्षय होता है उस क्रमके अनुसार  
२५ वे भेद इस प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध  
मान माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन  
मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन । प्रदेशबन्धके अन्तर्गत होनेवाले विभाजनके क्रमानुसार  
ले तो अनन्तानुबन्धी लोभ माया क्रोध मान, संज्वलन लोभ माया क्रोध मान, प्रत्याख्यान  
लोभ माया क्रोध मान, अप्रत्याख्यान लोभ माया क्रोध मान, यह क्रम है । इसी क्रमसे  
३० इनमें विभाग दिया जाता है । नोकषाय वेदनीयके नौ भेद हैं—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसक-  
वेद, रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा । आयुर्कर्मके चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यचायु,  
मनुष्यायु, देवायु । नामकर्म पिण्ड प्रकृति और अपिण्ड प्रकृतिके भेदसे ब्यालीस भेदवाला  
है—गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श,  
३५ स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ,  
सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर-

गतिनामकर्म चतुर्विधमवकुं । नारकतिर्यङ्गतिनामकर्ममेदुं मनुष्यदेवगतिनामकर्ममेदितुं । जातिनामकर्म पञ्चविधमकुमेकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियजातिनामकर्ममेदुं पञ्चेन्द्रिय-जातिनामकर्ममेदितु ।

शरीरनामकर्म पञ्चविधमवकुं । औदारिक वैक्रियिक आहार तैजस काम्मण शरीरनाम कर्ममेदितु ।

औदारिकादिपञ्चशरीरगळिवक्के द्विसंयोगदिभंगगळपदिनयदण्णुवे बुदं पेळदपरु :—

तेजाकम्मेहि तिण तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं ।

कयसंजोगे चदु चदु चदु दुग एक्कं च पयडीओ ॥२७॥

तैजसकाम्मणाभ्यां त्रये तैजसं काम्मणेन काम्मणेन काम्मणं । कृतसंयोगे चतुः चतुश्चतु-द्वर्चका वा प्रकृतयः ॥

तैजसकाम्मणगळेरडोडने । त्रये औदारिक वैक्रियिक आहारकमेव त्रयदोळु । कृत-संयोगे संयोगं माडल्पडुत्तिरलु । चतुश्चतुश्चतुः प्रकृतयो भवन्ति नाल्कुं नाल्कुं नाल्कुं प्रकृति-गळण्णुवु । तैजसं काम्मणदोडने संयोगं माडल्पडुत्तिरलु द्विप्रकृतिगळण्णुवु । काम्मणदोडने काम्मणं संयोगं माडल्पडुत्तिरलेकप्रकृतिवक्कुमितु पञ्चदशप्रकृतिगळणे सदृष्टिरचने यिदु :—

तत्र गतिनाम चतुर्विधं—नारकतिर्यङ्गतिनाम मनुष्यदेवगतिनाम चेति । जातिनाम पञ्चविधं—एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति । शरीरनाम पञ्चविधं—औदारिकवैक्रियिकाहारक-तैजसकाम्मणशरीरनामेति ॥२६॥ एषां पञ्चशरीराणां भङ्गानाह—

औदारिकवैक्रियिकाहारकत्रये तैजसकाम्मणाभ्यां संयोगे कृते चतस्रश्चतस्रः प्रकृतयः । तद्यथा—औदारिकौदारिक—औदारिकतैजस—औदारिककाम्मण—औदारिकतैजसकाम्मणाः । एवं वैक्रियिके आहारकेऽपि ज्ञातव्याः । पुनः तैजसकाम्मणेन संयोगे कृते तदा तैजसतैजसतैजसकाम्मणेति द्वे प्रकृती । पुनः काम्मणं काम्मणेन तदा काम्मणकाम्मणेत्येका । एवं पञ्चदश भवन्ति ।

नाम । गतिनामके चार भेद हैं—नारकगतिनाम, तिर्यङ्गगतिनाम, मनुष्यगतिनाम, देवगति-नाम । जातिनामके पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय जातिनाम, द्वीन्द्रिय जातिनाम, त्रीन्द्रिय जाति-नाम, चतुरिन्द्रिय जातिनाम और पञ्चेन्द्रिय जाति नाम । शरीरनामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीरनाम, वैक्रियिक शरीरनाम, आहारक शरीरनाम, तैजस शरीरनाम और काम्मण शरीरनाम ॥२६॥

इन पाँच शरीरोंके भंग कहते हैं—

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीनोंमें तैजस और काम्मणका संयोग करनेपर चार, चार, चार प्रकृतियाँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं—औदारिकऔदारिक, औदारिक-तैजस, औदारिककाम्मण, औदारिकतैजसकाम्मण । इसी प्रकार वैक्रियिक और आहारकमें भी जानना चाहिए । पुनः तैजसका काम्मणसे संयोग करनेपर तैजसतैजस, तैजसकाम्मण दो प्रकृति होती हैं । पुनः काम्मणका काम्मणसे संयोग होनेपर एक प्रकृति होती है । इस प्रकार

|    |       |       |         |            |
|----|-------|-------|---------|------------|
| औ  | औ औ   | औ तै  | औ का ३  | औ तै का ४  |
| वै | वै वै | वै तै | वै का १ | वै तै का ४ |
| आ  | आ आ   | आ तै  | आ १ का  | आ तै का ४  |
| तै | तै तै | तै का | २       |            |
| का | का का |       | १       |            |

इन्ती द्विसंयोगादिजनितपंचदशभंगगळोळ पुनरुक्तगळप्य औदारिकौदारिक वैक्रियिक-  
वैक्रियिक आहारकाहारक तैजसतैजस कार्मर्णकार्मर्णनोव द्विसंयोगभंगपंचकर्म बिट्ठु शेषदश-  
भंगगळं त्रिनवतिनामकर्मगळोळ कूडुत्तं विरलु व्युत्तरशतं वा येहु पेळद नामकर्मव्युत्तरप्रकृति-  
गळप्पुवु ।

५ शरीरबन्धननामकर्म पंचविधमक्कु मौदारिक वैक्रियिक आहारक तैजसकार्मर्ण शरीर  
बन्धननामकर्ममेदितु ।

शरीरसंघातनामकर्म पंचविधमक्कु मौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मर्णशरीरसंघात  
नामकर्ममेदितु ।

शरीरसंस्थाननामकर्म षड्विधमक्कु । समचतुरस्रसंस्थाननामकर्ममेदुदु न्यग्रोधपरि-

१० मण्डल स्वाति कुब्ज वामन हुंडशरीर संस्थाननामकर्ममेदितु ।

|    |       |       |       |          |   |
|----|-------|-------|-------|----------|---|
| औ  | औ औ   | औ तै  | औ का  | औ तै का  | ४ |
| वै | वै वै | वै तै | वै का | वै तै का | ४ |
| आ  | आ आ   | आ तै  | आ का  | आ तै का  | ४ |
| तै | तै तै | तै का | २     |          |   |
| का | का का | का    | १     |          |   |

एतासु औदारिकौदारिकादयः कार्मर्णकार्मर्णान्ताः सदृशद्विसंयोगः पञ्च पुनरुक्ता इति त्यक्त्वा  
शेषदशसु त्रिनवत्यां निक्षिप्तासु व्युत्तरं शतं नामकर्मोत्तरप्रकृतयो भवन्ति ।

शरीरबन्धननाम पञ्चविधं—औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मर्णशरीरबन्धननामेति । शरीरसंघातनाम  
पञ्चविधं—औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मर्णशरीरसंघातनामेति । शरीरसंस्थानं नाम षड्विधं—समचतुरस्र-

१५ संस्थान नाम न्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्जवामनहुंडशरीरसंस्थाननाम चेति । शरीराङ्गापाङ्गनाम त्रिविधं—  
औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गनामेति ॥२७॥

पन्द्रह भेद होते हैं । इनमें औदारिकऔदारिक आदि कार्मर्णकार्मर्णपर्यन्त समान दो संयोगी  
पाँच भेद पुनरुक्त हैं इनको छोड़कर शेष दस भेद तिरानवेमें जोड़नेपर नामकर्मकी उत्तर-  
प्रकृतियाँ १०३ ( एक सौ तीन ) होती हैं । शरीरबन्धननामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीर-  
२० बन्धननाम, वैक्रियिक शरीरबन्धननाम, आहारक शरीरबन्धननाम, तैजस शरीर बन्धन-  
नाम, कार्मर्ण शरीरबन्धननाम । शरीर संघात नामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीर  
संघात नाम, वैक्रियिक शरीर संघात नाम, आहारक शरीरसंघातनाम, तैजस शरीर संघात  
नाम, कार्मर्ण शरीर संघात नाम । शरीर संस्थान नामके छह भेद हैं—समचतुरस्रसंस्थान-  
नाम, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नाम, स्वातिसंस्थान नाम, कुब्जसंस्थान नाम, वामन-

शरीरांगोपांगनामकर्ममंत्रिविधमक्कुमोदारिकवैक्रियिकाहारशरीरांगोपांगनामकर्ममेदितु ॥

णलया बाहू य तहा णियं वपुट्टी उरो य सीसो य ।

अट्टेव दु अंगाई देहे सेसा उवंगाई ॥२८॥

नलकौ बाहू च तथा नितंबपुष्टे उरश्च शीर्षं च । अष्टैव त्वंगानि देहे शेषाण्युपांगानि ।

एरडुं कालगळुमेरडुं कैगळुमो'डु नितंबमुमो'दपरभागमुमो'दुरस्सु मो'डु शीर्षमुमे'बिबे'दंग- ५  
ळपुवु । उळिदवेलेलं देहदोळुपांगंगळपुवु । संहनननामकर्मं षड्विधमक्कुं । वज्रवृषभनाराच-  
शरीरसंहनननामकर्ममे'दुं वज्रनाराच नाराचा'द्वनाराच कीलितासंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननाम-  
कर्ममुमे'दितु ॥

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति ।

तत्तो दु जुगलजुगले खीलियणारायणद्वोत्ति ॥२९॥

सृपाटिकया च गम्यते आदितश्चतुर्षु कल्पयुगळपर्यंतं । ततो द्वि युगळयुगळे कीलितनारा-  
चना'द्व पर्यंतं ॥

सृपाटिकासंहननदिदं सौधर्मकल्पयुगलं मोदल्लो'डु लांतवयुगलपर्यंतं नाल्लु युगलंग-  
ळोळपुट्टुल्लपडुगुं । ततो द्वियुगळयुगळे मेले शुक्रमहाशुकशतारसहस्रारमे'वी द्वियुगळदोळं आनत-  
प्राणत आरण अच्युतमे'वी द्वियुगळदोळं क्रमदिदं कीलिता'द्वनाराचसंहननंगळिदं पुट्टुल्लपडुगुं ॥ १५

णवगेवेज्जाणुदिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा ।

तिदुगेगे संघडणे णारायणमादिगे कमसो ॥३०॥

नवगैवेयकानुदिशानुत्तरवासिषु यांति ते नियमात् । त्रिद्विकैके संहनने नाराचनादिके  
क्रमशः ॥

नलकौ पादौ तथा बाहू हस्तौ नितम्बः परभागः उरः शीर्षं चेत्यष्टैवाङ्गानि । शेषाणि देहे २०  
उपाङ्गानि भवन्ति । संहनननाम षड्विधं वज्रवृषभनाराचशरीरसंहनननाम वज्रनाराचनाराचार्धनाराचकी-  
लितासंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननाम चेति ॥२८॥

सृपाटिकासंहननेन सौधर्मद्वयाल्लान्तवद्वयपर्यंतं चतुर्षु युगळषु उत्पद्यते । तत उपरि युगमद्वये युग्मद्वये  
क्रमेण कीलितार्धनाराचसंहननाभ्यामुत्पद्यते ॥२९॥

संस्थान नाम, हुण्ड शरीर संस्थान नाम । शरीरांगोपांग नामके तीन भेद हैं—औदारिक- २५  
शरीरांगोपांग, वैक्रियिक शरीरांगोपांग नाम, आहारकशरीरांगोपांग नाम ॥२७॥

शरीरमें दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, उर, सिर ये आठ अंग हैं । शेष उपांग होते  
हैं । संहनन नामके छह भेद हैं—वज्रवृषभनाराचशरीर संहनन नाम, वज्रनाराचशरीर-  
संहनननाम, नाराचशरीरसंहनननाम, अर्धनाराचशरीरसंहनननाम, कीलितशरीरसंहनन नाम,  
असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नाम ॥२८॥

सृपाटिकासंहननसे जीव मरकर सौधर्मयुगलसे लान्तवयुगल पर्यन्त चार युगलोंमें ३०  
उत्पन्न होता है । उससे ऊपर दो युगलों शतारयुगलपर्यन्त कीलितसंहननसे मरकर उत्पन्न  
होता है, उसके ऊपर दो युगलोंमें आरणअच्युतपर्यन्त अर्धनाराचसंहननसे मरकर उत्पन्न  
होता है ॥२९॥



नवग्रैवेयकमुं नवानुदिशमुं पंचानुत्तरमुम बी विमानवासिगळोळु क्रमदिधं यांति पुटदुवर ।  
ते अवर्गळु । अवर्गळु देवरां दोडे नाराचनादिके त्रिद्विकैकसंहनने नाराचवज्रनाराचवज्रवृषभ-  
नाराचमेव त्रिसंहननदवर्गळु । वज्रनाराचवज्रवृषभनाराचसंहननद्वितयदवर्गळु वज्रवृषभनाराच-  
संहननमोदनुळळवर्गळु क्रमदिधं पुटदुवर ॥

५ सण्णी छस्संघडणो वज्जदि मेघं तदो परं चापि ।

सेवट्टादीरहिदो पणपणचदुरेगसंघडणो ॥३१॥

संज्ञी षट्संहननो व्रजति मेघां ततः परं चापि । सृपाटिकादिरहितः पंचपंचचतुरेकसंहननः ॥

संज्ञीजीवं षट्संहननयुतनु मेघां व्रजति मेघेयं तृतीयपृथ्वियं पुगुगुं । तृतीयपृथ्वीपर्यंतं  
पुटदुगुमंबुदत्थं । ततः परं चापि अल्लिद सुंदेयुमा संज्ञीजीवं सृपाटिकासंहननादिरहितं कीलित-  
१० संहननपर्यंतमादेकुं संहननंगळिदमरिष्टे पर्यंतमादकुं पृथ्विगळोळुपुटदुगुं । अर्द्धनाराचपर्यंतमाद-  
नाल्कुं संहननंगळनुळळ संज्ञीजीवं मघविपर्यंतमादाकुं पृथ्विगळोळुपुटदुगुं । वज्रवृषभनाराच-  
संहननयुतं संज्ञीजीवं माघविपर्यंतमादेकुं पृथ्विगळोळुपुटदुगुं ।

|     |   |        |
|-----|---|--------|
| ५   | १ | घ । ६  |
| ९   | २ | च । ६  |
| ९   | ३ | मे । ६ |
| ११  | ४ | अं । ५ |
| ११  | ४ | अ । ५  |
| ११० | ५ | म । ४  |
| ११० | ५ | मा । १ |
| ०११ | ६ |        |
| ०११ | ६ |        |
| ०११ | ६ |        |
| १११ | ६ |        |

नाराचादिना संहननत्रयेण वज्रनाराचादिना द्वयेन वज्रवृषभनाराचैकेन चोपलक्षिताः ते जीवाः क्रमशः  
नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानवासिषु उत्पद्यन्ते ॥३०॥

१५ संज्ञी जीवः षट्संहननः मेघां व्रजति—तृतीयपृथ्वीपर्यन्तमुत्पद्यते इत्यर्थः । ततः परं चापि सृपाटिकादि-  
रहितः कीलितान्तपञ्चसंहननः अरिष्टान्तपञ्चपृथ्वीषु उत्पद्यते । अर्धनाराचान्तचतुःसंहननः मघव्यन्तषट्पृथ्वीषु  
उत्पद्यते । वज्रवृषभनाराचसंहननः माघव्यन्तसप्तपृथ्वीषु उत्पद्यते ॥३१॥

२० नाराच आदि तीन संहननोंसे मरे जीव नौग्रैवेयकपर्यन्त उत्पन्न होते हैं । वज्र-  
नाराच आदि दो संहननोंसे मरे जीव नौ अनुदिशोंपर्यन्त उत्पन्न होते हैं । तथा वज्रवृषभ-  
नाराचसे मरे जीव पाँच अनुत्तर विमानवासी देवपर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥३०॥

२५ छह संहननसे युक्त संज्ञी जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो मेघा नामक तीसरी  
पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है । सृपाटिका रहित कीलित पर्यन्त संहननवाला जीव मरकर  
अरिष्टा नामक पाँचवीं पृथ्वीपर्यन्त उत्पन्न होता है । अर्धनाराचपर्यन्त चार संहननवाला  
जीव मघवी नामक छठी पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है । एक वज्रवृषभनाराच संहननका  
धारी जीव माघवी नामकी सातवीं पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है ॥३१॥

अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं ।

आदिमतिगसंघडणं णत्थित्ति जिणेहि णिदिट्ठं ॥३२॥

अन्त्यत्रयसंहननस्योदयः पुनः कर्मभूमिमहिलानां । आद्यत्रयसंहननस्योदयो नास्तीति जिनेर्निर्दिष्टं ॥

कर्मभूमिसंजातमहिलाजनगच्छे अर्द्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननमेव संहननत्रित- ५  
योदयमल्लदुल्लिख्यसंहननत्रितयोदयमिल्लो दु जिनस्वामिगच्छिं पेल्लपट्टदु ॥

वर्णनामकम्मं पंचविधमक्कुं कृष्ण नीलरुधिरपीतशुक्लवर्णनामकम्ममेदितु । गन्धनामकम्मं  
द्विविधमक्कुं सुगन्धदुर्गन्धनामकम्ममेदितु ।

रसनामकम्मं पंचविधमक्कुं तिक्तकटुकषायांमधुरनामकम्ममेदितु ॥ स्पर्शनामकम्मं ष-  
ट्ठविधमक्कुं कर्कशं गुरु मृदु लघु रूक्षस्निग्धशीतोष्णस्पर्शनामकम्ममेदितु । आनुपूर्वीनामकम्मं १०  
चतुर्विधमक्कुं नरकतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्विनामकम्ममेदितु मनुष्यदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्विनाम-  
कम्ममुमेदितु ॥

अगुरुकलघुक उपघातपरघात उच्छ्वास आतप उद्योतनामकम्ममेदुं । विहायोगतिनाम-  
कम्मं द्विविधमक्कुं प्रशस्तविहायोगतिनामकम्ममेदुं अप्रशस्तविहायोगतिनामकम्ममेदितु । त्रस-  
बादरपर्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर शुभमुभय सुस्वरआदेययशस्कीर्त्ति निर्माण तीर्थंकर नामकम्म- १५  
मेदुं । स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त साधारणशरीर अस्थिर अशुभ दुर्भगदुःस्वर अनादेय अयशस्कीर्त्ति-

कर्मभूमिस्त्रीणां अर्धनाराचाद्यन्त्यत्रिसंहननोदय एव नाद्यसंहननत्रयोऽस्तीति जिनेर्निर्दिष्टम् ।

वर्णनाम पञ्चविधं—कृष्णनीलरुधिरपीतशुक्लवर्णनामेति । गन्धनाम द्विविधं सुगन्धदुर्गन्धनामेति । रस-  
नाम पञ्चविधं—तिक्तकटुकषायाम्लमधुरनामेति । स्पर्शनामाष्टविधं कर्कशमृदुकगुरुलघुरूक्षस्निग्धशीतोष्णस्पर्श-  
नामेति । आनुपूर्वीनाम चतुर्विधं नरकतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम मनुष्यदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनामेति च । २०  
अगुरुकलघुकोपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योतनामेति । विहायोगतिनाम द्विविधं प्रशस्तविहायोगतिनाम अप्रशस्त-  
विहायोगतिनाम चेति । त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभमुभयसुस्वरादेययशःकीर्त्तिनिर्माणतीर्थंकरनामेति ।  
स्थावरसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणशरीरस्थिरशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्त्तिनामेति नामकर्मोत्तरप्रकृतयस्त्रिनवति-

कर्मभूमिकी स्त्रियोंके अर्धनाराच आदि अन्तिम तीन संहननोंका उदय होता है,  
आदिके तीन संहनन नहीं होते, ऐसा जिनदेवने कहा है । वर्णनाम पाँच प्रकार है—कृष्ण, २५  
नील, लाल, पीत और शुक्ल वर्णनाम । गन्धनाम दो प्रकार है—सुगन्ध और दुर्गन्धनाम ।  
रसनाम पाँच प्रकार है—तीता, कटुक, कषाय, खट्टा और मधुरनाम । स्पर्शनाम आठ प्रकार  
है—कर्कश, कोमल, गुरु, लघु, रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्णनाम । आनुपूर्वीनाम चार प्रकार  
है—नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी-  
नाम और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम । अगुरुलघुकनाम, उपघातनाम, परघातनाम, ३०  
उच्छ्वासनाम, आतपनाम, उद्योतनाम । विहायोगतिनाम दो प्रकार है—प्रशस्तविहायोगति-  
नाम, अप्रशस्तविहायोगतिनाम । त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिर-  
नाम, शुभनाम, सुभगनाम, सुस्वरनाम, आदेयनाम, यशस्कीर्त्तिनाम, निर्माणनाम, तीर्थंकर-  
नाम । स्थावरनाम, सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम, साधारणशरीर नाम, अस्थिरनाम, अशुभनाम,  
दुर्भगनाम, दुःस्वरनाम, अनादेयनाम, अयशःकीर्त्तिनाम । इस प्रकार नामकर्मकी उत्तर ३५

नामकर्ममेदितु नामकर्ममुत्तरप्रकृतिगच्छ तो भक्तपूरं नूर मूरं मेणपुवु ॥

मूलुणहपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा ।

आइच्चे तेरिच्चे उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥३३॥

मूलोष्णप्रभोऽग्निः आतपो भवत्युष्णसहितप्रभः । आदित्ये तिरश्चि उष्णोऽनप्रभः खलूद्योतः ॥

- ५ मूलदोऽलुष्णप्रभेयमुच्छ्रदग्निवक्कुं । उष्णसहितप्रभेयमुच्छ्र दातपमवकुपुपुभादित्यविव-  
दोच्छ्रदुद बादरपर्याप्तपृथ्वीकायतिव्यंचरोयेयकुं । उष्णरहितप्रभेयमुच्छ्रदुद्योतवक्कुं  
स्फुटमागि ॥

- गोत्रकर्म द्विविधमवकुं उच्चनीचगोत्रकर्ममेदितु । अंतरायकर्म पंचविधमवकुं । दान लाभ  
भोगोपभोगवीर्यांतरायकर्ममेदितु आत्मप्रदेशस्थितकर्मभावयोग्यगच्छप कर्मणवर्गणेत्ये अदि-  
१० भागद्विदुपश्लेषं बंधमेदुपेच्छल्पदुदु । भाजनविशेषदोच्छ्रप्रक्षिप्त विविधरसबीजपुष्पफलंगले  
मदिराभावदिदं परिणाममेतत्कुमंते कार्मणपुद्गलंगलेयुं योगकषायनिमित्तादिदं कर्मभावदिदं  
परिणाममरिप्लवडुगुं । ओदे आत्मपरिणामदिदं कैकोच्छ्रुतिर्द पुद्गलंगच्छ्र ज्ञानावरणाद्यनेकभेद-  
गच्छ्रियल्पदुदुवैतेगच्छ्र सकृदुपयुक्तान्नमोदककेये रसरुधिरादिपरिणाममेतंते ।

यिन्मुत्तरप्रकृतिगच्छे निरुक्ति पेच्छल्पदुगुमदेतं दोडे :—

- १५ स्थमुत्तरशतं वा भवन्ति ॥३२॥

- मूले उष्णप्रभः अग्निः, उष्णसहितप्रभः आतपः स च आदित्यबिम्बोत्पन्नबादरपर्याप्तपृथ्वीकायतिरश्चि  
भवति । उष्णरहितप्रभः उद्योतः स्फुटम् । गोत्रकर्म द्विविधं उच्चनीचगोत्रमेदात् । अन्तरायकर्म पञ्चविधं—  
दानलाभभोगोपभोगवीर्यांतरायमेदात् । आत्मप्रदेशस्थितानां कर्मभावयोग्यानां कर्मणवर्गणानां  
अविभागेन उपश्लेषः बन्धः । यथा भाजनविशेषप्रक्षिप्तविविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावः स्यात् तथा  
२० कार्मणपुद्गलानां योगकषायनिमित्तेन कर्मभावो जातव्यः । एकेनैव आत्मपरिणामेन स्वीक्रियमाणपुद्गलाः  
ज्ञानावरणाद्यनेकभेदाः स्युः सकृदुपयुक्तस्यान्नस्य एकस्यैव रसरुधिरादिपरिणामवत् । इदानीमुत्तरप्रकृतीनां  
निरुक्तिरुच्यते—

प्रकृतियाँ तिरानबे अथवा एक सौ तीन होती हैं ॥३२॥

- जो मूलमें उष्ण हो वह अग्नि है और जिसकी प्रभा उष्ण हो वह आतप है । आतप  
२५ नाम कर्मका उद्य सूर्यके बिम्बमें उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक तिर्यचजीवमें होता है ।  
जिसकी प्रभा भी उष्ण न हो वह उद्योत है । गोत्रकर्म दो प्रकार है—उच्चगोत्र, नीचगोत्र ।  
अन्तरायकर्म पाँच प्रकार है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और  
वीर्यान्तराय । आत्माके प्रदेशोंमें स्थित कर्मरूप होनेके योग्य कर्मणवर्गणाओंका भेदरहित  
सम्बन्ध बन्ध है । जैसे विशेष पात्रमें डाले गये विविध रस, बीज, पुष्प, फलोंका मदिरारूप  
३० परिणाम होता है उसी तरह योग और कषायके निमित्तसे कार्मणपुद्गलोंका कर्मरूप परिणाम  
ज्ञानना । एक ही आत्मपरिणामसे प्रदूषण किये गये पुद्गल ज्ञानावरण आदि अनेक भेदरूप  
हो जाते हैं जैसे एक बारमें खाये गये एक ही अन्नका रस रुधिर आदि रूपसे परिणाम होता  
है । अब उत्तरप्रकृतियोंकी निरुक्ति कहते हैं—

मतिज्ञानमावृणोत्याव्रीयतेऽनेनेति मतिज्ञानावरणं । श्रुतज्ञानमावृणोत्याव्रीयतेऽनेनेति श्रुतज्ञानावरणं । अवधिज्ञानमावृणोत्याव्रीयतेऽनेनेति अवधिज्ञानावरणं । मनःपर्ययज्ञानमावृणोत्याव्रीयतेऽनेनेति मनःपर्ययज्ञानावरणं । केवलज्ञानमावृणोत्याव्रीयतेऽनेनेति केवलज्ञानावरणमिति यिल्लि चोदिसल्प-  
दुदु ॥ अभव्यंगे मनःपर्ययज्ञानशक्तियुं केवलज्ञानशक्तियुमुं मेणिल्लमो एसलानुमुंत्पोडे  
तज्जीवक्कभव्यत्वाभावमक्कुमेतलानुमिल्लमक्कुम्पोडे यिल्लि आवरणद्वयकल्पनेव्यर्थमेदितु । ५  
इदक्कुत्तरं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडादेशवचनमप्पुदरिनिल्लि दोषमिल्लेकेंदोडे द्रव्याथदेशान्मनःपर्यय-  
केवलज्ञानशक्तिसंभवमप्पुदरिवं । पर्यायाथदेशवर्त्तिणं तच्छक्त्यभावमक्कुमेतलानुमितु भव्या-  
भव्यविकल्पसंभविसिद्धौडे उभयदोळं तच्छक्तिसद्भावमाणि लक्कुमदुकारणनाणि शक्तिभावा-  
भावापेक्षेयिदं भव्याभव्यविकल्पं पेळल्पडु । मत्तेंतु पेळल्पडुगुमेंदोडे बहिव्यक्तिसद्भावासद्भावा-  
पेक्षेयिदं सम्यग्दर्शनविषयिक्त यावंगे संभविसुगुमा जीवं भव्यनक्कुमावंगे सत्ते तत्सम्यक्त्वविषय- १०  
क्तियामदा जीवनभव्यनेंदु पेळल्पडुगुं । सुवण्णाधिपाषाणगळंते आवृणोत्याव्रीयतेऽनेत्यावरणं ।  
चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणमवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणमिति ।

स्वप्ने यथा वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः । स्त्यायतेरनेकार्थत्वात् स्वप्नात्थं इह गृह्यते । गृह्येरपि वीमिगृह्यते स्त्याने स्वप्ने गृह्यते वीर्यते यदुपपादात् रौद्रं च बहु च कर्मकरणं

मतिज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति मतिज्ञानावरणं । श्रुतज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति श्रुतज्ञानावरणं । अवधिज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति अवधिज्ञानावरणं । मनःपर्ययज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति मनःपर्ययज्ञानावरणं । केवलज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति केवलज्ञानावरणं । ननु अभव्यस्य मनःपर्ययकेवल-  
ज्ञानशक्तिरस्ति न वा यद्यस्ति तदा तस्याभव्यत्वं न स्यात् । यदि नास्ति तदा तत्रावरणद्वयकल्पनाव्यर्थमिति ?  
तत्र । द्रव्याथदेशेन तच्छक्तिसद्भावात् पर्यायाथदेशेन व्यक्त्यसंभवात्तदुक्तदोषानवकाशात् । अन्धपाषाणे  
स्वर्णवत् । १५

आवृणोति आव्रियतेऽनेनेति आवरणं चक्षुर्दर्शनावरणं अचक्षुर्दर्शनावरणं अवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणं चेति । स्वप्ने यथा वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः । स्त्यायतेरनेकार्थत्वात् स्वप्नोऽर्थं इह गृह्यते ।

जो मतिज्ञानका आवरण करता है या जिससे मतिज्ञान आवृत किया जाता है वह मतिज्ञानावरण है । जो श्रुतज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा श्रुतज्ञान आवृत होता है वह श्रुतज्ञानावरण है । जो अवधिज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा २५  
अवधिज्ञान आवृत होता है वह अवधिज्ञानावरण है । जो मनःपर्ययज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा मनःपर्ययज्ञान आवृत होता है वह मनःपर्ययज्ञानावरण है । जो केवलज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा केवलज्ञान आवृत किया जाता है वह केवलज्ञानावरण है ।

शंका—अभव्यके मनःपर्यय और केवलज्ञान शक्ति है या नहीं ? यदि है तो वह अभव्य नहीं हो सकता । यदि नहीं है तो उसके दो आवरण मानना व्यर्थ है ? ३०

समाधान—द्रव्याधिक-नयसे अभव्यमें दोनों ज्ञानशक्तियाँ विद्यमान हैं । किन्तु पर्यायाधिक नयसे उन शक्तियोंकी व्यक्ति असम्भव होनेसे उक्त दोषोंको स्थान नहीं है । जैसे अन्धपाषाणमें द्रव्यदृष्टिसे स्वर्णशक्ति है किन्तु वह व्यक्त नहीं हो सकती । जो आवरण करता है या जिसके द्वारा आवृत किया जाता है वह आवरण है अतः चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षु-  
दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण रूपसे चार दर्शनोंके चार दर्शनावरण ३५

सा स्त्यानगृद्धि । इह स्त्यानगृद्ध्यादिभिर्दृशंनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसंबध्यतयित्तिस्त्यानगृद्धि-  
 दृशंनावरणमिति । यदुदयान्तिद्रायाः उपर्युपरि वृत्तिस्तन्निद्रादर्शंनावरणं । यदुदयाद्या क्रिया  
 आत्मानं पुनः पुनः प्रचलयति तत्प्रचलाप्रचलादर्शंनावरणं । शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि  
 नेत्रगात्रविक्रियासूचिका सैव पुनःपुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचलेत्यर्थः । यदुदयान्तिद्रादखेदक्लमव्यपनो-  
 दात्थं स्वापस्तन्निद्रादर्शंनावरणं । यदुदयाद्या क्रिया आत्मानं प्रचलयति तत्प्रचलादर्शंना-  
 वरणमिति ॥

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानसमुखप्राप्तिस्तत्तात् । तद्वेदयति वेद्यत इति सातवेदनीयं  
 यदुदयफलं दुःखमनेकविधं तदसात् । तद्वेदयति वेद्यत इत्यसातवेदनीयमिति ॥ दर्शनमोहनीयं  
 चारित्रमोहनीयं कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयमिति मोहनीयं चतुर्विधं । तत्र दर्शनमोहनीयं  
 १० सम्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वमिति त्रिविधं । तद्वन्धं प्रत्येकविधं सत् उदयसत्कर्मपेक्षया  
 त्रिविधमवतिष्ठते । यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपरान्मुखस्तत्त्वात्थंश्रद्धाननिरुत्सुखो हिताहितविचा-

गृद्धेरपि दीप्तिर्गृह्यते । स्त्याने-स्वप्ने गृह्यते दीप्यते यदुदयादार्तं रौद्रं च बहु च कर्मकरणं सा स्त्यानगृद्धिः ।  
 इह स्त्यानगृद्ध्यादिभिर्दृशंनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसंबध्यते इति स्त्यानगृद्धिदर्शंनावरणमिति । यदुदयान्ति-  
 द्राया उपर्युपरि वृत्तिः तन्निद्रानिद्रादर्शंनावरणं । यदुदयात् या क्रिया आत्मानं पुनः पुनः प्रचलयति तत्प्रचला  
 १५ प्रचलादर्शंनावरणं । शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका [ सैव पुनः पुनरावर्तमाना  
 प्रचलाप्रचलेत्यर्थः ] । यदुदयात् मदखेदक्लमव्यपनोदात्थं स्वापः तन्निद्रादर्शंनावरणं । यदुदयात् या क्रिया  
 आत्मानं प्रचलयति तत्प्रचलादर्शंनावरणमिति ।

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानसमुखप्राप्तिः तत्तात् ; तद्वेदयति वेद्यते इति सातवेदनीयं । यदुदयफलं  
 दुःखमनेकविधं तदसात् तद्वेदयति वेद्यते इत्यसातवेदनीयमिति ।  
 २० दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं इति मोहनीयं चतुर्विधं । तत्र दर्शनमोह-  
 नीयं सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिथ्यात्वमिति त्रिविधम् । तद्वन्धं प्रति एकविधं सत् तदेव मिथ्यात्वं सत्कर्मा-

हैं । सोतेमें जिसके द्वारा शक्ति विशेष प्रकट हो वह स्त्यानगृद्धि है । 'स्त्यायति'के अनेक अर्थ  
 होनेसे यहाँ शयन अर्थ लिया है । और गृद्धिका अर्थ दीप्ति लिया है । अतः 'स्त्यान' यानी  
 शयनमें जिसके उदयसे आत्मा दीप्त होती है, आर्तरीद्वरूप बहु कर्म करती है वह स्त्यानगृद्धि  
 २५ है यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके साथ दर्शंनावरणका समान अधिकरण रूपसे सम्बन्ध किया  
 जाता है कि स्त्यानगृद्धि ही दर्शंनावरण है । जिसके उदयसे निद्रापर निद्रा आती है वह निद्रा-  
 निद्रादर्शंनावरण है । जिसके उदयसे जो क्रिया आत्माको पुनः-पुनः प्रचलित करती है वह  
 प्रचलाप्रचलादर्शंनावरण है । यह शोक, मेहनत, नशा आदिसे होती है, बैठे हुए भी मनुष्यके  
 नेत्र और गात्रमें विकारकी सूचक है । इसकी पुनः पुनः आवृत्ति होना प्रचलाप्रचला है । जिसके  
 ३० उदयसे मद, खेद, थकान दूर करनेके लिए सोया जाता है वह निद्रादर्शंनावरण है । जिसके  
 उदयसे जो क्रिया आत्माको प्रचलित करती है वह प्रचलादर्शंनावरण है । जिसके उदयसे  
 देवादि गतियोंमें शारीरिक और मानसिक सुखकी प्राप्ति हो वह सात्ता है उसका जो वेदन  
 कराता है या जिसके द्वारा उसका वेदन हो वह सातवेदनीय है । जिसके उदयका फल अनेक  
 प्रकारका दुख है वह असात्ता है उसका जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा उसका वेदन हो  
 ३५ वह असातवेदनीय है । मोहनीयके चार भेद हैं—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, कषाय-  
 वेदनीय, नोकषायवेदनीय । दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्-

रासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वं । तदेव मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदासिन्धेनाऽवस्थितमात्मानं श्रद्धाधानं न निरुणद्धि तद्वेदयमानः सन् पुरुषः सम्यग्दृष्टिरभिधीयते । तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्ववत्सामिषच्छुद्धस्वरसं स्वशक्तियुतं तदुभयमित्याख्यायते सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत् । यस्योदयादात्मनोऽशुद्धशुद्धमदकोद्ववौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामबहुभयात्मको भवति परिणाम इति ॥ ९

चारित्रमोहनीयं द्विविधं चरति चर्यते अनेन चरणमात्रं वा चारित्रं । तन्मोहयति मुह्यतेऽनेनेति चारित्रमोहनीयं । तद्विविधं कषायवेदनीय-नोकषायवेदनीयभेदात् । कषन्ति हिंसन्तीति कषायाः । ईषत्कषायाः नोकषायाः इति । तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधं । कुतोऽनन्तानुबन्धादिविकल्पात् । तद्यथा कषायाः क्रोधमानमायालोभाः । तेषां चतस्रोऽवस्थाः अनन्तानुबन्धिनः अप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति ॥ १०

तत्रानन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यात्वमनन्तं । तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमाया-

पेक्षया त्रिविधमवतिष्ठते । यस्योदयात् सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखः तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारा-समर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम् । तदेव मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धरसं यदा औदासीन्येनावस्थितमात्मानं श्रद्धानं न निरुणद्धि तद्वेदयमानः सन् पुरुषः सम्यग्दृष्टिरभिधीयते । तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्ववत्समिषच्छुद्धरसं स्वशक्तियुतं तदुभयमित्याख्यायते-सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत् । यस्योदयात् आत्मनः अशुद्धशुद्धमदकोद्ववौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामबहुभयात्मको भवति । १५

चारित्रमोहनीयं द्विविधं चरति चर्यतेऽनेनेति चरणमात्रं वा चारित्रं तन्मोहयति मुह्यतेऽनेनेति चारित्रमोहनीयम् । तद्विविधं कषायवेदनीय-नोकषायवेदनीयभेदात् । कषन्ति हिंसन्ति कषायाः । ईषत्कषाया नोकषाया इति । तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधम् । कुतः ? अनन्तानुबन्धादिविकल्पात् । तद्यथा—कषायाः क्रोधमानमायालोभाः, तेषां चतस्रोऽवस्थाः अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति । तत्र अनन्तसंसार-

मिथ्यात्व । यह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकार होनेपर भी उदय और सत्ताकी अपेक्षा तीन प्रकार है । जिसके उदयसे सर्वज्ञकथित मार्गसे विमुख, तत्त्वार्थश्रद्धानके प्रति उत्सुकता-रहित, तथा हित-अहितके विचारमें असमर्थ मिथ्यादृष्टि होता है वह मिथ्यात्व है । वही मिथ्यात्व जब शुभ परिणामके द्वारा उसका रस रोक दिया जाता है और उदासीनतासे अवस्थित हो आत्माके श्रद्धानको नहीं रोकता तो वह सम्यक्त्व कहलाता है । उसका वेदन करनेवाला मनुष्य वेदकसम्यग्दृष्टि कहलाता है । जैसे धोनेसे कोदोंकी मदशक्ति कुछ क्षीण और कुछ अक्षीण होती है उसी तरह मिथ्यात्वकी कुछ शक्ति शुद्ध हो और कुछ बनी रहे तब उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं । उसके उदयसे आत्माके कुछ शुद्ध कुछ अशुद्ध कोदोंके भातके खानेपर होनेवाले मिश्रपरिणामकी तरह उभयरूप परिणाम होते हैं । जो आचरण करता है या जिसके द्वारा आचरण किया जाता है या आचरण मात्र चारित्र है । उसे जो मोहित करता है या जिसके द्वारा वह मोहित किया जाता है वह चारित्रमोहनीय है । उसके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय । जो कषति अर्थात् हिंसा करती है वह कषाय है । ईषत् कषाय नोकषाय है । उनमें-से कषायवेदनीयके सोलह भेद हैं । वह इस प्रकार हैं—कषाय क्रोध मान माया लोभ हैं । उनकी चार अवस्थाएँ हैं—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन । ३५

लोभाः । यदुदयाद्देशविरति संयमासंयमाख्यामत्पामपि कर्तुं न शक्नोति तदप्रत्याख्यानान्तरणम् । तद्भेदाः क्रोधमानमायालोभाः । प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानान्तरणाः क्रोधमानमायालोभाः । संग्रहः एकीभावे वर्तते संयमेन सहावस्थानात् एकीभूत्वा ज्वलति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः । त एते समुदिताः षोडश कषाया भवन्ति ।

- ५ ईषत्कषायाः नोकषायास्तान् वेदयन्ति वेद्यन्ते एभिरिति नोकषायवेदनीयानि नवविधानि । तत्र यस्योदयाद्देशाद्विर्भावस्तद्भास्यम् । यदुदयाद्देशादिषु औत्सुक्यं सा रतिः । अरतिस्तद्विपरीतिरुत्तरार्थः ॥ यद्विषाकात् शोचतं स शोकः । यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम् ॥ यदुदयादात्मदोषसंवरणमन्यदोषस्य धारणं सा जुगुप्सा ॥ यदुदयादस्त्रैणान् भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः ॥ यस्योदयात् पौंसान् भावान् आस्कन्दति स पुंवेदः ॥ यदुदयान्तापुंसकान् भावान् उपपन्नजति स नपुंसकवेदः । नरकादि भवधारणाय एतीत्यायुः ।
- १० तन्नारकादिभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नरकादिषु भवसंबन्धेनायुषो व्यपदेशः क्रियते । वा नरकेषु भवं नारकमायुः । तिर्यग्योन्येषु भवं तैर्यग्योनम् । मनुष्येषु भवं मानुष्यं देवेषु भवं देवमिति ॥

कारणत्वात् मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबन्धिनः—अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः । यदुदयात् देशविरति संयमासंयमाख्यामत्पामपि कर्तुं न शक्नोति तदप्रत्याख्यानान्तरणं तद्भेदाः क्रोधमानमायालोभाः । प्रत्याख्यानं सकलसंयमः तमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानान्तरणाः क्रोधमानमायालोभाः । सम् शब्दः, एकीभावे वर्तते संयमेन सहावस्थानात् एकीभूत्वा ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलति एषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः त एते समुदिताः षोडश कषाया भवन्ति ।

- ईषत्कषाया नोकषायाः तान् वेदयन्ति वेद्यन्ते एभिरिति नोकषायवेदनीयानि नवविधानि । तत्र यस्योदयात् हास्याविर्भावः तद्भास्यम् । यदुदयाद्देशादिषु औत्सुक्यं सा रतिः । अरतिस्तद्विपरीता । यद्विषाकात् शोचनं स शोकः । यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम् । यदुदयात् आत्मदोषसंवरणं अन्यदोषस्य धारणं सा जुगुप्सा ।
- २० यदुदयात् स्त्रैणान् भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः । यस्योदयात् पौंसान् भावान् आस्कन्दति स पुंवेदः । यदुदयात् नापुंसकान् भावान् उपपन्नजति स नपुंसकवेदः ।

नारकादिभवधारणाय एतीत्यायुः तन्नारकादिभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नरकादिषु भवसंबन्धेन आयुषो

अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्वको अनन्त कहते हैं उसके बाँधनेवाले अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ हैं । जिसके उदयसे संयमासंयम नामक देशविरतिको थोड़ा

- २५ सा भी करनेमें असमर्थ होता है वह अप्रत्याख्यानान्तरण क्रोध-मान-माया-लोभ है । प्रत्याख्यान कहते हैं सकलसंयमको । उसे जो आवरण करती हैं वे प्रत्याख्यानान्तरण क्रोध-मान-माया-लोभ हैं । 'सम्' शब्दका अर्थ एकीभाव है । संयमके साथ एकमेक रूपसे रहकर जो ज्वलित हों अथवा जिनके रहते हुए भी संयम ज्वलित हो वे संज्वलन क्रोध मान माया लोभ हैं । ये सब मिलकर सोलह कषाय हैं । ईषत् कषायको नोकषाय कहते हैं । उनका जो वेदन

- ३० कराते हैं या जिनके द्वारा उनका वेदन हो वे नोकषायवेदनीय नौ भेदरूप हैं । उनमें-से जिसके उदयसे हास्य प्रकट हो वह हास्यवेदनीय है । जिसके उदयसे देशादिमें उत्सुकता हो वह रति है । उससे विपरीत अरति है । जिसके उदयसे शोक हो वह शोक है । जिसके उदयसे उद्वेग हो वह भय है । जिसके उदयसे अपने दोषोंको ढाँके और दूसरोंके दोष प्रकट करे वह जुगुप्सा है । जिसके उदयसे स्त्रियों जैसे भाव हों वह स्त्रीवेद है । जिसके उदयसे पुरुषों जैसे भाव हों वह पुरुषवेद है । जिसके उदयसे नपुंसक भाव हों वह नपुंसकवेद है । नारक आदि भव धारणके लिए गमन करना आयु है । उसके चार भेद हैं । नरक आदिमें

नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु दीर्घजीवनं नारकमायुरित्येवं शेषेष्वपि ॥

पिण्डापिण्डभेदाद्विचत्वारिंशद्विधं नाम । तत्र यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः । सा चतुर्विधा । नरकगतिः तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति । तत्र यन्निमित्तमात्मनो नारकपर्याय-  
स्तन्नारकगति नाम । यन्निमित्तमात्मनस्तिर्यग्भावस्तत्तिर्यग्गतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो मनुष्य-  
पर्यायस्तन्मनुष्यगतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो देवपर्यायस्तद्देवगतिनाम । तासु नरकादिष्वव्यभि-  
चारिणा सादृश्येनैकीकृतार्थात्मा जातिस्तन्निमित्तं जातिनाम । तत्पञ्चविधं एकेन्द्रियजातिनाम ५  
द्वीन्द्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिन्द्रियजातिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति । यदुदयादात्मा  
एकेन्द्रिय इति शब्दघटे तदेकेन्द्रियजातिनाम । यदुदयादात्मा द्वीन्द्रिय इति चोच्यते तद्द्वीन्द्रियजाति-  
नाम । यदुदयफलं त्रीन्द्रियत्वं तत्त्रीन्द्रियजातिनाम । यस्योदयाज्जीवश्चतुरिन्द्रिय इति वर्ण्यते तच्चतु-  
रिन्द्रियजातिनाम । यदुदयादात्मा पञ्चेन्द्रिय इति चोच्यते तत्पञ्चेन्द्रियजातिनाम ॥ यदुदयादात्मनः १०

व्यपदेशः क्रियते, वा नरकेषु भवं नारकमायुः । तिर्यग्योनिषु भवं तिर्यग्योनम् । मनुष्ययोनिषु भवं मानुष्यम् ।  
देवेषु भवं दैवमिति । नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु दीर्घजीवनं नारकमायुरित्येवं शेषेष्वपि ।

पिण्डापिण्डभेदाद्विचत्वारिंशद्विधं नाम । तत्र यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः ।  
सा चतुर्विधा—नरकगतिः तिर्यग्गतिः मनुष्यगतिः देवगतिरिति । तत्र यन्निमित्तमात्मनो नारकपर्यायः  
तन्नारकगतिनाम । यन्निमित्तं आत्मनः तिर्यग्भवः तत्तिर्यग्गतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो मनुष्यपर्यायस्त- १५  
न्मनुष्यगतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो देवपर्यायः तद्देवगतिनाम ।

तासु नरकादिगतिषु अव्यभिचारिणा सादृश्येन एकीकृतार्थात्मा जातिः तन्निमित्तं जातिनाम ।  
तत्पञ्चविधं एकेन्द्रियजातिनाम द्वीन्द्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिन्द्रियजातिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम  
चेति । यदुदयात् आत्मा एकेन्द्रिय इति शब्दघटे तदेकेन्द्रियजातिनाम । यदुदयात् आत्मा द्वीन्द्रिय इत्युच्यते  
तद्द्वीन्द्रियजातिनाम । यदुदयफलं त्रीन्द्रियत्वं तत्त्रीन्द्रियजातिनाम । यस्योदयाज्जीवश्चतुरिन्द्रिय इति २०  
वर्ण्यते तच्चतुरिन्द्रियजातिनाम । यदुदयात् आत्मा पञ्चेन्द्रिय इत्युच्यते तत् पञ्चेन्द्रियजातिनाम ।

भवके सम्बन्धसे आयुका व्यवहार किया जाता है । नरकमें होनेवाली नारकायु है, तिर्यच-  
योनिमें होनेवाली तिर्यचायु है । मनुष्ययोनिमें होनेवाली मनुष्यायु है । देवोंमें होनेवाली  
देवायु है । तीव्र शीत-उष्णकी वेदनावाले नरकोंमें दीर्घकाल तक जीना नरकायु है । इसी तरह  
शेषमें भी जानना । २५

पिण्ड और अपिण्डके भेदसे नामकर्मके ब्यालीस भेद हैं । जिसके उदयसे आत्मा  
भवान्तरमें जाता है वह गति है । उसके चार भेद हैं—नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति,  
देवगति । जिसके निमित्तसे आत्माकी नारकपर्याय हो वह नरकगति नाम है । जिसके  
निमित्तसे आत्माकी तिर्यचपर्याय हो वह तिर्यग्गतिनाम है । जिसके निमित्तसे आत्माकी  
मनुष्य पर्याय हो वह मनुष्यगतिनाम है । जिसके निमित्तसे आत्माकी देवपर्याय हो ३०  
वह देवगतिनाम है । उन नरकादि गतियोंमें अव्यभिचारी समानतासे एकरूप किये  
गये जीव जाति हैं । उसमें निमित्त जातिनाम है । उसके पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय-  
जातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रिय जातिनाम, चतुरिन्द्रिय जातिनाम, पञ्चेन्द्रियजाति-  
नाम । जिसके उदयसे आत्मा एकेन्द्रिय कहा जाये वह एकेन्द्रिय जातिनाम है । जिसके  
उदयसे आत्मा द्वीन्द्रिय कहा जाये वह द्वीन्द्रिय जातिनाम है । जिसके उदयका फल त्रीन्द्रिय- ३५  
पना है वह त्रीन्द्रियजातिनाम है । जिसके उदयसे जीव चतुरिन्द्रिय कहा जाता है वह



शरीरनिर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम । तत्पञ्चविधं औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, काम्मणशरीरनाम चेति ॥ यदुदयादात्मनः औदारिकशरीरनिर्वृत्तिस्तदौदारिकशरीरनाम । यदुदयाद्वैक्रियिकशरीरनिर्वृत्तिस्तद्वैक्रियिकशरीरनाम । यदुदयादाहारकशरीरनिर्वृत्तिस्तदाहारकशरीरनाम । यस्योदयात्तैजसशरीरनिर्वृत्तिस्ततैजसशरीरनाम । यदुदयादात्मनः काम्मणशरीरनिर्वृत्तिस्तत्काम्मणशरीरनाम ॥

५ काम्मणशरीरनिर्वृत्तिस्तत्काम्मणशरीरनाम ॥

शरीरनामकर्मोदयवशादुपात्तानामाहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्वन्धननाम । यदुदयादौदारिकादिशरीराणां विवरविरहितानामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम । यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम । तत् षोढा विभज्यते । समचतुरस्रसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम स्वातिसंस्थाननाम

१० कुञ्जसंस्थाननाम वामनसंस्थाननाम हुण्डसंस्थाननाम चेति ॥

यदुदयादात्मनः शरीरनिर्वृत्तिः तच्छरीरनाम । तत्पञ्चविधं औदारिकशरीरनाम—वैक्रियिकशरीरनाम—आहारकशरीरनाम—तैजसशरीरनाम—काम्मणशरीरनाम चेति । यदुदयादात्मनः औदारिकशरीरनिर्वृत्तिः तदौदारिकशरीरनाम । यदुदयाद्वैक्रियिकशरीरनिर्वृत्तिः तद्वैक्रियिकशरीरनाम । यदुदयादाहारकशरीरनिर्वृत्तिस्तदाहारकशरीरनाम । यस्योदयात्तैजसशरीरनिर्वृत्तिः ततैजसशरीरनाम । यदुदयादात्मनः काम्मणशरीरनिर्वृत्तिः तत्काम्मणशरीरनाम ।

१५ निर्वृत्तिः तत्काम्मणशरीरनाम ।

शरीरनामकर्मोदयवशात् उपात्तानामाहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां अन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्वन्धनं नाम ।

यदुदयात् औदारिकादिशरीराणां विवरविरहितानामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम ।

२० यदुदयात् औदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम । तत् षोढा विभज्यते—समचतुरस्रसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम स्वातिसंस्थाननाम कुञ्जसंस्थाननाम वामनसंस्थाननाम हुण्डकसंस्थाननाम चेति ।

चतुरिन्द्रियजातिनाम है । जिसके उदयसे आत्मा पंचेन्द्रिय कहा जाता है वह पंचेन्द्रियजातिनाम है । जिसके उदयसे आत्माके शरीरकी रचना होती है वह शरीरनाम है । उसके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीरनाम, वैक्रियिक शरीरनाम, आहारक शरीरनाम, तैजसशरीरनाम, काम्मणशरीरनाम । जिसके उदयसे आत्माके औदारिक शरीर बनता है वह औदारिक शरीरनाम है । जिसके उदयसे वैक्रियिक शरीरकी रचना होती है वह वैक्रियिक शरीरनाम है । जिसके उदयसे आहारक शरीरकी रचना होती है वह आहारक शरीरनाम है । जिसके उदयसे तैजस शरीरकी रचना होती है वह तैजस शरीरनाम है । जिसके उदयसे आत्माके काम्मणशरीरकी रचना होती है वह काम्मणशरीरनाम है । शरीर नामकर्मके उदयके वश ग्रहण किये गये आहारवर्गणाके रूपमें आये पुद्गलस्कन्धोंका परस्परमें प्रदेशोंका सम्बन्ध जिससे होता है वह बन्धननाम है । जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका छिन्नरहित परस्परमें प्रदेशोंके प्रवेशसे एकरूपता होती है वह संघातनाम है । जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका आकार बनता है वह संस्थान नाम है । उसके छह भेद हैं—समचतुरस्र संस्थान नाम, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नाम, स्वातिसंस्थान नाम, कुञ्जसंस्थान नाम, वामन-

३५

यदुदयादङ्गोपाङ्गविवेकस्तदङ्गोपाङ्गनाम । तत्त्रिविधं ओदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम आहारकशरीराङ्गोपाङ्गनाम चेति ॥ यस्योदयादस्थिवन्धनविशेषो भवति तत्संहनननाम । षड्विधं तत् । वज्रवृषभनाराचसंहनननाम वज्रनाराचसंहनननाम नाराचसंहनननाम अर्धनाराचसंहनननाम कीलितसंहनननाम असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननाम चेति । संहननमस्थिसंचयः । ऋषभो वेष्टनं । वज्रवदभेद्यत्वात् वज्रऋषभः वज्रवन्नाराचो वज्रनाराचस्तौ द्वावपि यस्मिन्वज्रशरीरे संहनने तद्वज्रऋषभनाराचशरीरसंहनननाम । एष एव वज्रास्थिवन्धो वज्रऋषभवर्जितः सामान्यऋषभवेष्टितो यस्योदयेन भवति तद्वज्रनाराचशरीरसंहनननाम । यस्य कर्मण उदयेन वज्रविशेषण रहितनाराचकीलिताः अस्थिसंधयो भवन्ति तन्नाराचशरीरसंहनननाम । यस्य कर्मण उदयेनास्थिसंधयो नाराचेनार्द्धकीलिता भवन्ति तद्वज्रनाराचशरीरसंहनननाम । यस्योदयादवज्रास्थीनि कीलितानि भवन्ति तत्कीलितशरीरसंहनननाम । यस्योदयेन अन्योन्यासंप्राप्तानि शरीरसृपसंहननवत् सिराबन्धान्यस्थीनि भवन्ति तदसंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननाम ॥

यदुदयादङ्गोपाङ्गविवेकस्तदङ्गोपाङ्गनाम । तत् त्रिविधं ओदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम आहारकशरीराङ्गोपाङ्गनाम चेति ।

यस्योदयादस्थिवन्धनविशेषो भवति तत्संहनननाम । तत् षड्विधं—वज्रवृषभनाराचसंहनननाम । वज्रनाराचसंहनननाम । नाराचसंहनननाम । अर्धनाराचसंहनननाम । कीलितसंहनननाम । असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननाम । संहननम् अस्थिसंचयः । ऋषभो वेष्टनं वज्रवदभेद्यत्वात् वज्रऋषभः । वज्रवन्नाराचो वज्रनाराचः तौ द्वावपि यस्मिन् वज्रशरीरे संहनने तत् वज्रवृषभनाराचसंहनननाम । एष एव वज्रास्थिवन्धः वज्रवृषभवर्जितः सामान्यऋषभवेष्टितः यस्योदयेन भवति तद्वज्रनाराचशरीरसंहनननाम । यस्य कर्मण उदयेन वज्रविशेषणेन रहितनाराचकीलिता अस्थिसंधयो भवन्ति तन्नाराचशरीरसंहनननाम । यस्य कर्मण उदयेन अस्थिसंधयो नाराचेनार्द्धकीलिता भवन्ति तद्वज्रनाराचशरीरसंहनननाम । यस्योदयादवज्रास्थीनि कीलितानि भवन्ति तत्कीलितशरीरसंहनननाम । यस्योदयेन अन्योन्यासंप्राप्तानि शरीरसृपसंहननवत् सिराबन्धानि अस्थीनि भवन्ति तदसंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननाम ।

संस्थान नाम और हुण्डकसंस्थान नाम । जिसके उदयसे अस्थियोंका बन्धनविशेष होता है वह संहनननाम है । उसके छह भेद हैं—वज्रवृषभनाराचसंहनन नाम, वज्रनाराचसंहनन नाम, नाराचसंहनन नाम, अर्धनाराच संहनननाम, कीलितसंहनन नाम, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नाम । संहनन अस्थियोंके संचयको कहते हैं । ऋषभका अर्थ वेष्टन है । नाराच कीलको कहते हैं । वज्रके समान अभेद्य ऋषभ होनेसे वज्रवृषभ कहलाता है । और वज्रके समान नाराचको वज्रनाराच कहते हैं । जिस वज्रसंहनन शरीरमें ऋषभ नाराच दोनों वज्रवत् हो उसे वज्रवृषभनाराच संहनन नाम कहते हैं । यही वज्ररूप अस्थिवन्ध वज्रवत् वेष्टनके बिना सामान्य वेष्टनसे वेष्टित जिस कर्मके उदयसे होता है वह वज्रनाराच शरीरसंहनन नाम है । जिस कर्मके उदयसे वज्रविशेषणसे रहित और नाराचसे कीलित अस्थियोंकी सन्धियाँ होती हैं वह नाराच शरीरसंहनन नाम है । जिस कर्मके उदयसे अस्थियोंके जोड़ नाराचसे अर्द्धकीलित होते हैं वह अर्धनाराचशरीर संहनन नाम है । जिसके उदयसे अस्थियाँ परस्परमें कीलित होती हैं वह कीलितशरीर संहनन नाम है । जिसके उदयसे अस्थियाँ परस्परमें प्राप्त न होकर सरीसृपकी शरीरकी तरह सिराओंसे बँधी होती हैं वह असंप्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन नाम है ।

- यद्वेतुको वर्णविकारस्तद्वर्णनाम । तत्पञ्चविधं कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हरिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम चेति ॥ यदुदयात्प्रभवो गन्धस्तद्गन्धनाम । तद् द्विविधं सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम चेति ॥ यन्निमित्तो रसविकारस्तद्रसनाम । तत्पञ्चविधं तिक्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति । यस्योदयात् स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शनाम । तदष्टविधं कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम शीतनाम उष्णनाम स्निग्धनाम रुक्षनाम चेति ॥ पूर्व-  
शरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम तच्चतुर्विधं नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति ।  
यस्योदयादयःपिण्डवद्गुरुत्वान्न च पतति न चाकर्तूलवत्लघुत्वाद्भ्रष्टं गच्छति तदगुरुलघु-  
नाम । उपेत्य घात इत्युपघातः आत्मघात इत्यर्थः । यस्योदयादात्मघातावयवा महाशृङ्गलम्बस्तननुदो-  
१० दरादयो भवन्ति तदुपघातनाम । परेषां घातः परघातः । यदुदयात्तीक्ष्णशृङ्गनखसर्पदाढादयो भवन्त्यप्यवघातस्त्परघातनाम । यद्वेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम । यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातप-

- यद्वेतुको वर्णविकारः तद्वर्णनाम । तत्पञ्चविधं—कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हरिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम चेति । यदुदयात्प्रभवो गन्धः तद्गन्धनाम । तद्विद्विधं सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम चेति । यन्निमित्तो रसविकारः तद्रसनाम । तत्पञ्चविधं—तिक्तनाम—कटुकनाम—कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम  
१५ चेति । यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावः तत्स्पर्शनाम । तदष्टविधं—कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम शीतनाम उष्णनाम स्निग्धनाम रुक्षनाम चेति ।

पूर्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम । तच्चतुर्विधं—नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति ।

- यस्योदयादयःपिण्डवत् गुरुत्वान्न च पतति न चाकर्तूलवत् लघुत्वाद्भ्रष्टं गच्छति तदगुरुलघुनाम ।  
२० उपेत्य घात इत्युपघातः आत्मघात इत्यर्थः । यस्योदयादात्मघातावयवाः महाशृङ्गलम्बस्तननुदोदरादयो भवन्ति तदुपघातनाम । परेषां घातः परघातः यदुदयात्तीक्ष्णशृङ्गनखसर्पदाढादयो भवन्ति अवघातः तत्पर-  
घातनाम ।

- जिसके निमित्तसे शरीरमें वर्णविकार होता है वह वर्णनाम है । वह पाँच प्रकार है—  
कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम, हरितवर्णनाम और शुक्लवर्णनाम । जिसके  
२५ उदयसे गन्ध हो वह गन्धनाम है । उसके दो भेद हैं—सुगन्ध और दुर्गन्ध । जिसके निमित्त-  
से रस हो वह रसनाम है । उसके पाँच भेद हैं—तिक्त नाम, कटुक नाम, कषाय नाम,  
आम्लनाम, मधुरनाम । जिसके उदयसे स्पर्श हो वह स्पर्शनाम है । उसके आठ भेद हैं—  
कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, शीतनाम, उष्णनाम, स्निग्धनाम, रुक्षनाम । पूर्व-  
शरीरके आकारका अविनाश जिसके उदयसे होता है वह आनुपूर्व्य नाम है । उसके चार  
३० भेद हैं—नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, मनुष्यगति प्रायोग्या-  
नुपूर्व्यनाम, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम ।

- जिसके उदयसे शरीर न तो लोहेकी पिण्डीकी तरह भारी होनेसे नीचे गिरे और न  
आककी रुईकी तरह हल्का होनेसे ऊपर उड़े वह अगुरुलघुनाम है । उपतकर घातको उपघात  
अर्थात् आत्मघात कहते हैं । जिसके उदयसे आत्मघात करनेवाले अवयव यथा बड़े-बड़े सींग,  
३५ लम्बे स्तन, बड़ा पेट आदि होते हैं वह उपघात नाम है । परके घातको परघात कहते हैं ।  
जिसके उदयसे तीक्ष्ण सींग, नख, दाढ़ आदि अवयव होते हैं वह परघात नाम है । जिसके

नाम । तदव्यादित्यम्ब्रोत्पन्नबादरपर्याप्तपृथिवीकायिकजीवेष्वेव वर्तते । यस्योदयादुद्योतनं तदुद्यो-  
तनाम । तच्चन्द्रे खद्योतादिषु च वर्तते । विहाय आकाशं तत्र गतिनिवर्तकं तद्विहायोगतिनाम ।  
तद्विद्विधं प्रशस्तप्रशस्तभेदात् । यदुदयाद्विद्विधादिषु जन्म तत् व्रसनाम । यदुदयादन्यबाधाऽकर-  
शरीरं भवति तद्वादरनाम । यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिवृत्तिस्तत्पर्याप्तिनाम । तत् षड्विधमा-  
हारपर्याप्तिनाम शरीरपर्याप्तिनाम इन्द्रियपर्याप्तिनाम प्राणापानपर्याप्तिनाम भाषापर्याप्तिनाम मनः-  
पर्याप्तिनाम चेति ॥ शरीरनामकर्मोदयान्निवर्त्यमानं शरीरभेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति  
तत्प्रत्येकशरीरनाम । यस्योदयाद्रसादिधातुपचातूनां स्वस्वस्थाने स्थिरभावनिवर्तनं भवति  
तत् स्थिर नाम ।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते ।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जात् शुक्रं ततः प्रजा ॥

वातं पित्तं तथा श्लेष्मा शिरा स्नायुश्च चर्म च ।

जठरान्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः ॥

यद्वेत्तुच्छवासः तदुच्छवासनाम । यदुदयान्निवृत्तिमातपनं तदातपनामा तदपि आदित्यम्ब्रोत्पन्न-  
बादरपर्याप्तपृथिवीकायिकजीवेषु एव वर्तते । यस्योदयादुद्योतनं तदुद्योतनाम तच्चन्द्रखद्योतादिषु च वर्तते ।  
विहायः आकाशं तत्र गतिनिवर्तकं तद्विहायोगति नाम । तद्विद्विधं प्रशस्तप्रशस्तभेदात् । यदुदयात्  
द्विन्द्रियादिषु जन्म तत् व्रसनाम । यदुदयादन्यबाधाकरशरीरं भवति तद्वादरनाम ।

यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिवृत्तिस्तत्पर्याप्तिनाम । तत् षड्विधं-आहारपर्याप्तिनाम शरीरपर्याप्तिनाम  
इन्द्रियपर्याप्तिनाम प्राणापानपर्याप्तिनाम भाषापर्याप्तिनाम मनःपर्याप्तिनाम चेति । शरीरनामकर्मोदयान्निवर्त्य-  
मानशरीरम् एकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम ।

यस्योदयात् रसादिधातुपचातूनां स्वस्वस्थाने स्थिरभावनिवर्तनं भवति तत्स्थिरनाम—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते ।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जं मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजाः ॥१॥

वातः पित्तं तथा श्लेष्मा शिरा स्नायुश्च चर्म च ।

जठरान्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः ॥२॥ [ ]

निमित्तसे उद्भासोच्छवास होता है वह उच्छवास नाम है । जिसके उदयसे आतपन हो वह  
आतपनाम है । उसका उदय सूर्यके बिम्बमें उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीवोंमें ही  
होता है । जिसके उदयसे उद्योतन हो वह उद्योत नाम है । उसका उदय चन्द्रबिम्ब, जुगुन्  
आदिमें होता है । विहाय आकाशको कहते हैं । उसमें गमन जिसके उदयसे हो वह  
विहायोगति नाम है । उसके दो भेद हैं—प्रशस्त और अप्रशस्त । जिसके उदयसे दो-इन्द्रिय  
आदिमें जन्म हो वह व्रसनाम है । जिसके उदयसे दूसरेको बाधा करनेवाला स्थूल शरीर  
होता है वह बादरनाम है । जिसके उदयसे आहार आदि पर्याप्तिकी रचना होती है वह  
पर्याप्तिनाम है । उसके छह भेद हैं—आहारपर्याप्तिनाम, शरीरपर्याप्तिनाम, इन्द्रियपर्याप्ति-  
नाम, प्राणापानपर्याप्तिनाम, भाषापर्याप्तिनाम, मनःपर्याप्तिनाम । शरीरनामकर्मके उदयसे  
रचा गया शरीर जिसके उदयसे एक आत्माके उपभोगका कारण होता है वह प्रत्येक शरीर  
नाम है । जिसके उदयसे रस आदि धातु-उपधातु अपने-अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों  
वह स्थिर नाम है । कहा है—‘रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे

धातु । प्र ७ । फ । दिन । ५० (३०) । इच्छि । वा १ । लब्धदि ४ २ ।

७

- यदुदयाद्रमणीया मस्तकादिप्रशस्तावयवा भवन्ति तच्छुभनाम । यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवस्त-  
त्सुभगनाम । यस्मान्निमित्तान्मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तत्सुस्वरनाम । प्रभोपेतशरीरकारणमा-  
देयनाम । पुण्यगुणख्यापनकारणं यशस्कीर्तिनाम । यन्निमित्तात्परिनिःपत्तिस्तन्निर्माणं तद्विधि-  
५ स्थाननिर्माणं प्रमाणनिर्माणं चेति । तत्र जातिनामकर्मोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च  
निर्वर्तयति । निर्मोयतेऽनेनेति वा निर्माणमिति ।

- आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम । यन्निमित्तादेर्केन्द्रियेषु प्रादुर्भावः तत्स्थावरनाम । सूक्ष्म-  
शरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम । षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन  
साधारणं भवति शरीरं यतस्तत्साधारणशरीरनाम । धातूपधातूनां स्थिरभावेनानिर्वर्तनं  
१० यतस्तदस्थिरनाम । यदुदयेनाऽरमणीयमस्तकाद्यवयवनिर्वर्तनं भवति तदशुभनाम । यदुदयाद्रूपादि-  
गुणोपेतेऽप्यप्रीतिं विदधाति जनस्तद्वुर्भगनाम । यदुदयावमनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तद्वुःस्वर-

धातु प्र ७ । फ दि ३० । इच्छा धातुः १ लब्धदि ४ । २ ।

७

- यदुदयात् रमणीया मस्तकादिप्रशस्तावयवा भवन्ति तच्छुभनाम । यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवः तत्सुभग-  
नाम । यस्मान्निमित्तात् मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तत्सुस्वरनाम । प्रभोपेतशरीरकारणं आदेयनाम । पुण्यगुण-  
१५ ख्यापनकारणं यशस्कीर्तिनाम ।

यस्मान्निमित्तात् परिनिष्पत्तिः तन्निर्माणनाम । तद्विधिष्वन्-स्थाननिर्माणं प्रमाणनिर्माणं चेति ।  
तत्र जातिनामोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च निर्वर्तयति निर्मोयते अनेनेति वा निर्माणम् । आर्हन्त्य-  
कारणं तीर्थकरत्वनाम ।

- यन्निमित्तादेर्केन्द्रियेषु प्रादुर्भावः तत्स्थावरनाम । सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम । षड्विध-  
२० पर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं भवति शरीरं यतः तत्साधारण-  
शरीरनाम । धातूपधातूनां स्थिरभावेनानिर्वर्तनं यतः तदस्थिरनाम । यदुदयेन अरमणीयमस्तकाद्यवयव-  
निर्वर्तनं भवति तदशुभनाम । यदुदयात् रूपादिगुणोपेतेऽपि अप्रीतिं विदधाति जनः तद्वुर्भगनाम । यदुदयात्

मज्जा, मज्जासे वीर्य और वीर्यसे सन्तान होती है । वात, पित्त, कफ, सिरा, स्नायु, चर्म  
और उदराग्नि इन सातको विद्वानोंने उपधातु कहा है ।'

- २५ जिसके उदयसे रमणीय मस्तक आदि प्रशस्त अवयव होते हैं वह शुभनाम है ।  
जिसके उदयसे दूसरे प्रीति करते हैं वह सुभगनाम है । जिसके निमित्तसे मनोज्ञ स्वर होता  
है वह सुस्वरनाम है । प्रभायुक्त शरीरका कारण आदेयनाम है । पुण्य गुणोंकी कीर्तिमें कारण  
यशस्कीर्तिनाम है । जिसके निमित्तसे रचना हो वह निर्माणनाम है । उसके दो भेद हैं—  
स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण । वह जातिनामकर्मके उदयके अनुसार चक्षु आदिके  
३० स्थान और प्रमाणका निर्माण करता है । अर्हन्तपदका कारण तीर्थकर नाम है । जिसके  
निमित्तसे एकेन्द्रियोंमें जन्म हो वह स्थावरनाम है । सूक्ष्मशरीरका उत्पादक सूक्ष्मनाम  
है । छह प्रकारकी पर्याप्तिके अभावमें जो निमित्त है वह अपर्याप्तिनाम है । जिसके  
उदयसे बहुत-से जीवोंके उपभोगमें हेतु साधारण शरीर होता है वह साधारणशरीरनाम है ।  
जिसके उदयसे धातु-उपधातु स्थिर न हों वह अस्थिर नाम है । जिसके उदयसे अरमणीय  
३५ मस्तक आदि अवयवोंकी रचना हो वह अशुभ नाम है । जिसके उदयसे रूप आदि गुणोंसे

नाम । निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम । पुण्ययशसः प्रत्यनीकफलमयशस्कीर्तिनाम । यस्योदया-  
ल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म भवति तदुच्चैर्गोत्रनाम । तद्विपरीतेषु गृहितेषु कुलेषु जन्म भवति  
तन्नीचैर्गोत्रं नाम । यदुदयाद्वातुकामोऽपि न प्रयच्छति लब्धुकामोऽपि न लभते भोक्तुमिच्छन्नपि  
न भुङ्क्ते उपभोक्तुमिच्छन्नपि नोपभुङ्क्ते तत्सहितुकामोऽपि न तत्सहते त एते पञ्चान्तरायस्य  
भेदाः । अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते । दानस्यान्तरायो लाभस्यान्तरायो भोगस्यान्तराय ५  
उपभोगस्यान्तरायो वीर्यस्यान्तराय इति । दानादिपरिणामस्य व्याघातहेतुत्वात् ।

नामकर्मदुत्तरप्रकृतिगळो भेदविवक्षेयिदमन्तर्भावसं तोरिदपरः—

देहे अविनाभावी बन्धनसंघाद इदि अबंधुदया ।

वर्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥३४॥

देहे अविनाभाविनौ बन्धनसंघाताविश्यबंधोदयौ । वर्णचतुष्के अभिन्ने गृहीते चत्वारि १०  
बंधोदययोः ॥

देहे शरीरनामकर्मबोद्धु । अविनाभाविनौ अविनाभाविगळंतर्भावविगळु । बन्धनसंघातौ  
बंधननाममुं संघातनाममुमेदेरहुं इति यिदुकारणविदमबंधोदयौ बंधप्रकृतिगळुमुदयप्रकृतिगळु-

अमनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तददुःस्वरनाम । निष्प्रभशरीरकारणम् अनादेयनाम । पुण्ययशसः प्रत्यनीकफलं  
अयशस्कीर्तिनाम । १५

यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म भवति तदुच्चैर्गोत्रम् । यदुदये तद्विपरीतेषु गृहितेषु कुलेषु जन्म  
भवति तन्नीचैर्गोत्रम् ।

यदुदयाद्वातुकामोऽपि न प्रयच्छति लब्धुकामोऽपि न लभते भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते उपभोक्तु-  
मिच्छन्नपि नोपभुङ्क्ते तत्सहितुकामोऽपि न तत्सहते त एते पञ्चान्तरायभेदाः । अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः  
क्रियते । दानस्य अन्तरायः, लाभस्य अन्तरायः, भोगस्यान्तरायः, उपभोगस्यान्तरायः, वीर्यस्य अन्तराय इति २०  
दानादिपरिणामस्य व्याघातहेतुत्वात् ॥३३॥ अथ नामोत्तरप्रकृतिषु अभेदविवक्षया अन्तर्भावं दर्शयति—

देहे पञ्चविधशरीरनामकर्मणि स्वस्वबन्धसंघातौ अविनाभाविनौ इति कारणात् अबन्धोदयो-बन्धोदय-

युक्त होनेपर भी लोग प्रीति नहीं करते वह दुर्भगनाम है । जिसके उदयसे स्वर सुन्दर नहीं  
होता वह दुःस्वरनाम है । प्रभाहीन शरीरका कारण अनादेय नाम है । पुण्य कार्य करनेपर  
भी यशका न फैलना या अपयश फैलना जिसके उदयसे हो वह अयशकीर्तिनाम है । २५

जिसके उदयसे लोकपूजित कुलमें जन्म हो वह उच्चगोत्र है । जिसके उदयमें उससे  
विपरीत नीच कुलमें जन्म हो वह नीचगोत्र है ।

जिसके उदयसे देनेकी इच्छा होनेपर भी दान नहीं कर पाता, लाभकी इच्छा होनेपर  
लाभ नहीं होता, भोगनेकी इच्छा होनेपर भी भोग नहीं सकता, उपभोगकी इच्छा होनेपर  
उपभोग नहीं करता, उत्साह करनेकी इच्छा होनेपर भी उत्साह नहीं होता, वे ये अन्तरायके ३०  
भेद हैं । अन्तरायकी अपेक्षा भेदपूर्वक निर्देश किया गया है—दानका अन्तराय, लाभका  
अन्तराय, भोगका अन्तराय, उपभोगका अन्तराय और वीर्यका अन्तराय; क्योंकि ये दान  
आदिके परिणामोंके व्याघातमें निमित्त होते हैं ॥३३॥

आगे नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें अभेद-विवक्षामें गर्भित प्रकृतियोंको दिखाते हैं—

पाँच शरीरनामकर्मके अपने-अपने बन्धन और संघात अविनाभावी हैं । इस कारणसे ३५

- मल्लवु । औदारिकाविपञ्चशरीरंगळ बंधदोळमुदयदोळं तंतम्म बंधनसंघातंगळ्यांतर्भावं माडल्पटु-  
 दरिदं पृथक् बंधदोळमुदयदोळं पेळल्पडवेबुदर्थं । वर्णचतुष्केऽभिन्ने गृहीते वर्णसामान्यमुं  
 गन्धसामान्यमुं रससामान्यमुं स्पर्शसामान्यमुमभेदविवक्षेयिदं कैकोळल्पडुतिरलु सत्वकथनमल्ल-  
 दुळिद बंधदोळमुदयदोळं । चत्वारि नाल्कु नामकम्मं प्रकृतिगळपुवु । शेषपदिनारं प्रकृतिगळो-  
 ५ पृथक्कथनमित्तेबुदर्थंमंतागुतिरलु बंधप्रकृतिगळमुदयप्रकृतिगळं सत्वप्रकृतिगळुमेनितेनितपु-  
 मं'दोडे नाल्कु गाथासूत्रंगळिदं पेळदपरु :—

पंच णव दोणिण लुब्बीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी ।

दोणिण य पंच य भणिया एदाओ बंधपयडीओ ॥३५॥

पंच नव द्वे षड्विंशतिरपि च चतस्रः क्रमेण सप्तषष्टिर्द्वे च पंच च भणिताः एता

१० बंधप्रकृतयः ॥

- पंचज्ञानावरणंगळं नवदर्शनावरणंगळं द्विवेदनीयंगळं षड्विंशतिमोहनीयंगळमेके'दोडे बंध-  
 कालदोळु दर्शनमोहनीयमो'दे मिथ्यात्वमे'बुदरिदं सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिगळेरडुं उदय-  
 सत्त्वंगळोळे पेळल्पडुगुमपुदरिदमी बंधप्रकृतिगळोळु मोहनीयद षड्विंशत्युत्तरप्रकृतिगळपेळल्प-  
 दटुवु । चतुरासुय्यंगळं सप्तषष्टिनामप्रकृतिगळुमेके'दोडे बंधनसंघातंगळपत्तुं वर्णादिषोडशप्रकृति-  
 १५ गळुमिन्तु षड्विंशतिप्रकृतिगळं बिट्टु शेषसप्तषष्टिनामप्रकृतिगळु पेळल्पदटुवु । द्विगोत्रकम्मंगळं  
 पञ्चान्तरायकम्मंगळुमिन्तु ज्ञानावरणादिपाठकमदिदमिविनितुं कूडि विंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळबंधो-  
 ग्यंगळपुवे'डु वीतरागसर्व्वज्ञरिदं पेळल्पदटुवु । ५ । ९ । २ । २६ । ४ । ६७ । २ । ५ ।  
 कूडि १२० ॥

- प्रकृती न भवतः । तत्र पृथग्नोक्तावित्यर्थः । वर्णचतुष्के वर्णगन्धरसस्पर्शसामान्यचतुष्के अभिन्ने अभेदविवक्षया  
 २० एकैकस्मिन्नेव गृहीते सत्त्वादयत्र बन्धोदययोश्चतस्र एव प्रकृतयो भवन्ति । शेषषोडशानां पृथक् कथनं  
 नास्तीत्यर्थः ॥३४॥ तथा सति ता बन्धोदयसत्त्वप्रकृतयः कति ? इति चेत् चतुर्भिर्गाथाभिराह—

- पञ्च ज्ञानावरणानि नव दर्शनावरणानि द्वे वेदनीये षड्विंशतिर्मोहनीयानि । कुतः ? मिश्रसम्यक्त्व-  
 प्रकृत्योऽदयसत्त्वयोरेव कथनात् । चत्वारि आरूषि । सप्तषष्टिर्नामानि कुतः ? दशबन्धनसंघातषोडश-  
 वर्णादीनामन्तर्भावात् । द्वे गोत्रे । पञ्चान्तराया इत्येता विंशत्युत्तरशतबन्धयोभ्या भणिताः सर्वज्ञैः ॥३५॥

- २५ पाँच बन्धन और पाँच संघात बन्ध और उदय प्रकृतियोंमें पृथक् नहीं लिये गये हैं । अर्थात्  
 बन्ध और उदयमें वे दस पृथक् नहीं कहे हैं, शरीरनामकर्ममें ही गर्भित कर लिये हैं । तथा  
 वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श इन चारोंको सामान्य रूपसे अभेदविवक्षामें एक-एकमें ही ग्रहण  
 करनेपर सत्त्वके अतिरिक्त बन्ध और उदयमें चार ही प्रकृतियाँ होती हैं, शेष सोलहको पृथक्  
 नहीं कहा है ॥३४॥

- ३० ऐसा होनेपर बन्ध, उदय और सत्त्व प्रकृतियाँ कितनी हैं यह चार गाथाओंसे कहते  
 हैं—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, लुब्बीस मोहनीय, क्योंकि मिश्र और  
 सम्यक्त्वप्रकृति उदय और सत्त्वमें ही कही गयी हैं, चार आयु, सड़सठ नाम; क्योंकि दस  
 बन्धन दस संघात और सोलहवर्णादिका अन्तर्भाव कर लेते हैं, दो गोत्र, पाँच अन्तराय इस  
 प्रकार ये एक सौ बीस प्रकृतियाँ बन्धयोग्य सर्वज्ञदेवने कही हैं ॥३५॥

उदयप्रकृतिगळं पेळदपरु । :—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी ।

दोण्णि य पंच य भणिदा एदाओ उदयपयडीओ ॥३६॥

पंच नव द्वे अष्टाविंशतिश्चतस्रः । क्रमेण सप्तषष्टिर्द्वे च पंच च भणिता एता उदय-  
प्रकृतयः ॥

पंचज्ञानावरणंगळुं नवदर्शनावरणंगळुं द्विवेदनीयंगळुमष्टाविंशतिमोहनोयंगळुमेकंदोडुदयदोळु  
सत्त्वदोळं मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळ्णे सद्भावमुट्पुदरिदं । चतुरायुष्यंगळुं सप्तषष्टि नामप्रकृति-  
गळुमेकंदोडे बंधदोळपेळदंते षड्विंशतिप्रकृतिगळ्णविनाभावमुट्पुदरिदं । द्विगोत्रकर्मप्रकृतिगळुं  
पंचांतरायकर्मप्रकृतिगळुमिन्तु क्रमदिदमिविनिंतुं कूडि द्वाविंशत्युत्तरशतमुदयप्रकृतिगळं दु  
ओवीतरागसर्व्वजरिदं पेळत्पट्टुवु । ५ । ९ । २ । २८ । ४ । ६७ । २ । ५ । कूडि १२२ ॥

ई बंधोदयप्रकृतिगळ्णे भेदाभेदविवक्षेयिदं संख्येयं पेळदपरु । :—

भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवति वीससयं ।

भेदे सन्वे उदये बावीससयं अभेदम्मि ॥३७॥

भेदे षट्चत्वारिंशच्छतमितरस्मिन्बंधे भवन्ति विंशतिशतं । भेदे सन्वा उदये द्वाविंशति-  
शतमभेदे ॥

बंधे बंधदोळु भेदे भेदविवक्षेयागुत्तिरलु । षट्चत्वारिंशच्छतं षट्चत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृति-  
गळु भवन्ति अप्पुवु । इतरस्मिन्भेदविवक्षेयागुत्तिरलु विंशतिशतं विंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळ्णुवु ।  
उदये उदयदोळु । भेदे भेदविवक्षेयागुत्तं विरलु । सन्वाः अष्टचत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतिगळ्णुवु ।  
अभेदे अभेदविवक्षेयागुत्तं विरलु । द्वाविंशतिशतं द्विविंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळ्णुवु । भे बं । १४६ ।  
अभे । बं १२० । भे । उ । १४८ । अभे । उ । १२२ ॥

सत्त्वप्रकृतिगळं पेळदपरु ।

उदयप्रकृतीराह—

उदयप्रकृतयो ज्ञानावरणादीनां क्रमेण पञ्च नव द्वे अष्टाविंशति चतस्रः सप्तषष्टिः द्वे पञ्च च मिलित्वा  
द्वाविंशत्युत्तरशतं भणिताः ॥३६॥ ता एवं बन्धोदयप्रकृतीर्भेदाभेदविवक्षया संख्याति—

बन्धे भेदविवक्षायां षट्चत्वारिंशच्छतं प्रकृतो भवन्ति । अभेदविवक्षायां विंशत्युत्तरशतम् । उदये  
भेदविवक्षायां सर्वा अष्टचत्वारिंशच्छतं अभेदविवक्षायां द्वाविंशत्युत्तरशतम् ॥३७॥ सत्त्वप्रकृतीराह—

उदय प्रकृतियाँ कहते हैं—

उदयप्रकृतियाँ ज्ञानावरण आदिकी क्रमसे पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, सड़सठ, दो,  
पाँच मिलकर एक सौ बाईस कही हैं ॥३६॥

बन्धमें भेदविवक्षामें एक सौ छियालीस प्रकृतियाँ होती हैं । अभेदविवक्षामें  
एक सौ बीस हैं । उदयमें भेद विवक्षामें सब एक सौ अड़तालीस हैं और अभेद विवक्षामें  
एक सौ बाईस हैं ॥३७॥

सत्त्व प्रकृतियाँ कहते हैं—



पंच णव दोणिण अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।

दोणिण य पंच य भणिदा एदाओ सत्तपयडीओ ॥३८॥

पंच नव द्वे अष्टाविंशतिश्चतस्रः क्रमेण त्रिनवतिर्द्वे च पंच च भणिता एताः सत्त्वप्रकृतयः ॥

पंचज्ञानावरणं नवदर्शनावरणं द्विवेदनीयं गच्छं अष्टाविंशति मोहनीयं गच्छं चतुरायुष्यं-  
१ गच्छं त्र्युत्तरनवतिनामकर्मप्रकृतिगच्छं द्विगोत्रकर्मप्रकृतिगच्छं पंचान्तरायकर्मप्रकृतिगच्छंमे विवि-  
नितुं सत्त्वप्रकृतिगच्छं दुस्तरप्रकृतिगच्छं श्रीवीतरागसत्त्वज्जरिदं निरूपिसत्त्वपट्टदु ॥

घातिकर्मगच्छं सर्वघातिदेशघातिभेदविदं द्विविधं गच्छं देवरोच्छं सर्वघातिगच्छं पेच्छदपर ॥

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायवारसयं ।

मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अवंधम्मि ॥३९॥

१० केवलज्ञानावरणं दर्शनषट्कं कषायद्वादशकं । मिथ्यात्वं च सर्वघातीनि सम्यग्मिथ्या-  
त्वमबंधे ॥

केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं स्त्यानगृद्ध्यादिदर्शनावरणपंचकमुपनंतानुबन्ध्यप्रत्या-  
ख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं गच्छं ब्रह्मदशकषायं गच्छं मिथ्यात्वकर्ममुमे विविनितुं कूडि  
विंशतिप्रकृतिगच्छं २० । सर्वघातिगच्छं पुनः । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं बंधप्रकृतियल्लप्पुदरिदमुदय-

१५ सत्त्वगच्छो जात्यंतरं सर्वघातिघे बु पेच्छलपट्टदु ॥

देशघातिगच्छं पेच्छदपर :—

णाणावरणचउक्कं तिदंसणं सम्मगं च संजलणं ।

णवणोकसायविग्घं छव्वीसा देसघादीओ ॥४०॥

ज्ञानावरणचतुष्कं त्रिदर्शनं सम्यक्त्वं च संज्वलनं । नवनोकषायविग्घनं षड्विंशतिर्देश-  
२० घातीनि ॥

पञ्च नव द्वे अष्टाविंशतिः चतस्रः त्रिनवतिः द्वे पञ्च एताः क्रमेण ज्ञानावरणादीनां सत्त्वप्रकृतयोऽष्ट-  
चत्वारिंशच्छतं सर्वज्ञैर्भणिताः ॥३८॥ घातिकर्माणि सर्वघातीनि देशघातीनि च । तत्र सर्वघातीत्याह—

केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं स्त्यानगृद्ध्यादिपञ्चकं अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमान-  
मायालोभाः, मिथ्यात्वकर्मैति विंशतिः सर्वघातीनि भवन्ति । सम्यग्मिथ्यात्वं तु बन्धप्रकृतिर्नैत्युदयसत्त्वयोरेव  
२५ जात्यन्तरसर्वघाति भवति ॥३९॥ देशघातीत्याह—

पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, तिरानवे, दो, पाँच ये कमसे ज्ञानावरण आदिकी  
सत्त्वप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस सर्वज्ञदेवने कही हैं ॥३८॥

घाति कर्म, सर्वघाती और देशघाती होते हैं । उनमें-से सर्वघाती कहते हैं—केवलज्ञाना-  
वरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि आदि पाँच, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान,  
३० क्रोध-मान-माया-लोभ, मिथ्यात्वकर्म ये बीस सर्वघाती हैं । सम्यग्मिथ्यात्व बन्धप्रकृति नहीं  
है । अतः उदय और सत्त्वमें ही जात्यन्तर सर्वघाती है ॥३९॥

देशघाती कहते हैं—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचतुष्कमुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणत्रितयमुं सम्यक्त्व-  
प्रकृतिर्युं संज्वलनक्रोधमानमायालोभकषायचतुष्कमुं हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुनपुंसकमेवं  
नवनोकषायंगळुं दानलाभभोगोपभोगं वीर्यान्तरायमेवं पंचान्तरायकर्मगळुमिन्तु कूडि षड्विंशति-  
प्रकृतिगळु देशघातिगळुं दनादिसिद्धिभय परमागमदोळु पेळुपट्टु ॥ सर्वघातिगळु के १ । व ६ ।  
क १२ । मि १ । मिश्र १ । कूडि २१ ॥ देशघातिगळु ज्ञा ४ । वं ३ । सं १ । सं ४ । नो ९ । विघ्न ५  
५ कूडि २६ ॥

घातिकर्मगळुगेसर्वघातिदेशघातिभेदमं पेळु अघातिकर्मगळुगे प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृति-  
भेदमं पेळुदलिल प्रशस्तप्रकृतिगळुं गाथाद्वयदिवं पेळुदपर ॥

सादं तिण्णेवाळ उरुचं नरसुरदुगं च पंचिंदी ।

देहा बंधणसंघादंगोवंगाइ वण्ण चळ ॥४१॥

समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुल्लक्कसग्गमणं ।

तसचारसट्टसट्टी बादालमभेददो सत्था ॥४२॥

सातं त्रीण्येवायुरुचं नरसुरद्विकं पंचेन्द्रियं देहाः बंधनसंघातांगोपांगानि च वण्णंचतस्रः ॥  
समचतुरस्रं वज्रवृषभः उपघातोनागुरुल्लघुषट्कं सद्गमनं त्रसद्वादशाष्टषष्टिर्द्विचत्वारिंशदभेदतः  
शस्ताः ॥

सातवेदनीयमुं तिर्यग्यमनुष्यदेवायुष्यमेवायुस्त्रितयमुं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यगति मनुष्यगति-  
प्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं देवगतिदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं पंचेन्द्रियजातिनाममुं औदारिकादि-  
शरीरपंचकमुं औदारिकादिशरीरबंधनपंचकमुं औदारिकादिशरीरसंघातपंचकमुं औदारिकवैक्रियि-  
काहारकशरीरांगोपांगत्रितयमुं शुभवर्णगंधरसस्पर्शचतुष्टयमुं समचतुरस्रशरीरसंस्थानमुं वज्रवृषभ-  
नाराचशरीरसंहननमुं अगुरुल्लघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योतमेवुपघातोनागुरुल्लघुषट्कमुं प्रशस्तविहायो- २०

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानि । चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि । सम्यक्त्वप्रकृतिः । संज्वलन-  
क्रोधमानमायालोभाः । हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुनपुंसकानि । दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाश्चेति  
षड्विंशतिदेशघातीनि ॥४०॥ घातिनां सर्वदेशघातिभेदो प्ररूप्य अघातिनां प्रशस्ताप्रशस्तभेदप्ररूपणे प्रशस्त-  
प्रकृतीर्गाथाद्वयेन आह—

सातवेदनीयं तिर्यग्यमनुष्यदेवायुषि उच्चैर्गोत्रं मनुष्यगतितदानुपूर्व्यं देवगतितदानुपूर्व्यं पञ्चेन्द्रियं पञ्च- २५  
शरीराणि पञ्चबन्धानि पञ्चसंघाताः त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि शुभवर्णगन्धरसस्पर्शाः समचतुरस्रसंस्थानं वज्रपंभनाराच-

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानावरण, चक्षु अचक्षु अवधि दर्शनावरण, सम्यक्त्व  
प्रकृति, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद,  
पुरुषवेद, नपुंसकवेद, दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्यान्तराय ये छब्बीस देशघातो हैं ॥४०॥

घातिकर्मोंके सर्वघाती देशघाती भेद कहकर अघातीकर्मोंके प्रशस्त और अप्रशस्त ३०  
भेदका प्ररूपण करते हुए प्रशस्त प्रकृतियोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

सातवेदनीय, तिर्यच मनुष्य देवआयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी,  
देवगति देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग,

गतियुं । त्रसबादरपर्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर शुभ सुभग सुस्वरादेय यशस्कीर्तिनिर्माण तीर्थकर नाममैत्र त्रस द्वादशकमुमिन्तष्टष्टि प्रकृतिगळु भेदविवक्षेयिदं प्रशस्तप्रकृतिगळुकुमभेदविवक्षेयिदं द्विचत्वारिंशत्प्रशस्तप्रकृतिगळुकुं ॥ सा १ । आ ३ । उ १ । म २ । सु २ । पं १ । दे ५ । वं ५ ।

२०

सं ५ । अंगो ३ । व ४ । स १ । व १ । अगु ५ । सद्गमन १ । त्रस १२ । कूडि भेदप्रकृतिगळु ६८ ।

५ अभेदविदं ४२ । सद्देद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यमेदु पेळटपट्ट प्रशस्तप्रकृतिगळे बुद्धर्थ ॥

घातिगळनितुमप्रशस्तंगळपुदरिदमबुद्धेरसु अघातिगळोळु अप्रशस्तप्रकृतिगळं गाथाद्वयविदं पेळटपट्ट । :-

घादी नीचमसादं गिरयाळु गिरयतिरियदुग जादी ।

संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचळु ॥४३॥

१० उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु ।

बंधुदयं पडि भेदे अडणडदिसयं दुचदुरसीदिदरे ॥४४॥

घातीनि नीचमसातं नरकायुर्नरकतिर्यग्द्विकजाति । संस्थानसंहननानां चतुः पंच पंचकं च वर्णचतुष्कं ॥

१५ उपघातमसद्गमनं स्थावरदशकं चाप्रशस्ताः खलु । बंधोदयं प्रति भेदेऽष्टनवतिः शतं द्विचतुरस्रराशीतिरितरस्मिन् ॥

सप्तचत्वारिंशद्घातिकर्मगळं नीचैर्गोत्रमुं असातवेदनीयमुं नरकायुष्यमुं नरकगति नरक-  
गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं तिर्यग्गति तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रिय-  
पर्यंतमाद जातिचतुष्टयमुं न्यग्रोधपरिमण्डलादि पंचसंस्थानगळं वज्रनाराचादिपंचसंहननगळं

२० संहननं अगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योताः प्रशस्तविहायोगतिः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभग-  
सुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकराणि । एवमष्टषष्टिभेदविवक्षया प्रशस्ताः अभेदविवक्षया द्विचत्वारिंशत् ।  
सद्देद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यमित्युक्ता एवेत्यर्थः ॥४१-४२॥ अप्रशस्तप्रकृतीर्गाथाद्वेनाह—

घातीनि सर्वाण्यप्रशस्तान्येवेति तानि सप्तचत्वारिंशत् नीचैर्गोत्रं असातवेदनीयं नरकायुष्यं नरकगति-  
तदानुपूर्व्यं तिर्यग्गतितदानुपूर्व्यं एकेन्द्रियादिचतुर्जातयः न्यग्रोधपरिमण्डलादिवज्रसंस्थानानि वज्रनाराचादि-

२५ शुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्श, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, अगुरुलघु, परघात,  
उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ,  
सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण तीर्थकर, इस प्रकार भेदविवक्षासे अडसठ और  
अभेदविवक्षासे बयालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं । तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है—सातावेदनीय,  
शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र पुण्य प्रकृतियाँ हैं ॥४१-४२॥

अप्रशस्त प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

३० घातिकर्मोंकी सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त ही हैं अतः वे सैंतालीस, नीचगोत्र, असात-  
वेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि  
चार जातियाँ, न्यग्रोध परिमण्डल आदि पाँच संस्थान, वज्रनाराच आदि पाँच संहनन,

अशुभवर्णगंधरसस्पर्शमेव वर्णचतुष्टयमुं उपघातमुमप्रशस्तविहायोगतियुं स्थावरसूक्ष्म अपर्याप्त-  
साधारणशरोरास्थिराशुभदुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्तियं ब स्थावरवशकमुमे विउ बंधोदयंगळ  
कूर्त्तु भेदविवक्षेयोळु क्रमदिदमष्टनवतियुं शतमुमपुवु । अभेदविवक्षेयोळु द्व्युत्तराशीतियुं चतुरस्तरा-  
शीतियुमपुवु । घा ४७ । नो १ । अ १ । न १ । नि २ । ति २ । जा ४ । सं ५ । सं ५ ।—

अ = व ४ । उ १ । असदगमन १ । स्था १० । बंधे । भेदे ९८ । उदये । भेदे १०० । बंधे अभेदे ५  
८२ । उदये अभेदे ८४ ॥

कषायंगळ काट्यमं पेळदपरु—

पढमादिया कसाया सम्मत्तं देससयलचारित्तं ।

जहखादं घादंति य गुणनामा होति सेसा वि ॥४५॥

प्रथमादिकाः कषायाः सम्यक्त्वं देशसकलचारित्रं । यथाख्यातं घ्नन्ति च गुणनामानो भवन्ति १०  
शेषा अपि ॥

अनन्तानुबन्धिकषायं सम्यक्त्वं कडिसुगुमेकोदोदप्रतिबंधकत्वमुटपुदरिदं । अप्रत्याख्यान-  
कषायं देशचारित्रं किडिसुगु । प्रत्याख्यानकषायं सकलचारित्रं किडिसुगु । संज्वलनकषायं  
यथाख्यातचारित्रं किडिसुगु । अदुकारणमाणि कषायंगळगुणनाममनुळुवपुववते दोडे :—

अनंतसंसारकारणत्वान्मिथ्यात्वमनन्तं तदनुवधन्तीत्यनन्तानुबन्धिनः । अप्रत्याख्यानमोषत्सं- १५  
यमो देशसंयमस्तं कषंतीत्यप्रत्याख्यानकषायाः । प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तं कषंतीति प्रत्याख्यान-

पञ्चसंहननानि अशुभवर्णगन्धरसस्पर्शाः उपघातः अप्रशस्तविहायोगतिः स्थावरसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणास्थिरा-  
शुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तयः इत्येता अप्रशस्ताः बन्धोदयो प्रति क्रमेण भेदविवक्षायामष्टनवतिः शतं  
च भवन्ति । अभेदविवक्षायां द्व्युत्तराशीतिश्च भवन्ति ॥४३-४४॥ कषायकार्यमाह—

अनन्तानुबन्धिनः सम्यक्त्वं घ्नन्ति । अप्रत्याख्यानकषायाः देशचारित्रं, प्रत्याख्यानकषायाः सकल- २०  
चारित्रं, संज्वलना यथाख्यातचारित्रं तेन गुणनामानो भवन्ति । तथाहि—अनन्तसंसारकारणत्वात् मिथ्या-  
त्वमनन्तं तदनुवधन्तीत्यनन्तानुबन्धिनः । अप्रत्याख्यान-ईषत्संयम देशसंयमः तं कषंतीति अप्रत्याख्यानकषायाः ।

अशुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्श, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण,  
अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीति ये अप्रशस्त प्रकृतियाँ भेदविवक्षामें  
बन्धमें अठानवे तथा उदयमें सौ, अभेदविवक्षामें बन्धमें बयासी और उदयमें चौरासी २५  
होती हैं ॥४३-४४॥

कषायका कार्य कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्वको घातती हैं । अप्रत्याख्यानकषाय देशचारित्रको  
घातती हैं । प्रत्याख्यान कषाय सकल चारित्रको घातती हैं । संज्वलन कषाय यथाख्यात-  
चारित्रको घातती हैं । अतः ये सार्थक नामवाली हैं । यही कहते हैं—अनन्त संसारका ३०  
कारण होनेसे मिथ्यात्व अनन्त कहलाता है उसको जो बाँधती हैं या उसके साथ जो बँधती  
हैं वे अनन्तानुबन्धी हैं । अप्रत्याख्यान कहते हैं ईषत् संयम या देशसंयमको । उसे जो  
घातती हैं वे अप्रत्याख्यानकषाय हैं । प्रत्याख्यान कहते हैं सकलसंयमको, उसे जो घातती हैं

कषायाः । समेकीभूय ज्वलन्ति संयमेन सहावस्थानात् । संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनास्तयेव यथाख्यातं कर्षति संज्वलनाः । कषायाः एवं गुणनामानो भवन्तीत्यर्थः । शेषा अपि नोकषायज्ञानावरणादीन्यप्यन्वर्थसंज्ञानि भवन्तीति ज्ञातव्यानि ॥

संज्वलनादिचतुःकषायंगलवासनाकालमं पेच्छदपरः—

९ अंतोमुहुत्तपक्खं छम्मासं संखासंखणंतभवं  
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण ॥४६॥

अन्तर्मुहूर्तः पक्षः षण्मासाः संख्यासंख्यानंतभवाः । संज्वलनादीनां वासनकालस्तु नियमेन ॥

उदयाभावेऽपि तत्संस्कारकालो वासनाकालः एदितप्प वासनाकालं संज्वलनकषायंगळगे  
१० अन्तर्मुहूर्तं वासनाकालमक्कुं । प्रत्याख्यानकषायंगळगे एकपक्षं वासनाकालमक्कुं । अप्रत्याख्यान-  
कषायंगळगे षण्मासं वासनाकालमक्कुमनंतानुबन्धिकषायंगळगे वासनाकालं संख्यातभवंगळुमसंख्या-  
तभवंगळुमनंतभवंगळुमपुवु नियमदिवं ॥ सं २१ प्र । दि १५ । अप्र मास ६ । अनंता १ ० । ख ।  
वासनाकालंगळ ॥

अनंतरं पुद्गलविपाकीप्रकृतिगळं पेच्छदपरः—

१५ देहादीफस्संता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च ।  
थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं पोग्गलविवाई ॥४७॥

देहादिस्पर्शातानि पंचाशत् निर्म्माणमातपयुगळं च स्थिरशुभप्रत्येकयुगळमगुरुलघुत्रितयं  
पुद्गलविपाकीनि ॥

प्रत्याख्यानं सकलसंयमः तं कर्षतीति प्रत्याख्यानकषायाः । सम् एकीभूत्वा ज्वलन्ति संयमेन सहावस्थानात्  
२० संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः । त एव यथाख्यातं कर्षतीति संज्वलनकषायाः । एवं शेषनोकषाय-  
ज्ञानावरणादीन्यप्यन्वर्थसंज्ञानि भवन्ति ॥४५॥ संज्वलनादिचतुःकषायाणां वासनाकालमाह—

उदयाभावेऽपि तत्संस्कारकालो वासनाकालः । स च संज्वलनानामन्तर्मुहूर्तः । प्रत्याख्यानावरणानामेक-  
पक्षः । अप्रत्याख्यानावरणानां षण्मासाः । अनन्तानुबन्धिनां संख्यातभवाः, असंख्यातभवाः, अनन्तभवा वा  
भवन्ति नियमेन ॥४६॥ अथ पुद्गलविपाकीन्याह—

२५ वे प्रत्याख्यान कषाय हैं । जो संयमके साथ 'सम्' अर्थात् एकरूप होकर ज्वलित होती हैं  
अथवा जिनके होते हुए भी संयम ज्वलित होता है वे संज्वलन कषाय हैं । वे ही यथाख्यात  
संयमको धातती हैं । इसी तरह शेष नोकषाय और ज्ञानावरण आदि भी सार्थक  
नामवाले हैं ॥४५॥

संज्वलन आदि चार कषायोंका वासनाकाल कहते हैं—

३० उदयके अभावमें भी उनका संस्कार जितने काल रहता है उसे वासना काल कहते  
हैं । संज्वलन कषायोंका वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है । प्रत्याख्यानावरण कषायोंका एक पक्ष  
है । अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका छह मास है । अनन्तानुबन्धीकषायोंका संख्यातभव,  
असंख्यातभव अथवा अनन्तभव नियमसे होता है ॥४६॥

पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंको कहते हैं—

औदारिकादिशरीरपंचकमुं तदबंधनपंचकमुं संघातपंचकमुं संस्थानषट्कमुं अंगोपांगत्रितयमुं  
संहननषट्कमुं वर्णपंचकमुं गंधद्वित्रयमुं रसपंचकमुं स्पर्शाष्टकमुमेदिती पंचाशत्प्रकृतिगणं निर्माण-  
नाममुं आतपोद्योतयुगलमुं स्थिरास्थिरशुभाशुभप्रत्येकसाधारणशरीरंगल द्विकंगलं अगुरुलघु-  
उपघातपरघातमेव अगुरुलघुत्रितयमुमेदी द्वाषष्टिप्रकृतिगणं पुद्गलविपाकिगणकं । पुद्गले  
विपाकः पुद्गलविपाकः । सौस्त्येष्विति पुद्गलविपाकीनि येदु गुणनाममवकुं ॥

इन्नुत्तिदभवविपाकिगळंगे क्षेत्रविपाकिगळंगे जीवविपाकिगळंगे पेळदपहः—

आळणि भवविवाई खेतविवाई य आणुपुळ्वीओ ।

अट्टत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणैयव्वा ॥४८॥

आयूषि भवविपाकीनि क्षेत्रविपाकिन्यानुपूर्व्याणि । अष्टसप्तत्यवशेषा जीवविपाकिन्यो  
मंतव्याः ॥

नालकुमायुष्यंगलं भवविपाकिगळकं । नालकुमानुपूर्व्यंगलं क्षेत्रविपाकिगळपुवु । अवशे-  
षाष्टसप्ततिप्रकृतिगळं जीवविपाकिगळं दु बगेयल्पदुवु । औदारिकादिशरीरनिर्वर्तनदोळु विपाक-  
मुळळुदरिदं पुद्गलविपाकिगळं नारकादि भवंगळोळे विपाकमुळळुदरिदं भवविपाकिगळं पूर्वशरी-  
रं बिट्टुत्तरशरीरनिमित्तं विग्रहगतिगळे विपाकमुळळुदरिदं क्षेत्रविपाकिगळं नारकादिजीव-  
पर्यायनिवर्तनदोळु विपाकमुळळुदरिदं जीवविपाकिगळं दिन्तु कर्मप्रकृतिगळंगे कार्यविशेषंगळे-  
ळल्पदुवु । दे ५ । बं ५ । सं ५ । सं ६ । अं ३ । सं ६ । व ५ । ग २ । र ५ । स्प ८ । नि १ ।  
आ १ । उ १ । स्थि १ । अ १ । शु १ । अ १ । प्र १ । सा १ । अ १ । उ १ । प १ । युति ६२ ।  
भवविपाकिगळ ४ । क्षेत्रविपाकिगळ ४ । जीवविपाकिगळ ७८ युति १४८ ॥

अष्टासप्ततिजीवविपाकिगळवाउवे दोडे पेळल्पपहः—

पञ्चशरीरपञ्चबन्धनपञ्चसंघातषट्संहननपञ्चवर्णद्विगन्धपञ्चरसस्पर्शाष्टकमिति पञ्चाशत् । निर्माणं  
आतपोद्योतो स्थिरास्थिरशुभाशुभप्रत्येकसाधारणानि अगुरुलघूपघातपरघाताश्चेति द्वाषष्टिः पुद्गलविपाकीनि  
भवन्ति । पुद्गले एव एषां विपाकत्वात् ॥४७॥ भवक्षेत्रजीवविपाकीन्याह—

चत्वारि आयूषि भवविपाकीनि । चत्वारि आनुपूर्व्याणि क्षेत्रविपाकीनि अवशिष्टाष्टसप्ततिः जीव-  
विपाकीनि नारकादिजीवपर्यायनिवर्तनहेतुत्वात् । एवं प्रकृतिकार्यविशेषाः ज्ञातव्याः ॥४८॥ तानि जीवविपाकीनि  
कानि ? इति चेदाह—

पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन,  
पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श ये पचास, निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर-अस्थिर,  
शुभ-अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात ये सब बासठ पुद्गलविपाकी हैं  
क्योंकि पुद्गलमें ही इनका विपाक होता है ॥४७॥

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियोंको कहते हैं—

चार आयु भवविपाकी हैं । चार आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी हैं । शेष अष्टहत्तर प्रकृतियाँ  
जीवविपाकी हैं क्योंकि नारक आदि जीवपर्यायोंकी रचनामें निमित्त हैं । इस प्रकार  
प्रकृतियोंका कार्यविशेष जानना चाहिए ॥४८॥

वे जीवविपाकी प्रकृतियाँ कौन हैं, यह कहते हैं—

वेदणियगोदधादीणेक्कावण्णं तु णामपयडोणं ।

सत्तावीसं चेदे अट्टतरि जीवविवाईओ ॥४९॥

वेदनीयगोत्रधातिनामेकपंचाशत् तु नामप्रकृतोनां । सप्तविंशतिश्चैतान्यष्टसप्ततिर्जीवविपाकीनि ॥

५ वेदनीयद्विकमुं गोत्रद्विकमुं धातिसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतिगळुमिन्तु कूडि एकोत्तरपंचाशत्प्रकृतिगळुं नामकर्मदोळु सप्तविंशतिप्रकृतिगळुमिन्तु जीवविपाकिगळु मुं पेळदण्टासप्ततिप्रकृतिगळुप्पुवु ॥

नामकर्मदं सप्तविंशतिगळाउर्वं दोडे गाथाद्वयदिदं पेळदपरु :—

तित्थयरं उस्सासं बादरपञ्जत्तसुस्सरादेज्जं ।

जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं ॥५०॥

१० तीर्थंकरमुच्छ्वासं बादरपर्याप्तसुस्वरादेययशस्कीर्तित्रसविहायोगतिमुभगद्वयं चतुर्गतिः पञ्चजातयः सप्तविंशतिः ॥

तीर्थंकरनाममुच्छ्वासमुं बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तसुस्वरदुस्वर आदेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तित्रसस्थावरप्रशस्तविहायोगत्यप्रशस्तविहायोगतिमुभगदुर्भगगळुं चतुर्गतिनामकर्मगळुं पञ्चजातिनामकर्मगळुमेदितु नामकर्मदोळु जीवविपाकिगळु सप्तविंशतिगळुप्पुवु । ती १ । उ १ । १५ वा २ । प २ । सु २ । आ २ । य २ । त्र २ । वि २ । सु २ । ग ४ । जा ५ । कूडि २७ ।

गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च ।

सुभगादी चउजुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥५१॥

गतिजातयः उच्छ्वासो विहायोगति त्रसत्रयाणां युगलं च । सुभगादि चतुर्गुणलं तीर्थंकरं चेति सप्तविंशतिः ॥

२० वेदनीयद्वयं गोत्रद्वयं धातिसप्तचत्वारिंशत् नामसप्तविंशतिश्चेति अष्टसप्ततिर्जीवविपाकीनि भवन्ति ॥४९॥ तत्सप्तविंशति गाथाद्वयेनाह—

तीर्थंकरं, उच्छ्वासः बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तसुस्वरदुस्वरादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तित्रसस्थावरप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिमुभगदुर्भगचतुर्गतिः पञ्चजातयश्चेति नामकर्म सप्तविंशतिः ॥५०॥

चतुर्गतिः पञ्चजातयः उच्छ्वासः विहायोगतित्रसबादरपर्याप्तयुगलानि सुभगसुस्वरादेययशस्कीर्ति- २५ युगलानि तीर्थंकरं चेत्यथवा नाम सप्तविंशतिः ।

दो वेदनीय, दो गोत्र, धातिकर्मोंकी सैंतालीस और नामकर्मकी सत्ताईस ये अठहत्तर प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं ॥४९॥

नामकर्मकी वे सत्ताईस प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

३० तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, चार गति, पाँच जाति ये नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ॥५०॥

चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्तका युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्तिका युगल और तीर्थंकर ये नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ।

नात्कुगतिगळुमय्दु जातिगळुमुच्छ्वासम् विहायोगति त्रसबादरपयमिपुगळंगळं सुभग-  
सुस्वरादेयशस्कोत्तिशुयुगळंगळं तीर्षकरनाममुमिन्तु मेणु नामकर्मदोळु जीवविपाकिगळु  
सप्तविंशतिगळुपुवु १२७ ॥ ग ४ । जा ५ । उ १ । वि २ । त्र २ । वा २ । प २ । सु २ । सु २ ।  
आ २ । य २ । ती १ । युति २७ ॥

अनंतरं सामान्यकर्ममूलोत्तरकर्मप्रकृतिगळोळु प्रथमोदिदृशसामान्यकर्म नामकर्म ५  
स्थापनाकर्म द्रव्यकर्म भावकर्मभेदविदं चतुर्विधमेदु पेळदपरेकेदोडे :-

अवगयणिवारणद्वं पयदस्स परुवणाणिमित्तं च ।

संशयविनासणद्वं तच्चट्टवधारणद्वं च ॥

अप्रकृतनिवारणार्थं प्रकृतस्य प्ररूपणानिमित्तं च । संशयविनाशनात्थं तत्त्वार्थविधारणार्थं च ॥

अप्रकृतार्थनिवारणार्थमागियुं प्रकृतार्थप्ररूपणानिमित्तमागियुं संशयविनाशनात्थमागियुं १०  
तत्त्वार्थविधारणार्थमागियुं चतुर्विधनामादिनिक्षेपं पेळत्पडुगुमेकेदोडे—भोतुगळु त्रिविधमप्पर-  
व्युत्पन्ननुसवगताशेषविवक्षितपदार्थनुमेकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्थममेदितिवरोळु प्रथमोदिदृश-  
व्युत्पन्ननव्युत्पन्नतत्पुदरिदं विवक्षितपदार्थनुं नाध्यवस्यति निश्चयिसत्त्वेरेयं । अवगताशेषविवक्षित-  
पदार्थनप्प द्वितीयनुं संशेते संदेहिसुगुमेतेदोडे—कोऽर्थोऽस्य पदस्याधिकृत इति । प्रकृतार्था-  
दन्यमर्थमादाय विपर्ययस्यति वा इन्तु विपरीतनुमक्कुं । मेणु एकदेशतोवगतविवक्षितपदार्थनप्प १५  
तृतीयनुं द्वितीयनते संशेते संदेहिसुगुं । प्रकृतादर्थान्यमर्थमादाय विपर्ययस्यति वा । प्रकृतार्थ-  
दत्तणिदं मन्यार्थमं कैकोडु विपरीतनक्कु मेणु एकेदोडे सामान्यप्रत्यक्षदत्तणिदमुं विशेषाऽप्रत्यक्ष-

ननु श्रोतारस्त्रिविधाः—अव्युत्पन्नः अवगताशेषविवक्षितपदार्थः एकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्थश्चेति ।  
तत्र प्रथमः—अव्युत्पन्नत्वात् विवक्षितपदार्थं नाध्यवस्यति इदमित्यमेवेति याथात्म्यप्रतिपत्त्यनुत्पत्तेः । गच्छत-  
स्तृणस्पर्शवत् । द्वितीयः—कोर्थोऽस्य ? इति संशेते । सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् उभयविशेषस्मृतेश्च २०  
संशयस्य दुर्निवारत्वात् । स्थाणुर्वा पुरुषो वेति । अथवा प्रकृतार्थान्यमर्थमादाय विपर्ययति । सामान्यप्रत्यक्षात्  
विशेषाप्रत्यक्षात् विपरीतस्मृतेश्च विपर्ययस्यावश्यभावात् शुक्तिकाशकले रजतमिति । तथा तृतीयोऽपि  
द्वितीयवत् संशेते विपर्ययति च । तत् एवाप्रकृतार्थनिवारणार्थं प्रकृतार्थप्ररूपणार्थं संशयविनाशार्थं तत्त्वार्थ-

श्रोता तीन प्रकारके होते हैं—अव्युत्पन्न, समस्त विवक्षित पदार्थको जाननेवाला  
और एकदेशसे विवक्षित पदार्थको जाननेवाला । इनमें-से प्रथम अव्युत्पन्न होनेसे विवक्षित २५  
पदार्थको नहीं जानता, यह ऐसा ही है इस प्रकारका यथार्थज्ञान उसे नहीं होता । जैसे  
मार्गमें चलते हुएको तृणका स्पर्श होनेपर यथार्थ ज्ञान नहीं होता कि क्या है । दूसरा 'इसका  
क्या अर्थ है' इस प्रकार संशय करता है । क्योंकि सामान्यका प्रत्यक्ष, विशेषका अप्रत्यक्ष  
और दोनोंके विशेष धर्मोंका स्मरण होनेसे संशय अवश्य होता है जैसे यह स्थाणु है या  
पुरुष है । अथवा वह प्रकृत अर्थसे अन्य अर्थ लेकर विपरीत जानता है जैसे सीपमें ३०  
चाँदीका ज्ञान करना । यहाँ दोनोंमें पाये जानेवाले समान धर्मका प्रत्यक्ष और दोनोंके  
विशेष धर्मोंका प्रत्यक्ष न होनेसे व सीपसे विपरीत चाँदीका स्मरण आनेसे सीपको चाँदी  
समझ लेता है । तीसरा श्रोता भी दूसरेकी तरह संशय करता है या विपरीत जान लेता  
है । इसीलिए अप्रकृत अर्थका निवारण, प्रकृत अर्थका प्ररूपण, संशयका विनाश और  
तत्त्वका अवधारण करनेके लिए जबतक सामान्य आदि भेद-प्रभेदवाले कर्मका कथन ३५



- वत्तणिदमु उभयविशेषविपरीतस्मृतिवत्तणिदमु संशयज्ञानमु विपर्ययसिद्धान्तमु पुट्टुगुं । स्थाणुवर्वा पुरुषो वा एदित्तु शुक्तिकाशकले रजतमेदित्तु । आवुदोदु कारणदिदमिदमित्यमेव वस्तुवदित्तु वस्तु याथात्म्याऽप्रतिपत्तियदु अनध्यवसायमेव बुदवकुं । गच्छतस्तृणस्पर्शवत् । एदित्तु कारणदिदं संशयादिगळोळु व्यवस्थितनप्प शिष्यनना संशयादिगळिदं तोलगिसिनिणये निश्चये क्षिपतीति
- ५ निक्षेपः । अप्रस्तुतात्थापाकरणदिदमु प्रस्तुतात्थव्याकरणदिदमुमी नामादिचतुर्विधनिक्षेपं फलवन्त-  
मक्कुमा नामादिगळ लक्षणमेतदोडेः—अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये । यत्संज्ञा कर्म  
तन्नाम नरेच्छावशवर्तनात् ॥ त एव गुणास्तद्गुणाः । न तद्गुणा एषां ते अतद्गुणास्तेषु भावेषु  
पदात्थेषु व्यवहारप्रसिद्धये व्यवहारप्रसिद्धयर्थं यत्संज्ञाकर्म यत्संज्ञाकरणं तन्नाम तन्नामेति  
प्रतिपद्यते । अतद्गुणंगळप्प पदात्थंगळोळु व्यवहारप्रसिद्धिनिमित्तमाणि यावुदोदु नामकरणमदु
- १० नाममेदु पेळत्पट्टुदु । येकंदोडा नामक्के पुरुषेच्छावशवर्तनमुट्टुपुदे कारणमाणि । तथा चोक्तः—  
अंतं पेळत्पट्टुदु—

अयमर्थो नायमर्थ इति शब्दा वदन्ति न ।

कल्प्योऽयमर्थः पुरुषैस्ते च रागादिविप्लुताः ॥

- इदत्थंमपुदिदत्थंमल्लदुदेदित्तु शब्दंगळु पेळदुवल्लु । मत्तेतदोडे पुरुषैरयमर्थः कल्प्यः
- १५ पुरुषरुगळिदमी शब्दक्कत्थमिदपुदित्तेदित्तु कल्पिसत्पडुगुमा पुरुषरुगळु रागादिदोषदूषितरिदं  
विप्लुतंगळु विप्लवमनुळुदरिदं ।

“साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनं ।

सोऽयमित्यवधानेन स्थापना सा निगद्यते ॥”

- वस्तुसादृश्यदोळु मेणसादृश्यदोळं मेणु काष्ठादिद्रव्यदोळु यन्निवेशनं आउदोदु निक्षेपण-
- २० मदाव तेरदिनेदोडे—सोऽयमिति अदिदेदित्तु अवधानेन प्रयत्नविशेषदिदं सा स्थापना निगद्यते अदु  
स्थापनेयेदु पेळत्पट्टुदु ।

धारणार्थं च यावत्सामान्यादिभेदप्रभेदं कर्म, नामादिचतुर्विधनिक्षेपाश्रयेण नीच्यते तावत् तेषां श्रोतॄणां मनः  
संशयादिभ्यो न निवर्तते इति तल्लक्षणमुच्यते—

अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये । यत्संज्ञाकर्म तन्नाम नरेच्छावशवर्तनात् ॥१॥

- २५ साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनम् । सोऽयमित्यवधानेन स्थापना सा निगद्यते ॥२॥

- नाम आदि चार प्रकारके निक्षेपोंके आश्रयसे नहीं किया जाता तबतक उनके विषयमें  
श्रोताओंके मनसे संशयादि दूर नहीं होते । इसलिए नामादि निक्षेपोंका लक्षण कहते हैं—  
जिन पदार्थोंमें जो गुण नहीं हैं उनमें व्यवहार चलानेके लिए मनुष्यकी इच्छानुसार जो  
संज्ञा रखी जाती है वह नामनिक्षेप है । साकार अथवा निराकार काष्ठ आदिमें ‘यह वह है’
- ३० इस प्रकारका ध्यान करके जो निवेश किया जाता है उसे स्थापना कहते हैं । आगामी गुणके  
योग्य अर्थ द्रव्यनिक्षेपका विषय है और तत्कालकी पर्यायसे युक्त वस्तु भावनिक्षेपका विषय  
है । उदाहरणके रूपमें—जैसे किसी व्यक्तिने अपनी इच्छानुसार व्यवहार चलानेके लिए  
अपने पुत्रका नाम राजा रखा । सो उसको राजा कहना नामनिक्षेप है । काष्ठ आदिको  
प्रतिमामें या चित्रमें ‘यह राजा है’ ऐसी स्थापना करके उसे राजा मानना स्थापनानिक्षेप

- ३५ १. म विप्लुतरुगळु । साकारे ।

“आगामिगुणयोग्योऽर्थो द्रव्यं न्यासस्य गोचरः ।

तत्कालपर्ययाक्रांतं वस्तु भावोऽभिधीयते ॥”

आगामिगुणयोग्यार्थः आगामिगुणगच्छिणे योग्यमप्यर्थं कथंभूतः न्यासस्य गोचरः निक्षेपवर्गेगोचरमप्युदु द्रव्यं द्रव्यमेदितिल पेळल्पट्टदुदु । तत्कालपर्ययाक्रांतं वस्तु तत्कालपर्ययादिदं परिणतमप्यु वस्तु भावः भावमेदितु अभिधीयते पेसगोळल्पट्टदुदु ।

मुपेळ्द चतुर्विधनामादिगळोळु सामान्यकर्म मूलोत्तरप्रकृतिगळ्णे न्यासमं चतुस्त्रिंशद्-गाथासूत्रगळिदं पेळ्दपरुः—

णामं ठवणा दवियं भावोत्ति चउव्विहं हवे कम्मं

पयडो पावं कम्मं मलं ति मण्णा हु णाममलं ॥५२॥

नाम स्थापना द्रव्यं भाव इति चतुर्विधं भवेत्कर्म । प्रकृतिः पापं कर्म मलमिति संज्ञं १० खलु नाममलं ।

नामकर्म स्थापनाकर्म द्रव्यकर्म भावकर्ममेदितु कर्मसामान्यं चतुर्विधमवकुमवरोळु प्रथमोद्दिष्टनाममलं नामकर्म प्रकृतिः प्रकृतियेदुं पापं पापमेदुं कर्म कर्ममेदुं मलमिति मलमु-मेदितु संज्ञं भवेत् संज्ञेयन्तुळ्दक्कुं ।

सरिसासरिसे दव्वे मदिणा जीवडियं खु जं कम्मं ।

तं एदत्ति पदिट्ठा ठवणा तं ठावणा कम्मं ॥५३॥

सादृश्यासादृश्यद्रव्ये मत्या जीवस्थितं खलु यत्कर्म । तदेतदिति प्रतिष्ठा स्थापना तत्-स्थापनाकर्म ॥

सद्भाववस्तुविनोळमसद्भाववस्तुविनोळं । मत्या बुद्धियिदं जीवाशेषप्रदेशप्रचययंगळोळि-रुतिदं यत्कर्म आउदोदु सामान्यकर्म । तदेतदिति अदिदेदितु प्रतिष्ठा स्थापना स्थापने तत् २० स्थापनाकर्म अदु स्थापनाकर्ममेदु पेळल्पट्टदुदु ।

आगामिगुणयोग्योऽर्थो द्रव्यं न्यासस्य गोचरः । तत्कालपर्ययाक्रान्तं वस्तु भावोऽभिधीयते ॥३॥

॥५१॥ अथ नामादिषु सामान्यकर्म मूलोत्तरप्रकृतौश्च चतुस्त्रिंशद्गाथासूत्रैरन्यस्यति—

कर्मसामान्यं नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नाममलं नामकर्म । प्रकृतिरिति-पापमिति-कर्ममिति-मलमिति च संज्ञं स्यात् ॥५२॥

सदृशे असदृशे वा वस्तुनि मत्या जीवाशेषप्रदेशप्रचयस्थितं यत्सामान्यकर्म तदिदमिति प्रतिष्ठा स्थापनाकर्मैत्युच्यते ॥५३॥

है । आगे जो राजा होगा उसको राजा कहना द्रव्यनिक्षेप है और वर्तमानमें जो पृथ्वीका स्वामी राज्यासनपर विराजता है उसे राजा कहना भावनिक्षेप है ॥५१॥

सामान्य कर्म और मूल तथा उत्तर प्रकृतियोंमें नामादि निक्षेपका कथन चौतीस गाथाओं द्वारा करते हैं—कर्मसामान्य नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकार है । उसमें प्रकृति, पाप कर्म अथवा मल ऐसी संज्ञा नाममल है ॥५२॥

कर्मके समान अथवा असमान द्रव्यमें बुद्धिके द्वारा ‘जीवके समस्त प्रदेशोंमें स्थित जो सामान्य कर्म है वह यह है’ ऐसी स्थापना स्थापनाकर्म है ॥५३॥

द्वये कर्मं दुविहं आगमनोआगमं ति तत्पट्टमं ।

कर्मममपरिज्ञाणगजीवो उवजोगपरिहीणो ॥५४॥

द्रव्ये कर्मं द्विविधमागम नोआगम इति तत्प्रथमं । कर्मममपरिज्ञायकजीवः उपयोग-  
परिहीनः ॥

५ द्रव्यदोषो कर्मं द्विविधमक्कुमागमद्रव्यकर्ममेदुं नोआगमद्रव्यकर्ममुमेदितु । तत्प्रथमं  
तद्योर्मध्ये प्रथममागमद्रव्यकर्मं कर्मममपरिज्ञायकजीवः कर्मममवाच्यवाचकज्ञातृज्ञेयसंबन्ध  
परिज्ञायिकजीवनत्वं । उपयोगपरिहीनः अनुपयुक्तनत्वं । तच्छास्त्रार्थाविधारणानुचितनव्यापार-  
रहितनेबुद्धत्वं ।

जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं विदियं ।

१० तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयंति दो सुगमा ॥५५॥

ज्ञायकशरीरं भव्यं तद्व्यतिरिक्तं तु भवति यदिद्वितीयं । तत्र शरीरं त्रिविधं त्रिकालगत-  
मिति द्वे सुगमे ॥

१५ यद्वितीयं आवुदोदु नोआगमद्रव्यकर्मं तत्त्रिविधं अदु त्रिविधमक्कुं ज्ञायकशरीरं भावि  
तद्व्यतिरिक्तमिति । ज्ञातृशरीरमेदुं ज्ञायि भाविशरीरमेदुं आयेरडरिवं व्यतिरिक्तमेदितु । तु मत्ते  
तत्र अवरोळु शरीरं प्रथमोद्दिष्टज्ञायकशरीरं त्रिविधं त्रिप्रकारमक्कुं । त्रिकालगतमिति त्रिकाल-  
गळोळु भूतभाविष्यद्वर्तमानकालगळोळिदुदुवेदितु द्वे सुगमे तत् ज्ञातृविन त्रिकालगतशरीरंगळोळु  
भूतशरीरमं विदुदुळिद वत्तमानभाविशरीरंगळोळेरदु सुगमंगळोळेरदोडे वत्तमानदोळिरुत्तिदुदुं  
भाविकालदोळागत्वेडिदुदुमपुदरिवं ।

भूतशरीरकके पेळदपरु :—

२० द्रव्ये कर्म द्विविधं आगमनोआगममेदात् । तत्र कर्मस्वरूपप्रतिपादकागमस्य वाच्यवाचकज्ञातृज्ञेय-  
संबन्धपरिज्ञायकजीवो यः तदर्थविधारणचिन्तनव्यापाररूपोपयोगरहितः स आगमद्रव्यकर्म भवति ॥५४॥

तु—पुनः यद्वितीयं नो—आगमद्रव्यकर्म तत्त्रिविधं भवति—ज्ञायकशरीरं भावि तद्व्यतिरिक्तमिति ।  
तत्र ज्ञायकशरीरं त्रिविधं त्रिकालगतमिति । तत्र वर्तमानभाविशरीरे द्वे सुगमे तत्तत्कालवर्तित्वात् ॥५५॥  
भूतशरीरस्याह—

२५ द्रव्यनिक्षेप रूप कर्मके दो भेद हैं—आगम द्रव्यकर्म और नोआगमद्रव्यकर्म । उनमें-से  
कर्मके स्वरूपका कथन करनेवाले आगमका वाच्य-वाचक सम्बन्ध और ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध  
से जाननेवाला जो जीव वर्तमानमें उसके अर्थके अवधारण और चिन्तन व्यापाररूप  
उपयोगसे रहित है अर्थात् उसका उपयोग अन्य ओर है वह आगमद्रव्यकर्म है ॥५४॥

३० जो दूसरा नोआगमद्रव्यकर्म है वह तीन प्रकारका है—ज्ञायकशरीर, भावि,  
तद्व्यतिरिक्त । उनमें-से ज्ञायक शरीर तीन प्रकार है—भूत, भावि और वर्तमानकालीन । जिस  
शरीर सहित जीव कर्मके स्वरूपको जानता है उसका वह शरीर वर्तमान है । उससे पूर्वका  
छोड़ा हुआ शरीर भूत है और आगामीमें जो शरीर धारण करेगा वह भावि है । उनमें-से  
वर्तमान और भाविशरीर दो सुगम हैं, क्योंकि दोनों अपने-अपने कालवर्ती होते हैं ॥५५॥

भूत शरीरको कहते हैं—

भूदं तु चुदं चयिदं चत्तंति तिधा चुदं सपाकेण ।

पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि ॥५६॥

भूतं तु च्युतं च्यावितं त्यक्तमिति त्रिधा च्युतं स्वपाकेन । पतितं कदलीघातपरित्यागाभ्या-  
मूनकं भवति ॥

ज्ञायकन भूतशरीरं । तु मत्ते । च्युतशरीरमे'दुं च्यावितशरीरमे'दुं त्यक्तशरीरमे'दितु । ५  
त्रिधा त्रिप्रकारमक्कुमल्लि । च्युतं च्युतशरीरमे'बुदु ॥स्वपाकेन पतितं स्वस्थितिक्षयवशदिदं बिदुं  
पोदुवागियुं । कदलीघातपरित्यागाभ्यामूनकं भवति कदलीघातमुं सन्यासमुमे'बेरडीरिदं हीनमादु-  
दक्कुं ।

कदलीघातकके लक्षणमं पेळदपहः—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थगहणसंकिलेसेहिं ।

१०

उस्सासाहाराणं निरोहदो छिज्जदे आऊ ॥५७॥

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंकलेशैः । उच्छ्वासाहाराणां निरोधतः छिद्यते आयुः ॥  
विषमुं वेदनेयुं रक्तक्षयमुं भयमुं शस्त्रघातमुं संक्लेशमुमुच्छ्वासनिरोधमुमाहारनिरोधमु-  
मे'बी हेतुगळिदमायुष्यं खंडितपडुगुमदु कदलीघातमे'बुदक्कुं ।

कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि ।

१५

घादेण अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥५८॥

कदलीघातसमेतं त्यागविहीनं त च्यावितं भवति । घातेनाघातेन वा पतितं त्यागेन  
त्यक्तमिति ॥

तु मत्ते ज्ञायकनाउदो'दु भूतशरीरं । कदलीघातसमेतं कदलीघातसमेतमागि पतितं बीळल्-  
पट्टु । चागविहीणं त्यागविदं हीनमादुदादोडे । च्यावितं भवति च्यावितमे'बुदक्कुं । मत्तमा २०

ज्ञायकस्य भूतशरीरं तु पुनः च्युतं च्यावितं त्यक्तं चेति त्रिधा । तत्र च्युतं स्वपाकेन पतितमपि  
कदलीघातसन्यासाभ्यामूनं भवति ॥५६॥ कदलीघातस्य लक्षणमाह—

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रघातसंक्लेशोच्छ्वासनिरोधाहारनिरोधैर्हेतुभिरायुः छिद्यते स कदली-  
घातः ॥५७॥

तु—पुनः ज्ञायकस्य यद्भूतशरीरं कदलीघातसमेतं सत् पतितम् । त्यागेन संन्यासेनोनं तदा तच्च्यावित-

२५

ज्ञायकका भूत शरीर च्युत, च्यावित, त्यक्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमें-से च्युत-  
शरीर स्वयं पककर अपने समयसे छूटता है । वह कदलीघात और संन्यास इन दोनोंसे  
रहित होता है ॥५६॥

कदलीघातका लक्षण कहते हैं—

विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश, उच्छ्वासका रुकना या आहारका ३०  
न मिलना आदि कारणोंसे आयुका छेद होनेको कदलीघात कहते हैं ॥५७॥

ज्ञायकका जो भूत शरीर कदलीघातपूर्वक छूटता है किन्तु संन्याससे रहित होता है

१. म'तसहितमा' । २. आ त्रिविधा । ३. आ'घातं लक्षयति ।

ज्ञातृविना उदोदु भूतशरीरं घातेनाघातेन वा कदलीघातविदं मेणकदलीघातरहितविदं मेणु ।  
त्यागेन पतितं सन्यासपहितमाणि पतितमादुदु । त्यक्तमिति त्यक्तशरीरमेदितु पेळपट्टुदु ।

आ त्यक्तशरीरं मरणविधानभेदविदं त्रिविधमेदु पेळदपह :—

भक्तपङ्गणाङ्गिणिपाओग्गविहीहि चत्तमिदि तिविहं ।

५ भक्तपङ्गणा तिविहा जहणमज्झिमवरा य तथा ॥५९॥

भक्तप्रतिज्ञाङ्गिनीप्रायोपगमनविधिभिस्त्यक्तमिति त्रिविधं । भक्तप्रतिज्ञा त्रिविधा जघन्य-  
मध्यमवरा च तथा ॥

ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरं भक्तप्रतिज्ञाङ्गिनीप्रायोपगमनविधिभिः । भक्तप्रतिज्ञेयुं इङ्गिनियुं  
प्रायोपगमनमुमेव मरणविधानभेदंगच्छिदं । त्यक्तं जिडलपट्टुदेदितु । त्रिविधं त्रिप्रकारमक्कुमल्लि  
१० प्रथमोद्दिष्टभक्तप्रतिज्ञा तथा ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरदन्ते । त्रिविधा त्रिप्रकारमक्कु । जघन्यभक्त-  
प्रतिज्ञाविधान मृतिप्रेदु मध्यमभक्तप्रतिज्ञाविधानमरणमेदुमुत्कृष्टभक्तप्रत्याख्यान मरणमुमेदितु ।

अनन्तरं त्रिविधभक्तप्रतिज्ञाविधानमरणंगच्छे कालप्रमाणमं पेळदपह :—

भक्तपङ्गणायविही जहणमंतोमुहुत्तयं होदि ।

वारसवरिसा जेड्ढा तम्मज्झे होदि मज्झिमया ॥६०॥

१५ भक्तप्रतिज्ञाविधिर्जघन्योऽन्तर्मुहूर्तो भवति । द्वादशवर्षाण्युत्कृष्टस्तन्मध्ये भवति मध्यमकाः ॥

भक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालं जघन्यमन्तर्मुहूर्तमक्कुमुत्कृष्टं द्वादशवर्षंगच्छुपुवु । मध्यभक्त-  
प्रतिज्ञामरणविधानकालंगच्छु । तन्मध्ये तयोर्जघन्योत्कृष्टयोर्मध्यं तस्मिन् । आ एरडर मध्यदोळु  
समयाधिकजघन्यान्तर्मुहूर्तमादिपाणि समयाधिककर्मविदं उत्कृष्टविधान द्वादशवर्षंगळोलेकसम-  
योनसंख्यातावलिपरियंतमाव सव्वमध्यमविकल्पंगळ संख्यातावलिप्रमितंगळपुदरिदं युक्तासंख्यात-

२० मिति भवति । कदलीघातेन तद्विना वा त्यागेन पतितं त्यक्तमिति ॥५८॥ तस्यैव मरणविधानेन त्रिविधमाह-  
तत् त्यक्तशरीरं भक्तप्रतिज्ञा-इङ्गिनी-प्रायोपगमनमरणविधिभिस्त्यक्तमिति त्रिविधम् । तत्र भक्तप्रतिज्ञापि  
तथा ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरवत् त्रिधा जघन्या मध्यमोत्कृष्टेति ॥५९॥ तज्जघन्यादेः कालप्रमाणमाह—

भक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालः जघन्योऽन्तर्मुहूर्तो भवति । २१ । उत्कृष्टो द्वादशवर्षमात्रो भवति ।

२५ वह च्यावित होता है । कदलीघातसे या उसके बिना किन्तु संन्यासपूर्वक छूटा शरीर त्यक्त  
होता है ॥५८॥

उसी त्यक्तशरीरके त्यागके मरणविधानकी अपेक्षा तीन भेद कहते हैं—

वह त्यक्तशरीर भक्त प्रतिज्ञा, इङ्गिनी और प्रायोपगमन नामक मरणविधिके भेदसे  
तीन प्रकार है । जैसे ज्ञायकका भूत त्यक्तशरीर तीन प्रकारका है वैसे ही भक्तप्रतिज्ञा भी  
जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदसे तीन प्रकार है ॥५९॥

३० उन जघन्य आदि भेदोंके कालका प्रमाण कहते हैं—

भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजनकी प्रतिज्ञापूर्वक मरणविधानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त

मध्यपतितासंख्यातराशिप्रमाणमधुववर्क संदृष्टिः—आदि २० अन्तेव १२ सुद्धे २१ । १ । वद्धि-  
हिदे २१ १ रुवसंजुदे २१ २१ ठाणा । येदितिनितु मध्यमकालविकल्पगळसंख्याततंगळपुवे-  
बुदवर्ण ॥

यिगिनीप्रायोपगमनमरणगळगे लक्षणमं पेळदपहः—

अप्योवयारवेक्खं परोवयारुणमिगिणीमरणं ।

सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि ॥६१॥

आत्मोपचारपेक्षं परोपचारोर्नामिगिनीमरणं । स्वपरोपचारहीनं मरणं प्रायोपगमनमिति ॥  
तन्निदं तनगे माळुपचारापेक्षमुं परोपचारनिरपेक्षमुंमिगिनीमरणमेबुदवकुं । स्वपरोपचार-  
रहितं मरणं प्रायोपगमनमेबुदवकुं ॥

ज्ञायकशरीरभेदमं पेळदनंतरं भावि ज्ञातृकशरीरमं पेळदपहः—

भवियंति भवियकाले कम्मागमजाणगो स जो जीवो ।

जाणुगसरीरभवियं एवं होदित्ति णिदिट्ठं ॥६२॥

भविष्यति भाविकाले कर्म्मगमज्ञायकः स यो जीवः । ज्ञायकशरीरभयः एवं भवतीति  
निदिष्टं ॥

यः आवनोव्वं मुपेळपट्ठं । कर्म्मगमज्ञायकः कर्म्मगमज्ञायी । भाविकाले भाविकालदोळु  
भविष्यति आवहनु । स जीवः आ जीवं । ज्ञायकशरीरभयः ज्ञायकभाविशरीरमवकुमिन्तु भावियेदु  
पेळपट्ठुज्ञायकशरीरं एवं भवति निदिष्टं इत्तपुवेदु पेळपट्ठु ॥

२ १ १ १ । तन्मध्यवर्ती समयोत्तरविकल्पः स सर्वाऽपि मध्यमो भवति ॥६०॥ इगिनीप्रायोपगमनमरणे  
लक्षयति—

स्वकृतोपचारापेक्षं परोपचारनिरपेक्षं तदिगिनीमरणम् । स्वपरोपचाररहितं तन्मरणं प्रायोपगमन-  
मिति ॥६१॥ ज्ञायकशरीरभेदमुक्त्वा भाविज्ञातृशरीरमाह—

यः कर्म्मगमज्ञायको भाविकाले भविष्यति स जीवो ज्ञायकभाविशरीरं स्यात् । एवं भावीत्युक्त-  
ज्ञायकशरीरं भवति इति निदिष्टम् ॥६२॥

है । उत्कृष्ट बारह वर्ष प्रमाण है । उनके मध्यवर्ती एक-एक समय अधिक जितने भेद हैं वह  
सब मध्यम कालका प्रमाण है ॥६०॥

इगिनी और प्रायोपगमन मरणका लक्षण कहते हैं—

जिस संन्यासमरणमें संन्यास धारण करनेवाला अपने शरीरका उपचार स्वयं तो  
करता है किन्तु दूसरेसे नहीं कराता वह इगिनी मरण है । और जिसमें अपना उपचार न  
स्वयं करता है, न दूसरेसे कराता है वह प्रायोपगमन मरण है ॥६१॥

ज्ञायक शरीरके भेद कहकर भाविज्ञायक शरीरको कहते हैं—

जो भविष्यकालमें कर्मविषयक आगमका ज्ञाता होगा वह जीव ज्ञायकभावि है इस  
प्रकार भाविज्ञायक शरीर कहा है ॥६२॥

१. आ. ०रहितं तेजो प्रां ।

अनंतरं तद्व्यतिरिक्तं पेञ्चदशः—

तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्मं नोऽकर्ममिदि तर्हि कर्मम् ।

कर्मस्वरूपेणागम्य कर्मं दत्तं हवे णियमा ॥६३॥

तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्मं नोऽकर्म इति तस्मिन् कर्मम् । कर्मस्वरूपेणागतकर्मद्रव्यं

५ भवेन्नियमात् ॥

ताभ्यां व्यतिरिक्तं ज्ञायकशरीरभाविशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं । अरिवन शरीरमरियलु वेडिहंनशरीरमुमे वेरडुमल्लदुदु तद्व्यतिरिक्तमे बुदक्कुमदु द्विविधं द्विप्रकारमक्कुं । कर्मं नोऽकर्म इति कर्मरूपं तद्व्यतिरिक्तनोऽगमद्रव्यमे बुं नोऽकर्मरूपतद्व्यतिरिक्तनोऽगमद्रव्यमुमे दितु । तस्मिन् आ द्विविधदोळु कर्मं कर्मस्वरूपं तद्व्यतिरिक्तनोऽगमद्रव्यं कर्मस्वरूपेणागतद्रव्यं

१० ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपदिदं परिणतकर्मद्रव्यमक्कुं नियमात् नियमदिदं ॥

अनंतरं नोऽकर्मरूपं तद्व्यतिरिक्तं नोऽगमद्रव्यं पेञ्चदशः—

कर्मदत्त्वादणं दत्तं नोऽकर्मदत्तमिदि होदि ।

भावे कर्मं द्विविधं आगमनोऽगममंति हवे ॥६४॥

कर्मद्रव्यादन्यद्रव्यं नोऽकर्मद्रव्यमिति भवति । भावे कर्मं द्विविधं आगम नोऽगम इति

१५ भवेत् ॥

कर्मस्वरूपद्रव्यदत्तणिवं । अन्यत् द्रव्यं मत्तोदु द्रव्यं । नोऽकर्मद्रव्यमिति भवेत् नोऽकर्मद्रव्यकर्ममे दितु पेळल्पदुदक्कुं । भावे कर्मं द्विविधं भावदोळु कर्मं द्विप्रकारमक्कुं । आगम नोऽगम इति आगमभावकर्ममे बुं नोऽगमभावकर्ममे दितु ॥

आ भावकर्मदं द्विप्रकारं पेञ्चदशः—

२० कर्मागमपरिजाणगजीवो कर्मागममि उवजुत्तो ।

भावागमकर्मोत्ति य तस्स य सण्णा हवे णियमा ॥६५॥

कर्मागमपरिजाणगजीवः कर्मागमे उपयुक्तः । भावागमकर्म इति तस्य च संज्ञा भवेन्नियमात् ॥

अथ तद्व्यतिरिक्तमाह—

२५ तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्मनोऽकर्ममिति । तत्र मूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपेण परिणतं कर्म द्रव्यकर्म भवति नियमात् ॥६३॥ नोऽकर्मरूपतद्व्यतिरिक्तनोऽगमद्रव्यमाह—

कर्मस्वरूपादन्यद्रव्यं नोऽकर्मद्रव्यमिति । भावे कर्मं द्विविधं आगमभावकर्म नोऽगमभावकर्ममिति ॥६४॥

आगे नोऽगम द्रव्यकर्मके तीसरे भेदं तद्व्यतिरिक्तको कहते हैं—

तद्व्यतिरिक्तं नोऽगम द्रव्यकर्मके दो भेद हैं—कर्म और नोऽकर्म । उनमें-से मूलप्रकृति

३० और उत्तरप्रकृतिके रूपमें परिणमा पुद्गलद्रव्य कर्मतद्व्यतिरिक्त है ॥६३॥

नोऽकर्मरूपं तद्व्यतिरिक्तं नोऽगमद्रव्यको कहते हैं—

कर्मरूपसे अन्य द्रव्यको नोऽकर्मतद्व्यतिरिक्तं नोऽगम द्रव्यकर्म कहते हैं । भाव-निक्षेपरूप कर्मके भी दो भेद हैं—आगमभावकर्म, नोऽगमभावकर्म ॥६४॥

१. आ. कर्म भवति ।

कर्मगम परिज्ञायकजीवः कर्मस्वरूपप्रतिपादकागमशास्त्रपरिज्ञाद्वय्य जीवः । कर्मगमे उपयुक्तः तच्छास्त्रोपयोगमुच्छ्रं । भावागम कर्म इति भावागमकर्ममर्दिनु । तस्य च संज्ञा भवेन्नियमात् आ जीवगे संज्ञे नियमदिदमवकुं ॥

अनंतरं नोआगमभावमं पेळदपरः—

नोआगमभाओ पुण कम्मफलं भुंजमाणो जीवो ।

५

इदि सामण्णं कम्मं चउत्विहं होदि णियमेण ॥६६॥

नो आगमभावः पुनः कर्मफलं भुंजानो जीवः । इति सामान्यं कर्मं चतुर्विधं भवति नियमेन ॥

नोआगम भावकर्ममं पुनः मत्ते । कर्मफलमननुभविसुत्तिप्पं जीवतक्कुं । इंतु सामान्यकर्मं चतुर्विधमवकुं नियमदिदं ॥

१०

अनंतरं मूलोत्तरप्रकृतिगळ्गं नामादिचतुर्विधमं पेळदपरः—

मूलोत्तरपयडीणं णामादी एवमेव णवरिं तु ।

सगणामेण य णामं ठवणा दवियं हवे भावो ॥६७॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादय एवमेव विशेषस्तु । स्वस्वनाम्ना च नाम स्थापना द्रव्यं भवेद्भावः ॥

११५

मूलोत्तरप्रकृतीनां मूलोत्तरप्रकृतिगळ्गंमुत्तरप्रकृतिगळ्गं । नामादयः नामस्थापनाद्रव्य-  
भावंगळु । एवमेव यो सामान्यकर्ममं पेळदंतेये । भवेत् अवकुं । तु मत्ते । विशेषः विशेषमुंटाउ  
देदोड स्वस्वनाम्ना च तंतम्म नामविदमे नाम स्थापना द्रव्यं भावो भवेत् तंतम्म नामस्थापनाद्रव्यं  
भावमुमवकुं ॥

अनंतरमल्लि विशेषमं पेळदपरः—

२०

तत्र कर्मस्वरूपप्रतिपादकागमपरिज्ञायकः कर्मगमे उपयुक्तः तस्य भावागमकर्मसंज्ञा नियमेन भवति ॥६५॥

नोआगमभावकर्म पुनः कर्मफलमनुभवन् जीवो भवति । एवं सामान्यकर्मं चतुर्विधं भवति नियमेन ॥६६॥

अथ मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादिभेदानाह—

मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च नामस्थापनाद्रव्यभावाः सामान्यकर्माकर्तरीत्यैव भवन्ति । तु-पुनः  
विशेषः । स कः ? स्वस्वनाम्नैव नाम स्थापना द्रव्यं भावो भवति ॥६७॥ पुनः तत्र विशेषमाह—

२५

जो जीव कर्मके स्वरूपके प्रतिपादक आगमका ज्ञाता है और उसीमें अपना उपयोग  
लगा रहा है उसको नियमसे आगमभावकर्म कहते हैं ॥६५॥

जो जीव कर्मका फल भोग रहा है वह नोआगमभावकर्म है । इस प्रकार नियमसे  
सामान्य कर्म चार प्रकार है ॥६६॥

अब मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंके नामादि भेद कहते हैं—

३०

मूल प्रकृतियों और उत्तरप्रकृतियोंके नाम, स्थापना, द्रव्य भाव सामान्य कर्मके कहे  
भेदोंके अनुसार ही होते हैं । इतना विशेष है कि प्रत्येक प्रकृतिके नाम, स्थापना, द्रव्य भाव  
अपने-अपने नामानुसार ही होते हैं ॥६७॥

पुनः अन्य विशेष कहते हैं—



मूलोत्तरपयडीणं नामादि चतुर्विधं हवे सुगमं ।

वज्जित्ता नोकर्मं नोआगमभावकर्मं च ॥६८॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादि चतुर्विधं भवेत्सुगमं । वज्जित्वा नोकर्मं नोआगमभावकर्मं च ॥

५ ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिगळं मतिज्ञानावरणाद्युत्तरप्रकृतिगळं नामादिचतुःप्रकारं सुगममवकुमल्लि नोकर्ममुं नोआगमभावकर्ममुं वेरडं वज्जिसि शेषमनितुं सामान्यकथनमेतं-  
यपुर्वरिदं सुगममवकुमा नोकर्मं नोआगमभावकर्मगळं मूलप्रकृतिगळेगुत्तरप्रकृतिगळेग योजि-  
सिदपरदेते बोडे :—

पडपडिहारसिमज्जा आहारं देह उच्चणीचंगं ।

१० भंडारी मूलाणं नोकर्मं द्रव्यकर्मं तु ॥६९॥

पटप्रतिहारासिमद्याहारदेहोच्चनीचंगं । भंडागारी मूलानां नोकर्मं द्रव्यकर्मं तु ॥

ज्ञानावरणक्के इलक्षणकांडपटं नोकर्मद्रव्यमवकुमदुवुं ज्ञानावरणवते वस्तुविशेषप्रतिपत्ति-  
प्रतिबंधकमपुर्वरिदं ॥

१५ दर्शनावरणक्के द्वारनियुक्तप्रतिहारं नोकर्मद्रव्यकर्ममुमवकुमातंगं दर्शनावरणवते वस्तु-  
सामान्यग्रहणप्रतिबंधकत्वमुं टपुर्वरिदं ॥ वेदनीयकर्मक्के मधुलिप्तासिधारे नोकर्मद्रव्यकर्ममवकु-  
मदुवुं विषयानुभवनदोळु सुखदुःखंगळं वेदनीयमेतु माळकुमते सुखदुःखकारणमपुर्वरिदं । मोह-  
नीयकर्मक्के मद्यं नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुमदुवुं मोहनीयवते सम्यग्दर्शनाविजीवस्वभावमं पत्तुविडिसि

मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च नामादिचतुर्विधं सुगमं भवति । तत्र नोकर्मं नो आगमभावकर्ममिति द्वयं  
वज्जित्वा शेषस्य सामान्यवत् कथनात् ॥६८॥ तन्नोकर्मनोआगमभावकर्मणी मूलोत्तरप्रकृतीषु योजयति—

२० तत्र ज्ञानावरणस्य नोकर्मद्रव्यकर्म इलक्षणकाण्डपटो भवति विशेषग्रहणप्रतिबंधकत्वात् । दर्शनावरणस्य  
द्वारनियुक्तप्रतीहारः सामान्यग्रहणविराषकत्वात् । वेदनीयस्य मधुलिप्तासिधारा सुखदुःखकारणत्वात् । मोह-

२५ मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियोंके नामादि चारों भेद सुगम हैं । किन्तु नोकर्म और  
नोआगम भावकर्मको छोड़कर शेषका कथन सामान्य कर्मके समान जानना । आशय यह है  
कि पहले द्रव्यनिक्षेपके दो भेद किये थे—आगम और नोआगम । नोआगम द्रव्यके तीन  
भेद कहे थे—ज्ञायक शरीर, भावि और तद्रव्यतिरिक्त । उनमें-से तद्रव्यतिरिक्तके दो भेद कहे  
थे—कर्म और नोकर्म । सो यहाँ नोकर्म तद्रव्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्मका वर्णन सब  
प्रकृतियोंमें करते हैं । जिस-जिस प्रकृतिका जो-जो उदय फलरूप कार्य है उस-उस कार्यमें  
जो बाह्यवस्तु निमित्त होती है उस वस्तुको उस प्रकृतिका नोकर्म द्रव्यकर्म कहते हैं ॥६८॥

३० मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें नोकर्म और नोआगम भावकर्मकी योजना करते हैं—  
ज्ञानावरणका नोकर्मद्रव्यकर्म घने वस्त्रका परदा है क्योंकि वह विशेष रूपसे वस्तुको  
ग्रहण करनेमें बाधक होता है । दर्शनावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म द्वारपर नियुक्त द्वारपाल है  
क्योंकि वह सामान्य रूपसे भी देखनेमें बाधक होता है । वेदनीयका नोकर्म द्रव्यकर्म मधुसे  
लिप्त तलवारकी धार है क्योंकि उसको चाटनेसे सुख और पुनः दुःख होता है । मोहनीयका

मरुत्माडुगुमते मद्यमुं निजस्वभावमं पत्तुविडिसि सौक्विसुगुमपुदरिदं । आयुष्यकर्मवके चतुर्वि-  
धाहारं नोकर्मं द्रव्यकर्ममवकुमा चतुर्विधाहारवके आयुष्यकर्मदंते आयुःकर्मधृतशरीरवके  
बलाधानकारणत्वेदं शरीरस्थितिहेतुत्वमुंटपुदरिदं । नामकर्मवके औदारिकादिदेहं नोकर्मं  
द्रव्यकर्ममवकुमा देहवकेयुं नामकर्मदंते औदारिकादिदेहनिर्वर्तकत्वमुंटेते दोडे औदारिकादिदेह-  
वगर्णगळ्णे योगोत्पादकत्वमुंटपुदरिदं तन्निमित्तकमपौदारिकादिदेहनिर्वर्तकत्वं सिद्ध- ५  
मपुदरिदं ॥

गोत्रकर्मवके पुचचनीचांगं नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुमदवके गोत्रकर्मदंते उचचनीचकुला-  
विर्भावकत्वमुंटपुदरिदं । अन्तरायकर्मवके भाण्डागारिकं नोकर्मं द्रव्यकर्ममवकुमवगमंतराय-  
कर्मदंते भोगोपभोगादिवस्तुगळ्णमन्तरायकरणत्वमुंटपुदरिदं । तु मत्ते ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळ्णे नोकर्मद्रव्यकर्ममं पेळ्दपरु :—

१०

पटविषयपहेडिदव्वं मदिसुदवाघादकरणसंयुक्तं ।

मदिसुदबोहाणं पुण नोकर्मं दवियकर्मं तु ॥७०॥

पटविषयप्रभृति द्रव्यं मतिश्रुतव्याघातकरणसंयुक्तं । मतिश्रुतबोधयोः पुनन्तोनोकर्म-  
द्रव्यकर्मं तु ॥

पटप्रभृतिद्रव्यं विषयप्रभृतिद्रव्यमुं क्रमदिदं मतिज्ञानव्याघातकरणसंयुक्तमुं श्रुतज्ञानव्याघात- १५  
करणसंयुक्तमपुदबु कारणमाणि मतिज्ञानावरणवके पटप्रभृतिद्रव्यं नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुं ।  
श्रुतज्ञानावरणवके विषयप्रभृतिद्रव्यं नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुं । तु इति ॥

नीयस्य मद्यं सम्यग्दर्शनादिजीवगुणघातकत्वात् । आयुषः चतुर्विधाहारः धृतशरीरस्य बलाधानकारणत्वेन  
स्थितिहेतुत्वात् । नामकर्मण औदारिकादिदेहः योगोत्पादकत्वेन औदारिकादिदेहनिर्वर्तकत्वात् । गोत्रस्य  
उचचनीचाङ्गं उचचनीचकुलाविर्भावकत्वात् । अन्तरायस्य भाण्डागारिकः भोगोपभोगादिवस्तुनामन्तराय- २०  
करणात् ॥६९॥ तु-पुनः अनन्तरमुत्तरप्रकृतीनामाह—

पटप्रभृतिद्रव्यं मतिज्ञानस्य विषयप्रभृतिद्रव्यं श्रुतज्ञानस्य च व्याघातकरणसंयुक्तं तत्तदावरणयोनोकर्म-  
द्रव्यकर्मं भवति तु-पुनः इति ॥७०॥

नोकर्म मद्य है क्योंकि वह जीवके सम्यग्दर्शन आदि गुणोंका घातक है । आयुका नोकर्म २५  
चार प्रकारका आहार है क्योंकि वह धारण किये शरीरके बलाधानमें कारण होनेसे उसकी  
स्थितिमें निमित्त होता है । नामकर्मका नोकर्म औदारिक आदि शरीर है क्योंकि वह योगका  
उत्पादक होनेसे औदारिक आदि शरीरको उत्पन्न करता है । गोत्रकर्मका नोकर्म उचच-नीच  
शरीर है क्योंकि वह उचच और नीच कुलको प्रकट करता है । अन्तरायका नोकर्म भण्डारी  
है क्योंकि वह भोग-उपभोग आदिकी वस्तुओंमें बिघ्न डालता है ॥६९॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें नोकर्म कहते हैं—

३०

मतिज्ञानमें बाधा डालनेवाले वस्त्र आदि द्रव्य मतिज्ञानावरणके नोकर्म द्रव्यकर्म हैं ।  
और श्रुतज्ञानमें बाधा डालनेवाले इन्द्रियोंके विषय आदि श्रुतज्ञानावरणके नोकर्म हैं ॥७०॥

ओहिमणपज्जवाणं पडिधादणिमित्तसंकिलेसयरं ।  
जं वज्झट्ठं तं खलु णोकम्मं केवले णत्थि ॥७१॥

अवधिमनःपर्यययोः प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकरो यो बाह्यात्थस्तत्खलु नोकम्मं केवले नास्ति ॥

- ५ अवधिमनःपर्ययज्ञानंगळो प्रतिघातनिमित्तमप्य संक्लेशमं पुट्टिसुव यद्बाह्यं वस्तु आयुदोदुबाह्यवस्तु । तत् अदु । नोकम्मं नोकम्मद्रव्यकम्ममक्कुं । केवलज्ञानावरणक नोकम्मं द्रव्यकम्ममित्तेकेदोडे केवलज्ञानं क्षायिकमेयपुदरिदं तत्प्रतिबन्धकमप्य संक्लेशकारि बाह्यवस्तु विल्लपुदरिदं । अवधिमनःपर्ययज्ञानंगळु क्षायोपशमिकंगळपुदरिदं तत्प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकारिबाह्यवस्तुगळवधिमनःपर्ययज्ञानावरणंगळंते व्याघातकारिगळोव बुदु तात्पर्यं ॥

१० पंचणहं णिदाणं माहिंसदहिपहुडि होदि णोकम्मं ।

वाघादकरपडादी चक्षुअचक्षुण्णोकम्मं ॥७२॥

पंचानां निद्राणां माहिषदधिप्रभृति भवति नोकम्मं । व्याघातकरपटादिश्चक्षुरचक्षुषोर्नोकम्मं ॥

पंचनिद्रादर्शनावरणंगळो माहिषदधिप्रभृतिलशुनखलादिद्रव्यंगळु नोकम्मद्रव्यकम्ममक्कुं ।

- १५ व्याघातहेतुगळप पटादिवस्तुगळु चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणंगळो नोकम्मद्रव्यकम्ममक्कुं ॥

ओहीकेवलदंसणणोकम्मं ताण णाणभंगोव्व ।

सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि ॥७३॥

अवधिकेवलदर्शननोकम्मं तयोर्ज्ञानभंगवत् । सातेतरनोकम्मं इष्टानिष्ठान्तपानादि ॥

- २० अवधिमनःपर्यययोः प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकरं यद्बाह्यं वस्तु तत् तदावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म स्यात् । केवलज्ञानावरणस्य नोकर्मद्रव्यकर्म नास्ति क्षायिकत्वेन तत्प्रतिबन्धकसंक्लेशकारिवस्तुनोऽसंभवात् । अवधिमनःपर्यययोः क्षायोपशमित्वात् तत् संभवतीत्यर्थः ॥७१॥

पञ्चनिद्रादर्शनावरणानां माहिषदधिलशुनखलादिद्रव्याणि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । व्याघातहेतुपटादिवस्तूनि चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति ॥७२॥

- २५ अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके प्रतिघातमें निमित्त संक्लेशपरिणामोंको करनेवाली जो बाह्यवस्तु है वह अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म हैं । केवलज्ञानावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म नहीं है क्योंकि वह क्षायिक है अतः उसके प्रतिबन्धक संक्लेशपरिणामोंको करनेवाली वस्तु सम्भव नहीं है । अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक हैं इसलिए उनमें होना सम्भव है ॥७१॥

- ३० पाँच निद्रादर्शनावरणोंका भँसका दही, लहसुन, खल अर्थात् निद्रा लानेवाले द्रव्य नोकर्म द्रव्यकर्म हैं । चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शनावरणका नोकर्म चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनमें व्याघात डालनेवाले परदा आदि होते हैं ॥७२॥

अवधिदर्शनावरणके अवधिज्ञानावरणके पेळदंते नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुमदेते दोडे अवधि-  
दर्शनप्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकारियपुवाउदानुमोडु बाह्यार्थमदनधिदर्शनावरणके नोकर्मद्रव्य-  
कर्ममवकुमा बाह्यार्थभुमवधिदर्शनावरणदंते अवधिदर्शनप्रतिघातहेतुमण्णुदरिदं केवलदर्शनावर-  
णके केवलज्ञानावरणके पेळदंते नोकर्मभुमिल्ल । कारणमुं मुपेळदुदेयकुं । सातेतरनोकर्म  
सातवेदनीयके इष्टान्नपानादिगळु नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुमसातवेदनीयके अनिष्टमण्णन्नपानादि- ५  
गळु नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुं ॥

आयदणायायदणं सम्मे मिच्छे य हवदि णोकम्मं ।

उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेण ॥७४॥

आयतनानायतनं सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे च भवति नोकर्म । उभयं सम्यग्मिथ्यात्वे नोकर्म  
भवति नियमेन ॥

१०

सम्यक्त्वके सम्यक्त्वप्रकृतिगे आयतनं आप्रनुनाप्रालयमुं । आगममुमागमधरनुं । तपमुं  
तपोधरनुमेव षडायतनं नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुं । सम्यक्त्वप्रकृतिपंते सम्यग्दर्शनविघातकारिगळ-  
ल्लपुदरिदं । सम्यक्त्वभावके चलमलिनावगाढ हेतुगळपुदरिदमुं । अनाप्रनुनाप्रालयमुं कुश्रुतमुं  
कुश्रुतधरनुं मिथ्यातपमुं मिथ्यातपस्विपुमेव षडनायतनंगळु मिथ्यात्वप्रकृतिगे नोकर्मद्रव्यकर्म-  
मवकुं । मिथ्यात्वकर्मदंतिवक्कं सम्यक्त्वप्रकृतिघातकत्वमुंठपुदरिदं । सम्यग्दृष्टिगे अनायतनंगळु १५  
सम्यक्त्वप्रकृतिघातकंगळल्लु । सम्यक्त्वातिचारकारणंगळपुवु एकेदोडे मिथ्यात्वकर्मोदयमिल्ल-  
पुदरिदं । मिथ्यात्वकर्मवके नोकर्मगळनायतनंगळपुदरिदं । मिथ्यादृष्टिगळो अनायतनंगळु  
गाढमिथ्यापरिणामके कारणंगळे बुदर्थं । नियमशब्दमवधारणार्थमवकुं ।

अवधिदर्शनावरणस्य केवलदर्शनावरणस्य च नोकर्मद्रव्यकर्म तज्ज्ञानोक्तमङ्गवत् भवति । सातवेदनी-  
यस्य इष्टान्नपानादयः असातवेदनीयस्यानिष्टान्नपानादयः ॥७३॥

२०

सम्यक्त्वप्रकृती आयतनानि आप्ततदालयागमतद्वरतपस्तद्वराख्यानि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति ।  
सम्यक्त्वस्य चलमलिनावगाढहेतुत्वात् । मिथ्यात्वप्रकृतेः मिथ्यात्वतदालयश्रुततद्वरतपस्तपस्विनी नोकर्मद्रव्यकर्म  
भवति सम्यक्त्वस्य घातकत्वात् । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतावुभयं आयतनानायतनद्वयं संयुक्तमेव नोकर्मद्रव्यकर्म  
भवति । अत्र नियमशब्दोऽवधारणार्थः ॥७४॥

अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म अवधिज्ञान और केवल-  
ज्ञानकी तरह जानना । सातवेदनीयका नोकर्म रुचिकर भोजनादि और असातवेदनीयका  
नोकर्म अरुचिकर खानपान जानना ॥७३॥

२५

सम्यक्त्व प्रकृतिमें जिन, जिनमन्दिर, जिनागम, जिनागमके धारी, तप तथा तपके  
धारी ये छह आयतन नोकर्म द्रव्यकर्म होते हैं क्योंकि ये सम्यक्त्वके चल, मलिन और अवगाढ  
होनेमें निमित्त होते हैं । मिथ्यात्व प्रकृतिके मिथ्यादेव, उनका मन्दिर, मिथ्याशास्त्र, ३०  
मिथ्याशास्त्रोंके धारी, मिथ्यातप, मिथ्यातपस्वी ये नोकर्म द्रव्यकर्म हैं । क्योंकि ये सम्यग्-  
दर्शनके घातक हैं । तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें आयतन और अनायतन दोनों मिलकर ही  
नोकर्म द्रव्यकर्म हैं । यहाँ नियमका अर्थ अवधारण है । अर्थात् ये नियमसे इनके नोकर्म  
होते हैं ॥७४॥

अणोक्तम् मिच्छतायदणादी दु होदि सेसाणं ।

सगसगजोग्गं सत्थं सहायपहुडी हवे नियमा ॥७५॥

अनन्तानुबन्धिनोक्तम् मिथ्यात्वायतनादि तु भवति नोक्तम् शेषाणां । स्वस्वयोग्यं शास्त्रं सहायप्रभृति भवेन्नियमात् ॥

५ अनन्तानुबन्धिकायंगळो मिथ्यायतनादिषडनायतनंगळमादियादुउ नोक्तम्द्रव्यकर्ममुम-  
दक्कु । तु मत्त । शेषाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनकषायंगळो देशत्रत सकलसंयम यथाख्यात-  
चारित्रंगळ निवारकत्वदोळु स्वस्वयोग्यंगळप काव्यनाटककोकादि ग्रंथंगळुं विटजनादिगळ  
सहायमुं नोक्तम्द्रव्यकर्मगळितयमदिदणुउ ।

थीपुंसदसरीरं ताणं णोक्तम् दव्वकम्मं तु ।

१० वेलंबको सुपुत्तो हस्सरदीणं च णोक्तम् ॥७६॥

स्त्रीपुंसकशरीरं तेषां नोक्तम् द्रव्यकर्म तु । विडंबकः सुपुत्रो हास्यरत्योश्च नोक्तम् ॥

स्त्रीवेदनोक्तषायक स्त्रीशरीरमु पुरुषशरीरमुं नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु । पुंवेदनोक्तषायक स्त्रीशरीरमुं पुरुष-  
शरीरमुं नपुंसकशरीरमुं नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु । नपुंसकवेदनोक्तषायक स्त्रीशरीरमुं पुरुष-  
शरीरमुं नपुंसकशरीरमुं नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु । हास्यनोक्तषायक विडंबकनप बहुरूपिप्रहसन-

१५ पात्रंगळुं नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु । रतिनोक्तषायक सुपुत्रं नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु ।

इट्टाणिट्टवियोगं जोगं अरदिस्स मुदसुपुत्तादी ।

सोगस्स य सिंहादी णिदिदव्वं च भयजुगले ॥७७॥

इष्टानिष्टवियोगो योगोऽरतेमृतसुपुत्रादिः । शोकस्य च सिंहादिनिन्दितद्रव्यं च भयजुगले ॥

अरतेः अरतिनोक्तषायक इष्टवियोगमुमनिष्टसंयोगमु नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु । शोक-

२० नोक्तषायक मृतसुपुत्रादिगळु नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु । भयनोक्तषायक सिंहादिगळु नोक्तम्-  
द्रव्यकर्ममक्कु । जुगुप्सानोक्तषायक निन्दितद्रव्यादिगळु नोक्तम्द्रव्यकर्ममक्कु ।

अनन्तानुबन्धनां मिथ्यात्वायतनादिनोक्तम्द्रव्यकर्म भवति । तु-पुनः शेषद्वादशकषायाणां देशसकल-  
यथाख्यातचारित्रवातकाव्यनाटककोकादिग्रन्थाः विटजनादिसहायश्च नियमेन ॥७५॥

स्त्रीपुंवेदयोः स्त्रीपुंशरीरे नोक्तम्द्रव्यकर्म भवति । नपुंसकवेदस्य तद्द्वयं नपुंसकशरीरं च । हास्यस्य

२५ विडम्बकभूतबहुरूपिप्रहसनपात्राणि । रतेः सुपुत्रः ॥७६॥

अरतेः इष्टवियोगोऽनिष्टसंयोगश्च । शोकस्य मृतसुपुत्रादयः । भयस्य सिंहादयः । जुगुप्साया निन्दित-  
द्रव्यादयः ॥७७॥

अनन्तानुबन्धी कषायोका मिथ्या आयतन आदि नोक्तम्द्रव्यकर्म है । शेष बारह  
कषायोका देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यात चारित्रके घातक काव्य, नाटक, कोकशास्त्र  
आदि ग्रन्थ और सहायक विट्पुरुष आदि नियमसे नोक्तम्द्रव्यकर्म होते हैं ॥७५॥

३० स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें स्त्री और पुरुषका शरीर नोक्तम्द्रव्यकर्म होता है । नपुंसक  
वेदका नोक्तम् स्त्री-पुरुष और नपुंसकका शरीर होता है । हास्यका नोक्तम् विचित्र वेषधारी  
बहुरूपिया तथा हँसानेवाले पात्र होते हैं । रतिका नोक्तम् सुपुत्र है ॥७६॥

अरतिका नोक्तम् इष्टवियोग अनिष्टसंयोग है । शोकका नोक्तम् सुपुत्र आदिका मरण  
३५ है । भयका नोक्तम् सिंह आदि है । जुगुप्साका नोक्तम् घृणा योग्य वस्तु है ॥७७॥

गिरयाउस्सअणिट्टाहारो सेसाणमिड्डमण्णादी ।

गदिणोकम्मं दब्बं चउग्गदीणं हवे खेत्तं ॥७८॥

नरकायुषोऽनिष्टाहारः शेषाणामिष्टान्नादिः । गतिनोकम्मं द्रव्यं चतुर्गतीनां भवेत्क्षेत्रं ॥

नरकायुष्यक्के अनिष्टाहारं नरकगतिय विषमृत्तिकेये नोकम्मं द्रव्यकम्ममक्कुं । शेष  
तिट्ठ्यंमनुष्यदेवायुष्यंगळगे इष्टान्नादिगळु नोकम्मंद्रव्यकम्मंगळप्पुवु ।

नारकादिशरीरस्थितिकारणंगळप्पुर्वरिवं । सामान्यगतिनामकम्मक्के चतुर्गतिगळ क्षेत्र-  
मात्रं नोकम्मंद्रव्यकम्ममक्कुं ।

गिरयादीण गदीणं गिरयादी खेत्तयं हवे णियमा ।

जाईए णोकम्मं दब्बिदियणोग्गलं होदि ॥७९॥

नरकादीनां गतीनां नरकाविक्षेत्रं भवेन्नियमात् । जातेनोकम्मं द्रव्येन्द्रियपुद्गलो भवति ॥

नरकतिट्ठ्यंमनुष्यदेवगतियङ्गे तंतम्म नरकगति तिट्ठ्यंमनुष्यदेवगतियक्षेत्रं नोकम्मं द्रव्य-  
कम्मं नियमदिवमक्कुं । नरकगत्याविचतुर्गतिनामकम्मंगळुवयंगळनारकाविपट्ठ्याङ्गळगे  
निमित्तमक्कुमावोडा तत्तत्पट्ठ्याङ्गळन्यक्षेत्रंगळोल्लिल्लप्पुर्वरिवं तंतम्म गतिक्षेत्रंगळेयगत्येळकु-  
मप्पुर्वरिवं । नियमशब्दमवधारणात्थमक्कुं । जातिनामकम्मक्के द्रव्येन्द्रियपुद्गलं नोकम्मंद्रव्य-  
कम्ममक्कुं ।

एइंदियमादीणं सगसगदब्बिदियाणि णोकम्मं ।

देहस्स य णोकम्मं देहुदयजदेहखंदाणि ॥८०॥

एकेंद्रियादीनां स्वस्वद्रव्येन्द्रियाणि नोकम्मं । देहस्य च नोकम्मं देहोदयजदेहस्कंधाः ॥

नरकायुषोऽनिष्टाहारः तद्विषमृत्तिका नोकर्मद्रव्यकर्म । शेषायुषामिष्टान्नादयः नारकादिशरीरस्थिति-  
कारणत्वात् । सामान्यगतेः चतुर्गतिक्षेत्रमात्रम् ॥७८॥

नारकादिगतीनां स्वस्वनरकादिगतियक्षेत्रं नोकर्मद्रव्यकर्म नियमेन भवति । गत्युदयानां नारकादि-  
पर्यायनिमित्तत्वेऽपि तत्पर्यायाणामन्यत्राभावात् । तत्क्षेत्रेणैव भाव्यमित्यवधारणार्थो नियमशब्दः । जातिनाम्नः  
द्रव्येन्द्रियपुद्गलः ॥७९॥

अनिष्ट आहार वहाँकी विषतुल्य मिट्टी नरकायुका नोकर्म द्रव्यकर्म है । शेष आयुओंका  
इष्ट अन्नादि नोकर्म है क्योंकि वह नारक आदिके शरीरकी स्थितिमें निमित्त होता है । २५  
सामान्य गतिनाम कर्मका नोकर्म चारों गतियोंका क्षेत्र है ॥७८॥

नारक आदि गतियोंका अपना-अपना नरकादिका क्षेत्र नोकर्म द्रव्यकर्म होता है ।  
यद्यपि गतियोंका उदय नारक आदि पर्यायोंमें निमित्त है तथापि वे पर्याय अन्यत्र नहीं  
होतीं, इसलिये उनका नोकर्म उन-उनका क्षेत्र ही होना चाहिए इसके लिए नियम शब्द  
माथामें दिया है । जातिनामका नोकर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गल है ॥७९॥

एकेंद्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेंद्रियजातिनामकर्मगण्यो तंतम्म द्रव्येन्द्रियंगळु नोकर्मं द्रव्यकर्मगळपुवु । शरीरनामकर्मकके शरीरनामकर्मोदयजनितदेहस्कन्धमे नोकर्मं द्रव्यकर्ममवकुं ।

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजकम्मणोकम्मं ।

५ ताणुदयजचउदेहा कम्मे विस्संचयं णियमा ॥८१॥

औदारिकवैक्रियिकाहारक तेजसकर्मणां नोकर्मं तेषामुदयजचतुर्देहाः काम्मणे विस्रसोपचयो नियमात् ॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतेजसशरीरनामकर्मगण्यो तेषां तंतम्म उदयजनितचतुर्देहाः उदयसंजनितचतुर्देहगळु यथासंख्यमाणि तंतम्मौदारिकादिशरीरवर्गणोगळु तंतम्म नोकर्मद्रव्य-  
१० कर्मगळपुवु । काम्मणशरीरनामकर्मकके विस्रसोपचयं नोकर्मद्रव्यकर्ममवकुं ।

बंधणपहुडिसमण्णियसेसाणं देहमेव णोकम्मं ।

णवरि विसेसं जाणे सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ॥८२॥

बंधनप्रभृतिसमन्वितशेषाणां देह एव नोकर्मं । नवीनं विशेषं जानीहि स्वक्षेत्रमानुपूर्व्याणां ॥

बंधनप्रभृतिपुद्गलविपाकिगळसमन्वितशेषजीवविपाकिगळो देहमे नोकर्मद्रव्यकर्ममवकु-  
१५ मेके बोडे तत्तत्क्रियमाणपुद्गलरूपककेयुं जीवभावककेयुं सुखादिगळप्प काट्ठयक्कं शरीरवर्गणोगळु-  
पादाननिमित्तत्व प्रसिद्धत्ववर्त्तणदं । क्षेत्रविपाकिगळप्पानुपूर्व्यगळो तंतम्मक्षेत्रमे नोकर्मं द्रव्यकर्ममवकुं मे बो पोसतप्प विशेषमं नीनरि शिष्य ये दु संबोधिस्तत्पदुदु ।

एकेन्द्रियादिपञ्चजातीनां स्वस्वद्रव्येन्द्रियाणि नोकर्मद्रव्यकर्म । शरीरनाम्नः स्वीदयजदेहस्कन्धः नोकर्मद्रव्यकर्म ॥८०॥

२० औदारिकवैक्रियिकाहारकतेजसशरीरनामकर्मणां उदयजततच्छरीरवर्गणाः तत्तन्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । काम्मणस्य विस्रसोपचय एव ॥८१॥

बन्धनप्रभृतिपुद्गलविपाकिसमन्वितशेषजीवविपाकिनां देह एव नोकर्मद्रव्यकर्म । तत्तत्क्रियमाणस्य पुद्गलरूपस्य जीवभावस्य सुखादिरूपस्य कार्यस्य शरीरवर्गणानामेवोपादाननिमित्तत्वप्रसिद्धेः । क्षेत्रविपाक्यानु-  
पूर्व्याणां स्वस्वक्षेत्रमेव नोकर्मद्रव्यकर्म इति नवीनं विशेषं जानीहि ॥८२॥

२५ एकेन्द्रिय आदि पाँच जातियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रियाँ हैं । शरीर-  
नामके नोकर्म द्रव्यकर्म अपने-अपने उदयसे बने शरीररूप स्कन्ध हैं ॥८०॥

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तेजस शरीर नामकर्मोंका अपने-अपने उदयसे प्राप्त हुई उस-उस शरीर सम्बन्धी वर्गणा अपना-अपना नोकर्म द्रव्यकर्म होता है । काम्मणका नोकर्म विस्रसोपचय ही है ॥८१॥

३० बन्धनसे लेकर पुद्गलविपाकी प्रकृतियों सहित शेष रही जीवविपाकी प्रकृतियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म शरीर ही है । क्योंकि उनके द्वारा किया गया पुद्गलरूप भाव और जीवभाव तथा सुखादि रूप कार्यका उपादान कारण शरीर सम्बन्धी वर्गणा ही है किन्तु क्षेत्रविपाकी आनुपूर्वीनामकर्मोंका अपना-अपना क्षेत्र ही नोकर्म द्रव्यकर्म है इतना विशेष जानना ॥८२॥

१. आ. पुद्गलजीव ।

थिरजुम्मस्स थिराथिररसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं ।

असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्गलाणि सरे ॥८३॥

स्थिरयुग्मस्य स्थिरास्थिररसरुधिरादीनि शुभयुगस्य शुभं । अशुभं देहावयवं स्वरपरिणत-  
पुद्गलाः स्वरे ॥

स्थिरनामकर्मवक्के स्थिररसरुधिरादिगळु नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं । अस्थिरनामकर्मवक्के ५  
अस्थिररसरुधिरादिगळु नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं । शुभनामकर्मवक्के शुभमप्य शरीरावयवंगळु  
नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं शुभनामकर्मवक्के अशुभमप्य शरीरावयवंगळु नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं ।  
स्वरनामकर्मवक्के सुस्वरदुःस्वरपरिणतपुद्गलंगळु नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं ।

उच्चस्सुच्चं देहं नीचं नीचस्स होदि णोकम्मं ।

दानादिचउक्काणं विरघगणगपुरिसपहुदी हु ॥८४॥

उच्चस्योच्चो देहो नीचो नीचस्य भवति नोकम्मं । दानादिचतुर्णां विघ्नकरपर्वतनदीपुरुषप्रभृतयः  
खलु ॥

उच्चैर्गोत्रकर्मवक्के उच्चदेहमे लोकपूजितकुलोत्पन्नदेहमे नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं । नीचै-  
र्गोत्रकर्मवक्के नीचकुलोत्पन्नदेहमे नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं । दानलाभभोगोपभोगान्तरायकर्म  
चतुष्टयवक्के विघ्नकरपर्वतनदीपुरुषप्रभृतिगळु नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं । खलु स्फुटमाणि । १५

विरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं ।

इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु ॥८५॥

वीरियस्य च नोकम्मं रूक्षाहारादिबलहरं द्रव्यं । इत्युत्तरप्रकृतीनां नोकम्मं द्रव्यकर्मं तु ॥

तु मत्ते वीर्यान्तरायकर्मवक्के रूक्षाहारपानद्रव्यंगळु नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुमिन्तुत्तरप्रकृति-  
गळगे नोकम्मं द्रव्यकर्ममवकुं पेळल्पदुवु ॥

स्थिरस्य स्थिररसरुधिरादयो नोकर्मद्रव्यकर्म । अस्थिरस्य अस्थिररसरुधिरादयः । शुभस्य शुभ-  
शरीरावयवाः । अशुभस्य अशुभशरीरावयवाः । स्वरस्य सुस्वरदुःस्वरपरिणतपुद्गलाः ॥८३॥

उच्चैर्गोत्रस्य उच्चो-लोकपूजितकुलोत्पन्नो देहः नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । नीचैर्गोत्रस्य नीचकुलोत्पन्नो  
देहः । दानादिचतुर्न्तरायणां विघ्नकरपर्वतनदीपुरुषप्रभृतयः । खलु स्फुटम् ॥८४॥

तु-पुनः वीर्यान्तरायस्य रूक्षाहारपानद्रव्याणि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । एवमुत्तरप्रकृतीनां नोकर्म- २५  
द्रव्यकर्मवक्तुम् ॥८५॥

स्थिरका स्थिर रस रुधिरादि नोकर्म द्रव्यकर्म है । अस्थिरका अस्थिर रसरुधिरादि  
नोकर्म द्रव्यकर्म है । शुभका शरीरके शुभ अवयव और अशुभका शरीरके अशुभ अवयव  
तथा स्वरका सुस्वर रूप परिणत पुद्गल द्रव्यकर्म नोकर्म है ॥८३॥

उच्चगोत्रका उच्च लोकपूजित कुलमें उत्पन्न शरीर और नीचगोत्रका नीचकुलमें उत्पन्न ३०  
हुआ शरीर नोकर्म द्रव्यकर्म है । दानान्तराय आदि चार अन्तरायोंका विघ्न करनेवाले पर्वत,  
नदी, पुरुष वगैरह द्रव्यकर्म है ॥८४॥

वीर्यान्तरायका नोकर्म रूखा खानपान आदि बलहारी द्रव्य नोकर्म द्रव्यकर्म है । इस  
प्रकार उत्तर प्रकृतियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म कहा ॥८५॥



नोआगमभावो पुनः सगसगकर्मफलसंयुतो जीवो ।

पुद्गलविवाइयाणं णत्थि खु नोआगमो भावो ॥८६॥

नोआगमभावः पुनः स्वस्वकर्मफलसंयुतो जीवः । पुद्गलविपाकिनां नास्ति खलु नोआगमो भावः ॥

५ नोआगमभावमुं मत्ते तंतम्म कम्मफलसंयुतत्त जीवनेयक्कुं । पुद्गलविपाकिगळो नोआगमभावमिल्लेकेदोडे पुद्गलविपाकिगळुदयदोळु साक्षात्सुखादिगळनुत्पत्तियेयक्कुमल्लिमोदु विशेषमुंदाउदोडे जीवविपाकिगळ सहायत्वादिवं सुखाद्युत्पादकत्वमुंदिबिदु । पुद्गलविपाकिनाम-कर्मोदयदोळु देहवर्गणेगळुपादानमक्कुं । सुखदुःखंगळो तद्गर्गणानिमित्त जीवविपाकियक्कुं ॥

१० इंतु भगवदहंत्परमेश्वरचारचरणारविद्वंद्वंदनानंदित पुण्यपुंजायमानश्रीमद्राजगुरु-मंडलाचार्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धान्तचक्र-वर्त्तिश्रीपादपंकजराजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण विरचितगोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व-प्रदीपिकेयोळु कर्मकांड प्रकृतिसमुत्कीर्तनं प्रथमाधिकारं व्याख्यातमावुदु ॥

नोआगमभावः पुनः स्वस्वकर्मफलसंयुतजीवो भवति । पुद्गलविपाकिनां खलु नोआगमभावकर्म नास्ति तदुदयजीवविपाकि सहायं विना साक्षात्सुखाद्यनुत्पत्तेः ॥८६॥

१५ इत्याचार्यनेमिचन्द्ररचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वदीपिकाख्यायां कर्मकाण्डे प्रकृतिसमुत्कीर्तनाय प्रथमोऽधिकारः ॥१॥

अपने-अपने फलको भोगता हुआ जीव उन-उन प्रकृतियोंका नोआगमभाव कर्म है । पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंका नोआगमभाव कर्म नहीं होता क्योंकि उनका उदय होते हुए जीवविपाकी प्रकृतियोंकी सहायता बिना साक्षात् सुखादि नहीं होते ॥८६॥

२० इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्त्तिके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णों-के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारीणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारीणी पं. टीकरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारीणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत प्रकृति समुत्कीर्तन नामक पहला अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

## बन्धोदयसत्त्वाधिकार ॥ २ ॥

णमिऊण नेमिचंद्रं असहायपरकमं महावीरं ।

बंधोदयसत्त्वजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं ॥८७॥

नत्वा नेमिचंद्रं असहायपराक्रमं महावीरं । बंधोदयसत्त्वयुक्तं ओघादेशे स्तवं वक्ष्यामि ॥

वक्ष्यामि वक्ष्ये करिष्ये वा । कं स्तवं सकलांगार्थविषयं शास्त्रं । कथंभूतं बंधोदयसत्त्व-  
युक्तं बंधोदयसत्त्वप्रतिपादकं तस्मिन् । ओघादेशे गुणस्थानमार्गणास्थाने । किं कृत्वा नत्वा ५  
नमस्कृत्य । कं नेमिचंद्रं नेमितीर्थंकरपरमदेवं । कथंभूतं महावीरं वंदारुवृन्दस्याभिलषितार्थप्रदा-  
यकं । भूयः किंभूतं असहायपराक्रमं न विद्यते सहायो यस्यासावसहायः । असहायः पराक्रमो यस्या-  
सावसहायपराक्रमस्तमिति ॥

कर्मवैरिबलं गेलुवेड्योळु सहायनिरपेक्षमप्य अभेदरत्नत्रयात्मकात्मस्वरूपभावनास्व-  
सामर्थ्यरूपपराक्रममनुळळ बंदारुवृंदसमभिलषितार्थप्रदायकत्वंविदं महावीरनप्य नेमितीर्थंकर- १०  
परमदेवं नमस्करिसि बंधोदयसत्त्वप्रतिपादकमप्य स्तवमं सकलांगार्थविषयशास्त्रमं पेळपे नेबुदा-  
चाट्येन प्रतिज्ञेयककुमल्लि । स्तवमे बुवे ते दोडे पेळदपरु :—

सयलंगेकंगेकंगहियार सवित्थरं ससंखेवं ।

वण्णणसत्थं थयथुइ धम्मकहा होइ णियमेण ॥८८॥

सकलांगैकांगैकांगधिकार सविस्तरं ससंक्षेपं वर्णनशास्त्रं स्तवः स्तुतिद्वयमंकथा भवति १५  
नियमेन ॥

वक्ष्यामि वक्ष्ये करिष्ये वा । कं ? स्तवं सकलाङ्गार्थविषयशास्त्रम् । कथंभूतम् ? बन्धोदयसत्त्व-  
युक्तं-बन्धोदयसत्त्वप्रतिपादकम् । कस्मिन् ? ओघादेशे-गुणस्थानमार्गणास्थाने । किं कृत्वा ? नत्वा-नम-  
स्कृत्य । कं ? नेमिचन्द्रं-नेमितीर्थंकरपरमदेवं । कथंभूतम् ? महावीरं-वन्दारुवृन्दस्य अभिलषितार्थ-  
प्रदायकम् । भूयः किंभूतम् ? असहायपराक्रमं-न विद्यते सहायो यस्यासावसहायः । असहायः पराक्रमो यस्या- २०  
सावसहायपराक्रमस्तमिति कर्मवैरिबलजये सहायनिरपेक्षाभेदरत्नत्रयात्मकस्वरूपभावनास्वसामर्थ्यरूपपराक्रमम् ।  
वन्दारुवृन्दसमभिलषितार्थप्रदायकत्वेन महावीरं नेमितीर्थंकरपरमदेवं नत्वा बन्धोदयसत्त्वप्रतिपादकस्तवं  
वक्ष्यामीत्याचार्यप्रतिज्ञा ॥८७॥ स्तवः कः इति चेदाह—

जो अन्य सहायताकी अपेक्षा न करके अभेदरत्नत्रयात्मक आत्मस्वरूपकी भावनारूप  
सामर्थ्यके द्वारा अपने पराक्रमसे कर्मशत्रुकी सेनापर विजय प्राप्त करते हैं और वन्दना २५  
करनेवालोंके समूहको इच्छित अर्थ प्रदान करनेके कारण महावीर हैं, उन नेमिनाथ तीर्थंकर  
परमदेवको नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें बन्ध उदय और सत्त्वका कथन  
करनेवाले स्तवको कहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा आचार्य करते हैं ॥८७॥

स्तवका स्वरूप कहते हैं—

सकलांगार्थं सविस्तरं संक्षेपविषयशास्त्रं स्तवः । एकांगार्थं सविस्तरं संक्षेपविषयशास्त्रं स्तुतिः । एकांगधिकारार्थसविस्तरसंक्षेपविषयशास्त्रं वस्त्वनुयोगादि धर्मकथेयुमवकुं नियमविदं ॥

अनंतरं बंधं चतुर्विधभेदं पेन्द्रपरः—

५

पण्डित्वादिअनुभागपदेसंबंधोत्ति चयुनिहो बंधो ।

उत्कृष्टमनुवक्तृसं जहण्णमजहण्णग ति पुं ॥८९॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंध इति चतुर्विधो बंधः । उत्कृष्टानुत्कृष्टो जघन्योऽजघन्य इति पृथक् ॥

प्रकृतिबंधमें तु स्थितिबंधमें तु अनुभागबंधमें तु प्रदेशबंधमें तु बंध चतुर्विधमवकुमल्लि पृथक्  
१० प्रत्येकमुत्कृष्टमुननुत्कृष्टमुमें तु जघन्यमुमजघन्यमुमें तु भित्तु चतुर्विधमवकु ॥

अनंतरं उत्कृष्टादिगळु प्रत्येकं चतुर्विधगळें तु पेन्द्रपरः—

सादिअणादी ध्रुवअध्रुवो य बंधो तु जेट्ठमादीसु ।

णाणेगं जीवं पण्डि ओघादेसे जहाजोगं ॥९०॥

सादिरनादिध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तूत्कृष्टादिषु । नानैकं जीवं प्रति ओघादेशे यथायोग्यं ॥

१५ सादिबंधमें तु ननादिवंधमें तु ध्रुवबंधमें तु अध्रुवबंधमें तु भित्तु । तु मत्ते उत्कृष्टादिबंधगळोळु नानाजीवमुमेकजीवमुमं कुरु तु गुणस्थानदोळं मार्गणास्थानदोळं यथायोग्यमागि साद्यनादि

सकलाङ्गार्थसविस्तरसंक्षेपविषयशास्त्रं स्तवः । एकाङ्गार्थसविस्तरसंक्षेपविषयशास्त्रं स्तुतिः । एकाङ्गधिकारार्थसविस्तरसंक्षेपविषयशास्त्रं वस्त्वनुयोगादिधर्मकथा च भवति नियमेन ॥८८॥ अथ बन्धभेदानाह—

२०

प्रकृतिबन्धः स्थितिबन्धः अनुभागबन्धः प्रदेशबन्धश्चेति बन्धश्चतुर्विधः । स चतुर्विधोऽपि पृथक् प्रत्येक उत्कृष्टोऽनुत्कृष्टो जघन्योऽजघन्यश्चेति चतुर्विधः ॥८९॥ तानुत्कृष्टादीनपि भिनत्ति—

तेषु उत्कृष्टादिबन्धेषु तु पुनः सादिबन्धोऽनादिबन्धो ध्रुवबन्धोऽध्रुवबन्धश्च नानाजीवमेकजीवं च

२५ समस्त अंगसहित अर्थका विस्तार या संक्षेपसे जिसमें वर्णन होता है उस शास्त्रको स्तव कहते हैं । एक अंगसहित अर्थका जिसमें विस्तार या संक्षेपसे कथन होता है उस शास्त्रको स्तुति कहते हैं । एक अंगके अधिकार सहित अर्थका संक्षेप या विस्तारसे वर्णन करनेवाला शास्त्र जिसमें प्रथमानुयोगसम्बन्धी वस्तु रहती है वह नियमसे धर्मकथा है । सो इसमें बन्ध उदय सत्त्वरूप अर्थका कथन समस्त अंग सहित यथायोग्य विस्तार और संक्षेपसे कहा जायेगा अतः यह शास्त्र स्तव नामसे कहा गया है ॥८८॥

बन्धके भेद कहते हैं—

३०

बन्धके चार भेद हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध । उन चारोंके भी जुदे-जुदे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य चार भेद हैं ॥८९॥

उन उत्कृष्ट आदिके भी भेद कहते हैं—

उन उत्कृष्ट आदि बन्धोंमें पुनः सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, नाना

ध्रुवाध्रुवबंधमुमक्कु

प्र । स्थि । अ । प्र ।

उ ४ । उ ४ । उ ४ । उ ४

अ ४ । अ ४ । अ ४ । अ ४

अ ४ । अ ४ । अ ४ । अ ४

ज ४ । ज ४ । ज ४ । ज ४

ठिदिअणुभागपदेसा गुणपडिवण्णेसुजेसिमुक्कस्सा ।

तेसिमणुक्कस्सो चउन्विहोऽजहण्णे वि एमेव ॥९१॥

स्थित्यनुभागप्रदेशा गुणप्रतिपन्नेषु एषामुत्कृष्टाः । तेषामनुत्कृष्टचतुर्विधोऽजघन्योऽप्येवमेव ॥

स्थित्यनुभागप्रदेशंगळु गुणप्रतिपन्न मिथ्यादृष्टि सासादनाद्युपरितनोपरितनगुणस्थानवर्ति-  
गळोळु । एषां कर्मणां आउ केलवु कर्मंगळो उक्कृष्टंगळु । तेषामेव कर्मणां आकर्मंगळोये  
अनुत्कृष्टस्थित्यनुभागप्रदेशमक्कुमदु चतुर्विधः साद्यनादिध्रुवाध्रुवचतुर्विधबंधमक्कुमा अजघन्यमु-  
मिन्ते चतुर्विधः चतुर्विधबंधमक्कुमी साद्यनादिध्रुवाध्रुवबंधलक्षणमुमं मुंदे पेळदपरादोडमिल्लि-  
युदाहरणमात्रं किरिदु तोरल्पट्टपुददेते दोडे उपशमश्रेण्यारोहकसूक्ष्मसांपरायनुच्चैर्गोत्रानुभागमनु-  
त्कृष्टमं कट्टियुपज्ञांतकषायनागि मत्तमवरोहणदोळु सूक्ष्मसांपरायनागि तदनुभागमननुत्कृष्टमं  
कट्टुगुभागळदक्के सादित्वमा सूक्ष्मसांपरायन चरमदतणिदं केळगे अदक्कनादित्वं अभव्यनोळु  
ध्रुवत्वमागळोमं यनुत्कृष्टमं माण्डु उत्कृष्टमं कट्टुगुभागळदक्कध्रुवत्वमिति । अजघन्योऽप्येवमेव  
चतुर्विधः अजघन्यमुमिन्ते चतुर्विधमक्कुमदेते दोडे सप्तमपृथ्वियोळु प्रथमोपशमसम्पत्त्वाभिमुखं

प्रतीत्य गुणस्थाने मार्गणास्थाने च यथायोग्यं भवति ॥९०॥

स्थित्यनुभागप्रदेशाः गुणप्रतिपन्नेषु मिथ्यादृष्टिसासादनाद्युपरितनोपरितनगुणस्थानवर्तिषु येषां कर्मणा-  
मुत्कृष्टतेषामेव कर्मणामनुत्कृष्टः स्थित्यनुभागप्रदेशः साद्यादिभेदाच्चतुर्विधो भवति । अजघन्योऽप्येव चतुर्विधः ।  
तेषां लक्षणमग्रे वक्ष्यति । तथाप्यत्रोदाहरणमात्रं किञ्चित् प्रदर्शयते । तद्यथा—उपशमश्रेण्यारोहकः सूक्ष्म-  
साम्परायः उच्चैर्गोत्रानुभागमुत्कृष्टं बद्ध्वा उपशान्तकषायो जातः । पुनरवरोहणे सूक्ष्मसाम्परायो भूत्वा तदनु-  
भागमनुत्कृष्टं बध्नाति । तदाऽप्य सादित्वं तत्सूक्ष्मसाम्परायचरमादधोऽनादित्वम् । अभव्ये ध्रुवत्वम् । यदा-  
ऽनुत्कृष्टं त्यक्त्वा उत्कृष्टं बध्नाति तदा अध्रुवत्वमिति । अजघन्योऽप्येवमेव चतुर्विधः । तद्यथा—सप्तमपृथिव्यां

जीव और एक जीवकी अपेक्षा गुणस्थान और मार्गणास्थानमें यथायोग्य होते हैं ॥९०॥

गुणप्रतिपन्न अर्थात् मिथ्यादृष्टि सासादन आदि ऊपर-ऊपरके गुणस्थानवर्ती जीवोंमें  
जिन कर्मोंका स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट होता है उन्ही कर्मोंका अनुत्कृष्ट  
स्थिति अनुभाग प्रदेशबन्ध सादि-आदिके भेदसे चार प्रकार का होता है, अजघन्यमें भी  
इसी प्रकार चार भेद होते हैं । उनका लक्षण आगे कहेंगे तथापि यहाँ उदाहरणरूपसे कुछ  
कहते हैं—उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेवाला सूक्ष्मसाम्पराय उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभाग-  
बन्ध करके उपशान्तकषायगुणस्थानमें गया । पुनः उतरनेपर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवाला  
होकर वह उसका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है तब वह बन्ध सादि होता है । क्योंकि  
अनुत्कृष्ट उच्चगोत्र अनुभागबन्धका अभाव होकर सद्भाव हुआ है । उस सूक्ष्मसाम्पराय गुण-  
स्थानसे नीचेके गुणस्थानवर्ती जीवोंके वह बन्ध अनादि है । अभव्यके ध्रुव बन्ध हैं । किन्तु  
भव्य जीव जब अनुत्कृष्टको छोड़कर उत्कृष्ट बन्ध करता है तब अध्रुव है । अजघन्यमें भी  
इसी प्रकार चार भेद होते हैं, जो इस प्रकार हैं—



वर्जितसि शेषमिथ्याद्यप्रमत्तगुणस्थानावसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळोळु यथायोग्यमायुर्वन्धमकुं ।  
तु मत्ते अपूर्वकरणादिगळोळलिल्ल ॥

तीर्थबन्धकके विशेषनियममं पेळदपर :-

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि ।

तिथ्यरबन्धपारंभया णरा केवलिदुर्गते ॥९३॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेषत्रये अविरतादिचत्वारस्तीर्थकरबन्धप्रारंभकाः नराः केवलि-  
द्वयोपाते ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं शेषद्वितीयोपशमसम्यक्त्वक्षायोपशमिकसम्यक्त्वक्षायिकसम्य-  
क्त्वमेव सम्यक्त्वत्रयदोळं असंयताद्यप्रस्तावसानमाद नालकुं गुणस्थानवर्त्तिगळु मनुष्यरगळे तीर्थ-  
करनामकर्मबन्धप्रारंभकरप्परंतप्पोडं प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिद्वय श्रीपादोपांत्यदोळयप्पह । यिल्लि १०  
प्रथमोपसम्यक्त्वदोळमेंवितु भिन्नविभक्तिकरणमर्थांतरज्ञापकमक्कुमेंतेदोडे प्रथमोपशमसम्यक्त्व-  
कालं स्तोकांतर्मुहूर्तमपुर्वारिवमल्लि षोडशभावनासमृद्धि समनिसदेवु केलंबराचाधर्येबरवर  
पक्षदोळा सम्यक्त्वदोळु तीर्थबन्धप्रारंभमिल्ल । नरा एंबो विशेषणमेकेदोडे मनुष्यगतिजरल्ल-  
दुळिद गतिजग्गे तीर्थबन्धप्रारंभकत्वयोग्यतेयिल्लदेतेदोडे नारकरगळगे पेरगे पेळव विशुद्धि-  
निबन्धनकेवलिद्वयश्रीपादसन्निधि संभविसदपुर्वारिवं नारकरं तिथ्यचरगळगे विशिष्टप्रणिधानक्षयो- १५  
पशमाभावादिद तत्त्वार्थाधिगमविशेषाभावदत्तणिदं तीर्थबन्धप्रारंभकनुपपत्तिविदमा तिथ्यचरं  
योग्यरल्लमेकेदोडे तीर्थकरबन्धकारणदरशनविशुद्ध्यादि भावनापरमप्रकर्षमिल्लदत्तणिदं । देव-  
गतिजग्गेयुं मनुष्यरंते विशिष्टप्रणिधानाभावादिदं क्रोडाशीलत्वादिदमभोक्षणज्ञानोपयोगादिभावनाऽ-

न्तेष्वेव । नापूर्वकरणादिषु । शेषप्रकृतिबन्धः तु पुनः मिथ्यादृष्ट्यादिषु स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिपर्यन्तेष्वेव ॥९२॥  
तीर्थबन्धस्य विशेषनियममाह-

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेष-द्वितीयोपशम क्षायोपशमिक-क्षायिकसम्यक्त्वेषु चासंयताद्यप्रमत्तान्तमनुष्या  
एव तीर्थकरबन्धं प्रारभन्ते । तेषु प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिश्रीपादोपांते एव । अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्व  
इति भिन्नविभक्तिकरणं तत्सम्यक्त्वे स्तोकांतर्मुहूर्तकालत्वात् षोडशभावनासमृद्धयभावात्तद्वन्धप्रारम्भो नेति  
केवाञ्चित्पक्षं ज्ञापयति । नरा इति विशेषणं शेषगतिज्ञानपाकरोति । विशिष्टप्रणिधानक्षयोपशमादिसामग्री-  
विशेषाभावात् ।

होता है, अपूर्वकरण आदिमें आयुका बन्ध नहीं होता । शेष प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यादृष्टि  
आदि गुणस्थानोंमें अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिपर्यन्त ही होता है ॥९२॥

तीर्थकर प्रकृतिके बन्धके विषयमें विशेष नियम कहते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें तथा शेष द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व  
और क्षायिक सम्यक्त्वमें असंयतसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त मनुष्य ही तीर्थकरके बन्ध-  
का प्रारम्भ करते हैं । वे भी प्रत्यक्ष साक्षात् केवली श्रुतकेवलीके चरणोंके निकटमें ही करते ३०  
हैं । यहाँ जो 'पढमुवसमिए' इस प्रकार जुदी विभक्ति की है सो प्रथमोपशमसम्यक्त्वका काल  
थोड़ा अन्तर्मुहूर्तमात्र होनेसे षोडश कारण भावना भाता संभव नहीं है इसलिये उसमें तीर्थ-  
करके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता ऐसा किन्हीं का पक्ष है' उसका ज्ञापन करनेके लिये की है ।

तुपपत्तिद्वंद्वं तीर्थकरत्वबंधप्रारंभयोग्यविशुद्धिविशेषासंभवमप्युद्धारितं सिद्धमाबुदु । मनुष्यरुगळे तीर्थबंधप्रारंभकरपरं बुद्धर्थः ॥ तिर्यग्गतिवर्जितमागि शेषगतित्रयदोळु तीर्थकरबंधं संभविसुगु-  
मेकंदोळे तीर्थबंधकालमुत्कृष्टदिदमन्तर्मुहूर्तधिकाष्टवर्षहीनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोप-  
मकालप्रमाणमप्युद्धारितं । केवलद्वयश्रीपादोपान्तदोळे च नियममेकंदोळे तत्समोपदोळे दशान्वि-  
५ शुद्ध्यादिनिबंधनविशुद्धिकारणतत्त्वाधिगमविशेषं संभविसुगुमप्युद्धारितं ॥

अनंतरं गुणस्थानंगळोळु प्रकृतिगळोळु प्रकृतिगळगे बंधव्युच्छित्तियं पेळदपरः—

सोलस पणवीस णमं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा ।

दुग तीस चदुरपुण्वे पण सोलस जोगिणो एक्को ॥९४॥

षोडश पंचविंशतिर्नभः दश चतुः षट्कैक्कबंधव्युच्छित्तयः । द्विकस्त्रिंशच्चतस्रोऽपूर्व पंच

१० षोडश योगिन्येकः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवलपट्यतमाद गुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि षोडशपंचविंशति  
शून्यं दश चतुः षट्क एक प्रकृतिगळु तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्युवु । मेले  
अपूर्वकरणगुणस्थानत्रिभागंगळोळं द्विंशच्चतुः प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्युवु । अनिवृत्तिसूक्ष्म-  
सांपरायरोळु क्रमादिदं पंचषोडशप्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्युवु । उपशांतक्षीणकषायरोळु व्युच्छित्ति

१५ न च तिर्यग्गतिवर्जितगतित्रयतीर्थबंध...तद्वन्धकालस्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तधिकाष्टवर्षोत्पूर्वकोटिद्वया-  
धिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रत्वात् । केवलद्वयान्त एवेति नियमः तदन्यत्र तादृग्विशुद्धिविशेषासंभवात् ॥९३॥  
अथ गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिमाह—

मिथ्यादृष्टी षोडशप्रकृतयो बन्धव्युच्छिन्नास्तासामुपरि बन्धो नास्तीत्यर्थः । सासादने पञ्चविंशतिः ।

मिश्रे शून्यं व्युच्छित्त्यभाव इत्यर्थः । असंयते दश । देशसंयते चतस्रः । प्रमत्ते षट् । अप्रमत्ते एका । अपूर्वकरणस्य  
२० सप्तभागेषु प्रथमे द्वे षष्ठे त्रिंशत् । सप्तमे चतस्रः । अनिवृत्तिकरणे पञ्च । सूक्ष्मसांपराये षोडश । उपशान्त-

‘णरा’ ऐसा विशेषण शेषगतियोंका निराकरण करता है क्योंकि अन्य गतियोंमें विशिष्ट  
चिन्तन क्षयोपशम आदि विशेष सामग्री का अभाव होता है किन्तु तिर्यग्गतिको छोड़ शेष  
तीन गतियोंमें तीर्थकर प्रकृतिके बन्धका अभाव नहीं है क्योंकि तीर्थकरके बन्धका काल  
उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त अधिक आठवर्षकम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीससागर प्रमाण कहा है ।  
२५ अर्थात् यद्यपि तीर्थकरके बन्ध का प्रारम्भ मनुष्य-यज्ञि-में ही होता है तथापि उसके नरक देव  
आदि गतिमें जानेपर वहाँ भी बन्ध होता रहता है केवल तिर्यग् गतिमें ही बन्ध नहीं होता ।  
केवली श्रुतकेवलीके निकट में ही बन्धका नियम कहनेका कारण यह है कि अन्यत्र उस प्रकार  
की विशेष विशुद्धि संभव नहीं है ॥९३॥

गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति कहते हैं—

३० मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सोलह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं । इसका आशय  
यह है कि उन प्रकृतियों का बन्ध दूसरे आदि गुणस्थानोंमें नहीं होता । सासादनमें पञ्चीस  
प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं । मिश्रमें शून्य है अर्थात् यहाँ व्युच्छित्ति नहीं होती ।  
असंयतमें दस, देशसंयतमें चार, प्रमत्तमें छह, अप्रमत्तमें एक, अपूर्वकरणके सात भागोंमें-से  
पहलेमें दो, छठे भागमें तीस, सातवें भागमें चार की व्युच्छित्ति होती है । अनिवृत्तिकरणमें

प्रकृतिगज्जितलिल शून्यगल्लेयपुत्रु । सयोगकेवलियोऽबुद्धे प्रकृतिव्युच्छित्तिवर्धुं । व्युच्छित्ति-  
ये'बुद्धेने'दोडे उपरितनगुणस्थाने'वभावो व्युच्छित्तिः । एल्लि व्युच्छित्तिये'दु पेळत्पट्टुदल्लिया  
प्रकृतिगळ्गे मेलण गुणस्थानदोऽबुद्धे बंधाभावमे'बुद्धत्यं । तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोऽबुद्धे बंधव्यु-  
च्छित्ति बंधविनाशमे'वी विनाशविषयदोऽबुद्धे द्वौ नयाविच्छन्ति येरडु नयंगळनोडंबडुवडु । उत्पा-  
दाणुच्छेदोऽअणुत्पादाणुच्छेदो चेदि । उत्पादानुच्छेदमुत्पादानुच्छेदगुमे'दितु । तत्थ अल्लि ५  
उत्पादाणुच्छेदो णाम उत्पादानुच्छेदमे'बुद्धु । दव्वट्टियो द्रव्यार्थिकः द्रव्यार्थिकं । तेण सत्तावट्टाए  
चेव विनाशमिच्छदि । अदरिं सत्तावस्थेयोळे विनाशमनिच्छदिसुगुं । असत्ते असत्त्वे असत्त्वदोऽबुद्धे ।  
बुद्धिविसयमइक्कंतभावेण बुद्धिविषयमतिक्रान्तभावे'दितं वयणगोयराइक्कंते वचनगोचरातिक्रान्त-  
मागुत्तिरलु । अभावव्यवहाराणुववत्तीदो अभाव व्यवहारानुपपत्तिः । अभावव्यवहारानुपपत्तियत्त-  
णिदं । ण च अभावो णाम अत्थि न च अभावो नामास्ति अभाव मे'बुद्धिल्ल । तत्परिच्छिदो १०  
पमाणाभावादो तत्परिच्छिदतः प्रमाणस्याभावात् । सत्त्वविसयाणं पमाणाणमसत्त्वे वाचरविरो-  
हादो-सत्त्वविषयाणां प्रमाणानां असत्त्वे व्यापारविरहात् सत्त्वविषयगळ्ळप्प प्रमाणं गळ्ळसत्त्वदोऽबुद्धे  
व्यापारमपुद्धरिदं । अविरोहे वा अविरोधे वा । अविरोधमादोडे मेणु । गडुहसिगं पि पमाणविसयं  
होउज्ज गर्हभण्टुगोपि प्रमाणविषयो भवेत् गर्हभण्टुगनुं प्रमाणविषयमागलि । ण च एवमणुवलंभादो  
न चैवमणुपलंभात् इन्तत्तनुपलंभमपुद्धरिदं । तन्हा भावो चेव तस्माद्भावश्च एव अदरिदं भावमे । १५  
अभावोत्ति सिद्धं अभावमे'दितु सिद्धं ॥

क्षीणकपाययोः शून्यम् । सयोगकेवलिन्येका । अयोगकेवलिति बन्धो व्युच्छित्तिरपि न ॥ तत्र दन्धव्युच्छित्तौ  
द्वौ नयाविच्छन्ति-उत्पादानुच्छेदोऽनुत्पादानुच्छेदश्चेति । तत्र उत्पादानुच्छेदो नाम द्रव्यार्थिकः । तेन सत्त्वा-  
वस्थायामेव विनाशमिच्छति । असत्त्वे बुद्धिविषयातिक्रान्तभावेन वचनगोचरातिक्रान्ते सति अभावव्यवहारा-  
नुपपत्तेः । न चाभावो नामास्ति तत्परिच्छेदकप्रमाणभावात् । सत्त्वविषयाणां प्रमाणानामसत्त्वे व्यापार-  
विरोधात् । अविरोधे वा गर्हभण्टुङ्गमपि प्रमाणविषयं भवेत् । न चैवमणुपलंभात् । तस्माद्भाव एव अभाव २०  
इति सिद्धम् । अनुत्पादानुच्छेदो नाम पर्यायार्थिकः । तेन सत्त्वावस्थायामभावव्यपदेशमिच्छति । भावे उप-

पाँच, सूक्ष्मसाम्परायमें सोलह, उपशान्तकषाय क्षीणकपायमें शून्य, सयोगकेवलीमें एक की  
बन्धव्युच्छित्ति होती है । अयोगकेवलीमें बन्ध भी नहीं होता व्युच्छित्ति भी नहीं होती ।  
बन्धव्युच्छित्तिमें दो नयसे कथन है—

एक उत्पादानुच्छेद और दूसरा अनुत्पादानुच्छेद । उत्पादानुच्छेद नाम द्रव्यार्थिक का २५  
है । इस नयके अभिप्रायसे सत्त्व अवस्थामें ही विनाश होता है । जहाँ सत्त्व ही नहीं है  
वहाँ बुद्धि का व्यापार ही सम्भव नहीं है । और ऐसी अवस्थामें वचनके अगोचर होनेसे  
उसमें-अभाव का व्यवहार सम्भव नहीं है । दूसरे, अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि  
उसको ग्रहण करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है । जो प्रमाण सत्त्वपदार्थको जानते हैं वे तो अस-  
त्त्वपदार्थको जाननेमें व्यापार नहीं कर सकते । यदि कर सकते हैं तो गधेके सींग भी प्रमाणके ३०  
विषय होने चाहिए । किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि ऐसा पाया नहीं जाता । अतः सिद्ध होता  
है कि भाव ही अभावरूप होता है । अनुत्पादानुच्छेद नाम पर्यायार्थिक नयका है । उसके  
अनुसार असत्त्व अवस्थामें अभावका व्यवहार होता है क्योंकि भावके होते हुए अभावका



- अनुत्पादानुच्छेदो नाम अनुत्पादानुच्छेदमेव बुद्धे । पञ्जद्विषयो ण्यो  
 पदार्थाधिक्यो नयः । पदार्थाधिक्यनयः । तेन असत्तावस्थाए तेनासत्तावस्थायां अवरिनसत्तावस्थे-  
 योऽपि । अभावव्यवस्यमिच्छति अभावव्यपदेशमिच्छति । भावे अवलम्बमाणे अभावतत्विरोहादो भावे  
 उपलभ्यमाने अभावतत्विरोधात् । न च पडिसेहावित्तो भावो अभावतत्त्वमित्यहं न च प्रतिषेधा-  
 ५ दिष्यो भावोऽभावस्वमाश्रयति । प्रतिषेधाविषयस्य भावमभावत्वमनाश्रयितुं । पडिसेहस्त  
 फलाभावप्रसंगादो प्रतिषेधस्य फलाभावप्रसंगात् । प्रतिषेधकं फलाभावप्रसंगदिवं । न च विनाशो  
 नस्ति न च विनाशो नास्ति । न चैवं इत्यतः । विनाशो नास्ति विनाशमित्यतः । घाति अघातीनां  
 घात्यघातीनां । घात्यघातिगच्छे । सर्वत्रावस्थानानुपलम्भात् सर्वत्रा-  
 वस्थानानुपलम्भदत्तनिर्दिष्टं । न च भावो अभावो होति न च भावो अभावो भवति भावमभावमुमा-  
 १० गदु । भावाभावाणामणोणविरुद्धाणामेव तत्विरोहादोति । भावाभावाणामणोणविरुद्धाणामेकत्व-  
 विरोधादिति । भावाभावाणामणोणविरुद्धाणामेकत्वविरोधमुद्विष्टं । एतत् पुन सुते—अत्र  
 पुनःसूत्रे द्रव्याधिक्यनयः । उत्पादानुच्छेदोऽवलम्बितः । उत्पादस्य विद्यमानस्य  
 अनुच्छेदोऽविनाशो यस्मिन्सावुत्पादानुच्छेदो नयः । एदितु द्रव्याधिक्यनयापेक्षयिदं तन्तम् गुण-  
 स्थानं चरमसमयदोऽन्धव्युच्छित्तिबन्धविनाशमपुदरिदं । पदार्थाधिक्यनयदिदमनन्तरसमयदोऽन्ध-  
 १५ बन्धविनाशमवकुम्भितु ॥

- लभ्यमाने अभावतत्विरोधात् । न च प्रतिषेधाविषयो भावोऽभावस्वमाश्रयति प्रतिषेधस्य फलाभावप्रसंगात् ।  
 न च विनाशो नास्ति घात्यघातीनां सर्वत्रावस्थानानुपलम्भात् । न च भावोऽभावो भवति भावाभावयो-  
 न्योन्यविरुद्धयोरेकत्वविरोधात् इति । अत्र पुनः सूत्रे द्रव्याधिक्यनयः उत्पादानुच्छेदोऽवलम्बितः ।  
 उत्पादस्य विद्यमानस्यानुच्छेदोऽविनाशो यस्मिन्सावुत्पादानुच्छेदो नयः, इति द्रव्याधिक्यनयापेक्षया स्वस्व-  
 २० गुणस्थानचरमसमये बन्धव्युच्छित्तिः—बन्धविनाशः । पर्यायाधिक्यनयेन तु अनन्तरसमये बन्धनाशः ॥९४॥

- व्यवहार होनेमें विरोध है । क्योंकि भावका निषेध किये बिना अभाव नहीं होता । अतः वह  
 अभावपने का आधार नहीं हो सकता । यदि हो तो फिर निषेधका कोई फल नहीं रहेगा ।  
 क्योंकि बिनाश नहीं होता ऐसा भी नहीं है क्योंकि घाति और अघाति कर्म सर्वत्र नहीं पाये  
 जाते । न भाव-अभावरूप होता है क्योंकि भाव और अभाव परस्परमें विरोधी होनेसे एक  
 २५ नहीं हो सकते । यहाँ व्युच्छित्तिके कथनमें उत्पादानुच्छेदरूप द्रव्याधिक्यनयका अवलम्बन  
 लिया है । उत्पाद अर्थात् विद्यमानका अनुच्छेद अर्थात् अविनाश जिसमें है वह उत्पादा-  
 नुच्छेदनय है । इस प्रकार द्रव्याधिक्यनयकी अपेक्षा अपने-अपने गुणस्थानके अन्तिम समयमें  
 बन्धकी व्युच्छित्ति अर्थात् बिनाश होता है । किन्तु पर्यायाधिक्यनयकी अपेक्षा तो अनन्तर  
 समयमें बन्धका नाश होता है ।

- ३० भावार्थ—इसका आशय यह है कि जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति  
 कही है उन प्रकृतियोंका बन्ध उस गुणस्थान के अन्त समयपर्यन्त होता है, उसमें उनके बन्ध-  
 का अभाव नहीं होता । उससे ऊपरके गुणस्थानोंमें उनके बन्धका अभाव होता है । अतः  
 जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध कहा है उसमें उतनी प्रकृतियोंका बन्ध होता  
 है । सो पूर्व-पूर्वके गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध कहा है उनमें-से उसी गुणस्थानमें  
 ३५ जितनी प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति कही हो उन्हें घटानेपर आगे-आगेके गुणस्थानमें बन्ध-  
 का प्रमाण आता है । तथा जितनी प्रकृतियाँ बन्ध योग्य कही हों उनमें-से जितनी प्रकृतियोंका

अनन्तरं मिथ्यादृष्टिबोधशब्दबन्धव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळवपरु :-

मिच्छत्तहुंडसंस्थासंपत्तेयवस्तथावरादावं ।

सुहृमतियं वियलिंदी गिरयदुगिरयाउगं मिच्छे ॥९५॥

मिथ्यात्वहुंडबंठासंप्राप्तैकासंस्थावरातपाः । सूक्ष्मत्रिकं विकलेंद्रियनरकद्विकनरकायुष्कं मिथ्यादृष्टौ ॥

मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ हुंडसंस्थानगुं १ षण्ढवेदमुं १ असंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुं १ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरमेवं सूक्ष्मत्रितयमुं ३ द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियमुमेवं विकलेंद्रियत्रितयमुं ३ नरकगति तत्प्रायोग्यानुपूष्यमेवं नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमुमेवं द्विती बोडशप्रकृतिगळु केवलं मिथ्यात्वोदयहेतुकंगळपुर्दारवं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळपुवु ॥

अनंतरं सासादनन व्युच्छित्तिगळं पेळवपरु :-

विदियगुणे अणथीणतिद्भगतिसंठाणसंहदिचउक्कं ।

दुग्गमणिथीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरिआळु ॥९६॥

द्वितीयगुणे अनंतानुबन्धिनः स्त्यानगृद्धित्रितयं दुर्भगत्रितयं संस्थानसंहननचतुष्कं दुग्गमनं स्त्रीनीचं तिर्धर्गिद्वकमुद्योततिर्धर्गागूषि ॥

द्वितीयगुणे सासादनगुणस्थानदोळु अनंतानुबन्धिकायचतुष्टयमुं ४ स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलात्रितयमुं ३ दुर्भगदुःस्वर अनादेयमेवं दुर्भगत्रितयमुं ३ न्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्जवामनसंस्थानचतुष्टयमुं ४ वज्रनाराच नाराच अर्धनाराच कीलितसंहननमेवं संहननचतुष्टयमुं ४,

अथ ताः षोडशादि प्रकृतिर्गाथाष्टकेनाह—

मिथ्यात्वं हुंडसंस्थानं षण्ढवेदः असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं एकेंद्रियं स्थावरातपः सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणि नरकगतितदानुपूष्यं नरकायुश्चेति षोडश केवलमिथ्यात्वोदयहेतुबन्धत्वात् मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमये एव व्युच्छिद्यन्ते ॥९५॥

सासादनगुणस्थानचरमसमये अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाः दुर्भगदुःस्वरानादेयानि न्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्जवामनसंस्थानानि वज्रनाराचनाराचाधनाराचकीलितसंहननानि अप्रशस्त-

बन्ध कहा हो उन्हें घटानेपर शेष जितनी प्रकृतियाँ रहें उन्हें अबन्धरूप जानना । इस तरह बन्ध, व्युच्छित्ति और अबन्ध ये तीन अवस्थाएँ होती हैं । उन्हींका कथन आगे करेंगे ॥९४॥

उन सोलह आदि व्युच्छित्ति प्रकृतियों को आठ गाथाओं से कहते हैं—

मिथ्यात्व, हुंडसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, एकेंद्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु ये सोलह प्रकृतियाँ केवल मिथ्यात्वके उदयके कारण ही बँधती हैं । अतः मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अन्तिम समयमें ही ये व्युच्छिन्न होती हैं ॥९५॥

सासादन गुणस्थानके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, वज्रनाराचसंहनन, अर्धनाराच संहनन, कीलितसंहनन, अप्रशस्त-

अप्रशस्तविहायोगतिः १ स्त्रीवेदः १ नीचैर्गोत्रं १ तिर्यग्गतिः तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमेव तिर्यग्-  
द्विकम् २ उद्योतनामम् १ तिर्यगायुष्यम् १ मेव पञ्चविंशतिप्रकृतिगणनानुबन्धिकषायोदयहेतुकं  
लप्पुर्दारिद्र्यं सासादनगुणस्थानचरमसमयदोषं बन्धव्युच्छित्तिगल्लप्पुवु ।

ई पञ्चविंशतिप्रकृतिगल्लु मिथ्यात्वानन्तानुबन्धुभयोदयहेतुकं लप्पुवेकैर्दोषे अनन्तानुबन्धि-  
५ कषायोदयरहितमिथ्यादृष्टियोऽविवक्षे बन्धमुत्पुर्दारिद्र्यं मिथ्यात्वोदयरहित सासादननोऽं बन्धमुत्पु-  
पुर्दारिद्र्यं उभयोदयरहितरोऽं बन्धरहितत्वादिदम् ।

अनन्तरमसंयतगुणस्थानदोषं बन्धव्युच्छित्तिगलं पेळदपरः—

मिश्रगुणस्थानदोषं बन्धव्युच्छित्तिगल्यमेकैर्दोषे अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुकं गल्लसंयत  
पथ्यंतं बन्धमुत्पुर्दारिद्र्यमल्लि बन्धव्युच्छित्तिगल्यमेव दु पेळत्पट्टुवु ।

१० अयदे विदियकसाया वज्जं ओरालमणुदुमणुवाळ ।

देसे तदियकसाया णियमेणिह बन्धवोच्छिण्णा ॥९७॥

असंयते द्वितीयकषाया वज्रमौदारिकमनुष्यद्विकं मनुष्यायुर्दशव्रते तृतीयकषायाः नियमेनेह  
बन्धव्युच्छित्तयः ॥

असंयतनोऽं द्वितीयकषायचतुष्टयम् ४ वज्रवृषभनाराचसंहननम् १ औदारिकशरीर-  
१५ तर्दगोपांगद्विकम् २ मनुष्यगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वितयम् २ मनुष्यायुष्यमेव दशप्रकृतिगल्लु  
अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुकं लप्पुर्दारिद्र्यमसंयतगुणस्थानचरमसमयदोषं बन्धव्युच्छित्तिगल्लप्पुवु ।  
देशव्रते देशव्रतगुणस्थानचरमसमयदोषं प्रत्याख्यानावरणोदयहेतुकं गल्लप्प प्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं  
४ बन्धव्युच्छित्तियक्कुं नियमदिदं नो गुणस्थानदोषे येकैर्दोषनन्तगुणस्थानवर्त्तिगल्लु संयमिगल्लप्पुर्दारिद्र्यं  
प्रत्याख्यानावरणोदयाभावमपुर्दारिद्र्यं तद्धेतुः तद्बन्धमुमिल्ल ।

२० विहायोगतिः स्त्रीवेदः नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतितदानपूर्व्यं उद्योतः तिर्यगायुश्चेति पञ्चविंशतिः व्युच्छिद्यन्ते ।  
अमूः पञ्चविंशतिः अनन्तानुबन्धुदयरहितमिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वोदयरहितसासादने च बन्धादुभयोदयहेतुका  
भवन्ति । मिश्रगुणस्थाने बन्धव्युच्छित्तिः शून्यम् ॥९६॥

असंयतगुणस्थानचरमसमये द्वितीयकषायचतुष्टकं वज्रवृषभनाराचसंहननं औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गे  
मनुष्यगतितदानपूर्व्यं मनुष्यायुश्चेति दश अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुबन्धत्वाद् व्युच्छिद्यन्ते । देशव्रतगुणस्थान-  
२५ चरमसमये स्वोदयहेतुबन्धत्वात् प्रत्याख्यानावरणा व्युच्छिद्यन्ते नियमेन ॥९७॥

विहायोगतिः, स्त्रीवेदः, नीचगोत्रः, तिर्यग्गतिः, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योतः, तिर्यगायुः इन पञ्चचीस-  
की व्युच्छित्ति होती है । ये पञ्चचीस अनन्तानुबन्धीके उदयके बिना मिथ्यादृष्टिमें और  
मिथ्यात्वके उदयके बिना सासादनमें भी बँधती हैं अतः इनका बन्ध मिथ्यात्वके उदयसे  
भी होता है और अनन्तानुबन्धीके भी उदयसे होता है । मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति  
३० नहीं है ॥९६॥

असंयतगुणस्थानके अन्तिम समयमें अप्रत्याख्यान कषायकी चौकड़ी, वज्रवृषभनाराच  
संहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायुः ये दस अप्रत्या-  
ख्यानकषायके उदयसे बँधनेके कारण व्युच्छिन्न होती हैं । देशविरत गुणस्थानके अन्तिम  
समयमें प्रत्याख्यानावरण कषायकी नियमसे व्युच्छित्ति होती है । क्योंकि ये अपने उदयके  
३५ निमित्तसे ही बँधती हैं ॥९७॥

अनंतरं प्रमत्तसंयतन बंधव्युच्छित्तिगळं पेळवपरु :—

छट्ठे अथिरं असुहं असादमनमं च अरदिसोगं च ।

अपमत्ते देवाऊ णिदुवणं चेव अत्थित्ति ॥९८॥

षष्ठे अस्थिरमशुभमसातमयशश्चारतिः शोकरश्च । अप्रमत्ते देवायुर्निष्ठापनं चैवास्तीति ॥

प्रमत्ते प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु अस्थिरमुमशुभमुमसातवेदनीयमुमयशस्कीर्त्तिनाममुमरतिपुं शोकमुमं च षट्प्रकृतिगळु प्रमादहेतुकंगळपुदरिदं षष्ठगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्ति- ५  
गळपुवु । प्रमादरहितरोळु तद्वन्धाभावमपुदरिदं । अप्रमत्ते अप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळे देवायु-  
बन्धव्युच्छित्तियक्कुं । स्वस्थानाप्रमत्तचरमसमयदोळु तद्गुणस्थानचरमसमयदोळे देवायुर्निरंतर  
बंधान्तर्म्हूर्त्तकालसमयसंख्याप्रमाणासंख्यातसमयप्रबद्धगळुं समाप्तगळपुवेके दोडे—सातिशया-  
प्रमत्तादिविशिष्टविशुद्धपरिणामरूप उपशमश्रेण्यारोहकापूर्वकरणनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोप- १०  
शांतकषायगणे तदायुर्बन्धननिबन्धनमध्यमविशुद्धि संज्वलनकषायपरिणामस्थानगळु संभविसवपु-  
वरिदं ।

अनंतरमपूर्वकरणगुणस्थानसप्तभागगळं त्रिविधमाडिदल्लि तद्भागगळोळु बंधव्युच्छित्ति-  
गळं पेळवपरु । गाथाद्वयदिदं :—

मरणूणम्मि णियद्वीपदमे णिहा तहेव पयला य ।

१५

छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिदी ॥९९॥

तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवयं ।

चरिमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छा य वोच्छिण्णा ॥१००॥

मरणोने निवृत्तिप्रथमे निद्रा तथेव प्रचला च । षष्ठे भागे तीर्थं निर्माणं सद्गमनपंचेद्रिये ॥

तेजसद्विक्रमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुरवर्णागुरुलघुचतुष्कं त्रसनवकं । चरमे हास्यं २०  
च रतिः भयं जुगुप्सा च व्युच्छित्तयः ॥

प्रमत्तसंयतगुणस्थानचरमसमये अस्थिरं अशुभं असातवेदनीयं अयशस्कीर्त्तिः शोकरश्चेति षट् व्युच्छित्तयान्ते  
प्रमादहेतुकबन्धत्वात् । स्वस्थानाप्रमत्तगुणस्थानचरमसमये देवायुर्बन्धव्युच्छित्तिः । सातिशयाप्रमत्तादिषु  
विशिष्टविशुद्धिकेषु तद्वन्धनिबन्धनमध्यमविशुद्धिसंज्वलनपरिणामासंभवात् ॥९८॥ अथापूर्वकरणस्य सप्त-  
भागान् त्रिधा कृत्वा तत्र बन्धव्युच्छित्ति गाथाद्वयेनाह—

२५

प्रमत्तसंयतगुणस्थानके अन्तिम समयमें अस्थिर, अशुभ, असातवेदनीय, अयशस्कीर्त्ति,  
शोक ये छह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती हैं क्योंकि इनका बन्ध प्रमादके कारण होता है ।  
स्वस्थानाप्रमत्तगुणस्थानके अन्तिम समयमें देवायुकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है । यहाँ अप्रमत्त-  
के साथ स्वस्थान विशेषण इसलिये लगाया है कि सातिशय अप्रमत्त आदिमें विशिष्ट विशुद्धि  
होनेसे मध्यम विशुद्धिरूप संज्वलनके परिणाम सम्भव नहीं हैं और ये ही मध्यम विशुद्धि- ३०  
रूप परिणम यहाँ देवायुके बन्धमें कारण होते हैं ॥९८॥

अपूर्वकरणके सात भागोंमें-से तीन भागोंमें बन्धव्युच्छित्ति दो गाथाओंसे कहते हैं—

उपशमश्रेण्यारोहणदोळ् अपूर्वकरणे प्रथमभागदोळ् मरणमिल्लवु कारणमाणि मरणोने मरणरहितमप्य निवृत्तिप्रथमे निवृत्तिः परिणामविकल्पः तस्य प्रथमो भागस्तस्मिन् । परिणाम-भेदंगळ मरणरहितमप्य प्रथमभागदोळ् परिणामभेदंगळसंख्यात लोकमात्रंगळपूर्वंगळपूर्वकरणे बु जीवकांडोळ् सुनिर्न्तमितपुर्दारदमपूर्वकरणगुणस्थानद मरणविरहितमप्य प्रथमभागदोळ् बुदर्थ-  
 ५ मल्लि निद्रादर्शनावरणम् प्रचलादर्शनावरणमुमे वेरडं बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं । तथैव तेन प्रकारेणैव आ प्रकारदिदमे षष्ठे भागे षष्ठभागदोळ् तीर्थकरनाममुं १ निर्माणनाममुं १ सद्गमनमुं १ पंच-द्रियजातिनाममुं १ तैजसकाम्मंशरीरद्वितयमुं २ आहारकाहारकांगोपांगनामद्वितयमुं २ समचतुरस्रसंस्थानमुं १ देवगतितत्प्रयोग्यानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीर तदंगोपांगमुमे ब मुरचतुष्कमुं ४ वर्णगंध-रसस्पर्शमे ब वर्णचतुष्कमुं ४ अगुरुलघु उपघातपरघातोच्छ्वासमे ब अगुरुलघुचतुष्कमुं ४ त्रसबादर-  
 १० पर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिर शुभ सुभग सुस्वरादेयमे ब त्रस नवकमुं ९ इन्तु त्रिशत्प्रकृतिगळ् षष्ठभाग चरमसमयदोळ् बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं । चरमे चरमसप्तमभागदोळ् हास्यमुं रतिनोकषायमुं भयनोकषायमुं जुगुप्सानोकषायमुमिन्तु नाल्कुं प्रकृतिगळ् तत्सप्तमभागचरमसमयदोळ् बंध-व्युच्छित्तिगळक्कुं ।

अन्तरमनिवृत्तिकरण गुणस्थानद बंधव्युच्छित्तिगळं पेळदपरः—

१५ पुरिसं चंदु संजलणं क्रमेण अणियद्वि पंचभागेसु ।

पढमं विग्घं दंसणचउ जस उच्चं च सुहुमंते ॥१०१॥

पुरुषश्चतुः संज्वलनाः क्रमेणानिवृत्तिपंचभागेषु । प्रथमं विघ्नं दर्शनचत्वारि यथास्कोत्ति-रुच्चं च सूक्ष्माते ॥

पुंवेदनोकषायमुं १ क्रोधसंज्वलनकषायमुं २ मानसंज्वलनकषायमुं १ मायासंज्वलनकषायमुं  
 २० १ लोभसंज्वलनकषायमुं १ मेदितु पंचप्रकृतिगळ् अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपंचभागंगळोळ् यथा-क्रमदिवं मेले मेले बंधव्युच्छित्तिगळपुवु । सांपरायगुणस्थानदोळ् मत्यावरणादिज्ञानावरणपंचकमु ५

निवृत्तिः अर्थादपूर्वकरणपरिणामः । तस्य प्रथमभागे मरणोने आरोहणावसरे मरणरहिते निद्राप्रचले व्युच्छिन्ने । तथैव—तेनैव प्रकारेण षष्ठभागचरमसमये तीर्थं निर्माणं सद्गमनं पञ्चेन्द्रिय तैजसकाम्मं आहारक-तदङ्गोपाङ्गे समचतुरस्रं देवगतितदातुपूर्व्यं वैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानि वर्णगन्धरसस्पर्शाः अगुरुलघुपघात-  
 २५ परघातोच्छ्वासः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयानि चेति त्रिशद्वन्धव्युच्छिन्ना । सप्तमभागे हास्यं रतिर्मयं जुगुप्सा चेति चतुष्कं बन्धव्युच्छिन्नम् ॥९९—१००॥

पुंवेदः क्रोधादयश्चतुःसंज्वलनाश्चानिवृत्तिकरणगुणस्थानपञ्चमभागेषु क्रमेणोपश्र्युपरि व्युच्छिद्यन्ते ।

निवृत्ति अर्थात् अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम भागमें श्रेणी चढ़ते समय मरण नहीं होता । उस भागमें निद्रा और प्रचलाकी व्युच्छित्ति होती है । उसी प्रकारसे छठे भागके  
 ३० अन्तिम समयमें तीर्थकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय, तैजस, काम्मं, आहारक, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय ये तीस प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं । सप्तमभागमें हास्य, रति, भय, जुगुप्सा ये चार व्युच्छिन्न होती हैं ॥९९—१००॥

३५ पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया, संज्वलन लोभ ये पाँच अनि-वृत्तिगुणस्थानके पाँच भागोंमें क्रमसे व्युच्छिन्न होती हैं । सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके

दानान्तरायादिविघ्नपञ्चकमुं ५ चक्षुर्दशनावरणादि दर्शनावरणचतुष्कमुं ४ यशस्कीर्तिनाममुं १  
उच्चैर्गोत्रमुमेवं षोडशप्रकृतिगळु सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तियप्पुवु ।  
अंतर्बो शब्दमस्यदीपकमप्युद्दिष्टमेल्ल । गुणस्थानगळोळु तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळी  
पेळल्पट्ट बंधव्युच्छित्तियगळुपुवेंदितु निश्चयिसुवुवु । मेले कषायोदयमित्तल्पुद्दिष्टं । कषायहेतु-  
कंगळगी गुणस्थानदोळे बंधव्युच्छित्तियादुदिन्तु योगहेतुकमप्य सातवेदनीयबंधं मूह गुणस्थानग  
ळोळेंदु पेळपदपर । ५

उपसंतस्त्रीणमोहे जोगिमि य समयडिदी सादं ।

णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥१०२॥

उपशांतक्षीणमोहयोर्द्वेयिनि च समयिकस्थिति सातं । ज्ञातव्यः प्रकृतीनां बंधस्यान्तोऽ  
नंतश्च ॥ १०

उपशांतकषायनोळं क्षीणमोहनोळं सयोगकेवलिभट्टारकरोळं समयस्थितिकसातवेदनीयं  
योगहेतुकं बंधमक्कुमयोगिभट्टारकरोळु योगमुमित्तल्पुद्दिष्टमदक्के बंधाभावमक्कुमिन्तु प्रकृतिगळगे  
बंधस्यांतः बंधव्युच्छित्तियं अनंतश्च बंधमुं च शब्ददिनबंधमिन्तु त्रिभेदं ज्ञातव्यः । अरियत्पडुवुदिल्लि  
बंधव्युच्छित्तियगळे पेळल्पट्टदुवनुक्तगळप्पबंधमुमबंधमुमेंतरियत्पडुवुवेंदोडे मुपेळदबंधनियमसूत्रमं  
लेसागि भाविसि तीर्तबंधमसंयतादिचतुर्गुणस्थानदोळेयक्कुमाहारकद्वयमप्रमत्तादिअपूर्वकरणषळ- १५  
भागपट्यंतमेयक्कुमायुयं मिश्रगुणस्थानमुमं मिश्रकाययोगिगळं वज्जिसिउळिदेल्ला अप्रमत्तावसान-  
माद सप्तगुणस्थानगळोळु यथायोग्यमागियायुयं बंधमक्कुमुळिदेल्ला प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्ट्यादि  
सयोगकेवलिगुणस्थानावसानमागिद्वयोदशगुणस्थानगळोळी पेळल्पट्ट व्युच्छित्ति प्रकृतिगळपडिदु  
मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानगळोळु व्युच्छित्तियबंधअबंधमुमेवं त्रिविधत्वमं रचितुवददेतेडोडे बंधप्रकृ-  
तिगळु बंधप्रकृतिगळु अभेदविवक्षेयिदं विस्त्युत्तरगतगळक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु २०  
तीर्थमुमाहारकद्वयमुमेवंत्रिप्रकृतिगळु बंधयोग्यगळळतेंदवं कळेदुळिद—११७ प्रकृतिगळु बंध-

सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थानचरमसमये मत्यादीनि पञ्च, दानान्तरादयः पञ्च, चक्षुर्दशनावरणादीनि चत्वारि, यशः-  
कीर्तिरुच्चैर्गोत्रं चेति षोडश व्युच्छिद्यन्ते । अन्ते इत्यन्तदीपकत्वात् सर्वत्रोक्तव्युच्छित्तयः तत्तच्चरमसमये एव  
ज्ञातव्याः ॥१०१॥

उपशान्तकषाये क्षीणमोहे सयोगकेवलिनि चैकसमयस्थितिकं सातवेदनीयमेव वदन्ति । तच्च योग- २५  
हेतुकबन्धं कषायोदयस्य तेष्वभावात् । अयोगे योगोऽपि बन्धोऽपि च नास्ति । एवं प्रकृतीनां बन्धस्यान्तो बन्ध-

अन्तिम समयमें मत्यावरण आदि पाँच, दानान्तराय आदि पाँच, चक्षुर्दशनावरण आदि  
चार, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र ये सोलह व्युच्छिद्यन्त होती हैं । अन्त शब्द अन्तदीपक है अतः  
सर्वत्र उक्त व्युच्छित्तियाँ प्रत्येक गुणस्थानके अन्तिम समयमें ही होती हैं यह ज्ञापित  
करता है ॥१०१॥

उपशान्तकषाय, क्षीणमोह और सयोगकेवलीमें एक समयकी स्थिति लेकर सात-  
वेदनीयका ही बन्ध होता है । यह बन्ध योगके कारण होता है । इन गुणस्थानोंमें कषायका  
अभाव है । अयोगकेवलीमें योग भी नहीं है अतः बन्ध भी नहीं है । इस प्रकार प्रकृतियों के

- योग्यगळ् । कळेदत्रिप्रकृतिगळ् अवधंगळप्पुवंतागुत्तिरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ् व्युच्छित्तिगळ् १६ । बंधंगळ् ११७ । अवधंगळ् ३ । सासावनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळ् मिथ्यादृष्टिय षोडश बंधव्युच्छित्तिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळ् कळेदोडे शेष १०१ प्रकृतिगळ् बंधयोग्यगळप्पवा पविना-  
 ५ रुमबंधव मूरं कूडि एकान्तविशति प्रकृतिगळ् १९ सासावनंगबंधंगळप्पुवंतागुत्तिरलु सासावनसम्य-  
 ग्दृष्टिगुणस्थानदोळ् व्युच्छित्तिगळ् २५ बंधंगळ् १०१ अवधंगळ् १९ । मिथ्यगुणस्थानदोळ् आयुब्बंधमिल्ले ब नियमसुंदप्पुदरिदमा सासावनसम्यग्दृष्टिगे पेळ्द बंधप्रकृतिगळोळगे नरकायुष्यं मिथ्यादृष्टियोळ्ळियितप्पुदरिदं । तिथ्यंगमनुष्यदेवायुष्यंगळिरुतिहंपवातन पंचविशतिव्युच्छित्ति-  
 प्रकृतिगळोळ् तिथ्यंगायुष्यमिदुपुदुदरिना पंचविशतिप्रकृतिगळनू मनुष्यदेवायुष्यद्वयमुमं कूडि २७ प्रकृतिगळं कळेदोडे ७४ प्रकृतिगळ् बंधंगळप्पुवु । अवधंगळा कळेद २७ प्रकृतिगळं सासावनन  
 १० अवधंगळ् १९ मं कूडिदोडे ४६ प्रकृतिगळ् बंधंगळप्पुवंतागुत्तिरलु मिथ्यगुणस्थानदोळ् व्युच्छित्ति-  
 शून्यं बंधंगळ् ७४ अवधंगळ् ४६ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळ् मिथ्यगुणस्थानदोळ् व्युच्छित्ति-  
 शून्यमप्पुदरिदमा मिथ्यनबंधप्रकृति गळ् ७४ रोल्लगेयातन बंधप्रकृतिगळोळ् मनुष्यायुष्यं देवायुष्यं तोत्थंताममुमं ब त्रिप्रकृतिगळिरुत्तिपंभवं तेगदु कूडिदोडसंयतंगे बंधप्रकृतिगळ् ७७  
 अप्पुवा तेगदुळिद अवधंगप्रकृतिगळ् ४३ असंयतंगे अवधंगप्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तिरलु असंयतगुण-  
 १५ स्थानदोळ् व्युच्छित्तिगळ् १० बंधंगळ् ७७ अवधंगळ् ४३ । देशसंयतगुणस्थानदोळ् असंयतन  
 बंधप्रकृतिगळोळगेयातन व्युच्छित्तिगळं कळेदुळिद ६७ प्रकृतिगळ् बंधप्रकृतिगळप्पुवा पत्तुं आतन  
 अवधंग ४३ प्रकृतिगळुमं कूडिदोडे देशसंयतंगे अवधंगळ् ५३ प्रकृतिगळप्पुवु । अन्तागुत्तिरला  
 देशव्रतंगे व्युच्छित्तिगळ् ४ बंधंगळ् ६७ अवधंगळ् ५३ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळ् देशसंयतन  
 नाल्कुं व्युच्छित्तिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळ्कळेदोडे शेष ६३ प्रकृतिगळ् बंधंगळप्पुवा नाल्कुमातन  
 २० अवधंगळ् ५३ नू कूडिदोडे प्रमत्तंगे अवधंगप्रकृतिगळ् ५७ अप्पुवु । अन्तागुत्तिरलु प्रमत्तसंयतंगे  
 व्युच्छित्तिगळ् ६ बंधंगळ् ६३ । अवधंगळ् ५७ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळ् प्रमत्तसंयतन  
 व्युच्छित्तिगळारुम ६ नातन बंधप्रकृतिगळोळ् ६३ कळेदुळिद ५७ प्रकृतिगळं प्रमत्तर अवधं  
 प्रकृतिगळोळिरुत्तिहंहारकद्वयमं बंधयोग्यतेयुळ्ळुदरिदं तेगदुकोडु कूडिदोडे बंधप्रकृतिगळ् ५९  
 अप्पुवाशेषाबंधप्रकृतिगळ् ५५ मनातनबंधव्युच्छित्तिगळ् ६ मं कूडिदोडे अप्रमत्तरिगे अवधं-  
 २५ प्रकृतिगळ् ६१ अप्पुवंतागुत्तिरलप्रमत्तसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति १ बंधंगळ् ५९ अवधंगळ् ६१ ।  
 अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळ् अप्रमत्तसंयतन बंधप्रकृतिगळोळ् ५९ आतन बंधव्युच्छित्तियोदं  
 कळेदोडे बंधप्रकृतिगळ् ५८ आ कळेदोदुमनातन अवधंगप्रकृतिगळ् ६१ मं कूडिदोडे ६२ प्रकृति-  
 गळप्पुवंतागुत्तिरलु मरणरहितापूर्व्वकरणन प्रथमभागदोळ् बंधव्युच्छित्तिगळ् २ बंधंगळ् ५८

व्युच्छित्तिरुक्तो जातव्यः । बन्धस्थानन्तो बन्ध इत्यर्थः । च शब्दादबन्धश्चेति ॥१०२॥

- ३० बन्धका अन्त अर्थात् बन्धव्युच्छित्ति और बन्धका अनन्त अर्थात् बन्ध तथा 'च' शब्दसे अवन्ध जानना ॥१०२॥

इतिबेल्लमं मनदोळिरिसि बंधप्रकृतिगळुमनबंधप्रकृतिगळुमं गुणस्थानंगळोळु गाथाद्वयविबं  
पेळदपं :—

सप्तदशैकाधिकशतं चतुः सप्तोत्तरसप्ततिः सप्तषष्टिस्त्रिषष्टिर्बन्धा नवाष्टाधिकपञ्चाशद्विंशतिः ३०  
सप्तदशैक ओघे ॥

आगे बन्ध और अबन्ध गुणस्थानोंमें दो गाथाओंसे कहते हैं—



मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमाणि । बंधाः प्रकृतिबंधंगळु मिथ्यादृष्टिगुण-  
स्थानबोळु ११७ । सासादनबोळु १०१ मिथनोळु ७४ । असंयतनोळु ७७ । देशव्रतियोळु ६७ ।  
प्रमत्तसंयतनोळु ६३, अप्रमत्तसंयतनोळु ५९, अपूर्वकरणनोळु ५८ । अनिवृत्तिकरणनोळु २२,  
सूक्ष्मसांपरायनोळु १७ । उपशान्तकषायनोळु १ । क्षीणकषायनोळु १ । सयोगकेवलियोळोडु १ ।  
५ अयोगकेवलियोळु शून्यं ० ।

अनंतरमबंधप्रकृतिगळं पेळदपरुः—

तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्तवण्णं च ।

इगिदुगसट्ठी विरहिं तियसय उणवीससय ति वीससयं ॥१०४॥

तिस्रश्चैकान्नविंशतिः षट्त्र्यधिकचत्वारिंशत्त्रिपञ्चाशत्सप्तपञ्चाशत् एकद्विकषष्टिद्विरहित-

१० त्र्यधिकशतमेकान्नविंशत्युत्तरशतत्रिविंशत्युत्तरशतं ॥

अभेदविवक्षाया बन्धो विंशत्यप्रशतम् । तत्र मिथ्यादृष्टौ सप्तदशोत्तरशतमेव । 'सम्मेव तित्थबंधो  
आहारवुगं पमादरहिदेगु' इति तत्त्रयस्य बन्धाभावात् । सासादने एकोत्तरशतं मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तेरुपर्यबन्धात् ।  
मिश्रे चतुःसप्ततिः सासादनव्युच्छित्तेर्नृग्रायुषोश्चाबन्धे प्रक्षेपात् । असंयते सप्तसप्ततिः नृदेवायुस्तीर्षानाम-  
बन्धाद्वन्धे निक्षेपात् । देशसंयते सप्तषष्टिः, असंयतछेदस्याभावात् । प्रमत्ते त्रिषष्टिः देशसंयतव्युच्छित्तेर-  
१५ भावात् । अप्रमत्ते एकान्नषष्टिः प्रमत्तव्युच्छित्तेरभावादाहारकद्वयस्य च बन्धे पतनात् । अपूर्वकरणेऽष्टपञ्चाशत्  
देवायुषोऽप्रमत्ते छेदात् । अनिवृत्तिकरणे द्वाविंशतिः षट्त्रिंशतो बन्धाभावात् । सूक्ष्मसाम्पराये सप्तदश पञ्चानाम-  
निवृत्तिकरणे व्युच्छेदात् । उपशान्त-क्षीणकषाययोः सयोगे च एकैका अयोगे शून्यम् ॥१०३॥

अभेद विवक्षासे बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ बीस हैं । उनमेंसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें  
एक सौ सतरह ही बँधती हैं क्योंकि कहा है कि 'तीर्थंकरका बन्ध सम्यग्दृष्टिके ही होता है  
२० और आहारकद्विकका बन्ध प्रमादरहितके होता है ।' इस प्रकार वहाँ तीन प्रकृतियोंके  
बन्धका अभाव है । सासादनमें एक सौ एक बँधती हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न  
सोलह प्रकृतियाँ ऊपरके गुणस्थानोंमें अबन्धरूप होती हैं । मिश्रमें चौहत्तर बँधती हैं  
क्योंकि सासादनमें व्युच्छिन्न पच्चीस प्रकृतियाँ तथा मनुष्यायु और देवायुका बन्ध  
यहाँ नहीं होता । असंयतगुणस्थानमें सतहत्तर बँधती है क्योंकि मनुष्यायु देवायु और  
२५ तीर्थंकर अबन्धसे बन्धमें आ जाती हैं अर्थात् यहाँ बँधने लगती हैं । देशसंयतमें सड़सठका  
बन्ध होता है क्योंकि असंयतमें दसकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे यहाँ उनका बन्ध नहीं  
होता । प्रमत्तमें त्रेसठका बन्ध होता है क्योंकि देशसंयतमें चारकी व्युच्छित्ति होनेसे  
यहाँ उनका बन्ध नहीं होता । अप्रमत्तमें उनसठका बन्ध होता है क्योंकि प्रमत्तमें व्युच्छिन्न  
छहका अभाव हो जाता है तथा आहारकादिक बन्धमें आ जाते हैं । अपूर्वकरणमें अठावन-  
३० का बन्ध होता है क्योंकि एक देवायुकी अप्रमत्तमें व्युच्छित्ति हो जाती है । अनिवृत्तिकरणमें  
बाईसका बन्ध होता है क्योंकि छत्तीसका बन्ध नहीं होता । सूक्ष्मसाम्परायमें सतरह बँधती  
हैं क्योंकि पाँचकी अनिवृत्तिकरणमें व्युच्छित्ति हो जाती है । उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय  
सयोगीमें एक-एक बँधती है । अयोगीमें शून्य है ॥१०३॥

अबंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु ३ सासादननोळु १९ मिश्रनोळु ४६ असंयतनोळु ४३ देश-  
व्रतियोळु ५३ प्रमत्तसंयतनोळु ५७ । अप्रमत्तसंयतनोळु ६१ । अपूर्वकरणनोळु ६२ । अनिवृत्ति-  
करणनोळु ९८ । सूक्ष्मसांपरायनोळु १०३ । उपशान्तकषायनोळु ११९ । क्षीणकषायनोळु ११९ ।  
सयोगकेवलि भट्टारकनोळु ११९ । अयोगकेवलिभट्टारकनोळु अबंधप्रकृतिगळु १२० ।

अनंतरं मार्गणास्यानंगळोळु बंधव्युच्छित्ति बंधाबंध त्रिविधत्वमं पेळवल्लि मोदलोळु ५  
नरकगतिमार्गणेयोळु गाथात्रितयदिदं पेळवपरः—

अबन्धो मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृदाहारकद्वयं चेति त्रयम् । सासादने तदेव षोडशयुतमित्येकान्नविंशतिः ।  
मिश्रे सापि पञ्चविंशत्या नृदेवायुभ्यां च युते षट्चत्वारिंशत् असंयते नृदेवायुस्तीर्थकृदबन्धात् त्रिचत्वारिंशत् । देश-  
संयते सा दशयुतेति त्रिपञ्चाशत् । प्रमत्ते चतुर्युतेति सप्तपञ्चाशत् । अप्रमत्ते प्रमत्तषड्युतापि आहारकद्वयबन्धात् १०  
एकषष्टिः । अपूर्वकरणप्रथमभागे देवायुयुतेति द्वाषष्टिः । द्वितीयभागे निद्राप्रचलाम्यां चतुःषष्टिः । सप्तमभागे  
षष्ठभागत्रिंशता चतुर्नवतिः । अनिवृत्तिकरणे सप्तमभागचतुर्भिरष्टानवतिः । सूक्ष्मसाम्परायेऽनिवृत्तिकरणपञ्च-  
भागानामेकैकव्युच्छित्या त्र्युत्तरशतम् । उपशान्तक्षीणकषायसयोगेषु षोडशयुतमित्येकान्नविंशत्यग्रशतम् । अयोगे  
सातस्याप्यबन्धाद्विंशत्यग्रशतम् ॥१०४॥ अथ मार्गणासु तत्त्रयप्ररूपयंस्तावनरकगती गाथात्रयेणाह—

अब अबन्ध कहते हैं । मिथ्यादृष्टिमें तीर्थकर और आहारकद्विक तीनका अबन्ध है ।  
सासादनमें उनमें सोलह मिलानेसे उन्नीसका अबन्ध है । मिश्रमें उन्नीसमें पच्चीस १५  
व्युच्छित्ति तथा मनुष्यायु देवायु मिलानेसे छियालीसका अबन्ध है । छियालीसमेंसे मनुष्यायु  
देवायु तीर्थकर घटानेसे असंयतमें तैतालीसका अबन्ध है अर्थात् असंयतमें ये तीन अबन्धसे  
बन्धमें आ जाती हैं । उनमें दस जोड़नेसे देशसंयतमें तिरपनका अबन्ध है । उनमें चार  
जोड़नेसे प्रमत्तमें सत्तावनका अबन्ध है । इसमें प्रमत्तमें व्युच्छिन्न छह प्रकृतियोंको जोड़नेपर  
भी आहारकद्विकके बन्धमें आ जानेके इकसठका अबन्ध है । इसमें देवायु बढ़ानेसे अपूर्व- २०  
करणके प्रथम भागमें बासठका अबन्ध है । दूसरे भागमें निद्रा प्रचलाके बढ़नेसे चौसठका  
अबन्ध है । सप्तम भागमें छठे भागमें व्युच्छिन्न तीस प्रकृतियोंके मिलनेसे चौरानबेका अबन्ध  
है । अनिवृत्तिकरणमें अपूर्वकरणके सप्तमभागमें व्युच्छिन्न चारके मिलनेसे अठानबेका  
अबन्ध है । अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें व्युच्छिन्न पाँच प्रकृतियोंके मिलनेसे सूक्ष्म-  
साम्परायमें एक सौ तीनका अबन्ध है । इसमें सोलह मिलनेसे उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय २५  
सयोगीमें एक सौ उन्नीसका अबन्ध है । अयोगीमें साताका भी अबन्ध होनेसे एक सौ बीसका  
अबन्ध है ॥१०४॥

इनकी संदृष्टि इस प्रकार हैं—

|            | मि. | सा. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अ. | अपू. | अनि. | सू. | उ.  | क्षी. | स.  | अ.  |    |
|------------|-----|-----|-----|----|-----|------|----|------|------|-----|-----|-------|-----|-----|----|
| बन्ध व्यु. | १६  | २५  | ०   | १० | ४   | ६    | १  | ३६   | ५    | १६  | ०   | ०     | १   | ०   | ३० |
| बन्ध       | ११७ | १०१ | ७४  | ७७ | ६७  | ६३   | ५९ | ५८   | २२   | १७  | १   | १     | १   | ०   |    |
| अबन्ध      | ३   | १९  | ४६  | ४३ | ५३  | ५७   | ६१ | ६२   | ९८   | १०३ | ११९ | ११९   | ११९ | १२० |    |

आगे मार्गणाओंमें बन्धादि तीनका कथन करते हुए नरकगतिमें तीन गाथाओंसे  
कहते हैं—

ओधे वा आदेसे णारयमिच्छम्मि चारि बोच्छिण्णा ।

उवरिम बारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा ॥१०५॥

ओधे इवादेशे नारकमिथ्यादृष्टौ चतस्रो व्युच्छित्तयः । उपरिम द्वादश सुरचतुःसुरायुरा-  
हारकमबंधाः ॥

- ५ ओधे इव इन्तु गुणस्थानदोळु पेळवते आवेशे मार्गणेयोळमरियत्पडुगुमप्पुवरिवं गुण-  
स्थानदोळु मिथ्यादृष्टिगे पेळव बंधव्युच्छित्तिगळु १६ ररोळगे नारकमिथ्यादृष्टियल्लि मोवल  
नालकुं मिथ्यात्व हुंडसंस्थान षंडवदासंप्राप्तसंहननमेव प्रकृतिगळु बंधव्युच्छित्तिगळपुवी नालकर  
मुंदग एकेंद्रियजाति स्थावरनाम आतप सूक्ष्म अपर्याप्तसाधारणशरीरनाम द्वीन्द्रियजाति त्रीन्द्रिय-  
जाति चतुरिन्द्रियजाति नरकगति नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं नरकायुष्यमेव द्वादशप्रकृतिगळु १२ ।
- १० देवगति देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यमुं वैक्रियिकशरीरमुं तदंगोपांगमेव सुरचतुष्कमुं ४ देवायुष्यमुं  
आहारकद्वयमुमेव १९ प्रकृतिगळु नरकगतिसामान्यनारकरुगळो बंधयोग्यंगळल्लवेकेंदोडे नारकर  
नरकगतिविबुं एकेंद्रियजीवंगळु विकलत्रयजीवंगळु नारकरं देवकळुमाणि पुट्टरु कारणविबमा  
पत्तो भत्तुं प्रकृतिगळु नूरिप्पत्तु बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडे नरकगतिय नारकरुगळो बंधयोग्यमप्य  
प्रकृतिगळु नूरोडु प्रकृतिगळपुवु १०१ । घम्मंयोळं वंशोयोळं मेघेयोळमी नूरोडु प्रकृतिगळु  
१५ बंधयोग्यंगळपुवु । अंजनेयोळमरिष्टेयोळं माघवियोळं तीर्थबंधमिल्लपुवरिवमा मूरं नरकंगळ  
नारकरुगळो नूर नूर प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळपुवु । माघवियोळु मनुष्यायुष्यं तद्वगतिनारकरु-  
गळगे बंधयोग्यमल्लपुवरिवमा मनुष्यायुष्यमं कळेदोडे ओडु गुवि नूर प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळपुवी  
प्रकृतिगळु तत्तत्पृथिव्य पथ्याप्तकरुगळगे योग्यंगळु । अपथ्याप्तकरुगळगे बेरे योग्य प्रकृतिगळ  
पेळलपट्टपवपुवरिवं
- |    |        |       |
|----|--------|-------|
|    | परि    | अप    |
| २० | घ १०१  | घ ९९  |
|    | वं १०१ | वं ९८ |
|    | मे १०१ | मे ९८ |
|    | अं १०० | अं ९८ |
|    | अं १०० | अ ९८  |
| २५ | म १००  | म ९८  |
|    | मा ९९  | मा ९५ |

मार्गणाणां गुणस्थानवज्जातव्यं किन्तु नरकगतौ मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वादीनां चतुर्णामेव व्युच्छित्तिः ।  
तदुपरितनैकेन्द्रियादिद्वादशानां देवगतितदानुपूर्व्यवैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानां देवायुराहारकद्वयोश्च बन्धो नास्ति ।  
तेन बन्धयोग्यमेकोत्तरशतम् १०१ । अञ्जनादित्रये तीर्थङ्करत्वं विना शतम् । माघव्यां मनुष्यायुर्विना एकोन-

- ३० मार्गणामे गुणस्थानवत् जानना । किन्तु नरकगतौ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे चारकी  
ही व्युच्छित्ति होती है । उससे ऊपरकी एकेन्द्रिय आदि बारह, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी,  
वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग, देवायु, आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता । अतः घर्मा आदि  
तीन नरकोंमें बन्ध योग्य एक सौ एक हैं । अंजना आदि तीन नरकोंमें तीर्थंकरका बन्ध न  
होनेसे बन्धयोग्य सौ हैं । माघवीमें मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य निन्यानवे हैं ।

अपर्याप्तकरगळो मिश्रकाययोगित्त्वपुद्गरिदं आवायुबन्धमित्त्वपुद्गरिदं तिर्यग्मनुष्यायुर्ह्ययमं कळेदोडे ९९ प्रकृतिगळु बंधयोग्यगळपुवु । क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळु कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळु घर्म्म-  
योळपुट्टुवरपुद्गरिदमपर्याप्तकालदोळ तीर्थबंधपुट्टु । वंशयोळ मेघेयोळमुळिव नरकंगळोळ  
सम्यग्दृष्टिगळपुट्टु मिथ्यादृष्टिगळे योगि पुट्टुवरदु कारणमाणि तीर्थनामकम्ममना तोभत्तो-  
भत्तरेळु कळेदोडे ९८ प्रकृतिगळु वंशादिमघविपद्यंतं बंधयोग्यप्रकृतिगळपुवु । माघवियोळ ५  
नारकरु अपर्याप्तकालदोळ मनुष्यगतिनामकम्ममनुमन्तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यधुमनुच्चैर्गोत्रमुमनिन्तु  
मूरं प्रकृतिगळु कट्टुव योग्यतेयित्त्वपुद्गरिदमवं तोभत्तं दुं प्रकृतिगळोळकळेदोडे ९५ प्रकृतिगळु  
बंधयोग्यगळपुवु । इन्तो विधानम ननितं लेसागव धारिसिबंगे घर्म्मादिपृथिव्यगळोळ बंधव्युच्छित्ति  
बंधाबंधत्रिविकल्पमं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानगळोळ योगिसुव प्रकारमं पेळदपरु :—

घर्म्मे तित्थं बंधदि वंशमेघाण पुण्णगो चेव ।

१०

छट्ठोत्ति य मणुवाउ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥१०६॥

घर्म्मायां तीर्थं बध्नाति वंशमेघयोः पूर्णश्चैव षष्टिपद्यंतं मनुष्यायुश्चरमे मिथ्यादृष्ट्या-  
वेव तिर्यगायुः ॥

घर्म्मयोळ नारकं तीर्थनामकम्ममं कट्टुगुं । वंशेय मेघेय नारकरु पर्याप्तकालदोळे  
कट्टुवरु । अवेकंदोडे घर्म्मयत्त्वमुळिव वंशाद्यस्तन पृथिव्यगळोळ सम्यग्दृष्टिगळपुट्टुवरु कारण- १५  
दिदमा वंशयोळ मेघेयोळपुट्टुव तीर्थसत्कर्मरु पुट्टुदंतर्म्महूर्तवके षट्पर्याप्तगळनेरुदु सम्यक्त्व-  
स्वीकारमं माडि तीर्थबंधमं माळपरपुद्गरिदं । मघविपद्यन्तमाद नरकंगळ नारकरु मनुष्यायुष्यमं  
कट्टुवरु । माघविय नारकरु मिथ्यादृष्टिगळे तिर्यगायुष्यमं कट्टुवरु एवो सूत्राभिप्रायविदं घर्म्मं  
वंशे मेघेय पर्याप्तकरचनेयं मुन्नं रचियिसि बळिक्कवर विचारमं माडिवपेमवक्के संदृष्टि :—

शतम् । अपर्याप्तकाले तु मिश्रकाययोगित्वात् नरतिर्यगायुषी विना घर्म्मायामेकोनशतम् ९९ । वंशादिषु  
सम्यग्दृष्ट्यनुत्पत्तेः तीर्थङ्करत्वं विना अष्टानवतिः ९८ । माघव्यां मनुष्यगतितदानुपूर्व्योच्चैर्गोत्रैर्विना पंच- २०  
नवतिः ९५ । इदं जानन्तं प्रति गुणस्थानेषु व्युच्छित्यादित्रयं योजयति ॥१०५॥

घर्म्मायां तीर्थकरत्वं च बध्नाति । वंशमेघयोः पर्याप्त एव बध्नाति नापर्याप्तः । मघवीं यावन्मनुष्यायु-  
र्बध्नाति नाघः । माघव्यां मिथ्यादृष्ट्यावेवैकं तिर्यगायुर्बध्नाति एतत्सूत्राभिप्रायेण घर्म्मादित्रयपर्याप्तस्य

अपर्याप्त अवस्थामे मिश्रकाय योग होनेसे मनुष्यायु तिर्यचायुका बन्ध नहीं होता । अतः  
घर्म्मां बन्धयोग्य निन्यानवे हैं । सम्यग्दृष्टि जीव मरकर वंशा आदिमें उत्पन्न नहीं होता । २५  
अतः वहाँ तीर्थकरका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य अठानवे हैं । माघवीमें मनुष्यगति,  
मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके विना बन्धयोग्य पिचानवे हैं, यह अपर्याप्त अवस्थामे  
जानना ॥१०५॥

यह जान लेनेपर गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति आदि तीनका कथन करते हैं—

घर्म्मानरकमें तीर्थकरका बन्ध करता है । वंशा और मेघामें पर्याप्त अवस्थामें ही ३०  
तीर्थकरका बन्ध करता है, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं करता । मघवी नामक छठे नरक तक ही  
मनुष्यायुका बन्ध करता है उससे नीचे नहीं करता । 'माघवीमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही

| पर्याप्त | अ  | घर्म     | वशे | मेघे |
|----------|----|----------|-----|------|
| म        | मि | १०       | ७२  | २९   |
|          | मि | ०        | ७०  | ३१   |
|          | सा | २५       | ९६  | ५    |
|          | मि | ४        | १०० | १    |
| अप       | अ  | ९        | ७१  | २८   |
| पर्याप्त | मि | २८       | ९८  | १    |
|          |    | व्युच्छि | बंध | अबंध |

इल्लि मिथ्यात्वम् हुंडसंस्थानम् बंधवेदमुसंप्राप्तसृष्टादिकासंहननमेव नाल्कुं प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोलु व्युच्छित्तिगळुपुवु । बंधप्रकृतिगळु १०० अबंधप्रकृति तीर्थमोदेयक्कुं । सासादनगे बंधव्युच्छित्तिगळुं मुन्नं गुणस्थानदोलु पेळद पंचविंशतिप्रकृतिगळेयपुवु । बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळु नाल्कनातन बंधप्रकृतिगळोलु कळेदुळिद ९६ प्रकृतिगळु सासादनगे बंधप्रकृतिगळुपुवु । अबंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्तिगळु नाल्कुमबंधप्रकृति तीर्थमितैदुं प्रकृतिगळु सासादनगे अबंधप्रकृतिगळुपुवु । मिश्रगे व्युच्छित्तिशून्य भक्कुं । बंधप्रकृतिगळु । सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु २५ मनातन बंधप्रकृतिगळोलु कळेदुळिद ७१ प्रकृतिगळोलुगे मिश्रगायुर्वंधमिल्लपुदरिदमल्लिदं मनुष्यायुष्यमं तेगेदोडे बंधप्रकृतिगळु ७० तपुवु । अबंधप्रकृतिगळुमा कळद मनुष्यायुष्यमं १ । सासादनन बंधव्युच्छित्ति २५ मबंधप्रकृतिगळु ५ मित्तु ३१ प्रकृतिगळु मिश्रगे अबंधप्रकृतिगळुपुवु । असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु १० बंधप्रकृतिगळु मिश्रन बंधप्रकृतिगळोलुगे तीर्थमुमं मनुष्यायुष्यमुमं कूडिदोडे ७२ प्रकृतिगळु असंयतगे बंधप्रकृतिगळुपुवु । अबंधप्रकृतिगळु मिश्रन अबंधगळु ३१ रोलुगे तीर्थमुमं मनुष्यायुष्यमुमं तेगेदु बंधप्रकृतिगळोलु कूडिदवपुदरिदमु आ येरडुं प्रकृतिगळु कळदोडे असंयतगे अबंधप्रकृतिगळु २९ अपुवु । घर्मैय अपर्याप्तनारकरुगळगे । मिथ्यादृष्टिगे सासादनतिर्यगायुर्वज्जितबंधव्युच्छित्तिगळ २४ मं तन्न नाल्कुं बंधव्युच्छित्तिगळु कूडिदोडे बंधव्युच्छित्तिगळु २८ पुवेकंदोडे नरकगतिगळेल्लियुमपपर्याप्तकालदोलु सासादनरिल्लपुदरिदं । असंयतसम्यग्दृष्टिगे मनुष्यायुर्वज्जित-

एकोत्तरशते मिथ्यादृष्टी अबन्धः तीर्थकरत्वं, बन्धः शतं, व्युच्छित्तिः तदेवाद्यचतुष्कम् । सासादने अबन्धः पञ्च, बन्धः षण्णवतिः, व्युच्छित्तिः प्रागुक्तैव पञ्चविंशतिः । मिश्रे बन्धः मनुष्यायुर्नेति सप्ततिः, अबन्धः एकत्रिंशत्, व्युच्छित्तिः शून्यम् । असंयते बन्धः मनुष्यायुस्तीर्थकरत्वाभ्यां द्वांसप्ततिः, अबन्धः एकान्नविंशत्, व्युच्छित्तिर्दश । नारकापर्याप्तानां सासादनत्वं नेति घर्माणां मिथ्यादृष्टी व्युच्छित्तिः तिर्यगायूरहितसासादन-

एक तिर्यगायुका बन्ध करता है' इस सूत्रके अभिप्रायसे घर्माआदि तीनमें पर्याप्तके एकसौ एक बन्धयोग्य हैं । मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थकरका अबन्ध है, बन्ध सौका, व्युच्छित्ति आदिकी चार प्रकृतियों की । सासादनमें अबन्ध पाँच, बन्ध छियानवे, व्युच्छित्ति पूर्वोक्त पच्चीस । मिश्रमें मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे बन्ध सत्तर, अबन्ध इकतीस, व्युच्छित्ति शून्य । असंयतमें तीर्थकर और मनुष्यायुका बन्ध होनेसे बन्ध बहत्तर, अबन्ध उनतीस, व्युच्छित्ति दस । नरकमें अपर्याप्तावस्थामें सासादन गुणस्थान नहीं होता । अतः घर्मां मिथ्यादृष्टिमें

गळप्प तन्न व्युच्छित्तिगळु ९ तन्नो बंधव्युच्छित्तिगळप्पुबु ९। मिथ्यादृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु तिर्थाग्ननुष्यायुद्धंघरहित ९८ प्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळप्पुबु। असंयतंगे तन्न पर्याप्तकालद ७२ रोळगे मनुष्यायुद्धंघरहितमाणि तीर्थसहितमाणि बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुबु। मिथ्यादृष्टियोळु तीर्थमोदे अबंधप्रकृतियक्कुं १। असंयतंगे आ मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्ति अबंधगळु कूडि २९ रोळगे तीर्थबंधप्रकृतिगळोळं कूडित्तप्पुबु कारणमाणि असंयतनोळबंधप्रकृतिगळु २८ अप्पुबु। यिन्नु ५ अंजने अरिष्टे मघविगळ पर्याप्तनारकगो :—

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | १० | ७१  | २९ |
| मि | ०  | ७०  | ३० |
| सा | २५ | ९६  | ४  |
| मि | ४  | १०० | ०  |

तीर्थरहितमाणि घमें वंशे मेघेगळगे पेळवंतेयवकुं। वंशेयुं मेघेयुमंजनेयुमरिष्टेयुं मघवियुमें ब पंचभूमिगळनारकापर्याप्तन मिथ्यादृष्टिगळेयुपुर्दमा मिथ्यादृष्टिगळगेल्लरिगं बंधप्रकृतिगळु ९८ अप्पुबु मो २८। ९८। ०। माघविय नारकपर्याप्तकगळगे :—

|                  |    |    |    |
|------------------|----|----|----|
| अ                | ९  | ७० | २९ |
| मि               | ०  | ७० | २९ |
| सा               | २४ | ९१ | ८  |
| मि               | ५  | ९६ | ३  |
| माघविय अपर्याप्त |    |    |    |
| मि               | ९५ | ९५ | ०  |

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ सासादननल्लिय तिर्थाग्ननुष्यं गूडि ५ प्रकृति- १० गळप्पुबु। बंधप्रकृतिगळु ९६। अबंधप्रकृतिगळु ३॥

मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो।

मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति ॥१०७॥

मिश्राविरतयोरुच्चं मनुष्यद्विकं सप्तभ्यां भवेद्बंधः। मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यद्विकमुच्चं न बध्नीतः ॥

व्युच्छित्त्या युता इत्यष्टाविंशतिः, बन्धोऽष्टानवतिः, अबन्धः तीर्थकरत्वम्। असंयते व्युच्छित्तिः मनुष्यायुर्विना नव, बन्धस्तीर्थकरत्वेन एकसप्ततिः। अबन्धोऽष्टाविंशतिः। अरुजनादित्रयपर्याप्तानां तीर्थकरत्वं बिना घर्मादित्रयवत् ज्ञातव्यम्। वंशादिपञ्चापर्याप्ता मिथ्यादृष्टय एवेति बन्ध एव ॥१०६॥

व्युच्छित्ति तिर्यगायुके बिना सासादनमें व्युच्छिन्न चौबोस प्रकृतियोंके मिलनेसे अठाईसकी होती है। बन्ध अठानवे, अबन्ध तीर्थकर का। असंयतमें व्युच्छित्ति मनुष्यायुके बिना नौ, बन्ध तीर्थकरके साथ इकहत्तर, अबन्ध अठाईस। अंजना आदि तीनमें पर्याप्तकोंके तीर्थकरके बिना घर्मा आदि तीनकी तरह जानना। वंशा आदि पाँच पृथिवियोंमें अपर्याप्त अवस्थामें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ॥१०६॥

- मिश्रनोळुमसंयतनोळं उच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकमुं सप्तमपृथुवियोळु बंधमक्कुं । मिथ्यादृष्टि-  
सासादनसम्यग्दृष्टिगळीर्व्वरु मनुष्यद्विकमुमनुच्चैर्गोत्रमुं कट्टरेदितु मिथ्यादृष्टियोळुबंधप्रकृतिगळु  
३ अप्पुवु । सासादनसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु २४ अप्पुवेकेदोडे तिर्यंगायुष्यमं तेगदु  
मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळोळुकूडिदप्पुदरिदं बंधप्रकृतिगळु २१ अप्पुवेकेदोडे मिथ्यादृष्टिवंधव्युच्छि-  
५ त्तिगळु कळेदुदप्पुदरिदं । अबंधप्रकृतिगळु ८ प्पुवेकेदोडे मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळु मातन  
अबंधप्रकृतिगळुमूरं ३ कूडिदोडे टे प्रकृतिगळुपुदरिदं मिश्रनोळु व्युच्छित्तिशून्यमक्कुं । बंधप्रकृति-  
गळु सासादनन व्युच्छित्तिगळुनातनबंधप्रकृतिगळोळुकळेदोडे ६७ प्रकृतिगळुपुववरोळु मनुष्यद्विक-  
मुमनुच्चैर्गोत्रमुं कूडिदोडे मिश्रगे बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवु । अबंधप्रकृतिगळु कूडिद मूरं  
प्रकृतिगळं सासादनन व्युच्छित्यबंधंगळोळु ३२ कळेदोडे मिश्रंगबंधप्रकृतिगळु २९ अप्पुवु ।  
१० असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु मनुष्यायुर्व्वज्जितनवप्रकृतिगळुपुवु ९ । बंधप्रकृतिगळु  
मिश्रगे पेळदंते ७० प्रकृतिगळुपुवु । अबंधप्रकृतिगळु मिश्रनोळंतंते २९ प्रकृतिगळुपुवु । माघविय  
अपर्याप्तमिथ्यादृष्टिगे तिर्यंगायुर्व्वज्जित ९८ प्रकृतिगळोळगे मनुष्यद्विकोच्चप्रकृतित्रयमं कळेदोडे  
९५ प्रकृतिगळुबंधंगळुपुवु । इन्तु नरकगतियोळु बंधव्युच्छित्तिबंधावधप्रकृतिगळु पेळत्पदुवनंतरं  
तिर्यंगगतियोळु पेळदपरु :—

- १५ सप्तमपृथिव्या मिश्रासंयतयोश्चैर्गोत्रं मनुष्यद्वयं च बध्नाति । मिथ्यादृष्टिसासादनौ न बध्नतः इति  
तत्त्रयं तत्पर्याप्ते मिथ्यादृष्टावबन्धः । बन्धः षण्णवतिः । व्युच्छित्तिस्तिर्यंगायुषोऽत्रैव बंधात् पञ्च । सासादने  
अबन्धोऽष्टौ, बन्धः एकनवतिः, व्युच्छित्तिः चतुर्विंशतिः । मिश्रेऽबन्धः तत्त्रयबन्धादेकान्नविंशत्, बन्धः  
सप्ततिः, व्युच्छित्तिः शून्यम् । असंयते अबन्धबन्धौ मिश्रवत् । व्युच्छित्तिर्मनुष्यायुर्वर्जनान्नव ॥१०७॥ एवं  
नरकगतौ बन्धव्युच्छित्तिबन्धावधप्रकृतीः प्ररूप्य अनन्तरं तिर्यंगतो प्ररूपयति—

- २० सातवी पृथिवीमें मिश्र और असंयत गुणस्थानमें ही उच्चगोत्र और मनुष्यद्विकका  
बन्ध होता है । मिथ्यादृष्टि और सासादनमें उनका बन्ध नहीं होता । अतः सातवी पृथिवीमें  
पर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टिमें इन तीनोंका अबन्ध होता है । बन्ध छियानवे, तिर्यंगायुका  
बन्ध यही होनेसे व्युच्छित्ति पाँच । सासादनमें अबन्ध आठ, बन्ध इक्यानवे, व्युच्छित्ति  
चौबीस । मिश्रमें मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध होनेसे अबन्ध उनतीस, बन्ध सत्तर,  
२५ व्युच्छित्ति शून्य । असंयतमें अबन्ध और बन्ध मिश्रकी तरह, व्युच्छित्ति मनुष्यायुको  
छोड़ नौ ॥१०७॥

|           | धर्मादि तीन पर्याप्त |     |       |      | धर्मा अपर्याप्त |      | अंजनादि तीन पर्याप्त |     |       |      | सप्तम नरक पर्याप्त |     |       |      |
|-----------|----------------------|-----|-------|------|-----------------|------|----------------------|-----|-------|------|--------------------|-----|-------|------|
|           | १०१ बन्धयोग्य        |     |       |      | ९९ बन्धयोग्य    |      | १०० बन्धयोग्य        |     |       |      | ९९ बन्धयोग्य       |     |       |      |
|           | मि.                  | सा. | मिश्र | असं. | मि.             | असं. | मि.                  | सा. | मिश्र | असं. | मि.                | सा. | मिश्र | असं. |
| अबन्ध     | १                    | ५   | ३१    | २९   | १               | २८   | ०                    | ४   | ३०    | २९   | ३                  | ८   | २९    | २९   |
| बन्ध      | १००                  | ९६  | ७०    | ७२   | ९८              | ७१   | १००                  | ९६  | ७०    | ७१   | ९६                 | ९१  | ७०    | ७०   |
| बं. व्यु. | ४                    | २५  | ०     | १०   | २८              | ९    | ४                    | २५  | ०     | १०   | ५                  | २४  | ०     | ९    |

तिरिण ओघो तित्थाहारुणो अविरदे छिदी चउरो ।

उवरिमछण्णं च छिदी सासणसम्मं हवे णियमा ॥१०८॥

तिरिच ओघस्तीर्थाहारोऽविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः । उपरितनषण्णां व्युच्छित्तिः सासादनसम्यग्दृष्टौ भवेन्नियमात् ॥

तिर्यग्गतियोळु ओघः गुणस्थाननिरूपणमेयकुं । अदे तप्पुवे दोडे तीर्थाहारोऽनः तीर्थनाम-  
मुमाहारकद्वयविहीनमपुवकुं । तीर्थाहारकप्रकृतिविहीनमाद सर्वबंधप्रकृतिगळु ११७ ङुं मुन्नं  
गुणस्थानदोळ्पेळुदंते बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु ज्ञातव्यमपुवल्लि अविरते असंयतसम्यग्दृष्टि-  
योळु व्युच्छित्तिगळु १० रोळगे तिर्यग्वासंयतंगे चतस्रो व्युच्छित्तयः नाल्के बंधव्युच्छित्तिगळुपुव  
४ ल्लि उपरितनषट्प्रकृतिगळमे ६ सासादनसम्यग्दृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु नियमदिदमपुवन्ता-  
गुत्तं धिरलु :—

सामण्णतिरियपंचिदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव ।

सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुन्वियल्लकमवि णत्थि ॥१०९॥

सामान्यतिर्यक्पंचेंद्रियपूर्णकयोनिमतिवैवमेव । सुरनारकायुरपुण्णं वैक्रियिकषट्कमपि नास्ति ॥

सामान्यतिर्यक्चरं पंचेंद्रियतिर्यक्चरं पर्याप्तकतिर्यक्चरं योनिमतिर्यक्चरमेव चतुर्विध-  
तिर्यक्चरगळोळु एमेव यी प्रकारमेयकुमपूर्णं लब्धपर्याप्ततिर्यक्चरोळु सुरनारकायुः  
देवायुष्यमुं नरकायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमपि वैक्रियिकद्वितयमुं देवगतिद्वयमुं नरकगतिद्वयमुमेव  
वैक्रियिकषट्कमुमा तिर्यक्चल्लब्धपर्याप्तकरोळु बंधमिल्लेके दोडे उत्तरभवदोळु उदययोग्यमल्लव  
प्रकृतिगळं कट्टुवरल्लरे बुदर्थं । संदुष्टिरचने :—

तिर्यग्गती ओघः गुणस्थाननिरूपणमिव भवति किन्तु तीर्थाहारोऽनः तीर्थकरत्वाहारकद्वयाम्यां रहितो  
भवति तेन बन्धयोग्यप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतम् । व्युच्छित्तिबन्धाबंधभेदास्तत्प्रकृतित्रयं विना गुणस्थान-  
वज्ज्ञातव्याः । तत्रापि अविरते असंयतसम्यग्दृष्टौ व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया एव चत्वारः तदुपरितनानां  
वज्जवृषभनाराचादीनां षण्णां व्युच्छित्तिः तिर्यग्मनुष्यगत्योः सासादनसम्यग्दृष्टावैव भवति नियमात् ॥१०८॥  
तथासति—

सामान्यतिर्यक्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्चः पर्याप्ततिर्यक्चः योनिमतिर्यक्चश्चेति चतुर्विधतिर्यक्च एवमेव भवति ।  
अपूर्णं लब्धपर्याप्तकतिरिच सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कमपि बन्धो नास्ति उत्तरभवे उदययोग्यानां

तिर्यक्चगतिमें 'ओघ' अर्थात् गुणस्थानवत् जानना । किन्तु तीर्थकर और आहारक-  
द्विकका बन्ध नहीं होता । अतः बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सतरह । व्युच्छित्ति, बन्ध-अबन्ध  
गुणस्थानवत् जानना । इतना विशेष है कि असंयत गुणस्थानमें व्युच्छित्ति चार अप्रत्या-  
ख्यानावरण कषायकी ही होती है । उससे ऊपरकी वज्जवृषभनाराच आदि छहकी व्युच्छित्ति  
सासादन सम्यग्दृष्टिमें ही नियमसे होती है ॥१०८॥

सामान्यतिर्यक्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्च, पर्याप्ततिर्यक्च, योनिमतिर्यक्च इन चार प्रकारके  
तिर्यक्चोंमें इसी प्रकार होता है । लब्धपर्याप्तक तिर्यक्चमें देवायु, नरकायु और वैक्रियिक षट्क-



| सा | पं | प   | यो |
|----|----|-----|----|
| दि | ४  | ६६  | ५१ |
| अ  | ४  | ७०  | ४७ |
| मि | ०  | ६९  | ४८ |
| सा | ३१ | १०१ | १६ |
| मि | १६ | ११७ | ०  |

इल्लि मिथ्यादृष्टिय बंधप्रकृतिगळु ११७ रोळु मिथ्यात्वादि षोडश व्युच्छित्ति प्रकृतिगळं कळदुळिद १०१ प्रकृतिगळु सासादनंगे बंधप्रकृतिगळकुमा कळद १६ प्रकृतिगळु आतंगबंधप्रकृतिगळपुड । बंधव्युच्छित्ति प्रकृतिगळु ३१ अप्पुवेकेंदोडे चतुर्विधतिर्यंचासंयतसम्यग्दृष्टिगळु वज्रश्रुषभनाराचसंहननमुमं औदारिकद्वयमुमं मनुष्यद्वितयमुमं मनुष्यायुष्यमुमं कट्टरपुर्दारदमवं तेगदु सासादननोळु व्युच्छित्तिगळमाडलपट्टुदरिदं । मिश्रंगे बंधप्रकृतिगळु ६९ अप्पुवेतेंदोडे सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु ३१ नातन बंधप्रकृतिगळोळकळदल्लिदं देवायुष्यमुमं कळदोडकुमपुर्दारिदं अबंधप्रकृतिगळल्लि ४८ प्रकृतिगळपुवेतेंदोडे सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळुमबंधप्रकृतिगळु कूडि देवायुष्यं सहितमागियपुवपुर्दारिदं । तिर्यक्चतुष्टयासंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवेतेंदोडे मिश्रनोळकळद देवायुष्यमनातं कट्टुगुमपुर्दारिदं अबंधप्रकृतिगळु ४७ अप्पुवा कूडिद तेवायुष्यं कळदुवपुर्दारिदं । चतुर्विधतिर्यंचदेशत्रतिगळगे बंधप्रकृतिगळु ६६ अप्पुवेतेंदोडे असंयतन बंधव्युच्छित्तिगळनाल्कुमनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळदोडकुमे बुवत्थं । अबंधप्रकृतिगळु ५१ अप्पुवेतेंदोडसंयतन अबंधप्रकृतिगळोळु ४७ आतनव्युच्छित्तिगळनाल्कु कूडिदोडकु मे बुवत्थं । बंधव्युच्छित्तिगळुमल्लि ४ अप्पुवो चतुर्विधतिर्यंचनिर्वृत्यपध्याप्रकृतिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १११

बन्धाभावात् । तत्सामान्यादिचतुर्विधतिरश्चां मिथ्यादृष्टी बन्धप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतम् । अत्र मिथ्यात्वादि १५ षोडशव्युच्छित्तिमपनीय शेषाः १०१ ।

सासादनस्य बन्धः । अपनीतास्ताः १६ अबन्धः, व्युच्छित्तिरेकत्रिशत् । कुतः ? असंयतव्युच्छित्तेरपरितनषण्णामत्रैव छेदात् । मिथ्ये बन्धः एकान्नसप्ततिः सासादनबन्धे तद्व्युच्छित्तेर्देवायुषश्च अपनयनात् । अबन्धोऽष्टचत्वारिंशत् सासादनव्युच्छित्यबन्धयोर्देवायुर्मेलनात् । व्युच्छित्तिः शून्यम् । असंयतस्य बन्धः सप्ततिः देवायुषोऽत्र बन्धसंभवात् । अबन्धः सप्तचत्वारिंशत् देवायुषोऽपनीतत्वात् । व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया

२० का बन्ध नहीं है क्योंकि जो प्रकृतियाँ आगामी भवमें उदयके योग्य नहीं हैं उनका बन्ध नहीं होता । अतः सामान्य आदि चार प्रकारके तिर्यञ्चोंके मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सत्तरह हैं । इनमें-से सोलहकी व्युच्छित्ति घटानेपर शेष एक सौ एकका बन्ध सासादनमें, अबन्ध सोलह, व्युच्छित्ति इकतीस; क्योंकि असंयतमें व्युच्छिन्न होनेवाली ऊपरकी छह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही होती है । मिश्रमें बन्ध उनहत्तर क्योंकि २५ सासादनमें बँधनेवाली एक सौ एक प्रकृतियोंमें-से व्युच्छिन्न इकतीस तथा देवायु कम हो जाती हैं । अबन्ध अड़तालीस, क्योंकि सासादनमें व्युच्छिन्न इकतीस और अबन्धमें सोलह तथा देवायुके मिलनेसे अड़तालीस होती है । व्युच्छित्ति शून्य । असंयतके बन्ध सत्तरका, क्योंकि यहाँ देवायुका बन्ध सम्भव है । अबन्ध सैंतालीस क्योंकि देवायु कम हो गयी ।

अप्पुवदेते दोडे मिश्रकाययोगिगळोळायुब्धमिल्लपुदरिदं । नात्कायुब्धंगळुं ४ नरकद्विकमुमिन्तु  
६ प्रकृतिगळु कळेदुवपुदरिदं । ई निवृत्यपर्याप्तकसगळो गुणस्थानत्रयमवकुमल्लिमिथ्यादृष्टिगुण  
स्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवेते दोडे निवृत्यपर्याप्तकालदोळु मिथ्यादृष्टिगं सासादनगं  
सुरचतुष्टयमं कट्टुव योग्यते पिल्लपुदरिनवं कळेदातनोळु अवंधप्रकृतिगळुमाडिद वपुदरिदं ।  
आ चतुर्विधसासादननिवृत्यपर्याप्ततिर्य्यचसगळो बंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवेते दोडे मिथ्यादृष्टिय ५  
बंधव्युच्छित्तिगळु १३ कळेदोडपुवपुदरिदं अवंधप्रकृतिगळुमल्लि १७ अप्पुवेते दोडे मिथ्यादृष्टिय  
बंधव्युच्छित्तिगळुमनातन अवंधप्रकृतिगळुमं कूडिदोडकुमपुदरिदं । असंयतत्रिविधतिर्य्यचनिवृत्य-  
पर्याप्तसगळो बंधप्रकृतिगळु ६९ अप्पुवेते दोडे सासादनबंधव्युच्छित्तिगळु २९ इवनातन बंध-  
प्रकृतिगळोळकळेदोडे ६५ अप्पुववरोळु सुरचतुष्कमं कूडिदोडे अप्पुवपुदरिदं । अवंधप्रकृतिगळो-  
ळातनोळु ४२ अप्पुवेते दोडे सासादनबंधव्युच्छित्तिगळुमं २९ । अवंधप्रकृतिगळुमं १७ कूडिदोडे १०  
४६ रिवरोळु सुरचतुष्कं तेगदु असंयतनोळुकूडिदुदपुदरिदं :—

|    |    |    |    |
|----|----|----|----|
| सा | पं | अप | ०  |
| अ  | ४  | ६९ | ४२ |
| सा | २९ | ९४ | १७ |
| मि | १३ | १७ | ४  |

एव चत्वारः वज्रवृषभनाराचादीनां धण्णां प्राक् सासादन एव बन्धच्छेदात् । देशसंयतस्य बन्धः षट्षष्टिः  
असंयतव्युच्छित्तिचतुष्कस्य तद्बन्धेऽपनीतत्वात् । अबन्धः एकपञ्चाशत् असंयतव्युच्छित्तेरत्र पतितत्वात् ।  
व्युच्छित्तिः स्वस्य चतुष्कम् । चतुर्विधतिर्य्यगनिवृत्यपर्याप्तानां बन्धयोग्यप्रकृतयः एकादशोत्तरशतमेव । मिश्रकाय-  
योगित्वादायुश्चतुष्कनरकद्विकयोर्बन्धाभावात् तेषां च गुणस्थानत्रयमेव । तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः सप्तोत्तरशतं १५  
निवृत्यपर्याप्तकाले मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सुरचतुष्कस्याबन्धात् । व्युच्छित्तिः त्रयोदश नरकायुर्नरकद्विकयोर्-  
भावात् । अबन्धः सप्तदश मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्यबन्धयोर्मेलत्वात् । असंयतस्य बन्धः एकान्नसप्ततिः सासादन-  
बन्धे तद्व्युच्छित्येकात्रिंशतमपनीय सुरचतुष्कस्य मेलनात् । अबन्धः द्वाचत्वारिंशत् सासादनव्युच्छित्यबन्धौ

व्युच्छित्ति चार अप्रत्याख्यानकषायोंकी, क्योंकि वज्रवृषभनाराच आदि छहकी पहले सासा-  
दनमें ही बन्धव्युच्छित्ति हो गयी है । देशसंयतमें बन्ध छियासठका, क्योंकि असंयतमें २०  
बंधनेवाली सत्तर प्रकृतियोंमें-से उसमें व्युच्छिन्न चार घट जाती हैं । अबन्ध इक्यावनका,  
असंयतमें व्युच्छिन्न उसमें मिल जाती है । व्युच्छित्ति चार । उक्त चारों प्रकारके निवृत्य-  
पर्याप्ततिर्य्यञ्चोंके बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ ग्यारह हैं । क्योंकि मिश्रकाययोग होनेसे चारों  
आयु और नरकद्विकका बन्ध नहीं होता तथा उनमें तीन ही गुणस्थान होते हैं । उनके  
मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्ध एक सौ सात; क्योंकि निवृत्यपर्याप्तकालमें मिथ्यादृष्टि और  
सासादनमें सुरचतुष्कका बन्ध नहीं होता । व्युच्छित्ति तेरह; क्योंकि नरकद्विक और नरकायु- २५  
का अभाव है । सासादनमें बन्ध चौरानबे; क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न तेरह घट जाती  
हैं । व्युच्छित्ति उनतीस, क्योंकि तिर्य्यञ्चायु मनुष्यायुका अभाव है । अबन्ध सत्तरह, क्योंकि  
मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न तेरह और अबन्धमें चार मिलकर सत्तरह होती हैं । असंयतमें बन्ध  
उनहत्तर; क्योंकि सासादनमें बन्ध चौरानबेमें-से उसमें व्युच्छिन्न उनतीस घटाकर सुरचतुष्क

इन्नु लब्धपर्याप्तकमिध्यादृष्टिगच्छे सुरनारकायुरपूर्णं वैक्रियिकषट्कमपि नास्ति एवं  
सूत्राभिप्रायविदं लब्धपर्याप्तकतिर्यग्मिध्यादृष्टिगच्छे तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयं कटुवरपुर्दारिद्र्यं शेष-  
सुरनारकायुर्द्वयमुमं वैक्रियिकषट्कमुमं कटुव योग्यतेयिल्लपुर्दारिद्र्यमा ८ प्रकृतिगच्छं तिर्यग्गतिय  
बंधयोग्यप्रकृतिगच्छ ११७ रोज्जो कळदोडे १०९ प्रकृतिगच्छ बंधयोग्यगच्छपुत्रु ॥

५ अनंतरं मनुष्यगतियोज्जो बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिगच्छं गुणस्थानगच्छोज्जो पेळदपरः—

तिरियेव णरे णवरि हु तित्थाहारं च अत्थि एमेव ।

सामण्णपुण्णमणुसिणिणारे अपुण्णे अपुण्णेव ॥११०॥

तिरस्चीव नरे नवं खलु तीर्थाहारं चास्त्येवमेव । सामान्यपूर्णमानुषीषु नरे अपूर्ण  
अपूर्ण इव ॥

१० तिर्यग्गतियोज्जो तु पेळदंते मनुष्यगतियोज्जोमश्कुमेते'दोडे अविरते व्युच्छित्तप्रवृत्तसः  
एंबिदुवु । मा असंयतन नात्करिद मुंदण ६ व्युच्छित्तिप्रकृतिगच्छ सासादननोज्जो व्युच्छित्तिगच्छपु-  
बे'बिदुवु । मत्तं नवीनमुंदवावुदे'दोडे तीर्थाहारं चास्ति तीर्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमुंदु खलु स्फुट-

एकीकृत्य तस्मात् सुरचतुष्कस्य बन्धे निक्षेपात् । व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया एव चत्वारः । तिर्यग्लब्ध-  
पर्याप्तकमिध्यादृष्टौ तिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धसद्भावात् शेषसुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कमपि बन्धो नास्तीति  
१५ तदष्टके तिर्यग्गतिवन्धेऽनीते शेषं नवोत्तरशतमेव बन्धयोग्यं भवति ॥१०९॥ अयं मनुष्यगतौ बन्धव्युच्छित्ति  
बन्धाबन्धप्रकृतीगुणस्थानेषु प्ररूपयति—

तिर्यग्गतिवन्धमनुष्यगतौ भवति । अविरते व्युच्छित्तचत्वारः । तदुपरितनानां षण्णां व्युच्छित्तिः  
सासादनसम्यग्दृष्टावेव इति विशेषस्य उभयत्र समानत्वात् । पुनः नवीनमस्ति । तत् किम् ? तीर्थकरत्वमा-

२० मिलानेसे उनहत्तर होती हैं । अबन्धमें बयालीस; क्योंकि सासादनमें हुई व्युच्छित्ति और  
अबन्धको मिलाकर उसमें-से सुरचतुष्कको बन्धमें ले जानेपर बयालीस रहती हैं । व्युच्छित्ति  
चार अप्रत्याख्यान कषायकी । तिर्यग्लब्धपर्याप्तक मिध्यादृष्टिमें तिर्यच्चायु मनुष्यायुका बन्ध  
सम्भव है । शेष देवायु, नरकायु और वैक्रियिक षट्कका बन्ध नहीं होता । अतः तिर्यग्-  
गतिके बन्धयोग्य एक सौ सतरहमें-से ये आठ कम करनेपर शेष एक सौ नौ बन्धयोग्य  
होती हैं ॥१०९॥

| २५       | सामान्यादि चार पर्याप्त तिर्यच्चोर्मे |     |       |      |      | निर्वृत्यपर्याप्त तिर्यच्चोर्मे |     |      |  |  |
|----------|---------------------------------------|-----|-------|------|------|---------------------------------|-----|------|--|--|
|          | बन्धयोग्य ११७                         |     |       |      |      | बन्धयोग्य १११                   |     |      |  |  |
|          | मि.                                   | सा. | मिश्र | असं. | देश. | मि.                             | सा. | असं. |  |  |
| अबन्ध    | ०                                     | १६  | ४८    | ४७   | ५१   | ४                               | १७  | ४२   |  |  |
| बन्ध     | ११७                                   | १०१ | ६९    | ७०   | ६६   | १०७                             | ९४  | ६९   |  |  |
| ब. व्यु. | १६                                    | ३१  | ०     | ४    | ४    | १३                              | २९  | ४    |  |  |

मनुष्यगतिके गुणस्थानोंमें बन्ध, व्युच्छित्ति-बन्ध और अबन्ध कहते हैं—

तिर्यग्गतिके समान मनुष्यगतिके होता है । अर्थात् असंयतगुणस्थानमें चारकी  
व्युच्छित्ति होती है । उससे ऊपरकी छहकी व्युच्छित्ति सासादन सम्यग्दृष्टीमें ही होती है यह  
विशेषता दोनोंमें समान है । नवीनता यह है कि मनुष्यगतिके तीर्थकर और आहारकद्विकका

मागि । सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्यमानुषीमनुष्यरुगळे बो त्रिविधमनुष्यरोळं एमेव ई प्रकार-  
मेयक्कुमदु कारणमागिबंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० अप्पुवु । सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु  
३१ अप्पुवु । असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ मिर्वित्तु तिर्यंगतिगळुपेळपेळट्टुविल्लियुं  
त्रिविधमनुष्यरोळमरियलपडुगुमे बुदत्थं । नरे अपूर्णं अपूर्णं इव मनुष्यापूर्णनप्प लब्धपर्याप्तकनोळु  
तिर्यंगतिलब्धपर्याप्तकंगे पेळदंतयक्कु संदृष्टि :—

|      |    |     |     |
|------|----|-----|-----|
| अ    | ०  | ०   | १२० |
| स    | १  | १   | ११९ |
| क्षी | ०  | १   | ११९ |
| १ उ  | ०  | १   | ११९ |
| १ सू | १६ | १७  | १०३ |
| १ अ  | ५  | २२  | ९८  |
| १ अ  | ३६ | ५८  | ६२  |
| अ    | १  | ५९  | ६१  |
| प्र  | ६  | ६३  | ५७  |
| दे   | ४  | ६७  | ५३  |
| अ    | ४  | ७१  | ४९  |
| मि   | ०  | ६९  | ५१  |
| सा   | ३१ | १०३ | १९  |
| मि   | १६ | ११७ | ३   |

इल्लिद मुंदधस्तनाधस्तनगुणस्थानंगळ बंधव्युच्छित्तिगळं बंधदोळकळेदोडं बंधव्युच्छित्ति-  
गळनू अबंधप्रकृतिगळनू कूडिदडमुपरितनोपरितनगुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि बंधप्रकृतिगळुम-  
बंधप्रकृतिगळुमप्पुवु दिन्नु बंधदोळमुदयदोळमुदीरणयोळं सत्वदोळं ज्ञातव्यमक्कुमेकं दोडवं कळेवुं  
कूडियुं बंधप्रकृतिगळनू अबंधप्रकृतिगळनू पेळवुदिल्ल विशेषमुंटादेडयोळु कंठोक्तं माडिदपरेंडु  
निश्चयिसूदु । गुणस्थानंगळोळु बंधप्रकृतिगळिनितेंडु पेळदोड केळगणगुणस्थानद बंधव्युच्छिगळना १०  
गुणस्थानद बंधप्रकृतिगळोळु कळेडु पेळदरेडु अबंधप्रकृतिगळुमिनितेंडु पेळदोडयुं केळगण गुण-  
स्थानद बंधव्युच्छित्तिगळनू अबंधप्रकृतिगळनू कूडि पेळदरेंदे निश्चयिसुवुदें बुदत्थं ।

मनुष्यगतिगळु सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्ययोनिमतिमनुष्यने बिन्नु त्रिविधमनुष्यरुगळे  
गुणस्थानंगळु चतुर्दशप्रमितंगळप्पुववरोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १६ बंध-  
प्रकृतिगळु ११७ अबंधप्रकृतिगळु तीर्थमुमाहारकद्वयमुं कूडि त्रिप्रकृतिगळप्पुवु ३ । सासादननोळु १५

हारकद्वयं च बन्धोऽस्ति खलु-स्फुटम् । सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्यमानुषीमनुष्येषु त्रिविधेष्वपि एवमेव तेन  
बन्धयोग्यं विशत्युत्तरशतम् । सासादनव्युच्छित्तिरेकांशित् । असंयतव्युच्छित्तिश्चत्वारश्चेति ज्ञातव्यम् । गुण-  
स्थानानि चतुर्दश । तेष्वधस्तनव्युच्छित्ती बन्धादपनीतायां विशेषकथनपूर्वकमबन्धे च युतायामुपरितनबन्धाबन्धौ  
स्याताम् । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १६ । बन्धः ११७ । अबन्धः तीर्थमाहारकद्वयं चेति त्रयं । सासादने

बन्ध होता है । सामान्य मनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मानुषी मनुष्य तीनोंमें भी इसी प्रकार २०  
है । अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं । सासादनमें व्युच्छित्ति इकतीस और असंयतमें चार  
जानना । गुणस्थान चौदह हैं । उनमें नीचेकी व्युच्छित्ति बन्धमें-से घटानेपर विशेष कथनके

- बन्धव्युच्छित्तिगळु ३१ अप्पुवेत्ते दंडे असंयतंगे पेळद बन्धव्युच्छित्तिगळु १० रोलु तिरियेव नरे एदु पेळदरप्पुदरिदमप्रत्याख्यानचतुष्टयमं कळदुळिद षट्प्रकृतिगळु सासादननोलु व्युच्छित्तिगळुदुवप्पुदरिदं बन्धप्रकृतिगळु १०१ । अवन्धप्रकृतिगळु १९ । मिश्रगुणस्थानदोलु बन्धव्युच्छित्तिशून्यमककुं । बन्धप्रकृतिगळु ६९ । अप्पुवेत्ते दोडे देवायुष्यमं कळदु अवन्धप्रकृतिगळुळुळुडिदवप्पुदरिदं । अवन्धप्रकृतिगळु ५१ । असंयतगुणस्थानदोलु बन्धप्रकृतिगळु ४ अप्पुवेत्ते दोडे वज्रवृषभनाराचसंहननादि षट्प्रकृतिगळु सासादननोलु बन्धव्युच्छित्तिगळुदुवप्पुदरिदं बन्धप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवेत्ते दोडे मिश्रनोलुबन्धरूपदिनिर्दं देवायुष्यमुमं तीर्थमुमनातं कट्टुवनप्पुदरिदमा एरडुं प्रकृतिगळु कूडिदुवेत्तुदत्थं । अवन्धप्रकृतिगळु ४९ । अप्पुवा कूडिदेरडुं प्रकृतिगळु कळदुवप्पुदरिदं । देशव्रतियोलु बन्धव्युच्छित्तिगळु तन्न प्रत्याख्यानवरणकषायचतुष्टयमेयककुं ४ । बन्धप्रकृतिगळु ६७ अवन्धप्रकृतिगळु ५३ । प्रमत्तसंयतनोलु बन्धव्युच्छित्तिगळु अस्थिरादिगळु ६ अप्पुवु । बन्धप्रकृतिगळु ६३ अवन्धप्रकृतिगळु ५७ । अप्रमत्तगुणस्थानदोलु देवायुष्यमोदे बन्धव्युच्छित्तियककुं १ । बन्धप्रकृतिगळु ५९ एकंदोडाहारकट्टिकमुं प्रमादरहितं कट्टुवरप्पुदरिदमा एरडुं प्रकृतिगळु कूडिदोडककुमेवुदत्थं । अवन्धप्रकृतिगळु ६१ । अप्पुवा कूडिदेरडुं प्रकृतिगळु कळदुवप्पुदरिदं मेलपूर्वकरणदिगुणस्थानंगळुल्लेड्योलु मुधुं गुणस्थानसामान्यकथनदोलुतु पेळदंते बन्धव्युच्छित्ति बंधाऽबन्धप्रकृति-

- १५ बन्धव्युच्छित्तिः ३१ । तिरिएव नरे इत्यसंयतस्योक्तबन्धव्युच्छित्ती उपरितनषणामनैव छेदाद् बन्धः १०१ । अवन्धः १९ । मिश्रे बन्धव्युच्छित्तिः शून्यम् । बन्धः ६९ । देवायुष्यमपनीय अवन्धप्रकृतिषु क्षेपात् । बन्धः १०१ । अवन्धः ५१ । असंयते बन्धव्युच्छित्तिः ४ । वज्रवृषभनाराचादिषट्प्रकृतीनां सासादने व्युच्छिन्नत्वात् । बन्धः ७१ । देवायुस्तोत्रं करयोरत्र बन्धे मिलितत्वात् । अवन्धः ४९ । तत्प्रक्षिप्तप्रकृतिद्वयस्यापनयनात् । देशव्रते बन्धव्युच्छित्तिः स्वस्य प्रत्याख्यानकषायचतुष्कमेव ४ । बन्धः ६७ । अवन्धः ५३ । प्रमत्तसंयते बन्धव्युच्छित्तिः अस्थिरादयः ६ । बन्धः ६३ अवन्धः ५७ । अप्रमत्तगुणस्थाने देवायुर्व्युच्छित्तिः १ । बन्धः ५९ । आहारद्वयस्य प्रमादरहितेषु बन्धप्रतिपादनात् । अवन्धः ६१ । तद्वयस्यापनयनात् । उपर्यपूर्वकरणादिषु

- अनुसार अवन्धमें जोड़नेपर ऊपरके बन्ध और अवन्ध होते हैं । मिश्रयादृष्टिमें व्युच्छित्ति १६, बन्ध ११७, अवन्ध तीर्थकर और आहारद्विक इस प्रकार तीन । सासादनमें बन्ध व्युच्छित्ति ३१, क्योंकि तिर्यञ्चके समान मनुष्यमें होनेसे असंयतमें कही बन्धव्युच्छित्ति दसमें-से ऊपरकी छहकी व्युच्छित्ति यहाँ हो होती है । बन्ध १०१, अवन्ध १९ । मिश्रमें बन्धव्युच्छित्ति शून्य, बन्ध ६९, क्योंकि देवायुको अवन्ध प्रकृतियोंमें मिला दिया है, बन्ध एक सौ एक, अवन्ध इक्यावन । असंयतमें बन्धव्युच्छित्ति चार, क्योंकि वज्रवृषभनाराच आदि छह प्रकृतियोंकी सासादनमें व्युच्छित्ति हो गयी है । बन्ध इकहत्तर, क्योंकि देवायु और तीर्थकर यहाँ बन्धमें आ गयी हैं । अवन्ध उनचास; क्योंकि बन्धमें गयी दो प्रकृतियाँ कम हो गयी हैं । देशसंयतमें बन्धव्युच्छित्ति अपनी प्रत्याख्यान कषाय चार हैं । बन्ध सड़सठ, अवन्ध तरेपन । प्रमत्तसंयतमें बन्धव्युच्छित्ति अस्थिर आदि छह, बन्ध तरेसठ, अवन्ध सत्तावन । अप्रमत्त गुणस्थानमें एक देवायुकी बन्धव्युच्छित्ति, बन्ध उनसठ, क्योंकि आहारकट्टिकका बन्ध प्रमादरहितमें कहा है । अवन्ध इकसठ क्योंकि दो कम गयीं । ऊपर अपूर्वकरण आदिमें सर्वत्र गुणस्थान सामान्यकी तरह व्युच्छित्ति बन्ध और अवन्ध प्रकृतियाँ होती हैं उसी प्रकार लगाना

गळप्पुदरिवं नडसत्पडुवु । ई सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्य योनिमतिमनुष्यरेदी त्रिविधमनुष्य-  
गळगे निर्वृत्यपर्याप्तकालबोळु बंधयोग्यप्रकृति ११२ अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रकाययोगिगळप्पुदरिवमायु  
वचतुष्कमुं ४ नरकद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ मिन्तु ८ प्रकृतिगळु बंधयोग्यगळप्पुदरिवमवं  
बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु कळेबोडे ११२ प्रकृतिगळुवचप्पुदरिवं । अल्लि मिथ्यादृष्टिसासादना  
संयतप्रमत्तसयोगकेवलिगुणस्थानपंचकमक्कुमागुणस्थानंगळगे संदृष्टि :—

|     |    |     |     |
|-----|----|-----|-----|
| स   | १  | १   | १११ |
| प्र | ६१ | ६२  | ५०  |
| अ   | ८  | ७०  | ४२  |
| सा  | २९ | ९४  | १८  |
| मि  | १३ | १०७ | ५   |

ई निर्वृत्यपर्याप्तमनुष्यमिथ्यादृष्टिबोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १३ अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रकाय-  
योगिगळगे बंधयोग्यमल्लव नरकायुष्यमुं नरकद्विकमुं कळेबोडप्पुवचप्पुदरिवं बंधप्रकृतिगळु १०७  
अप्पुवेकेंदोडे सुरचतुष्कमुं तीर्थमुमातनोळबंधयोग्यतेयिल्लप्पुदरिवमनितेयप्पुवा पंच प्रकृतिगळुम-  
बंधप्रकृतिगळुप्पुवु ५ ।

सासादनगे बंधव्युच्छित्तिगळु २९ अप्पुवेकेंदोडे मनुष्यायुष्यमुं तिर्यंगायायुष्यमुं एरडुमल्लि १०  
कळेबुवचप्पुदरिवं । बंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवु । अबंधप्रकृतिगळु १८ अप्पुवु । मिश्रगुणस्थानं  
शून्यमेयक्कुमेकेंदोडे मिश्रगायुष्यबंधमुं मरणमुमिल्लप्पुदरिवं ।

असंयतगुणस्थानबोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ८ अप्पुवेंतेंदोडे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषाया-  
ष्टकमुं तन्नोळे व्युच्छित्तियप्पुदरिवं बंधप्रकृतिगळु ७० । अप्पुवेंतेंदोडे सुरचतुष्कमुं ४ तीर्थमुमं  
निर्वृत्यपर्याप्तसंयतं कट्टुगुमप्पुदरिवमवं कूडिबोडक्कुमप्पुदरिवं अबंधप्रकृतिगळु ४२ अप्पुवेकेंदोडे- १५

सर्वत्र गुणस्थानसामान्यवत् व्युच्छित्तिबन्धाबन्धप्रकृतयो भवन्तीति नेतव्यम् । तत्र त्रिविधमनुष्यनिर्वृत्य  
पर्याप्तकानां बन्धयोग्यं द्वादशोत्तरशतमेव मिश्रकाययोगित्वादायुश्चतुष्कं नरकद्विकं आहारद्विकं चेत्यष्टानां  
बन्धाभावात् । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतप्रमत्तसयोगाख्यानि पञ्च । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः  
१३ । नरकायुर्नरकद्विकापनयनात् । बन्धः १०७ सुरचतुष्कतीर्थयोरबन्धात् । अबन्धः ५ । सासादने  
व्युच्छित्तिः २९ । नरतिर्यंगायायुषोरपनयनात् । बन्धः ९४ । अबन्धः १८ । मिश्रगुणस्थानं न संभवति । असंयते २०  
व्युच्छित्तिः ८ अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषायाष्टकस्य अत्रैव छेदात् । बन्धः ७० । सुरचतुष्कतीर्थयोरस्य

चाहिए । तीनों प्रकारके मनुष्य निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें बन्ध योग्य एक सौ बारह हैं क्योंकि  
मिश्रकाययोग होनेसे चारों आयु, नरकद्विक और आहारकद्विक इन आठोंका बन्ध नहीं  
होता । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगकेवली पाँच होते हैं ।  
उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति तेरह, क्योंकि नरकायु और नरकद्विकका अभाव है । बन्ध २५  
एक सौ सात, क्योंकि सुरचतुष्क और तीर्थकरका बन्ध नहीं होता । अतः अबन्ध पाँच ।  
सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस क्योंकि मनुष्यायु तिर्यञ्जायु कम हो गयी है । बन्ध चौरानवे,  
अबन्ध अठारह । यहाँ मिश्रगुणस्थान नहीं होता । असंयतमें व्युच्छित्ति आठ; क्योंकि  
अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान आठ कषायोंकी व्युच्छित्ति यहीं हो जाती है । बन्ध सत्तर;

कूडिवदुं प्रकृतिगळु कळेदुवपुवर्दिरं । प्रमत्तसंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ६१ अप्पुवेंते'बोडे तन्न वारं ६ अप्रमत्तनबो'वु देवायुष्यं राशियोळकळेदुवेदं बिट्टु अपूर्वकरणन आहारकद्वयरहित ३४ प्रकृतिगळु अनिवृत्तिय ५ प्रकृतिगळु सूक्ष्मसांपरायन १६ कं कूडिवोडपुवपुवर्दिरं बंधप्रकृतिगळु ६२ अबंधप्रकृतिगळु ५० सयोगिगुणस्थानबो'वु बंधव्युच्छित्ति सातमो'देप्रकृतियक्कुं १ । बंधप्रकृति-  
 ५ युमबो'देयक्कु १ मबंधप्रकृतिगळु १११ अप्पुवु । मनुष्यलब्धपर्याप्तकमिध्यादृष्टिगे णरे अपुण्णे अपुण्णेव येंदितु तिर्यग्गतिलब्धपर्याप्तकगे पेळदंते बंधप्रकृतिगळु १२० रोळगे तीर्थंमुं १ माहारक-  
 द्वयमुं २ देवनारकायुष्यद्वयमुं २ वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगळं कळे'बोडे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०९ अप्पुवु ।

देवगतिथोळु बंधयोग्य प्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळदपरः—

१० णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी ।  
 सोलस चैव अवंधो भवणतिये णत्थि तित्थयरं ॥१११॥

नरक इव भवति देवे आईशान पर्यंतं सप्त वाम व्युच्छित्तयः । षोडश चैवाबंधः भवनत्रये नास्ति तीर्थकरं ॥

१५ बन्धात् । अबन्धः ४२ । प्रमत्तसंयते व्युच्छित्तिः ६१ । कुतः स्वस्य षट्कं अप्रमत्तस्य देवायुराशावपनीतमिति तत्त्यक्त्वा । अपूर्वकरणस्य आहारद्वयं बिना चतुस्त्रिंशत्, अनिवृत्तेः पञ्च, सूक्ष्मसांपरायस्य षोडश चेत्येषां मिलितत्वात् । बन्धः ६२ । अबन्धः ५० । सयोगे व्युच्छित्तिः सातवेदनीयम् । बन्धोऽपि तदेव । अबन्धः १११ । 'णरे अपुण्णे अपुण्णेव' मनुष्यलब्धपर्याप्तकमिध्यादृष्टौ तिर्यग्गतिलब्धपर्याप्तकवत् तीर्थमाहारद्वयं देवनारकायुषी वैक्रियिकषट्कं चेत्येकादशानामबन्धात् । बन्धयोग्यं नवोत्तरशतमिति १०९ ॥ ११० ॥ देवगतौ बन्धयोग्यप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

२० क्योंकि सुरचतुष्क और तीर्थकरका यहाँ बन्ध होता है अबन्ध बयालीस । प्रमत्तसंयतमें व्युच्छित्ति इकसठ, क्योंकि अपनी छह, अप्रमत्तकी देवायु मूलमें ही नहीं है अतः उसे छोड़ देना, अपूर्वकरणकी आहारकद्विकके बिना चौतीस, अनिवृत्तिकी पाँच, सूक्ष्म सांपरायकी सोलह ये सब मिलकर इकसठ होती हैं, बन्ध बासठ, अबन्ध पचास । सयोगीमें व्युच्छित्ति एक सातवेदनीय, बन्ध भी उसीका, अबन्ध एक सौ ग्यारह ।

२५

मनुष्यनिर्वृत्यपर्याप्तक बन्धयोग्य ११२

|          | मि. | सा. | असं. | प्र. | स.  |
|----------|-----|-----|------|------|-----|
| अबन्ध    | ५   | १८  | ४२   | ५०   | १११ |
| बन्ध     | १०७ | ९४  | ७०   | ६२   | १   |
| ब. व्यु. | १३  | २९  | ८    | ६१   | १   |

३०

मनुष्य लब्धपर्याप्तकमें तिर्यञ्चलब्धपर्याप्तककी तरह तीर्थकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ग्यारहका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ हैं ॥११०॥

देवगतिमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

नरकगतियोळे तु पेळदंते देवगतियोळु आईशानपर्यंतं अभिविधियोळाओप्पुदरिदं भवनत्रय-  
दोळं कल्पवासिस्त्रीयरोळं सौधम्मेशानकल्पद्वयोळं मिथ्यादृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु ७ अप्पुवु ।  
अंतागुत्तं विरलु षोडश चैवाबंधः आ मिथ्यादृष्टिय शेषसूक्ष्मत्रयमुं ३ विकलत्रयमुं नरकद्विकमुं  
२ नरकायुष्यमुं १ इंतु ९ प्रकृतिगळु सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ आहारकद्वयमुं २ मित्तु १६  
प्रकृतिगळु देवगतियोळु बंधयोग्यंगळलप्पुदरिदंमो षोडश प्रकृतिगळं बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु  
कळदोडे शेष १०४ प्रकृतिगळु देवगतियोळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । भवनत्रयदोळं कल्प स्त्रीयरोळं  
तीर्थबंधमिल्लप्पुदरिदमल्लि बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०३ अप्पुवल्लि संदृष्टिः —

| भ ३ । कल्पस्त्रीयरो |    |     |    |
|---------------------|----|-----|----|
| अ                   | १० | ७१  | ३२ |
| मि                  | ०  | ७०  | ३३ |
| सा                  | २५ | ९६  | ७  |
| मि                  | ७  | १०३ | ०  |

यिल्लि भवनत्रय कल्पवासि स्त्री मिथ्यादृष्टिगळो बंधप्रकृतिगळु १०३ रोळु मिथ्यात्वहुंड  
षंडा संप्राप्तैर्द्वियस्थावरातपमं ब ७ प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टिगळे कट्टुवरप्पुदरिदमा प्रकृतिसप्तकमं  
कळदोडे भवनत्रयसासादनसम्यग्दृष्टिगळु कल्पस्त्रीसासादनं कट्टुव योग्यप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवु । १०  
अबंधप्रकृतिगळु ७ अप्पुवु । मिश्रगुणस्थानदोळंतानुबंध्यादि २५ प्रकृतिगळं सासादनने कट्टुमगुप्पु-  
दरिदमव मनुष्यायुष्यमुं सासादनन बंधप्रकृतिगळोळु ९६ रोळु कळदोडे मिश्रगे बंधप्रकृतिगळ  
७० अप्पुवु । अबंधप्रकृतिगळु ३३ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवेंतेदोडे मिथनोळकळंद मनुष्यायुष्यमं

नरकगतिवत् देवगतौ स्यात् । किन्तु आ ईशानपर्यन्तं सप्तप्रकृतयः मिथ्यात्वहुण्डसंस्थानादयः मिथ्यादृष्टी  
व्युच्छित्तिर्भवति । तदुपरितनसूक्ष्मत्रयादयो नव सुरचतुष्कं सुरायुष्यं आहारकद्वयं चेति षोडश प्रकृतयो देवगतौ १५  
अवन्धाः—बन्धयोग्या न भवन्ति तेन चतुस्तरशतमेव बन्धयोग्याः । तत्रापि भवनत्रये कल्पस्त्रीषु च तीर्थबन्धा-  
भावात् बन्धयोग्यास्थ्युत्तरशतमेव । तत्र भवनत्रयकल्पस्त्रीमिथ्यादृष्टेर्बन्धः त्र्युत्तरशतम् । व्युच्छित्तिः  
मिथ्यात्वाद्यसप्तकं । अवन्धः शून्यम् । तत्सासादनस्य बन्धः षण्णवतिः तत्सप्तकस्य मिथ्यादृष्टेरेव बन्धात् ।  
व्युच्छित्तिः सैव पञ्चविंशतिः । अवन्धः तदेव सप्तकं । मिश्रगुणस्थानस्य बन्धः सप्ततिः, मनुष्यायुर्बन्धात् । २०  
अवन्धा त्रयस्त्रिंशत्, सासादनव्युच्छित्यबन्धयोर्मनुष्यायुर्मेलनात् । असंयतस्य बन्धः एकसप्ततिः, मनुष्यायुषोऽत्र

देवगतिमें नरकगतिके समान जानना । किन्तु ईशानपर्यन्त मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें  
मिथ्यात्व हुण्डसंस्थान आदि सात प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है । उससे ऊपरकी सूक्ष्मत्रिक  
आदि नौ, सुरचतुष्क, सुरायु, आहारकद्विक इन सोलह प्रकृतियोंका देवगतिमें बन्ध नहीं  
होनेसे बन्धयोग्य एक सौ चार ही है । उनमेंसे भी भवनत्रिक और कल्पस्त्रियोंमें तीर्थकरका २५  
बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ तीन हैं । भवनत्रिक और कल्पस्त्रियोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध  
एक सौ तीन, व्युच्छित्ति मिथ्यात्व आदि सात, अवन्ध शून्य । सासादनमें बन्ध छियानवे,  
क्योंकि सातका बन्ध मिथ्यादृष्टिमें ही होता है, व्युच्छित्ति पञ्चीस, अवन्ध वही सात ।  
मिश्रगुणस्थानमें बन्ध सत्तर, क्योंकि मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता, अवन्ध तैतीस क्योंकि



असंयतं कट्टुगुमप्पुदरिदं अवंधप्रकृतिगळु ३२ । अप्पुवु । मनुष्यायुष्यं तेगोदु बंधप्रकृतिगळोळकूडि-  
दुवप्पुदरिदं । सौधम्मेशानकल्पद्वयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०४ अप्पुवा कल्पद्वयमिथ्यादृष्टिसासा-  
दनसम्यग्दृष्टि मिश्रासंयतसम्यग्दृष्टिगळो त्रिविधप्रकृतिगळु संदृष्टिः—

| सौधम्मं २ |    |     |    |
|-----------|----|-----|----|
| अ         | १० | ७२  | ३२ |
| मि        | ०  | ७०  | ३४ |
| सा        | २५ | ९६  | ८  |
| मि        | ७  | १०३ | १  |

- इत्थि मिथ्यादृष्टिगो बंधप्रकृतिगळु १०३ । अवंधप्रकृति तीर्थमोदेयकुं १ । सासादननोळु  
५ बंधप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवेते दोडे मिथ्यात्वं हुंडसंस्थान षंडवेद असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन एकेद्रिय-  
जातिनामस्थावरनाम आतपनाममेवो ७ प्रकृतिगळं मिथ्यादृष्टिये कट्टुगुं । सासादनसम्यग्दृष्टि  
कट्टुनप्पुदरिदमा प्रकृतिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळे दोडनितेयप्पुवप्पुदरिदं अवंधप्रकृतिगळु ८  
अप्पुवु । मिश्रगुणस्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवेते दोडे अनन्तानुबंध्यावि २५ प्रकृतिगळुमं  
मनुष्यायुष्यमुमं कूडि २६ प्रकृतिगळु सासादननोळु बंधमप्पुवप्पुदरिदमवनातन बंधप्रकृति-  
१० गळोळकळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिदं । अवंधप्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यंकूडि ३४ प्रकृतिगळुप्पुवु ।  
असंयतसम्यग्दृष्टियोळु बंधप्रकृतिगळु ७२ अप्पुवेते दोडे मिश्रनोळुबंधप्रकृतिगळोळिदं मनुष्या-  
युष्यमुमं तीर्थमुमनो सौधम्मकल्पद्वयासंयतं कट्टुगुमप्पुदरिदमवं कूडिदोडप्पुवेदु बगेयल्पडुवुदु ।  
अवंधप्रकृतिगळु ३२ अप्पुवेते दोडे आकूडिदेरडुं प्रकृतिगळिल्लि कळे दुवप्पुदरिदं ॥

कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं ।

१५

तिरियाळु उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचळु ॥११२॥

कल्पस्त्रीषु न तीर्थं शतारसहस्रार पर्यंतं तिर्यग्गिहकं । तिर्यग्गायुस्स्रोतः अस्ति ततो  
नास्ति शतारचतुष्कं ॥

- बन्धात् । अबन्धः द्वात्रिंशत् । व्युच्छित्तिः स्वस्य दश । सौधम्मेशानद्वये बन्धयोग्याश्चतुस्तरशतम् । तत्र  
मिथ्यादृष्टौ अबन्धः तीर्थकरत्वम् । बन्धः श्रुत्तरशतम् । व्युच्छित्तिः ते एव सन्त । सासादने अबन्धः ८ ।  
२० बन्धः ९६ । व्युच्छित्तिः २५ । मिश्रेऽबन्धः ३४ मनुष्यायुःक्षेपात् । बन्धः ७० । व्युच्छित्तिः शून्य ० ।  
असंयते अबन्धः ३२ तीर्थकरत्वमनुष्यायुषोर्बन्धात् । बन्धः ७२ । व्युच्छित्तिः १० ॥ १११ ॥

- सासादनकी व्युच्छित्ति और अबन्धके जोड़में मनुष्यायु भी मिल गयी । असंयतमें बन्ध  
इकहत्तर क्योंकि यहाँ मनुष्यायुका बन्ध होता है । अबन्ध बत्तीस, व्युच्छित्ति अपनी दस ।  
सौधर्म ऐशानयुगलमें बन्धयोग्य एकसौ चार । मिथ्यादृष्टिमें अबन्ध तीर्थकरका, बन्ध एक सौ  
२५ तीन, व्युच्छित्ति बही सात । सासादनमें अबन्ध आठ, बन्ध छियानवे, व्युच्छित्ति पचीस ।  
मिश्रमें अबन्ध चौतीस क्योंकि मनुष्यायुका भी बन्ध नहीं होता । बन्ध सत्तर, व्युच्छित्ति  
शून्य । असंयतमें अबन्ध बत्तीस, क्योंकि यहाँ तीर्थकर और मनुष्यायु बंधने लगती हैं,  
बन्ध बहत्तर, व्युच्छित्ति दस ॥१११॥

कल्पस्त्रीयरोळं तीर्थबंधमिल्लदुकारणमागि तद्बंधरहित भवनत्रयदेवकर्कळ रचनेयोळे कल्पस्त्रीयरुं पेळल्पट्टरेकेंदोडे मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळ बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधप्रकृतिगळ सद्दशंगळपुवे कारणमागि पृथक् पेळल्पट्टदुदिल्ल ।

सानत्कुमार माहेंद्रब्रह्महोतर लांतव कापिष्ठ शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारमुमेंब १० कल्प-  
गळोळ देवकर्कळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ १०१ अप्पुवेकेंदोडे तत्कल्पजरुगळेकेंद्रियजातिनाममुं ५  
स्थावरनाममुं आतपमुं सूक्ष्मत्रयविकलत्रय नरकद्विक नारकायुष्यमुमेंबी मिथ्यादृष्टिय उपरितन  
द्वादशप्रकृतिगळ १२ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुमाहारकद्वयमुमितु १९ प्रकृतिगळ कट्टुवरल्लेकें-  
दोडे “आईसणोत्ति सत्तवामछिदी” एंदितु सौधमैशानकल्पद्वयावसानमाद भवनत्रयदेवकर्कळगे-  
केंद्रियस्थावरातपंगळं कट्टुवरपुव्वरिदमवरोळेया प्रकृतित्रयक्के बंधमुळिद सानत्कुमारादि दशकल्प-  
जरुगळगे “णिरयेव होवि देवे” एंबी सूत्राभिप्रायदिवं । णारयमिच्छम्मि चारि बोच्छिण्णा । १०  
उवरिम बारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा ॥ एंवु बंधप्रकृतिगळ १२० रोळ १९ प्रकृतिगळ  
कळेदोडे सानत्कुमारादि दशकल्पजरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळनितेयपुव्वपुव्वरिवं । अल्लि मिथ्या-  
दृष्ट्याविचतुर्गुणस्थानंगळोळ बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधप्रकृतिगळगे संदृष्टि :—

सानत्कुमारावि १० कल्पजरु

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | १० | ७२  | २९ |
| मि | ०  | ७०  | ३१ |
| सा | २५ | ९६  | ५  |
| मि | ४  | १०० | १  |

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळ मिथ्यात्व हुंड वंड असंप्राप्तमेव नाल्कुं प्रकृतिगळ ४ बंधव्युच्छित्ति-  
गळपुवु । बंधप्रकृतिगळ १०० अप्पुव बंधप्रकृति तीर्थमोदेयक्कुं । १५

सासादनसम्यग्दृष्टियोळ बंधव्युच्छित्तिगळ २५ बंधप्रकृतिगळ ९६ अबंधप्रकृतिगळ ५ ।

कल्पस्त्रीषु तीर्थकरत्वं न बध्नातीति ततः कारणात् तद्वचना भवनत्रयरचनायामेवोक्ता उभयत्र गुणस्था-  
नेषु बन्धाबन्धव्युच्छित्तिमिविशेषाभावात् । सानत्कुमारादिदशकल्पेषु नरकगतिविदिति बन्धयोग्यमेकोत्तरगतम् ।  
मिथ्यादृष्टो व्युच्छित्तिश्चत्वारि सप्तानां तु ईशानपर्यन्तमेवोक्तत्वात् । बन्धः १०० । अबन्धः तीर्थकरत्वं ।  
सासादने व्युच्छित्तिः २५ । बन्धः ९६ । अबन्धः ५ । मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम् । बन्धः ७० । मनुष्यायुषोऽ- २०

कल्पस्त्रियोमें तीर्थकरका बन्ध नहीं होता । अतः उनकी रचना भवनत्रिककी रचनामें  
ही कही गयी । दोनोंके गुणस्थानोंमें बन्ध, अबन्ध, बन्ध व्युच्छित्तिमें अन्तर नहीं है ।  
सानत्कुमार आदि दस कल्पोंमें नरकगतिके समान बन्धयोग्य एक सौ एक हैं । मिथ्यादृष्टिमें  
व्युच्छित्ति चार, क्योंकि सातकी व्युच्छित्ति तो ईशान्तपर्यन्त ही कही है । बन्ध सौ, अबन्ध  
तीर्थकर एक । सासादनमें व्युच्छित्ति पच्चीस, बन्ध छियानवे, अबन्ध पांच । मिश्रमें २५  
व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध सत्तर, क्योंकि मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता । अबन्ध इकतीस ।

मिश्रगुणस्थानदोळ्, बंधव्युच्छित्ति शून्यं । बंधप्रकृतिगळ् ७० । अबंधप्रकृतिगळ् ३१ । एकंदोडे मनुष्यायुष्यं बंधदोळकळेदऽबंधप्रकृतिगळोळकूडिदुवप्पुदरिदं । असंयतगुणस्थानदोळ्, बंधव्युच्छित्ति-  
गळ् १० । बंधप्रकृतिगळ् ७२ । एकंदोडे मनुष्यायुष्यं तीर्थंमुमं कट्टुवनप्पुदरिना येरडु प्रकृति-  
गळ् मिश्रन अबंधप्रकृतिगळोळिदुदुवं तेगेदिल्लि कूडिदुवप्पुदरिदं । अबंधप्रकृतिगळ् २९ अप्पुवा येरडुं  
५ प्रकृतिगळ् कळेदुवप्पुदरिदं । शतारसहस्रारकल्पद्वयपर्यंतं तिर्यग्गिद्विकमुं तिर्यंगायायुष्यमुं उद्योतमुं  
बंधवप्पुदरिल्लिदं मेले बंधमिल्लेब नियममुंटप्पुदरिदं आनतादिचतुष्कल्पंगळोळं नवग्रैवेयकंगळोळं  
नाल्लकुं गुणस्थानवर्त्तिगळ् कट्टुवरल्लप्पुदरिदमा नाल्लकुं प्रकृतिगळ् ४ तूरोडु प्रकृतिगळोळ् १०१  
कळेदोडानतादि १३ स्थानंगळोळ् बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ९७ अप्पुवल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्गुण-  
स्थानवर्त्तिगळो बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधत्रिभेदंगळ् सदृष्टिः—

आन ४१९ ग्रैवेयक

|    |    |    |    |
|----|----|----|----|
| अ  | १० | ७२ | २५ |
| मि | ०  | ७० | २७ |
| सा | २१ | ९२ | ५  |
| मि | ४  | ९६ | १  |

- १० इल्लि मिथ्यादृष्टिगळो मिथ्यात्वादि चतुष्प्रकृतिगळ् ४ बंधव्युच्छित्तिगळ्पुवु । बंध-  
प्रकृतिगळ् ९६ अप्पुवु । अबंधप्रकृति तीर्थंमो देयवकुं १ । सासादन सम्यग्दृष्टियोळ्, बंधव्युच्छित्ति  
२१ । प्रकृतिगळ्पुवु । एकंदोडे शतारचतुष्कं बंधमिल्लप्पुदरिदमवं कळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिद-  
बंधप्रकृतिगळ् ९२ । अबंधप्रकृतिगळ् ५ । मिश्रगुणस्थानदोळ्, बंधप्रकृतिगळ् ७० । मनुष्या-  
युष्यमबंधमप्पुदरिदं अबंधप्रकृतिगळ् २७ । मनुष्यायुष्यमिल्लि कूडिदुवप्पुदरिदं । असंयतगुण-  
१५ स्थानदोळ्, बंधव्युच्छित्तिगळ् १० । बंधप्रकृतिगळ् ७२ । अप्पुवेकंदोडानतोळ्, तीर्थंमुं मनुष्या-  
युष्यमुं बंधमुंटप्पुदरिदमवं मिश्रन बंधप्रकृतिगळोळ् तेगदिल्लि कूडिदोडनितानुदुवंबुदत्थं । अबंध-  
प्रकृतिगळ् २५ अप्पुवा कूडिद प्रकृतिगळिल्लि तेगदुवप्पुदरिदं ।

- प्यपनीतत्वात् । अबन्धः ३१ । असंयते व्युच्छित्तिः १० । बन्धः ७२ तीर्थमनुष्यायुषोर्बन्धात् । अबन्धः २९  
शतारसहस्रारपर्यन्तमेव तिर्यग्गिद्विकं तिर्यंगायायुष्योत्तरेवेति सदरचउक्कं बन्धयोग्यमस्ति तत उपरि नास्तीति  
२० नियमादानतादिषु कल्पेषु नवग्रैवेयकेषु च बन्धयोग्याः ९७ । तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः ९६ तीर्थकरत्वस्याबन्धात् ।  
व्युच्छित्तिः ४ । सासादने व्युच्छित्तिः २१ सदरचउक्कस्य राश्यभावात् । बन्धः ९२ । अबन्धः ५ । मिश्रे  
व्युच्छित्तिः शून्यम् । बन्धः ७० मनुष्यायुरबन्धात् । अबन्धः २७ । असंयते व्युच्छित्तिः दश । बन्धः ७२ ।

असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध बहतर क्योंकि तीर्थकर और मनुष्यायुका बन्ध होता है, अबन्ध उनतीस ॥

- २५ शतार सहस्रार पर्यन्त ही तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्जायु उद्योत इस शतार  
चतुष्कका बन्ध होता है । उससे ऊपर नहीं होता, इस नियमके अनुसार आनत आदि  
चार कल्पोंमें और नवग्रैवेयकमें बन्धयोग्य सत्तानवे । उनमें मिथ्यादृष्टिमें तीर्थकरका बन्ध  
न होनेसे बन्ध छियानवे, व्युच्छित्ति चार । सासादनमें शतार चतुष्कके न होनेसे व्युच्छित्ति  
इक्कीस, बन्ध बानवे, अबन्ध पाँच । मिश्रमें व्युच्छित्ति शून्य, मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे

अनुविज्ञानुत्तरविमानंगळ १४ रोळ सम्यग्दृष्टिगळेयपुर्वारिवमल्लिय असंयतरुगळगे बंध-  
योग्यप्रकृतिगळ ७२ अप्पुविन्ती देवगतिगळ पेळव भवनत्रयजरं कल्पजस्त्रीयरुगळप्प निर्वृत्य  
पर्याप्तकरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ १०१। अप्पुवेंतेदोडे तत्पर्याप्तकरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ  
१०३ रोळगे मिश्रकायग्रेमिगळप्पुर्वारिवं । तिष्ठगंमनुष्यायुर्द्वयमं कट्टरप्पुर्वारिवमवं कळेदोडे  
सावन्मात्रप्रकृतिगळप्पुवप्पुर्वारिवं । अल्लि मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानद्वितयमेयक्कुमेकंदोडे  
तिष्ठगंमनुष्यगतिय सम्यग्दृष्टिगळल्लि पुट्टुवरल्लप्पुर्वारिवं आ गुणस्थानद्वयदोळु बंधव्युच्छित्ति  
बंधाबंधप्रकृतिगळगे संवृष्टिः—

भ ३। कल्पजस्त्रीयर निर्वृत्यपर्याप्त

|    |    |     |   |
|----|----|-----|---|
| सा | २४ | ९४  | ७ |
| मि | ७  | १०१ | ० |

ई रचने सुगममेकंदोडे तीर्थमुमायुष्यमुमिल्लि बंधमिल्लप्पुर्वारिवं । सौधर्मज्ञानकल्पज-  
निर्वृत्यपर्याप्तकरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ १०२ अप्पुवेंतेदोडिल्लियुमेरडायुष्यंगळे कळेवुवु  
तीर्थसंतप्पुर्वारिवं । गुणस्थानत्रितयमुमप्पुववक्के संवृष्टिः—

सौधर्म २ द्वयनिर्वृत्यप.।

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | ९  | ७१  | ३१ |
| सा | २४ | ९४  | ८  |
| मि | ७  | १०१ | १  |

ई रचने सुगममेकंदोडे असंयतनोळ तीर्थबंधमेबिनिते विशेषमप्पुर्वारिवं । सानत्कुमारादि  
ब्रह्मकल्पजनिर्वृत्यपर्याप्तकरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ ९९ अप्पुविल्लियुमायुर्द्वयरहितमप्पुर्वारिवं  
संवृष्टिः—

सा कल्प निर्वृत्य

|    |    |    |    |
|----|----|----|----|
| अ  | ९  | ७१ | २८ |
| सा | २४ | ९४ | ५  |
| मि | ४  | ९८ | १  |

अबन्धः २५। अनुविज्ञानुत्तराः असंयतसम्यग्दृष्टय एव तेषां बन्धयोग्यप्रकृतयः ७२। निर्वृत्यपर्याप्तानां तु  
भवनत्रयकल्पस्त्रीषु बन्धयोग्यं मिश्रयोगित्वातिर्यगमनुष्यायुधी न इत्येकोत्तरशतम् १०१। गुणस्थाने द्वे एव  
असंयतानां तत्रोत्पत्त्यभावात् । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्यादिवयं ७। १०१। ०। सासादने २४। ९४। ७।  
सौधर्मज्ञानयोर्बन्धयोग्यं तीर्थकृता सह द्वयुत्तरशतम् १०२। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्यादिवयं ७। १०१। १।

बन्ध सत्तर, अबन्ध सत्ताईस। असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध बहत्तर, अबन्ध पच्चीस।  
अनुदिश अनुत्तरवासी देव असंयत सम्यग्दृष्टी ही होते हैं। उनके बन्धयोग्य प्रकृतियाँ बहत्तर  
हैं। निर्वृत्यपर्याप्तकोंके भवनत्रय और कल्पस्त्रियोंमें बन्धयोग्य एक सौ एक हैं क्योंकि मिश्र-  
काययोग होनेसे तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता। गुणस्थान दो ही हैं क्योंकि असंयत  
सम्यग्दृष्टि मरकर उनमें उत्पन्न नहीं होता मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति आदि तीन, सात, एकसौ  
एक और शून्य है। सासादनमें चौबीस, चौरानवे, सात है। सौधर्म ऐशानमें तीर्थकरके  
बंधनेसे बन्धयोग्य एक सौ दो हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति आदि तीन, सात, एक सौ  
एक है। सासादनमें चौबीस, चौरानवे, आठ। असंयतमें नौ, इकहत्तर, इकतीस।

ई रचनेयुं सुगुममेतदोड संयतनोळु तीर्थबंधमुंटे बिनिते विशेषमपुवरिवं ॥ आनतावि-  
चतुष्कल्पनवग्रैवेयकसंजातनिर्वृत्यपर्याप्तकलकळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ९६ अपुवे ते बोडे मनुष्या-  
युष्यमनल्लियो दने कट्टुवरदुवुमी निर्वृत्यपर्याप्तकालदोळु बंधमिल्लपुवरिवमदं कळेदोडनिते  
योग्यगळपुवपुवरिवं संदृष्टि :—

|    |     |        |         |
|----|-----|--------|---------|
| अ  | ९   | ७१     | २५      |
| सा | २१  | ९१     | ५       |
| मि | ४   | ९५     | १       |
| आ  | ४।९ | ग्रैवे | = निर्व |

५ ई रचनेयुं सुगुममेतदोडे असंयतनोळु तीर्थबंधमुंटे सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु २१ अपुवे-  
केंदोडे अल्लि शतारचतुष्टयं कळेदुदपुवरिवं । अनुविशानुत्तरविमान १४ गळोळु सम्यग्दृष्टिगळे-  
यपुवरिवं तीर्थसहितमागि ७१ प्रकृतिगळु बंधयोग्यगळपुवु । मनुष्यायुष्यमो देयक्कुमदुवुमा  
कालदोळु बंधमिल्लपुवरिवं कळेदोडनिते बंधयोग्यगळपुवरिवं ॥

सासादने २४।९४।८। असंयते ९।७१।३१। सानत्कुमारादिदशकल्पेषु बन्धयोग्या नवनवतिः ९९।  
१० व्युच्छित्यादित्रयं मिथ्यादृष्टौ ४।९८।१। सासादने २४।९४।५। असंयते ९।७१।२८। आनतादि-  
चतुःकल्पनवग्रैवेयकेषु बन्धयोग्याः षण्णवतिः ९६। तत्र व्युच्छित्यादित्रयं मिथ्यादृष्टौ ४।९५।१। सासादने  
२१।९१।५। असंयते ९।७१।२५। अनुविशानुत्तराणामसंयतसम्यग्दृष्टित्वात् तेषां बन्ध एव ७१॥ ११२॥

सानत्कुमार आदि दस कल्पोंमें बन्धयोग्य निन्यानवे । व्युच्छित्ति आदि तीन मिथ्यादृष्टिमें  
चार, अठानवे, एक सासादनमें चौबीस, चौरानवे, पाँच । असंयतमें नौ, इकहत्तर, अठाईस ।  
१५ आनतादि चार कल्पों और नवग्रैवेयकोंमें बन्धयोग्य छियानवे । उनमें व्युच्छित्ति आदि तीन  
मिथ्यादृष्टिमें चार, पिचानवे, एक । सासादनमें इक्कीस, इकानवे, पाँच । असंयतमें नौ,  
इकहत्तर, पच्चीस । अनुदिश अनुत्तरवासियोंके असंयत सम्यग्दृष्टी ही होनेसे उनके इकहत्तर-  
का बन्ध होता है ॥११२॥

पर्याप्त भवनत्रिक कल्पस्त्री १०३ बन्धयोग्य पर्याप्त सौधर्मयुगल १०४ बन्धयोग्य

|            |     |     |     |      |     |     |       |      |
|------------|-----|-----|-----|------|-----|-----|-------|------|
| २०         | मि. | सा. | मि. | असं. | मि. | सा. | मिश्र | असं. |
| बन्ध व्यु. | ७   | २५  | ०   | १०   | ७   | २५  | ०     | १०   |
| बन्ध       | १०३ | ९६  | ७०  | ७१   | १०३ | ९६  | ७०    | ७२   |
| अबन्ध      | ०   | ७   | ३३  | ३२   | १   | ८   | ३४    | ३२   |

पर्याप्त सानत्कुमारादि पर्या. आनतादि ४ नि. अ. भव.  
दस कल्प १०१ नवग्रैवेयक ९७ कल्प स्त्री १०१

|            |     |     |       |      |     |     |       |      |     |     |
|------------|-----|-----|-------|------|-----|-----|-------|------|-----|-----|
| २५         | मि. | सा. | मिश्र | असं. | मि. | सा. | मिश्र | असं. | मि. | सा. |
| बन्ध व्यु. | ४   | २५  | ०     | १०   | ४   | २१  | ०     | १०   | ७   | २४  |
| बन्ध       | १०० | ९६  | ७०    | ७२   | ९६  | ९२  | ७०    | ७२   | १०१ | ९४  |
| अबन्ध      | १   | ५   | ३१    | २९   | १   | ५   | २७    | २५   | ०   | ७   |

३० नि. अ. सौधर्मयुगल १०२ नि. अ. सानत्कु. दस कल्प ९९ नि. आनतादि नवग्रै. ९६

|            |     |      |     |     |      |     |     |      |    |
|------------|-----|------|-----|-----|------|-----|-----|------|----|
| मि.        | सा. | असं. | मि. | सा. | असं. | मि. | सा. | असं. |    |
| बन्ध व्यु. | ७   | २४   | ९   | ४   | २४   | ९   | ४   | २१   | ९  |
| बन्ध       | १०१ | ९४   | ७१  | ९८  | ९४   | ७१  | ९५  | ९१   | ७१ |
| अबन्ध      | १   | ८    | ३१  | १   | ५    | २८  | १   | ५    | २५ |

इन्द्रियमार्गणैयं पेन्डवल्लि मोदलोळेकैन्द्रियविकलत्रयंगळगे पेन्डवपदः—

पुण्णिदरं विगिविगले तत्पुण्णो हु सासणो देहे ।

पज्जत्ति ण वि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि ॥११३॥

पूणंतरवदेकैन्द्रियविकलत्रये तत्रोत्पन्नः खलु सासादनो देहे । पथ्याप्ति न प्राप्नोति इति नरतिथ्यंगायाषी नस्तः ॥

तिथ्यंचललब्धपथ्याप्तिकनोळु पेन्डवन्ते एकैन्द्रियंगळोळं विकलैन्द्रियंगळोळं पेन्डवपदुगुमेकैदोडे तीर्थमुमाहारद्वयमुं सुरनारकायुद्धयमुं वैक्रियिकषट्कमुमेव ११ प्रकृतिगळं कळेदु शेष १०९ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळपुर्वारिबमा एकैन्द्रियविकलत्रयंगळगे गुणस्थानद्वितयमेवकु— एकैन्द्रिय

विकलत्रयकके

सा २९ ९४ १५

मि १५ १०९ ०

मिलिल मिथ्यादृष्टिगळगे बंधव्युच्छित्तिगळु १५ प्रकृतिगळपुर्वेतेंदोडे तन्न मिथ्यात्वादि बंधव्युच्छित्तिगळु १६ रोलगे नरकद्विकमुं नरकायुध्यमुं कळेदु १३ प्रकृतिगळपुर्वेलरोळगे १० तिथ्यंगमनुष्यायुद्धयं कूडि दोडे तत्प्रमाणप्रकृतिसंख्येयकुमपुर्वारिवं बंधप्रकृतिगळु १०९ । अत्रंध-शून्यमवकुं । सासादननोळु तत्रोत्पन्नः खलु सासादनो देहे पथ्याप्ति न प्राप्नोतीति नरकतिथ्यंगा-युषी नस्तः । एंवितु एकैन्द्रियविकलत्रयदोळपुट्टिव सासादनं निवृत्यपथ्याप्तिकालमन्तम्भुद्धतंपथ्यंतं शरीरपथ्याप्ति'कालवोळु मिश्रकाययोगियपुर्वारिवं आयुर्बन्धयोग्यतेयिल्लवुकारणमागि तत्काल-पथ्यंतं तद्गुणस्थानकालमल्पमपुर्वारिवं तीदु' पोकुमदु कारणमागि मनुष्यायुध्यमुं तिथ्यंगायाध्यमुं १५

इन्द्रियमार्गणायां एकविकलेन्द्रियेषु लब्धपथ्याप्तिकवतीर्थकरत्वाहारकद्वयपुरनारकायुर्वैक्रियिकषट्कबन्धा-भावात् बन्धयोग्यं नवोत्तरशतम् । गुणस्थाने द्वे । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः पञ्चदश । १५ । तत्षोडशके नरकद्विकनरकायुषोरभावे नरतिथ्यंगायाषीः क्षेपात् तत्क्षेपोऽर्जव कृतः । तत्र तेषु एकविकलेन्द्रियेषु उत्पन्नः खलु सासादनः स्वकीयकालस्य निवृत्यपथ्याप्तिकालात् स्तोकत्वात् सासादनत्वे शरीरपथ्याप्ति न प्राप्नोतीति कारणात्

इन्द्रियमार्गणामे एकैन्द्रिय और विकलेन्द्रियमें लब्धपथ्याप्तिकके समान तीर्थकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ बी २० हैं । उनमें मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पन्द्रह, क्योंकि उरामें व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियोंमें-से नरकद्विक और नरकायुका बन्ध न होने तथा मनुष्यायु तिर्यञ्चायुके मिलानेसे होता है । इसका कारण यह है कि उन एकैन्द्रिय विकलेन्द्रियोंमें उत्पन्न सासादन गुणस्थान-वर्ती जीव सासादनका काल निवृत्यपथ्याप्तिकके कालसे थोड़ा होनेके कारण सासादन २५ अवस्थामें शरीरपथ्याप्ति पूर्ण नहीं करता, इससे यहाँ सासादनमें मनुष्यायु तिर्यञ्चायुका बन्ध

तगदु मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तियादुवपुर्वरिदमित्ति बंधव्युच्छित्तिगळु २९ प्रकृतिगळपुवु ।  
बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु १५ अपुवु ।

अनंतरं पंचेन्द्रियंगळगं पृथ्वीकायादि पंचकवकं पेळदपरु :—

पंचिदिएसु ओघं एयक्खे वा वणप्फदीयंते ।

५

मणुवदुगं मणुवाळु उच्चं ण हि तेउवाउम्मि ॥११४॥

पंचेन्द्रियेषु ओघः एकाक्षवद्वनस्पत्यंतानां । मनुष्यद्विकं मनुष्यायुरुच्चं न हि तेजोवायव्योः ॥

पंचेन्द्रियंगळोळु ओघः मुन्नं चतुर्दशगुणस्थानंगलोळु पेळदंतेयपुवेकं दोडे विशेषाभावमपुद-  
रिदं बंधयोग्यंगळु १२० । बंधव्युच्छित्तिगळु मि १६ । सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ ।  
अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ० । क्षी ० । स १ । अ ० ॥ बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु  
१० ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ । दे ६७ । प्र ६३ । अ ५९ । अ ५८ । अ २२ । सू १७ । उ १ ।  
क्षी १ । स १ । अ ० ॥ अबंधप्रकृतिगळु :—

मि ३ । सा १९ । मि ४६ । अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । अ ९८ । सू १०३ ।  
उ ११९ । क्षी ११९ । स ११९ । अ १२० ॥

बन्धः १०९ । अबन्धः शून्यम् ० । सासादने व्युच्छित्तिरेकान्नविशत् २९ । बन्धः चतुर्नवतिः ९४ । अबन्धः  
१५ पञ्चदश १५ ॥ ११३ ॥ अथ पञ्चेन्द्रिये पृथ्व्यादिपञ्चकायेषु चाह—

पञ्चेन्द्रियेषु ओघः चतुर्दशगुणस्थानवद्भवति विशेषाभावात् । बन्धयोग्याः १२० । व्युच्छित्तयः—  
मि १६ । सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ० । क्षी ० ।  
स १ । अ ० । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ । दे ६७ । प्र ६३ । अ ५९ । अ ५८ ।  
अ २२ । सू १७ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० । अबन्धाः—मि ३ । सा १९ । मि ४६ । अ ४३ ।  
२० दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । अ ९८ । सू १०३ । उ ११९ । क्षी ११९ । स ११९ । अ १२० ।

न होनेसे उनकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें ही कही है । अतः बन्ध एक सौ नौ, अबन्ध शून्य ।  
सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस, बन्ध चौरानवे, अबन्ध पन्द्रह ॥११३॥

आगे पञ्चेन्द्रिय और पृथिवी आदि पाँच कार्योंमें कहते हैं—

पञ्चेन्द्रियोंमें 'ओघ' अर्थात् चौदह गुणस्थानवत् होता है उससे भेद नहीं है ।

२५ अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस । व्युच्छित्ति मि. १६ । सा. २५ । मि. ० । असं. १० । दे. ४ ।  
प्र. ६ । अप्र. १ । अपूर्व. ३६ । अनि. ५ । सू. १६ । उप. । क्षी. । स. १ । अयो. । बन्ध—मि.  
११७ । सा. १०१ । मि. ७४ । असं. ७७ । दे. ६७ । प्र. ६३ । अप्र. ५९ । अप्र. ५८ । अनि. २२ ।  
सू. १७ । उ. १ । क्षी. १ । स. १ । अयो. । अबन्ध—मि. ३ । सा. १९ । मि. ४६ । असं. ४३ ।  
दे. ५३ । प्र. ५७ । अप्र. ६१ । अपूर्. ६२ । अनि. ९८ । सू. १०३ । उ. ११९ । क्षी. ११९ । सं.  
३० ११९ । अयो. १२० । पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकमें बन्ध योग्य एक सौ बारह । गुण-  
स्थान पाँच ।

पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकमे बन्धयोग्यप्रकृतिगळु ११२ । गुणस्थानगळु ५ । एतेंदोडे चतुर्ग-  
तिसाधारणमपुर्दारदं कळदे प्रकृतिगळु आहारकद्वयमुं २ नरकद्विकमुं २ आयुष्यचतुष्कमु ४ मिन्तु  
८ प्रकृतिगळु । पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्य १.

|      |    |     |     |
|------|----|-----|-----|
| स    | १  | १   | १११ |
| प्र. | ६१ | ६२  | ५०  |
| अ.   | १३ | ७५  | ३७  |
| सा.  | २४ | ९४  | १८  |
| मि.  | १३ | १०७ | ५   |

ई रचने सुगममेंतेंदोडे—असंयतनोळु तीर्थमुं सुरचतुष्टयमुं बन्धमुंटपुर्दारदमल्लि बन्ध-  
प्रकृतिगळु ७५ अबन्धप्रकृतिगळु ३७ अप्पुर्वेबिनि ते विशेषमपुर्दारदं । पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकमे ५  
बन्धयोग्यप्रकृतिगळु १०९ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुमोदेयक्कुं । कळदे प्रकृतिगळु तीर्थमुमाहारद्वयमुं  
सुरनारकायुर्द्वयमुं वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगळु बन्धयोग्यगळल्लपुर्दारदं ॥

तन्निर्वृत्यपर्याप्तके तु बन्धयोग्यम् ११२ । गुणस्थानानि । ५ । चतुर्गतिसाधारणत्वात् अपनीतप्रकृतयः  
आहारकद्वयं नरकद्विकमायुष्यचतुष्कं चेति रचनेयं सुगमा—

पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्त रचना ।

व्युच्छिति बन्ध अबन्ध

१०

|     |    |     |     |
|-----|----|-----|-----|
| स   | १  | १   | १११ |
| प्र | ६१ | ६२  | ५०  |
| अ   | १३ | ७५  | ३७  |
| सा  | २४ | ९४  | १८  |
| मि  | १३ | १०७ | ५   |

असंयते तीर्थसुरचतुष्कबन्धः । इत्येतावत् एव विशेषाभावात् । तल्लब्ध्यपर्याप्तके बन्धयोग्यप्रकृतयः  
१०९ । मिथ्यादृष्टि—गुणस्थानम् । अपनीतप्रकृतयः । तीर्थमाहारद्वयं सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कं  
चेति ११ ।

यहाँ आहारकद्विक, नरकद्विक, चार आयुका बन्ध नहीं होता । इसकी रचना सुगम १५  
है । तथा असंयतमें तीर्थकर और सुरचतुष्कका बन्ध होता है । पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें  
बन्धयोग्य एक सौ नौ । तीर्थकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका  
बन्ध नहीं होता । मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है ।



कायमार्गणेष्वधो वनस्पत्यन्तमात्रं पञ्चकायिकगण्यं बन्धयोग्यप्रकृतिगलु १०९ अपूर्वते दोडे  
एकेन्द्रियवद्वनस्पत्यन्तानामेवित्तु तीर्थमुमाहारकद्विकमुं सुरायुष्यमुं नरकायुष्यमुं वैक्रियिकषट्क-  
मुमिन्तु ११ प्रकृतिगलु बन्धप्रकृतिगलोलु कलेदुवपुर्वारिवं पृथ्वीकायिकाकायिकवनस्पतिकायिक-  
गलु १०९ प्रकृतिगलु बन्धयोग्यगलुपुत्रु । तेजस्कायिकवायुकायिकगलु मनुष्यद्वयं मानवायुष्यमु-  
मुच्चैर्गोत्रमुं बन्धमिल्लेव अपवादविधिर्विदमा नालकुं प्रकृतिगलु कले दोडे बन्धयोग्यप्रकृतिगलु  
नूरैदु नूरैदुमपुत्रु—

|        |    |       |    |
|--------|----|-------|----|
| पृथ्वी | ३  | कायिक |    |
| सा     | २९ | ९४    | १५ |
| मि     | १५ | १०९   | ०  |

इल्लिसासावनं देहवोलु पर्याप्तियनेय्यदपुर्वारिवं तिर्यग्मनुष्यायुद्वयं मिथ्यादृष्टिदोलु  
बन्धव्युच्छित्तिगलुगि कूडिदषपुर्वारिवं मिथ्यादृष्टिदोलु बन्धव्युच्छित्तिगलु १५ बन्धप्रकृतिगलु १०९  
अबन्धप्रकृतिगलुशून्यमककुं । सासावनगे बन्धव्युच्छित्तिगलु २९ बन्धप्रकृतिगलु ९४ अबन्धप्रकृतिगलु १५ ।  
तेजस्कायिकगलु वायुकायिकगलु सासावनगुणस्थानमिल्ल । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदेयकुमे-  
के दोडे :—

ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे ।

ओघं तस मणवयणे ओराले मणुवगइभंगो ॥११५॥

न हि सासावनोऽपुण्णे साधारणसूक्ष्मके च तेजोद्विके ओघस्त्रस मनोवचने ओवारिके  
मानवगतिभंगः ॥

कायमार्गणायां वनस्पत्यन्तपञ्चानां एकेन्द्रियवत् तीर्थमाहारकद्वयं सुरनरकायुषी वैक्रियिकषट्कं च न  
इति बन्धयोग्यं नवोत्तरशतम् । १०९ । तत्र पृथ्व्यवनस्पतिकायेषु उत्पन्नस्य सासादनत्वे शरीरपर्याप्त्यसंभवात्  
तिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धो मिथ्यादृष्टावेवेति तत्र व्युच्छित्तिः १५ । बन्धः १०९ । अबन्धः शून्यम् । सासादने  
व्युच्छित्तिः २९ । बन्धः ९४ । अबन्धः १५ । तेजोवातकायिकयोः पुनः मनुष्यद्वयं मनुष्यायुः उच्चैर्गोत्रमपि न  
बध्नाति बन्धयोग्यं पञ्चोत्तरशतमेव । १५ । तौ तु मिथ्यादृष्टौ एव न सासादनौ ॥११४॥ कुतः ?—

कायमार्गणामे वनस्पतिकायिक पर्यन्त पाँच स्थावरकायोंमें एकेन्द्रियके समान तीर्थकर,  
आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ ।  
वहाँ पृथिवी, जल तथा वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न सासादनके सासादन अवस्थामें शरीर-  
पर्याप्ति पूर्ण न होनेसे तिर्यग्जायु और मनुष्यायुका बन्ध मिथ्यादृष्टिमें ही होता है इसलिए  
वहाँ व्युच्छित्ति पन्द्रह, बन्ध एक सौ नौ, अबन्ध शून्य । सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस,  
बन्ध चौरानवे, अबन्ध पन्द्रह । तेजस्कायिक वायुकायिकोंमें मनुष्यायु, मनुष्यगति मनुष्य-  
गत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भी बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ पाँच ही हैं । तथा उनमें  
एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, सासादन नहीं होता ॥११४॥

|          | मि. | सा. | असं. | प्र. | सयो. | मि. | सा. | मि. | सा. |
|----------|-----|-----|------|------|------|-----|-----|-----|-----|
| ३० व्यु. | १३  | २४  | १३   | ६१   | १    | १५  | २९  | १५  | २९  |
| बन्ध     | १०७ | ९४  | ७५   | ६२   | १    | १०९ | ९४  | १०९ | ९४  |
| अबन्ध    | ५   | १८  | ३७   | ५०   | १११  | ०   | १५  | ०   | १५  |

सासादनसम्यग्दृष्टि यावेडेयोळपुट्टने दडे लब्धपर्याप्तकभेदंगळे नितोळवनितरोळं साधारण-  
शरीरंगळोळं सूक्ष्मजीवभेदंगळगनितोळ वनितरोळं तेजस्कायिकजीवंगळोळं वायुकायिकजीवंगळोळं  
पुट्टने बी नियममरियत्पडुगुं । नरकगतियोळं पुट्टं । त्रसकायिकजीवंगळं योगमार्गण्योळ  
मनोवाग्योगिगळं ओघः सामान्यगुणस्थानकथनमेयकुमोदारिककाययोगिगळगे मनुष्यगतिभेदंग-  
ळकुमे वरियत्पडुगुमल्लि त्रसकायिकंगळं मनोवाग्योगिगळं बंधयोग्यंगळ १२० प्रकृतिगलपुवलि  
मिथ्यादृष्टिगे व्युच्छित्तिगळ १६ सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ ।  
सू १६ । उ ० । क्षी ० । स १ । अ ० । बंधप्रकृतिगळ मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ ।  
दे ६७ । प्र ६३ । अ ५९ । अ ५८ । अ २२ । सू १७ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० ॥

अबंधप्रकृतिगळ मि ३ । सा १९ । मि ४६ । अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ ।  
अ ९८ । सू १०३ । उ ११९ । क्षी ११९ । स ११९ । अ १२० । ई निवृत्त्यपर्याप्तकरोळ पंचेन्द्रियंग-  
ळोळ पेळवंत भाविसत्पडुवुदु । ओदारिककाययोगिगळगे मानवगतिभंगमपुवरिवं बंधयोग्यप्रकृति-  
गळ १२० । अपुवलि मिथ्यादृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळ १६ । सासादनगे ३१ । मि ० । अ ४ ।  
दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ० । क्षी ० । स १ । अ ० ॥

बंधप्रकृतिगळ मि ११७ । सासा १०१ । मि ६९ । अ ७१ । दे ६७ । प्र ६३ । अ ५९ ।  
अ ५८ । अ २२ । सू १७ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० ॥ अबंधप्रकृतिगळ मि ३ । सा १९ ।  
मि ५१ । अ ४९ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । अ ६८ । सू १०३ । उ ११९ । क्षी ११९ ।  
स ११९ । अ १२० ॥

हि यस्मात्सर्वलब्धपर्याप्तिषु साधारणशरीरेषु सर्वसूक्ष्मेषु तेजोवायुकायिकेषु च सासादनो न विद्यते ।  
नरकगती च नोत्पद्यते ।

त्रसकायिकेषु योगमार्गणायां मनोवाग्योगिषु च ओघः सामान्यगुणस्थानवत् तेन तेषु बन्धयोग्यम् १२० ।  
व्युच्छित्तयः—मि १६ । सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ ।  
उ ० । क्षी ० । स १ । अ ० । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ । दे ६७ । प्र ६३ ।  
अ ५९ । अ ५८ । अ २२ । सू १७ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० । अबन्धाः—मि ३ । सा १९ । मि  
४६ । अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । अ ९८ । सू १०३ । उ ११९ । क्षी ११९ । स ११९ ।  
अ १२० । त्रसनिवृत्त्यपर्याप्तके पञ्चेन्द्रियनिवृत्त्यपर्याप्तकवत् । ओदारिककाययोगिषु मानवगतिभङ्गः तेन

क्योंकि सर्वलब्धपर्याप्तकोंमें, साधारण शरीरोंमें, सब सूक्ष्मकायोंमें और तेजकाय-  
वायुकायिकोंमें सासादन नहीं होता तथा सासादन मरकर नरक गतिमें भी उत्पन्न नहीं होता ।  
त्रसकायिकोंमें, योगमार्गणामें, मनोयोगी-वचनयोगियोंमें सामान्य गुणस्थानके समान बन्ध-  
योग्य एक सौ बीस होती हैं ।

त्रसकायिक, मनोयोगी, वचनयोगी बन्धयोग्य १२० की रचना

|              | मि. | सा. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अप्र. | अपू. | अनि. | सू. | उ.  | क्षी. | स.  | अयो. |
|--------------|-----|-----|-----|----|-----|------|-------|------|------|-----|-----|-------|-----|------|
| व्युच्छित्ति | १६  | २५  | ०   | १० | ४   | ६    | १     | ३६   | ५    | १६  | ०   | ०     | १   | ०    |
| बन्ध         | ११७ | १०१ | ७४  | ७७ | ६७  | ६३   | ५९    | ५८   | २२   | १७  | १   | १     | १   | ०    |
| अबन्ध        | ३   | १९  | ४६  | ४३ | ५३  | ५७   | ६१    | ६२   | ९८   | १०३ | ११९ | ११९   | ११९ | १२०  |

औदारिकमिश्रकाययोगिगच्छो पेञ्चपदः—

ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं ।

मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ॥११६॥

औदारिकबन्धमिश्रे न हि सुरनारकायुराहारनरकद्वयं मिथ्यादृष्टिद्वये देवचतुस्तोत्थं न ह्यवि-  
५ रतेऽस्ति ॥

औदारिकमिश्रकाययोगिगच्छो औदारिककाययोगिगच्छो पेञ्चदंते बन्धयोग्यप्रकृतिगच्छं  
बन्धयुच्छित्यादिगच्छं मरियल्पदुबुक्ते'दोडे औदारिकमिश्रकाययोगिगच्छं लब्धपर्याप्तकं निर्वृत्य-  
पर्याप्तकरुमप्पुवरिवं बन्धयोग्यप्रकृतिगच्छं ११४ अप्पुवे'ते'दोडे देवायुष्यमुं १ नरकायुष्यमुं १ आहारक-  
द्वयमुं २ । नरकद्वयमुं २ मल्लि बन्धयोग्यगच्छल्लवप्पुवरिवमा षट्प्रकृतिगच्छं कळेदोडे योग्यप्रकृति-  
१० गच्छतावन्मात्रंगळेयप्पुवप्पुवरिवं मिथ्यादृष्टिसासादनरोळु सुरचतुष्कमुं तीर्थमुं बन्धमिल्ला प्रकृति-  
गच्छं अविरतनोळु बन्धमप्पुवु । संदृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगिगच्छो

|    |    |     |     |
|----|----|-----|-----|
| स  | १  | १   | ११३ |
| अ  | ६९ | ७०  | ४४  |
| सा | २९ | २४  | २०  |
| मि | १५ | १०९ | ५   |

बन्धयोग्यम् १२० । व्युच्छित्तयः—मि १६ । सा ३१ । मि ० । अ ४ । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ ।  
अ ५ । सू १६ । उ ० । क्षी ० । स १ । अ ० । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ६९ । अ ७१ ।  
दे ६७ । अ ६३ । अ ५९ । अ ५८ । अ २२ । सू १७ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० । अबन्धाः—मि  
२५ ३ । सा १९ । मि ५१ । अ ४९ । दे ५३ । ५७ । अ ६१ । अ ६२ । अ ९८ । सू १०३ । उ ११९ ।  
क्षी ११९ । स ११९ । अ १२० ॥ ११५ ॥

औदारिक-मिश्रकाययोगिष्वाह—

औदारिकमिश्रकाययोगिषु औदारिककाययोगिवद्वन्धप्रकृतयो व्युच्छित्यादयश्च ज्ञातव्याः । औदारिक-  
मिश्रकाययोगिनो हि लब्धपर्याप्ताः निर्वृत्यपर्याप्ताश्च तेन देवनारकायुषी आहारकद्वयं नरकद्वयं च तत्र बन्ध-  
२० योग्यं नेति चतुर्दशोत्तरशतम् । तत्रापि सुरचतुष्कं तीर्थं च मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्न बध्नाति । अविरते च  
बध्नाति ॥११६॥

त्रसनिर्वृत्यपर्याप्तकमे पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकके समान जानना । औदारिक काय-  
योगीमे मनुष्यगतिके समान जानना । अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं ।

औदारिक काययोगीमे बन्धयोग्य १२० रचना

|              | मि. | सा. | मि. | असं. | दे. | प्र. | अप्र. | अपू. | अनि. | सू. | उ.  | क्षी. | स.  |
|--------------|-----|-----|-----|------|-----|------|-------|------|------|-----|-----|-------|-----|
| व्युच्छित्ति | १६  | ३१  | ०   | ४    | ४   | ६    | १     | ३६   | ५    | १६  | ०   | ०     | १   |
| बन्ध         | ११७ | १०१ | ६९  | ७१   | ६७  | ६३   | ५९    | ५८   | २२   | १७  | १   | १     | १   |
| अबन्ध        | ३   | १९  | ५१  | ४९   | ५३  | ५७   | ६१    | ६२   | ९८   | १०३ | ११९ | ११९   | ११९ |

औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें कहते हैं—

औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें औदारिक काययोगियोंकी तरह बन्ध प्रकृतियाँ और  
३० व्युच्छित्ति आदि जानना । औदारिक मिश्रकाययोगी लब्धपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त होते हैं  
अतः उनके देवायु, नरकायु, आहारकद्विक, और नरकद्विक बन्धयोग्य नहीं है । इससे एक  
सौ चौदह बन्धयोग्य हैं । उनमें-से श्री सुरचतुष्क और तीर्थकर मिथ्यादृष्टि और सासादनमें  
नहीं बँधती, असंयत सम्यग्दृष्टीमें बँधती हैं ॥११६॥

इहिल बंधव्युच्छित्तिसंख्येगळं पैळदपरु :-

पण्णारसमुणतीसं मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो ।

उवरिमपणसट्ठीवि य एकं सादं सजोगिम्मि ॥११७॥

पंचदशैकान्नात्रिंशन्मिथ्याद्विके अविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः । उवरिम पंचषष्टिरपि च एकं सातं सयोगे ॥

मिथ्याद्विके मिथ्यादृष्टि सासादनगुणस्थानद्विकदोळु बंधव्युच्छित्तिगेळु क्रमद्विदं पंचदशै-  
कान्नात्रिंशत्प्रकृतिगळुप्पुवु । मिथ्यादृष्टियोळु १६ प्रकृतिगळोळु नरकायुष्यमुं नरकद्विकमुं कळेदु  
शेष १३ प्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यमुं तिर्यंगायुष्यमुं कूडिदोडे १५ प्रकृतिगळुप्पुवु । सासादननोळु  
३१ प्रकृतिगळोळु तिर्यंगमनुष्यायुष्यमुं कळेदु २९ प्रकृतिगळु बंधव्युच्छित्तिगळुप्पुवेकं दोडा  
तिर्यंगमनुष्यायुष्यगळं कट्टुवडे मिश्रकालदोळु लब्धपर्याप्तकनागलेवेळुकुं । सासादननादोडे १०  
लब्धपर्याप्तकरोळु पुट्टुवुदिल्ल । निर्वृत्यपर्याप्तकनुं मिश्रकाययोगियपुदरिदमायुर्बन्धमं माळुपु-  
दिल्लदु कारणमागि मिथ्यादृष्टिलब्धपर्याप्तकने कट्टुगुं । तद्विवक्षेयिदमा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान-  
दोळे बंधव्युच्छित्तिगळुदुबं वरिवुदु । अविरते असंयतनोळु व्युच्छित्तयश्चतस्रः अप्रत्याख्यानकषाय-  
चतुष्टयमे बंधव्युच्छित्तियप्पुवेकं दोडे वज्रर्षभनाराचादि षट्प्रकृतिगळु सासादननोळु बंधव्यु-  
च्छित्तिगळुदु वपुदरिदमल्लिदं तेले देशसंयतन ४ प्रमत्तन ६ । अप्रमत्तन देवायुष्यं राशियोळुळु १५  
दुबंदं बिट्टु अपूर्वकरणनोळु आहारद्वयरहित शेष ३४ प्रकृतिगळुमनिवृत्तिकरणन ५ सूक्ष्म-  
सांपरायन १६ कूडि यितु उपरितन पंचषष्टि प्रकृतिगळु सहितमागि असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु  
६९ अप्पुवु । सयोगकेवल भट्टारकरोळु सातमोदे बंधव्युच्छित्तियक्कु १ । मो गुणस्थानंगळोळु  
बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु १०९ । अबंधंगळु ५ । सासादननोळु बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृति-

तस्य गुणस्थानेषु व्युच्छित्ति संख्याति—

मिथ्यादृष्टिद्वये व्युच्छित्तिः क्रमेण मिथ्यादृष्टौ पञ्चदश १५ । नरकायुर्नरकद्वयं चापनीय तिर्यग्मनुष्यायुः-  
क्षेपात् पञ्चदश १५ । सासादने एकान्नात्रिंशत् । २९ । मिश्रकाययोगकाले लब्धपर्याप्तकाद्यस्य आयुर्बन्धा-  
संभवात् मरतिर्यंगायुषोरपनयनात् । अविरते व्युच्छित्तिः वज्रर्षभनाराचादीनां षण्णां सासादने छेदात्  
अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कं, देशसंयतचतुष्कं प्रमत्तषट्कं अप्रमत्तस्य देवायूराशी न अपूर्वकरणस्य आहारकद्वयं  
विना शेषचतुस्त्रिंशत् ३४ अनिवृत्तिकरणपञ्चकं सूक्ष्मसांपरायणोडशकमित्येकान्नसप्ततिः ६९ । सयोगे एकं २५

उनके गुणस्थानोंमें व्युच्छित्तियोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें नरकायु और नरकद्विक धटाकर तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके मिलानेसे  
व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें उनतीसकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि मिश्रकाय योगके  
कालमें लब्धपर्याप्तकके सिवाय अन्यके आयुर्बन्ध नहीं होनेसे मनुष्यायु तिर्यञ्चायु कम हो  
जाती है । असंयतमें वज्रर्षभनाराच आदि छहकी व्युच्छित्ति सासादनमें होनेसे अप्रत्या- ३०  
ख्यानान्तरण चार, देशसंयतकी चार, प्रमत्तकी छह, अप्रमत्तकी व्युच्छित्ति देवायु मूलमें नहीं  
है, अपूर्वकरणकी आहारकके बिना चौतीस, अनिवृत्तिकरणकी पाँच, सूक्ष्म सांपरायकी  
सोलह इस तरह सब मिलकर व्युच्छित्ति उनहत्तर है । सयोगीमें एक सातवेदनीयकी

गळ २० । असंयतनोळ बंधप्रकृतिगळ ७० अबंधप्रकृतिगळ ४४ । एकें बोडे तीर्थ्यमुसं सुरचतुष्टय-  
मुमनविरतं कट्टुगुमपुवरिवमल्लिल कळबुबंधोळकूडिबुवंबुवत्तं । सयोगिकेवल भट्टारकरोळ  
बंधमोवे सातमेधकु १ मबंध प्रकृतिगळ ११३ अपुवु ॥

वैक्रियिकाहारककाययोगिगळगं पेळवपर :-

देवे वा वेगुन्वे मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि ।

छट्टुगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ॥ ११८ ॥

देवे हव वैक्रियिके मिश्रे नरतिथ्यंगायुर्नास्ति । छट्टगुणववाहारे तम्मिश्रे नास्ति देवायुः ॥

वैक्रियिककाययोगिगळगे बंधयोग्य प्रकृतिगळ देवगतिथोळ पेळवते १०४ प्रकृतिगळपुवेकें  
बोडे सूक्ष्मत्रयमुं ३ विकलत्रयमुं ३ नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमुं १ सुरचतुष्कमुं ४ । सुरायुष्यमु  
१० १ माहारद्वयमु २ मिन्तु १६ प्रकृतिगळ कळेबु पोडुवपुवरिव संदृष्टि:- वै० क्रि० काययोगिगळगे

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | १० | ७२  | ३२ |
| मि | ०  | ७०  | ३४ |
| सा | २५ | ९६  | ८  |
| मि | ७  | १०३ | १  |

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळ सूक्ष्मत्रयाविगळ ९ प्रकृतिगळकळेबुवपुवरिवं बंधव्युच्छित्तिगळ ७  
बंधप्रकृतिगळ १०३ अबंधप्रकृति तीर्थ्यमोदेवकु १ ॥

सासादननोळ बंधव्युच्छित्तिगळ २५ बंधप्रकृतिगळ ९६ अबंधप्रकृतिगळ ८ ॥ मिश्रनोळ  
बंधव्युच्छित्तिशून्यं । बंधप्रकृतिगळ मनुष्यायुष्यमं कळेबु ७० प्रकृतिगळपुवु । मनुष्यायुष्यं सहित-

१५ सातम् १ । बन्धाबन्धौ च मिथ्यादृष्टौ १०९ । ५ । सासादने ९४ । २० । असंयते ७० । ४४ तीर्थसुरचतुष्क-  
योर्वन्धात् । सयोगे १ । ११३ ॥ ११७ ॥ वैक्रियिकाहारकयोस्तन्मिश्रयोश्चाह—

वैक्रियिककाययोगिनां बन्धप्रकृतयः देवगतिवत् । १०४ । सूक्ष्मत्रयविकलत्रयनरकद्विकनरकायुःसुर-  
चतुष्कसुरायुद्वारकद्वयानामबन्धात् । अत्र मिथ्यादृष्टौ सूक्ष्मत्रयादिनवानामभावाद्व्युच्छित्तिः ७ । बन्धः १०३ ।  
अबन्धः तीर्थम् । सासादने व्युच्छित्तिः २५ । बन्धः ९६ । अबन्धः ८ । मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम् । बन्धः ७०

२० व्युच्छित्ति होती है । बन्ध और अबन्ध मिथ्यादृष्टिमें एक सौ नौ तथा पाँच, सासादनमें  
चौरानवे तथा बीस । असंयतमें सत्तर तथा चवालीस क्योंकि यहाँ तीर्थकर और  
सुरचतुष्कका बन्ध होता है । सयोगीमें एक तथा एक सौ तेरह ॥११७॥

औदारिकमिश्रका. ११४

|            | मि. | सा. | असं. | सयो. |
|------------|-----|-----|------|------|
| बन्ध व्यु. | १५  | २९  | ६९   | १    |
| बन्ध       | १०९ | ९४  | ७०   | १    |
| अबन्ध      | ५   | २०  | ४४   | ११३  |

वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र और आहारकआहारकमिश्रमें कहते हैं—

३० वैक्रियिक काययोगियोंके बन्ध प्रकृतियाँ देवगतिके समान एक सौ चार हैं । सूक्ष्मादि  
तीन, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु, सुरचतुष्क, देवायु, आहारकद्वयका बन्ध नहीं होता ।  
यहाँ मिथ्यादृष्टिमें सूक्ष्मत्रिक आदि नौका अभाव होनेसे व्युच्छित्ति सात, बन्ध एक सौ तीन,  
अबन्ध एक तीर्थकर । सासादनमें व्युच्छित्ति पच्चीस, बन्ध छियानवे, अबन्ध आठ । मिश्रमें

मागि अबंधप्रकृतिगळ ३४ । असंयतनोळ बंधव्युच्छित्तिगळ १० । बंधप्रकृतिगळ तीर्थंमुं मनुष्या-  
युध्यमुं सहितमागि ७२ अप्पुवु ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ १०२ अप्पुवेते बोडे 'मिस्से णरतिरिय  
आउगं णत्थि' एँदितु नरतिरियंगा युद्धंयमं कळेबोडप्पुवप्पुवरिवं संदुटिरचने—

| वै० मिश्र काय |    |     |    |
|---------------|----|-----|----|
| अ             | ९  | ७१  | ३१ |
| सा            | २४ | ९४  | ८  |
| मि            | ७  | १०१ | १  |

इत्ति मिथ्यादृष्टियोळ बंधव्युच्छित्तिगळ ७ बंधप्रकृतिगळ १०१ । अबंधप्रकृति तीर्थं- ९  
मो दे १ ॥

सासादननोळ बंधव्युच्छित्तिगळ तिथ्यंगाव्युपरहित २४ प्रकृतिगळप्पुवु । बंधप्रकृतिगळ  
९४ अबंधप्रकृतिगळ ८ असंयतनोळ मनुष्यायुपरहित बंधव्युच्छित्तिगळ ९ । बंधप्रकृतिगळ तीर्थं-  
सहितमागि ७१ प्रकृतिगळप्पुवु । अबंधप्रकृतिगळ तीर्थंरहितमागि ३१ अप्पुवु ॥ आहारककाय-  
योगिगळगे छट्टगुणंवाहारे एँदितु प्रमत्तसंयतं गुणस्थानबोळ पेळवंते बंधव्युच्छित्तिगळ ६ बंध- १०  
प्रकृतिगळ ६३ । अबंधप्रकृतिगळ ५७ अप्पुवु ॥ आहारकमिश्रकाययोगिगे बंधव्युच्छित्तिगळ ६ ।  
बंधप्रकृतिगळ ६२ अप्पुवेते बोडे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ एँदितु देवायुष्यं कळेबु अबंधबोळ कूडिदु-  
वप्पुवरिवम बंधप्रकृतिगळ ५७ । कामर्मणकाययोगिगळगे पेळबपर ।

मनुष्यायुरभावात् । अबन्धः ३४ । असंयते व्युच्छित्तिः १० । बन्धः तीर्थमनुष्यायुःसहिततया ७२ । अबन्धः  
तद्विना ३२ ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां बन्धप्रकृतयः द्व्युत्तरशतमेव १०२ । कुतः ? तत्र नरतिर्यंगायुषो बन्धो  
नास्तीति तद्व्यापनयनात् । अत्र मिथ्यादृष्टी व्युच्छित्तिः ७ । बन्धः १०१ । अबन्धः तीर्थम् । सासादने  
व्युच्छित्तिस्तिर्यंगायुर्विना २४ । बन्धः ९४ । अबन्धः ८ । असंयते मनुष्यायुर्विना व्युच्छित्तिः ९ । बन्धः  
तीर्थसहिततया ७१ । अबन्धः तीर्थं विना ३१ । आहारककाययोगिनां प्रमत्तगुणस्थानवत् व्युच्छित्तिः ६ ।  
बन्धः ६३ । अबन्धः ५७ । तन्मिश्रकाययोगिनां व्युच्छित्तिः ६ । बन्धः ६२ 'तम्मिस्सेणत्थि देवाऊ' इति २०  
वचनात् । अबन्धः ५८ ॥ ११८ ॥ कामर्मणकाययोगिनामाह—

व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध सत्तर क्योंकि मनुष्यायुका अभाव है अबन्ध चौतीस । असंयतमें  
व्युच्छित्ति दस, बन्ध तीर्थकर और मनुष्यायु सहित बहत्तर, अबन्ध उनके बिना बत्तीस ।  
वैक्रियिक मिश्रकाय योगियोंमें बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ दो, क्योंकि मनुष्यायु तिर्यच्चायुका  
बन्ध नहीं होता इसलिए उन दोनोंको कम कर दिया है । यहाँ मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति सात, २५  
बन्ध एक सौ एक, अबन्धमें तीर्थकर एक । सासादनमें व्युच्छित्ति तिर्यच्चायुके बिना  
चौबीस, बन्ध चौरानवे, अबन्ध आठ । असंयतमें मनुष्यायुके बिना व्युच्छित्ति नौ, बन्ध  
तीर्थकर सहित इकहत्तर, अबन्ध तीर्थकरके बिना इकतीस । आहार काययोगियोंके प्रमत्त  
गुणस्थानकी तरह व्युच्छित्ति छह, बन्ध तरेसठ, अबन्ध सत्तावन । आहारक मिश्रकाय-  
योगियोंके व्युच्छित्ति छह, बन्ध बासठ क्योंकि आहारकमिश्रमें देवायुका बन्ध नहीं होता ३०  
ऐसा कहा है । अबन्ध अठावन ॥११८॥

कम्मं उरालमिस्सं वा णाउदुग्गं पि णव छिदी अयदे ।

वेदादाहारोत्ति य सगुणद्वाणाणमोघं तु ॥११९॥

काम्मंणे औदारिकमिश्रकाययुग्ममपि नवव्युच्छित्तयोऽसंयते । वेदादाहारपर्यंतं स्वगुण-  
स्थानानामोघस्तु ॥

- ५ काम्मंणकाययोगिगच्छते औदारिकमिश्रकाययोगिगच्छते पेळदंतयक्कुमदुवुं 'ओराळेवामिस्से  
ण हि सुरणिरयाउहार णिरयदुग्गमेदितु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११४ अप्पुविल्लि विग्रहगतियोळायुब्बं-  
धमिल्लप्पुव्वारिदमवरोळिहं तिर्यग्गमनुष्यायुद्ध्यमं कळेदोडे ११२ प्रकृतिगळु बंधयोग्यगळप्पुविल्लि  
गुणस्थानचतुष्टयमक्कुं ॥ काम्मंणकाययोगिगच्छते—

|    |    |     |     |
|----|----|-----|-----|
| स  | १  | १   | १११ |
| अ  | ७४ | ७५  | ३७  |
| सा | २४ | ९४  | १८  |
| मि | ७३ | १०७ | ५   |

- १० इत्थि मिथ्यादृष्टियोळ बंधव्युच्छित्तिगळु १३ अप्पुवेतेंदोडे नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुं  
कळदुवप्पुव्वारिदं बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवेतेंदोडे 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि अविरदे अत्थि'  
एदितु ५ प्रकृतिगळु बंधदोळकळदु अवंधप्रकृतिगळुदुवप्पुव्वारिदं । सासादननोळ बंधव्युच्छित्तिगळु  
तिर्यग्गायुष्यमं कळेदुळिद २४ प्रकृतिगळुप्पुवु । बंधप्रकृतिगळु ९४ अवंधप्रकृतिगळु १८ ॥

असंयतनोळ बंधव्युच्छित्तिगळु ७४ अप्पुवेतेंदोडे तन्न ओभत्त ९ । देशसंयतन ४ प्रमत्त-

- १५ संयतन ६ अप्रमत्तन देवायुष्यमं बिट्ठु अपूर्वकरणनाहारकद्वयरहित ३४ प्रकृतिगळुं अनिवृत्ति-

काम्मणकाययोगिनां औदारिकमिश्रकाययोगिवद्भवति । तत्रापि विग्रहगताबाधुर्बन्धो नेति तिर्यग्-  
मनुष्यायुषी विना बन्धयोग्यं द्वादशोत्तरशतमेव । गुणस्थानचतुष्कम् । तत्र मिथ्यादृष्टो व्युच्छित्तिः १३  
नरकद्विकनरकायुरभावात् । बन्धः १०७ । मिच्छदुगेदेवचऊ तित्थं णहि अविरदे अत्थीति पञ्चानामवन्धात् ।  
सासादने व्युच्छित्तिः तिर्यग्गायुविना २४ । बन्धः ९४ । अवन्धः १८ । असंयते व्युच्छित्तिः मनुष्यायुविना स्वस्य  
२० ९ । देशसंयतस्य ४ । प्रमत्तस्य ६ । अप्रमत्तस्य देवायुराशौ न । अपूर्वकरणस्य आहारकद्वयं विना ३४ ।

वैक्रियिक काययोगी-१०४

वै. मिश्र. १०२ बन्धयोग्य

|              | मि. | सा. | मि. | असं | मि. | सा. | असं. |
|--------------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|------|
| व्युच्छित्ति | ७   | २५  | ०   | १०  | ७   | २४  | ९    |
| बन्ध         | १०३ | ९६  | ७०  | ७२  | १०१ | ९४  | ७१   |
| २५ अवन्ध     | १   | ८   | ३४  | ३२  | १   | ८   | ३१   |

- काम्मणकाय योगियोंके औदारिक मिश्रकाययोगिकी तरह होता है । उसमें भी विग्रह-  
गतिमें आयुबन्ध नहीं होता । अतः तिर्यग्गायु मनुष्यायुके विना बन्धयोग्य एक सौ बारह  
हैं । गुणस्थान चार होते हैं । मिथ्यादृष्टीमें नरकद्विक नरकायुका अभाव होनेसे  
व्युच्छित्ति तेरह, बन्ध एक सौ सात क्योंकि 'मिथ्यात्व और सासादनमें देवचतुष्क और  
३० तीर्थकरका बन्ध नहीं होता असंयतमें होता है' इस नियमके अनुसार पाँच अवन्धमें हैं ।  
सासादनमें व्युच्छित्ति तिर्यग्गायुके विना चौबीस, बन्ध चौरानवे, अवन्ध अठारह । असंयतमें

करण ५ सूक्ष्मसांपरायन १६ अन्तु ७४ प्रकृतिगळप्पुवप्पुवरिवं बंधप्रकृतिगळु ७५ वप्पुवर्तेदोड  
सुरचतुष्कम् तीर्थमुमनसंयतं कट्टुगुमप्पुवरिनवं कूडिदोडप्पु वप्पुवरिवं । अवंधप्रकृतिगळोळा ५  
प्रकृतिगळं कळवु ३७ प्रकृतिगळप्पुवु ॥ सयोगभट्टारकनोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृति १ अवंध-  
प्रकृतिगळु १०१ । मुंवे वेदमार्गणे मोवल्गोडु आहारमार्गणे पय्यंतमाव १० मार्गणास्थानंगळोळु  
तु मत्ते स्वस्वगुणस्थानंगळोळु पेळव साधारणकथनमवकु । मल्लि स्त्रीवेदिगळोगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ५  
१२० गुणस्थानंगळु ९ बंधव्युच्छित्ति मि १६ । सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ ।  
क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेद भागेय द्विचरमवोळु पुंवेद १ चरमसमयवोळु शून्यं बंधप्रकृतिगळु  
मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ । दे ६७ । प्रमत्तनोळु ६३ अ ५९ । अनिवृत्तिकरणसवेद  
भागेय द्विचरमसमयवोळु २२ । चरमसमयवोळु २१ । अवंधप्रकृतिगळु मि ३ । सा १९ । मि ४६ ।  
अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ अनिवृत्तिकरणसवेदभागेय द्विचरमवोळु ९८ । चरम- १०  
समयवोळु ९९ । स्त्रीवेदिनिर्वृत्यपर्याप्तकरुणळोगे योग्यप्रकृतिगळु १०७ एतेदोडे आयुश्चतुष्टयं

अनिवृत्तिकरणस्य ५ । सूक्ष्मसांपरायस्य १६ । एवं ७४ । बन्धः ७५ । सुरचतुष्कतीर्थबन्धात् । अबन्धः ३७ ।  
सयोगे व्युच्छित्तिः १ । बन्धः १ । अबन्धः १११ । तु पुनः अग्रे वेदाद्याहारपर्यन्तदशमार्गणासु स्वस्वगुण-  
स्थानोक्तसाधारणकथनमेव । तत्र स्त्रीवेदिनां बन्धयोग्यं १२० । गुणस्थानानि ९ । व्युच्छित्तयः—मि १६  
सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागद्विचरमसमये १५  
पुंवेदः १ । चरमसमये शून्यम् ० । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ । दे ६७ । प्र ३६ ।  
अ ५९ । अ ५८ । तत्सवेदभागद्विचरमसमये २२ । चरमसमये २१ । अबन्धाः—मि ३ । सा १९ । मि ४६ ।  
अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । सवेदभागद्विचरमसमये ९८ । चरमसमये ९९ । तन्निर्वृत्य-

व्युच्छित्ति मनुष्यायुके बिना अपनी नौ, देशसंयतकी चार, प्रमत्तकी छह, अप्रमत्तकी देवायु  
यहाँ नहीं है, अपूर्वकरणकी आहारकयुगलके बिना चौतीस, अनिवृत्तिकरणकी पाँच, सूक्ष्म- २०  
सांपरायकी सोलह, इस प्रकार सब चौहत्तर । बन्ध पिचहत्तर क्योंकि देवचतुष्क और  
तीर्थकर बँधती है । अबन्ध सैंतीस । सयोगिमें व्युच्छित्ति एक, बन्ध एक, अबन्ध एक सौ  
ग्यारह । आगे वेदमार्गणासे लेकर आहार मार्गणापर्यन्त दस मार्गणाओंमें अपने-अपने गुण-  
स्थानमें कहा साधारण कथन ही जानना ।

स्त्रीवेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस, गुणस्थान नौ । स्त्रीवेदीनिर्वृत्यपर्याप्तकोंके बन्ध- २५  
योग्य एक सौ सात; क्योंकि चारों आयु, तीर्थकर, आहारद्विक और वैकिकषट्कका बन्ध  
नहीं होता । इसमें असंयत गुणस्थान नहीं होता ।

कर्मणकाय योग ११२

स्त्रीवेद १२० बन्धयोग्य

स्त्री. निर्वृत्य १०७

|              | मि. | सा. | अ. | सयो. | मि. | सा. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अ. | अपू. | अनि. | मि. | सा. |    |
|--------------|-----|-----|----|------|-----|-----|-----|----|-----|------|----|------|------|-----|-----|----|
| व्युच्छित्ति | १३  | २४  | ७४ | १    | १६  | २५  | ०   | १० | ४   | ६    | १  | ३६   | १    | १३  | २४  | ३० |
| बन्ध         | १०७ | ९४  | ७५ | १    | ११७ | १०१ | ७४  | ७७ | ६७  | ३६   | ५९ | ५८   | २२   | १०७ | ९४  |    |
| अबन्ध        | ५   | १८  | ३७ | १११  | ३   | १९  | ४६  | ४३ | ५३  | ५७   | ६१ | ६२   | ९८   | ०   | १३  |    |

स्त्रीवेद नौवें गुणस्थानके सवेदभागपर्यन्त होता है । अतः क्षपक अनिवृत्तिकरणके  
प्रथम सवेद भागके द्विचरम समयमें एक पुरुषवेदकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है । तथा बन्ध



तीर्थं १ । आहारद्वयं २ वैक्रियिकषट्क ६ मन्तु १३ प्रकृतिगळकळेदुबप्पुवरिवं :—

|                            |    |     |    |
|----------------------------|----|-----|----|
| स्त्री = निर्वृत्यपर्याप्त |    |     |    |
| सा                         | २४ | ९४  | १३ |
| मि                         | १३ | १०७ | ०  |

ई रचने सुगममे'दोडे स्त्रीवेदिनिर्वृत्यपर्याप्तकासंयतं घटिसने'बिनिते विशेषमप्पुवरिवं ॥

षंडवेदिगळोग्यं बंधयोग्यप्रकृतिगळ १२० गुणस्थानगळं स्त्रीवेदिगळोळ्येळवंते ९ अप्पुवु ।

गमनिकेयुमा प्रकारमेयक्कु मो षंडवेदिगळोळ निर्वृत्यपर्याप्तकोरोळ विशेषमंडबाउवे'दोडे योग्य-  
५ प्रकृतिगळ नूरेंदु १०८ । गुणस्थानगळ अप्पुवु ।

ष. निर्वृत्य०

|    |    |     |         |
|----|----|-----|---------|
| अ  | ९  | ७१  | ३७      |
| सा | २४ | ९४  | १४      |
| मि | १३ | १०७ | १ तीर्थ |

ई रचने'सु' सुगममे'ते'दोडे नरकगतिथ असंयतनोळ तीर्थबंधमुंटे'बिनिते विशेषमप्पुवरिवं ।

षंडवेदिलब्धपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ १०९ तीर्थमं कळेवु तिथ्यंगमनुष्यायुर्द्वयमं

पर्याप्तानां बन्धयोग्यं १०७ । कुतः ? आयुश्चतुष्कतीर्षाहारद्वयवैक्रियिकषट्कानामबन्धात् । संदृष्टि :—

स्त्रीनिर्वृत्यपर्याप्त १०७

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| सा | २४ | ९४  | १३ |
| मि | १३ | १०७ | ०  |

अत्रासंयतो न संभवति ।

१० षंडवेदिनां बन्धयोग्यम् १२० । गुणस्थानानि गमनिका च स्त्रीवेदिवत् । तन्निर्वृत्यपर्याप्ते तु बन्ध-  
योग्यमष्टोत्तरशतम् । १०८ । तल्लब्धपर्याप्तकबन्धातिर्यग्मनुष्यायुषो अपनीय नारकासंयतापेक्षया तीर्थ-  
बन्धस्यात्र क्षेपात् गुणस्थानानि ३ । संदृष्टि :—

षंडनिर्वृत्यपर्याप्त ० ।

|    |    |     |         |
|----|----|-----|---------|
| अ  | ९  | ७१  | ३७      |
| सा | २४ | ४९  | १४      |
| मि | १३ | १०७ | १ तीर्थ |

बाईस और अबन्ध अठानवे का होता है । तथा चरम समयमें व्युच्छिति शून्य, बन्ध इक्कीस और अबन्ध निन्यानवेका होता है ।

१५ नपुंसक वेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं । गुणस्थान तथा रचना स्त्रीवेदीकी तरह जानना । नपुंसकवेदी निर्वृत्यपर्याप्तमें बन्धयोग्य एक सौ आठ हैं । क्योंकि लब्धपर्याप्तकके बन्धयोग्य एक सौ नौ प्रकृतियोंमें-से तिर्यच्चायु मनुष्यायु घटाकर तीर्थकरको मिलानेसे एक सौ आठ होती है क्योंकि नरकमें चतुर्थगुणस्थानमें तीर्थकरका बन्ध होता है । गुणस्थान तीन

कट्टुगुमप्पुवरिदमा प्रकृतिद्वयं कूडिनुवेबुदत्थं । पुंवेदिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० बंधव्युच्छित्ति-  
गळु मि १६ सा २५ मि ० । अ १० । दे ४ प्र ६ अ १ अ ३६ । अपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेद-  
भागचरमसमयदोळ पुंवेदं १ व्युच्छित्तियदकुं । बंधप्रकृतिगळु मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ ।  
अ ७७ । दे ६७ । प्र ६३ अ ५९ अ ५८ । अपकानिवृत्ति प्रथमसवेदभागचरमसमयपर्यंतं बंधप्रकृति-  
गळु २२ । अबंधप्रकृतिगळु मि ३ । सा १९ । मि ४६ । अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ ।  
अ ६२ । अपकानिवृत्तिप्रथमसवेदभागचरमसमयपर्यंतं ९८ ।

पुंवेदिनिर्वृत्यपर्याप्तकरगळगे गतित्रयजरगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११२ । गुणस्थान-  
प्रितयमुसककुं ।

पुं निर्वृत्यपर्याप्त

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | ९  | ७५  | ३७ |
| सा | २४ | ९४  | ९८ |
| मि | १३ | १०७ | ५  |

ई रचनेपुं सुगममेते दोडे असंयतनोळु तीर्थंमुं सुरचतुष्कपुं बंधमुंटपुवरिदमा प्रकृति-  
पंचकमसंयतन बंधप्रकृतिगळोळकूडिनुवे विनिते विशेषमप्पुवरि, स्त्रीवेदवोळं षंठवेदवोळं तीर्थ-  
बंधमुमाहारकद्वयबंधमुं विरोधिसत्पडु । तीर्थोदयमेतु परमोत्कृष्टविशुद्धरोळुदमिसुगुमंते १०

पुंवेदिनां बन्धयोग्यम् १२० । व्युच्छित्तयः—मि १६ । सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ ।  
अ १ । अ ३६ । अपकानिवृत्तिकरणप्रथमभागचरमसमये पुंवेदः १ । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ ।  
अ ७७ । दे ६७ । प्र ६३ । अ ५९ । अ ५८ । तत्प्रथमभागचरमसमयपर्यन्तम् २२ । अबन्धाः—मि ३ । सा  
१९ । मि ४६ । अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । तत्प्रथमभागचरमसमयपर्यन्तम् ९८ । १५  
सन्निवृत्यपर्याप्तानां नारकं विना त्रिगतिजानामेव बन्धयोग्यम् ११२ । गुणस्थानत्रयम् । सन्दष्टिः—

पुंनिर्वृत्यपर्याप्तः ।

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | ९  | ७५  | ३७ |
| सा | २४ | ९४  | ९८ |
| मि | १३ | १०७ | ५  |

हैं । पुरुषवेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं । उनके निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें नारकको  
छोड़ शेष तीन गतिवाले जीवोंके ही बन्धयोग्य एक सौ बारह हैं । गुणस्थान तीन हैं—

पुरुषवेद बन्धयोग्य १२०

पु. निवृ. ११२

नपुं. निवृ. १०८

|       | मि. | सा. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अप्र. | अपू. | अनि. | मि. | सा. | अ. | मि. | सा. | अ. |    |
|-------|-----|-----|-----|----|-----|------|-------|------|------|-----|-----|----|-----|-----|----|----|
| व्यु. | १६  | २५  | ०   | १० | ४   | ६    | १     | ३६   | १    | १३  | २४  | ९  | १३  | २४  | ९  | २० |
| बन्ध  | ११७ | १०१ | ७४  | ७७ | ६७  | ६३   | ५९    | ५८   | २२   | १०७ | ९४  | ७५ | १०७ | ९४  | ७१ |    |
| अबन्ध | ३   | १९  | ४६  | ४३ | ५३  | ५७   | ६१    | ६२   | ९८   | ५   | १८  | ३७ | १   | १४  | ३७ |    |

पुरुषवेदनिर्वृत्यपर्याप्तकोंके असंयतमें तीर्थकर और सुरचतुष्क बन्ध होता है इतना  
विशेष जानना । स्त्रीवेद नपुंसकवेदमें भी तीर्थकर और अहारकद्विकके बन्धमें कोई विरोध  
नहीं है, किन्तु इनका उदय नियमसे पुरुषवेदमें ही होता है । २५

आहारकश्चद्विधं स्त्रीषण्डवेदिगच्छोदयमितल ॥ कषायमार्गणयोः बन्धयोग्यप्रकृतिगच्छ १२० ।  
गुणस्थानंगच्छ क्षपकानिवृत्तिकरणद्वितीयतृतीयचतुर्थं पंचमभागंगच्छ पथ्यंतं क्रोधमानमायाबावर-  
लोभंगच्छो ९ गुणस्थानंगच्छपुत्रु । सामान्यगुणस्थानदोःपेक्षदंते गमनिकेयिरियत्पडुगुं ॥ सूक्ष्म-  
लोभगे सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमेवकुं । ज्ञानमार्गणयोः कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानिगच्छो बन्धयोग्य-  
५ प्रकृतिगच्छ ११७ गुणस्थानद्वितीयमेवकुं ।

| कु कु विभंग |    |     |    |
|-------------|----|-----|----|
| सा          | २५ | १०१ | १६ |
| मि          | १६ | ११७ | ०  |

मतिश्रुतावधिज्ञानिगच्छो बन्धयोग्यप्रकृतिगच्छ तीर्थं आहारकद्वितीयं सहितमागि ७९ प्रकृति-  
गच्छपुत्रु । एते बोडे मिथ्यादृष्टिसासादनरोः ४१ प्रकृतिगच्छोऽव्युच्छित्तं । गुणस्थानंगच्छमसंयतादि  
९ अपुवत्ति बन्धव्युच्छित्तगच्छ अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ० ।

अत्रासंयते तीर्थमुरचतुष्कयोर्वन्धोऽस्तीति ज्ञातव्यम् । स्त्रीषण्डवेदयोरपि तीर्थाहारकबन्धो न विरुध्यते  
१० उदयस्यैव पुर्वेदिषु नियमात् ।

कषायमार्गणायां बन्धयोग्यम् १२० । गुणस्थानानि क्षपकानिवृत्तिकरणद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमभाग-  
पर्यंतानि क्रोधमानमायाबावरलोभानां गमनिका च सामान्यगुणस्थानोक्तैव । सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसांपरायगुण-  
स्थानमेव । ज्ञानमार्गणायां कुमतिकुश्रुतविभंगानां बन्धयोग्यम् ११७ । गुणस्थानद्वयं । संदृष्टिः—

कु-कु-विभंगाः ।

| सा | २५ | १०१ | १६ |
|----|----|-----|----|
| मि | १६ | ११७ | ०  |

१५ मतिश्रुतावधिज्ञानिनां बन्धयोग्याः ७९ । मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्ति ४१—प्रकृत्यभावात् । गुण-  
स्थानानि असंयतादीनि ९ तत्र व्युच्छित्तयः—अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ ।

२० कषायमार्गणामे बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं । क्रोध, मान, माया और लोभके गुण-  
स्थान क्रमसे क्षपक अनिवृत्तिकरणके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम भाग पर्यन्त जानना ।  
बन्धादि तीन सामान्य गुणस्थानवत् जानना । सूक्ष्मलोभमें सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान ही  
होता है । ज्ञानमार्गणामे कुमति, कुश्रुत और विभंगज्ञानके बन्धयोग्य एक सौ सतरह हैं ।  
गुणस्थान दो हैं ।

कु. कु. निभ. ११७

मि. सा.

|            |     |     |
|------------|-----|-----|
| बन्ध व्यु. | १६  | २५  |
| बन्ध       | ११७ | १०१ |
| अबन्ध      | ०   | १६  |

२५

मति श्रुत अवधिज्ञानियोंके बन्धयोग्य उन्नासी हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सासादनमें  
व्युच्छिन्न होनेवाली इकतालीस प्रकृतियोंका अभाव है । गुणस्थान असंयतसे लेकर नौ होते

क्षी ० । बंधप्रकृतिगळु अ० ७७ । अबंध २ । दे बंध ६७ । अबंध १२ । प्रमत्त बंध ६३ । अबंध १६ ।  
अप्रमत्त बंध ५९ । अबंध २० । अपूर्वकरण बंध ५८ । अबंध २१ । अनिवृत्ति बंध २२ । अबंध  
५७ । सू ० बंध १७ । अबंध ६२ । उपज्ञांतकषाय बंध १ अबंध ७८ । क्षीण बंध १ अबंध ७८ ।  
मनःपर्ययज्ञानिगळु बंधयोग्यप्रकृतिगळो ६५ ॥ प्रमत्तसंयताविसप्तगुणस्थानंगळुमप्युबु—

मनःपर्यय

|      |    |    |    |
|------|----|----|----|
| क्षी | ०  | १  | ६४ |
| उ    | ०  | १  | ६४ |
| सू   | १६ | १७ | ४८ |
| अ    | ५  | २२ | ४३ |
| अ    | ३६ | ५८ | ७  |
| अ    | १  | ५९ | ६  |
| प्र  | ६  | ६३ | २  |

ई चनेयु सुगममेकदोडे मनःपर्ययज्ञानिगळु आहारकद्विप्रामरित्लदे तदबंधमप्रमत्ता-  
पूर्वकरणरोळुदे बिनिते विशेषमप्युवरिवं ॥

केवलज्ञानमार्गणेयोळु सातमोदे बंधमक्कु । सयोगायोगिगुणस्थानद्वितयमुं सिद्धपरमेष्ठि-  
गळुमप्यरु ॥ संयममार्गणेयोळु असंयमबंधयोग्यप्रकृतिगळु ११८ गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्ट्यादि-

उ ० । क्षी ० । बन्धाबन्धी च-अ ७७ । २ । दे ६७ । १२ । प्र ६३ । १६ । अ ५९ । २० । अ ५८ । २१ । १०  
अ २२ । ५७ । सू १७ । ६२ । उ १ । ७८ । क्षी १ । ७८ । मनःपर्ययज्ञानिनां बन्धयोग्याः ६५ । प्रमत्तादि-  
सप्तगुणस्थानानि । सं—

मनःपर्यय

|      |    |    |    |
|------|----|----|----|
| क्षी | ०  | १  | ६४ |
| उ    | ०  | १  | ६४ |
| सू   | १६ | १७ | ४८ |
| अ    | ५  | २२ | ४३ |
| अ    | ३६ | ५८ | ७  |
| अ    | १  | ५९ | ६  |
| प्र  | ६  | ६३ | २  |

अवाहारकद्वयोदय एव विरुध्यते नाप्रमत्तापूर्वकरणयोस्तदबन्धः । केवलज्ञानिषु सातस्यैव बन्धः ।  
सयोगायोगिगुणस्थानद्वयं सिद्धाश्च संति । संयममार्गणायां असंयमस्य बन्धयोग्यं ११८ गुणस्थानानि आद्यान्येव १५  
हैं । मनःपर्ययज्ञानियोंके बन्धयोग्य पैसठ हैं । प्रमत्त आदि सात गुणस्थान होते हैं । मनः-  
पर्ययका आहारकद्वयके उदयके साथ ही विरोध है, अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें होनेवाले  
उनके बन्धके साथ विरोध नहीं है । केवलज्ञानियोंके एक साताका ही बन्ध होता है । सयोग  
और अयोग ये दो गुणस्थान होते हैं । केवलज्ञान सिद्धोंके भी होता है ।

चतुर्गणस्थानगण्यपुत्रु :—

असंयमवर्क

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | १० | ७७  | ४१ |
| मि | ०  | ७४  | ४४ |
| सा | २५ | १०१ | १७ |
| मि | १६ | ११७ | १  |

ई रचनेयुं सुगममेयकुमेतं बोडे असंयतर्गे तीर्थमुं मनुष्यायुष्यमुं मिश्रन अवंधदोळकळेदु  
असंयतनोळकळिदुषे विनिते विशेषमपुर्वारिवं ॥

देशसंयमवर्क देशसंयतगुणस्थानदोळे तंतेयवर्क । बंध व्यु ४ वं ६७ अ १२ ॥ सामायिक-  
५ छेदोपस्थानद्वयवर्के बंधयोग्यप्रकृतिगळ ६५ अपुर्वेतंबोडे ई संयमद्वयवर्क तीर्थमुमाहारकद्वितयमुं  
बंधमुंटपुर्वारिवं गुणस्थानचतुष्टयमुमवर्क ।

सा० छे०

|     |    |    |    |
|-----|----|----|----|
| अ   | ५  | २२ | ४३ |
| अ   | ३६ | ५८ | ७  |
| अ   | १  | ५९ | ६  |
| प्र | ६  | ६३ | २  |

चत्वारि । संदृष्टि :—

असंयमस्य रचना

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| अ  | १० | ७७  | ४१ |
| मि | ०  | ७४  | ४४ |
| सा | २५ | १०१ | १७ |
| मि | १६ | ११७ | १  |

अत्र तीर्थदेवमनुष्यायूषि मिश्रस्य अवन्धादसंयते निक्षिप्तानांति ज्ञातव्यम् । देशसंयमस्य देशसंयत-  
१० गुणस्थानवत् व्युच्छित्तिः ४ । बन्धः ६७ । अवन्धः ५३ । सामायिकछेदोपस्थापनयोर्वन्धयोग्याः ६५ । अत्र  
तीर्थाहारद्विकबन्धो गुणस्थानचतुष्टक । सं—

सा छे ६५

|         |    |    |    |
|---------|----|----|----|
| अ       | ५  | २२ | ४३ |
| अ       | ३६ | ५८ | ७  |
| अ       | १  | ५९ | ६  |
| प्रमत्त | ६  | ६३ | २  |

मति. श्रुत. अवधि ७९ बन्धयोग्य

मनःपर्यय ६५ बन्धयोग्य

असं. दे. प्र. अ. अपू. अनि. सू. उ. क्षी. प्र. अ. अपू. अनि. सू. उ. क्षी.  
१५ बन्ध व्यु. १० ४ ६ १ ३६ ५ १६ ० ० ६ १ ३६ ५ १६ ० ०  
बन्ध ७७ ६७ ६३ ५९ ५८ २२ १७ १ १ ६३ ५९ ५८ २२ १७ १ १  
अवन्ध २ १२ १६ २० २१ ५७ ६२ ७८ ७८ २ ६ ७ ४३ ४८ ६४ ६४

संयममार्गणामे असंयममे बन्धयोग्य एक सौ अठारह, आदिके चार गुणस्थान होते  
हैं, यहाँ तीर्थकर, देवायु और मनुष्यायुका मिश्रगुणस्थानमें बन्ध नहीं होनेसे असंयत गुण-  
स्थानमें उनका निक्षेप किया है । देशसंयममें देश संयत गुणस्थानकी तरह व्युच्छित्ति चार,  
२० बन्ध सड़सठ और अवन्ध तिरपनका है । सामायिक और छेदोपस्थापनामें बन्धयोग्य पैंसठ  
हैं । यहाँ तीर्थकर और आहारकद्विकका बन्ध होता है । गुणस्थान चार होते हैं ।

परिहारविशुद्धिसंयमबोद्धुं बन्धयोग्यप्रकृतिगळ ६५ अअपुवे ते बोडे तीर्थमाहारकद्वितय-  
मुमीसंयमबोद्धुं बन्धमंदु आहारकऋद्धि संभक्षिसर्वे बुवत्यं । गुणस्थानद्वितयमेयक्कुं :—

परिहार शु.

|     |   |    |   |
|-----|---|----|---|
| अ   | १ | ५९ | ६ |
| प्र | ६ | ६३ | २ |

सूक्ष्मसांपराय संयमबोद्धुं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानबोद्धुं तंतयेक्कुं । बन्धव्युच्छित्ति १६ । वं  
१७ । अ ६२ ॥ यथाख्यात संयमबोद्धुं बन्धयोग्यप्रकृति सातमो देयक्कुं गुणस्थानचतुष्टयमुमक्कुं

यथाख्यात

|      |   |   |   |
|------|---|---|---|
| अ    | ० | ० | १ |
| स    | १ | १ | ० |
| क्षी | ० | १ | ० |
| उ    | ० | १ | ० |

परिहारविशुद्धिसंयमे बन्धयोग्याः ६५ । अत्र तीर्थाहारकद्विकबन्धोऽस्ति नाहारकधिः । गुणस्थानद्वयं—

परिहारविशुद्धि ६५

|         |   |    |   |
|---------|---|----|---|
| अप्र    | १ | ५९ | ६ |
| प्रमत्त | ६ | ६३ | २ |

सूक्ष्मसांपरायसंयमे सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवत् व्यु-१६ । वं १७ । अ १०३ । यथाख्यातसंयमे बन्ध-  
योग्यं सातमेव गुणस्थानचतुष्कं । सं—

यथाख्यात

|      |   |   |   |
|------|---|---|---|
| अ    | ० | ० | १ |
| स    | १ | १ | ० |
| क्षी | ० | १ | ० |
| उ    | ० | १ | ० |

परिहार विशुद्धि संयममें बन्धयोग्य पैंसठ हैं । यहाँ तीर्थकर और आहारकद्विकका बन्ध  
होता है । किन्तु आहारक ऋद्धि नहीं है ।

| असंयम बन्धयोग्य ११८ |     |     |      | सामा. छे. ६५ |    |      |      | परि. वि. ६५ |       | १० |
|---------------------|-----|-----|------|--------------|----|------|------|-------------|-------|----|
| मि.                 | सा. | मि. | असं. | प्र.         | अ. | अपू. | अनि. | प्र.        | अप्र. |    |
| व्यु.               | १६  | २५  | ०    | १०           | ६  | १    | ३६   | ५           | ६     | १  |
| बन्ध                | ११७ | १०१ | ७४   | ७७           | ६३ | ५९   | ५८   | २२          | ६३    | ५९ |
| अबन्ध               | १   | १७  | ४४   | ४१           | २  | ६    | ७    | ४३          | २     | ६  |

सूक्ष्मसांपराय संयममें सूक्ष्म सांपरायगुणस्थानके समान व्युच्छित्ति सोलह, बन्ध  
सतरह, अबन्ध एक सौ तीन जानना । यथाख्यात संयममें बन्धयोग्य एक साता है । गुण-  
स्थान चार अन्तिम हैं ।

वर्शनमार्गणयोळु चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयवक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० अप्पुवु । गुणस्थान-  
गळु मिथ्यादृष्ट्यादि १२ अप्पुवु । इल्लि गुणस्थानसामान्यदोळे तंते बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृति-  
गळरियत्पडुगुं । अवधिदर्शनवक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु अवधिज्ञानदोळपेळदंते योग्यप्रकृतिगळु ७९  
गुणस्थानंगळु असंयतादि ९ अप्पुवु । केवलदर्शनवक्के केवलज्ञानवक्के पेळदंतेयक्कुं ।

५ लेश्यामार्गणयोळु कृष्णनीलकपोतंगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११८ अप्पुवे तें दोडे  
असंयतनोळु तीर्थबंधमुंदु । आहारकद्विकमे कळदुदेंबुदत्थं । गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्ट्यादि-  
चतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु । बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधगमनिकेयुं गुणस्थानदोळपेळद सामान्यकथनमेयक्कुं ।  
तेजःपद्मशुक्ललेश्येगळगे गाथाद्वयादिदं बंधयोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरु ।

णवरि य सन्वुवसम्मे णरसुरआरुणि णत्थि णियमेण ।

१० मिच्छस्संतिमणवयं वारं ण हि तेउपम्मेसु ॥१२०॥

सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमवारसं च ण च अत्थि ।

कम्मेव अणाहारे बंधस्संतो अणंतो य ॥१२१॥

नवीनं च सर्वोपशमसम्यक्त्वे नरसुरायुषी न स्तः नियमेन । मिथ्यादृष्टेरंत्यनात्रकं द्वादश च  
न हि तेजःपद्मयोः ॥

१५ शुक्ले शतारचतुष्कं वामंत्यद्वादश च न च संति । कास्मिन्ने इव अनाहारे बंधस्यांतोऽ-  
नंतश्च ॥

तेजोलेश्येयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १११ अप्पुवे तें दोडे मिथ्यादृष्टिय कडेय सूक्ष्मत्रयादि  
नवप्रकृतिगळु कळदु तावन्मात्रं गळप्पुदरिदं । अल्लि गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तावसान-

२० दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्बन्धयोग्यम् १२० । मिथ्यादृष्ट्यादिद्वादशगुणस्थानोक्तबन्धाबन्ध-  
व्युच्छित्तयो ज्ञातव्याः । अवधिदर्शने अवधिज्ञानवद्बन्धयोग्याः ७९ । गुणस्थानानि असंयतादीनि ९ । केवल-  
दर्शने केवलज्ञानवत् । लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलकपोतानां बन्धयोग्यं ११८ आहारकद्विकाभावात् । गुण-  
स्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि बन्धाबन्धव्युच्छित्तयस्तद्वत् ॥११९॥ शुभलेश्यानां गाथाद्वयेनाह—

तेजोलेस्यायां बन्धयोग्यं १११ मिथ्यादृष्टेश्चरमसूक्ष्मत्रयादिनवानामभावात् । गुणस्थानानि आद्यान्वेव

२५ दर्शनमार्गणामे चक्षु अचक्षुदर्शनमे बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं । मिथ्यादृष्टिसे लेकर  
वारह गुणस्थानोंमें कहे अनुसार बन्ध, अबन्ध और व्युच्छित्ति जानना । अवधिदर्शनमें  
अवधिज्ञानकी तरह बन्धयोग्य उनासी हैं । गुणस्थान असंयत आदि नौ हैं । केवल दर्शनमें  
केवलज्ञानकी तरह जानना ।

३० लेश्यामार्गणामे कृष्ण नील कपोतमें बन्धयोग्य एक सौ अठारह हैं, आहारकद्विक नहीं  
है । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार हैं । गुणस्थानोंकी तरह ही बन्ध अबन्ध और  
व्युच्छित्ति होती है ॥११९॥

शुभलेश्याओंमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

तेजोलेस्यामें बन्धयोग्य एक सौ ग्यारह हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली  
सोलह प्रकृतियोंमें से अन्तकी सूक्ष्मत्रिक आदि नौका अभाव है । गुणस्थान आदिके सात

साद ७ गुणस्थानगळपुवु । मि । व्यु ७ । बं १०८ अ ३ । सासा. व्यु. २५ । बं १०१ । अ १० ।  
मि व्यु ० । बं ७४ । अ बं ३७ । अ सं व्यु १० । बं ७७ । अ बं ३४ ॥ देश सं व्यु ४ । बंध ६७ ।  
अ बं ४४ । प्रम व्यु ६ बंध ६३ । अ बं ४८ ॥ अप्र व्यु १ बंध ५९ । अ बं ५२ ॥ पद्मलेख्येयोळु  
बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०८ अप्पुवेतंदोडे वामन अन्त्यद्वादश प्रकृतिगळु कळदुवपुदरिदं ।  
गुणस्थानगळु ७ अप्पुवु । मि व्यु ४ बंध १०५ । अ बं ३ ॥ सासा व्यु २५ । बंध १०१ । अ बं ७ ॥ ५  
मिश्र व्यु । ० । बंध ७४ । अ बं ३४ ॥ असं व्यु १० । बंध ७७ । अ बं ३१ ॥ देश व्यु ४ । बंध ६७ ।  
अ बं ४१ ॥ प्रम व्यु ६ बंध ६३ । अ बं ४५ ॥ अप्र व्यु १ । बंध ५९ । अ बं ४९ ॥ शुक्ललेख्येयोळु  
बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०४ अप्पुवेतंदोडे सासादनोळु शतारचतुष्टयमुं मिथ्यादृष्टियोळु एकेंद्रियादि  
अन्त्यद्वादशप्रकृतिगळु कळदोडे तावत्प्रमितगळपुवपुदरिदं । गुणस्थानगळु १३ रप्पुवलि मिथ्या-  
दृष्टियोळु व्यु ४ । बंध १०१ । अ बं ३ ॥ सासा व्यु २१ । बंध ९७ । अ बं ७ ॥ मिश्र व्यु ० । १०  
बंध ७४ । अ बं ३० ॥ असं व्यु १० । बंध ७७ । अ बं २७ ॥ देश व्यु ४ बंध ६७ । अ बं ३७ ॥  
प्रम व्यु ६ बंध ६३ । अ बं ४१ । अप्र व्यु १ । बंध ५९ । अ बं ४५ ॥ अप्र व्यु १ । बंध ५९ ।  
अ बं ४५ ॥ अपूर्व व्यु ३६ । बंध ५८ । अ बं ४६ ॥ अनि व्यु ५ । बंध २२ । अ बं ८२ ॥ सूक्ष्म व्यु  
१६ । बंध १७ । अ बं ८७ ॥ उप व्यु ० । बंध १ । अ बं १०३ ॥ क्षीण व्यु ० । बंध १ । अ बं १०३ ॥

सप्त । मि व्यु-७ । बं १०८ । अ ३ । सा-व्यु २५ । बं १०१ अ १० । मि व्यु-० । बं ७४ । अ ३७ । १५  
अ व्यु-१० । बं ७७ । अ ३४ । दे व्यु-४ । बं ६७ । अ ४४ । प्र व्यु-६ । बं ६३ । अ ४८ । अ व्यु-१ ।  
बं ५९ । अ ५२ । पद्मलेख्यायां बन्धयोग्य १०८, वामस्यान्तद्वादशानामभावात् । गुणस्थानानि ७ । मि  
व्यु-४ । बं १०५ । अ ३ । सा-व्यु २५ । बं १०१ । अ ७ । मि व्यु-० । बं ७४ । अ ३४ । अ व्यु १० ।  
बं ७७ । अ ३१ । दे व्यु-४ । बं ६७ । अ ४१ । प्र व्यु-६ । बं ६३ । अ ४५ । अ व्यु-१ । बं ५९ ।  
अ ४९ । शुक्ललेख्यायां बन्धयोग्यम् १०४ । सदरचतुष्कं मिथ्यादृष्ट्येकेन्द्रियाद्यन्त्यद्वादश च नहि । गुण- २०  
स्थानानि १३ । तत्र मि व्यु-४ । बं १०१ । अ ३ । सा व्यु-२१ । बं ९७ । अ ७ । मि व्यु-० । बं ७४ ।  
अ ३० । अ व्यु १० । बं ७७ । अ २७ । दे व्यु-४ बं ६७ । अ ३७ । प्र व्यु-६ । बं ६३ । अ ४१ । अ  
व्यु-१ । बं ५९ । अ ४५ । अ व्यु-३६ । बं ५८ । अ ४६ । अ व्यु-५ । बं २२ । अ ८२ । सू व्यु १६ ।

होते हैं । पद्मलेख्यामें बन्धयोग्य एक सौ आठ हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली  
प्रकृतियोंमें-से अन्तिम बारहका अभाव है । गुणस्थान सात होते हैं ।

२५

तेजोलेख्या बन्धयोग्य १११

पद्मलेख्या बन्धयोग्य १०८

| बं. व्यु. | मि. | सा. | मि. | असं. | दे. | प्र. | अप्र. | मि० | सा. | मि. | असं. | दे. | प्र. | अप्र. |
|-----------|-----|-----|-----|------|-----|------|-------|-----|-----|-----|------|-----|------|-------|
|           | ७   | २५  | ०   | १०   | ४   | ६    | १     | ४   | २५  | ०   | १०   | ४   | ६    | १     |
| बन्ध      | १०८ | १०१ | ७४  | ७७   | ६७  | ६३   | ५९    | १०५ | १०१ | ७४  | ७७   | ६७  | ६३   | ५९    |
| अबन्ध     | ३   | १०  | ३७  | ३४   | ४४  | ४८   | ५२    | ३   | ७   | ३४  | ३१   | ४१  | ४५   | ४९    |

शुक्ललेख्यामें बन्धयोग्य एक सौ चार । क्योंकि शतारचतुष्क और मिथ्यादृष्टिमें  
व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंमें-से अन्तकी एकेन्द्रिय आदि बारह नहीं होती । गुणस्थान  
तेरह हैं । रचना इस प्रकार है—





मसंयतादिचतुर्गुणस्थानंगलप्पुवु—

| प्रथ० | सम्यक्त्व |    |    |
|-------|-----------|----|----|
| अ     | ०         | ५८ | १९ |
| प्र   | ६         | ६२ | १५ |
| दे    | ४         | ६६ | ११ |
| अ     | ९         | ७५ | २  |

ई रचनेयं सुगममेतदोडे प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं तीर्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमुंटे'बी पक्ष-  
दोळु असंयतादिगुणस्थानत्रयदोळु तीर्थबंधमुमप्रमत्तगुणस्थानदोळु तीर्थमुमाहारकद्वितयमुं बंध-  
मक्कुमे'बिनिते विशेषमपुर्दरिदं ॥ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळं बंधयोग्य प्रकृतिगळु ७७ अप्पुवु ।  
गुणस्थानंगळु ८ पुवलि श्रेण्यवरोहणाऽसंयतंगे बंधव्युच्छित्तिगळु ९ । बं ७५ । अबंधप्रकृतिगळा-  
हार २ श्रेण्यवरोहण देशसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति ४ । बं ६६ । अ ११ श्रेण्यवरोहणप्रमत्तसंयतंगे  
बंधव्युच्छित्ति ६ । बं ६२ । अ १५ ॥

प्रथम० सम्यक्त्वं

|     |   |    |    |
|-----|---|----|----|
| अ   | ० | ५८ | १९ |
| प्र | ६ | ६२ | १५ |
| दे  | ४ | ६६ | ११ |
| अ   | ९ | ७५ | २  |

अत्र तीर्थाहारकद्विकबन्धपक्षे असंयतादित्रये तीर्थस्य बन्धः, अप्रमत्ते तीर्थाहारकद्विकयोश्च बन्धोऽस्ति ।  
द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेऽपि बन्धयोग्याः ७७ । गुणस्थानानि ८ । तत्र श्रेण्यवरोहकासंयते व्यु ९ । बं ७५ ।  
अबन्धः आहारकद्वयम् । देशसंयते व्यु ४ । बं ६६ । अ ११ । प्रमत्ते व्यु ६ । बं ६२ । अ १५ । आरोहका-  
रोहकाप्रमत्ते, व्यु ० । बं ५८ । अ १९ । अपूर्वकरणे व्यु ३६ । बं ५८ । अ १९ । अनिवृत्तिकरणे व्यु ५ । १०  
बं २२ । अ ५५ । सूक्ष्मसांपराये व्यु १६ । बं १७ । अ ६० । उपशांतकषाये व्यु ० । बं १ । अ ७६ । अत्र ।

प्रथमोपश. ७७

द्वितीयोपश. ७७

| असं. वे. प्र. अप्र. |    |    |       |
|---------------------|----|----|-------|
| व्युच्छित्ति        | ९  | ४  | ०     |
| बन्ध                | ७५ | ६६ | ६२ ५८ |
| अबन्ध               | २  | ११ | १५ १९ |

| असं. वे. प्र. अप्र. अपू. अनि. सू. उ. |    |    |    |    |             |
|--------------------------------------|----|----|----|----|-------------|
|                                      | ९  | ४  | ६  | ०  | ३६ ५ १६ १   |
|                                      | ७५ | ६६ | ६२ | ५८ | ५८ २२ १७ १  |
|                                      | २  | ११ | १५ | १९ | १९ ५५ ६० ७६ |

असंयत और देशसंयतमें जो प्रमत्तमें श्रेणिसे उतरकर नीचे आता है उसीकी अपेक्षा  
द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है । तथा प्रमत्तादिमें श्रेणी चढ़ने व उतरनेकी अपेक्षा द्वितीयो-  
पशम सम्यक्त्व पाया जाता है इससे इसमें गुणस्थान आठ होते हैं ।

शंका—जब प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें आयुबन्ध नहीं होता तो १५

- श्रेण्यारोहकारोहकाप्रमत्तसंयतंगे बंध व्यु ० । बंध ५८ । अ १९ ॥ श्रेण्यारोहकाव-  
 रोहकापूर्वकरणगे बंधव्युच्छित्ति ३६ । बंध ५८ । अ १९ ॥ श्रेण्यारोहकावरोहकानिवृत्तिकरणगे  
 बंधव्युच्छित्ति ५ । बंध २२ । अ ५५ ॥ आरोहकावरोहकसूक्ष्मसांपरायंगे बंधव्युच्छित्ति १६ । बंध  
 १७ । अ ६० ॥ उपशांतकषायंगे बंधव्युच्छित्ति १० । बंध ११ । अ ७६ ॥ ई प्रथमद्वितीयोपशम-  
 ५ सम्यक्त्वद्वयदोळमायुर्बन्धमिल्लपुदरिदंमारोहकापूर्वकरणमरणरहितप्रथमभागमेंब विशेषणमन-  
 त्यंक्रमवकुमेदेनल्वेडि येकेंदोडे प्राग्बद्धदेवायुष्यनप्प सातिशयाप्रमत्तसंयतंगे श्रेण्यारोहणं संभविमुगु-  
 मप्पुदरिदं ॥ प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळ प्राग्बद्धायुष्यनादोडं तत्सम्यक्त्वकालमंतर्मुहूर्तपर्यंतं मरणं  
 संभविमुदु ॥ क्षायोपशमिकसम्यक्त्वदोळ बंधयोग्यप्रकृतिगळ ७९ अप्पुवेंतेदोडे मिथ्यादृष्टिसासादन-  
 गुणस्थानद्वयदोळ ४१ प्रकृतिगळ ७९ दुवप्पुदरिदं तावन्मात्रंगळेयप्पुवु । गुणस्थानंगळुमसंयतादि-  
 १० चतुर्गुणस्थानंगळेयप्पुवेकेंदोडे उपशमश्रेणियोळुपशममुं क्षायिकमुं मेणु क्षपकश्रेणियोळु क्षायिक-  
 सम्यक्त्वमेयवकुमेंब नियममप्पुदरिदं ।—

वेदकसम्यक्त्व

|     |    |    |    |
|-----|----|----|----|
| अ   | १  | ५९ | २० |
| प्र | ६  | ६३ | १६ |
| दे  | ४  | ६७ | १२ |
| अ   | १० | ७७ | २आ |

- प्रथमद्वितीयोपशमसम्यक्त्वयोरायुरवन्धात् आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागे मरणो न इति विशेषोऽनर्थकः ? इति  
 न वाच्यं प्राग्बद्धदेवायुष्कस्यापि सातिशयाप्रमत्तस्य श्रेण्यारोहणसंभवात् । प्रथमोपशमसम्यक्त्वे तु प्राग्-  
 बद्धायुष्कस्यापि तत्कालान्तर्मुहूर्ते मरणसंभवात् । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्य-  
 १५ संभवात् बन्धयोग्या ७९ । गुणस्थानानि असंयतादीनि चत्वारि एव । कुतः ? उपशमश्रेण्यां औपशमिकं क्षायिकं  
 च, क्षपकश्रेण्यां क्षायिकमेव सम्यक्त्वमिति नियमात् ।

वेदकसम्यक्त्वं ७९

|     |    |    |    |
|-----|----|----|----|
| अ   | १  | ५९ | २० |
| प्र | ६  | ६३ | १६ |
| दे  | ४  | ६७ | १२ |
| अ   | १० | ६७ | २आ |

श्रेणि चढ़ते हुए अपूर्वकरणके प्रथम भागके साथ 'मरणूण' मरणसे रहित विशेषण क्यों  
 लगाया ? यह विशेषण व्यर्थ क्यों नहीं है ?

- समाधान—ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि जिसने पहले देवायुका बन्ध किया है  
 २० ऐसा सातिशय अप्रमत्त भी श्रेणि पर आरोहण कर सकता है । किन्तु प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें  
 और श्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथमभागमें जिसने पहले देवायुका  
 बन्ध किया है उसका भी मरण नहीं होता अन्यत्र उपशमश्रेणिमें मरण हो सकता है ।

- क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें होनेवाली व्युच्छित्ति प्रकृतियों-  
 का अभाव होनेसे बन्धयोग्य उनासी हैं । गुणस्थान असंयत आदि चार ही होते हैं क्योंकि  
 २५ उपशम श्रेणिमें औपशमिक क्षायिक और क्षपकश्रेणिमें क्षायिक ही सम्यक्त्व होनेका नियम

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे अप्रमत्तनोळु तोर्थ्यमुमाहारकद्वयमुं बंधमक्कुमेंबिनिते विशेष-  
मप्युर्दरिदं ॥

क्षायिकसम्यक्त्वक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७९ । अप्युवल्लियुं ४१ प्रकृतिगळुक्केदुवप्युर्दरिदं  
तावन्मात्रंगळेयप्युवप्युर्दरिदं । गुणस्थानंगळुमसंयताद्ययोगिकेवल्लिगुणस्थानावसानमाद गुणस्थानंगळु  
११ अप्युवु ॥ गुणस्थानातीतरप्य सिद्धपरमेष्ठिगळोळं क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुं । असं व्यु १० । ५  
बं ७७ । अ २ आहारकं ॥ देशसंयतनल्लि व्यु ४ बं ६७ । अ १२ ॥ प्रम व्यु ६ । बं ६३ । अ १६ ॥  
अप्रमत्त व्यु १ बं ५९ अ २० ॥ एकंदोडाहारकद्वयं बंधदोळकूडिदुवप्युर्दरिदं ॥ अपूर्वकरणंगे बंध-  
व्युच्छित्ति ३६ बं ५८ । अ २१ ॥ अनि व्यु ५ । बं २२ । अ ५७ । सूक्ष्म व्यु १६ । बं १७ । अं ६२ ॥  
उप व्यु ० । बं १ । अवं ७८ ॥ क्षीणकषाय । व्यु ० । बं १ । अ ७८ ॥ सयोग व्यु १ । बं १ ।  
अवं ७८ ॥ अयोगिकेवल्लि भट्टारकंगे व्यु ० । बं ० । अवं ७९ ॥ मिथ्यारुचिगळुगे व्यु १६ । बं १०  
११७ । अ ३ ॥ सासादनरुचिगळुगे व्यु २५ । बं १०१ । अ १९ ॥ मिश्ररुचिगळुगे व्यु ० ।  
बं ७४ । अ ४६ ॥ संज्ञिसंज्ञिमार्गणाद्वयदोळु संज्ञिमार्गणोयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० ।  
गुणस्थानंगळु १२ । इल्लि बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु सामान्यगुणस्थानदोळु पेळदंते वक्तव्य-  
मप्युवु ॥ असंज्ञिमार्गणोयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७ । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुं सासादनगुण-

अत्राप्रमत्ते तीर्थाहारकद्विकयोर्बन्धोऽस्ति । क्षायिकसम्यक्त्वेऽपि सैव ७९ । बन्धयोग्यगुणस्थानानि  
असंयताद्योगान्तानि ११ । सिद्धा अपि । अ व्यु १० । बं ७७ । अ २ आहारकद्वयं । दे व्यु ४ । बं ६७ । अ  
१२ । प्र व्यु ६ । बं ६३ । अ-१६ । अ व्यु १ । बं ५९ । अ २० । आहारकद्वयस्य बन्धे मिलितत्वात्  
अपूर्वकरणस्य व्यु ३६ । बं ५८ । अ २१ । अ व्यु ५ । बं २२ । अ ५७ । सू व्यु १६ । बं १७ । अ ६२ ।  
उ व्यु ० । बं १ । अ ७८ । क्षी व्यु ० । बं १ । अ ७८ । स व्यु १ । बं १ । अ ७८ । अ व्यु ० । बं ० ।  
अ ७९ । मिथ्यारुचीनां व्यु १६ । बं ११७ । अ ३ । सासादनरुचीनां व्यु २५ । बं १०१ । अ १९ । मिश्र- २०  
रुचीनां व्यु ० । बं ७४ । अ ४६ । संज्ञिमार्गणायां बन्धयोग्यं १२० गुणस्थानानि १२ बन्धाबन्धव्युच्छित्तयः

है । वेदक सम्यक्त्वमें अप्रमत्त अवस्थामें तीर्थंकर आहारकद्विकका बन्ध होता है और  
क्षायिक सम्यक्त्वमें भी होता है । अतः क्षायिक सम्यक्त्वमें भी बन्धयोग्य उनासी हैं और  
गुणस्थान असंयतादि ग्यारह हैं ।

वेदक सम्यक्त्व ७९

क्षायिक सम्यक्त्व ७९

|              | असं. | दे. | प्र. | अप्र. | अ. | दे. | प्र. | अप्र. | अपू. | अनि. | सू. | उ. | क्षी. | स. | अयो. |
|--------------|------|-----|------|-------|----|-----|------|-------|------|------|-----|----|-------|----|------|
| व्युच्छित्ति | १०   | ४   | ६    | १     | १० | ४   | ६    | १     | ३६   | ५    | १६  | ०  | ०     | १  | ०    |
| बन्ध         | ७७   | ६७  | ६३   | ५९    | ७७ | ६७  | ६३   | ५९    | ५८   | २२   | १७  | १  | १     | १  | ०    |
| अबन्ध        | २    | १२  | १६   | २०    | २  | १२  | १६   | २०    | २१   | ५७   | ६२  | ७८ | ७८    | ७८ | ७९   |

मिथ्यादृष्टिके व्युच्छित्ति सोलह, बन्ध एक सौ सतरह और अबन्ध तीनका है । सम्य- ३०  
ग्मिथ्यादृष्टिके व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध चौहत्तर और अबन्ध छियालीसका है । सासादन  
सम्यग्दृष्टिके व्युच्छित्ति पच्चीस, बन्ध एक सौ एक और अबन्ध उन्नीस है ।

संज्ञिमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं । गुणस्थान बारह हैं । बन्ध, अबन्ध और

स्थानमुमप्यवल्लि सासादननोळायुबन्धमित्लेके बोडे मिश्रकाययोगियपुर्वरिवं । तत्कालबोळे तदगुणस्थानकालं तोवुं मिथ्यादृष्टियक्कुमपुर्वरिवमायुश्चतुष्टयबन्ध मिथ्यादृष्टियोळे व्युच्छित्ति-यक्कुं—

| असंज्ञिगे |     |    |  |
|-----------|-----|----|--|
| सा २९     | ९८  | १९ |  |
| मि १९     | ११७ | ०  |  |

- आहारानाहारमार्गणा द्वयबोळु आहारमार्गणेयोळु बन्धयोग्यप्रकृतिगळु १२० । गुणस्था-  
 ५ नंगळु १३ । यिल्लि बन्धव्युच्छित्ति बन्धाबन्धभेदगळु साधारणगुणस्थानबोळु पेळ्व क्रममेयपुवु ॥  
 अनाहारमार्गणेयोळु बन्धयोग्यप्रकृतिगळु ११२ अपुवे तेंबोडे कम्मेव अणाहारे ये वितु कार्मण-  
 काययोगबोळु पेळ्वंतेयक्कुमा कार्मणकाययोगमुं औदारिकमिश्रकाययोगक्के पेळ्वंतेयक्कुं ।  
 तिर्यग्मनुष्यायुद्वयमुं रहितमपुर्वरिवं ॥ ओराळे वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं बी  
 षट्प्रकृतिगळु ६ मिन्तु ८ प्रकृतिगळुळबोडे तावन्मात्रंगळे यपुवपुर्वरिवं गुणस्थानंगळु ५ ।

- १० सामान्यवत् । असंज्ञिमार्गणायां बन्धयोग्यम् ११७ । गुणस्थानद्वयम् । तत्र सासादने मिश्रकाययोगित्वात्  
 मिथ्यादृष्टावेव आयुश्चतुष्टयस्य व्युच्छित्तिः ।

असंज्ञिः ११७

|    |    |     |    |
|----|----|-----|----|
| सा | २९ | ९८  | १९ |
| मि | १९ | ११७ | ०  |

आहारमार्गणायां बन्धयोग्याः १२० । गुणस्थानानि १३ । बन्धाबन्धव्युच्छित्तयः साधारणवत् ।  
 अनाहारमार्गणायां बन्धयोग्या ११२ । कुतः ? 'कम्मेव अणाहारे' कार्मणे च औदारिकमिश्रवदिति तिर्यग्-  
 मनुष्यायुको न । 'ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं' इत्यष्टानामभावात् । गुणस्थानानि ५ ।

- १५ व्युच्छित्ति सामान्य गुणस्थानकी तरह जानना । असंज्ञिमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ सतरह ।  
 गुणस्थान दो । सासादनमें मिश्रकाययोग होनेसे मिथ्यादृष्टिमें ही चारों आयुकी बन्ध-  
 व्युच्छित्ति होती है । आहारमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस । गुणस्थान तेरह । बन्ध,  
 अबन्ध और व्युच्छित्ति सामान्यगुणस्थानवत् जानना । अनाहार मार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ  
 बारह हैं क्योंकि कार्मण काययोगकी तरह कहा है और कार्मणमें औदारिक मिश्रकी तरह  
 २० तिर्यच्चायु मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता तथा औदारिक मिश्रमें देवायु नरकायु नरकद्विक  
 आहारकद्विकका अभाव है । इस तरह आठका बन्ध नहीं होता । गुणस्थान पाँच होते हैं ।

असंज्ञी ११७

|              | मि. | सा. |
|--------------|-----|-----|
| व्युच्छित्ति | ०   | २९  |
| बन्ध         | ११७ | ९८  |
| अबन्ध        | १९  | १९  |

अनाहार ११२

| मि. | सा. | असं. | स.  | अथो. |
|-----|-----|------|-----|------|
| १३  | २४  | ७४   | १   | ०    |
| १०७ | ९४  | ७५   | १   | ०    |
| ५   | १८  | ३७   | १११ | ११२  |

| अनाहारमार्गं० | सं०      |
|---------------|----------|
| अ             | ०        |
| स             | १        |
| अ             | ९।६५ ७५  |
| सा            | २४ ९४    |
| मि            | १३ १०७ ५ |

ई रचनेयं सुगममेतदोडे मिथ्यादृष्टियोळु अबंधंगळागिहं तीर्थमुं सुरचतुष्कमुमसंयतसम्यग्-  
दृष्टियोळु बंधमुट्पुर्दारिदमा प्रकृतिपंचकमं कूडिदोडे बंधप्रकृतिगळु ७५। अबंधप्रकृतिगळु ३७  
अप्पुवेबिनिते विशेषमप्पुर्दारिदं बंधव्युच्छित्तिगळु णवच्छिदी अयदे एंदु ९ प्रकृतिगळुप्पुवु। उवरिम  
पणसट्टी वि य येदितु देशसंयतादि क्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानव्युच्छित्तिगळु ६५ अन्तु  
७४ प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळुगुत्तिरलु एक्कं सादं सजोगमि एंदितु सयोगकेवळिगळोळु सातमोदे ५  
बंधमुं व्युच्छित्तिपुमवकुमबंधप्रकृतिगळु १११। अयोगिकेवळिगळोळु व्युच्छित्तिबंधंगळु शून्यंगळु।  
बंधप्रकृतिगळु ११२। इन्तु वेदमार्गणे मोवल्गोडनाहारमार्गणे पय्यंतं बंधस्यांतोऽनंतश्च।  
बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिविशेषंगळुक्तप्रकारविदं भाविसत्पडुवु ॥

अनंतरं मूलप्रकृतिगळो साद्यादिध्रुवाध्रुवबंधसंभवासंभवमं पेळदपर।

सादिअणादी ध्रुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मलक्कस्स।

तदियो सादि य सेसो अणादि ध्रुव सेसयो आळु ॥१२२॥

सादिरनादि ध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तु कम्मवट्कस्य। तृतीयं सादि शेषमनादि ध्रुवशेषकमायुः ॥

अनाहारमा०-११२

|    |      |     |     |
|----|------|-----|-----|
| अ  | ०    | ०   | ११२ |
| स  | १    | १   | १११ |
| अ  | ९-६५ | ७५  | ३७  |
| सा | २४   | ९४  | १८  |
| मि | १३   | १०७ | ५   |

इयं रचना सुगमा। कुतः? मिथ्यादृष्टौ अवन्धस्थिततीर्थसुरचतुष्कयोरसंयते बन्धः, इत्येतावत् एव  
विशेषात्। व्युच्छित्तिः 'णवच्छिदी अयदे' इति नव। तथा 'उवरिमपणसट्टीविय' एवं ७४। 'एक्कं सादं  
सजोगिमिह' बध्यते व्युच्छित्यते च। अवन्धः-१११। अयोगे व्युच्छित्तिः बन्धश्च शून्यम्। अवन्धः ११२। १५  
एवं वेदमार्गणाद्याहारमार्गणापर्यन्तं बन्धस्यान्तो व्युच्छित्तिः। अनन्तः-बन्धः। चशब्दादबन्धशब्दोक्तः  
॥१२०-१२१॥ अथ मूलप्रकृतीनां साद्यादिबन्धभेदान् विशेषयति—

अनाहारकमे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे तीर्थकर और सुरचतुष्कका बन्ध न होकर  
असंयतमे होता है इतना ही विशेष है। असंयतमे अपनी व्युच्छित्ति नौ तथा ऊपर के  
गुणस्थानोंकी पैसठ मिलकर चौहत्तर होती है। सयोगीमें एक साता ही बँधती है उसीकी २०  
व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार वेदमार्गणासे आहारमार्गणा पर्यन्त बन्धका अन्त अर्थात्  
व्युच्छित्ति और बन्धका अनन्त अर्थात् बन्ध तथा 'च' शब्दसे अवन्ध कहा ॥१२०-१२१॥

आगे मूल प्रकृतियोंके सादि आदि बन्धके भेदोंको कहते हैं—

- सादिवन्धमं दुमनादिवन्धमे दुं ध्रुवबन्धमे दुमध्रुवबन्धमे दितु प्रकृतिबन्धं चतुर्विधमवकुमवरोळु  
ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं मोहनीयं नामं गोत्रमन्तरायमेव मूलप्रकृतिषट्कवके प्रत्येकं साधनावि-  
धुवाध्रुवबन्धचतुष्टयमुमवकुं । तृतीयं वेदनीयं । सादिविशेषं सादिवन्धदत्तणिदं शेषानादिध्रुव अध्रुवबन्ध-  
भेदगळनुळुवकुं । एतदोडे सातवेदनीयापेक्षेयिदं वेदनीयवके सादित्वमित्तेके दोडे गुणप्रतिपन्न-  
५ रोलमुपशमश्रेण्यारोहणावरोहणवोळं सातवेदनीयबन्धमविच्छिन्नरूपविदं सयोगगुणस्थानपर्यंतं  
बन्धमुदस्पुर्दिरवं । अनादिध्रुवशेषमायुः आयुष्यमनादिध्रुवबन्धद्वयदत्तणिदं शेषसाधध्रुवबन्धगळनुळु-  
वकुमेके दोडे उत्तरभवदाद्युष्यमनोम्मे मोदल्लोडु कट्टुगुमस्पुर्दिरवं । सादिवन्धमनुळुदुमवकुं  
अंतर्मुहूर्तकालावसानबन्धमनुळुदुमस्पुर्दिरवं अध्रुवबन्धमुमनुळुदुमवकुं—  
णा । वं । वे । मो । आ । ना । गो । अं ।

४ । ४ । ३ । ४ । ० । ४ । ४ । ४  
१

अनंतरं सादिवन्धाविगळो लक्षणमं पेळवपर ।

- १० सादी अवन्धबन्धे सेटि अणारूढगे अणादी हु ।  
अन्भवसिद्धमि ध्रुवो भवसिद्धे अद्ध्रुवो बन्धो ॥१२३॥

सादिवन्धबन्धे श्रेण्यानाल्ले अनाविस्तु । अभवसिद्धे ध्रुवो भवसिद्धेऽध्रुवो बन्धः ॥

सादिः सादिवन्धमे बुहु । अवन्धबन्धे कट्टुविदुं कट्टुवल्लियवकुमे ते दोडे इवकुदाहरणं तोरल्प-  
डुगुं । ज्ञानावरणीयपंचकमं सूक्ष्मसांपरायं तस्य गुणस्थानचरमसमयवोळकट्टि उपशान्तकषायनागि

- १५ सादिः अनादिः ध्रुवः अध्रुवश्चेति प्रकृतिबन्धश्चतुर्धा । तत्र ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयनामगोत्रान्तरा-  
याणां प्रत्येकं चतुर्धा बन्धो भवति । वेदनीयं सादितः शेषत्रिविधो बन्धो भवति । सातापेक्षया तस्य गुणप्रति-  
पन्नेषु उपशमश्रेण्यारोहणावरोहणे च निरन्तरबन्धेन सादित्वासंभवात् । आयुः अनादिध्रुवाम्यां शेषद्विविध-  
बन्धो भवति एकवारादिना बन्धेन सादित्वात् अन्तर्मुहूर्तावसाने च अध्रुवत्वात् ॥१२२॥ अथ तान् बन्धान्  
लक्षयति—

- २० सादिवन्धः अवन्धपतितस्य कर्मणः पुनर्बन्धे सति स्यात्, यथा ज्ञानावरणपञ्चकस्य उपशान्तकषायाद-

- प्रकृतिबन्धके चार भेद हैं—सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव । ज्ञानावरण, दर्शनावरण,  
मोहनीय, नाम, गोत्र, अन्तराय इनमें-से प्रत्येकका बन्ध चार प्रकार है । वेदनीयकर्मका  
सादिवन्ध नहीं है, शेष तीन बन्ध होते हैं । क्योंकि उपरके गुणस्थानोंमें वर्तमान जीवोंके  
उपशम श्रेणि आदिपर चढ़ने और उतरनेपर साताकी अपेक्षा वेदनीयका निरन्तर बन्ध  
२५ होता रहता है अतः वेदनीयका सादिवन्ध सम्भव नहीं है । आयुका अनादि और ध्रुवके  
बिना शेष दो बन्ध होते हैं क्योंकि आयु एक पर्यायमें एक बारसे आठ बार तक बँधती है  
अतः सादि है और आयुका बन्ध एक बारमें अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त ही होता है । अतः  
अध्रुव है ॥१२२॥

उन बन्धोंके लक्षण कहते हैं—

- ३० जिस कर्मका अवन्ध होकर बन्ध होता है उसके बन्धको सादि कहते हैं । जैसे  
ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त होता है अतः उपशान्त कषायमें

तद्गुणस्थानदोळंतरिसिद्ध तत्प्रकृतिबंधमनवरोहणदोळ सूक्ष्मसांपरायणागि कट्टिदोडल्लि साविबंध-  
मक्कुमपुदरिंव । श्रेण्यानाड्डे यत्कर्म यस्मिन्गुणस्थाने व्युच्छिद्यते तदनंतरोपरितनगुणस्थानं श्रेणिः  
एद्विस्तु तत्सूक्ष्मसांपरायचरमसमयवर्त्तणिवं केळगे द्वितीयादि समयंगळोळ नादिबंधमें बुदक्कु । तु  
मत्ते । अभव्यसिद्धे ध्रुवः अभव्यजीवनोळ ध्रुवबंधमक्कुमेंतेंदोडादिमध्यावसानरहितमागि ज्ञाना-  
वरणादि निष्प्रतिपक्षकर्मंगळगे निरंतरबंधमुंठपुदरिंव । भव्यसिद्धे भव्यजीवं गळोळ अध्रुवबंध- ५  
मक्कुमेंतेंदोडे ज्ञानावरणादिकर्मंगळगे क्षपकश्रेण्यारोहणदोळमुपशमश्रेण्यारोहणदोळं सूक्ष्मसांप-  
रायनोळ बंधव्युच्छित्तिगळगि मेलणपशांतकषायादिगुणस्थानंगळोळ बंधरहितत्वमागुत्तं विरलु  
तद्ज्ञानावरणादिबंधकध्रुवत्वमक्कुमपुदरिंव ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळोळ ध्रुवप्रकृतिगळगे साद्यादिचतुर्विधबंधमुमनध्रुवप्रकृतिगळगे  
साद्याध्रुवद्विविधबंधमेयक्कुमेंबुवं पेळवपयः—

१०

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवणचऊ ।

सत्तेतालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा ॥१२४॥

घातित्रयमिथ्यात्वकषायाः भयतेजोऽगुरुद्विकनिर्म्माणवर्णवत्त्वारि । सप्तचत्वारिंशदधुवाणां  
चतुर्धा शेषाणां तु द्विधा ॥

घातित्रय ज्ञानावरण पचकमुं ५ दर्शनावरणनवकमुं ९ अंतरायपंचकमुं ५ । मिथ्यात्वप्रकृतिध्रुं १५  
१ । षोडशकषायंगळं १६ । भयजुगुप्ताद्वयमुं २ तैजसकर्मणशरीरद्वयमुं २ अगुरुलघूपधातद्वयमुं २

वतरतः सूक्ष्मसांपराये । यत्कर्म यस्मिन् गुणस्थाने व्युच्छिद्यते तदनन्तरोपरितनगुणस्थानं श्रेणिः तत्रानाल्ले  
अनादिबन्धः स्यात्, यथा सूक्ष्मसांपरायचरमसमयादधस्तत्पञ्चकस्य । तु-पुनः अभव्यसिद्धे ध्रुवबन्धो भवति  
निष्प्रतिपक्षाणां बन्धस्य तत्रानाद्यनन्तत्वात् । भव्यसिद्धे अध्रुवबन्धो भवति । सूक्ष्मसांपराये बन्धस्य व्युच्छित्या  
तत्पञ्चकादीनामिव ॥१२३॥ अद्योत्तरप्रकृतिष्वह—

२०

ज्ञानदर्शनावरणांतरायवेकान्निविशतिः, मिथ्यात्वं, षोडशकषायाः, भयजुगुप्ते तैजसकर्मणे अगुरु-

जानेपर उनके बन्धका अभाव हो जाता है और उपशान्त कषायसे उतरकर जो सूक्ष्म-  
साम्परायमें आता है उसके पुनः उनका बन्ध होता है वह बन्ध सादि है । जिस कर्मकी  
जिस गुणस्थानमें व्युच्छित्ति होती है उसके अनन्तरवर्ती ऊपरका गुणस्थान श्रेणि कहाता है  
उसपर जो नहीं चढ़ा है उसका बन्ध अनादि है । जैसे सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयसे २५  
नीचे ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध अनादि है । अभव्य जीवके ध्रुवबन्ध होता है  
क्योंकि जो प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी प्रकृतियोंसे रहित हैं उनका बन्ध अभव्यके अनादि अनन्त  
होता है । भव्यजीवके अध्रुव बन्ध होता है जैसे सूक्ष्म साम्परायमें ज्ञानावरणकी पाँच  
प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है ॥१२३॥

उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी उन्नीस, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय,

३०



निम्माणनामसुं १ वर्णचतुष्कसुं ४ मे'दिन्तु ४७ लु ध्रुव प्रकृतिगळो साधनादि ध्रुवाध्रुवबंधचतुष्टयमु-  
 सककुं । शेषाणां शेषवेदनीयद्वयसुं २ मोहनीयसप्तकमु ७ । आयुश्चतुष्टयसुं ४ नामवोळु गतिचतुष्टयसुं  
 ४ जातिपंचकसुं ५ औदारिकद्वयसुं २ वैक्रियिकद्वयसुं २ आहारकद्वयसुं २ संस्थानषट्कसुं ६ संहनन-  
 षट्कसुं । आनुपूर्व्यचतुष्टयसुं ४ । परघातसुं १ आतपसुं १ उद्योतसुं १ उच्छ्वाससुं १ विहायोगति-  
 ५ द्वयसुं २ त्रसद्वयसुं २ बादरद्वयसुं २ पर्याप्तद्वयसुं २ प्रत्येकसाधारणशरीरद्वयसुं २ स्थिरद्वयसुं २  
 शुभद्वयसुं २ सुभगद्वयसुं २ सुस्वरद्वयसुं २ आदेयद्वयसुं २ यशस्कीर्तिद्वयसुं २ तीर्थसुमे'दिन्तु ५८  
 गोत्रद्वयसुं २ मिन्तु ७३ अध्रुवप्रकृतिगळो साधनादि ध्रुवाध्रुवबंधद्वयमककुमी प्रकृतिगळोळु अप्रतिपक्षं-  
 गळे'दु' सप्रतिपक्षंगळे'दु' द्विप्रकारमप्पुवे'दु पेळदपर :—

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सन्व आऊणि ।

१० अप्पडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी ॥१२५॥

शेषे तीर्थमाहारद्वयं परघातचतुष्कं सर्वायुष्यप्रतिपक्षाणि शेषाणि सप्रतिपक्षाणि खलु  
 द्वाषष्टिः ॥

ध्रुवप्रकृतिगळु ४७ । कळेव शेषप्रकृतिगळु ७३ । रवरोळु तीर्थसुमाहारद्वयसुं परघात-  
 चतुष्कमायुष्यचतुष्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगळु अप्रतिपक्षंगळप्पुवुळिद सातद्वयसुं २ स्त्रीपुंनपुंसक-  
 १५ वेवत्रयसुं ३ हास्यद्विकमु २ सरतिद्विकमुं २ गतिचतुष्टयसुं ४ जातिपंचकसुं ५ औदारिकद्विकसुं २

लघूपघातो निर्माणं वर्णचतुष्कं चेति सप्तचत्वारिंशदध्रुवाणां चतुर्धा बन्धो भवति । शेषाणां वेदनीयद्वयमोहनीय-  
 सप्तकायुश्चतुष्कगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्वयवैक्रियिकद्वयाहारकद्वयसंस्थानषट्कसंहननषट्कानुपूर्व्यचतुष्क -  
 परघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतिद्वयत्रसद्वयबादरद्वयपर्याप्तद्वयप्रत्येकद्वयस्थिरद्वय - शुभद्वयसुभगद्वयसुस्वरद्वय -  
 देयद्वययशस्कीर्तिद्वयतीर्थकरगोत्रद्वयानां त्रिसप्तत्यध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धो भवतः ॥१२४॥ एतासु अप्रतिपक्षाः

२० सप्रतिपक्षाश्चेति भिनन्ति—

ध्रुवेभ्यः शेषत्रिसप्तत्या तीर्थमाहारद्वयं परघातचतुष्कं आयुश्चतुष्कं चेत्येकादश अप्रतिपक्षा भवन्ति

जुगुप्सा, तैजस, कर्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णचतुष्क इन सैंतालीस ध्रुव  
 प्रकृतियोंका चारों प्रकारका बन्ध होता है । शेष वेदनीय दो, मोहनीयकी सात, चार आयु,  
 चार गति, पाँच जाति, औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा इनके अंगोपांग इस  
 २५ तरह दो-दो, छह संस्थान, छह संहनन, चार अनुपूर्वी, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, दो  
 विहायोगति, त्रस स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर,  
 शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, तीर्थकर  
 दो गोत्र इन तिहत्तर अध्रुव प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव बन्ध होता है ॥१२४॥

विशेषार्थ—जबतक व्युच्छित्ति नहीं होती तबतक ४७ प्रकृतियाँ प्रतिसमय बँधती हैं ।  
 ३० इसीसे इन्हें ध्रुव कहा है । शेष ७३ का बन्ध कभी होता है कभी नहीं होता । अतः इन्हें  
 अध्रुव कहा है ।

आगे इनमें अप्रतिपक्ष और सप्रतिपक्ष भेद करते हैं—

ध्रुव प्रकृतियोंसे शेष तिहत्तर प्रकृतियोंमें तीर्थकर, आहारकद्विक, चार आयु, परघात

वैक्रियिकद्वयमुं २ । संस्थानषट्कमुं ६ संहननषट्कमुं ६ । विहायोगतिद्वयमुं २ त्रसद्वयमुं २ बादर-  
द्वयमुं २ पर्णपत्रद्वयमुं २ प्रत्येकशरीरद्वयमुं २ स्थिरद्वयमुं २ शुभद्वयमुं २ सुभगद्वयमुं २ सुस्वर-  
द्वयमुं २ । आवेयद्वयमुं २ यशस्कीर्त्तिद्वयमुं २ गोत्रद्वयमुं २ आनुपूर्व्यचतुष्टयमुं ४ मित्तु द्विषष्टि  
प्रकृतिगळु ६२ सप्रतिपक्षगळुपुवनन्तरमी शेषाध्रुवप्रकृतिगळु ७३ वकं साद्यध्रुवबंधकुपपतियं  
तोर्विपहः—

अवरो भिण्णमुहुतो तित्थाहाराण सव्वआऊणं ।

समओ छावट्ठीणं बंधो तम्हा दुधा सेसा ॥१२६॥

अवरो भिण्णमुहुतस्तोर्थाहाराणां सर्वायुषां समयः षट्षष्टीनां बंधस्तस्माद्विधा शेषा ॥

तीर्थंकरनामकर्मवकमाहारद्वयवकं सर्वायुष्यंगळगमिन्तु ७ प्रकृतिगळगे जघन्यदिवं  
निरन्तरबंधाद्धे अंतर्मुहुतकालमवकुं २७ । शेषषट्षष्टिप्रकृतिगळगे ६६ जघन्यदिवं बंधकालमेक- १०  
समयमेयवकुमदु कारणमागि ई शेष ७३ प्रकृतिगळग ध्रुवंगळगे साद्यध्रुवबंधद्वितयं सिद्धमादुदु ।  
यितु प्रकृतिबंधं समाप्तमादुदु ।

शेषाः द्वाषष्टिः सप्रतिपक्षा भवन्ति । प्रकृतिप्रदेशबन्धनिबन्धनयोगस्थानानां चतसृभिः स्थित्यनुभागबन्धनिबन्धन-  
तदध्यवसायानां षड्भिश्च वृद्धिहानिभिः परिवर्तनेन सातद्वयस्यैव वेदत्रयादीनामपि परस्परं तथात्वसंभवात्  
॥१२५॥ अध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धयोरुपपत्तिमाह—

तीर्थस्य आहारकद्वयस्य सर्वायुषां च जघन्येन निरन्तरबन्धकालोऽन्तर्मुहुतः २९ । शेषषट्षष्टेश्च एक-

आदि चार ये ग्यारह प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षा हैं इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ नहीं हैं । शेष बासठ  
सप्रतिपक्षा हैं ॥१२५॥

विशेषार्थ—जो प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षा होती हैं उन प्रकृतियोंका जिस समय बन्ध होता  
है उस समय उनका अपना ही बन्ध होता है और जब बन्ध नहीं होता तब नहीं होता । २०  
जैसे तीर्थंकर प्रकृति अप्रतिपक्षा है जिस समय इसका बन्ध होता है उस समय इसका  
बन्ध होता है, नहीं होता तो नहीं होता । इसके बदलेमें बंधनेवाला प्रकृति नहीं है ।  
किन्तु जो प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षा हैं उनमें-से एक समयमें किसी एकका बन्ध होता है, जैसे  
साता-असातावेदनीय सप्रतिपक्षा हैं उनमें-से एक समयमें एकका बन्ध अवश्य होता है ।  
मोहनीयमें रति-अरति प्रतिपक्षी हैं । हास्य-शोक प्रतिपक्षी हैं, तीनों वेद परस्पर प्रतिपक्षी हैं । २५  
इनमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है । नामकर्ममें चार गति परस्पर प्रतिपक्षी हैं । पाँच  
जाति परस्पर प्रतिपक्षी हैं इनमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है । दो गोत्रोंमें-से एकका ही  
बन्ध एक समयमें होता है ।

प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण योगस्थान है उनमें चतुःस्थानपतित वृद्धि-  
हानिके द्वारा तथा स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्धके कारण अध्यवसाय स्थान हैं उनमें ३०  
षट्स्थानपतित वृद्धिहानिके द्वारा परिवर्तन होता रहता है इसलिए साता-असाताकी तरह  
तीन वेद आदिमें भी परस्परमें प्रतिपक्षीपना होता है अतः उनमें-से भी कभी किसीका और  
कभी किसीका बन्ध होता है ॥१२५॥

अध्रुव प्रकृतियोंमें सादि और अध्रुवबन्ध ही क्यों होता है, यह बतलाते हैं—

तीर्थंकर, अहारक युगल और चारों आयुका निरन्तर बन्धकाल जघन्यसे अन्तर्मुहुत ३५

सातादि सप्रतिपक्षगळु तंतम्मोळु परस्परं प्रतिपक्षगळे दरिबुदेके दोडे प्रकृतिप्रदेशबंध-  
निबंधनयोग्यस्थानगळगे चतुर्वृद्धिहानिगळिदमं स्थित्यनुभागबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायस्थान-  
गळगमनु भागबंधाध्यवसायस्थानगळगं षड्द्वानिषड्वृद्धिगळिदं परावृत्तिवर्तनमंत्पुर्वरिदं ।

अनंतरं स्थितिबंधमं पेळलुपक्रमिसिमोदळोळु मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधमं पेळदपर ।

५

तीसं कोडाकोडी तिघादितदिएसु बीस णामदुगे ।

सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं ॥१२७॥

त्रिशत्कोटीकोट्यस्त्रिधातित्रितयेषु विंशतिर्नामद्विके । सप्ततिर्भोहे शुद्धा उदधय आयुषस्त्रय-  
स्त्रिंशत् ॥

१० त्रिधातित्रितयेषु ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयमन्तरायं वेदनीयमुभे बी नालकुं मूलप्रकृति-  
गळुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं त्रिशत्कोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुं । विंशतिर्नामद्विके नामगोत्र-  
द्वयक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं विंशतिकोटीकोटिसागरोपममात्रमक्कुं । मोहनीयदोळु सप्ततिकोटी-  
कोटिसागरोपमप्रमितमुत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं । आयुष्यक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं शुद्धस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपम-  
प्रमाणमक्कुमिल्लि शुद्धविशेषणं कोटीकोटिव्यवच्छेदकमक्कुमपुर्वरिदं भूवत्तमूरे सागरोपमगळे-  
बुवत्थं । जा । सा ३० । को २ । द । सा ३० । को २ । वे । सा ३० । को २ । मो । सा ७० । को  
१५ २ । आयु । सा ३३ । नाम । सा २० । को १ । गोत्र सा २० । को २ । अन्तस । सा ३० । को २ ।

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळगे उत्कृष्टस्थितिबंधमं गाथाषट्कविंशं पेळदपर :—

दुक्खत्तिघादीणोघं सादित्थीमणुदुगे तदद्धं तु ।

सत्तरि दंसणमोहे चरित्तमोहे य चत्तालं ॥१२८॥

दुःखत्रिधातोनामोघः सातः स्त्रीमानवद्विके तदद्धं तु । सप्ततिर्दर्शनमोहे चरित्रमोहे च

२० चत्वारिंशत् ॥

समयः, ततः कारणात् तासामध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धो सिद्धो ॥१२६॥ इति प्रकृतिबन्धः समाप्तः । अथ  
स्थितिबन्धमुपक्रमन्नादौ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिमाह—

उत्कृष्टः स्थितिबन्धः कोटीकोटिसागरोपमाणि ज्ञानदर्शनावरणांतरायवेदनीयेषु त्रिशत् । नामगोत्रयोः  
विंशतिः । मोहनीये सप्ततिः । आयुषि शुद्धानि कोटीकोटिविशेषणरहितानि सागरोपमाण्येव त्रयस्त्रिंशत् ।

२५ अत्र शुद्धविशेषणं कोटीकोटिव्यवच्छेदार्थम् ॥१२७॥ अष्टोत्तरप्रकृतीनां गाथाषट्केनाह—

है । और शेष छियासठका निरन्तर बन्धकाल जघन्यसे एक समय है इस कारणसे उन  
तिहत्तर अध्रुव प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव बन्ध ही होता है यह सिद्ध हुआ ॥१२६॥

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध समाप्त हुआ ।

आगे स्थितिबन्धको प्रारम्भ करते हुए प्रथम मूल प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं—

३०

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीयका तीस कोडा-  
कोडी सागर प्रमाण है । मोहनीयका सत्तर कोडाकोडि सागर प्रमाण है । आयुका शुद्ध  
अर्थात् कोडाकोडी विशेषणसे रहित तैतीस सागर प्रमाण है । यहाँ शुद्ध विशेषण कोडाकोडी-  
के व्यवच्छेदके लिए दिया है ॥१२७॥

आगे छह गाथाओंसे उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते हैं—

संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति ।

अट्टरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च ॥१२९॥

संस्थानसंहननानां चरमस्यौघः द्विहीनः आविष्यन्तमष्टादशकोटीकोटयो विकलानां सूक्ष्म-  
त्रयाणां च ॥

अरदीसोगे संढे तिरिक्खमयणिरयतेजुरालदुगे ।

वेगुब्बादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिचउक्के ॥१३०॥

अरतौ शोके षंढे तिष्ठ्यग्भयनरकतैजसौदारिकद्विके । वैक्रियिकातपद्विके नीचे त्रसवर्णा-  
गुरुत्रिचतुष्के ॥

इगिपंचिदियथावरणिमिणासग्गमण अथिरछक्काणं ।

वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्सं ॥१३१॥

एकपंचेंद्रियस्थावरनिर्माणसद्गमनास्थिरषट्कानां । विंशतिः कोटीकोटयः सागरनाम्ना-  
मुत्कृष्टः ॥

हस्सरदि उच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे ।

तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे ॥१३२॥

हास्यरत्युच्चपुरुषे स्थिरषट्के अस्तगमनदेवद्विके । तस्यार्द्धमन्तःकोटीकोटयः आहार-  
तीर्थकरे ॥

सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिणिण यन्लाणि ।

उक्कस्सद्धिदिवंधो सण्णीपज्जत्तगे जोग्गे ॥१३३॥

सुरनारकायुषोरोघो नरतिष्ठ्यगायुषोस्त्रीणि पत्याणि । उत्कृष्टस्थितिबंधः संज्ञीपट्यप्रिके  
योग्ये । गायार्षट्कं ॥

दुःखत्रिधातीनामोघः असातवेदनीयं ज्ञानावरणीयपंचकं दर्शनावरणीयनवकमन्तरायपंचक-  
मितु विंशति प्रकृतिगळ्णे ओघः मूलप्रकृतिगळ्णेऽपेक्ष्य त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपममुत्कृष्टस्थितिबंध-  
मवकुं । प्रत्येकं तु १ घा १९ सातस्त्रीमानवद्विके सातवेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यद्विकमैत्री नालकुं  
सा ३० को २

प्रकृतिगळ्णुत्कृष्टस्थितिबंधं तद्वर्द्धं पंचदशकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमवकुं सा १ स्त्री १ म २  
सा १५ को २

सप्रतिदृशनमोहे दर्शनमोहनीयमिथ्यात्वप्रकृतिबंधदोळेकविधमप्पुर्वारिदमवकुत्कृष्टस्थितिबंधं सप्रति

उत्कृष्टस्थितिबन्धः असातवेदनीयज्ञानदर्शनावरणान्तरायविंशतेः ओघः मूलप्रकृतिवत् त्रिंशत्कोटीकोटि-  
सागरोपमाणि । सातवेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यद्विकेषु तदर्थं पञ्चदशकोटीकोटिसागरोपमाणि । दर्शनमोहे मिथ्यात्वं

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असातावेदनीय तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण अन्तरायकी उन्नीस  
इन बीस प्रकृतियोंका 'ओघ' अर्थात् मूल प्रकृतियोंके समान तीस कोडाकोडि सागर प्रमाण  
है । सातवेदनीय स्त्रीवेद और मनुष्यमति मनुष्यानुपूर्विका उससे आधा अर्थात् पन्द्रह  
कोडाकोडी सागर प्रमाण है । दर्शनमोहमें बन्ध एक मिथ्यात्वका ही होता है अतः उसका

५

१०

१५

२०

२५

३०

सागरोपमकोटीकोटिप्रमाणमक्कुं द० मिथ्या १ चरित्रमोहे च चत्वारिंशत् चारित्रमोहनीयक्कु-  
सा ७० को २

त्कृष्टस्थितिविधं चत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोटिप्रमितमक्कुं चारि० कषा १६ संस्थानसंह-  
सा ४० को २ ॥

नननानां संस्थानसंहननंगळोळगे चरमस्योधः कडेय हुंडसंस्थानासंप्राप्तसृपाटिकासंहननमेव प्रकृति-  
द्वयदकुत्कृष्टस्थितिविधंमूलप्रकृतिगळोळपेळद ओघं विगति कोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं—

५ हुं १ अमं १ शेषसंस्थानसंहननंगळगे आदिपर्यंतं समचतुरस्रसंस्थानवज्रवृषभनाराचसंहनन-  
सा २० को २

पर्यन्तं द्विकद्विकंगळोळक्रमदिदमुत्कृष्टस्थितिविधं द्विहीनः द्विकोटीकोटिसागरोपमविहीनमप्पो-  
धमक्कुं— वाम १ की १ कु १ अर्द्ध १ स्वाति १ नाराच १ न्य १ वज्र १ सम १ वज्र वृ १

सा १८ को २ सा १६ को १ सा १४ को २ सा १२ को २ सा १० को २

विकलानां सूक्ष्मत्रयाणां च विकलत्रयंगळगं सूक्ष्मत्रयंगळगमुत्कृष्टस्थितिविधमष्टादशकोटीकोटि साग-  
१० रोपम प्रमाणमक्कुं वि ३ सू ३ अरति शोक षंडवेद तिर्यग्द्विकभयद्विक नरकद्विक तैजसद्विक  
सा १८ को २

औदारिकद्विक वैक्रियिकद्विक आतपद्विक नीचैर्गोत्र त्रसचतुष्क—( वर्णचतुष्क अगुरुलघुचतुष्क )  
एकेंद्रियजाति पंचेंद्रियजाति स्थावरनाम निर्माणनाम असदगमननाम अस्थिर षट्कमुमेंबी ४१  
प्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिविधं विगतिः कोटीकोटयः विगतिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं प्रत्येकमक्कुं—  
अरत्यादि ४१ हास्य रति उच्चैर्गोत्र पुरुषवेद स्थिरषट्क शस्तगमन देवद्विकमुमेंबी १३ प्रकृति-  
सा २ को २०

- १५ बन्धे एकविधत्वात् तत्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि ७० । चारित्रमोहनीयषोडशकषायेषु चत्वारिंशत्कोटी-  
कोटिसागरोपमाणि । संस्थानसंहनानां चरमसंस्थानसंहननस्य मूलप्रकृतिवद् विगतिकोटीकोटिसागरोपमाणि ।  
शेषसंस्थानसंहननानां समचतुरस्रसंस्थानवज्रवृषभनाराचसंहननपर्यन्तं द्विकोटीकोटिसागरोपमविहीन ओघः ।  
विकलत्रयाणां चाष्टादशकोटीकोटिसागरोपमाणि । अरतिशोकषंडवेदतिर्घ्नद्विकभयद्विकनरकद्विकतैजसद्विकौदा-  
रिकद्विकवैक्रियिकद्विकातपद्विकनीचैर्गोत्रत्रसचतुष्कवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कैर्द्रियपञ्चेन्द्रियस्थावरनिर्माणसदगम-  
२० नास्थिरषट्कानां विगतिकोटीकोटिसागरोपमाणि हास्यरत्युच्चैर्गोत्रपुरुषवेदस्थिरषट्कप्रशस्तगमनदेवद्विकानां

- सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । चारित्र मोहनीयकी सोलह कषायोंका चालीस कोड़ा-  
कोड़ी सागर प्रमाण है । संस्थान और संहननोंमें-से अन्तिम संस्थान और अन्तिम संहननका  
मूलप्रकृति नामकर्मकी तरह बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । शेष संस्थान और संहननों-  
का समचतुरस्रसंस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन पर्यन्त दो-दो कोड़ाकोड़ी सागर  
२५ षटता हुआ है अर्थात् वामन संस्थान और कीलित संहननका अठारह, कुब्ज संस्थान और  
अर्धनाराच संहननका सोलह, स्वातिसंस्थान और नाराच संहननका चौदह, न्यग्रोध-  
परिमण्डल संस्थान और वज्रनाराच संहननका बारह, तथा समचतुरस्र संस्थान और  
वज्रवृषभ नाराच संहननका दस कोड़ाकोड़ी सागर है । विकलत्रयका अठारह कोड़ाकोड़ी  
सागर प्रमाण है । अरति, शोक, नपुंसकवेद, तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा,  
३० नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तैजस, कामर्ण, औदारिक, औदारिक अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर  
व अंगोपांग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, वर्णादि चार, अगुरुलघु,  
उपघात परघात उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति,

गळ्मुत्कृष्ट ) स्थितिवन्धं तस्याद्धं दशकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं हास्यादि १३ आहारकद्वय-  
सा १० को २

तीर्थमंबी प्रकृतित्रयवत्कृष्टस्थितिवन्धं प्रत्येकं अन्तःकोटीकोटयः अन्तःकोटीकोटिसागरोपम-  
प्रमितमक्कुं आ २ ती १ सुरनारकायुष्यंगळो स्थितिवन्धोत्कृष्टं ओघः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपम-  
सा अन्तः को २

प्रमाणमक्कुं— सुरायु १ ना १ तिर्यगमनुष्यायुष्यंगळ्मुत्कृष्टस्थितिवन्धं त्रीणि पल्यानि त्रिपल्यो-  
सागरोपम ३३

पमप्रमाणमक्कुं— ति १ म १ इतुत्तरप्रकृतिगळ् १२० वक् पेळ्दीयुत्कृष्टस्थितिवन्धंगळ् संज्ञिपंचे- ५  
पल्योपम ३

द्रियपर्याप्तकनोळ्पुवु । एकेंद्रियाद्यसंज्ञिपर्यन्तमादुवक्के मुंदे पेळ्दपर । तत्तत्प्रकृतिवन्धयोग्यनोळ-  
विदरिदमुत्कृष्टस्थितिवन्धं संसारकारणमपुदरिदमशुभमपुदरिदं । शुभाशुभकर्मंगळं चतुर्गति  
संक्लिष्टजीवगळिदं कटुत्पडुगुमेवुदर्थं— असा १ घा १९ सा १ स्त्री १ म २ मि १  
सा ३० को २ सा १५ को २ सा ७० को २

चारि १६ हु १ अ १ बा १ कि १ कु १ अर्द्ध १ स्वा १ ना १ ग्य १ वज्र १  
सा ४० को २ सा २० को २ सा १८ को २ सा १६ को २ सा १४ को २ सा १२ को २

सम १ वज्र १ वि ३ सु ३ अरत्यादि ४१ हास्यादि १३ आ २ ती १  
सा १० को २ सा १८ को २ सा २० को २ सा १० को २ सा. अन्तः को २

सु १ ना १ तिर्य १ मनु १ अन्तु प्रकृति १२० ॥  
सा ३३ पल्या ३

अन्तरमी पेळ्द शुभाशुभप्रकृतिगळ्मुत्कृष्टस्थितिवन्धक्के संक्लेशपरिणाममे कारणं ।  
तिर्यगमनुष्यदेवायुस्त्रयमं कळ्देदु पेळ्दपर :—

१०

तस्यार्धं—दशकोटीकोटिसागरोपमाणि । आहारकद्वयतीर्थकृतोरन्तःकोटीकोटिसागरोपमाणि । सुरनारकायुषोः  
ओघः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । तिर्यगमनुष्यायुषोः त्रीणि पल्यानि । अयमुत्कृष्टस्थितिवन्धः संज्ञिपर्याप्तस्यैव  
असंज्ञितानामप्रे प्ररूपणात् । योग्ये इत्यनेन अयं संसारकारणत्वात् अशुभत्वात् शुभाशुभकर्मणां चातुर्गतिक-  
संक्लिष्टैरेव बध्यते इत्यर्थः ॥१२८-१३३॥ आयुस्त्रयवर्जितशुभाशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिकारणं संक्लेश  
एवेत्याह—

१५

अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति इनका बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण  
है । हास्य, रति, उच्चगोत्र, पुरुषवेद, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, प्रशस्त-  
विहायोगति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वीका उससे आधा अर्थात् दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण  
है । आहारकद्विक और तीर्थकरका अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । देवायु नरकायुका  
ओघ अर्थात् तेतीस सागर प्रमाण है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका तीन पल्य है । यह उत्कृष्ट २०  
स्थितिवन्ध संज्ञी पर्याप्तकके ही होता है । एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्तका आगे  
कहा है । 'योग्य' शब्दसे बतलाया है कि यह उत्कृष्ट स्थितिवन्ध संसारका कारण और अशुभ  
है । अतः शुभ और अशुभ कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध चारों गतियोंके संक्लेशपरिणामी  
जीवोंके द्वारा ही बाँधा जाता है ॥१२८-१३३॥

आगे कहते हैं कि तीन आयुको छोड़कर अन्य शुभ अशुभ सभी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट  
स्थितिवन्धका कारण संक्लेश ही है—

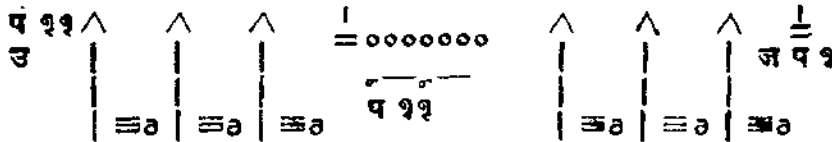
२५

सन्वद्विदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण ।

विपरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु ॥१३४॥

सर्वस्थितोनामुत्कृष्टस्तूकृष्टसंक्लेशेन विपरीतेन जघन्यः आयुस्त्रयवर्जितानां तु ॥

तु मत्ते यो पेळद आयुस्त्रयवर्जितानां तिर्यग्मनुष्यदेवायुर्वर्जितगळप्प सर्वप्रकृतिगळ  
५ स्थित्युत्कृष्टगळ उत्कृष्टसंक्लेशदिदं बंधगळप्पुवु । तु मत्ते विपरीतेन उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामगळदिदं  
जघन्यस्थितिबंधगळप्पुवु । तिर्यग्मनुष्यदेवायुष्यगळगे उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामदिदं उत्कृष्टस्थिति-  
बंधगळप्पुवु । तद्विपरीतपरिणामदिदं जघन्यस्थितिबंधगळप्पुवु—



अनंतरमुत्कृष्टस्थितिबंधको स्वामिगळं पेळदपरः—

सम्बुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइड्डी दु बंधगो भणिदो ।

१० आहारं तित्थयरं देवाउं चावि मोत्तूण ॥१३५॥

सर्वोत्कृष्टस्थितोनां मिथ्यादृष्टिस्तु बंधको भणितः । आहारं तीर्त्थकरं देवायुश्चापि  
मुक्त्वा ॥

आहारद्विकमं तीर्त्थकरनाममुं देवायुष्यमुमं कळदुळिद ११६ रुं प्रकृतिगळ सर्वोत्कृष्टस्थि-  
तिगळो तु मत्ते मिथ्यादृष्टिस्तु बंधको भणितः मिथ्यादृष्टिजीवने बंधकनेदु अनादिनिधनार्थदोळ

१५ पेळत्पट्टु । देवायुराहारद्विकतीर्त्थमेबी ४ प्रकृतिगळगे सम्यग्दृष्टिबंधकनेदु पेळत्पट्टं ॥

अनंतरं देवायुरादि ४ प्रकृतिगळगे बंधकरं पेळदपरः—

तु—पुनः तिर्यग्मनुष्यदेवायुर्वर्जितसर्वप्रकृतिस्थितोनां उत्कृष्ट उत्कृष्टसंक्लेशेन भवति । तु—पुनः तासां  
जघन्यं उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन भवति । तत्रयस्य तु उत्कृष्टं उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन जघन्यं तद्विपरीतेन  
भवति ॥१३४॥ उत्कृष्टस्थितिबंधकमाह—

२० आहारद्विकं तीर्थं देवायुश्चेति चत्वारि मुक्त्वा शेष ११६ प्रकृतिसर्वोत्कृष्टस्थितोनां मिथ्यादृष्टिरेव  
बन्धको भणितः तच्चतुर्णां तु सम्यग्दृष्टिरेव ॥१३५॥ तत्रापि विशेषमाह—

तिर्यञ्चायु मनुष्यायु देवायुको छोड़कर सब प्रकृतियोंकी स्थितिका उत्कृष्टबन्ध उत्कृष्ट  
संक्लेशसे होता है । तथा उनका जघन्यबन्ध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामसे होता है । तीनों आयु-  
का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामसे और जघन्यबन्ध उससे विपरीत परिणामोंसे  
२५ होता है ॥१३४॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसके होता है, यह कहते हैं—

आहारद्विक, तीर्थकर और देवायु इन चारको छोड़कर शेष एक सौ सोलह  
प्रकृतियोंकी सर्वोत्कृष्ट स्थितियोंका बन्धक मिथ्यादृष्टिको ही कहा है । किन्तु इन चारका  
बन्धक सम्यग्दृष्टि ही है ॥१३५॥

३० उसमें भी विशेष कहते हैं—

१. बन्धमाह ।

देवाउगं प्रमत्तो अहारयमप्यमत्तविरदो दु ।

तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ॥१३६॥

देवायुः प्रमत्तः आहारकमप्रमत्तविरतस्तु । तीर्थकरं च मनुष्योऽविरतसम्यग्दृष्टिः समज्जयति ॥

देवायुष्योत्कृष्टस्थितिबंधमं प्रमत्तसंयतं माळपनेके दोडे देवायुष्यमप्रमत्तसंयतनोळु व्युच्छि-  
तियक्कुमप्पोडमल्लियुत्कृष्टस्थितिबंधमागदेके दोडे—तीव्रविशुद्धनप्य सातिशयाप्रमत्तंगायुब्ध-  
योग्यपरिणामं संभविषदु । निरतिशयाप्रमत्तनोळुमुत्कृष्टायुस्थितिबंधं संभविषदु कारणदि प्रमत्त-  
संयतने देवायुष्योत्कृष्टस्थितिबंधमनप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखं विशुद्धं माळपनपुदरिदं । आहारक-  
द्वयोत्कृष्टस्थितिबंधं तु मत्ते प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखनप्य संक्लिष्टाप्रमत्तं माळकुमेके दोडायु  
स्त्रितयवज्जित सवर्बकम्मंगळगुत्कृष्टस्थितिबंधमुत्कृष्टसंक्लेशपरिणामदिदमेयक्कुमपुदरिदं । तीर्थ-  
करनामकम्मंकुत्कृष्टस्थितिबंधं नरकगतिगमनाभिमुखनप्य मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिये माळकुं ॥

अनंतरमा ११६ प्रकृतिगळगुत्कृष्टस्थितितिवंधमं माळप मिथ्यादृष्टिगळं गाथाद्वयविदं  
पेळवपः—

गरतिरिया सेसाउं वेगुन्वियळक्कवियलसुहुमतियं ।

सुरणिरया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ॥१३७॥

देवा पुण एइंदिय आदावं थावरं च सेसाणं ।

उक्कस्ससंक्लिष्टा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ॥१३८॥ गाथाद्वयं

नरतिथ्यंश्च शेषायुर्वैक्रियिकवट्कविकल सूक्ष्मत्रयं । सुरनारकाः औदारिकतिथ्यं द्विको-  
द्योताऽसंप्राप्तं ॥

देवायुः उत्कृष्टस्थितिकं प्रमत्त एवाप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखो बध्नाति । अप्रमत्ते तद्व्युच्छित्तावपि तत्र  
सातिशये तीव्रविशुद्धत्वेन तदबन्धात्, निरतिशये च तदुत्कृष्टासंभवात् । तु—पुनः आहारकद्वयं उत्कृष्टस्थितिकं  
अप्रमत्तः प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखः संक्लिष्ट एव बध्नाति आयुस्त्रयवजितानां उत्कृष्टस्थितेः उत्कृष्टसंक्लेशेन  
ह्युत्पत्तत्वात् । तीर्थकरं उत्कृष्टस्थितिकं नरकगतिगमनाभिमुखमनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिरेव बध्नाति ॥१३६॥  
शेषाणां ११६ उत्कृष्टस्थितिबन्धकमिथ्यादृष्टीन् गाथाद्वयेनाह—

देवायुकी उत्कृष्टस्थिति अप्रमत्तगुणस्थानके अभिमुख प्रमत्तसंयत मुनि ही बाँधता है ।  
यद्यपि देवायुके बन्धकी व्युच्छित्ति अप्रमत्तमें ही होती है तथापि सातिशय अप्रमत्तके तो  
तीव्रविशुद्ध परिणाम होनेसे देवायुका बन्ध ही नहीं है और निरतिशय अप्रमत्तके बन्ध तो  
होता है किन्तु उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है । आहारकद्वयकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमत्त गुण-  
स्थानके अभिमुख संक्लेश परिणामी, अप्रमत्त ही बाँधता है; क्योंकि तीन आयुको छोड़ शेष  
कर्माँकी उत्कृष्टस्थिति उत्कृष्ट संक्लेशसे बाँधती है ऐसा कहा है । तीर्थकरकी उत्कृष्ट स्थिति  
नरकगतिमें जानेके अभिमुख असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही बाँधता है क्योंकि तीर्थकरका  
बन्ध करनेवाले जीवोंमें उसीके तीव्र संक्लेश होता है ॥१३६॥

शेष एक सौ सोलह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक मिथ्यादृष्टियोंको दो  
गाथाओंसे कहते हैं—



देवाः पुनरेकैन्द्रियमातपं स्थावरं च शेषाणामुत्कृष्टसंक्लिष्टाश्चातुर्गंतिकाः ईषन्मध्यमकाः ॥

नरतिर्यग्गतिद्वयमिथ्यादृष्टिगळु शेषनरतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रितयकं वैक्रियिकषट्ककं विकलत्रयकं सूक्ष्मत्रयकमुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळपह । सुरनारकाः देवनारकमिथ्यादृष्टिगळु औदारिकद्वयकं तिर्यग्द्वयकं उद्योतनामकमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननकमुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळपह । पुनर्देवाः मत्ते देवगतिय मिथ्यादृष्टिगळे एकैन्द्रियजातिनाममनातपनामं स्थावरनाममनुत्कृष्टस्थितिकंगळपुवन्तु बंधमं माळपह । शेषाणां ई कंठोक्तमाणि पेळल्पट्ट २४ प्रकृतिगळं कळेदु शेष ९२ प्रकृतिगळुत्कृष्टसंक्लिष्टरुगळुसोषन्मध्यमकगळप चानुर्गतिकमिथ्यादृष्टिगळुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळपह ।

|                                   |  |
|-----------------------------------|--|
| उक्तशेष<br>२८ ९२                  |  |
| देवाः<br>एव ए १ आ १               |  |
| सुरनार<br>कोः २ ओ २ ति २ उ १ आ १  |  |
| नरतिर्यग्<br>चर आ ३ ओ ३ वि ३ सु ३ |  |
| स म्य ४                           |  |
| मि आ ११६                          |  |

|        |     |        |         |    |    |     |
|--------|-----|--------|---------|----|----|-----|
| प ११   | २२२ | ५४     | ५५      | ५६ | ५७ | ॥ ० |
| प १३   | २१८ | ५३     | ५४      | ५५ | ५६ | ॥ ० |
| ०      | २१४ | ५२     | ५३      | ५४ | ५५ | ॥ ० |
| २      | २१० | ५१     | ५२      | ५३ | ५४ | ॥ ० |
| प ११   | २०६ | ५०     | ५१      | ५२ | ५३ | ॥ ० |
| ०      | २०२ | ४९     | ५०      | ५१ | ५२ | ॥ ० |
| ०      | १९८ | ४८     | ४९      | ५० | ५१ | ॥ ० |
| ०      | १९४ | ४७     | ४८      | ४९ | ५० | ॥ ० |
| प ११   | १९० | ४६     | ४७      | ४८ | ४९ | ॥ ० |
| ०      | १८६ | ४५     | ४६      | ४७ | ४८ | ॥ ० |
| ०      | १८२ | ४४     | ४५      | ४६ | ४७ | ॥ ० |
| २      | १७८ | ४३     | ४४      | ४५ | ४६ | ॥ ० |
| प १    | १७४ | ४२     | ४३      | ४४ | ४५ | ॥ ० |
| १      | १७० | ४१     | ४२      | ४३ | ४४ | ॥ ० |
| प १    | १६६ | ४०     | ४१      | ४२ | ४३ | ॥ ० |
| प १    | १६२ | ३९     | ४०      | ४१ | ४२ | ॥ ० |
| स्थिति | ॥ ० | ज ई सि | मज्जिमम | उ  |    |     |

१०

इल्लि उत्कृष्टेषन्मध्यमसंक्लेशपरिणामंगळगुपपत्तियं पेळदपहः—

नरकतिर्यग्मनुष्यायूषि वैक्रियिकषट्कं विकलत्रयं सूक्ष्मत्रयं चोत्कृष्टस्थितिकानि नराः तिर्यक्श्च बध्नन्ति औदारिकद्वयं तिर्यग्द्वयोद्योतासंप्राप्तसृपाटिकासंहननानि सुरनारका एव । एकेन्द्रियातपस्थावराणि पुनः देवाः । शेषद्वानवति उत्कृष्टसंक्लिष्टा ईषन्मध्यमसंक्लिष्टाश्च चातुर्गंतिकाः । अत्रोत्कृष्टेषन्मध्यमसंक्लेशपरिणामोपपत्तिमाह—

१५

नरकायु, तिर्यच्चायु, मनुष्यायु, वैक्रियिकषट्क, विकलत्रय, सूक्ष्म आदि तीनकी उत्कृष्ट स्थिति मनुष्य और तिर्यक्च बाँधते हैं । औदारिकद्विक, तिर्यग्द्विक, उद्योत, असंप्राप्तसृपाटिका संहननकी उत्कृष्ट स्थिति देव और नारकी ही बाँधते है । एकेन्द्रिय, आतप और स्थावरकी उत्कृष्टस्थिति देव बाँधते हैं । शेष बानवे प्रकृतिकी उत्कृष्टस्थिति उत्कृष्ट संक्लेशवाले या ईषत् मध्यम संक्लेशवाले चारों गतिके जीव बाँधते हैं । यहाँ उत्कृष्ट ईषत् मध्यम संक्लेश

२० परिणामोंकी उपपत्ति कहते हैं ।

उक्कस्ससंकिट्टस्स उत्कृष्टसंक्लेशवत्तप्प मिथ्यादृष्टिगं ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा ईषन्मध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिगं मेणु उक्कस्सट्ठिदिवंधो होदि उत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं । उक्कस्सट्ठिदिवंधपाओग अंसंखेज्जओगपरिणामाणं उत्कृष्टस्थितिबंधप्रायोग्यासंख्येयलोकपरिणामंगळो पळिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्तखंडाणि कादूण पलितोपमासंख्येयभागमात्रखंडंगळं साडि तत्थ आ खंडंगळोलु चरिमखंडस्स चरमखंडक्के उक्कस्ससंकिळेसो णाम उत्कृष्टसंक्लेशव्यपदेशमक्कुं । प्रथमखंडस्स प्रथमखंडक्के ईसिसंकिळेसो णाम ईषत्संक्लेशव्यपदेशमक्कुं । दोण्हं विच्चाळखंडाणं तद्व्यान्तरालखंडंगळो मज्झिमसंकिळेसो णामेत्ति उच्चदि मध्यमसंक्लेशमे व व्यपदेशमक्कुमे दिन्नु पेळल्पट्ठदुदु । एवं सेससव्वट्ठिदिवियप्पेसु वत्तव्वं ई प्रकारदिदमे शेषसव्वस्थितिविकल्पंगळोलु वक्तव्यमक्कुं । एत्थ सव्वपयडीसु इत्थि सव्वप्रकृतिगळोलु सगसगट्ठिदिवियप्पो स्वस्वस्थितिविकल्पं उड्ढगच्छो होदि ऊर्ध्वगच्छमक्कुं । तिर्यग्गच्छो पळिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि तिर्यग्गच्छमुं पळितोपमासंख्येयभागमक्कुं गुणहाणि आयामो गुणहान्यायाममुं पळिदोवमस्सासंखेज्जदिभागो होदि पलितोपमासंख्येयभागमक्कुं । णाणागुणहाणिसत्तागाओ नानागुणहानिशलाकेगळं पल्लेखेदासंखेज्जदिभागो होदि पल्लेखेदासंख्येयभागमक्कुं । अणोणवभरासि अन्योन्याभ्यस्त-राजियं पळिदोवमस्सासंखेज्जदिभागो होदि पलितोपमासंख्येयभागमक्कुं । एत्थ अत्र अणुकट्ठिर-यणाविहाणं अधापवत्तकरणं वत्तव्वं इत्थि अनुकृष्टिरचनाविधानमधःप्रवृत्तिकरणवद्वक्तव्य-मक्कुं । अदे ते दोडे—धनं ३०७२ । पद १६ । कदि १६ । १६ । संखेण ३ भाजिदे ३०७२ ।

२५६ । ३

उक्कस्ससंकिट्टस्स-उत्कृष्टसंक्लेशमिथ्यादृष्टेः, ईसिमज्झिमपरिणामस्स-वा ईषन्मध्यमपरिणाम-मिथ्यादृष्टेर्वी, उक्कस्सट्ठिदिवंधो होदि—उत्कृष्टस्थितिबंधो भवति उक्कस्सट्ठिदिवंधपाओगअसंखेज्जलोग-परिमाणं—उत्कृष्टस्थितिबंधप्रायोग्यासंख्येयलोकपरिणामानां, पळिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखंडाणि कादूण पलितोपमासंख्येयभागमात्रखंडाणि कृत्वा, तस्य—तेषु खण्डेषु, चरमखण्डस्स—चरमखण्डस्य, उक्कस्ससंकिळेसो णाम—उत्कृष्टसंक्लेशव्यपदेशो भवति । पदमखण्डस्स—प्रथमखण्डस्य, ईसिसंकिळेसो णाम—ईषत्संक्लेशव्यपदेशो भवति । दोण्हं, विच्चाळखंडाणं—द्वयोरंतरालखण्डानां मज्झिमसंकिळेसो णामेत्ति उच्चदि—मध्यमसंक्लेश-व्यपदेश इत्युच्यते । एवं सेससव्वट्ठिदिवियप्पेसु वत्तव्वं—एवं शेषसव्वस्थितिविकल्पेषु वक्तव्यं । एत्थ सव्वपयडीसु—अत्र सव्वप्रकृतिषु, सगसगट्ठिदिवियप्पो—स्वस्वस्थितिविकल्पः, उड्ढगच्छो होदि ऊर्ध्वगच्छो भवति । तिर्यग्गच्छो पळिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि—तिर्यग्गच्छः पळितोपमासंख्येयभागो भवति । गुणहाणि आयामो गुणहान्यायामः पळितोपमासंखेज्जदिभागो होदि—पळितोपमासंख्येयभागो भवति । एत्थ अणुकट्ठिरयणाविहाणं अधापवत्तकरणं व वत्तव्वं—अत्रानुकृष्टिरचनाविधानं अधःप्रवृत्तिकरणवद्वक्तव्यं । तद्यथा—

उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिके अथवा ईषत् मध्यम परिणाम वाले मिथ्यादृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है । उत्कृष्टस्थितिबंधके प्रायोग्य असंख्यात लोक परिणामोंके पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र खण्ड करके उन खण्डोंमें चरमखण्डका नाम उत्कृष्ट संक्लेश है और प्रथमखण्डको ईषत्संक्लेश नामसे कहते हैं । दोनोंके बीचके खण्डोंको मध्यमसंक्लेश कहते हैं । इसी प्रकार शेष सब स्थितिके विकल्पोंमें जानना । यहाँ सब प्रकृतियोंमें अपनी-अपनी स्थितिके विकल्प ऊर्ध्वगच्छ है और तिर्यग्गच्छ पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । गुणहानि आयाम पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । यहाँ अनुकृष्ट रचनाका विधान अधःप्रवृत्तिकरणकी तरह कहना चाहिए जो इस प्रकार है—

पचयं ४। व्येकपद १६। अर्द्ध १५ धनचय १५ ४। गुणो गच्छ १५ ४। १६। उत्तरधनं  
 ४८०। चय धनहीनं द्रव्यं २५९२। पदभजिदे। प्र १६ फ २५९२। इ १। लब्ध मादि धनं भवति

अङ्कसंदृष्टौ स्थितिवन्धाध्यवसायस्थानानि द्वाप्तत्त्वधिकत्रिसहस्री ३०७२ स्थितिविकल्पाः षोडश १६  
 पदकृत्या २५६ संख्यातेन च ३ सर्वधने भक्ते ३०७२ चयो भवति ४। व्येकपदार्ध १५ धनचयः १५। ४  
 २५६। ३ २ २

५ गुणो गच्छः १५। ४। १६। ४८० चयधनं भवति। अनेन सर्वधनं ३०७२ ऊनयित्वा २५९२ पदेन १६  
 २

भक्तं सत् जघन्यस्थितिकारणपरिणामसंख्या भवति १६२। अत्रैकचये ४ वृद्धे सति एकैकसमयाधिकद्वितीयादि-  
 स्थितिकारणपरिणामप्रमाणानि भवन्ति। पुनः अनुकृष्टिपदेन ४ ऊर्ध्वचये ४ भक्ते तिर्यक्चयो भवति १।  
 व्येकपदार्ध ३ धनचयः ३। १ गुणो गच्छः ३। १। ४ चयधनं ६ भवति। अनेन जघन्यस्थितिकारणपरिणाम-  
 २ २ २

प्रमाणं १६२ हीनं कृत्वा अनुकृष्टिगच्छेन भक्तं सत् प्रथमखण्डप्रमाणं स्यात् ३९। अत्रैकैकतिर्यक्चये वृद्धे  
 १० द्वितीयादिखण्डानि स्मृः ४०। ४१। ४२। एवं शेषद्वितीयादिचरमव्यन्तस्थितिपरिणामा अपि तिर्यग्च-

- जैसे जीवकाण्डमें गुणस्थानोंका कथन करते हुए सातिशय अप्रमत्तके अधःप्रवृत्त-  
 करणका स्वरूप कहा है वैसे ही यहाँ अंकसंदृष्टिके कथन द्वारा जानना। जैसे वहाँ अंक-  
 संदृष्टिमें सर्वधनका प्रमाण तीन हजार बहत्तर ३०७२ है वैसे ही यहाँ सर्व स्थितिवन्धाध्य-  
 वसाय स्थानोंका प्रमाण ३०७२ जानना। जैसे वहाँ ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण सोलह कहा, वैसे  
 १५ ही यहाँ विवक्षित कर्मकी जघन्य स्थितिसे लेकर एक-एक समय अधिक उत्कृष्ट स्थिति-  
 पर्यन्त जितने स्थितिके भेद हों उतना ऊर्ध्वगच्छ जानना। जैसे गच्छ १६ का वर्ग दो सौ  
 छप्पन और संख्यात तीनका भाग सर्वधन ३०७२ में देनेपर चार पाये सो चयका प्रमाण चार  
 है, वैसे ही यहाँ जो ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण कहा, उसका वर्ग करके संख्यातसे गुणा करें और  
 उसका भाग सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना चय जानना। ऊर्ध्व रचनामें इतनी-  
 २० इतनी वृद्धि जानना। जैसे एक कम गच्छ पन्द्रहका आधा करके उसे चयके प्रमाण चारसे  
 गुणा करनेपर तीस होता है। उसे गच्छ सोलहसे गुणा करनेपर चार सौ अस्सी होता है।  
 वही चय धनका प्रमाण है। उसे सर्वधन तीन हजार बहत्तरमें-से घटानेपर दो हजार पाँच  
 सौ बानवे २५९२ शेष रहे। उसे गच्छ सोलहसे भाग देनेपर एक सौ बासठ पाये, सो प्रथम  
 स्थान जानना। उसी प्रकार यहाँ जो गच्छका प्रमाण कहा उसमें एक कम करके तथा उसका  
 २५ आधा करके उसे चयसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसे गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण  
 हो उतना चयधन जानना। इस चयधनको सर्वधनमें-से घटाकर जो प्रमाण रहे उसमें  
 गच्छके प्रमाणसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने अध्यवसाय स्थान जघन्य स्थितिवन्धके  
 कारण हैं। तथा जैसे आदि स्थान एक सौ बासठमें एक चय चार मिलानेपर दूसरा स्थान  
 एक सौ छियासठ होता है, वैसे ही यहाँ जघन्य स्थितिवन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका  
 ३० जो प्रमाण कहा उसमें पूर्वोक्त चयका प्रमाण मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने अध्यवसाय-  
 स्थान जघन्य स्थितिसे एक समय अधिक दूसरी स्थितिके बन्धके कारण होते हैं। उसमें एक  
 चय मिलानेपर जघन्यसे दो समय अधिक तीसरी स्थितिके बन्धके कारण अध्यवसाय स्थान

१६२ । आदिमि च य उड्डे पडिसमयधनं तु भावानं । १६६ । १७० । १७४ । इत्यादि विधानमं  
जीवकांडोक्ते तनुकृष्टिविधानमंते अतथसंदृष्टियोलुमरियल्पदुगुं ॥

यितव्याः । एवमर्थसंदृष्टावपि रचनां कृत्वा अधःप्रवृत्तकरणवदुपरितनस्थितिपरिणामखण्डानां अधस्तनस्थिति-  
परिणामखण्डैः सह संख्यया संक्लेशविशुद्धिभ्यां च सादृश्यादिकं वक्तव्यमित्यर्थः ॥ १३७-१३८ ॥

जानने । इस प्रकार उत्कृष्टस्थिति पर्यन्त एक-एक चय बढ़ाना चाहिए । जैसे अंक संदृष्टिमें १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ है वैसे ही जानना । तथा जैसे अंकसंदृष्टिमें तिर्यक् गच्छका प्रमाण चार है वैसे ही यहाँ तिर्यक्गच्छका प्रमाण पत्यका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण जानना । इस तिर्यक्गच्छको अनुकृष्टिगच्छ भी कहते हैं । सो जैसे अनुकृष्टिगच्छ चारका भाग ऊर्ध्वरचनामें चयके प्रमाण चारमें देनेपर एक आता है । वह एक अनुकृष्टिमें चय जानना । वैसे ही यहाँ अनुकृष्टि गच्छका प्रमाण पत्यका असंख्यातवाँ भाग कहा । उसका भाग पूर्वोक्त चयके प्रमाणमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना अनुकृष्टिका चय जानना । तथा जैसे अनुकृष्टिके गच्छ चारमें-से एक कम करके उसका आधा करके उसे चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर छह होते हैं वही अनुकृष्टिका चयधन होता है । उसको अनुकृष्टिके सर्वधन १६२ में-से घटानेपर एक सौ छप्पन १५६ रहे । उसमें अनुकृष्टिके गच्छ चारसे भाग देनेपर उनतालीस ३९ आते हैं वही प्रथम स्थानका प्रथम खण्ड है । वैसे ही यहाँ अनुकृष्टि गच्छमें-से एक घटाकर उसका आधा करके उसे अनुकृष्टि गच्छके चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अनुकृष्टिका चयधन जानना । उसे जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंके प्रमाणमें-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका प्रथम खण्ड जानना । इनकी

|    |       |     |    |    |    |    |    |
|----|-------|-----|----|----|----|----|----|
| १. | प १ १ | २२२ | ५४ | ५५ | ५६ | ५७ | ३० |
|    | १ ७   | २१८ | ५३ | ५४ | ५५ | ५६ | ३० |
|    | प १ १ | २१४ | ५२ | ५३ | ५४ | ५५ | ३० |
|    | १ ७   | २१० | ५१ | ५२ | ५३ | ५४ | ०  |
|    | प १ १ | २०६ | ५० | ५१ | ५२ | ५३ | ०  |
|    | १ ७   | २०२ | ४९ | ५० | ५१ | ५२ | ०  |
|    | १ ७   | १९८ | ४८ | ४९ | ५० | ५१ | ०  |
|    | १ ७   | १९४ | ४७ | ४८ | ४९ | ५० | ०  |
|    | प १ १ | १९० | ४६ | ४७ | ४८ | ४९ | ०  |
|    | १ ७   | १८६ | ४५ | ४६ | ४७ | ४८ | ०  |
|    | १ ७   | १८२ | ४४ | ४५ | ४६ | ४७ | ०  |
|    | १ ७   | १७८ | ४३ | ४४ | ४५ | ४६ | ०  |
|    | प १   | १७४ | ४२ | ४३ | ४४ | ४५ | ०  |
|    | १     | १७० | ४१ | ४२ | ४३ | ४४ | ३० |
|    | प १   | १६६ | ४० | ४१ | ४२ | ४३ | ३० |
|    | प १   | १६२ | ३९ | ४० | ४१ | ४२ | ३० |
|    | सिति  |     |    |    |    |    |    |

अनंतरं मूलप्रकृतिगच्छो जघन्यस्थितिबंधमं पेच्छदपरः—

वारस य वेयणीये नामागोदे य अड्ड य मुहुत्ता ।

भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥१३९॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रे चाष्टौ मुहूर्ताः । भिन्नमुहूर्ता तु स्थितिर्जघन्या शेषपञ्चानां ॥

वेदनीयवोळु जघन्यस्थितिबंधं द्वादशमुहूर्तगळप्पुवु । नामगोत्रं गळोळु प्रत्येकमष्टमुहूर्तगळु जघन्यस्थितिबंधमक्कुं । शेषपंचमूलप्रकृतिगच्छो तु मत्ते जघन्यस्थितिबंधमन्तमुहूर्तमात्रं प्रत्येकमक्कुं । ज्ञा २१ । द २१ । वे । मु १२ । मो २१ आ २१ नाम मु ८ । गोत्र मु ८ । अं २१ ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगच्छो गाथाचतुष्टयविदं जघन्यस्थितिबंधमं पेच्छदपरः—

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओधं दुगेक्कदलमासं ।

कोहतिये पुरिसस्स य अड्ड य वस्सा जहण्णठिदी ॥१४०॥

लोभस्य सूक्ष्मसप्तदशानामोघः द्व्येक दलमासः । क्रोधत्रये पुरुषस्य चाष्ट वर्षाणि जघन्यस्थितिः ॥

अथ मूलप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धानाह—

जघन्यस्थितिबन्धो वेदनीये द्वादश मुहूर्ताः, नामगोत्रयोरष्टौ, शेषपञ्चानां तु पुनः एकैकोऽन्त-  
१५ मुहूर्तः ॥१३९॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथाचतुष्टयेनाह—

संज्ञा ईषत् है । तथा जैसे उनतालीसमें अनुकृष्टिका एक चय मिलानेपर चालीस होता है । यह दूसरा खण्ड है, उसमें एक चय मिलानेपर तीसरा खण्ड होता है इकतालीस, वैसे ही प्रथम खण्डमें अनुकृष्टिका चय मिलानेपर दूसरा खण्ड होता है । उसमें एक चय मिलानेपर तीसरा खण्ड होता है । इस प्रकार एक कम अन्तिम खण्ड पर्यन्त जितने खण्ड हों उनकी मध्यम संज्ञा है । तथा जैसे अन्तिम खण्ड बयालीस है वैसे ही यहाँ एक-एक चय मिलानेपर अन्तिम खण्डका जो प्रमाण हो उसकी उत्कृष्ट संज्ञा है । इस प्रकार जघन्य स्थिति सम्बन्धी परिणामोंके खण्ड कहे । तथा जैसे दूसरा स्थान एक सौ छियासठ है, उसके चार खण्डोंमें ४०, ४१, ४२, ४३ प्रमाण कहा है । वैसे ही यहाँ भी जघन्यसे एक समय अधिक दूसरी स्थितिके कारण अध्यवसाय स्थानोंके खण्डोंका प्रमाण पूर्वोक्त विधानके अनुसार जानना ।  
२५ जैसे अन्तके स्थानमें दो सौ बाईस प्रमाण होता है और उसके खण्डोंका चौवन, पचपन, छप्पन, सत्तावन, ५४, ५५, ५६, ५७ प्रमाण होता है । उसी प्रकार यहाँ एक एक ऊर्ध्वचय बढ़ाते-बढ़ाते उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका जो प्रमाण होता है, उसके पूर्वोक्त विधानसे खण्ड करनेपर प्रथम खण्डकी ईषत् संकलेश संज्ञा है । मध्यके खण्डोंकी मध्य संकलेश संज्ञा है और अन्तके खण्डकी उत्कृष्ट संकलेश संज्ञा है । अधःकरणकी तरह  
३० यहाँ भी नीचेकी स्थितिके कारण अध्यवसाय और उनके ऊपरकी स्थितिके कारण अध्यवसायोंमें संख्या, संकलेश और विशुद्धिसे समानपना जानना । इसीका नाम अनुकृष्टि है ॥१३७-१३८॥

मूल प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं—

जघन्य स्थितिबन्ध वेदनीयमें बारह मुहूर्त है, नाम और गोत्रमें आठ मुहूर्त है । शेष पाँच कर्मोंमें एक-एक अन्तमुहूर्त है ॥१३९॥

लोभकषायककेयुं सूक्ष्मसांपरायन बंधप्रकृतिगळु १७ वकं मूलप्रकृतिगळगे पेळदोघं जघन्य-  
स्थितिवंधमक्कुं । क्रोधमानमायात्रयक्के यथाक्रमविदं द्विमासमुमेकमासमुमर्द्धमासमुमक्कुं । पुरुष-  
वेदक्के जघन्यस्थितिवंधमण्डवधंगळप्पुवु ॥

तित्थाहाराणंतोकोडाकोडीजहण्णठिदिवंधो ।

खवगे सगसगबंधणछेदनकाले हवे नियमा ॥१४१॥

५

तीर्थाहाराणामंतःकोटीकोटिजघन्यस्थितिवंधः । क्षपके स्वस्वबंधच्छेदनकाले भवेन्निय-  
मात् ॥

तीर्थनामप्रकृतिगमाहारद्वयवकं जघन्यस्थितिवंधमन्तःकोटीकोटिसागरोपममक्कुमी  
प्रकृतिगळगे जघन्यस्थितिवंधंगळु क्षपकरोळु तंतम्म बंधव्युच्छित्तिकालदोळे तंतम्म गुणस्थान-  
चरमदोळे नियमविवमप्पुवु ॥

१०

भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं वासदससहस्साणि ।

सुरणिरय आउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिवंधो ॥१४२॥

भिन्नमुहूर्तो नरतिर्यगायुषोः वर्षदशसहस्राणि । सुरनारकायुषोः जघन्यो भवति  
स्थितिवंधः ॥

मनुष्यायुष्यवकं तिर्यगायुष्यवकं जघन्यस्थितिवंधमन्तर्मुहूर्तमक्कुं । सुरायुष्यवकं नरकायु- १५  
ष्यवकं जघन्यस्थितिवंधं दशसहस्रवर्षंगळप्पुवु ॥

सेसाणं पज्जतो बादरएइंदियो विसुद्धो य ।

बंधदि सव्वजहण्णं सगसग उक्कस्सपडिभागे ॥१४३॥

शेषाणां पर्याप्तो बादर एकेन्द्रियो विशुद्धश्च बध्नाति सर्वजघन्यां स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागे ॥

लोभस्य सूक्ष्मसांपरायबन्धसमदशानां च जघन्यस्थितिवन्धः मूलप्रकृतिवद्भवति, क्रोधस्य द्वौ मासौ, २०  
मानस्यैकमासः, मायाया अर्धमासः, पुंवेदस्याष्टवर्षाणि ॥१४०॥

तीर्थकराहारकद्विकयोरन्तःकोटीकोटिसागरोपमाणि । अयं जघन्यस्थितिवन्धः सर्वोऽपि क्षपकेषु स्वस्व-  
बन्धव्युच्छित्तिकाले एव नियमाद् भवति ॥१४१॥

नरतिर्यगायुषोर्जघन्यस्थितिवन्धोऽन्तर्मुहूर्तो भवति, सुरनारकायुषोः दशसहस्रवर्षाणि ॥१४२॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिवन्ध चार गाथाओंसे कहते हैं—

२५

लोभ और सूक्ष्म सांपरायमें बंधनेवाली सतरह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिवन्ध  
मूल प्रकृतिकी तरह होता है । अर्थात् यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका आठ मुहूर्त, सातावेदनीय-  
का बारह मुहूर्त, शेषका एक-एक अन्तर्मुहूर्त जानना । क्रोधका दो मास, मानका एक मास,  
मायाका अर्धमास और पुरुषवेदका आठ वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिवन्ध होता है ॥१४०॥

तीर्थकर और आहारकद्विकका अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । यह सब जघन्य-  
स्थितिवन्ध क्षपक श्रेणीवालोंके अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके कालमें नियमसे होता ॥१४१॥

३०

मनुष्यायु और तिर्यच्चायुका जघन्य स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्त होता है । तथा देवायु,  
नरकायुका दस हजार वर्ष होता है ॥१४२॥

बंधप्रकृतिगळु १२० रोजे जघन्यस्थितिबंधं कठोक्तमाणि २९ प्रकृतिगळगे पेळस्पट्टुबिन्नु-  
 ळिब ९१ प्रकृतिगळोळु वैक्रियिकषट्कमं कळेदुळिब ८५ रोजं मिथ्यात्वप्रकृतियुमं कळेदु शेष ८४  
 प्रकृतिगळगे जघन्यस्थितियं बादरैकेन्द्रियपर्याप्तजीवं सर्वजघन्यमं कट्टुगुमेकेबोडा एकेंद्रियजीवंगा  
 प्रकृतिगळु बंधयोसं गळप्पुदरिबन्तु कट्टुतलुमा प्रकृतिगळगे स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागोळु कट्टुगुं  
 ५ त्रैराशिकविधानविदं कट्टुगुमेबुबत्थमेकेबोडविकागमननिमित्तं भागहारः । प्रतिभागहारः एद्विन्तु  
 प्रतिभागहारविधानमुंटप्पुदरिबं— ज लो १ जा ५ वि ५ व ४ ज स १ उच्च १ वे १ को १  
 २१ २१ मु ८ मु १२ मा २  
 मा १ माया १ पुं १ ति १ आ २ म १ ति १ सु १ ना १ उक्त २९ शेष  
 मा १  
 मा २ वर्ष ८ सा अन्तः को २ २१ वर्ष १०००० ९१

अनन्तरमी शेषप्रकृतिगळगे स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागविदं जघन्यस्थितिबंधमं साधिसुबुपायमं  
 १० पेळवपरु :—

एयं पणकदि पणं सयं सहसं च मिच्छवरबंधो ।

इगिविगलाणं अवरं पन्नासंखणसंखणं ॥१४४॥

एकः पंचकृतिः पंचाशत् शतं सहस्रं च मिथ्यात्वोत्कृष्टबंधः । एकविकलानामवरः पत्या-  
 संख्योनः संख्योनः ॥

१५ एकेंद्रियजीवंगळु मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमनेकसागरोपममं माळपुवु । द्वीन्द्रिय-  
 जीवंगळुमा मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं पंचविंशतिसागरोपममं माळपुवु । त्रीन्द्रियजीवंगळुमा

उक्ताभ्यः २९ शेषप्रकृतीनां ९१ मध्ये वैक्रियिकषट्कमिथ्यात्वरहितानां ८४ जघन्यस्थिति बादरैकेन्द्रिय-  
 पर्याप्तैः तद्योग्यविशुद्ध एव बध्नाति स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागेन त्रैराशिकविधानेनेत्यर्थः ॥१४३॥ तद्यथा —

एकेन्द्रिया मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितिमेकसागरोपमं बध्नन्ति, द्वीन्द्रियाः पञ्चविंशतिसागरोपमाणि, त्रीन्द्रियाः

२० उक्त २९ प्रकृतियोंसे शेष रही ९१ प्रकृतियोंमें-से वैक्रियिकषट्क और मिथ्यात्वके  
 बिना ८४ की जघन्य स्थितिको बादर एकेन्द्री पर्याप्त उसके योग्य विशुद्धताका धारक होकर  
 बाँधता है । सो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्रतिभाग द्वारा त्रैराशिक विधानके अनुसार  
 बाँधता है ॥१४३॥

वही कहते हैं—

२५ एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण बाँधते हैं । दो-इन्द्रिय

१. ब<sup>०</sup>त्त एक ।

| २. | एकें          | द्वी          | त्री          | चतुः          | असं           | संज्ञि      |
|----|---------------|---------------|---------------|---------------|---------------|-------------|
| उ  | सा १          | सा २५         | सा ५०         | सा १००        | सा १०००       | सा ७० को १  |
| ज  | सा १          | सा २५         | सा ५०         | सा १००        | सा १०००       | सा अतः को २ |
|    | $\frac{१}{५}$ | $\frac{१}{५}$ | $\frac{१}{५}$ | $\frac{१}{५}$ | $\frac{१}{५}$ |             |
|    | ०             | १।४           | १।३           | १।२           | १             |             |

मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं पंचाशत्सागरोपममं माळपुबु । चतुरिन्द्रियजीवंगळुमा मिथ्यात्व-  
प्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं शतसागरोपमंगळं माळपुबु । असंज्ञिपंचेन्द्रियजीवंगळुमा मिथ्यात्व-  
प्रकृतिगे उत्कृष्टस्थितिबंधमं सहस्रसागरोपमंगळं माळपुबु । संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तजीवंगळु सप्तति-  
कोटीकोटिसागरोपमंगळनुत्कृष्टस्थितिबंधमं मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळपरितो एकविकलेन्द्रियजीवंग-  
ळी मिथ्यात्वप्रकृतिगे जघन्यस्थितिबंधमं क्रमदिनेकेन्द्रियजीवंगळु पत्यासंख्येयभागोनमुं द्वीन्द्रियावि- ५  
जीवंगळु मिथ्यात्व प्रकृतिगे जघन्यस्थितिबंधमं पत्यासंख्येयभागोनक्रमदिवं माळपर :-

|   | एकं   | द्वीन्द्रि | त्री   | चतु     | असं      | संज्ञि        |
|---|-------|------------|--------|---------|----------|---------------|
| उ | सा १  | सा २५      | सा ५०  | सा १००  | सा १०००  | सा ७० को २    |
| ज | सा १२ | सा २५२     | सा ५०२ | सा १००२ | सा १०००२ | सा अन्तः को २ |
|   | ५     | ५१         | ५      | ५-१     | ५-१      |               |
|   | ०     | ७४         | ७।३    | ७।२     | ७        |               |

तदनंतरं मुपेक्ष्युत्कृष्टस्थितिबंधमं संज्ञिपर्याप्तकमिथ्यादृष्टि माळपनें बु पेळरपुवरिनोगळे-  
केन्द्रियाविजीवंगळुगुत्कृष्टस्थितिबंधमुमं जघन्यस्थितिबंधमुमं पेळवलि त्रैराशिकविधानदिवं  
पेळवपरवे ते बोडे :-

जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं ।

१०

इदि संपादे सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ॥१४५॥

यदि सप्ततेरेतावन्मात्रं किं भवति त्रैशत्कादीनां । इति संपाते शेषाणामेकविकलेषुभय-  
स्थितिः ॥

पञ्चाशत्सागरोपमाणि, चतुरिन्द्रियाः शतसागरोपमाणि, असंज्ञिनः सहस्रसागरोपमाणि, संज्ञिनः पर्याप्ता एव  
सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि । तज्जघन्यस्तु एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादीनां स्वस्वोत्कृष्टापत्यासंख्येयभागोनक्रमो १५  
भवति ॥१४४॥ तत्संख्युत्कृष्टेन एकेन्द्रियादीनामुत्कृष्टजघन्यावाह—

पञ्चीस सागर प्रमाण बाँधते हैं । त्रीन्द्रिय पचास सागर प्रमाण बाँधते हैं । चौद्विन्द्रिय सौ  
सागर प्रमाण बाँधते हैं । असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय एक हजार सागर प्रमाण बाँधते हैं । संज्ञीपर्याप्त  
ही सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बाँधते हैं । तथा मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रिय  
अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे पत्यके असंख्यातवें भाग कम बाँधता है । और शेष द्वीन्द्रिय आदि २०  
अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे पत्यके संख्यातवें भाग हीन बाँधते हैं ॥१४४॥

आगे संज्ञी पञ्चेन्द्रियके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा एकेन्द्रियादिके उत्कृष्ट और  
जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण कहते हैं—

१. ई रचनेयोलु जघन्यस्थितियोलिदे रूपनूनते मंदे “जेठुबाहोवट्टिय” एंव गाथाव्याख्यानदोलु व्यक्तमादपुदु=  
उक्कस्सट्ठिदीवंधो सण्णि पज्जत्तगे जोग्गे इति गाथातेन । सबुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठिदु वंधको भणिदी । २५  
इति गाथांशेन प्रागुक्तत्वात् ।



- यदि एतलानुं सप्ततेः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमवक्के एतावन्मात्रं धितु प्रमाणं स्थितिवन्ध-  
मवकुम्पोडागळु तीसियादीणं तीसियादिगळगे किं भवति एतितु स्थितिवन्धमवकुं इति इहिगेडु  
संपाते अनुपातत्रैराशिकं माडित्पडुत्तिरलु तीसियासीदिगळगमवल्लद शेवाणां शेवोत्तरप्रकृति-  
गळगेयुं । १८ । १६ । १५ । १४ । १२ । १० कोटीकोटिसागरोपम स्थितिवन्धमनुळुवक्के यथा-  
५ योग्यगळगे एकविकलेषु एकेंद्रियविकलेन्द्रियजीवंगळोळु उभयस्थितिः उत्कृष्टस्थितिवन्धमु जघन्य-  
स्थितिवन्धमुमरियत्पडुवुवदेते दोडे सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिवन्धमनुळु मिथ्यात्वप्रकृतिगे  
एकेंद्रियजीवनोडु सागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा एकेंद्रियजीवं षोडशकषायचाळीसीयं-  
गळगेनितुं स्थितियं कट्टुगुमे दिन्तनुपातत्रैराशिकं माडि प्र सा ७० को २ । प सा १ । इ । सा ४० ।  
को २ । गे वंद लब्धमेकेंद्रियजीवं चाळीसियंगळगे कट्टुउ उत्कृष्टस्थितिवन्धप्रमाणमेकसागरोपम-  
१० चतुःसप्तमभागमवकुं सा ४ मत्तमेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितिवन्धमनुळु मिथ्यात्वप्रकृतिगे  
७  
एकेंद्रियजीवनेकसागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा जीवं । असात १ घाति १९ अन्तु विंशति-  
तीसिय प्रकृतिगळगेनितुं स्थितियं कट्टुगुमे दिन्तु अनुपातत्रैराशिकं माडि । प्र सा ७० को २ । फ  
सा १ । इ सा ३० को २ । लब्धमेकेंद्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुववुत्कृष्टस्थितिवन्धप्रमाणमेक-  
सागरोपमत्रिसप्तमभागमवकुं सा ३ मत्तमेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपममुत्कृष्टस्थितिवन्धमनुळु  
७

- १५ सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमोत्कृष्टस्थितिकमिथ्यात्वस्य यद्येकसागरोपममात्रं बध्नाति तदा तीसियादीनां  
किं भवति ? इति लब्धः एकेन्द्रियस्य उत्कृष्टस्थितिवन्धः चालीसियानां षोडशकषायानां एकसागरोपमचतुःसप्त-  
भागः सा ४ । अनेन त्रैराशिकक्रमेण तीसियानामसातवेदनीयैकान्तविंशतिधातिनां एकसागरोपमत्रिसप्तभागः सा  
७  
३ । बीसियानां दृण्डासंप्राप्तसृपाटिकाऽरतिरतिशोकषण्डवेदतिथ्यंगद्विकभयद्विकतैजसद्विकौदारिकद्विकातपद्विकनीचै-  
७

- सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले मिथ्यात्वका यदि एकेन्द्रिय जीव  
२० एक सागर प्रमाण बन्ध करता है तो जिन कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर आदि प्रमाण  
स्थिति है उनका वह कितना बन्ध करता है ऐसा त्रैराशिक करना चाहिए । सो प्रमाणराशि  
सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एक सागर, इच्छाराशि जिस कर्मकी ज्ञात करना हो  
उसकी स्थिति तीस, चालीस, बीस आदि कोड़ाकोड़ी सागर । यहाँ फलराशिको इच्छाराशि-  
से गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी उत्कृष्ट स्थिति उस  
२५ कर्मकी एकेन्द्रिय जीव बाँधता है । सो सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी  
सागर है । इसको पूर्वोक्त प्रकार इच्छाराशि एक सागरसे गुणा करके उसमें प्रमाणराशि  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरसे भाग देनेपर लब्ध एक सागरके सात  
भागोंमें-से चार भाग प्रमाण स्थिति एकेन्द्रियके बाँधती है । इसी प्रकार तीस कोड़ाकोड़ी  
सागर उत्कृष्ट स्थितिवाले असातवेदनीय तथा घातिया कर्मोंकी उन्नीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट  
३० स्थितिवन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सात भागोंमें-से तीन भाग होता है । बीस कोड़ाकोड़ी  
सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले दृण्डासंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, अरति, रति, शोक,

मिथ्यात्वप्रकृतिगेकेंद्रियजीवनेकसागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागच्छा जीवं हुंडसंस्थानमुमसंप्राप्त-  
सृपाटिकासंहननमुमरतिशोकषण्डवेदतिर्घ्यद्विद्वगक भयद्विक तैजसद्विक औदारिकद्विक आतपद्विक  
नीचैर्गोत्र त्रसचतुष्क वर्णचतुष्क अगुरुलघु उपघातपरघात उच्छ्वास एकेंद्रियपंचेंद्रियस्थावर-  
निर्माण असद्गमन अस्थिरषट्कमेव ३९ प्रकृतिगळु विसियंगळगेनितुं स्थितियं कट्टुगुमेदितनु-  
पातत्रैराशिकं माडिं प्र सा ७० को २। फ सा १। इ सा २० को २। गळगे लब्धमेकेंद्रियजीवं ५  
विसियंगळगे कट्टुबुत्तुकृष्टस्थितिबन्धप्रमाणमेकसागरोपमद्विसप्तमभागमक्कु— सा २ मी प्रकारविदं  
७

शेष सात स्त्रीवेद मनुष्ययुगळंगळ। सा १५ को २। स्थितिगं। वामन कीलित विकलत्रय सूक्ष्म-  
त्रयंगळ सा १८ को २ स्थितिगं। कुब्जाद्धनाराचंगळ सा १६ को २ स्थितिगं। स्वातिनाराचंगळ  
सा १४ को २ स्थितिगं। न्यग्रोधवज्रनाराचंगळ सा १२ को २ स्थितिगं। समचतुरस्रवज्ररूपभ-  
नाराचहास्यरतिउच्चैर्गोत्रपुरुषवेदस्थिरषट्क सद्गमनमेव १३ प्रकृतिगळ सा १० को २ १०  
स्थितिगमिन्तु तिर्घ्यगति संबंधिबन्धयोग्यप्रकृतिगळ ११७। रोलगे वैक्रियिकषट्कमुं सुरनारकायु-

गोत्रत्रसप्ततुष्कवर्णचतुष्कागुरुलघुपघातपरघातोच्छ्वासैकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियस्थावरनिर्माणसद्गमना-स्थिरषटकानां  
३९ एकसागरोपमद्विसप्तभागो भवति सा २। पुनः अनेन संपातत्रैराशिकक्रमेण शेषाणां सागरपञ्चदशकोटी-

कोटिस्थिति सातस्त्रीवेदमनुष्ययुग्मानां सागराष्टादशकोटीकोटिस्थिति वामनकीलितविकलत्रयसूक्ष्मत्रयाणां सागर-  
षोडशकोटीकोटिस्थिति कुब्जाद्धनाराचयोः सागरचतुर्दशकोटीकोटिस्थिति स्वातिनाराचयोः सागरद्वादशकोटीकोटि- १५  
स्थितिन्यग्रोधवज्रनाराचयोः सागरदशकोटीस्थिति समचतुरस्रवज्ररूपभनाराचहास्यरत्युच्चैर्गोत्रपुरुषवेदस्थिरषट्क-  
सद्गमनायां च उत्कृष्टस्थितिबन्धं एकेन्द्रियस्य साधयेत्। एकं पञ्चविंशति पञ्चाशत् शतं सहस्रं सागरोपमाणि  
चतुरः फलराशीन् कृत्वा चालीसियादीनि पृथक् पृथक् इच्छाराशीन् कृत्वा प्रमाणराशिं प्राक्तनमेव कृत्वा

नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामर्षण, औदारिक शरीर, २०  
औदारिक अंगोपांग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, वर्णादिचार,  
अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त-  
विहायोगति, स्थिरादि छह इन ३९ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके  
सात भागोंमें-से दो भाग प्रमाण होता है। इसी त्रैराशिकके क्रमसे शेष पन्द्रह कोड़ाकोड़ी  
सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले सातवेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यद्विक आदिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध  
एकेन्द्रियके एक सागरके सत्तर भागोंमें-से पन्द्रह भाग प्रमाण होता है। अठारह कोड़ाकोड़ी २५  
सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले वामन संस्थान, कीलितसंहनन, विकलत्रय, सूक्ष्मत्रिकका  
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सत्तर भागोंमें-से अठारह भाग प्रमाण होता  
है। सोलह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले कुब्जक संस्थान, अर्धनाराचसंहनन-  
का एक सागरके सत्तर भागोंमें-से सोलह प्रमाण, चौदह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट-  
स्थितिवाले स्वातिसंस्थान, नाराच संहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें चौदह भाग ३०  
प्रमाण, बारह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले न्यग्रोधसंस्थान और वज्रनाराच  
संहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें-से बारह भाग प्रमाण, दस कोड़ाकोड़ी सागरकी  
उत्कृष्ट स्थितिवाले समचतुरस्र संस्थान वज्ररूप नाराच संहनन, हास्य, रति, उच्चगोत्र,

द्विकमुने ब अयोग्यप्रकृत्यष्टकमं कळदुळिद १०९ प्रकृतिगळगी प्रतिभागकर्मदिदं उत्कृष्टस्थितिबंध-  
मनेके द्वियजीवंगळो साधिसिबन्ते द्वीद्वियादिगळगं साधिसत्पडुवुदु । संदृष्टिरचने

|   | ए    | द्वी      | त्री    | चतु      | असं       |
|---|------|-----------|---------|----------|-----------|
| उ | सा ४ | सा २५ । ४ | सा ५० ४ | सा १०० ४ | सा १००० ४ |
| उ | ७    | ७         | ७       | ७        | ७         |
| उ | सा ३ | सा २५ । ३ | सा ५० ३ | सा १०० ३ | सा १००० ३ |
|   | ७    | ७         | ७       | ७        | ७         |
|   | सा २ | सा २५ । २ | सा ५० २ | सा १०० २ | सा १००० २ |
|   | ७    | ७         | ७       | ७        | ७         |

लब्धानि द्वीन्द्रियादीनां चालीसियादिगतोत्कृष्टस्थितिबन्धप्रमाणानि भवन्ति । एवं जघन्यस्थितिबन्धमप्येकेन्द्रि-  
यादीनां साधयेत् ॥१४५॥

- ५ पुरुषवेद, स्थिरादि छह और प्रशस्तविहायोगतिका उत्कृष्टस्थिति बन्ध एक सागरके सात भागोंमें-से एक भाग प्रमाण एकेन्द्रिय जीवके साधना चाहिए । इसी प्रकार पच्चीस, पचास, सौ और हजार सागर इन चारको फल राशि करके चालीस आदि कोड़ाकोड़ी सागरको पृथक्-पृथक् इच्छाराशि करके और प्रमाणराशि पूर्वोक्त सत्तर कोड़ाकोड़ीको करके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंखि पञ्चेन्द्रियके क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ और हजारसे गुणित उक्त एकेन्द्रियके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है ।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार जानना—

- १५ दो-इन्द्रिय जीवके सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यात्व कर्म पच्चीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति लेकर बँधता है तो तीस आदि कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाले कर्म दो-इन्द्रिय जीवके कितनी स्थिति लेकर बँधते हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पच्चीस सागर और इच्छाराशि विवक्षित कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण, सो फलराशिसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी उत्कृष्ट स्थिति दो-इन्द्रिय जीवके बँधती है । सो जिनकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनकी सौ सागरका सातवाँ भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बँधती है । जिनकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनकी पिचहत्तर सागरका सातवाँ भाग प्रमाण बँधती है । इसी प्रकार सब कर्मोंकी एकेन्द्रियसे पच्चीस गुनी उत्कृष्ट स्थिति दो इन्द्रियके बँधती है । तेइन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर प्रमाण बँधती है । अतः फलराशि पचास सागर करनेपर जो जो प्रमाण आवे उतनी स्थिति अन्य कर्मोंकी बँधती है । दो इन्द्रियकी फल राशि पच्चीस सागरसे तेइन्द्रियकी फलराशि दूनी

| १. |      | एक   | द्वी    | त्री    | चतु      | असं       |
|----|------|------|---------|---------|----------|-----------|
| उ  | चाली | सा ४ | सा २५ ४ | सा ५० ४ | सा १०० ४ | सा १००० ४ |
|    |      | ७    | ७       | ७       | ७        | ७         |
| उ  | तीस  | सा ३ | सा ५० ३ | सा ५० ३ | सा १०० ३ | सा १००० ३ |
|    |      | ७    | ७       | ७       | ७        | ७         |
| उ  | बीस  | सा २ | सा २५ २ | सा ५० २ | सा १०० २ | सा १००० २ |
|    |      | ७    | ७       | ७       | ७        | ७         |

सत्तमी एकेंद्रियाविजीवंगळगे तंतम्म योग्योत्कृष्टस्थितिबंधप्रकृतिगळगे जघन्यस्थितिबंध-  
मुमी प्रकारविदं त्रैराशिकविदं साधिसत्त्वपङ्गुमादोडमा जघन्यस्थितिबंधमुं साधिसुबल्लि विशेषमुं-  
दाउबेदोडे पेळवपर १० ॥

सण्णि असण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा ।

जेट्टे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागदियं ॥१४६॥

५

संज्ञिन्यसंज्ञिचतुष्के एकेंद्रिये अंतर्मुहूर्तमाबाधा । ज्येष्ठायां संख्येयगुणा आवलिसंख्यमसंख्यं  
भागाधिका ॥

संज्ञिजीवनोळु जघन्यस्थित्याबाधे अन्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कु २११ मेकेंदोडे संज्ञिजीवंगे जघन्य-  
स्थितिबंधमन्तःकोटीकोटिसागरोपममपुर्दारवमंतोकोडाकोडिट्टिदिसस अंतोमुहुत्तमाबाहा एंबागम-  
प्रमाणमुंत्पुर्दारवं असंज्ञिचतुष्कदोळु जघन्यस्थित्याबाधे संख्यातगुणहीनमागुत्तलुं तंतम्मुत्कृष्ट- १०  
गुणकारगुणितमक्कुमपुर्दारवमसंज्ञिजघन्यस्थित्याबाधे सहस्रगुणितान्तर्मुहूर्तमक्कु । २१ । १००० ।  
चतुरिन्द्रियजघन्यस्थित्याबाधे शतगुणितान्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कु । २१ । १०० । त्रीन्द्रियजघन्यस्थित्या-  
बाधे पंचाशद्गुणितान्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कु । २१ । ५० । द्वीन्द्रियजघन्यस्थित्याबाधे पञ्चविंशतिगुणि-  
तान्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कु । २१ । २५ । एकेंद्रियजघन्यस्थित्याबाधे अंतर्मुहूर्तमेयक्कु । २१ । ई

तत्र संभवद्विशेषमाह—

१५

संज्ञिजीवे जघन्याबाधाऽन्तर्मुहूर्ता २ १ १ तज्जघन्यस्थितेरन्तःकोटीकोटिसागरोपममात्रत्वेन तदा-  
बाधाया अग्रे तत्प्रमाणप्ररूपणात् । असंज्ञिजीवे चतुरिन्द्रिये त्रीन्द्रिये द्वीन्द्रिये एकेन्द्रियेऽपि जघन्याबाधान्त-

है । अतः दो इन्द्रियके स्थितिबन्धसे तेइन्द्रियके सब कर्मोंका स्थितिबन्ध दूना-दूना जानना ।  
चौइन्द्रियके प्रमाण राशि और इच्छाराशि पूर्वोक्त ही हैं किन्तु फल राशि सौ सागर है २०  
क्योंकि उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागर प्रमाण बँधती है । सो यहाँ भी  
फलराशि पूर्वोक्त फल राशिसे दूनी है । अतः तेइन्द्रियके स्थितिबन्धसे चौइन्द्रियका स्थिति-  
बन्ध सब कर्मोंका दूना-दूना है । असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके भी प्रमाण राशि और इच्छाराशि तो  
पूर्वोक्त ही है किन्तु फलराशि एक हजार सागर है क्योंकि उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति  
हजार सागर प्रमाण बँधती है । सो यह फलराशि चौइन्द्रियकी फलराशिसे दसगुनी है ।  
अतः चौइन्द्रियके स्थितिबन्धसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका स्थितिबन्ध सब कर्मोंका दसदस गुणा २५  
जानना । इसी प्रकार जघन्य स्थितिबन्ध भी त्रैराशिक विधान द्वारा जानना ॥१४५॥

जघन्य स्थितिबन्धके सम्बन्धमें विशेष बात कहते हैं—

संज्ञी जीवके जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है क्योंकि उसके जघन्य स्थितिबन्ध  
अन्तःकोडाकोड़ी सागर प्रमाण होता और इतनी स्थितिकी आबाधा आगे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण  
ही कही है । असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवमें तथा चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, दो इन्द्रिय और एकेन्द्रियमें ३०  
भी जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त है किन्तु संज्ञीकी जघन्य आबाधासे इनकी आबाधा क्रमसे  
संख्यातगुणा हीन है । क्योंकि एकेन्द्रियकी जघन्य आबाधासे द्वीन्द्रियादिककी जघन्य  
आबाधा क्रमसे पञ्चीस, पचास, सौ और हजार गुनी है अतः विपरीत क्रमसे संख्यातगुणा-

जीवंगल उत्कृष्टस्थितिबाधाधे यथाक्रमदिवं संज्ञियोऽनु संख्येयगुणा तन्न जघन्यस्थित्याबाधेयं नोडलु संख्यातगुणमवकुं । २११ । ४ । असंज्ञिचतुष्ट्वोऽनु कमदिवं द्वीन्द्रियपद्व्यंतं आवलिसंख्येयभागं संख्यातगुणहीनक्रमदिवं साधिकमवकुमदेते दोडे असंज्ञियुत्कृष्टस्थित्याबाधे तन्न जघन्यमं नोडलावलिसंख्येयभागाधिकमवकुं । २१ । १००० । चतुरिन्द्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे तत्संख्यातगुणहीनावलि-  
५ संख्येयभागाधिकं तन्न जघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयवकुं — २ त्रीन्द्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे  
११  
२१ । १००

तत्संख्यातगुणहीनावलिसंख्येयभागाधिकस्वजघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयवकुं २ द्वीन्द्रियोत्कृष्ट-  
१११  
२१५०

स्थित्याबाधे तत्संख्येय गुणहीनावलिसंख्येय भागाधिकस्वजघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयवकुं २  
११११  
२१२५

एकेन्द्रिये एकेन्द्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे असंख्यभागाधिका तन्न जघन्यस्थित्याबाधेयं नोडलुत्कृष्टस्थित्या-  
बाधे आवल्यसंख्येयभागाधिकमवकुं २१ ॥ संज्ञियुत्कृष्टाबाधे उ २११ । ४ असंज्ञिगे उत्कृष्टाबाधे-  
ज २११ । १

|             |                  |           |              |              |
|-------------|------------------|-----------|--------------|--------------|
| २           | २                | २         | २            | २            |
| १           | ११               | २१११      | ११११         | ०            |
| उ २१ । १००० | चतु = उ २१ । १०० | ति उ २११  | द्वी उ २१ २५ | ए = उ २१ । १ |
| ज २१ । १००० | ज २१ । १००       | ज २१ । ५० | ज २१ २५      | ज २१ । १     |

मुहूर्ता । एयं पणकविपणं सयं सहस्रमिति स्वस्वोत्कृष्टगुणकारगुणितत्वे संज्ञिजघन्याबाधातः संख्यातगुणहीन-  
क्रमत्वे च तदालापस्यात्यजनात् । उत्कृष्टाबाधा तु स्वस्वजघन्यतः संज्ञिजीवे संख्यातगुणा । असंज्ञिचतुष्ट्वे  
संख्यातगुणहीनक्रमा आवलिसंख्येयभागाधिका । एकेन्द्रिये आवल्यसंख्येयभागाधिका च भवति ।

- १५ हीन कही है । उत्कृष्ट आबाधा अपनी-अपनी जघन्य आबाधासे संज्ञी जीवमें संख्यात गुणी, असंज्ञि पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय त्रीन्द्रिय, दो इन्द्रियके आवलीके संख्यातवें भाग अधिक और एकेन्द्रियके आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक है । यह उत्कृष्ट आबाधा भी क्रमसे संख्यातगुणा हीन है । एकेन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आबाधामें-से जघन्य आबाधाको घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उसमें एक मिलानेपर एकेन्द्रिय जीवकी आबाधाके भेद होते हैं ।  
२० इसी प्रकार दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञीमें अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधामें-से अपनी-अपनी जघन्य आबाधाको घटाकर उसमें एक मिलानेसे आबाधाके भेदका प्रमाण होता है । कहा है आदिको अन्तमें-से घटाकर वृद्धिका भाग दे और एक

| १. | संज्ञि  | अ      | चतु      | त्री  | द्वी  | ए   |
|----|---------|--------|----------|-------|-------|-----|
|    | २११ । ४ | २      | २        | २१११  | २११११ | २   |
|    |         | १      | ११       |       |       | ०   |
|    |         | २११००० | २१ । १०० | २१ ५० | २१ २५ | २११ |

ई जघन्योत्कृष्टाबाधेगल जघन्यमनुत्कृष्टदोळकळेवु आदियं २१ । अन्त २१ दोळ कळेवोडे २ वृद्धि  
२  
०

एकरूपविदं भागिसिदोड तावन्मात्रनेयकुं । रूपं कूडिदोडे २ स्थानविकल्पंगळिते द्वीन्द्रियादि-  
०

गळगमरियल्पडुगुं द्वि १ त्रि १ च १ अस १ सं इवाबाधाविकल्पंगळु । इयं

१।४ १।३ १।२ २११ २११।४

मनदोळवधरिसिदंगे बळिकं जघन्यस्थितिबंधमं साधिसुव करणसूत्रमं पेळवपरः—

जेढाबाहोवट्टियजेट्ठं आयाहकंडयं तेण ।

आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूण जेट्ठमवरठिदी ॥१४७॥

ज्येष्ठाबाधापर्यतिता ज्येष्ठा आबाधाकांडकं तेनाबाधाविकल्पहतेनैकोनेनोनज्येष्ठा अवर-  
स्थितिः ॥

इल्लि एकेन्द्रियादि तंतम्भुत्कृष्टस्थित्याबाधेयिदं तंतम्भुत्कृष्टस्थितिं भागिसि दोडेकभाग-  
प्रमाणमदु आबाधाकांडकप्रमाणमवकुमदनाबाधाविकल्पंगळ प्रमाणदिदं गुणिसि लब्धराशियोळेकरूपं-  
कळेदुदनुत्कृष्टस्थितियोळकळेदोडे शेषं जघन्यस्थितियकुमदेते दोडेकेन्द्रियोत्कृष्टमिथ्यात्वप्रकृति-  
१०

आबाधाविकल्पास्तु एकेन्द्रिये आदी २ १ अन्ते २ सुद्धे २ वृद्धि १ हिंदे रुवसंजुदे २ ठाणा । एवं  
० ० ०  
२ १

| द्वी | त्रीन्द्रिय | चतुरिन्द्रिय | असं | संज्ञि |
|------|-------------|--------------|-----|--------|
| १—   | १—          | १—           | १—  | १—     |
| २    | २           | २            | २   | २      |
| १।४  | १।३         | १।२          | १।१ | २११४   |

द्वीन्द्रियादावप्यानेतव्याः ॥१४८॥ अर्थतत्सर्वं मनसि धृत्वा जघन्यस्थितिबन्धसाधनकरणसूत्रमाह—

एकेन्द्रियादीनां स्वस्वोत्कृष्टाबाधया भक्तस्वस्वोत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकप्रमाणं भवति तेन काण्डकेन

मिलानेपर स्थानोंका प्रमाण होता है । सो यहाँ जघन्य आबाधा आदि है और उत्कृष्ट  
आबाधा अन्त है । अन्तमें-से आदिको घटाकर उसमें एक-एक समयकी वृद्धि होनेसे एकका  
भाग देकर एक मिलानेपर विकल्प होते हैं । इसी तरह दो इन्द्रिय आदिमें भी आबाधाके  
विकल्प लाने चाहिए ॥१४६॥ १५

ये सब मनमें रखकर जघन्य स्थितिबन्धका साधक करण सूत्र कहते हैं—

एकेन्द्रियादिक जीवोंकी अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधासे अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति-  
में भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह आबाधा काण्डकका प्रमाण होता है । उस आबाधा-  
काण्डकको आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक कम करके  
अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिमें घटाने पर जो शेष रहे उतना अपना-अपना जघन्यस्थिति-  
२०

स्थित्याबाधेयिदु <sup>२</sup> <sub>०</sub> इतिगावलिगावलिधं तोरि रूपासंख्येयभागं गुणकारभूतान्तर्मुहूर्तं

संख्यातदोळु साधिकं माडिदोडिदु २१। इदरिदमेकेंद्रियजीवन तन्न मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थिति-  
येक सागरोपममदं संख्यातपत्यप्रमाणराशियं भागिसि प ११ बंध लब्धप्रमाणमाबाधाकाण्डक-  
२१

प्रमाणमक्कुमदनाबाधाविकल्पप्रमाणराशियिदं २८ गुणिसिदोडिदु प ११। २ ई आबाधाविकल्पंगळु  
२१। ०

५ रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागमेतादुदेदोडे आदी २१ अन्ते २ सुद्धे २ वडिदहिदे २ रूव-  
० ० ०। १  
२१

संजुदे ठाणा। २ एंवित्तु रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागं सिद्धमपुदरिदं। मत्तमा स्थित्याबाधा  
०  
विकल्पंगळिदं गुणिसत्पट्ट स्थित्याबाधाकाण्डकराशियोळेकरूपं कळेदोडिदु प ११ २ अपवर्तित-  
२१ ०

आबाधाविकल्पगुणितेन एकरूपीनेन ऊना उत्कृष्टस्थितिः जघन्यस्थितिर्भवति। तथाहि—

एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधेयं २ आवलेरावलि प्रदर्श्य रूपासंख्येयभागेन संख्यातगुणकारं साधिकं  
०  
२ १

१० २ १ कृत्वा अनेन तस्यैकसागरमिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितिः संख्यातपत्यमाश्री भक्ता सती प १ १ आबाधाकाण्डकं  
२ १

भवति। तच्च तस्याबाधाविकल्पः १- १-  
२ गुणयित्वा पं १ १। २ अपवर्त्य प रूपेण ऊनयित्वा उत्कृष्ट-  
० ० ०  
२ १।

स्थितावपनीतं तदा तस्य मिथ्यात्वजघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा, इमां स्थिति उत्कृष्टस्थितावपनीय शेषे

प एकेन भक्त्वा प रूपाधिकीकृते  
० ० १ ०

बन्ध जानना। इसका विवरण इस प्रकार है—एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके असंख्यातवै भाग अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कही है। उसका भाग १५ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। इस आबाधाकाण्डकको एकेन्द्रियकी आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक कम करके जो प्रमाण रहे उसे उत्कृष्ट स्थितिमें घटानेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें

प  
ठ

a

**a**

2

2

२ २५

2-

$\frac{9}{10}$

घटानेपर जो शेष रहे उसमेंसे एकसे भाग देनेपर उतना ही रहा। उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण होता है। अर्थात् जघन्यसे लेकर एक-एक समय बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके इतने भेद होते हैं। इसी प्रकार दो इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधाका प्रमाण चार बार संख्यातसे भाजित आबली मात्र अधिक पच्चीस अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। यह आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, तथापि एकेन्द्रिय जीवकी आबाधाके अन्तर्मुहूर्तसे पच्चीस गुणा है, क्योंकि दो इन्द्रियके एकेन्द्रियसे पच्चीस गुणा स्थितिबन्ध होता है। सो यहाँ एकेन्द्रियकी





सिदोडिदु २ सा १ अपवर्तितमिदु प इवरोळेकरूपं कळेदु ५ उत्कृष्टस्थितियोळकळे-  
१११। ११ १११ १११

दोडे त्रीन्द्रियजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कु सा ५० ई जघन्यस्थिति-  
१-३  
४  
१११

यनुत्कृष्टस्थितियोळकळेदेकरूपं कूडिदोडिदु प त्रीन्द्रियजीवगे मिथ्यात्वप्रकृति सर्वस्थितिबंध-  
१११

विकल्पंगळप्पुवु । चतुरिन्द्रिय जीवगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधेयिदु २ ११ ई संख्यात-  
२१। १००

द्वितयभक्तावल्यभ्यधिकशतांतर्मुहूर्तप्रमाणदिदमुत्कृष्टस्थितियं भागिसिदोडे स्थित्याबाधाकांडक-  
प्रमाणमक्कु सा १०० अपवर्तितमिदु सा १ इवनाबाधाविकल्पंगळिवं गुणिसिदोडिदु सा १  
२१। १०० २१ २  
२१। ११

अपवर्तितमिदु प इवरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितियोळकळेदोडे सा १०० इदु चतुरिन्द्रियजीवं  
११ ५  
११

ऊना उत्कृष्टस्थितिः तस्य त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वजघन्यस्थितिर्भवति सा ५० तां च उत्कृष्टस्थितौ अपनीय  
५  
१११

रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिबंधविकल्पा भवन्ति । चतुरिन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधया २  
१११ ११  
२११००

संख्यातद्वयभक्तावल्यभ्यधिकशतांतर्मुहूर्तया भक्ता उत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकं भवति सा १०० तेन अप- १०  
२११००

वर्तितेन सा आबाधाविकल्पगुणितेन १- २ अपवर्त्य ५ रूपोनेनोत्कृष्टस्थितिस्तस्य मिथ्यात्वस्य  
१ १ १  
२१ २१। ११

जो प्रमाण हो उसमें एक घटाकर उसे उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरमें-से घटानेपर त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है । इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें घटाकर शेषमें एक जोड़नेपर तेइन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण होता है । चतुरिन्द्रिय जीवके दो बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक सौ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट १५

१. बं तिमिथ्यात्व जं ।

मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिवंधप्रमाणमक्कु' सा १००० ) इदनुत्कृष्टस्थितियोळकळेदे-  

$$\frac{0}{5}$$
  
 ११

करूपं कूडिदोडे चतुरिन्द्रियजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिसर्वस्थितिवंधविकल्पंगळ प्रमाणमक्कु' ५  
 ११  
 असंज्ञिजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधेयिदु २ ई आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रां-  

$$\frac{0}{5}$$
  
 ११ । १०००

तन्मुहूर्तगळिदं तन्नुत्कृष्टमिथ्यात्वस्थितियं भागिसिदोडेकभागं स्थित्याबाधाकांडकप्रमाणमक्कु—  
 ५ सा १००० अपवर्तितमिदु सा ई स्थितिकांडकप्रमाणं स्थित्याबाधाविकल्पंगळिदं गुणिसिदो-  
 २१ । १००० २१

डिदु सा १ अपवर्तितमिदु ५ इदरोळेरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितियोळकळेदोडे असंज्ञिजीवं  

$$\frac{0}{5}$$
  
 २१ । १

मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिवंधप्रमाणमक्कु' सा १००० ) ई जघन्यमेतन्तदोळुत्कृष्ट-  

$$\frac{0}{5}$$
  
 १

जघन्यस्थितिर्भवति सा १००० ) इमांमुत्कृष्टस्थितावपनीय रूपे निमित्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति  

$$\frac{0}{5}$$
  
 ११

५ । असंज्ञिनो मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधया २ आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रान्तर्मुहूर्तभक्ता उत्कृष्ट-  
 ११ ११ २१ १०००

१० स्थितिः आबाधाकाण्डकं स्यात्—सा १००० तेन अपवर्तितेन सा आबाधाविकल्पगुणितेन सा २  

$$\frac{0}{5}$$
  
 २१ १००० २१ २१ । १

आबाधा है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। उससे चतुरिन्द्रियके आबाधाके भेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक घटाकर जो शेष रहे उसे उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरमें—से घटानेपर चतुरिन्द्रियकी जघन्य स्थितिका प्रमाण होता है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें—से घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियकी मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीका संख्यातवाँ भाग अधिक एक हजार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक हजार सागरमें भाग देनेपर आबाधाकाण्डकका प्रमाण होता है। इससे असंज्ञीके आबाधाके भेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति हजार

स्थितियो सा १००० लकठेवडेकरूपं कूडिदोडे असंज्ञीजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिसर्वस्थितिबिकल्प-  
प्रमाणमक्कुं प इयर्थसंदृष्टि सुव्यक्तमप्युवावोडं मंदबुध्यनुरोधदिदमी जघन्यस्थितिबंधानयन-

दोळं संदृष्टियं तोरिदपर । अवर विन्यासमिदु —

|                     |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |   |
|---------------------|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|---|
| स्थिति              | ६४ | ६३ | ६२ | ६१ | ६० | ५९ | ५८ | ५७ | ५६ | ५५ | ५४ | ५३ | ५२ | ५१ | ५० | ४९ | ४८ | ४७ | ४६ | ४५ | ज |
| आबाधारहित<br>स्थिति | ४८ | ४७ | ४६ | ४५ | ४५ | ४४ | ४३ | ४२ | ४२ | ४१ | ४० | ३९ | ३९ | ३८ | ३७ | ३६ | ३६ | ३५ | ३४ | ३३ | ५ |
| आबाधा               | १६ | १६ | १६ | १६ | १५ | १५ | १५ | १५ | १४ | १४ | १४ | १४ | १३ | १३ | १३ | १३ | १२ | १२ | १२ | १२ | ज |
|                     | उ  | ४  |    |    | ४  |    |    |    | ४  |    |    |    | ४  |    |    |    | ४  |    |    |    |   |

इल्लि स्थित्युत्कृष्टाबाधे यं बुदु १६ इवर्दिदमुत्कृष्टस्थितियनिदं ६४ भागिसिदोडे ६४  
१६

स्थितिकांडकं नालकवकुमाबाधाकांडकमेनेदोडे विसदृशस्थितिगळगे ६४ । ६३ । ६२ । ६१ । एकादृश-  
मप्याबाधेयक्कुं १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । निवनाबाधाकांडकमेनेदोद्याबाधाकांडकमं । ४ ।

अपवतितेन प रूपोनेनोत्कृष्टस्थितिः तस्य मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिर्भवति सा १००० तां च उत्कृष्ट- १०  
१

स्थितौ सा १००० न्यूनयित्वा रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिबिकल्पा भवन्ति प । इयमर्थसंदृष्टिः सुव्यक्तापि  
पुनरंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते—

ज्येष्ठा स्थितिः चतुःषष्टिसमया रूपोनक्रमेण मध्यमविकल्पानतीत्य जघन्या स्थितिः पञ्चवत्वारिशतसमया ।  
ज्येष्ठाबाधा षोडशसमया तथा भक्तज्येष्ठस्थितिः ६४ आबाधाकाण्डकं भवति । ४ । एतावत्सु स्थितिबिकल्पेषु  
१६

सागरमें-से घटानेपर असंज्ञीके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका प्रमाण होता है । इस जघन्य १५  
स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक मिलानेपर असंज्ञीके  
मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है ।

यद्यपि यह अर्थ संदृष्टि स्पष्ट है फिर भी इसे अंक संदृष्टि द्वारा बतलाते हैं—

उत्कृष्ट स्थिति चौंसठ समय प्रमाण है । इसमें एक-एक समय घटाते हुए मध्यके  
सब भेदों तिरसठसे छियालीस पर्यन्त बितानेपर जघन्य स्थितिका प्रमाण पैंतालीस समय २०  
है । उत्कृष्ट आबाधा सोलह समय है । उससे उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर १४ आबाधा  
काण्डक ४ होता है । अर्थात् इतने स्थितिके भेदोंमें एक-सी आबाधा होती है । तदनुसार  
चौंसठसे इकसठ तक स्थिति भेदोंमें सोलह-सोलह समय प्रमाण ही आबाधा होती है ।

|    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| १. | ६४ | ६३ | ६२ | ६१ | ६० | ५९ | ५८ | ५७ | ५६ | ५५ | ५४ | ५३ | ५२ | ५१ | ५० | ४९ | ४८ | ४७ | ४६ | ४५ |    |
|    | ४८ | ४७ | ४६ | ४५ | ४५ | ४४ | ४३ | ४२ | ४२ | ४१ | ४० | ३९ | ३९ | ३८ | ३७ | ३६ | ३६ | ३५ | ३४ | ३३ | २५ |
|    | १६ | १६ | १६ | १६ | १५ | १५ | १५ | १५ | १४ | १४ | १४ | १४ | १३ | १३ | १३ | १३ | १२ | १२ | १२ | १२ |    |

- आदी । १२ । अन्ते । १६ । सुद्धे । ४ वड्डिहिदे । ४ । इगिजुदे ४ ठाणा येंबी याबाधाविकल्प-  
गळि ४ दं गुणिसिदोडे सर्वस्थितिविकल्पप्रमितहानिवृद्धिप्रमाणमक्कु २० मल्लि प्रथमस्य  
हानिर्वा नास्ति वृद्धिर्वा नास्ति येदेकरूपं हीनं माडि १९ उत्कृष्टस्थितिज्ञातमपुदादोडदरोळकले-  
दोडे जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कु । ४५ । सो जघन्यस्थितिज्ञातमादुदादोडिल्लि वृद्धिरूपदिदं कूडिदोडु-  
५ त्कृष्टस्थितिप्रमाणमक्कु । ६४ । सो प्रकारदिदमेकेन्द्रियादिजीवंगळ सर्वप्रकृतिगळो जघन्यस्थि-  
तियं साधिसुवुदिन्नु एकेन्द्रियादिगळु चाळीसिय तीसिय बोसिय प्रकृतिगळ जघन्यस्थितिबंधमनेनि-  
तेनितं माळपरेकेंदोडे अनुपातत्रैराशिकविधानदिदं साधिसत्पडुगुमदे तेदोडे सप्ततिकोटीकोटिसागरो-  
पमस्थितियनुळळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकेन्द्रियजीव जघन्यस्थितिबंधमं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोन-  
सागरोपममं स्थितिबंधमं माडुगुमागळु नाल्वत्तुकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधंगळनुळळ चाळीसियं-  
१० गळगेनितु जघन्यस्थितिबंधमं माळपनेदिनु अनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र । सा ७० । को २ । फ ।

एतादृशी आबाधेत्यर्थः । तेन आबाधाचतुःषष्टितः एकषष्ठ्यन्तं षोडश षोडश समयैव । षष्टितः सप्तपञ्चाशदन्तं  
पञ्चदश पञ्चदशसमयैव । षट्पञ्चाशतः त्रिपञ्चाशदन्तं चतुर्दश चतुर्दशसमयैव । द्वापञ्चाशतः एकात्रपञ्चाशदन्तं  
त्रयोदश त्रयोदशसमयैव । अष्टचत्वारिंशतः पञ्चचत्वारिंशदन्तं द्वादश द्वादशसमयैव । तच्च काण्डकं ४ ।  
आदी १२ अन्ते १६ सुद्धे ४ वड्डिहिदे ४ रुवसंजुदे १ इत्यानीताबाधाविकल्पैर्गुणितं सर्वस्थितिविकल्प-  
१ ४

- १५ प्रमाणं भवति २० । तत्र प्रथमे हानिर्वा वृद्धिर्वा न इत्येकं त्यक्त्वा शेषे १९ उत्कृष्टस्थितावपनीते जघन्यस्थितिः  
४५ वा जघन्यस्थितौ युते उत्कृष्टस्थितिः ६४ भवति । एवमेकेन्द्रियादीनां सर्वप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धं  
साधयेत् । इदानीं त्रैराशिकैः कृत्वा साध्यते तद्यथा—

सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिकमिथ्यात्वस्य यद्येकेन्द्रियः जघन्यस्थितिबन्धं रूपोनपल्यासंख्यातैक-  
भागोनसागरोपममात्रं बध्नाति तदा चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिकानां किमिति ? प्र-स ७० को २ ।

- २० साठसे सत्तावन पर्यन्त स्थितिके भेदोंमें पन्द्रह-पन्द्रह समय ही आबाधा होती है । छप्पनसे  
तिरपन पर्यन्त स्थितिके भेदोंमें चौदह-चौदह समय ही आबाधाका प्रमाण होता है । बावनसे  
उनचास पर्यन्त स्थिति भेदोंमें तेरह-तेरह समय ही आबाधाका प्रमाण होता है । अड़तालीस-  
से पैंतालीस पर्यन्त स्थितिभेदोंमें बारह-बारह समय ही आबाधा होती है । इस प्रकार ये  
काण्डक चार हैं । आदि जघन्य आबाधा १२ को अन्त उत्कृष्ट आबाधा १६ में घटानेपर  
२५ चार रहते हैं । प्रतिसमय एककी वृद्धि होनेसे एकसे भाग देनेपर तथा एक जोड़नेपर  
आबाधाके भेद पाँच होते हैं । इन विकल्पोसे आबाधा काण्डकको गुणा करनेपर स्थितिके  
सब भेदोंका प्रमाण  $४ \times ५ = २०$  होता है । इनमें-से प्रथम भेदमें हानि-वृद्धि नहीं होती  
इसलिए एकको छोड़ शेष १९ को उत्कृष्ट स्थितिमें घटानेपर जघन्य स्थिति ४५ समय होती  
है । अथवा जघन्य स्थिति ४५ में उन्नीस जोड़नेपर उत्कृष्ट स्थिति ६४ होती है । इसी प्रकार  
३० एकेन्द्रिय आदिके सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धको लाना चाहिए । अब त्रैराशिकोंके  
द्वारा उसे लाते हैं—

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिवाले मिथ्यात्व कर्मका यदि एकेन्द्रिय जीव एक कम  
पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन एक सागर प्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध करता है तो चालीस

ज सा ३ सा ४० को २ बंध लब्धमिदु सा १ ४ एकेन्द्रियजीवं चालीसियंगलोकदुव  
 $\frac{प}{३}$  ७

जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं । मतमन्ते प्र सा ७० को २ । फ ज सा १ । २ इ सा ३० को २ बंध  
 $\frac{प}{३}$

लब्धमेकेन्द्रियजीवं तीसियंगळगे कदुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १ । ३ मतमन्ते प्र ।  
 $\frac{प}{३}$  ७

सा ७० को २ फ । ज सा १ । इ सा २० । को २ । बंधलब्धमेकेन्द्रियजीवं बीसियंगळगे कदुव  
 $\frac{प}{३}$

जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १ । २ द्वौद्रियादिगळगेयुमी प्रकारविदं चालीसिय ५  
 $\frac{प}{३}$  ७

तोसिय बीसियंगळ जघन्यस्थितियननुपातत्रैराशिकवि साधिसिदपरदेतेंदोडे सप्ततिकोटीकोटिसाग-

फ-ज । सा इ-सा ४० को २ । लब्धं सा १ । ४ तस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबंधप्रमाणं  
 $\frac{प}{३}$  ७

भवति । तथा प्र ७० को २ । फ ज सा १ इ सा ३० को २ लब्धं तस्य तोसियानां जघन्यस्थिति-  
 $\frac{प}{३}$

बन्धप्रमाणं भवति सा १ ३ पुनस्तथा प्र-सा ७० को २ । फ ज सा १ इ सा २० को २ लब्धं  
 $\frac{प}{३}$  ७

कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाले कर्मकी जघन्य स्थिति कितनी बाँधेगा । सो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका प्रमाण, इच्छा-  
 राशि चालीस कोड़ाकोड़ी सागर । फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग  
 देनेपर लब्ध प्रमाण जघन्य स्थितिबंधका प्रमाण होता है । इसी तरह जिस कर्मकी तीस  
 कोड़ाकोड़ी सागर और बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है उसका जघन्य स्थिति  
 बन्ध एकेन्द्रिय जीव कितना करता है । यहाँ भी प्रमाण राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर,  
 फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति, इच्छाराशि तीस कोड़ाकोड़ी सागर या  
 बीस कोड़ाकोड़ी सागर । सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग

रोपमस्थितियनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे द्वीन्द्रियजीवं जघन्यस्थितियं संख्यातचतुष्टयभक्तरूपोन-  
पत्यहीनपंचविंशतिसागरोपमजघन्यस्थितियनवक्केतलानुं कट्टुगुमाळु चत्वारिंशत्सागरोपमकोटो-  
कोटिस्थितियनुळ्ळ चालीसियंगळगेनितं जघन्यस्थितियं कट्टुगुमेदिन्तु त्रैराशिकमं माडि प्र।  
सा ७०। को २। फ। ज सा २५। ) इ सा ४०। को २। वंद लब्धं द्वीन्द्रियजीवं चालीसियं-

प  
१।४

५ गळगे माळप जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा २५। ) ४ मत्तमंते प्र। सा ७०। को २ फ  
प  
१।४।

सा २५। ) इ। सा ३०। को २। वंद लब्धं द्वीन्द्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थिति-  
प  
१।४

बंधप्रमाणमक्कुं सा २५। ) ३॥ मत्तमंते प्र। सा ७०। को २। फ सा २५। ) इ। सा  
प  
१।४

२०। कोटि २। वंद लब्धं द्वीन्द्रियजीवं विसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणं सा २५। )  
प  
१।४

तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा १ ) २ पुनस्तथा प्र-सा ७० को २। फ सा २५ )  
प  
१।४

१० इ-सा ४० को २ लब्धं द्वीन्द्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति । सा २५ ) ४ पुनस्तथा  
प  
१।४

प्र-सा ७० को २। फ-ज सा २५ इ-सा ३० को २ लब्धं तस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं  
प  
१।४

देनेपर एकेन्द्रियके उस कर्मकी जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण आता है । तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी  
सागरकी स्थितिवाला मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध दो इन्द्रियके पत्यके संख्यातवें  
भाग हीन पच्चीस सागर प्रमाण होता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति चालीस, तीस  
१५ या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध दो इन्द्रियके कितना  
होता है तो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पत्यके संख्यातवें भागहीन

मत्तमुन्ते प्र। सा ७०। को २। फ सा ५० ) इ। सा ४०। को २। बंद लब्ध त्रीन्द्रियजीवं  
 $\frac{७}{५}$   
 १।३

चालीसियंगळो कट्टुव जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणमक्कुं सा ५०। ) ४ मत्तमुन्ते प्र। सा ७०।  
 $\frac{७}{५}$   
 १।३

को २। फ सा ५०। ) इ। सा ३०। को २। बंद लब्ध त्रीन्द्रियजीवं तीसियंगळो कट्टुव  
 $\frac{७}{५}$   
 १।३

जघन्यस्थिति प्रमाणमक्कुं। सा ५०। ) ३॥ मत्तमुन्ते प्र। सा। ७०। को २ फ सा ५० )  
 $\frac{७}{५}$   $\frac{७}{५}$   
 १।३।७ १।३

इ। सा २०। को २। बंद लब्ध त्रीन्द्रियजीवं विसियंगळो कट्टुव जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणमक्कुं— ५

भवति सा २५ ) ३ पुनस्तथा प्र-सा ७० को २ फ ज सा २५ ) इ सा २० को २ लब्ध तस्य वीसियानां  
 $\frac{७}{५}$   $\frac{७}{५}$   
 १।४ १।४

जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा २५ ) २ पुनस्तथा प्र-सा ७० को २। फ ज-सा ५० ) इ सा ४०  
 $\frac{७}{५}$   $\frac{७}{५}$   
 १।४ १।३

को २ लब्ध त्रीन्द्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा ५० ) ४ पुनस्तथा प्र-सा ७० को  
 $\frac{७}{५}$   
 १।३

२। फ ज सा ५० ) इ सा ३० को २ लब्ध त्रीन्द्रियस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं  
 $\frac{७}{५}$   
 १।३

भवति सा ५० ) ३ पुनस्तथा प्र-सा ७० को २ फ-ज - सा ५० ) इ सा १०  
 $\frac{७}{५}$   $\frac{७}{५}$   
 १।३ १।३

पच्चीस सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस, बीस आदि। फलसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर द्वीन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्यस्थिति बन्धका प्रमाण होता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाला मिथ्यात्व कर्म यदि त्रीन्द्रिय-के पत्त्यके संख्यातवे भागहीन पचास सागर प्रमाण बँधता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट-



सा ५० । ) २ मत्तमन्ते प्र ७० । को २ । सा । फ सा १०० । ) इ । सा ४० । को २ ।  
 ५ १ । ३ । ५ १ । २

बंद लब्धं चतुरिन्द्रियजीवं चालीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १०० । ) ४  
 ५ १ । ० । ५ १ । ० ।

मत्तमन्ते प्र सा ७० । कोटि २ । फ सा १०० । ) इ ३० । को २ । सा । बंद लब्धं चतुरिन्द्रिय-  
 ५ १ । २ ५ १ । २

जीवं तीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १०० । ) ३ । मत्तमन्ते प्र । सा ।  
 ५ १ । २ ५ १ । २

५ ७० । को २ । फ सा १०० । ) इ । सा २० । को २ । बंद लब्धं चतुरिन्द्रियजीवं विसियंगळगे  
 ५ १ । २ ५ १ । २

२० को २ लब्धं तस्य बीसियानां जघन्यस्थितिबंधप्रमाणं भवति सा ५० ) २ पुनस्तथा प्र-सा  
 ५ १ । ३ ५ १ । ३

७० को २ । फ ज सा १०० ) इ सा ४० को २ लब्धं चतुरिन्द्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थिति-  
 ५ १ । २ ५ १ । २

बन्धप्रमाणं भवति सा १०० ) ४ पुनस्तथा प्र सा ७० को २ फ ज सा १०० ) इ-सा ३० को २ लब्धं  
 ५ १ । २ ५ १ । २ ५ १ । २

तस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबंधप्रमाणं भवति । सा १०० ) ३ पुनस्तथा प्र-सा ७० को २ । फ ज  
 ५ १ । २ ५ १ । २

- १० स्थिति चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्यस्थितिबंध त्रीन्द्रिय जीवके कितना होता है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पत्त्यके संख्यातवें भागहीन पचास सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर । फलसे इच्छाको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग देनेपर त्रीन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है । तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी

कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणं सा १०० । २ मत्तमन्ते प्र सा ७० । को २ । फ सा १००० ।  
 $\frac{१००}{१२१}$  ७  $\frac{१०००}{१२१}$

इ सा ४० । को २ । बंद लब्धमसंज्ञिजीवं चालीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमवकु—  
 सा १००० । ४ मत्तमन्ते प्र सा ७० । को २ । फ सा १००० । इ सा ३० । को २ । बंद  
 $\frac{१०००}{१२१}$  ७  $\frac{१०००}{१२१}$

लब्धमसंज्ञिजीवं तिसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमवकु । सा १००० । ३ मत्तमन्ते प्र  
 $\frac{१०००}{१२१}$  ७

सा १०० । इ सा २० को २ लब्धं तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा १०० । २ ५  
 $\frac{१००}{१२१}$  ७  $\frac{१००}{१२१}$

पुनस्तथा प्र सा ७० को २ । फ ज सा १००० । इ सा ४० को २ लब्धं असंज्ञिनः चालीसियानां जघन्य-  
 $\frac{१०००}{१२१}$  ७

स्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा १००० । ४ पुनस्तथा प्र-सा ७० को २ । फ-ज सा १००० । इ सा  
 $\frac{१०००}{१२१}$  ७  $\frac{१०००}{१२१}$

३० को २ लब्धं असंज्ञिनः तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा १००० । ३ पुनस्तथा प्र-सा  
 $\frac{१०००}{१२१}$  ७

सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यात्वकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध यदि चतुरिन्द्रियके पत्यके संख्यातवें भागहीन सौ सागर प्रमाण होता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति १० चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध चतुरिन्द्रियके कितना होता है इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फल-राशि पत्यके संख्यातवें भागहीन सौ सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर । फलसे इच्छा राशिको गुणा करके प्रमाण राशिसे भाग देनेपर चतुरिन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्य स्थितिका प्रमाण आता है । तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति- १५ वाला मिथ्यात्वकर्म यदि असंज्ञि पञ्चेन्द्रियके पत्यके संख्यातवें भागहीन एक हजार सागर प्रमाण जघन्य स्थितिको लेकर बँधता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस, तीस या बीस सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञिके कितना होता है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पत्यके संख्यातवें भागहीन हजार

सा ७० । को २ । फ सा १००० । ) इ सा २० । को २ । बंद लब्धमसंज्ञिजीवं विसियंगळगे  
 प  
 १

कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमक्रुं सा १००० । ) २ उक्तात्थं संहृष्टियिदु ।  
 प  
 १

|                                   |                                          |                                         |
|-----------------------------------|------------------------------------------|-----------------------------------------|
| ए० चाली । ज सा २५ । ) ४<br>प<br>० | द्वी० चाली । ज सा २५ । ) ४<br>प<br>१ । ४ | त्री० चा० । ज सा ५० । ) ४<br>प<br>१ । ३ |
| ति सि ज । सा १ । ) ३<br>प<br>०    | ति सि ज सा २५ ) ३<br>प<br>१ । ४          | ती सि । ज सा ५० ) ३<br>प<br>१ । ३       |
| वि सि ज । सा १ । ) २<br>प<br>०    | वि सि । ज । सा २५ ) २<br>प<br>१ । ४      | वि सि । ज । सा ५० ) २<br>प<br>१ । २     |

|                                       |                                       |
|---------------------------------------|---------------------------------------|
| चतु० चा० । ज सा १०० ) ४<br>प<br>१ । २ | असंज्ञि चा० । ज सा १००० ) ४<br>प<br>१ |
| ति सि ज । सा १०० ) ३<br>प<br>१ । २    | ती सि । ज । सा १००० ) ३<br>प<br>१     |
| वि सि । ज । सा १०० ) २<br>प<br>१      | वि सि । ज सा १००० ) २<br>प<br>१       |

७० को २ । फ ज सा १००० ) इ सा २० लब्धं असंज्ञिः बीसियानां जघन्यस्थितिवन्धप्रमाणं  
 प  
 १

भवति सा १००० ) २ एवं शेषाष्टादशषोडशपञ्चदशचतुर्दशद्वादशदशकोटीसागरोपमस्थितिकानां अपि  
 प  
 १

- ५ सागर, इच्छाराशि चालीस, बीस या तीस कोड़ाकोड़ी सागर सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाण राशिसे भाग देनेपर असंज्ञी जीवके उस-वस कर्मकी जघन्य स्थितिका

शेषाष्टादश षोडश पंचदश चतुर्दश द्वादश वंशकोटीकोटिसागरोपम स्थितिय प्रकृतिगळमी प्रकारविदमेकेंद्रियादिजीवंगळगे त्रैराशिकविधानविदं जघन्यस्थितिबंधं साधिसत्त्वडुबुडु । अनंतरमी एकेंद्रियादिगळ मिथ्यात्वादि प्रकृतिगळगे पेळइ जघन्योत्कृष्टस्थितिबंधगळनरिदु तरलपट्ट स्थिति-विकल्पंगळं प्रत्येकं स्थापिसि

|     |      |      |     |     |        |
|-----|------|------|-----|-----|--------|
| एके | द्वी | त्री | चतु | असं | संज्ञि |
| प   | प    | प    | प   | प   | —      |
| ०   | १।४  | १।३  | १।२ | १।१ | १।१    |

एकेंद्रियंगळ बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तगळ उत्कृष्टजघन्यमं द्वीन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तोत्कृष्ट-  
जघन्यंगळमं त्रीन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळमं चतुरिन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळम-  
संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळमं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळमं मिथ्या-  
त्वादिप्रकृतिस्थितिवंधविकल्पंगळोळ विभागिसि तोरिदपरः—

बासूप बासूअ वरडिदीओ सूबाअ सूबापजहणकालो ।

बीबीवरो बीविजहणकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं ॥१४८॥

बा । बादरश्च । सू । सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ तयोः प । पर्याप्तको बादरसूक्ष्मपर्याप्तको ।  
बा । बादरश्च । सू । सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ तयोरपर्याप्तको बादरसूक्ष्मापर्याप्तको । बादरसूक्ष्म-  
पर्याप्तको च बादरसूक्ष्मापर्याप्तको च बादरसूक्ष्मपर्याप्तकबादरसूक्ष्मापर्याप्तकाः । तेषां वरस्थितयः  
तास्तथोक्ताः ॥

सू । सूक्ष्मश्च बा बादरश्च सूक्ष्मबादरौ । तयोरपर्याप्तको सूक्ष्मबादरपर्याप्तको ।  
सू । सूक्ष्मश्च बा बादरश्च सूक्ष्मबादरौ । तयोः प पर्याप्तको सूक्ष्मबादरपर्याप्तको । सूक्ष्मबादरा-

साधयेत् ॥१४७॥ उक्तैकेन्द्रियादिस्थितिविकल्पान् संस्थाप्य—

|     |      |      |     |     |        |
|-----|------|------|-----|-----|--------|
| एके | द्वी | त्री | चतु | असं | संज्ञि |
| प   | प    | प    | प   | प   | १-     |
| ०   | १।४  | १।३  | १।२ | १।१ | १-१    |
|     |      |      |     |     | १ १ १  |

तेषु बादरसूक्ष्मैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिनां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन चतुर्दशानां उत्कृष्टजघन्यस्थितिबन्धो  
विभज्य दर्शयति—

बा-बादरश्च सू-सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ, तयोः प-पर्याप्तको बादरसूक्ष्मपर्याप्तको । बा-बादरश्च सू-सूक्ष्मश्च २०

प्रमाण आता है । इसी प्रकार जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह, सोलह, पन्द्रह, चौदह,  
बारह और दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनके भी जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण लाना  
चाहिए ॥१४७॥

उक्त एकेन्द्रिय आदिके स्थितिभेदोंको स्थापित करके उनमें बादर और सूक्ष्म  
एकेन्द्रिय तथा दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी इनके पर्याप्त और  
अपर्याप्तके भेदसे चौदह जीव समासोंमें उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्धका विभाग करके  
दर्शाते हैं—

‘बा’ अर्थात् बादर, ‘सू’ अर्थात् सूक्ष्म, ये दोनों ‘प’ अर्थात् पर्याप्तक—बादर पर्याप्तक,  
सूक्ष्मपर्याप्तक । ‘बा’ अर्थात् बादर, ‘सू’ अर्थात् सूक्ष्म, ये दोनों अपर्याप्तक—बादर अपर्याप्तक,

पर्याप्तिको च सूक्ष्मबादरपर्याप्तिको च सूक्ष्मबादराऽपर्याप्तिकसूक्ष्मबादरपर्याप्तिकास्तेषां जघन्यकालः सूक्ष्मबादरापर्याप्तिक सूक्ष्मबादरपर्याप्तिकजघन्यकालो जघन्यस्थितिरित्यर्थः ॥

बी द्वीन्द्रियपर्याप्तश्च बी द्वीन्द्रियापर्याप्तश्च द्वीन्द्रियपर्याप्तद्वीन्द्रियापर्याप्तौ । तयोर्बरा बी द्वीन्द्रियापर्याप्तश्च । बी द्वीन्द्रियपर्याप्तश्च द्वीन्द्रियापर्याप्तद्वीन्द्रियपर्याप्तौ । तयोर्जघन्यकालः

५ द्वीन्द्रियापर्याप्तद्वीन्द्रियपर्याप्तजघन्यकालः । शेषाणामेवं वचनीयमेतत् ।

बादरैकैन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिवन्धुं सूक्ष्मैकैन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिवन्धुं । बादरैकैन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिवन्धुं सूक्ष्मैकैन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिवन्धुं । सूक्ष्मैकैन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिवन्धुं । बादरैकैन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिवन्धुं । सूक्ष्मैकैन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थितिवन्धुं । बादरैकैन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थितिवन्धुमेदितुं स्थितिविकल्पंगळेकैन्द्रियकेमिथ्यात्वप्रकृतिसर्व-

१० स्थितिविकल्पंगळोळप्पुवु । द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिवन्धुं । द्वीन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिवन्धुं । द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिवन्धुं । द्वीन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थितिवन्धुमेदितुं नात्कुं स्थितिवन्धविकल्पंगळु द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वप्रकृतिसर्वस्थितिवन्धविकल्पंगळोळप्पुवु । शेषत्रौन्द्रियादिगळग-

बादरसूक्ष्मो तयोः, अ-पर्याप्तिको बादरसूक्ष्मापर्याप्तिको । बादरसूक्ष्मपर्याप्तिको च बादरसूक्ष्मापर्याप्तिको च बादरसूक्ष्मपर्याप्तिक-बादरसूक्ष्मापर्याप्तिकाः तेषां वरस्थितयः तास्तथोक्ताः । सू-सूक्ष्मश्च बा-बादरश्च सूक्ष्म-बादरो तयोः अ-अपर्याप्तिको सूक्ष्मबादरापर्याप्तिको । सू-सूक्ष्मश्च बा-बादरश्च बा-बादरश्च सूक्ष्मबादरो तयोः प-पर्याप्तिको सूक्ष्मबादरपर्याप्तिको । सूक्ष्मबादरापर्याप्तिको च सूक्ष्मबादरापर्याप्तिको च सूक्ष्मबादरापर्याप्तिक-सूक्ष्म-बादरपर्याप्तिकाः तेषां जघन्यकालः सूक्ष्मबादरापर्याप्तिकसूक्ष्मबादरपर्याप्तिकजघन्यकालो जघन्यस्थितिरित्यर्थः । अनेन बादरपर्याप्तोत्कृष्टः सूक्ष्मपर्याप्तिकोत्कृष्टः बादरपर्याप्तिकोत्कृष्टः सूक्ष्मापर्याप्तिकोत्कृष्टः, सूक्ष्मापर्याप्तिकजघन्यः बादरापर्याप्तिकजघन्यः सूक्ष्मपर्याप्तिकजघन्यः बादरपर्याप्तिकजघन्यश्चेत्येकेन्द्रियस्य अष्टौ स्थितिवन्धविकल्पा उक्ता

२० भवन्ति । बी-द्वीन्द्रियपर्याप्तिकश्च बी-द्वीन्द्रियापर्याप्तिकश्च द्वीन्द्रियपर्याप्तिकद्वीन्द्रियापर्याप्तिकौ तयोर्बरा, बी-द्वीन्द्रियापर्याप्तिकश्च बि-द्वीन्द्रियपर्याप्तिकश्च द्वीन्द्रियापर्याप्तिकद्वीन्द्रियपर्याप्तिकौ तयोः जघन्यकालः द्वीन्द्रियापर्याप्तिकद्वीन्द्रियपर्याप्तिकजघन्यकालः । अनेन द्वीन्द्रियपर्याप्तिकोत्कृष्टः द्वीन्द्रियापर्याप्तिकोत्कृष्टः द्वीन्द्रियापर्याप्तिक-जघन्यः द्वीन्द्रियपर्याप्तिकजघन्यश्चेति द्वीन्द्रियस्य चत्वारः स्थितिवन्धविकल्पा उक्ता भवन्ति । 'शेषाणामेवं वचनीयमेदं' एवं द्वीन्द्रियोक्तरीत्या एतत्पर्याप्तिकापर्याप्तिकाभ्यां उत्कृष्टजघन्यभेदेन निजनिजविकल्पचतुष्टयं शेषाणां

२५ सूक्ष्म अपर्याप्तिक । इनकी उत्कृष्ट स्थितियाँ । तथा 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, 'बा' अर्थात् बादर ये दोनों 'अ' अर्थात् अपर्याप्तिक । 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, 'बा' अर्थात् बादर ये दोनों 'प' अर्थात् पर्याप्तिक । इन सूक्ष्म अपर्याप्तिक, बादर अपर्याप्तिक और सूक्ष्म पर्याप्तिक बादर पर्याप्तिककी जघन्य स्थिति । इस प्रकार १ बादर पर्याप्तिककी उत्कृष्ट स्थिति, २ सूक्ष्म पर्याप्तिककी उत्कृष्ट स्थिति, ३ बादर अपर्याप्तिककी उत्कृष्ट स्थिति, ४ सूक्ष्म अपर्याप्तिककी उत्कृष्ट स्थिति, ५ सूक्ष्म अपर्याप्तिककी जघन्यस्थिति, ६ बादर अपर्याप्तिककी जघन्यस्थिति, ७ सूक्ष्म पर्याप्तिककी जघन्य स्थिति, ८ बादर पर्याप्तिककी जघन्य स्थिति ये आठ एकेन्द्रियके स्थितिवन्धके विकल्प कहे हैं । 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्तिक, 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय अपर्याप्तिक इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थिति । 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय अपर्याप्तिक, 'बि' अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्तिक इन दोनोंका जघन्य काल । इससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तिककी उत्कृष्टस्थिति, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तिककी उत्कृष्टस्थिति, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तिककी जघन्यस्थिति और द्वीन्द्रिय पर्याप्तिककी जघन्य स्थिति इस प्रकार द्वीन्द्रियके चार स्थिति-

मिन्ते नालकुं नालकुं स्थितिबन्धविकल्पंगळु तंतम्म मिथ्यात्वप्रकृतिसर्वस्थितिबन्धविकल्पंगळोळपु-  
वेदिन्ती मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितिबन्धं पेळल्पट्टुदुदु । अवेतें दोडे त्रीन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमुं ।  
त्रीन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमुं । त्रीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धमुं । त्रीन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थिति-  
बन्धमुमेदितिवु नालकुं ४, चतुरिन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमुं । चतुरिन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थिति-  
बन्धमुं । चतुरिन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धमुं । चतुरिन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धमुमेदितिवु ५  
नालकुं ४, असंज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमुं असंज्ञ्यपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमुं असंज्ञ्यपर्याप्तजघन्य-  
स्थितिबन्धमुमसंज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धमुमेदितिवु नालकुं ४, संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमुं  
संज्ञ्यपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमुं संज्ञ्यपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धमुं संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धमुमे-

त्रीन्द्रियादिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानामपि वचनीयं—कथनीयम् । तद्यथा—

त्रीन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टः त्रीन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टः त्रीन्द्रियापर्याप्तजघन्यः त्रीन्द्रियपर्याप्तजघन्यश्चेति १०  
त्रीन्द्रियस्य चत्वारः । चतुरिन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टः चतुरिन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टः चतुरिन्द्रियापर्याप्तजघन्यः  
चतुरिन्द्रियपर्याप्तजघन्यश्चेति चतुरिन्द्रियस्य चत्वारः । असंज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टः असंज्ञ्यपर्याप्तोत्कृष्टः  
असंज्ञ्यपर्याप्तजघन्यः असंज्ञिपर्याप्तजघन्यश्चेति असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चत्वारः । संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टः, संज्ञ्य-  
पर्याप्तोत्कृष्टः, संज्ञ्यपर्याप्तजघन्यः, संज्ञिपर्याप्तजघन्यश्चेति संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चत्वारः । अमीषु अष्टा- १५  
विंशतिस्थितिबन्धविकल्पेषु अन्त्यानां चतुर्णां पृथक्कथनमस्ति इति आदौ आद्यानामायाममानेतुं अन्तराल-  
विकल्पान् त्रैराशिकेविभजति—

तत्रैकेन्द्रियस्य यथा मिथ्यात्वस्थितिस्तत्कृष्टा एकसागरोपममात्री सा १ । जघन्या च रूपोत्पत्त्यासंख्येय-

बन्धके विकल्प कहे हैं । इस प्रकार द्वीन्द्रियकी कही उक्त रीतिसे पर्याप्तक, अपर्याप्तक और  
उनके उत्कृष्ट जघन्यके भेदसे चार विकल्प शेष त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपञ्चेन्द्रिय तथा २०  
संज्ञिपञ्चेन्द्रियके कहना चाहिए । जो इस प्रकार हैं—त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति,  
त्रीन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, त्रीन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी  
जघन्य स्थिति इस प्रकार त्रीन्द्रियके चार विकल्प हैं । चतुरिन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति,  
चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य स्थिति, चतुरिन्द्रिय  
पर्याप्तककी जघन्यस्थिति इस प्रकार चतुरिन्द्रियके चार विकल्प कर्मोंकी स्थितिके हैं ।  
असंज्ञि पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, असंज्ञि अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, असंज्ञी अपर्याप्तककी २५  
जघन्य स्थिति, असंज्ञी पर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये चार विकल्प असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी  
कर्मस्थितिके हैं । संज्ञीपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, संज्ञी अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, संज्ञी  
अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, संज्ञीपर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये चार विकल्प संज्ञी पञ्चेन्द्रियके  
हैं । स्थितिबन्धके इन अठारह विकल्पोंमें अन्तिम चारका पृथक् कथन है । इसलिए आदिमें  
शेष चौबीस भेदोंकी स्थितिका आयाम लानेके लिए अन्तराल भेदोंका त्रैराशिकोंके द्वारा ३०  
विभाजन करते हैं—

उनमें-से एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है और जघन्य-  
स्थिति एक कम पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन एक सागर प्रमाण है । सो करणसूत्रके  
अनुसार आदि जघन्यस्थितिको अन्त उत्कृष्टस्थितिमें-से घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उसको

द्वित्वं नात्कु ४ ई पेठल्पट्ट त्रीन्द्रियादिगठ नात्कुं नात्कुं स्थितिबंधविकल्पंगठु तंतम्म मिथ्यात्व-  
प्रकृतिसर्वस्थितिबंधविकल्पंगठोळपुवलि बादरैकैन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु  
समयोनक्रमविदमेनितु स्थितिबिकल्पंगठु नडुदु येकैन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते  
सूक्ष्मपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु समयोनक्रमविदमेनितु स्थितिबंधविकल्पंगठु नडुदु

१ भागोनतदुत्कृष्टमात्री सा १ ) आदी अन्ते सुद्धे वड्ढिहिदे ख्वसंजुदे' इत्यानीतसमयोत्तरतत्स्थितिबिकल्पा  
प  
३

एतावन्तः पं। तत्र एकद्विचतुश्चतुर्दशाष्टाविंशत्यष्टानवतिषण्णवत्यग्रशतशलाकानां मिलितत्वात् त्रिचत्वारिंशदग्र-

त्रिशतसंख्यानां प्र श ३४३ यद्येतावन्तः फ वि प तदा षण्णवत्यग्रशतशलाकानां इ श १९६ कति ? इति

बादरपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादि कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तं विकल्पा लब्धा भवन्ति प १९६

३३४३

एतेषु चरमस्य सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयामः रूपोर्नरेतावन्मात्रसमयैर्न्यूनबादरपर्याप्तकोत्कृष्ट-

- १० एकका भाग देना, क्योंकि एक-एक स्थितिके भेदमें एक-एक समयकी वृद्धि होती है, अतः वृद्धिका प्रमाण एक है। एकका भाग देनेपर उतने ही रहे। उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेद पत्यके असंख्यातवें भाग होते हैं। इससे आगेकी ही गायामें उसका अर्थ करते हुए एकेन्द्रिय जीवकी स्थितिके अन्तरालोंमें अंकसदृष्टिकी अपेक्षा एक, दो, चार, चौदह, अठाईस, अठानवे, एक सौ छियानवे शलाका कहेंगे। उन सबका
- १५ जोड़ तीन सौ तैंतालीस होता है। एकेन्द्रिय जीवके जो पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिके भेद कहे हैं, उनमें तीन सौ ततालीसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना एक शलाकामें स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। इस प्रमाणको अपने-अपने शलाका प्रमाण-से गुणा करनेपर अपने-अपने स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। उसे त्रैराशिक द्वारा बतलाते हैं—

- २० यदि तीन सौ तैंतालीस शलाकाओंमें एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं तो एक सौ छियानवे शलाकाओंमें कितने होंगे। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण पत्यके असंख्यातवें भाग। इच्छाराशि एक सौ छियानवे। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर लब्धराशिका
- २५ जो प्रमाण आया उतने बादर पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्मपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। अर्थात् बादर पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और सूक्ष्म पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरालमें जितने स्थितिके भेद होते हैं उनका यह प्रमाण है। तथा इस अन्तरालकी शलाका एक सौ छियानवे हैं। जितना यहाँ अन्तरालके स्थितिके भेदोंका प्रमाण कहा, उसमें एक कम करके उतने समय बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट
- ३० स्थिति एक सागरमें-से घटानेपर सूक्ष्मपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका

बादरैकेंद्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते बादरैकेंद्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु समयोनक्रमविदमेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळं नडडु । सूक्ष्मैकेंद्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थिति-  
बंधविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडुनितुस्थितिबिकल्पंगळं नडडु

स्थित्यायाममात्रो भवति सा पुनः प्र-श ३४३ फ बि प इ-श २८ । इति सूक्ष्मपर्याप्तोत्कृष्टा-  
प १९६  
० ३४३

नंतरस्थितिबन्धमादि कृत्वा बादरापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २८ एतेषु चरमस्य  
० ३४३

बादरापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयामः एतावद्भिरेव समयैः न्यूनसूक्ष्मपर्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो  
भवति सा पुनः प्र-श ३४३ । फ बि प इ श ४ इति बादरापर्याप्तोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि  
प २२४  
० ३४३

कृत्वा सूक्ष्मापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प ४ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मापर्याप्तो-  
० ३४३

त्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयाम एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनबादरापर्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति । सा  
प २२८  
० ३४३

पुनः प्र-श ३४३ । फ बि प इ श १ इति सूक्ष्मापर्याप्तोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा सूक्ष्मा-  
०

पर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवति प १ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थिति-  
० ३४३

बन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनसूक्ष्मापर्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति सा पुनः प्र-श  
प २२९  
० ३४३

प्रमाण, इच्छाराशि अठाईस शलाका । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्टके अनन्तरवर्ती स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं । इन स्थिति भेदों-  
के प्रमाणको सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट-  
स्थितिका प्रमाण होता है । पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि चार शलाका । सो फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया वह बादर अपर्याप्तक-  
के उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध  
पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं । इन भेदोंका जितना प्रमाण है उतने समय बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रमाण होता है । पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छा-



सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिविकल्पं मोदतगो-

३४३। फ बि प इ श २ इति सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यान्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा बादरापर्याप्तकजघन्य-

०

स्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २ एतेषु चरमस्य बादरापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः

० ३४३

एतावद्भिरेव समयैः न्यूनसूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रो भवति । सा

पुनः प्र-श

प २३१

० ३४३

५ ३४३। फ बि प इ श १४ इति बादरापर्याप्तकजघन्यान्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थिति-

०

बन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति—प १४

एतेषु चरमस्य सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एता-

० ३४३

वद्भिरेव समयैर्न्यूनबादरापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रो भवति सा

पुनः प्र श ३४३ फ बि प

प २४५

० ३४३

इ श १८ इति सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यान्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्त-

विकल्पा लब्धा भवन्ति प १८

एतेषु चरमस्य बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव

० ३४३

- १० राशि एक शलाका । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्टसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं । इन भेद प्रमाण समयोंको सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमेंसे घटानेपर सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है । पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी
- १५ उत्कृष्ट स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि दो शलाका । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्यस्थितिबन्धसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं । इन भेदप्रमाण समयोंको सूक्ष्म अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिमें घटानेपर बादर अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है । पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके
- २० मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि शलाका चौदह । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धके भेदसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद हैं । इन भेद प्रमाण समयोंको बादर अपर्याप्तके जघन्यस्थितिबन्धमें घटानेपर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है । प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके
- २५ मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेद, इच्छाराशि शलाका अठानवे । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने सूक्ष्म अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं ।

इति तु स्थितिविकल्पगलं नड्डु बादरापर्याप्त जघन्यस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते । बादरैर्केन्द्रियपर्याप्त-

समयैर्न्यूनसूक्ष्मपर्याप्तक जघन्यस्थित्यायाममात्रः—सा

$$\left. \begin{array}{c} \frac{0}{\text{प } ३४३} \\ ० ३४३ \end{array} \right) \text{अपवर्तितः स चेदृश एव भवति सा} \left. \begin{array}{c} \frac{0}{\text{प}} \\ ० \end{array} \right)$$

तथा एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वाबाधा आवल्यसंख्येयभागाधिकसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिक्योनत-

०  
२७

न्मात्री २७ तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पा एतावन्तः २ एतानेव उक्तसप्तत्रैराशिकानां स्थितिवन्धविकल्पान्

०

अपहाय फलराशिन् कृत्वा तत्तल्लब्धं स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तदष्टविकल्पाबाधायामानां प्रथमे रूपोनतल्लब्धमात्रान् परेषु संपूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय परस्परमाबाधायामं साधयेत् । तत्संदृष्टिः—

५

इन भेदप्रमाण समयोंको सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्यस्थितिवन्धमें-से घटानेपर बादर पर्याप्तकका जघन्य स्थितिवन्ध होता है । इस प्रकार एकेन्द्रियके सूक्ष्म बादरके पर्याप्त-अपर्याप्त जीव समासोंके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिवन्धके भेदसे आठ स्थानोंमें स्थितिवन्धका प्रमाण कहा । इन आठोंमें सात अन्तराल होनेसे अन्तरालोंमें स्थितिके भेदोंका प्रमाण जाननेके लिए सात त्रैराशिक किये हैं ।

१०

आगे आबाधाकालका प्रमाण दिखाते हैं—

एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके असंख्यातव भागसे अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त मात्र है । और जघन्य आबाधा आधिक्यके बिना केवल अन्तर्मुहूर्त मात्र है । उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटाकर एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण आता है । जैसे स्थितिवन्धके कथनमें आठ स्थानोंके सात अन्तरालोंमें भेदोंका प्रमाण लानेके लिए सात त्रैराशिक किये वैसे ही आबाधाका प्रमाण लानेके लिए भी करना चाहिए । यहाँ प्रमाणराशि तो सर्वत्र तीन सौ तैंतालीस शलाका प्रमाण है । फलराशिमें वहाँ स्थितिके भेदोंका प्रमाण कहा था यहाँ एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी आबाधाके जघन्यसे लेकर उत्कृष्टपर्यन्त भेदोंका जितना प्रमाण उतना लेना । तथा इच्छाराशि कमसे वही एक सौ छियानवे, अठाईस, चार, एक, दो, चौदह और अठानबे शलाका प्रमाण लेना । सर्वत्र फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे सो अपने-अपने अन्तरालोंमें आबाधाके भेदोंका प्रमाण है । सो प्रथम त्रैराशिकमें जितने भेदोंका प्रमाण आया उनमें-से एक घटानेपर जितना रहे उतना समय बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधामें-से घटानेपर सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण होता है । उसमें-से दूसरे त्रैराशिकमें जितने भेदोंका प्रमाण आवे उतने समय घटानेपर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण होता है । इसी प्रकार तीसरे आदि त्रैराशिकमें भी जितने भेदोंका प्रमाण आवे उतने समय घटानेपर उस-उस स्थानमें जो स्थितिवन्धका

१५

२०

२५

३०

जघन्यस्थितिबन्धविकल्प मोदलगोडेनितु स्थितिबन्धविकल्पगळं नडेवु सूक्ष्मैर्द्विपपर्याप्तजघन्य-

| वा प उ | सू प उ | वा अ उ | सू अ उ | सू अ ज | वा अ ज | सू प ज | वा प ज |
|--------|--------|--------|--------|--------|--------|--------|--------|
| २      | २      | २      | २      | २      | २      | २      | २      |
| ०      | ० २१   | ० २१   | ० २१   | ० २१   | ० २१   | ० २१   | ०      |
| २१     | २ १९६  | २ २२४  | २ २२८  | २ २२९  | २ २३१  | २ २४५  | २ २१   |
|        | ० ३४३  | ० ३४३  | ० ३४३  | ० ३४३  | ० ३४३  | ० ३४३  | ० ३४३  |

३४३

अथ द्वीन्द्रियस्य यथा तन्मिथ्यात्वस्थितिरुत्कृष्टा पञ्चविंशतिसागरोपममात्री सा २५ जघन्या च चतुः-  
संख्यातभक्तरूपोनपत्योनतदुत्कृष्टमात्री सा २५ तथानीतसमयोत्तरविकल्पा एतावन्तः ५ तत्र  
१ १ १ १

एकद्विचतुःशलाकानां मिलित्वा सप्तसंख्यानां प्र-श ७ यद्येतावन्तः—

फ-वि प तदा चतसृणां शलाकानां इ श ४ कति ? इति द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादि कृत्वा  
१ १ १ १

१० द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तं विकल्पा लब्धा भवति ५ ४ एतेषु चरमस्य द्वीन्द्रिया-  
१ १ १ १ ७

पर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्यायामो रूपोनरेतावद्भिः समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति

प्रमाण कहा उस-उस सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण जानना । इस तरह एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्ध और आबाधाके भेदोंका तथा कालका प्रमाण जानना । अब दो-इन्द्रिय जीवके कहते हैं—

- १५ दो-इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पञ्चीस सागर है । जघन्य स्थिति चार बार संख्यातसे भाजित एक हीन पत्यके प्रमाणको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतनी है । उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर जो शेष रहे उसमें एकसे भाग देकर तथा एक जोड़नेपर जो प्रमाण रहे उतने द्वीन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेद होते हैं । दो-इन्द्रियके चार स्थानोंके तीन अन्तरालोंमें एक, दो और चार शलाका प्रमाण हैं । इनका जोड़ सात होता है । यदि सात शलाकाओंमें दो-इन्द्रिय जीवके जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट-स्थितिपर्यन्त मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद चार बार संख्यातसे भाजित पत्य प्रमाण होते हैं तो चार शलाकाओंमें कितने भेद होंगे । ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि शलाका सात, फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि चार शलाका । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने द्वीन्द्रिय पर्याप्तक-  
२५ के उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं । इन भेदोंमें-से एक घटानेपर जो शेष रहे उतने समय द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पञ्चीस सागरमें-से घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका

१. एतस्याः सन्दृष्टराकारः श्रीपण्डितटोडरमल्लजीकैः, अपरार्थेव प्रतिपादितः तत्र रचनायां वैलक्षण्येऽपि नायं वैलक्षण्यं । स चाकारोऽत्र १४९ तम संख्यांकितगाथायाष्टिपण्याः आबाधारचनेत्यंशे, कर्मकाण्डसन्दृष्टौ च लिखितः ।

स्थितिबंधविकल्पमुपगच्छेत् । सूक्ष्मैर्द्रव्यपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पं मोदन्तोऽनेन तु स्थितिबंध-

सा २५ ) ४ पुनः प्र-श ७ फ बि प इ श १ इति द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टान्तरस्थितिबन्धमादि  
७ १ १ १ १  
१ १ १ १

कृत्वा द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प १ एतेषु चरमस्य द्वीन्द्रिया-  
१ १ १ १ ७

पर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति  
सा २५ ) ५ पुनः प्र-श ७ फ-बि प इ श २ इति द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यान्तरस्थिति-  
७ १ १ १ १  
१ १ १ १

बन्धमादि कृत्वा द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २ एतेषु चरमस्य  
१ १ १ १ ७

द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धस्यायाम एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थित्यायाममात्रः  
सा २५ ) ७ स च ईदृश एव भवति सा २५ ) तथा द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा  
७ १ १ १ १ ७ १ १ १ १

प्रमाण होता है । पुनः प्रमाणराशि सात शलाका, फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि एक शलाका । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देने- १०  
पर जो लब्धराशिका प्रमाण आवे उतने दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर भेदसे लगाकर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं । इन भेद प्रमाण समयोंको दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें-से घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है । पुनः प्रमाणराशि सात शलाका, फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वके सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि दो शलाका । १५  
फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लगाकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं । इन भेदप्रमाण समयोंको दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्धमें घटानेपर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है । आगे आबाधाका प्रमाण कहते हैं । २०

दो-इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधा चार बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त पञ्चीस प्रमाण है । जघन्य आबाधा उस अधिक बिना केवल पञ्चीस अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसमें एक जोड़नेपर आबाधाके भेदोंका प्रमाण होता है । यहाँ भी पूर्वकी तरह तीन त्रैराशिक करना चाहिए । सो प्रमाणराशि और २५  
इच्छाराशि तो स्थितिबन्धके कथनके समान ही जानना । फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वकी

विकल्पंगलं नडेवु बादरैकैन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पं पुट्टिदुर्वेदितु पर्यनुयोगमागुतं

चतुःसंख्यातभक्तावत्यधिकपञ्चविंशतिगुणितसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिक्योनतन्मात्री  
१ १ १ १  
२ १ १ २५

२ १ २५ तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पा एतावन्तः २ एतानेव उक्तत्रैराशिकानां स्थितिबन्धविकल्पा-  
१ १ १ १

नपहाय फलराशीन् कृत्वा तत्तल्लब्धं स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तच्चतुर्विकल्पाबाधायामानां प्रथमे  
रूपोनलब्धमात्रान् परेषु संपूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय तं तमावाधायामं साधयेत्, एवमेव  
५ त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा पञ्चाशत्सागरोपममात्री सा ५० जघन्या च त्रिसंख्यातभक्तरूपोनपत्त्यो-  
नतदुत्कृष्टमात्री सा ५० तथानीतसमयोत्तरस्थितिविकल्पानिमान् ५ तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा  
१ ३  
५  
१ ३

त्रिसंख्यातभक्तावत्यधिकपञ्चाशद्गुणितसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिक्योनतन्मात्री २ १ ५०  
१ ३  
२ १ ५०

तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पानिमान् १ पुनः चतुरिन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा शतसागरोपम-  
२  
१ ३

आबाधाके जितने भेद हैं उतनी जानना । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर  
१० जो-जो प्रमाण आवे उतने आबाधाके भेदोंका प्रमाण जानना । सो प्रथम त्रैराशिकमें तो  
जितना भेदोंका प्रमाण हो उसमें एक घटानेपर जो रहे उतने समय दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी  
उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधामें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना दो-इन्द्रिय  
अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका आबाधाकाल होता है । इसमें-से दूसरे त्रैराशिकमें जितने  
भेद आयें उतने समय घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति सम्बन्धी आबाधाका  
१५ काल होता है । इसमें-से तीसरे त्रैराशिकमें जितने भेद आयें उतने समय घटानेपर  
दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्ध सम्बन्धी आबाधाकालका प्रमाण होता है ।

दो-इन्द्रियके समान ही त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका कथन जानना ।  
इतना विशेष है कि यहाँ स्थिति और आबाधाका प्रमाण भिन्न-भिन्न है अतः फलराशि भिन्न  
है । आगे उसका कथन करते हैं—

२० त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर है । जघन्यस्थिति उत्कृष्टस्थितिमें-  
से तीन बार संख्यातसे भाजित एक कम पत्त्यको घटानेपर जो शेष रहे उतनी है । उत्कृष्ट-  
स्थितिमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़नेपर  
त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण तीन बार संख्यातसे भाजित पत्त्यप्रमाण  
होता है । यही त्रीन्द्रियके स्थितिबन्धका कथन करनेमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि है । तथा  
२५ त्रीन्द्रियके उत्कृष्ट मिथ्यात्व स्थितिकी आबाधा तीन बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक  
संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त पचास है । और जघन्य आबाधा केवल पचास अन्तर्मुहूर्त

विरलु तन्मध्यस्थितिद्वयविकल्पंगळुमनवराबाधविकल्पंगळुमं पेळलवेडियुमिन्ते द्वीन्द्रियादिगळ

मात्री सा १०० जघन्या च त्रिसंख्यातभक्तरूपोनपत्योनतदुत्कृष्टमात्री सा १०० ) तथानीतसमयोत्तर-

$$\frac{100}{5} = 20$$

तद्विकल्पानिमान् ५ तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा द्विसंख्यातभक्तावल्यधिकसहस्रगुणितसंख्यातावलिमात्री २१२

२ जघन्या च तदाधिवयोनोत्कृष्टमात्री २११०० तथानीतसमयोत्तरतद्विकल्पानिमान् २  
२१२  
२११००

पुनः असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा सहस्रसागरोपममात्री सा १००० जघन्या च रूपोनपत्य- ५  
संख्येयभागेनतदुत्कृष्टमात्री सा १००० ) तथानीतसमयोत्तरतस्थितिविकल्पानिमान् ५ तन्मिथ्यात्वा-  
५  
२

बाधा उत्कृष्टा आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रगुणितसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिवयोनतदु-  
२  
२११०००

त्कृष्टमात्री २११००० तथानीतसमयोत्तराबाधविकल्पान् इमांश्च २ द्वीन्द्रियोक्तरीत्या त्रैराशिकत्रयस्य  
-२

पृथक्-पृथक् फलराशीन् कृत्वा तत्रस्थितिविकल्पलब्धानि तत् तत्रिषु अन्तरात्रेषु संस्थाप्य आबाधविकल्प-

है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़ने- १०  
पर त्रीन्द्रियकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है। त्रीन्द्रियके आबाधाके कथन  
सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें यही फलराशि है। चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति सौ  
सागर है। जघन्यस्थिति इस उत्कृष्ट स्थितिमें-से दो बार संख्यातसे भाजित पत्यको घटाने-  
पर जो प्रमाण शेष रहे उतनी है। उत्कृष्ट स्थितिमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग  
देकर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका १५  
प्रमाण दो बार संख्यातसे भाजित पत्य प्रमाण होता है। यही चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके  
कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि जानना। तथा चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट-  
स्थितिकी आबाधा दो बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण  
अन्तर्मुहूर्त सौ है। और जघन्य आबाधा केवल सौ अन्तर्मुहूर्त है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्य-  
को घटाकर एकका भाग देकर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियके आबाधाके २०  
सब भेदोंका प्रमाण होता है। यही चतुरिन्द्रियके आबाधाके कथनमें तीनों त्रैराशिकोंमें  
फलराशिका प्रमाण है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति एक हजार सागर है।  
इसमें एकहीन पत्यके संख्यातसे भागको घटानेपर जघन्यस्थिति होती है। उत्कृष्टमें-से  
जघन्यको घटाकर एकसे भाजित करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर असंज्ञीके  
मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण एक बार संख्यातसे भाजित पत्य प्रमाण है। यही २५

पर्याप्तापर्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधविकल्पंगळ नडदु नडदु तदुत्कृष्टस्थितिबंध विकल्पंगळुम-  
वराबाधाविकल्पंगळ पुट्टुगुमेंदोडे पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळदपरु :—

मज्जे थोवसलागा हेट्टा उवरिं च संखगुणिदकमा ।

सम्बजुदी संखगुणा हेट्टुवरिं संखगुणमसणित्ति ॥१४९॥

५ मध्ये स्तोकशलाकाः अधः उपरि च संखगुणितक्रमाः । सर्वयुतिः संखगुणा अध उपरि  
संखगुणमसंज्ञिपर्यंतं ॥

बादरैकेंद्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु तज्जघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्यंत-  
मिहेंकेंद्रियंगळ मिथ्यात्वकर्मप्रकृतिसर्वस्थितिबन्धविकल्पंगळो मध्यवर्तिगळप्प सूक्ष्मैकेंद्रिया-  
पर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु सूक्ष्मैकेंद्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्यंतमिहें

१० स्थितिबंधविकल्पंगळं मध्यमेबुदा मध्यस्थितिबंधविकल्पंगळेनितोळवनितमोडु शलाकेयं माडिदुविदु  
सर्वतः स्तोकशलाका संख्येयवकुं । अधः आ मध्यशलाकासंख्येयव केळगण सूक्ष्मापर्याप्तजघन्य-  
स्थितिबंधविकल्पानंतरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु बादरापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्यंत-

लब्धानि तेषामधः संस्थाप्य प्रागुक्ततत्त्वतुश्चतुर्विकल्पानां प्रथमप्रथमस्य स्थित्यायामाबाधायामयोः रूपोनतल्लब्ध-  
मात्रान् द्वितीयतृतीयस्य तयोः सम्पूर्णतत्त्वलब्धमात्रानेव समयानवनीयावनीय परम्परं स्थित्यायाम्मात्रावयामं  
च साधयेत् ॥१४८॥ एतत्सर्वं मनसि धृत्वाग्रतनसूत्रमाह—

१५ मज्जे थोवसलागा—बादरपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमादि कृत्वा बादरपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तेषु  
एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वसर्वस्थितिबन्धेषु मध्ये ये सूक्ष्मापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबन्धमादि कृत्वा सूक्ष्मापर्याप्तक-  
जघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तं मध्यविकल्पाः स्तोकाः ते एका शलाका ज्ञातव्या ॥१॥ हेट्टा सूक्ष्मापर्याप्तक-

२० असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी स्थितिके कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि होता है । तथा  
असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके संख्यातवें भागसे अधिक  
संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त हजार है । और जघन्य आबाधा केवल हजार अन्तर्मुहूर्त  
है । उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाग देकर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर  
असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है । वही असंज्ञी  
पञ्चेन्द्रियकी आबाधाके कथनमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि जानना । इतना विशेष कथन है  
२५ शेष सब कथन दो-इन्द्रियके कथनकी तरह जानना ॥१४८॥

यह सब कथन मनमें रखकर आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

३० मध्यमें स्तोक शलाका है अर्थात् बादर पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर बादर  
पर्याप्तककी जघन्यस्थितिबन्ध पर्यन्त जो एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके विकल्प हैं  
उनमें-से सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्ध  
पर्यन्त विकल्प सबसे थोड़े हैं । उनकी एक शलाका जानना । 'हेट्टा' अर्थात् इसके नीचे  
सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके

१. म° गळु मेनितेनित स्थितिबिकल्पंगळं नडदु नडदु पुट्टुगुमे दोडे तन्मध्यस्थितिबन्ध विकल्पंगळुमनवारबाधा  
विकल्पंगळुमं पेळ ।

मिहं स्थितिबंधविकल्पंगळं । उपरि च आ सूक्ष्मैर्केन्द्रियाप्यर्थाप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पानंतरोपरि-  
तनस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु बादरापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्यन्तमिहं स्थितिबंधवि-  
कल्पंगळं क्रमविवं । संख्यगुणितक्रमाः आकेळगण शलाकेगळं मेलण शलाकेगळं संख्यातगुणितंगळ-  
पुवु वा. अ. उ. सू. अ. उ. सू. अ. ज. वा. अ. ज. सर्वयुतिः ई मध्याधस्तनोपरितनसर्व-  
८ १ २ ८

शलाकायुतियुं ७ हेदुवर् मुन्निते केळगेयुं मेगेयुं संखगुणा संख्यातगुणितक्रमंगळपुवु—

सू. प. उ. वा. अ. उ. सू. अ. उ. सू. अ. ज. वा. अ. ज. सू. प. ज.  
८ ४ १ २ १४ ८

मत्तमन्ते सूक्ष्मपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पानन्तरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु बादरपर्याप्त-  
जघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्यन्तमिहं स्थितिबंधविकल्पंगळं मेले सूक्ष्मपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंध-  
विकल्पं मोदल्लोडु बादरैर्केन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्यन्तमिहं स्थितिबंधविकल्पंगळं  
क्रमविव सर्वयुतिय ४९ संख्यातगुणितंगळपुवु—

वा प उ सू प उ वा अ उ सू अ उ सू अ ज वा अ ज सू प ज वा प ज  
८ १९६ ८ २८ ४ १ २ १४ ९८ ८

जघन्यस्थितिबन्धमादि कृत्वा बादरापर्याप्तक । जघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः  
'उवरि च' सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरोपरितनस्थितिबन्धमादि कृत्वा बादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्त-  
विकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च 'संखगुणिकमा' संख्यातेन अङ्कसंदृष्ट्या द्वयङ्केन गुणितक्रमा  
भवन्ति ८४८१२८ 'सर्वजुदो' सर्वयुतः तदुक्तैक-द्विचतुःशलाकायुतैः सप्तम्यः सकाशात् 'हेट्टा'  
बादरापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धि-  
न्योऽधस्तनशलाकाः उवरि बादरापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्ध-  
पर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च प्राग्बत् संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ८२८४८१२८

जघन्यस्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका उन शलाकाओंसे  
संख्यात गुणी हैं । और ऊपर सूक्ष्म अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर २०  
बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी ऊपरकी शलाका उनसे  
संख्यात गुणी है । इस प्रकार संख्यातगुणा अनुक्रम कहा । सो संख्यातका प्रमाण तो  
यथायोग्य हैं । परन्तु यहाँ समझनेके लिए संख्यातका चिह्न दोका अंक जानना । सो  
एकसे दूना दो होता है, सो नीचे दो शलाका और उससे दुगुना चार, सो ऊपर चार  
शलाका जानना ४८१२ इन सबको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे नीचे बादर २५  
अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर भेदसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध-  
पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी जानना और ऊपर अर्थात्  
बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तरसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्ट  
स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरितन शलाका उससे संख्यातगुणी जाना । सो  
पहलेकी शलाका चार, एक दोका जोड़ सात हुआ । उसको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा ३०  
करनेपर नीचे तो चौदह शलाका हुई । उन्हें संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अट्ठाईस



- इल्लि तात्पर्यात्थं ते दोडे अंकसंदृष्टिदमुमत्थंसंदृष्टिदमुं पेळवपे मल्लि अंकसंदृष्टि-  
 यिदमेते दोडे बादरैकैद्रिपपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु एकैकसमयहोनक्रमविदं  
 तन्मध्यस्थितिबंधविकल्पंगळु नड्डु नूरतो भतारनेयदु सूक्ष्मपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं पुदुगु-  
 मनंतरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्लोडु समयोनक्रमविदस्थितिबंधविकल्पंगळु नड्डु २८ इप्पत्तं दनेयदु  
 ५ बादरापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमक्कु । मनंतर स्थितिबिकल्पं मोदल्लोडु समयोनक्रमविद  
 स्थितिबंधविकल्पंगळु नड्डु नाल्कनेयदु सूक्ष्मापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमक्कुमनंतरसमयोन-  
 स्थितिबंधविकल्पमो दनेयदु सूक्ष्मापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु । मनंतरसमयोनस्थितिबंध-  
 विकल्पंगळु नड्डु येरडनेयदु बादरापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु-। मनंतर समयोनस्थिति-  
 बंधविकल्पं मोदल्लोडु समयोनक्रमविदं स्थितिबंधविकल्पंगळु नड्डु पदिनाल्कुनेयदु सूक्ष्मपर्याप्त-  
 १० जघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु-। मनंतरसमयोनस्थितिबिकल्पं मोदल्लोडु समयोनक्रमविद स्थिति-  
 बंधविकल्पंगळु नड्डु तो भत्ते दनेयदु बादरपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कुमत्थंसंदृष्टियोळु  
 तात्पर्यात्थं पेळल्पडुगुमंते दोडे बादरैकैद्रिपपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमेकसागरोपमप्रमाणं ।  
 सा १ । जघन्यस्थितिबंधविकल्पं रूगेनपल्यासंख्यातैकभागोनैकसागरोपमप्रमितमक्कु सा १

प  
a

- १४/ 'च' शब्दात् पुनरपि सव्वजुदी तदुवतैकद्विचतुश्चतुर्दशाष्टाविंशतिशलाकायुतैः एकान्न पञ्चाशतः ४९  
 १५ सकाशात् 'हेट्ठा' सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यान्तरस्थितिबंधमादि कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबंधपर्यन्त-  
 विकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाका उर्वरि सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबंधमादि कृत्वा बादरपर्याप्तको-  
 त्कृष्टस्थितिबंधपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उररितनशलाकाश्च संखगुणं संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति

वा प उ १९६ २८ ४ १ २ १४ ९८ वा प ज

- पुनरपि मज्जे थोवसलागा हेट्ठा उर्वरि 'च संखगुणितक्रमा' एतावत्सूत्रं द्वीन्द्रियं प्रत्यपि योज्यम् ।  
 २० तथाहि— मज्जे थोवसलागा द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबंधमादि कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यस्थिति-

- शलाका हुई । यथा २८/४/१/२/१४ । इन्हें पुनः जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे नीचे  
 अर्थात् सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्यस्थितिके अनन्तर स्थितिबंधसे लेकर बादर पर्याप्तक जघन्य  
 स्थितिबंध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी है और ऊपर सूक्ष्म  
 पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबंधके अनन्तर स्थितिबंधसे लेकर बादर पर्याप्तक उत्कृष्ट स्थिति-  
 २५ बंध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरितन शलाका संख्यातगुणी है । सो अठाईस, चार,  
 एक, दो और चौदह को जोड़नेपर उनचास हुए । इनको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर  
 अठानवे नीचेकी शलाका जानना और उसे दोसे गुणा करनेपर एक सौ छियानवे ऊपरकी  
 शलाका जानना । यथा १९६/२८/४/२/१/१४ ९८ इस प्रकार एकेन्द्रियका कथन  
 किया । आगे इसी गाथाका अर्थ दो इन्द्रियमें लगाते हैं—

- ३० मध्य अर्थात् दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबंधसे लेकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके  
 जघन्य स्थितिबंध पर्यन्त भेदोंमें दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबंधसे लेकर एक-एक

मितागुत्तं विरलु आदो अंते मुद्धे  $\frac{0}{a}$  प वडिडहिदे—  $\frac{0}{a}$  प रुवसंजुदे ठाणा येदितु बादरैकेंद्रिय-  
० ० १

पर्याप्तजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळप सर्वस्थितिबंधविकल्पंगळु पत्यासंख्यातैकभागमात्रमकुं ।  
प । इल्लि त्रैराशिकं माडलपडुगुमें ते दोडे यिनितु प्रक्षेपयोगशलाकेगळगे पत्यासंख्यातैकभागमात्र-  
०

स्थितिविकल्पमागुत्तं विरलु तंतम्म मध्यादिशलाके प्र ३४३ । फ प । इ १ । २ । ४ । १४ । २८ ।  
०

२८ । १९६ गळगेनितेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळपुवे दितनुपातत्रैराशिकं माडिदोडे बंद लब्धंगळु  
तंतम्म स्थितिबंधविकल्पंगळपुवु । असणित्ति । ई क्रमदिदं द्वौद्रियं मोदलगे डसंज्ञिपर्यंतमाद  
जीवंगळ पद्यर्पितापद्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधविकल्पंगळुमनाबाधाविकल्पंगळुमं भाविसि  
स्थापिसुवुडु ॥

बन्धपर्यन्तेषु मध्ये ये द्वौन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादि कृत्वा द्वौन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्ता  
विकल्पाः स्तोकास्ते एका शलाका जातव्या । 'हेट्टा' द्वौन्द्रियापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा १०  
द्वौन्द्रियापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः उपरि च द्वौन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टा-  
नन्तरं स्थितिबन्धमादि कृत्वा द्वौन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च  
'संखगुणिकमा' संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति । एवमेव 'असणित्ति' असंज्ञिपर्यन्तं त्रौन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञि-  
पञ्चेन्द्रियाणां  $\wedge ४ \wedge १ \wedge २ \wedge$  स्वस्वस्थितिबन्धविकल्पेषु अपि व्याख्यातव्यम् ॥१४९॥ अथ संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य  
तत्प्रागुक्तपर्याप्तकोत्कृष्टापर्याप्तकोत्कृष्टापर्याप्तकजघन्यपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धविकल्पेषु विशेषमाह— १५

समय घटता दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद हैं वे थोड़े हैं ।  
अतः उनकी एक शलाका जानना । तथा हेट्टा अर्थात् नीचे दो इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य  
स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर एक-एक समय घटता दो-इन्द्रिय पर्याप्तकका  
जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी है और  
ऊपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय २०  
पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरि शलाका उससे संख्यात-  
गुणी है । सो एकको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अधस्तन शलाका दो होती है । उसे  
भी दोसे गुणा करनेपर ऊपरकी शलाका चार होती है । यथा ४ १ २ । इस प्रकार दो-  
इन्द्रियकी शलाका कही । इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी शलाका  
जानना । इनकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण, स्थितिका प्रमाण तथा आबाधाके भेदोंका प्रमाण २५  
और आबाधाकालका प्रमाण भी यथासम्भव जानना ॥१४९॥



इन्नु संज्ञिपर्याप्तापर्व्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधगळो विशेषमं पेळवपरु :—

सण्णिस्स दु हेड्ढादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं ।

ठिदिआयामो वि तहा सगठिदिठाणं व आवाहा ॥१५०॥

संज्ञितस्तु अधस्तात् स्थितिस्थानं संख्यगुणितमुपयुंपरि स्थित्यायामोऽपि तथा स्वस्थिति-  
स्थानमिव आवाधा ॥

संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं सा ७० को २ ।  
तज्जघन्यस्थितिबंधविकल्पमन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं । सा अन्तः कोटी २ । मल्लि आवी

अंते सुद्धे प १ १ वडिद्धिदे । प १ १ १ । खवसंजुदे ठाणा । प १ १ १ । एदितिउ मिथ्यात्व-  
१ १

प्रकृतिस्थितिबंधसर्वविकल्पगळपुवंतागुत्तं विरलु । तु मत्ते संज्ञिनः संज्ञिजीवंगे । अधस्तात् कळो  
संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधं मोदल्लोडु उपयुंपरि संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थिति संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्ट- १०  
संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पगळंतराळगळोडु संभविमुव स्थितिस्थानं स्थितिबंधविकल्पगळ  
संख्यगुणितं संख्यातगुणितक्रमगळपुवु । स्थित्यायामोऽपि तथा । संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थित्यायाममं  
नोडलुमपर्याप्तसंज्ञिजीवजघन्यस्थितिबंधायाममुमदं नोडलुमपर्याप्तसंज्ञिजीवोत्कृष्टस्थितिबंधा-  
याममुमदं नोडलु पर्याप्तसंज्ञिजीवोत्कृष्टस्थितिबंधायाममुमा स्थितिबंधविकल्पगळंतंते उपयुंपरि

संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य तत्प्रागुक्तचतुःस्थितिविकल्पेषु तु पूर्वोक्तैकेन्द्रियाद्यसंज्ञ्यंताना उक्ततदष्टचतुर्भ्यो १५  
विशेषः । स कथ्यते—

अधस्तात्संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमादि कृत्वा उपयुंपरि तच्चतुर्विकल्पांतरालेषु स्थिति-  
स्थानं स्थितिविकल्पप्रमाणं संख्यगुणितं संख्यातगुणितक्रमं भवति । स्थित्यायामोऽपि तथा तच्चतुःस्थिति-  
विकल्पानां आयामोऽपि तथा उपयुंपरि संख्यातगुणितक्रमो भवति । तद्यथा—

संज्ञिनो मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि इति द्विसंख्यातगुणितपल्यमात्री प १ १ २०

अग्रे संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें पूर्वमें कहे पर्याप्तकका उत्कृष्ट, अपर्याप्तकका उत्कृष्ट, अपर्याप्तक-  
का जघन्य और पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके भेदोंमें जो विशेष बात है उसे कहते हैं ।

संज्ञी पञ्चेन्द्रियके ऊपर कहे चार भेदोंमें पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी पर्यन्त कहे  
आठ, चार, चार आदिसे अन्तर है । बही कहते हैं—

‘हेड्ढादो’ अर्थात् संज्ञी पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धसे लगाकर ऊपर-ऊपर उन चार २५  
भेदोंके अन्तरालोंमें स्थितिके भेदोंका प्रमाण क्रमसे संख्यातगुणा-संख्यातगुणा होता है ।  
तथा स्थितिका आयाम अर्थात् समयोंका प्रमाण भी ऊपर-ऊपर क्रमसे संख्यातगुणित होता  
है । उसे ही आगे कहते हैं—

संज्ञी जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है । सो दो बार  
संख्यातसे पल्यको गुणा करनेपर उतनी होती है । तथा जघन्यस्थिति मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा ३०

मेगे मेगे संख्यगुणितं संख्यात गुणितक्रमगळप्पुवु । स्वस्थितिस्थानमिवाबाधा तंतम्म स्थितिबंध-  
स्थानविकल्पगळेतंत । आबाधा आबाधाविकल्पगळु मप्पुदरिनिलियं मेगे मेगे संख्यातगुणित-  
क्रमगळप्पुवु । आ नालकुं स्थानंगळगे संदृष्टि—

|       |                                   |                                          |                                             |                                 |                    |
|-------|-----------------------------------|------------------------------------------|---------------------------------------------|---------------------------------|--------------------|
|       | सं प उ<br>सा ७० को २<br>उ. स्थिति | सं अ उ<br>०<br>प १ १ ४<br>५<br>स्थि. वि. | स अ ज<br>०<br>प १ १ ४<br>५ १ ५<br>स्थि. वि. | सं प ज<br>०<br>प १ १ १<br>५ १ ५ | प १<br>ज. स्थिति   |
| आबाधा | व ७०००<br>स २ १११                 | अबा. वि.<br>०<br>२१११ ४<br>५             | ०<br>२१११ ४<br>५ १ ५                        | ०<br>२१ ११ १<br>५ १ ५           | आबाधा जघन्य<br>२११ |

यिल्लि स्थितिबंधविषयदोळु बादरैकेंद्रियपर्याप्तजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिरो एकसागरोपमस्थि-  
५ तिबंधमं माळकुमा मिथ्यात्वप्रकृतिरो आ जीवं जघन्यस्थितिबंधमं समधोनक्रमविदं रूपोनपल्यासंख्या-  
तैकभागोनैकसागरोपमस्थितिबंधमं माळकुमदुकारणदिदमा सर्वस्थितिबंधविकल्पगळु पल्यासंख्या-  
तैकभागप्रमितंगळप्पुवु प ई सर्वस्थितिबंधविकल्पगळगाबाधाविकल्पगळु रूपाधिकावल्यसंख्यातै-  
कभागप्रमितंगळप्पुवु १ तन्मध्यपतितसूक्ष्मैकेंद्रियपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं । बादरैकेन्द्रि-  
२  
३

जघन्या च अन्तःकोटाकोटिसागरोपमाणीति संख्यातपत्यमात्रो प १ प्राग्बदानीतसमयोत्तरतस्थितिविकल्पा

१० एतावन्तः प १ १ एतेषु संख्यातभक्तबहुभागः संज्ञिपर्याप्तिकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादि क्त्वा संज्ञिपर्याप्तिको-  
त्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ ४ एतेषु चरमस्य संज्ञिपर्याप्तिकोत्कृष्टस्थिति-  
बन्धस्यायामो रूपोनातीतविकल्पमात्रसमवैर्न्यूनसंज्ञिपर्याप्तिकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति सा ७० को २

०  
प १ १ ४  
५

कोड़ीके ऊपर और कोड़ाकोड़ीसे नीचे इस तरह अन्तः कोटाकोटि सागर है । सो एक बार  
संख्यातसे पत्यको गुणा करनेपर होती है । सो उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटाकर तथा एकसे  
१५ भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर संज्ञीके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका  
प्रमाण होता है । उसमें संख्यातसे भाग देवें । एक भागके बिना शेष बहुभाग मात्र संज्ञी-  
पर्याप्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लगाकर संज्ञी अपर्याप्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके  
भेदोंका प्रमाण है । उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने समय संज्ञी पर्याप्तिके उत्कृष्ट

१. व संज्ञिपर्याप्तिकोत्कृष्टस्थित्याममात्रो ।

यापय्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं । सूक्ष्मैर्केन्द्रियापय्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं सूक्ष्मैर्केन्द्रिया-  
पय्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं । बादरैर्केन्द्रियापय्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं । सूक्ष्मैर्केन्द्रिया-  
पय्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं बादरैर्केन्द्रियपय्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुमेव स्थितिबंधवि-  
कल्पंगळगे प्रत्येकं स्थित्यायामप्रमाणमुमनवराबाधाविशेषमुमं तरल्पडुगुमदे ते दोडे जेट्टाबाहोवट्टिय  
जेट्टमित्यादि । उत्कृष्टस्थितियनुत्कृष्टाबाधेयिदं भागिसिदोडाबाधाकांडकमक्कुमदं तंतम्माबाधा- ५  
विकल्पंगळिदं गुणिसि लब्धदोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितिबंधवोळु कळेदोडे तंतम्म स्थितिबंधस्थाना-  
यामप्रमाणमक्कुमल्लि बादरैर्केन्द्रियपय्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायाममेकसगरोपमप्रमाणं तन्नुत्कृष्टाबाधे-  
यिदं २ भागिसिदोडाबाधाकांडकमक्कु प ११ मिदनुत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोवलगोडु सूक्ष्म-  
४२१

२१

पय्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधपय्यंतमिदं स्थितिविकल्पंगळाबाधाविकल्पंगळिनितरिदं २ १९६ गुणि-  
० ३४३

सिदुवनिदं प ११ । २ । १९६ आवळिगावळियं भाज्यभागहारंगळं कळेद शेषमपवर्तित- १०  
२ १ । ० ३ ४ ३

पुनस्तदेकभागस्य संख्यातक्तबहुभागः संशयपर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा संशयपर्याप्तजघन्य-

स्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ ४ एतेषु चरमस्य संशयपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः  
५ ५

एतावद्भिरेव समयैर्यूनसंशयपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायामो भवति सा ७० को २ शेषतदेकभागः संशयपर्याप्तक-

५ १ १ ४ ।  
५ ५

जघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा संशयपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ १  
५ ५

स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरमें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना संज्ञी अपर्याप्तकके १५  
उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रमाण है । तथा जो एक भाग रहा था उसमें संख्यातका भाग  
दीजिए । इसमें भी एक भाग बिना शेष बहुभाग मात्र संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थिति-  
बन्धसे एक समय कम स्थितिबन्धसे लगाकर संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त  
स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है । सो इतने समय संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें-  
से घटानेपर संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है । तथा जो एक भाग २०

१. ब संशयपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो ।

मिदु प १९६ इदरोल्लेकरूपं कळवुत्कुष्टस्थितिबंधविकल्पदोळु कळवोडे सूक्ष्मेकेंद्रिय-  
० ३४३

पर्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायामप्रमाणमवकु सा मा स्थित्यायामकाबाधेयं रूपोनमप्यी याबाधावि-  
०  
प १९६  
० ३४३

कल्पंगळनुत्कृष्टाबाधाविकल्पदोळु कळव शेवमाबाधायाममवकु ।

मुंदेयुमी प्रकारदिदं तंतस्माबाधायाममरियत्पडुगुं सत्तमुत्कृष्टस्थितिबंधायाममनुत्कृष्टाबाधा-  
५ यामदिदं भागिसिव लब्धमात्राबाधाकांडकमनिदं प ११ उत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गो डु  
२१

बादरापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्यन्तमिदं स्थितिबिकल्पंगळाबाधाधिकल्पंगळिवरिदं ।

२। २२४ गुणिसिदुवनिदं प ११ । २। २२४ भाज्यभागहाररूपविनिर्द्वावळिद्वयमं सरि-  
० ३४३ २१। ० ३४३  
गळेदपवत्तितशेषमिदु प २२४ इदरोल्लेकरूपं कळवुत्कुष्टस्थितिबंधविकल्पदोळु कळवोडे  
० ३४३

एतेषु चरमस्य संज्ञिपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनसंज्ञपर्याप्तकजघन्यस्थित्या-  
१० याममात्रो भवति सा ७० को २ स तु अन्तःकोटाकोटिसागरोपमात्र एव सा अन्तः को २ ।

—  
—  
प १११  
५।५

तथा 'सगठिदिठाणं व आबाहा' संज्ञिनो मिथ्यात्वाबाधाविकल्पा अपि 'सगठिदिठाणं व' निजस्थिति-  
विकल्पवद्भवन्ति । तद्यथा—तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा सप्तसहस्रवर्षाणि इति त्रिसंख्यातगुणितावलिमात्री  
२ १ १ १ जघन्या च समयोनमुहूर्तः इति द्विसंख्यातगुणितावलिमात्री २ १ १ तथानीतसमयोत्तरसद्विकल्पा

१५ रहा था उतना प्रमाण मात्र संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्यसे एक समय कम अनन्तर स्थिति-  
बन्धसे लेकर संज्ञी पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण है । इस  
प्रमाणको संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धमें-से घटानेपर संज्ञी पर्याप्तकका जघन्य  
स्थितिबन्ध होता है । सो यह प्रमाण अन्तःकोटाकोटी सागर जानना । यह स्थितिका  
कथन हुआ ।

अब आबाधाका कथन करते हैं । आबाधाका कथन भी स्थितिस्थानवत् जानना ।  
२० सो संज्ञीके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा सात हजार वर्ष प्रमाण है । सो तीन बार संख्यातसे  
गुणित आवली प्रमाण है । और जघन्य आबाधा एक समय कम एक मुहूर्त प्रमाण है । सो  
दो बार संख्यातसे गुणित आवली प्रमाण है । सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर उसे एकसे  
भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है ।  
जैसे स्थितिके भेदोंमें संख्यातका भाग दे-देकर बहुभाग, बहुभाग और एक भाग प्रमाण-  
२५ स्थितिके भेद तीनों अन्तरालोंमें कहे, उसी प्रकार आबाधाके सब भेदोंमें संख्यातसे भाग दे-

बादरेकैन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधायामप्रमाणमस्कुं सा ) सी प्रकारदिवं शेषसूक्ष्मापर्याप्तो-  
 प २२४  
 ० ३४३

त्कृष्टजघन्यस्थितिबंधद्वयबादरापर्याप्तजघन्यसूक्ष्मपर्याप्तजघन्य बादरपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविक-  
 ल्पंगलु यथाक्रमदिवमिनितपुत्रु ।

|                            |                          |                                |                                   |                            |                    |
|----------------------------|--------------------------|--------------------------------|-----------------------------------|----------------------------|--------------------|
| सा १ । )<br>प २२८<br>० ३४३ | सा १ ।<br>प २२९<br>० ३४३ | सा १ । १<br>प २३१ । १<br>० ३४३ | सा १ । १<br>प २ । ४५ । १<br>० ३४३ | सा १<br>प ३४३ । १<br>० ३४३ | अपवर्तितमन्त्यमिदु |
|----------------------------|--------------------------|--------------------------------|-----------------------------------|----------------------------|--------------------|

सा १ ) ई प्रकारदिवं शेषद्वौन्द्रियादिगळ पर्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थित्यामंगलुमवराबाधाया- ५  
 प  
 ०

मैंगलु\*तरल्पडुबुबु ॥

अनंतरं जघन्यस्थितिबंधस्वामिगळं पेरुदपरु—

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमवादरोऽपुव्वो ।

छव्वेगुव्वमसण्णी जहणमाऊण सण्णी वा ॥१५१॥

सप्तदश पंच तीर्थाहाराणां सूक्ष्मबावरापूर्वाः । षड्वैगुर्व्वमसंज्ञी जघन्यमायुषां संज्ञी वा ॥ १०

ज्ञानावरणपंचकमुं दर्शनावरणचतुष्कमुमंतरायपंचकमुं यशस्कीर्तिनाममुच्चैर्गोत्रमुं साता-  
 वेदनीयमुमंजी १७ सप्तदश प्रकृतिगळगे जघन्यस्थितिबंधमं सूक्ष्मसांपरायं माळकुं । पुरुषवेदमुं

एतावन्तः—२ १ १ १ । एतान् स्थितिविकल्पवत् संख्यातेन भवत्वा भवत्वा बहुभागं बहुभागं एकभागं  
 स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तत्तत्त्वबन्धस्य चरमं चरममाबाधायामं निजस्थितिविकल्पायामवत्  
 साधयेत् ॥१५०॥ अथ जघन्यस्थितिबंधस्वामिभेदानाह—

पञ्चज्ञानावरणचतुर्दर्शनावरणपञ्चान्तराययशस्कीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानां जघन्यस्थिति सूक्ष्मसाम्पराय

देकर बहुभाग, बहुभाग और एक भाग प्रमाण आबाधाके भेद तीनों अन्तरालोंमें जानना ।  
 तथा जैसे स्थितिके भेदोंको घटा-घटाकर स्थितिका प्रमाण कहा वैसे ही यहाँ आबाधाके  
 भेदोंको घटा-घटाकर उस-उस स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण जानना । इस प्रकार संज्ञी  
 पञ्चेन्द्रियके सम्बन्धमें विशेष कथन जानना ॥१५०॥

आगे जघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंको कहते हैं—

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और साता-  
 वेदनीय इन सतरह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव ही

१. अ तत्तच्चरममाबाधायामं साधयेत् ।



चतुःसंज्वलनमुमेबी प्रकृतिपंचकक्के जघन्यस्थितिबंधमननिवृत्तिकरणं माळकुं । तीर्थसुमाहारक-  
द्वयमुमेबी प्रकृतित्रयक्के जघन्यस्थितिबंधमनपूर्वकरणं माळकुं । वैक्रियिकषट्कक्के जघन्यस्थिति-  
बंधमनसंज्ञिजीवं माळकुमायुष्यंगळगे जघन्यस्थितिबंधं संज्ञियुं वा मेणसंज्ञियुं माळकुं ।

अनन्तरमजघन्यस्थितिबंधादिगळगे संभविसुव साद्याविभेदंगळं पेळवपर—

५

अजहण्णद्धिदिवंधो चदुव्विहो सत्तमूलपयडीणं ।

सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो ॥१५२॥

अजघन्यस्थितिबंधश्चतुर्विधः सप्तमूलप्रकृतीनां । शेषत्रये द्विविकल्पः आयुश्चतुष्केऽपि  
द्विविकल्पः ॥

आयुर्वज्जितजानावरणाद्यष्टविध प्रकृतिगळगे १ अजघन्यस्थितिबंधं साद्यानादि ध्रुवाध्रुवभेदादि  
१० चतुर्विधमवकुं । शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रितयदोळ साद्यध्रुवभेदादिवं द्विविकल्पमवकुमायुश्चतुष्क-  
दोळमा द्विविकल्पमेवकुमपवादविनिर्मुक्तमिदक्के विषयमवकुं । इल्लि विशेषमं पेळवपर ।

संजलणसुहुमचोदसघादीणं चदुविधो दु अजहण्णो ।

सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधा वि दुधा ॥१५३॥

संज्वलनसूक्ष्मचतुर्दृशघातीनां चतुर्विधस्तु अजघन्यः । शेषत्रितयाः पुनर्द्विविधाः शेषाणां

१५ चतुर्विधा अपि द्विधा ॥

एव बध्नाति पुंवेदचतुःसंज्वलनानां अनिवृत्तिकरण एव । तीर्थकृत्वाहारकद्वययोरपूर्वकरण एव । वैक्रियिक-  
षट्कस्य असंज्ञेय आयुषः संज्ञी वा असंज्ञी वा ॥१५१॥ अथाजघन्यादीनां संभवत्साद्यादिभेदानाह—

आयुर्वज्जितसप्तविधमूलप्रकृतीनां अजघन्यस्थितिबन्धः साद्यानादिध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विधो भवति शेष-  
जघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रितये साद्यध्रुवौ द्वावेव । आयुष्कर्मणः अजघन्यादिबन्धचतुष्केऽपि तावेव द्वौ । अपवाद-  
२० विनिर्मुक्तोऽस्य विषयो भवति ॥१५२॥ अत्र विशेषमाह—

करता है तथा पुरुषवेद, चार संज्वलन कषाय, इन पाँचका जघन्य स्थितिबन्ध अनिवृत्ति-  
करण गुणस्थानवर्ती जीव करता है । तीर्थकर और आहारकद्विकका जघन्य स्थितिबन्ध  
अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव करता है । देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरक  
गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग इस वैक्रियिकषट्कका जघन्य स्थितिबन्ध  
२५ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय करता है । आयुर्कर्मकी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध संज्ञी या असंज्ञी  
जीव करता है ॥१५१॥

आगे अजघन्य आदि स्थितिके भेदोंमें होनेवाले सादि आदि भेदोंको कहते हैं—

आयुको छोड़ सात मूल प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और  
अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है । और उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट तथा जघन्य स्थितिबन्ध सादि और  
३० अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं । किन्तु आयुर्कर्मका चारों ही प्रकारका स्थितिबन्ध सादि  
और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार है । यह कथन सन्देह रहित है अतः इसके विषयमें विशेष  
नहीं कहा है ॥१५२॥

उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

संज्वलनक्रोधमानमायालोभंगन्धं सूक्ष्मसांपरायनबंधचतुर्दशघातिगन्धमजघन्यस्थितिवंधं तु मत्ते साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदविदं चतुर्विधमवकुं । शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रयं गळं पुनः मत्ते द्विविधा साद्यध्रुवभेदविदं द्विविधंगळपुवु । शेषाणां शेषप्रकृतिगळेल्लम जघन्य-जघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टभेदविदं चतुर्विधंगळनितुं साद्यध्रुवभेदविदं द्विप्रकारस्थितिवंधमनुळुववकुं—

| ज्ञा | व   | वे  | मो  | आ   | ना  | गो  | अं  | इ   | १०२ |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| उ २  | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ |
| अ २  | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ |
| ज २  | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ |
| अ ४  | अ ४ | अ ४ | अ ४ | अ २ | अ ४ | अ ४ | अ ४ | अ ४ | अ २ |

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणं पि होति असुहाओ ।

माणुसतिरिखदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥१५४॥

सर्वस्तु स्थितयः शुभाशुभानामप्यशुभाः । मानुषतिर्यग्देवायूषि च मुक्त्वा शेषाणां ॥

मानुषतिर्यग्देवायुष्यत्रितयमल्लुळिदेला शुभाशुभप्रकृतिगळ सर्वस्थितिगळं संसारहे-  
तुर्त्वाद्विधमशुभंगळे यपुवे दरियल्पडुवुवु ॥

अनंतरमाबाधे ये बुदेने दोडे पेळवपहः—

चतुःसंज्वलनामां सूक्ष्मसांपरायनबंधचतुर्दशघातिनां च अजघन्यस्थितिबन्धः तु-पुनः चतुर्विधो भवति । शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रयमपि साद्यध्रुवभेदात् द्वैधैव । शेषप्रकृतीनां अजघन्यजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाश्चत्वारोऽपि तथा द्विधा ॥१५३॥

मानुष्यतिर्यग्देवायूषि मुक्त्वा शेषसर्वशुभाशुभप्रकृतीनां सर्वाः स्थितयः संसारहेतुत्वादशुभा एवेति ज्ञातव्यम् ॥१५४॥ अथाबाधां लक्षयति—

चार संज्वलन कषायोंका तथा सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली चौदह घाति प्रकृतियों-  
का (पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चार दर्शनावरण) अजघन्य स्थितिबन्ध सादि,  
अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेदसे चार-चार प्रकार है । शेष जघन्यबन्ध, अनुत्कृष्ट बन्ध और  
उत्कृष्ट बन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं । इनके सिवाय शेष प्रकृतियोंके  
जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट तथा उत्कृष्ट चारों प्रकारका बन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे २०  
दो ही प्रकार हैं ॥१५३॥

| ज्ञा. | द.   | वे.  | मो.  | आ.   | ना.  | गो.  | अं.  | १८   | १०२  |
|-------|------|------|------|------|------|------|------|------|------|
| उ. २  | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ |
| अ. २  | अ. २ | अ. २ | अ. २ | अ. २ | अ. २ | अ. २ | अ. २ | अ. २ | अ. २ |
| ज. २  | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ |
| अ. ४  | अ. ४ | अ. ४ | अ. ४ | अ. ४ | अ. ४ | अ. ४ | अ. ४ | अ. ४ | अ. २ |

मनुष्यायु, तिर्यच्चायु और देवायुको छोड़कर शेष सभी शुभ और अशुभ प्रकृतियोंकी  
सब स्थितियाँ संसारका कारण होनेसे अशुभ ही होती हैं । ऐसा जानना चाहिए ॥१५४॥

आगे आबाधाका लक्षण कहते हैं—

कर्मस्वरूपेणागयद्वं ण य एदि उदयरूपेण ।

रूपेणुदीरणस्स व आवाहा जाव ताव हवे ॥१५५॥

कर्मस्वरूपेणागतद्रव्यं न चैत्युदयरूपेण । रूपेणोदीरणाया वा आवाधा यावत्तावद्भवेत् ॥

काम्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगहेतुविद काम्मणं वर्गणायात-  
५ पुद्गलस्कन्धगच्छु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदगच्छिदं परिणमिसि जीवप्रदेशगच्छोच्छान्यो-  
प्रदेशानुप्रवेशलक्षणबन्धरूपदिनिर्हवक्के फलदानपरिणतिलक्षणोदयरूपदिनुदेयावच्छिद्यनेय्ददेयुमपक्व-  
पाचनलक्षणोदीरणारूपदिनुदयक्केयुं वादरदेनेवरमिप्पुवुदनेवरमावाधाकालमेंदुपरमागमदोळु  
पेळल्पट्टु ॥

अनंतरमाबाधेयं मूलप्रकृतिगच्छोळु पेळदपरः—

१० उदयं पडि सत्तण्हं आवाहा कोडकोडि उवहीणं ।

वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्टिदीणं च ॥१५६॥

उदयं प्रति सप्तानामावाधा कोटीकोट्युदधीनां । वर्षशतं तत्प्रतिभागेन शेषस्थितीनां च ॥

आयुर्वर्जितज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिगच्छाबाधे येनितेनितेंदोडे उदयं प्रति उदयमनाश-  
यिसि कोटीकोटिसागरोपमंगच्छो शतवर्षप्रमितमक्षकुमन्तागुत्तं विरलु तत्प्रतिभागदिदं शेषस्थिति-  
१५ गच्छोगुमरियत्पडुगुमदेंतेंदोडिल्लि त्रैराशिकविधानं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडेककोटीकोटिसागरोपम-  
स्थितिगे नूळवर्षमाबाधेयागलु सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमस्थितिगे निताबाधेयक्कुमेंदितनुपात-

काम्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगहेतुना काम्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धा-  
मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेण आत्मप्रदेशेषु अन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशलक्षणबन्धरूपेणावस्थिताः फलदानपरिणति-  
लक्षणोदयरूपेण अपक्वपाचनलक्षणोदीरणारूपेण वा यावन्नायान्ति तावान् काल आवाधेत्युच्यते ॥१५५॥

२० अथ तां मूलप्रकृतिंवाह—

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुदयं प्रति आवाधा कोटीकोटिसागरोपमाणां शतवर्षमात्री भवति तथा सति  
शेषस्थितीनां तत्प्रतिभागेनैव ज्ञातव्या । तद्यथा—

काम्मण शरीर नामक नामकर्मके उदयसे और जीवके प्रदेशोंकी चंचलतारूप योगके  
निमित्तसे काम्मण वर्गणारूपसे आये पुद्गलस्कन्ध मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिरूप होकर  
२५ आत्माके प्रदेशोंमें परस्परमें प्रवेश करते हैं उसीको बन्ध कहते हैं । बन्धरूपसे अवस्थित वे  
पौद्गलिक कर्म जबतक उदयरूप या उदीरणारूप नहीं होते उस कालको आवाधा कहते हैं ।  
अर्थात् कर्मप्रकृतिका बन्ध होनेपर जबतक उसका उदय या उदीरणा नहीं होती, तबतकका  
समय उस प्रकृतिका आवाधा काल कहा जाता है । फल देने रूप परिणमनको तो उदय कहते  
हैं । और असमयमें ही अपक्व कर्मका पकना उदीरणा है ॥१५५॥

३० आगे मूल प्रकृतियोंमें आवाधा कहते हैं—

आयुको छोड़ सात कर्मोंकी उदयकी अपेक्षा आवाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण  
स्थितिकी एक सौ वर्ष होती है । ऐसा होनेपर शेष स्थितिओंकी आवाधा इसी प्रतिभागसे  
ज्ञानना । वही कहते हैं—एक कोड़ाकोड़ी सागरकी सौ वर्ष आवाधा होती है तो सत्तर

त्रैराशिकं माडि प्र । सा १ । को २ । फ । व १०० । इ । सा ७० । को २ । बंध लब्धं मिथ्यात्व-  
प्रकृति उत्कृष्टस्थितिगाबाधे सप्तसहस्रप्रमितमक्कु ७००० मी प्रकारदिदं शेष चालीसिय तीसिय  
वीसियादिगङ्गे स्थितिप्रतिभागदिदमाबाधेयक्कु । सणि असणि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा

इत्यादि प्र सा २५ । फ ११११ इ । सा २५ ४ लब्धमाबाधे ११११ इत्यादि ॥  
२१ । २५ ७ २१ । २५ । ४ ७

अन्तरमन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगाबाधेयं पेळदपरः—

अंतोकोडाकोडिद्विदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा ।

संखेज्जगुणविहीणं सर्वजघन्यस्थितेर्भवे ॥१५७॥

अन्तःकोटीकोटिस्थितेरन्तर्मुहुत्तमाबाधा । संख्यातगुणविहीना सर्वजघन्यस्थितेर्भवेत् ॥

अन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे आबाधेयन्तर्मुहुत्तमक्कु । २१ । सर्वजघन्यस्थितिगाबा-

धेयदं नोडलु संख्यातगुणहीनमक्कु २१ प्र । मु १०८०००० । फ सा १ । को २ । इ । मु १ । १०  
४

कोटीकोटिसागरोपमस्य शतवर्षं तदा सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्य किमिति ? त्रैराशिके कृते प्र-सा  
१ को २ । फ-व १०० । इ सा ७० को २ लब्धं मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधा सप्तसहस्री भवति ७००० । एवं  
शेषचालीसियतीसियवीसियादीनामप्यानेतव्या । 'सणिप्रसणिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा' इत्यादि  
प्र-सा २५ । फ २ इ सा २५ ४ लब्धा २ इत्यादि । अथान्तःकोटीकोटिसागरोपमस्याह—

१ १ १ १ ७ १ १ १ १ ४  
२ १ २५ २ १ । २५ । ७

अन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितेराबाधा अन्तर्मुहुत्तं भवति २१ सर्वजघन्यस्थितेस्तु ततः संख्यात- १५  
गुणहीना भवति २ १ प्र-१०,८०००० । फ सा १ को २ । इ मु १ लब्धस्थितिः ९, २५, ९२, ५९२ ।  
४

कोडाकोड़ी सागर स्थितिकी आबाधा कितनी होगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि  
एक कोडाकोड़ी सागर, फलराशि सौ वर्ष, इच्छाराशि सत्तर कोडाकोड़ी सागर । सो  
फलराशिसे इच्छाराशिकी गुणा करके उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर लब्धराशिका प्रमाण २०  
सात हजार वर्ष आता है । वही मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट आबाधा है । इसी प्रकार अपनी-  
अपनी स्थिति प्रमाण इच्छाराशि करनेपर अपने-अपने आबाधा कालका प्रमाण आता है ।  
जिनकी स्थिति चालीस कोडाकोड़ी सागर है उनका आबाधा काल चार हजार वर्ष प्रमाण  
है । जिनकी स्थिति तीस कोडाकोड़ी सागर है उनकी आबाधा तीन हजार वर्ष है । इसी तरह  
अन्य भी प्रकृतियोंकी आबाधा जानना । 'सणि असणि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा ।'  
सो इस गाथाके द्वारा दो-इन्द्रिय आदिके आबाधा कहा है उसे भी जान लेना ॥१५६॥ २५

आगे अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिकी आबाधा कहते हैं—

अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिका आबाधाकाल अन्तर्मुहुत्त प्रमाण है । और  
सब कर्मोंकी जघन्यस्थितिकी आबाधा उससे संख्यातगुणा हीन है । सौ वर्षके दस लाख  
अस्सी हजार मुहुत्त होते हैं । सो इतनी आबाधा एक कोडाकोड़ी सागरकी होती है तो एक

लब्धस्थिति ९२५९२५९२ ६४ प्रमाण । सा १ । को २ । फ आबाधा । १०८०००० । इ १०८

९२५९२५९२ । ६४ लब्धं मुहूर्तं १ । प्र । सा ७० । को २ । फ आबाधा व ७००० । इ सा १ । १०८

लब्धमाबाधे । उच्छ्वा १ आयुष्यकाबाधेयं पेन्द्रपरः—

पुत्रवाणं कोटितिभागादासंखेप अद्भवो ति हवे ।

आउस्स य आबाहा ण द्विदिपडिभागमाउस्स ॥१५८॥

पूर्वार्णा कोटिभिभागादासंखेपाद्धा पर्यन्तं भवेदायुष्यस्य आबाधा न स्थितिप्रतिभाग-  
मायुषः ॥

आयुष्कर्मवर्क पूर्वकोटिवर्षगठ त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयकुं । जघन्यमन्तमुहूर्तमवकुं ।  
अथवा पक्षान्तरविदमसंखेपाद्धेयकुमऽसंखेपाद्धे एंनुवाउद्वेवोडे—न विद्यते अस्मादन्यः संखेपः असं-  
१० खेपः स चासावद्धा च असंखेपाद्धा येदावत्यसंख्यातैकभागमेंदु पेन्द्रवरा पक्षान्तरमनंगीकरिसि  
पेन्द्रल्पदुदु । आयुष्यकर्मवर्क की प्रकारविदमाबाधेयल्लवे स्थितिप्रतिभागविदमाबाधेयिल्ल । देवनारक-

६४ प्र-सा १ को २ । फ-मु १०८०००० । इ ९२५९२५९२ । ६४ लब्धो मुहूर्तः १ । प्र-सा ७० को २ । १०८

फ आबाधा ७००० । इ सा १ लब्धं आबाधा उच्छ्वासः १ ॥१५७॥ आयुष आह—

आयुःकर्मण उत्कृष्टाबाधा पूर्वकोटिवर्षत्रिभागो भवति जघन्योऽन्तमुहूर्तो वा पक्षान्तरेण असंखेपाद्धा  
१५ वा भवति । न विद्यते अस्मादन्यः संखेपः असंखेपः, स चासी अद्धा च असंखेपाद्धा आदत्यसंख्येयभागमात्रत्वात् ।

मुहूर्त आबाधा कितनी स्थितिको होती है । ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि दस लाख  
अस्सी हजार मुहूर्त, फलराशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, इच्छाराशि एक मुहूर्त । सो फलसे  
इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर नौ कोटि पच्चीस लाख बानवे हजार पाँच  
सौ बानवे सागर और एक सागरके एक सौ आठ भागोंमें-से चौसठ भाग स्थितिकी एक  
२० मुहूर्त आबाधा हुई । तथा प्रमाणराशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि दस लाख अस्सी  
हजार मुहूर्त, इच्छाराशि नौ कोटि पच्चीस लाख बानवे हजार पाँच सौ बानवे और एक सौ  
आठ भागोंमें-से चौसठ भाग प्रमाण सागर । ऐसा करनेपर आबाधा एक मुहूर्त होती है ।  
तथा प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि सात हजार वर्ष, इच्छाराशि एक  
सागर । ऐसा करनेपर फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध साधिक  
२५ संख्यात उच्छ्वास आया वही एक सागरकी स्थितिमें आबाधा काल जानना ॥१५७॥

आयुर्कर्मकी आबाधा कहते हैं—

आयुर्कर्मको उत्कृष्ट आबाधा एक कोटि पूर्व वर्षका तीसरा भाग होती है । जघन्य  
आबाधा अन्तमुहूर्त प्रमाण है । अन्य किसी आचार्यके मतसे 'आसंखेपाद्धा' प्रमाण है ।  
जिससे थोड़ा काल दूसरा नहीं है उसे आसंखेपाद्धा कहते हैं सो यह काल आवलीका  
३० असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है । आयुर्कर्मकी आबाधा इसी प्रकार है अन्य कर्मोंकी तरह  
स्थितिके प्रतिभागके अनुसार नहीं है ।

भोगभूमिजर्गसंख्यातवर्षायुष्यगळपुर्वरिदमे तु पूर्वकोटिवर्षत्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयकुमे दोडे देवनार-  
कगे स्वस्थितिषण्मासावसानशेषमावबळिककं तत्त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयकुं । भोगभूमिजगे  
स्वस्थितिनवमासावशेषमावबळिककं तत्त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयकुमदु कारणविद कर्मभूमितिप्यंम-  
नुष्यरुगळगे पूर्वकोटिवर्षत्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयकुमदु मोदल्लोडु असंक्षेपाद्धावसानमावाबाधा-  
विकल्पंगळो देवनारकभोगभूमिजरुगळगाबाधेयरियल्पडुगुमसंक्षेपाद्धे यावडेयोळे दोडे अष्टापकर्षं  
गळोळेल्लियुमायुष्वंधमागदे भुज्यमानायुष्यमन्तम्मुहूर्ताविशेषमागुत्तं विरलु उत्तरभवायुष्यं मुन्नमे-  
यंतम्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धंगळ बंधं ( बद्धं ) निष्ठापिसल्पडुगुं । केळंबराचार्यरुगळावत्यसंख्यातैक-  
भागमसंक्षेपाद्धेयवशेषमागुत्तिरलुत्तर भवायुष्यं निष्ठापिसल्पडुगुमेंबर । ई येरडुं प्रवाह्योपदेशंगळ-  
पुवरिनंगीकृतंगळ । असंक्षेपाद्धेयुमदरिनन्तम्मुहूर्तमा पक्षदोळ जघन्यमक्कुमुत्कृष्टातम्मुहूर्तं  
समयोनमुहूर्तमेयंदरिउदु—

५

१०

|   |           |
|---|-----------|
|   | ज २       |
|   | ०         |
| ज | २१४       |
|   | ०         |
|   | पू को ३ उ |
|   | आयुराबाधा |
|   | पू को ३   |

आयुःकर्मण एवमेव भवति न च स्थितिप्रतिभागेन । तर्हि असंख्यातवर्षायुषकाणां त्रिभागे उत्कृष्टा कथं नोक्ता ?  
इति तन्न, देवनारकाणां स्वस्थितौ षण्मासेषु भोगभूमिजानां नवमासेषु च स्वशिष्टेषु त्रिभागेन आयुर्वन्ध-  
संभवात् । यद्यष्टापकर्षेषु क्वचिन्नायुर्वद्धं तदावत्यसंख्येयभागमात्रायाः समयोनमुहूर्तमात्राया वा असंक्षेपाद्धायाः  
प्रागेवोत्तरभवायुरन्तर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् बद्ध्वा निष्ठापयति । एतौ द्वावपि पक्षौ प्रवाह्योपदेशत्वात् अङ्गी-

शंका—असंख्यात वर्षकी जिनकी आयु है उनका त्रिभाग प्रमाण आबाधा क्यों नहीं  
कही ?

१५

समाधान—क्योंकि देव और नारकियोंके तो अपनी स्थितिमें छह मास और भोग-  
भूमियोंमें नौ मास शेष रहनेपर उसके त्रिभागमें आयुका बन्ध होता है । और कर्मभूमिया  
मनुष्य और तिर्यचोंमें अपनी पूर्ण आयुके त्रिभागमें आयुबन्ध होता है । कर्मभूमियोंकी  
उत्कृष्ट स्थिति कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण है । इससे उसीका त्रिभाग उत्कृष्ट आबाधाकाल कहा  
है । सो त्रिभागसे आठ अपकर्षोंमें आयुबन्ध होता है । यदि कदाचित् किसी भी अपकर्षमें  
आयुका बन्ध न हो तो किसी आचार्यके मतसे तो आवलीका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण  
और किसी आचार्यके मतसे एक समय कम मुहूर्त प्रमाण आयुके शेष रहनेसे पहले ही उत्तर  
भवकी आयुकर्मके अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण समय प्रबद्धोंका बन्ध करके निष्ठापन करता है । ये  
दोनों मत आचार्य परम्पराका उपदेश होनेसे स्वीकार किये हैं ॥१५८॥

२०

उदीरणेयनाश्रयिसि मूलप्रकृतिगन्गाबाधाविशेषं पेच्छपरः—

आवलयं आवाहोदीरणभासेज्ज सत्तकम्माणं ।

परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि नियमेण ॥१५९॥

आवलिकाबाधोदीरणमाश्रित्य सत्तकर्मणां । परभवायुषश्चोदीरणा नास्ति नियमेन ॥

- ५ उदीरणेयनाश्रयिसि आयुर्व्वज्जितसप्तमूलप्रकृतिगन्गाबाधेयावलि कामाश्रमेयकुमदन-  
चलावलि येंबुदवं कळिदु प्रथमादिनिषेकं गळोलपकुष्टद्रव्यमनुदयावलि योळमुपरितनस्थितियोळ-  
तिच्छापनावलियं कळेवुळिद सर्वस्थितिनिषेकंगळोळ “मद्भाणेण सर्वधणे खंडिदे मज्झिमघण-  
मागच्छदि तं रुअण अद्धान अद्देण ऊणेण जिसेय भागहारेण मज्झिमघणमवहरिदे पचयं तं दोगुण-  
हाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं । तत्तो विसेसहीणकम”-मोदितु प्रथमादिगुणहाणिद्रव्यंगळं तंतम्म  
१० प्रथमादिनिषेकंगळं बिट्ठु द्वितीयादिनिषेकंगळोळ तंतम्म गुणहानिसंबंधिविशेषहीनक्रमदिदं

कृतौ ॥१५८॥ उदीरणां प्रत्याह—

- उदीरणमाश्रित्य आयुर्व्वज्जितसप्तमूलप्रकृतीनां आबाधा आवलिकैव भवति, सा चावलिः अचलावलि-  
रित्युच्यते, तां त्यक्त्वा अपकुष्टद्रव्यं उदयावत्यां उपरितनस्थितौ तु चरमे अतिस्थापनावलीं श्रुत्वा नाना-  
गुणहानिषु च सर्वनिषेकेषु, “अद्भाणेण सर्वधणे खंडिदे मज्झिमघणमागच्छदि तं रुअणद्धानद्देण ऊणेण  
१५ जिसेयभागहारेण मज्झिमघणमवहरिदे पचयं तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं तत्तो विसेसहीणकम” इति

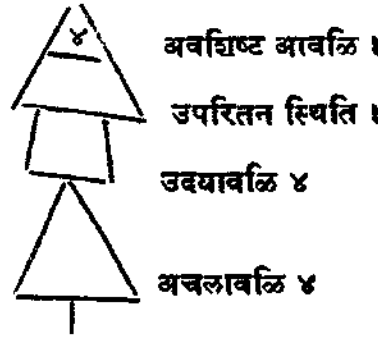
आगे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा कहते हैं—

- उदीरणाको लेकर आयुके बिना सात मूल प्रकृतियोंकी आबाधा एक आवली प्रमाण  
ही होती है । अर्थात् जो कर्म उदीरणारूप होता है तो बंधनेके पश्चात् एक आवली प्रमाण-  
काल बीतनेपर ही उदीरणारूप होता है । इससे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा एक आवली  
२० प्रमाण कही है । कर्म बंधनेपर एक आवली तक तो जैसा बंधा वैसा ही रहता है, उदयरूप  
या उदीरणारूप नहीं होता । इसीसे इस आवलीको अचलावली कहते हैं । इस अचलावली-  
को छोड़ पीछे कर्मपरमाणुओंमेंसे कितने ही कर्म परमाणुओंका अपकर्षण करके जिन्हें  
उदयावलीमें देता है, वे तो आवलीकालमें उदय देकर खिर जाते हैं । और जिन्हें ऊपरकी  
स्थितिमें देता है वे उदयावलीके ऊपरकी स्थितिके अनुसार खिरते हैं । अन्तिम आवली  
२५ प्रमाण अतिस्थापनावलीको छोड़ जो परमाणु प्राप्त होते हैं वे नानागुण हानिके द्वारा सर्व-  
निषेकोंमें खिरते हैं । सो उदयावलीमें दिया उदीरणा द्रव्य कैसे खिरता है यह कहते हैं—

- विवक्षित कालके समयोंका प्रमाण यहाँ गच्छ है । उससे सर्वधन अर्थात् विवक्षित  
सर्व परमाणुओंके प्रमाणमें भाग देनेपर मध्यम धन अर्थात् मध्यके समयोंमें जितने खिरते हैं  
उनका प्रमाण आता है । उस मध्यम धनमें, एक कम गच्छके आधा प्रमाण सो निषेक भाग-  
हार जो दो गुणहानि उसमें घटानेपर जो प्रमाण रहे उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे  
३० सो चयका प्रमाण जानना । उस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम समयमें जितने  
परमाणु खिरते हैं उनका प्रमाण आता है । द्वितीय आदि समय सम्बन्धी निषेकोंमें एक-  
एक चयहीन परमाणु खिरते हैं । इन सबका विशेष स्वरूप पहले कह आये हैं और आगे भी  
कहेंगे । इस प्रकार असमयमें ही उदीरणाके द्वारा उदयावलीमें प्राप्त कर्मके खिरनेका

निक्षेपिसुबुदु उदीरणाविधानबोळमेंवरिउबु ॥

नानानिषेक स्थिति ।



आबाधावर्जितस्थितियं निषेकमेंदु पेळदपरः—

आबाहूणियकम्मडिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं ।

आउस्स णिसेगो पुण सगडिदी होदि णियमेण ॥१६०॥

आबाधोनितकम्मस्थितिनिषेकस्तु सप्तकम्मणां । आयुषो निषेकः पुनः स्वस्थितिर्भवति ५ नियमेन ॥

आयुर्वर्जितज्ञानावरणावि सप्तमूलप्रकृतिगळो आबाधोनित कम्मस्थिति । तु मत्ते निषेक-मक्कुमायुष्यकम्मक्के पुनः मत्ते स्वस्थितियेनितेनितुं निषेकमक्कुं नियमदिदं ।

निक्षिपेत् उदीरणाविधाने इति ज्ञातव्यम् ।

^ ४ अतिस्थापनावलिः

उपरितनस्थितिः

^ ४ उदयावलिः

^ ४ अचलावलिः

॥१५९॥ निषेकस्वरूपमाह—

आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीनां आबाधोनितकम्मस्थितिः तु—पुनः निषेकः स्यात् । आयुषः पुनः स्वस्थितिः सर्वेव निषेको भवति नियमेन ॥१६०॥

कथन जानना । आयुर्कर्ममें उदीरणा जिस आयुको भोग रहे हैं उसी आयुमें होती है । जो आगामी उत्तरभवकी आयु बाँधी है उसकी उदीरणा नियमसे नहीं होती ॥१५९॥

आगे निषेकका स्वरूप कहते हैं—

आयुको छोड़ सात मूल प्रकृतियोंके निषेक उनकी आबाधाकालसे हीन जितनी स्थितिका प्रमाण है उतने हैं । आशय यह है कि प्रति समय जितने कर्मपरमाणु खिरते हैं उनके समूहका नाम निषेक है । सो सात कर्मोंमें-से किसी भी कर्मकी जितनी स्थिति बाँधी हो उसमेंसे आबाधाकालमें तो कोई परमाणु खिरता नहीं । आबाधाकाल बीतनेपर प्रति समय कर्मपरमाणु क्रमसे खिरते हैं । अतः कर्मकी स्थितिमें-से आबाधाकाल घटानेपर जो काल शेष रहे उसके समयोंका जितना प्रमाण हो उतना ही निषेकोंका प्रमाण होता है । सो सात कर्मोंके निषेक तो उनकी आबाधाहीन स्थिति प्रमाण जानना । किन्तु आयुर्कर्मकी

१. क<sup>०</sup>दिदं । आयुष्य कर्म सर्व निषेकस्थिति ^ ।



आवाहं बोलाविय पढमणिसेगम्भि देइ बहुगं तु ।  
ततो विसेसहीणं विदियस्सादिमणिसेगोत्ति ॥१६१॥

आवाधामपनीय प्रथमनिषेके ददाति बहुगं तु । ततो विशेषहीनं द्वितीयस्याद्यनिषेकपर्यन्तं ॥  
कर्मस्थितियोलाबाधेयं कळेवु प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु बहुद्रव्यमं कुडुगुं । तु मत्ते  
५ ततो विशेषहीनं अल्लिद मेलण द्वितीयनिषेकं मोदल्गोडु द्वितीयगुणहान्याद्यनिषेकपर्यन्तं विशेष-  
हीनक्रमदिवं कुडुगुं ॥

विदिये विदियणिसेगे हाणी पुन्विन्नलहाणिअद्धं तु ।  
एवं गुणहाणि पडि हाणी अद्धद्वयं होदि ॥१६२॥

द्वितीये द्वितीयनिषेके हानिः पूर्वहानेरद्धं तु । एवं गुणहानि प्रति हानिरर्द्धाद्धं भवति ॥  
१० तु मत्ते द्वितीये द्वितीयगुणहानियोळु द्वितीयनिषेके द्वितीयनिषेकदोळु हानिः हानि पूर्व-  
हानेरद्धं प्रथमगुणहानिय हानियं नोडलद्धयक्कुमिन्तु गुणहानि प्रति गुणहानि । गुणहानिद्वये हानिः  
हानी अर्द्धाद्धं भवति अर्द्धाद्धक्रममक्कुं । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । द्रव्य ६३०० । गुणहानि ८ ।  
नानागुणहानि ६ । स्थिति ४८ । अन्योन्याभ्यस्तराशि

|          |
|----------|
| च १००    |
| २००      |
| ४००      |
| ८००      |
| १६००     |
| प्र ३२०० |

कर्मस्थितावाधायां त्यक्त्वा प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके बहुद्रव्यं ददाति । तु-पुनः तत उपरि द्वितीयादि-  
१५ निषेकेषु द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकपर्यन्तेषु विशेषहीनक्रमेण ददाति ॥१६१॥

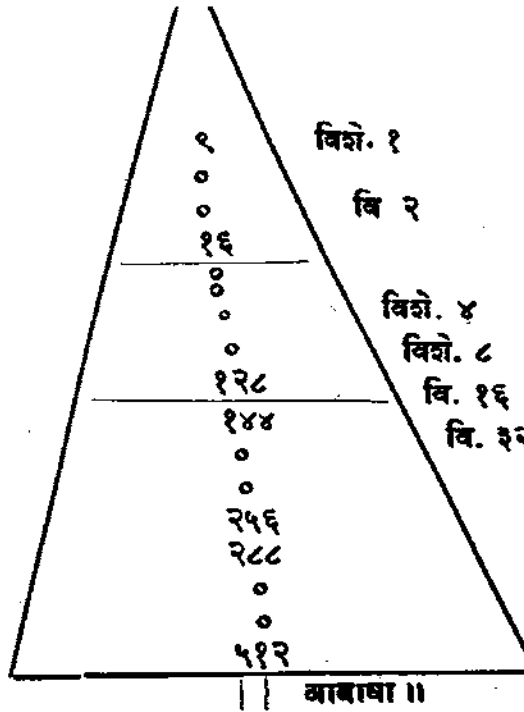
तु-पुनः द्वितीयगुणहानौ द्वितीयनिषेके हानिः पूर्वहानेरर्थं भवति । एवं गुणहानि गुणहानि प्रति

स्थितिमें-से आवाधाकाल नहीं घटाना क्योंकि आयुकर्मकी आवाधा तो जिस भवमें उसका  
बन्ध किया उसी भवमें पूर्ण हो गयी । पीछे जो जन्म धारण किया उसमें प्रथम समयसे  
२० जितनी स्थिति होती है उसके समयोंका जितना प्रमाण होता है उतने ही आयुकर्मके निषेक  
होते हैं ॥१६०॥

सो आवाधाकालको छोड़कर, क्योंकि आवाधाकालमें तो कोई परमाणु खिरता नहीं,  
अतः उसके अनन्तर समयमें अर्थात् प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें अन्य निषेकोंसे बहुत  
द्रव्य देना चाहिए । उसमें बहुत परमाणु खिरते हैं । तथा प्रथम गुणहानिके द्वितीय आदि  
२५ निषेकोंमें द्वितीय गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त एक-एक चयहीन द्रव्य देना चाहिए ॥१६१॥

तथा दूसरी गुणहानिके दूसरे निषेकमें प्रथम निषेकसे पहले प्रत्येक निषेकमें जितना  
घटाया था उससे आधा घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना द्रव्य देना चाहिए । इसी प्रकार  
तीसरे आदि निषेकोंमें तीसरी गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त इतना-इतना ही घटाना

नानागुणहानिनिषेकरचने णाणावरणादि ७ निषेकस्थिति  
आयुष्य कर्म सर्वनिषेकस्थिति  
आयुष्यके स्वस्थितियेनिजानितुं निषेकमवकं



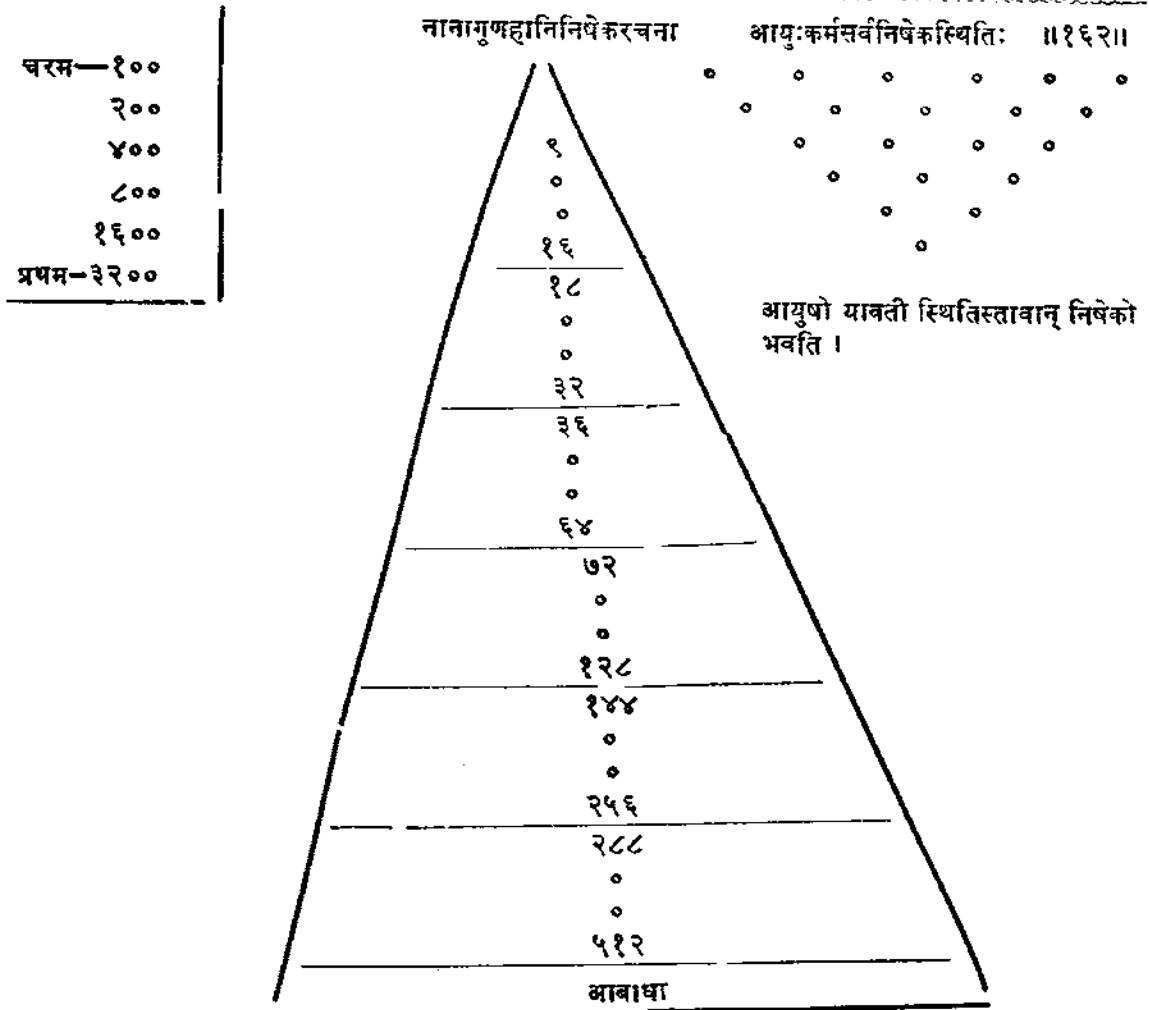
इन्तु स्थितिबंधप्रकरणं समाप्तमावुबु ॥

हानिः अर्धार्धक्रमा भवति । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ द्रव्यं ६३०० । गुणहानिः ८ । नानागुणहानिः ५  
६ । स्थितिः ४८ । अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ ।

चाहिए । आगे प्रत्येक गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है । इस कथनको अंकसंदृष्टि द्वारा कहते हैं—

विवक्षित कर्मके परमाणु ६३०० तिरसठ सौ । आवाधा बिना स्थितिका प्रमाण अड़तालीस ४८ । एक गुणहानि आठ समय प्रमाण । नाना गुणहानि छह । दो गुणहानि सोलह । अन्योन्याभ्यस्त राशि चौंसठ ६४ । प्रथम गुणहानिमें परमाणु बत्तीस सौ ३२०० खिरते हैं । द्वितीयादि गुणहानिमें आधे-आधे खिरते हैं—३२००।१६००।८००।४००।२००।१०० । एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका परिमाण आता है । उससे दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त जानना । सो प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य बत्तीस सौ । उसमें प्रथम गुणहानिके गच्छके प्रमाण आठसे भाग देनेपर मध्यधन चार सौ आता है । एक कम गच्छका आधा प्रमाण साढ़े तीनको निषेक भागहार सोलहमें-से घटाने पर साढ़े बारह रहे । उस साढ़े बारहका भाग मध्यधनमें देनेपर बत्तीस आये । वही चय जानना । उसको दो गुणहानि सोलहसे गुणा करनेपर पौंच सौ बारह हुए । यही प्रथम निषेक सम्बन्धी द्रव्यका प्रमाण है । उसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक

अन्तरमनुभागबंधमं त्रयोविंशतिगाथासूत्रं गलिदं पेळदपरः—



इति स्थितिवन्धकारणं समाप्तं । अथानुभागबन्धं त्रयोविंशतिगाथाभिराह—

सम्बन्धी द्रव्य होता है—५१२।४८०।४४८।४१६।३८४।३५२।३२०।२८८। इस दो सौ अठासीमें एक चय घटनेपर दो सौ छप्पन होते हैं । यह प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेक पाँच सौ बारह-का आधा है । सो यही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक है । यहाँ हानिरूप चयका प्रमाण पूर्वसे आधा अर्थात् सोलह है । सो तीसरी गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त सोलह-सोलह घटानेपर २५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४ होते हैं । उसमें एक चय घटानेपर एक सौ अठाईस हुए । यह दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेक दो सौ छप्पनसे आधा है । सो यह तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक है । यहाँ चयका प्रमाण पूर्वसे भी आधा आठ है । इस तरह अन्तकी छठी गुणहानि पर्यन्त सर्वधनका, निषेकोंके द्रव्यका और चयका प्रमाण आधा-आधा जानना । इस क्रमसे तरेतठ सौ परमाणु खिरते हैं ॥१६२॥

स्थितिवन्धका प्रकरण समाप्त हुआ ।

आगे तेईस गाथाओंसे अनुभाग बन्धका कथन करते हैं—

सुहृपयडोण विसोही तिन्वो असुहाण संकिलेसेण ।

विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडोणं ॥१६३॥

शुभप्रकृतीनां विशुद्ध्या तीव्रः अशुभानां संक्लेशेन । विपरीतेन जघन्योऽनुभागः सव्व-  
प्रकृतीनाम् ॥

शुभप्रकृतीनां सातावि प्रशस्तप्रकृतिगळ्णे । विशुद्ध्या विशुद्धिपरिणामविदं । तीव्रः तीव्रानु- ५  
भागमवकुमशुभानाम् असाताद्यप्रशस्तप्रकृतिगळ्णे । संक्लेशेन संक्लेशपरिणामविदं तीव्रः तीव्रानु-  
भागमवकुं । विपरीतेन संक्लेशपरिणामविदं प्रशस्तप्रकृतिगळ्णे जघन्यानुभागमुं विशुद्धिपरिणाम-  
विदमप्रशस्तप्रकृतिगळ्णे जघन्यानुभागमुमवकुं । सव्वप्रकृतीनां मूलोत्तरोत्तर प्रकृतिगळ्णेनितोळ  
वनितवकुं ॥

बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुकडस्स तिन्वाओ ।

वासीदि अप्पसत्था मिच्छुककडसंकिलिट्ठस्स ॥१६४॥

द्वाचत्वारिंशत् तु प्रशस्ताः विशुद्धिगुणोत्कटस्य तीव्राः । द्व्यशीत्यप्रशस्ताः मिथ्यादृष्ट्युत्कट-  
संकिलिष्टस्य ॥

प्रशस्ताः साताविप्रशस्तप्रकृतिगळ् द्विचत्वारिंशत्संख्याप्रमितंगळ् विशुद्धिगुणोत्कटस्य १५  
विशुद्धिगुणविदमुत्कटनप्प जीवंगे तीव्राः तीव्रानुभागंगळप्पुवु । द्व्यशीत्यप्रशस्ताः असातादि-  
वर्णचतुष्टयोपेतद्व्यशीत्यप्रशस्तप्रकृतिगळ् मिथ्यादृष्ट्युत्कटसंकिलिष्टस्य मिथ्यादृष्ट्युत्कटसंकिलिष्ट-  
जीवंगे । तु मत्ते तीव्राः तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

शुभप्रकृतीनां सातादीनां प्रशस्तानां विशुद्धिपरिणामेन, असाताद्यप्रशस्तानां संक्लेशपरिणामेन च २०  
तीव्रानुभागो भवति । विपरीतेन संक्लेशपरिणामेन प्रशस्तानां विशुद्धपरिणामेन अप्रशस्तानां च जघन्यानु-  
भागो भवति ॥१६३॥

सातादिप्रशस्ताःद्वाचत्वारिंशद्विशुद्धिगुणेनोत्कटस्य, असातादिचतुर्वर्णोपेताप्रशस्ताःद्व्यशीतिः मिथ्या-  
दृष्ट्युत्कटस्य संकिलिष्टस्य च तीव्रानुभागा भवन्ति ॥१६४॥

शुभ प्रकृति अर्थात् साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका विशुद्धि परिणामोंसे तीव्र अर्थात् २५  
उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है । और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका संक्लेश परिणामोंसे  
तीव्र अर्थात् उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध होता है । और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका  
संक्लेश परिणामोंसे तीव्र अनुभागबन्ध होता है । तथा विपरीतसे अर्थात् संक्लेश परिणामसे  
प्रशस्त प्रकृतियोंका और विशुद्धि परिणामसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता  
है । इस प्रकार सब प्रकृतियोंका अनुभाग बन्ध होता है । मन्दकषाय रूप परिणामोंको  
विशुद्ध और तीव्रकषाय रूप परिणामोंको संक्लेश कहते हैं ॥१६३॥

सातावेदनीय आदि बयालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ, जिसके विशुद्धि गुणकी तीव्रता होती ३०  
है, उसके तीव्र अनुभाग बन्धको लिए हुए बँधती हैं । और असाता आदि बयासी अप्रशस्त  
प्रकृतियाँ उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिके तीव्र अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१६४॥

विशेषार्थ—यहाँ शुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्शको प्रशस्त प्रकृतियोंमें गिना है और अशुभ  
वर्ण गन्ध रस स्पर्शको अप्रशस्त प्रकृतियोंमें गिना है । इस तरह इन चारकी गणना दोनोंमें

आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु ।

मिच्छस्स होंति तिब्बा सम्माइट्ठस्स सेसाओ ॥१६५॥

आतप उद्योतो मनुष्यतिथ्यंगायुष्यं प्रशस्तासु । मिथ्यावृष्टिर्भवति तीव्राः सम्यग्दृष्टेः शेषाः ॥

५ आतपनामकर्ममनुद्योतनामकर्ममनु मानवायुष्यमनु तित्थंगायुष्यमुमेवो नात्कुं ४ प्रकृतिगळ प्रशस्तप्रकृतिगळोळ विशुद्धमिथ्यावृष्टिगे तीवानुभागंगळपुवु । शेषाः शेषसातादि अष्टात्रिंशत्प्रशस्तप्रकृतिगळ विशुद्धसम्यग्दृष्टिगळिगे तीवानुभागंगळपुवु ॥

मणुओरालदुवज्जं विशुद्धसुरणिरयअविरदे तिब्बा ।

देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेसवत्तीसा ॥१६६॥

१० मनुष्योदारिकद्वयं वज्रं विशुद्धसुरनारकाविरते तीव्राः । देवायुरप्रमत्ते क्षपके अवशेष द्वात्रिंशत् ॥

सम्यग्दृष्टिगळ तीवानुभागप्रकृतिगळ भूवत्तंत ३८ रोळ मनुष्यद्विकमुनोदारिकद्विकमुं वज्रवृषभनाराचसंहननमुमेव प्रकृतिपंचकं अनंतानुबंधियं विसंयोजिसुवनिवृत्तिकरणपरिणामचरम-समयद विशुद्धसुरनारकगळगसंयतसम्यग्दृष्टिगळगे तीवानुभागंगळपुवु । अप्रमत्तनोळ देवायुष्यं १५ तीवानुभागमकुं । अवशेषद्वात्रिंशत्प्रशस्त प्रकृतिगळ क्षपकनोळ तीवानुभागमपुवु ॥

प्रशस्तप्रकृतिषु आतपः उद्योतः मानवतिथ्यंगायायुषी चेति चतस्रः विशुद्धमिथ्यादृष्टेः शेषाः साताष्टाष्ट-त्रिंशद्विशुद्धसम्यग्दृष्टेषु तीवानुभागा भवन्ति ॥१६५॥

सम्यग्दृष्टिषु उक्ताष्टात्रिंशन्मध्ये मनुष्यद्विकं औदारिकद्विकं च वज्रवृषभनाराचसंहननं चेति पञ्चकं अनंतानुबन्धविसंयोजनकानिवृत्तिकरणचरमसमयविशुद्धसुरनारकासंयतसम्यग्दृष्टौ तीवानुभागं भवति । देवायुः २० अप्रमत्ते भवति । अवशिष्टा द्वात्रिंशत् क्षपके एव ॥१६६॥

होनेसे बन्ध प्रकृतियोंकी संख्या १२० में चार बढ़ गयी; क्योंकि किसीको कोई रूप आदि अच्छा लगता है और किसीको वही बुरा लगता है ॥१६४॥

उन बयालीस प्रशस्त प्रकृतियोंमें-से आतप, उद्योत, मनुष्यायु इन चारका तो विशुद्ध मिथ्यादृष्टिके तीव्र अनुभाग बन्ध होता है । और शेष साता आदि अड़तीस प्रकृतियोंका २५ विशुद्ध सम्यग्दृष्टिके तीव्र अनुभागबन्ध होता है ॥१६५॥

किन्तु सम्यग्दृष्टिके तीव्र अनुभाग सहित बँधनेवाली अड़तीस प्रकृतियोंमें-से मनुष्य-गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग और वज्रवृषभनाराच संहनन इन पाँचका तीव्र अनुभागबन्ध जो देव या नारकी असंयत सम्यग्दृष्टी अनंतानुबन्धीके विसंयोजनके लिए तीन करण करते हुए अनिवृत्ति करणके अन्तके समयमें वर्तमान होता ३० है उसके होता है । देवायुका तीव्र अनुभागबन्ध अप्रमत्त गुणस्थानमें होता है । शेष बत्तीस प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध क्षपक श्रेणिवाले जीवके ही होता है ॥१६६॥

उपघातहीनतीसे अपूर्वकरणस्स उच्चजससादे ।

सम्मेलिदे हवन्ति हु खवगस्सवसेसवत्तीसा ॥१६७॥

उपघातहीनत्रिंशत् अपूर्वकरणस्योच्चयशः शातान् । सम्मिलिते भवन्ति खलु क्षपकस्याव-  
शेषद्वित्रिंशत् ॥

अपूर्वकरणस्य अपूर्वकरणक्षपकन उपघातनामकर्मवज्जितषष्ठभागव्युच्छित्तित्रिंशत्प्र- ५  
कृतिगळु 'छठे भागे तित्थं णिमिणं संगमजपर्विंदी । तेजदु हारदु' इत्यादिगळनू सूक्ष्मसांपरा-  
यन उच्चैर्गोत्रं यशस्कीर्तियुमं सातवेदनीयमुमं कूडुत्तिरलु अवशेषद्वित्रिंशत्प्रकृतिगळु क्षपकनोळु  
तीव्रानुभागंगळपुवेंदु वेळद प्रकृतिगळपुवु ॥

मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिए ।

एइंदिय आदावं थावरणामं च सुरमिच्छे ॥१६८॥

मिथ्यादृष्ट्यंतिमनवकं नरतिर्यंगाद्युर्ध्वामनरतिरश्चि । एकैन्द्रियमातपस्थावरनाम च  
सुरमिथ्यादृष्टौ ॥ १०

अप्रशस्तप्रकृतिगळु अशुभवर्णचतुष्कयुक्तंगळ ८२ प्रशस्त प्रकृतिगळु ४ कूडि ८६ प्रकृति-  
गळगे मिथ्यादृष्टिजीवने तीव्रानुभागं माळकुमाव प्रकृतिगळगाव मिथ्यादृष्टि माळकुमेंदोडे १५  
मिथ्यादृष्ट्यंतिमनवकं सूक्ष्मत्रयविकलेन्द्रियत्रयनरकद्विकनरकायुष्यमेंदी मिथ्यादृष्ट्यंतिम नवकमुं  
संक्लिष्टरोळु मनुष्यतिर्यंगाद्युर्ध्वं विशुद्धमिथ्यादृष्टि मनुष्यतिर्यंचरोळु कूडि ११ प्रकृतिगळु  
तीव्रानुभागंगळपुवु । एकैन्द्रियजातिताममुं स्थावरनाममुं संक्लिष्टरोळु आतपं विशुद्धरोळिन्नु  
प्रकृतित्रयं स्वस्थिति षण्मासावशेषमागुतं विरलु सुरमिथ्यादृष्टिरोळु तीव्रानुभागंगळपुवु ॥

अपूर्वकरणक्षपकस्य उपघातवज्जितषष्ठभागव्युच्छित्तित्रिंशति सूक्ष्मसांपरायस्य उच्चैर्गोत्रयशस्कीर्तिसात-  
वेदनीयेषु मिलितेषु ताः अवशेषद्वित्रिंशत्प्रकृतयो भवन्ति ॥१६७॥ २०

अप्रशस्तद्वयशीतिः आतपादयश्चतस्रश्च मिथ्यादृष्टावेव तीव्रानुभागा उक्ताः । तत्र सूक्ष्मत्रयादिमिथ्या-  
दृष्ट्यंतिमनवकं नरतिरिश्चोः संक्लिष्टयोः नरतिर्यंगाद्युधी च विशुद्धयोर्भवन्ति । एकैन्द्रियं स्थावरं च संक्लिष्टे  
आतपस्तु विशुद्धे स्वस्थितिषण्मासावशेषे सुरमिथ्यादृष्टौ भवन्ति ॥१६८॥

क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थानके छठे भागमें जिन तीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही है  
उनमें-से उपघातकी छोड़कर उनतीस तथा सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली उच्चगोत्र, यशः- २५  
कीर्ति और सातावेदनीय मिलकर उक्त बत्तीस प्रकृतियाँ होती हैं ॥१६७॥

बयासी अप्रशस्त प्रकृति और आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यंचायु इन छियासीका  
तीव्र अनुभाग सहित बन्ध मिथ्यादृष्टिके ही होता है । उनमेंसे जिन सोलह प्रकृतियोंकी  
व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिके कही है उनमेंसे सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण आदि अन्तकी नौ प्रकृतियों-  
का तीव्र अनुभागबन्ध संक्लेश परिणामयुक्त मनुष्य और तिर्यंच करते हैं । और मनुष्यायु ३०  
तिर्यंचायुका तीव्र अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामवाले देव मनुष्य या तिर्यंच करते हैं तथा  
एकैन्द्रिय, स्थावरका संक्लेश परिणामवाला और आतपका विशुद्ध परिणामवाला मिथ्यादृष्टि  
देव अपनी आयुके छह मास शेष रहनेपर तीव्र अनुभाग बन्ध करता है ॥१६८॥

उज्जोओ तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।

तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ॥१६९॥

उद्योतस्तमस्तमके सुरनारकमिथ्यादृष्टावसंप्राप्तं । तिर्यग्द्विकं शेषाः पुनश्चतुर्गतिमिथ्या-  
दृष्टौ किलिष्टे च ॥

- ५ तमस्तमके सप्तमनरकभूमियोक्तुपशमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धियुतनारकनोक्तुद्योत-  
नामकम्भं तीव्रानुभागबन्धकुमेकदोडे अतिविशुद्धं गुद्योतनामकम्भबंध मित्तपुद्गरिवं । मत्तं सुरना-  
रकमिथ्यादृष्टिजीवंगळोक्तु असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं तिर्यग्द्विकमेव त्रिप्रकृतिगळु तीव्रानुभाग-  
गळपुवु । शेषाष्टोत्तरषष्टिप्रकृतिगळु ६८ । पुनः मत्ते संकिलिष्टचतुर्गतिमिथ्यादृष्टिजीवनोक्तु  
तीव्रानुभागगळपुवु ॥

- १० पितुक्कृष्टानुभागं पेळ्वनंतरं जघन्यानुभागबंधस्वामिगळं पेळ्वपरः—

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणवीसं ।

तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेदटाणम्मि ॥१७०॥

वर्णचतुष्कमशस्तं उपधातः अपकधाति पंचविंशतिः त्रिंशतामवरबंधः स्वस्वव्युच्छित्ति-  
स्थाने ॥

- १५ अप्रशस्तवर्णचतुष्कं उपधातनामं ज्ञानावरणपंचकमुपमन्तरायपंचकं दर्शनावरणचतुष्कं  
निद्रेयं प्रचलेयं हास्यं रतियं भयं जुगुप्सं पुंवेदं संज्वलनं चतुष्कमेव अपकरुगळ पंचविंशति-  
धातिगळं कूडि ३० भूवत्तं प्रकृतिगळ जघन्यानुभागबंधं स्वस्वबंधव्युच्छित्तिस्थानदोळ्येवकुं ।  
अशु० व ४ उ १ णा ५ वि ५ दं ४ नि १ प्र १ हा १ र १ । भ १ जु १ पुं १ सं ४ कूडि ३० ॥

- तमस्तमके सप्तमनरके उपशमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धनारके उद्योतः तीव्रानुभागो भवति  
२० अतिविशुद्धस्य तदवन्धात् । पुनः सुरनारकमिथ्यादृष्टौ असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं तिर्यग्द्विकं च । शेषाः अष्टषष्टिः  
६८ पुनः संकिलिष्टचतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ ॥१६९॥ अथ जघन्यानुभागबंधकानाह—

अप्रशस्तवर्णचतुष्कं उपधातः पञ्चज्ञानावरणपञ्चान्तरायचक्षुर्दर्शनावरणनिद्राप्रचलाहास्यरतिभयजुगुप्सा-  
पुंवेदचतुःसंज्वलनाश्चेति त्रिंशतः जघन्यानुभागः स्वस्वबंधव्युच्छित्तिस्थाने भवति ॥१७०॥

- सातवें नरकमें उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि विशुद्ध नारकी उद्योतका  
२५ तीव्र अनुभागबन्ध करता है, क्योंकि अतिविशुद्धके उद्योत प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । तथा  
मिथ्यादृष्टि देव और नारकीके असंप्राप्तासृपाटिका संहनन तिर्यचगति और तिर्यचगत्यानु-  
पूर्विका तीव्र अनुभागबन्ध होता है । शेष अड़सठ प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध चारो  
गतिके संकलेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ॥१६९॥

आगे जघन्य अनुभागबन्ध करनेवालोंको कहते हैं—

- ३० अप्रशस्त वर्णादि चार, उपधात, पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चार दर्शनावरण,  
निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, चार संज्वलन कषाय इन तीस प्रकृतियों-  
का जघन्य अनुभागबन्ध अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके स्थानमें होता है अर्थात् जहाँ इनकी  
बन्धव्युच्छित्ति होती है वहीं जघन्य अनुभागबन्ध होता है ॥१७०॥

अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु विदियकोहादी ।

देसे तदियकसाया संजमगुणपत्थिदे सोलं ॥१७१॥

अनन्तानुबन्धिस्त्यानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं मिथ्यादृष्टौ असंयते खलु द्वितीयक्रोधादयः ।  
देशव्रते तृतीयकषायः संयमगुणप्रस्थिते षोडश ॥

अनन्तानुबन्धिचतुष्कमुं स्त्यानगृद्धित्रयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुग्मे ८ अष्टप्रकृतिगळु संयमगुण-  
प्रात्थितनप्प संयमगुणाभिमुखनप्प विशुद्धमिथ्यादृष्टियोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । अप्रत्याख्यान-  
क्रोधमानमायालोभंगळु ४ नात्कुं संयमाभिमुखनप्प विशुद्धासंयतनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु ।  
प्रत्याख्यानानावरणक्रोधमानमायालोभंगळु ४ नात्कुं संयमाभिमुखनप्प देशसंयतनोळु विशुद्धनोळु  
जघन्यानुभागंगळप्पुवु । अवरिनी षोडशप्रकृतिगळुं संयमगुणप्रात्थितरोळे जघन्यानुभागंगळप्पुवुवेदु  
पेळल्पट्टेवु । अ ४ स्त्या ३ मि १ अ ४ प्र ४ ॥

आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धेव अरदिसोगाणं ।

णरतिरिये सुहुमतियं वियलं वेगुव्वच्छक्काळु ॥१७२॥

आहारमप्रमत्ते प्रमत्तसुद्धे एवारतिशोकयोः । नरतिरश्चोः सूक्ष्मत्रयं विकलं वेगुव्व-  
षट्कमायुः ॥

आहारकद्वयं प्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिदं प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्लिष्टाप्रमत्तसंयतनोळु जघन्यानु-  
भागमक्कुं । अरतिशोकद्वयमप्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिदमप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्तसंयतनोळु  
जघन्यानुभागमक्कुं । सूक्ष्मत्रयमुं विकलत्रयमुं वैक्रियिकषट्कमायुश्चतुष्कमुग्मे १६ प्रकृतिगळु  
नरतिर्यश्चरोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । आ २ । अ १ । शो १ । सू ३ । वि ३ । वै ६ । आ ४ ॥

अनन्तानुबन्धिनः स्त्यानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं च मिथ्यादृष्टौ, अप्रत्याख्यानकषायाः असंयते, प्रत्याख्यान-  
कषायाः देशसंयते इतीमाः षोडशप्रकृतयः तत्र तत्र संयमगुणाभिमुखे एव विशुद्धजीवे जघन्यानुभागा २०  
भवन्ति ॥१७१॥

आहारकद्वयं प्रशस्तत्वात् प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्लिष्टाप्रमत्ते जघन्यानुभागं भवति । अरतिशोकी  
अप्रशस्तत्वात् अप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्ते एव । सूक्ष्मत्रयं विकलत्रयं वैक्रियिकषट्कं आयुश्चतुष्कं च  
नरतिरश्चोरेव ॥१७२॥

अनन्तानुबन्धी चार कषाय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, और मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टिमें, २५  
चार अप्रत्याख्यान कषायोंका असंयतमें, चार प्रत्याख्यान कषायोंका देशसंयतमें, इस प्रकार  
ये सोलह प्रकृतियाँ अपने-अपने गुणस्थानोंमें संयमगुण धारण करनेके अभिमुख विशुद्ध  
जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७१॥

आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं । अतः इनका जघन्य अनु-  
भागबन्ध प्रमत्तगुणस्थानके अभिमुख हुए संक्लेश परिणामवाले अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती ३०  
जीवके होता है । अरति और शोक अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं । अतः इनका जघन्य अनुभागबन्ध  
अप्रमत्त गुणस्थानके अभिमुख हुए विशुद्ध प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवके होता है । सूक्ष्म,  
अपर्याप्त साधारण, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति,



सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्मि तिरियदुगं ।

णीचं च तिमग्गिदिमपपरिणामे थावरेयक्खं ॥१७३॥

सुरनारकेषुद्योतः औदारिकद्विकं तमतमे तिर्यग्द्विकं । नीचं च त्रिगतिमध्यमपरिणामे स्थावरैकाक्षं ॥

- ५ सुरनारकरोद्योतमुमोदारिकद्विकमुं जघन्यानुभागंगळप्पुवल्लि देवक्कंळतिविशुद्धरादोडु-  
द्योतनाममं मोवल्लो कददुवरल्लदु कारणद्विदमुद्योतनामं प्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिदं सुरनारकगल्लु  
संक्लिष्टरुगळे जघन्यानुभागमनदक्के माळ्परु । तिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रमुमेव प्रकृतित्रयं सप्तम-  
पृथ्विय नारकनोळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागमक्कं । स्थावरनाममुमेकैद्रियजातिनाममुमेवेरदुं  
प्रकृतिगळु नरकगतिरहित शेषत्रिगतिजोवंगळ तीव्रविशुद्धि संक्लेशपरिणाममल्लद मध्यमपरिणाम-  
१० नोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । उ १ । ओ २ । ति २ । नी १ । था १ । ए १ ॥

सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्मि ।

चदुगदिवामकिलिट्ठे पण्णरस दुवे विसोहीये ॥१७४॥

सौधर्मपय्यन्तमातपः तीर्थकरमविरते मनुष्ये । चतुर्गतिवामकिलिटे पंचदश द्वे  
विशुद्धे ॥

- १५ भवनत्रयमादियागि सौधर्मद्वयपय्यन्तमाव देवक्कंळातपनाममं संक्लिष्टरु जघन्यानुभागमं  
माळ्परु । नरकगतिगमनाभिमुखनप्प असंयतनोळु मनुष्यनोळु तीर्थकरनाममं जघन्यानुभाग-

उद्योतः औदारिकद्विकं च सुरनारके जघन्यानुभागं लभते । तत्र उद्योतः अतिविशुद्धदेवे बन्धाभावात्  
प्रशस्तत्वात् संक्लिष्टे एव लभते । तिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रं च सप्तमपृथ्वीनारके विशुद्धे, स्थावरमेकैन्द्रियं च  
नारकादिना शेषत्रिगतिजे तीव्रविशुद्धिसंक्लेशरहिते मध्यमपरिणामे एव ॥१७३॥

- २० आतपनामकर्म भवनत्रये सौधर्मद्वये च संक्लिष्टे जघन्यानुभागं भवति तीर्थकृत्वं नरकगमनाभिमुखा-

नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग और चार आयु इन सोलह प्रकृतियों-  
को मनुष्य और तिर्यच जघन्य अनुभाग सहित बाँधते हैं ॥१७२॥

विशेषार्थ—गाथामें चार आयु नहीं गिनायी हैं । टीकामें ही गिनायी हैं ।

- २५ उद्योत और औदारिक द्विक देव और नारकीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ।  
उनमें-से उद्योत प्रकृतिका बन्ध अति विशुद्ध परिणामवाले देवके नहीं होता । अतः संक्लेश  
परिणामीके ही जघन्य अनुभाग सहित बँधती है । तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी और नीच  
गोत्र सातवें नरकमें विशुद्ध परिणामी नारकीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं । स्थावर,  
एकैन्द्रिय ये दो प्रकृतियाँ नारकी बिना शेष तीन गतिवाले जीवके, जिसके परिणाम न तो  
तीव्र विशुद्ध होते हैं और न तीव्र संक्लेशयुक्त होते हैं, किन्तु मध्यम परिणाम होते हैं उसीके  
३० जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७३॥

आतप प्रकृति भवनत्रिक और सौधर्म ईशान स्वर्गके संक्लेश परिणामवाले देवके  
जघन्य अनुभाग सहित बँधती है । तीर्थकर प्रकृति नरक जानेके अभिमुख असंयत सम्यक्-

भवकुं । चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसंक्लिष्टनोळु मुंघण सूत्रवोळु पेळव पंचदश प्रकृतिगळु जघन्यानु-  
भागंगळपुवु । मत्तमेरडु प्रकृतिगळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागंगळपुवउवाउवे'दोडे पेळवपरः—

परधाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी ।

अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये ॥१७५॥

परधातद्विकं तेजसद्विकं त्रसवणंचतुष्कनिर्माणपंचेंद्रियाण्यगुरुलघुश्च विलट्टे स्त्रीनपुंसके ५  
विशुद्धे ॥

परधातमुमुच्छ्वासमुं तेजसशरीरनाममुं कार्मणशरीरनाममुं त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीर-  
चतुष्कमुं शुभवर्णचतुष्कमुं निर्माण पंचेंद्रियजातिनाममुमगुरुलघुनाममुमेंविबु १५ पंचदशप्रकृति-  
गळे'बुववकुंमिवु चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसंक्लिष्टजीवनोळु जघन्यानुभागंगळपुवु एके'दोडे इवु प्रश-  
स्तप्रकृतिगळपुवरिदं, स्त्रीनपुंसकंगळेरडुमप्रशस्तप्रकृतिगळपुवरिदं चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिविशुद्ध- १०  
नोळु जघन्यानुभागंगळपुवु । अ १ । ति १ । प १ । उ १ । ते २ । त्र १ । आ १ । प १ । प्र १ ।  
व १ । ग १ । र १ । स्प १ । नि १ । प १ । अगु १ । स्त्री १ । न १ ॥

सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियट्ठमज्झिमो य यदि ।

परिवट्ठमाणमज्झिममिच्छाइट्ठी दु तेवीसं ॥१७६॥

सम्यग्दृष्टिर्वा मिथ्यादृष्टिर्वा अष्ट अपरिवर्तमानमध्यमश्च यदि । परिवर्तमानमध्यम- १५  
मिथ्यादृष्टिस्तु त्रयोविंशति ॥

संयतमनुष्ये एव । उत्तरसूत्रोक्तपञ्चदशप्रकृतयः चतुर्गतिकमिथ्यादृष्टौ संक्लिष्टौ एव, द्वे प्रकृतौ विशुद्धे  
एव ॥१७४॥ अमुमुत्तरार्धमेव स्पष्टयति—

परधातोच्छ्वासी तेजसकार्मणे त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकानि शुभवर्णचतुष्कं निर्माण पञ्चेन्द्रियं अगुरुलघु  
चेति पञ्चदशप्रकृतयः चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ संक्लिष्टे जघन्यानुभाग भवन्ति प्रशस्तत्वात् । स्त्रीषड्वेदो तस्मिन् २०  
विशुद्धे एव अप्रशस्तत्वात् ॥१७५॥

दृष्टी मनुष्यके जघन्य अनुभाग सहित बँधती है । आगे कही गयी । पन्द्रह प्रकृतियाँ चारों  
गतिके संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके और दो प्रकृतियाँ चारों गतिके विशुद्ध  
परिणामी जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७४॥

आगे उन्हीं प्रकृतियोंको कहते हैं ।

२५

परधात, उच्छ्वास, तेजस, कार्मण, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ वर्णादि चार,  
निर्माण, पंचेन्द्रिय, अगुरुलघु ये पन्द्रह प्रकृतियाँ चारों गतिके संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टी  
जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं; क्योंकि ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं । तथा स्त्रीवेद,  
नपुंसकवेद ये दोनों अप्रशस्त हैं अतः इनका चारों गतिके विशुद्ध जीवके जघन्य अनुभाग-  
बन्ध होता है ॥१७५॥

२०

सम्यग्दृष्टिमेणिमध्यादृष्टियांगलु वक्ष्यमाणसूत्रदोषेणैव ३१ एकाधिकत्रिंशत् प्रकृतिगण्डो  
प्रथमोक्ताष्टप्रकृतिगण्डो मध्यमश्च यदि अपरिवर्तमानमध्यमपरिणामपरिणतनादोडे जघन्यानु-  
भागं माळकुं । परिवर्तमानमध्यमपरिणामियप मिथ्यादृष्टि तु मत्ते शेषत्रयोविंशतिगण्डो  
जघन्यानुभागं माळकुमवाउवेदोडे पेळदपर :-

५ थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं ।  
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ॥१७७॥

स्थिरशुभयशःसातद्विकमुभयस्मिन् मिथ्यादृष्टावेवोच्चसंस्थानं संहननं गमनं नरसुभगादे-  
यानां युग्मं च ॥

स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकोर्त्ययशःकोर्तिसातवेदनीयमसातवेदनीयमेव प्रकृत्यष्टकमुभय-  
१० स्मिन् । सम्यग्दृष्टियोळं मेणिमध्यादृष्टियोळांगलु जघन्यानुभागंगळपुवु । येतलानुमवर्गळु सपरिव-  
र्तमानमध्यमपरिणामिगळादोडे मिथ्यादृष्टियोळे परिवर्तमानमध्यमपरिणामपरिणतनोळु उच्चैर्गो-  
त्रमुं संस्थानषट्कमुं संहननषट्कमुं प्रशस्ताप्रशस्तगमनयुग्ममुं । मनुष्ययुग्ममुं सुरयुग्ममुं सुभगयुग्ममुं  
आदेययुग्ममुमेवो त्रयोविंशति प्रकृतिगण्डो जघन्यानुभागंगळपुवु । थिर २ । शु २ । ज २ । सा २ ।  
उभये । उ १ । सं ६ । सं ६ । विहा २ । म २ । सु २ । सु २ । आ २ । जघन्यानुभागवोळु पेळदो  
१५ अपरिवर्तमानपरिवर्तमानमध्यमपरिणामंगळो लक्षणमेतदोडे । अणुसमयं अनुसमयं । केवळं

सम्यग्दृष्टिर्वा मिथ्यादृष्टिर्वा वक्ष्यमाणसूत्रोक्तत्रिंशत्प्रकृतिषु प्रथमोक्ताष्टानां यद्यपरिवर्तमानमध्यम-  
परिणामस्तदा जघन्यानुभागं करोति, शेषत्रयोविंशतेस्तु पुनः परिवर्तमानमध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिरेव करोति  
॥१७६॥ ताः काः ? इत्याह—

स्थिरास्थिरशुभाशुभयशोऽयशःसातासातान्यष्टौ उभयस्मिन् सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा जघन्यानुभागानि  
२० यद्यपरिवर्तमानमध्यमपरिणामाः संति, मिथ्यादृष्टावेव परिवर्तमानमध्यमपरिणामे उच्चैर्गोत्रं संस्थानषट्कं  
संहननषट्कं प्रशस्ताप्रशस्तगमने नरसुरसुभगादेययुग्मानोति त्रयोविंशतेर्जघन्यानुभागो भवति ॥१७७॥ तौ  
अपरिवर्तमानपरिवर्तमानमध्यमपरिणामौ लक्षयति—

आगेकी गाथामें कही इकतीस प्रकृतियोंमें-से प्रथम कही आठ प्रकृतियोंका जघन्य  
अनुभागबन्ध अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टि करता है । शेष तेईसका जघन्य  
२५ अनुभागबन्ध परिवर्तन मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टी ही करता है ॥१७६॥

उन इकतीस प्रकृतियोंको कहते हैं—

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, साता, असाता ये आठ  
अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टिके जघन्य अनुभाग सहित  
बँधती हैं । तथा उच्चगोत्र, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति,  
३० मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय  
ये तेईस प्रकृतियाँ परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके ही जघन्य अनुभाग  
सहित बँधती हैं । यहाँ प्रसंगवश अपरिवर्तमान और परिवर्तमान मध्यम परिणामका  
लक्षण कहते हैं—

वर्द्धमाना हायमाना च केवलं वर्द्धमाना होयमानाश्च । जे संकिळेस्सविसोहि परिणामा ये संक्लेशविशुद्धिपरिणामाः ते अपरियत्तमाणा णाम तेऽपरिवर्त्तमाना नाम । जेत्य पुण यत्र पुनः । ठाइदूण स्थित्वा परिणामान्तरं गंतूण परिणामान्तरं गत्वा । एगदो एकतः । आदिसमये आदिसमये । हि स्फुटं । आगमणं संभवदि आगमनं संभवति । ते परिणामा ते परिणामाः परियत्तमाणा णाम परिवर्त्तमाना नाम । तत्थ तत्र उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णात्ति उत्कृष्टा मध्यमा जघन्या इति तिविहा परिणामा त्रिविधाः परिणामाः । ण न । तत्थ तत्र । सब्वविसुद्धिपरिणामेहि सर्वविशुद्धिपरिणामैः जहण्णो अणुभागो होदि जघन्योऽनुभागो भवति । अप्पसत्थपयडि अणुभागादो अप्रशस्तप्रकृत्यनुभागात् । अणंतगुणपसत्थपयडि अणुभागस्स अणंतगुणवडिदप्पसंगादो अनन्तगुणप्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्यानन्तगुणवृद्धिप्रसंगात् । ण न । सब्वसंकिळिट्ठपरिणामेहिय सब्वसंक्लिष्टपरिणामैश्च तिव्वसंकिळिस्सेण तीव्रसंक्लेशेन । असुहाणं पयडोणं अशुभानां प्रकृतीनां अणुभागवडिदप्पसंगादो अनुभागवृद्धिप्रसंगात् । तम्हा तस्मात् । जहण्णुक्कस्सपरिणामनिराकरणदंठं जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणार्थं परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहिति उत्तं परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामैरित्युक्तम् । ५

प्रतिसमयं केवलवर्द्धमानहीयमानंगळु मावुवु केलुवु संक्लेशविशुद्धिपरिणामंगळवनपरिवर्त्तमानंगळे बुवु । आवुवु केलुवु मत्ते परिणामंगळोळित्तिदुवु परिणामान्तरमनेत्थि वो दरत्ताणदमे १५

अणुसमयं-अनुसमयं, केवलं वर्द्धमाना होयमाना च-केवलं वर्द्धमाना होयमानाश्च, जे संक्लेशविसोहिपरिणामा-ये संक्लेशविशुद्धिपरिणामाः ते अपरियत्तमाणा णाम-ते अपरिवर्त्तमाना नाम । जेत्य पुण-यत्र पुनः, ठाइदूण-स्थित्वा परिणामान्तरं गंतूणं-परिणामान्तरं गत्वा, एगदो-एकतः आदिसमये हि-आदिसमये हि, स्फुटं आगमणं संभवदि-आगमनं संभवति ते परिणाम-ते परिणामाः परिवर्त्तमाणा णाम-परिवर्त्तमाना नाम । तत्थ-तत्र उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णात्ति-उत्कृष्टा मध्यमा जघन्या इति तिविहा परिणामा-त्रिविधाः परिणामाः ण-न । तत्थ-तत्र सब्वविसुद्धिपरिणामेहि-सर्वविशुद्धिपरिणामैः, जहण्णो अणुभागो होदि-जघन्योऽनुभागो भवति । अप्पसत्थपयडोअणुभागादो-अप्रशस्तप्रकृत्यनुभागात्, अणंतगुणपसत्थपयडो अणुभागस्स अणंत-

जो संक्लेशरूप या विशुद्धरूप परिणाम प्रतिसमय बदते ही जायें या घटते ही जायें उन्हें अपरिवर्त्तमान परिणाम कहते हैं क्योंकि वे परिणाम पलटकर पीछेकी ओर नहीं आते । और जिस परिणाममें स्थित हो परिणामान्तरको प्राप्त होकर पुनः उसी परिणाममें आना सम्भव हो उन्हें परिवर्त्तमान कहते हैं क्योंकि यहाँ पलटकर पुनः उसी परिणाममें आना सम्भव है । परिणाम तीन प्रकारके हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य । उनमें-से सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता है । क्योंकि अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागसे प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तगुणा होता है । अतः उसमें अनन्तगुणी वृद्धिका प्रसंग आता है । तथा सर्वोत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे भी जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता; क्योंकि तीव्र संक्लेशसे अशुभ प्रकृतियोंके अनुभागकी वृद्धिका प्रसंग आता है । अतः जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंके निराकरणके लिए परिवर्त्तमान मध्यम परिणामोंमें पूर्वोक्त तेईस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध कहा है । आशय यह है कि तेईस प्रकृतियोंमें प्रशस्त और २५ ३०

मोदल समयदल्लिगे हि स्फुटमागि आगमनं संभविसुगुमा परिणमंगळु परिवर्तमानंगलं बुधक्कुमल्लि उत्कृष्टंगळुं मध्यमंगळुं जघन्यंगळुमेदितु त्रिविधपरिणामंगळपुबल्लि सब्बंविशुद्धिपरिणामंगळिदं प्रशस्त प्रकृतिगळो जघन्यानुभागमुमागदु । अप्रशस्तप्रकृतिगळनुभागं नोडलुं प्रशस्तप्रकृतिगळ अनन्तगुणानुभागक्के अनन्तगुणवृद्धिप्रसंगमुमवकुमपुवर्दिदं सब्बसंक्लेशपरिणामंगळिदमुं अप्रशस्त-  
१ प्रकृतिगळो जघन्यानुभागमागदु । तीव्रसंक्लेशदिदमप्रशस्तप्रकृतिगळनुभागवृद्धिप्रसंगमपुवर्दिद-  
मन्तुमल्लदु कारणदिदं जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणनिमित्तमागि परिवर्तमानमध्यमपरिणामंग-  
ळिदमेदितु पेळत्पट्टदु ॥

अनन्तरं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागंगळो साद्यनादि ध्रुवाध्रुवानु-  
भागबंधसंभवासंभवं पेळदपरः—

१० घादीणं अजहण्णोणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं ।

अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे चदुधा दुधा सेसा ॥१७८॥

घातिनामजघन्योऽनुत्कृष्टो वेदनीयनाम्नोरजघन्योऽनुत्कृष्टो गोत्रे चतुर्धा द्विधा शेषाः ॥

जानावरण वशंनावरण मोहनीयान्तरायघातिकर्मंगळ अजघन्यमुं । वेदनीयनामकर्म-  
द्वितयद अनुत्कृष्टमुं गोत्रकर्मंदोळु अजघन्यमुमनुत्कृष्टमुं इतं दु स्थानंगळोळु साद्यनादि ध्रुवाध्रुवानु-

१५ भागबंधभेददिदं चतुर्विधंगळपुवु । शेषाः शेषजघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टस्थानंगळनितुं मूलप्रकृति-

गुणवृद्धिपसंगादो—अनन्तगुणप्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्य अनन्तगुणवृद्धिप्रसंगात्, ण-न, सब्बसंकलिदठपरिणामेहि य सर्वसंकलिष्टपरिणामेश्च, तिव्वसंकलिस्सेण—तीव्रसंक्लेशेन, असुहाणं पयडोणं—अशुभानां प्रकृतीनां अणुभाग-  
वृद्धिपसंगादो—अनुभागवृद्धिप्रसंगात् । तम्हा—तस्मात्, जहण्णुक्कस्सपरिणामनिराकरट्ठं—जघन्योत्कृष्टपरिणा-  
मनिराकरणार्थम्, परित्यक्तमाणमज्झिमपरिणामेहिस्ति उत्तं-परिवर्तमानमध्यमपरिणामेरित्युक्तं ॥१७७॥ अथ

२० मूलप्रकृतीनां उत्कृष्टाद्यनुभागानां साद्यादिसंभवासंभवावाह—

घातिनां चतुर्णामजघन्यः, वेदनीयनामकर्मणोरनुत्कृष्टः गोत्रस्याजघन्यानुत्कृष्टो च साद्यनादिध्रुवाध्रुव-  
भेदान्चतुर्धा भवन्ति । शेषाः जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाः साद्यध्रुवभेदाद् द्वेधैव ॥१७८॥

अप्रशस्त दोनों ही प्रकार की प्रकृतियाँ हैं । यदि सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामोंसे उनका जघन्य  
अनुभागबन्ध कहते हैं तो अप्रशस्तमें जितना अनुभागबन्ध होगा उससे अनन्तगुणा अनुभाग  
२५ बन्ध प्रशस्त प्रकृतियोंमें होगा । तब जघन्य अनुभागबन्ध कहाँ रहा । इसी तरह यदि तीव्र  
संक्लेश परिणामोंसे उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहते हैं तो अप्रशस्त प्रकृतियोंमें अनुभाग  
बढ़ जायेगा । अतः दोनोंको छोड़कर परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे उनका जघन्य अनु-  
भागबन्ध कहा है ॥१७७॥

अब मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागके सादि आदि भेद होते हैं या नहीं

३० होते, यह कहते हैं—

चारों घातिकर्मोंका अजघन्य अनुभागबन्ध, वेदनीय और नामकर्मका अनुत्कृष्ट  
अनुभागबन्ध तथा गोत्रकर्मका अजघन्य और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव  
और अध्रुवके भेदसे चार प्रकारके होते हैं । शेष अर्थात् चारों घातिकर्मोंके अजघन्यके बिना

गळ्ळो द्विप्रकारानुभागबंधगळे साद्यध्रुव भेदंगळेरडेयप्पुवु—

| णा  | वं  | वे  | मो  | आ   | ना  | गो  | अं  |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ |
| अ २ | अ २ | अ ४ | अ २ | अ २ | अ ४ | अ ४ | अ २ |
| अ ४ | अ ४ | अ २ | अ ४ | अ २ | अ २ | अ ४ | अ ४ |
| ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ |

अनंतरं ध्रुवप्रकृतिगळ्ळो प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतिगळ्ळसध्रुवप्रकृतिगळ्ळं जघन्याजघन्यानु-  
त्कृष्टोत्कृष्टानुभागंगळो साद्याविभेदसंभवासंभवमं वेळवपद—

सत्थाणं ध्रुवियाणमणुकस्समसत्थाणं दुवियाणं ।

अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा ॥१७९॥

शस्तानां ध्रुवाणामनुत्कृष्टोऽशस्तानां ध्रुवाणामजघन्यश्च च चतुर्धा शेषाः शेषाणां च  
द्विधाः ॥

तैजसकामर्माणशरीरनामकर्मद्वितयमुमगुलघुकमुं निर्माणनाममुं प्रशस्तवर्णगंधरस-  
स्पर्शगळे ब ८ अष्ट प्रशस्तध्रुवप्रकृतिगळ अनुत्कृष्टमुं ज्ञानावरणपंचकमुं दर्शनावरणीयनवकमुमन्त-  
रायपंचकमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं षोडशकषायंगळं भयद्विकमुं वर्णचतुष्कमुं उपघातनाममुमेव ४३  
त्रिचत्वारिंशत् ध्रुवाप्रशस्तप्रकृतिगळ अजघन्यमुं साद्याविभ्रुवाध्रुवानुभागबंधभेदविं चतुः-  
प्रकारंगळप्पुवु । शेषाः प्रशस्ताप्रशस्तध्रुवप्रकृतिगळ जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टंगळं शेषाणां च

अथ ध्रुवासु प्रशस्ताप्रशस्तानां अध्रुवाणां च जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानां संभवत्साद्यादिभेदानाह—  
तैजसकामर्माणगुलघुनिर्माणवर्णगंधरसस्पर्शध्रुवप्रशस्तानां अनुत्कृष्ट एकान्तविशतिज्ञानदर्शनावरणान्त-  
रायमिथ्यात्वषोडशकषायभयद्विवर्णचतुष्कोपघातध्रुवाप्रशस्तानां अजघन्यश्च साद्यादिभेदाच्चतुर्धा भवति, शेषाः

तीन, वेदनीय और नामकर्मके अनुत्कृष्टके बिना तीन गोत्रके अजघन्य और अनुत्कृष्टके  
बिना दो और आयु कर्मके चारों अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही  
प्रकारके हैं ॥१७८॥

| ज्ञा. | द.   | वे.  | मो.  | आ.   | ना.  | गो.  | अं.  |
|-------|------|------|------|------|------|------|------|
| उ. २  | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ | उ. २ |
| अ. २  | अ. २ | अ. ४ | अ. २ | अ. २ | अ. ४ | अ. ४ | अ. २ |
| अ. ४  | अ. ४ | अ. २ | अ. ४ | अ. २ | अ. २ | अ. ४ | अ. ४ |
| ज. २  | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ | ज. २ |

आगे ध्रुव प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंमें तथा अध्रुव प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य,  
अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट, अनुभागबन्धमें सम्भव सादि आदि भेद कहते हैं—

तैजस, कर्मण, अगुलघु, निर्माण, प्रशस्त वर्ण गन्ध रस स्पर्श इन ध्रुवबन्धी प्रशस्त  
प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी उन्नीस,  
मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णादि चार, उपघात इन ध्रुवबन्धी  
अप्रशस्त प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि अन्नादि ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार

अध्रुवप्रकृतिगळ ७३ त्रिसप्ततिप्रकृतिगळ जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानुभागबंधगळं द्विषा साद्यध्रुव-  
भेदविदं द्विविधगळपुवु—

| ध्रु = प्र | ध्रु = अप्र | अध्रु प्र. |
|------------|-------------|------------|
| ८          | ४३          | ७३         |
| उ २        | उ २         | उ २        |
| अ ४        | अ २         | अ २        |
| अ २        | अ ४         | अ २        |
| ज २        | ज २         | ज २        |

अनंतरमनुभागमें बुद्धेन दोडे तत्स्वरूपनिरूपणमं घातिकर्मगळोळ माडिदपरु :—

सत्ती य लदादारु अट्टीसेलोवमाहु घादीणं ।

दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ॥१८०॥

शक्तयो लतादावर्धस्थशैलोपमाः खलु घातीनां । दार्वनन्तैकभागपर्यन्तं देशघाति ततः  
सर्वम् ॥

घातीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयान्तरायघातिकर्मगळ शक्तयः स्पर्धकंगळ लतादावर्ध-  
स्थशैलोपमाः लतादावर्धस्थशैलोपमानंगळ चतुर्विभागमागिपुवु । खलु स्फुटमागिपुवुमल्लि  
१० दार्वनन्तैकभागपर्यन्तं लताभागमादियाणि दारुभागे योळनन्तैकभागपर्यन्तं देशघाति देशघाति-

तासां जघन्यादयः अध्रुवत्रिसप्ततेजघन्यादयश्च साद्यध्रुवभेदाद् द्विधैव ॥१७९॥ अनुभागः किमिति प्रश्ने  
तत्स्वरूपं प्रथमतः घातिष्ववाह—

घातिनां ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणां शक्तयः स्पर्धकानि लतादावर्धस्थशैलोपमचतुर्विभागेन  
तिष्ठन्ति खलु स्फुटम् । तत्र लताभागमादि कृत्वा दार्वनन्तैकभागपर्यन्तं देशघातिन्यो भवन्ति । तत उपरि

१५ प्रकार है । इन ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंके शेष तीन अनुभागबन्ध और अध्रुवबन्धी ७३ तेहत्तर  
प्रकृतियोंके चारों अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार हैं ॥१७९॥

| ध्रुव ८ प्र. | ध्रु. ४३ अ. | अध्रुव ७३ |
|--------------|-------------|-----------|
| उ. २         | उ. ५        | उ. २      |
| अ. ४         | अ. २        | अ. २      |
| अ. २         | अ. ४        | अ. २      |
| ज. २         | ज. २        | ज. २      |

आगे अनुभागका स्वरूप प्रथम घातिकर्मोंमें कहते हैं—

घाति ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंकी शक्तियाँ अर्थात्  
स्पर्धक लता, दारु, अस्थि और शैलकी उपमाको लिये हुए चार भागरूप होते हैं । लता बेलको  
२० कहते हैं । दारुका अर्थ काष्ठ है । अस्थि हड्डीको कहते हैं और शैल पर्वतको कहते हैं ।  
जैसे ये उत्तरोत्तर अधिक कठोर होते हैं वैसे ही कर्मोंके स्पर्धक अर्थात् बर्गणाओंका समूह  
भी होता है । उनमें फल देनेकी शक्ति रूप अनुभाग उत्तरोत्तर अधिक-अधिक होता है । सो  
लता भागसे लेकर दारुके अनन्तर्धे भाग पर्यन्त स्पर्धक तो देशघाती होते हैं । उनके उदय

गळपुवु । ततः सर्वं मेले दार्वनन्तबहुभागमावियागि अस्थिशैलभागेलळं सर्वघातियक्कुमल्लि । घातिगळोळुत्तरप्रकृतिगळोळु मिथ्यात्वप्रकृतिशे विशेषमं पेळ्वपरः—

देशोत्ति हवे सम्मं तनो दारु अणंतिमे मिस्सं ।

सेसा अणंतभागा अस्थिसिलाफड्डया मिच्छे ॥१८१॥

देशघातिपर्यन्तं भवेत्सम्यक्त्वं ततो दार्वनन्तैकभागे मिश्रं । शेषाः अनन्तभागाः अस्थि- ५  
शिलास्पर्शकानि मिथ्यात्वे ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामविदं गुणसंक्रमभागहारविदं बंधविनेकविधमेयस्य सत्त्वरूप-  
मिथ्यात्वप्रकृतिदेशघातिजात्यंतरसर्वघाति सर्वघातिभेदविदं “कोट्यं” सम्यक्त्वमिश्रमिथ्यात्व-  
प्रकृतिभेदविदं द्विविधमागि माडल्पदुवपुर्वारिदं लताभागमावियागि दारुविनन्तैकभागपर्यन्तमाव  
देशघातिस्पर्शकंगळनितुं भवेत्सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृतियक्कुं । शेषदारुविनन्तबहुभागम दा ख १०  
ख

नन्तखंडगळं माडिवलि एकखंडं दा ख । १ जात्यंतरसर्वघातिमिश्रप्रकृतियक्कुं । शेषा अनन्त-  
ख ख

भागाः शेषदारुविनन्तबहुभागबहुभागंगळमस्थिशिलास्पर्शकंगळं सर्वघातिमिथ्यात्वप्रकृतियक्कुं

दा ख ख अ जि ।  
ख ख

दार्वनन्तबहुभागमादि कृत्वा अस्थिशैलभागेषु सर्वत्र सर्वघातिन्यो भवन्ति ॥१८०॥ तासामुत्तरप्रकृतिषु मिथ्या-  
त्वस्य विशेषमाह—

लताभागमादि कृत्वा दार्वनन्तैकभागपर्यन्तानि देशघातिस्पर्शकानि सर्वाणि सम्यक्त्वप्रकृतिर्भवति, १९

शेषदार्वनन्तबहुभागेषु दा ख अनन्तखण्डीकृतेषु एकखण्डं दा ख १ जात्यंतरसर्वघातिमिश्रप्रकृतिर्भवति ।  
ख ख

शेषदार्वनन्तबहुभागभागाः अस्थिशिलास्पर्शकानि च सर्वघातिमिथ्यात्वप्रकृतिर्भवति दा ख ख  
ख ख  
अ श ॥१८१॥

होते हुए भी आत्माका गुण प्रकट रहता है । तथा दारुका अनन्त बहुभागसे लेकर अस्थि और शैलरूप सब स्पर्शक सर्वघाती हैं । उनके उदयमें आत्माके गुणका एक अंश भी प्रकट नहीं होता ॥१८०॥

उन कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें-से मिथ्यात्व प्रकृतिके विषयमें कहते हैं—

लता भागसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग पर्यन्त सब देशघाति स्पर्शक सम्यक्त्व प्रकृतिरूप हैं । दारुके अनन्तवें भाग बिना शेष बहुभागके अनन्त खण्ड करें । उनमें-से एक खण्ड प्रमाण स्पर्शक जात्यन्तर अर्थात् पृथक् ही जातिकी सर्वघाती मिश्र प्रकृतिरूप हैं ।

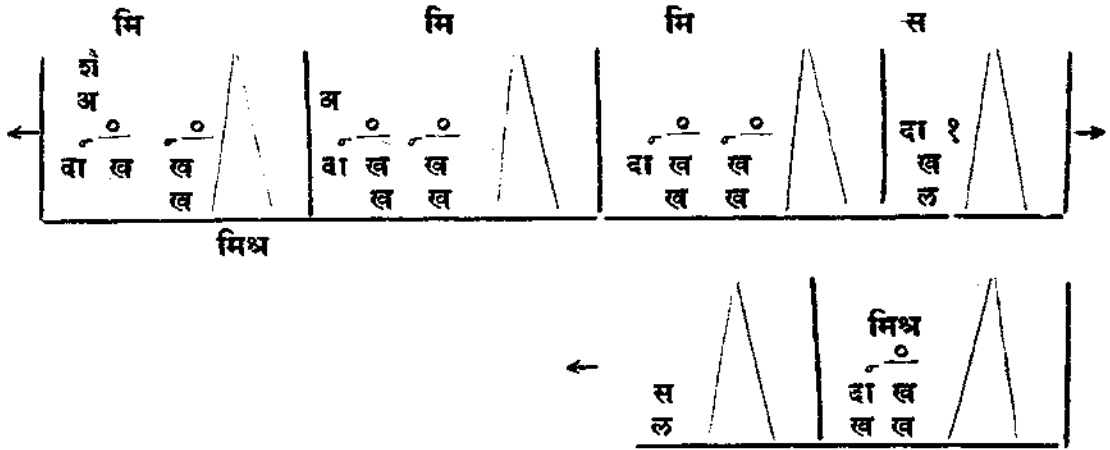


|           |               |                 |
|-----------|---------------|-----------------|
|           | शै            | ९ ना ख ख        |
| मिथ्यात्व | अ             | ९ ना ख ख ख      |
|           | दा ख ख<br>ख ख | ९ ना ख ख ख      |
| मिश्र     | दा ख<br>ख ख   |                 |
| सम्यक्त्व | दा ख<br>ल     | ९ ना १<br>ख ख ख |

|           |               |                 |
|-----------|---------------|-----------------|
|           | शै            | ९ ना ख ख        |
| मिथ्यात्व | अ             | ९ ना ख ख ख      |
|           | दा ख ख<br>ख ख | ९ ना ख ख ख      |
| मिश्र     | दा ख<br>ख ख   |                 |
| सम्यक्त्व | दा ख<br>ल     | ९ ना १<br>ख ख ख |

तथा शेष दारुके बहुभाग और अस्थि तथा शैलरूप स्पर्धक सर्वधाति मिथ्यात्व प्रकृति-रूप जानना ॥१८१॥

- विशेषार्थ—पूर्वमें कहा था कि बन्ध केवल मिथ्यात्व प्रकृतिका ही होता है। जब किसीको सम्यक्त्वकी प्राप्ति सर्वप्रथम होती है तो मिथ्यात्व प्रकृति तीन रूप हो जाती है।
- ५ उनमें-से देशघाती अंश देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिको और सर्वधातीमें-से दारुका कुछ भाग जात्यन्तर सर्वधाती मिश्र प्रकृतिको और शेष सब मिथ्यात्व रूप होता है। यही कथन ऊपर किया है ॥१८१॥

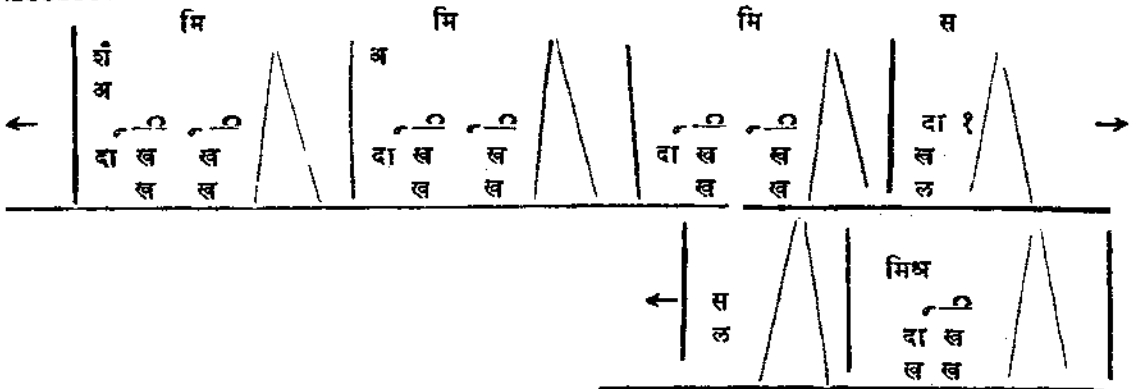


आवरणदेशघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं ।

चदुविधभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१८२॥

आवरणदेशघात्यंतरायसंज्वलनपुरुषसप्रवश । चतुर्विधभावपरिणताः त्रिविधा भावाः खलु शेषाणां ॥

केवलज्ञानावरणरहितज्ञानावरणचतुष्कमुं ४, केवलदर्शनावरणरहितदर्शनावरणत्रितयमुं ३ यो पेळुं प्रकृतिगळावरणमध्यदेशघातिगळे बुववकु-१ मन्तराय अन्तरायपंचकमुं ५, संज्वलन



आवरणेषु देशघातीनि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुरक्षधिविदर्शनावरणानि पञ्चान्तरायाः

ज्ञानावरण और दर्शनावरणमें-से देशघाती मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, ज्ञानावरण और चक्षु, अचक्षु अवधि दर्शनावरण ये सात, पाँच अन्तराय, चार संज्वलन, और पुरुषवेद ये सतरह प्रकृतियाँ शैल, अस्थि, दारु और लता भागरूप परिणत होती हैं। जहाँ शैल भाग नहीं होता वहाँ अस्थि, दारु और लतारूप परिणत होती हैं और जिनमें दारुभाग भी नहीं होता उनमें केवल लतारूप ही परिणमन होता है। इस तरह सतरह प्रकृतियाँ चार रूप परिणत होती हैं। शेष प्रकृतियोंमें-से मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिके बिना समस्त घाति प्रकृतियाँ तीन भागरूप ही परिणत होती हैं। सो केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पाँच

संज्वलनचतुष्कमुं ४, पुरुष पुंवेदमुं इत्तु १७ सप्तदशप्रकृतिगळु चतुर्विधभावपरिणताः चतुर्विध-  
शक्तिपरिणतंगळु । लतादारु अस्थिशैलमुं लतादार्वस्थियुं लतादारुखं लताशक्तिपुमेदिन्तु :—

|                          |                    |               |         |
|--------------------------|--------------------|---------------|---------|
| १७<br>शै<br>अ<br>दा<br>ल | १७<br>अ<br>दा<br>ल | १७<br>दा<br>ल | १७<br>ल |
|--------------------------|--------------------|---------------|---------|

शेषाणां शेषमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयं पोरगागि घात्यघातिगळुनितकं प्रत्येकं त्रिविधभावाः  
खलु त्रिविधशक्तिगळुपुवुरोळु घातिगळुगे नोकषायंगळुगे :—

|                              |                        |                   |
|------------------------------|------------------------|-------------------|
| नो क ८<br>शै<br>अ<br>दा<br>ल | नो क ८<br>अ<br>दा<br>ल | नो क ८<br>दा<br>ल |
|------------------------------|------------------------|-------------------|

५ अनंतरं शेषाघातिगळुगे पैळदपरः—

चतुःसंज्वलनाः पुंवेदश्चेति सप्तदश लतादार्वस्थिशैल-लतादार्वस्थि-लतादारु-लतेतिचतुर्विधभावपरिणता  
भवन्ति ।

|                          |                    |               |         |
|--------------------------|--------------------|---------------|---------|
| १७<br>शै<br>अ<br>दा<br>ल | १७<br>अ<br>दा<br>ल | १७<br>दा<br>ल | १७<br>ल |
|--------------------------|--------------------|---------------|---------|

शेषाणां मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतौ विना घात्यघातिनां सर्वेषां प्रत्येकं त्रिविधा भावाः खलु । तत्र घातिनां—

|                               |                                    |                               |         |
|-------------------------------|------------------------------------|-------------------------------|---------|
| १९<br>शै<br>अ<br>दा<br>ख<br>ख | के<br>१<br>१९<br>अ<br>दा<br>ख<br>ख | दं<br>६<br>१९<br>दा<br>ख<br>ख | क<br>१२ |
|-------------------------------|------------------------------------|-------------------------------|---------|

नोकषायाणां—

|                            |                      |                 |
|----------------------------|----------------------|-----------------|
| नो ८<br>शै<br>अ<br>दा<br>ल | नो ८<br>अ<br>दा<br>ल | नो ८<br>दा<br>ल |
|----------------------------|----------------------|-----------------|

॥१८२॥ शेषाघातिनामाह—

निद्रा, अनन्तानवन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये बारह कषाय इन उन्नीस  
१० प्रकृतियोंके स्पर्धक सर्वघाती ही होते हैं अतः शैल, अस्थि और दारुका अनन्त बहुभाग रूप

अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा ।

ता एव पुण्यपापा सेसा पावा मुण्येयन्वा ॥१८३॥

अवशेषा प्रकृतयोऽघातिन्यो घातिनीनां प्रतिभागाः । ता एव पुण्यपापानि शेषा पापानि मन्तव्याः ॥

शेषघात्यघातिगळगे दु पेळल्पदृ घात्यघातिगळोळु केवलज्ञानावरणादिसर्वघातिगळगं नोकषायाष्टकदेशघातिगळगं त्रिविधभावंगळु त्रिविधशक्तिगळु पेळल्पदुवु । शेषाऽघातिप्रकृतिगळु घातिकर्मगळगे पेळवंते प्रतिभासंगळपुवु प्रतिविकल्पंगळपुवु । त्रिविधशक्तिगळपुवें बुवर्थं । ता एव अबु मत्तमघातिप्रकृतिगळे पुण्यप्रकृतिगळु पापप्रकृतिगळुमेदितु द्विविधंगळपुवु । शेषाः शेषघातिप्रकृतिगळेनितोळवन्तु पापानि पापंगळेयपुवु येदितु मंतधंगळपुवु ।

अनंतरं घातिगळे ललाटावस्थिशीलभेदस्पद्धर्कंगळे ये दु पेळद अघातिगळ चतुर्वि- १०  
भागस्पद्धर्कंगळगे नामान्तरमं प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतिविभागदिदं पेळपरः—

गुडखंडशर्करामृतसरिसा सत्था हु णिबकंजीरा ।

विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा ॥१८४॥

गुडखंडशर्करामृतसदृशाः शस्ताः खलु निबकांजीर विषहालाहलसदृशाः अशस्ताः खलु अघातिप्रतिभागाः ॥

१५

अघातिप्रतिभागाः अघातिप्रतिविकल्पंगळु अघातिशक्तिविकल्पंगळु बुवर्थंमवु पेळल्पदृपु-  
र्वं ते बोडे शस्ताः प्रशस्तप्रकृतिगळु गुडखंडशर्करामृतसदृशाः गुडमुं खंडमुं शर्करैयुममृतमुमे-

शेषाः अघातिप्रकृतयः घातिकर्मोक्तप्रतिभागा भवन्ति त्रिविधशक्तयो भवन्तीत्यर्थः । ता अघाति-  
प्रकृतय एवं पुण्यप्रकृतयः पापप्रकृतयश्च भवन्ति, शेषघातिप्रकृतयः सर्वा अपि पापान्येवेति मन्तव्यम् ॥१८३॥  
घातिनां सर्वेषां स्पर्धकानि ललाटावस्थिशीलनामानोक्तानि । इदानीं अघातिनां तानि प्रशस्ताप्रशस्तानां २०  
नामान्तरेणाह—

अघातिनां प्रतिभागाः शक्तिविकल्पाः प्रशस्तानां गुडखण्डशर्करामृतसदृशाः खलु स्फुटं, अप्रशस्तानां

स्पर्धक ही इनमें पाये जाते हैं या शैलके बिना दो प्रकार पाये जाते हैं अथवा अस्थिके बिना एक ही प्रकार पाया जाता है । इस तरह तीनों प्रकार होते हैं । पुरुषवेदके बिना आठ नो-  
कषायोंमें शैल, अस्थि, दारु, लता चारों प्रकारका अनुभाग पाया जाता है । सो उनमें चार- २५  
रूप, शैलके बिना तीन रूप और अस्थिके बिना दो रूप पाये जाते हैं, केवल लतारूप एक ही भाग नहीं पाया जाता ॥१८२॥

शेष अघातिया कर्मोंकी प्रकृतियां घातिकर्मोंकी तरह प्रतिभागयुक्त होती हैं । अर्थात् उनके स्पर्धक भी तीन भागरूप ही होते हैं । पुण्य प्रकृति और पाप प्रकृतिका भेद अघाति-  
कर्मोंकी प्रकृतियोंमें ही है । घातिकर्मोंकी तो सब प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं ॥१८३॥ ३०

सब घाति प्रकृतियोंके स्पर्धक लता, दारु, अस्थि और शैल नामसे कहे हैं, अब अघाति कर्मोंकी प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंके स्पर्धकोंके अन्य नाम कहते हैं—

अघातिकर्मोंके प्रतिभाग अर्थात् शक्तिके भाग प्रशस्त प्रकृतियोंमें तो गुड़, खँड, शर्करा

विवरोळु सदृशाः विरन्तंगळपुवु सामानानुभागस्पष्टकंगळपुवुवैबुवर्थ । खलु स्फुटमागि अशस्ताः  
अप्रशस्तप्रकृतिगळु निबकांजीरविषहालाहलसदृशाः वेवुं कांजीरमुं विषमुं हालाहलमुमेविवरोळो-  
रन्तंगळपुवु खलु स्फुटमागि । सर्वप्रकृतिगळु १२२ । इवरोळु घातिगळु ४७ अघातिगळु ७५ ।  
यीयघातिगळोळु प्रशस्तंगळु :—

|        |        |        |                                      |
|--------|--------|--------|--------------------------------------|
| प्र ४२ | प्र ४२ | प्र ४२ | ४२ । अप्रशस्तंगळु ३३ । अप्रशस्तवर्ण- |
| अ      | प्र    | प्र    |                                      |
| श      | श      | खं     |                                      |
| खं     | खं     | गु     |                                      |
| गु     | गु     |        |                                      |

५ चतुष्कमुं टप्पुदरिदमदु गूडि ३७

|          |          |          |
|----------|----------|----------|
| अ प्र ३७ | अ प्र ३७ | अ प्र ३७ |
| हा       | वि       | का       |
| वि       | का       | नि       |
| का       | नि       | नि       |
| नि       |          |          |

इन्तु भगवदहंत्परमेश्वर ० कर्मकांडप्रकृतिसमुत्कीर्तनं अनुभागबन्ध परिसमाप्तमाबुदु ॥

अनंतरं प्रदेशबन्धं त्रयस्त्रिंशत् ३३ गाथासूत्रंगळिवं पेळवपर :-

निबकांजीरविषहालाहलसदृशाः खलु स्फुटम् । सर्वप्रकृतयः १२२, तासु घातिन्यः ४७, अघातिन्यः ७५ ।  
एतासु प्रशस्ताः ४२ अप्रशस्ताः ३३, अप्रशस्तवर्णचतुष्कमस्तीति तन्मिलिते ३७ ।

|        |      |      |
|--------|------|------|
| प्र ४२ | अ ३७ | अ ३७ |
| अ      | हा   | वि   |
| श      | वि   | का   |
| खं     | का   | नि   |
| गु     | नि   | नि   |
| प्र ४२ |      | ३७   |
| अ      |      | आ    |
| श      |      | क    |
| खं     |      | नि   |
| गु     |      |      |

१० ॥१८४॥ इत्यनुभागबन्धः समाप्तः । अथ प्रदेशबन्धं त्रयस्त्रिंशद्गाथासूत्रैराह—

और अमृत समान होते हैं । जैसे ये अधिक-अधिक मिष्ट होनेसे सुखदायक हैं वैसे प्रशस्त प्रकृतिके स्पर्धक भी होते हैं और अप्रशस्त प्रकृतियोंके शक्तिके भाग नीम, कांजीर, विष और हालाहलके समान होते हैं, जैसे नीम आदि अधिक-अधिक कटुक होनेसे दुःखदायक होते हैं वैसे ही अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग भी होता है । सब प्रकृतियाँ एक सौ बाईस १२२ हैं । उनमें सैंतालीस ४७ घातियाँ हैं और ७५ अघातियाँ हैं । पचहत्तरमेंसे बयालीस ४२ प्रशस्त हैं । तैंतीस अप्रशस्त हैं । उनमें वर्णादि चार अशुभ भी जोड़नेसे सैंतीस होती हैं । सो प्रशस्त प्रकृति तो गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृतरूप या गुड़, खाण्ड, शर्करारूप या गुड़, खाण्ड-रूप इस तरह तीन रूप परिणत होती हैं । और अप्रशस्त प्रकृति नीम, कांजीर, विष, हालाहल-रूप या नीम, कांजीर विषरूप या नीम कांजीर इस प्रकार तीन रूप परिणत होती हैं ॥१८४॥

अनुभागबन्ध समाप्त हुआ ।

२०

आगे तैंतीस गाथाओंसे प्रदेशबन्धको कहते हैं—

एयक्खेतोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।

बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं ॥१८५॥

एकक्षेत्रावगाढं सर्वप्रदेशैः कर्मणो योग्यं । बध्नाति स्वहेतुभिरनाविसाद्युभयं ॥

सूक्ष्मनिगोदशरीरघनांगुलासंख्यातैकभागजघन्यावगाहक्षेत्रमेकक्षेत्रमे बुदक्कुमा क्षेत्रावगाहितं कर्मस्वरूपपरिणमनयोग्यमपुदननादियं सादियनुभयं पुद्गलद्रव्यं जीवं सर्वात्मप्रदेशंगलितं मिथ्यादर्शनादिस्वहेतुर्गळितं बध्नाति कट्टुगुं ॥

एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयक्खेत्तं तु ।

अवसेसलोयक्खेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवि ॥१८६॥

एकशरीरावगाहितमेकक्षेत्रमनेकक्षेत्रं तु अवशेषलोकक्षेत्रं क्षेत्रानुसारिस्थितं रूपि ॥

एकशरीरावगाहितं एकशरीरविदमवष्टंभिसत्पट्टाकाशमेकक्षेत्रमे बुदु । अदुकारणमाणि १०

घनांगुलासंख्यातैकभागपुलक्षणमवादी ६ अंते = सुद्धे = ६ वद्धिहिदे रूपसंजुदे ठाणा ।  
प ०

एदेकक्षेत्रविकल्पंगळुमिनितपुत्तु ६ विवक्षेयिदमनेकक्षेत्रमुमेकक्षेत्रमवकुमे बुदर्थं । तु मत्से  
प ०

अवशेषलोकक्षेत्रं एकक्षेत्रशरीरावगाहितं घनांगुलासंख्यातैकभागं कळदुळ्ळिद लोकाकाशमनितुम-

सूक्ष्मनिगोदशरीरं घनाङ्गुलासंख्येयभागं जघन्यावगाहक्षेत्रं एकक्षेत्रं, तेनावगाहितं कर्मस्वरूपपरिणमनयोग्यं अनादिकं सादिकं उभयं च पुद्गलद्रव्यं जीवः सर्वात्मप्रदेशैः मिथ्यादर्शनादिहेतुभिर्बध्नाति ॥१८५॥

एकशरीरेणावष्टब्धाकाशप्रदेशं एकक्षेत्रं, तेन घनाङ्गुलासंख्यातैकभाग उपलक्षणं ६ तद्विकल्पाः आदी १५

प ०

६ अंते = सुद्धे = ६ वद्धिहिदे रूपसंजुदे ठाणा इत्येतावन्तः ६ विवक्षया अनेकक्षेत्रमप्येकक्षेत्रं  
प ०

सूक्ष्म निगोदियाका शरीर घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्रवाला होता है । उसे एकक्षेत्र कहते हैं । उस एकक्षेत्रमें स्थित जो कर्मरूप परिणमनके योग्य अनादि, सादि और उभयरूप पुद्गल द्रव्य है उसे जीव मिथ्यादर्शन आदिके निमित्तसे अपने सर्व आत्मप्रदेशोंसे बांधता है ॥१८५॥

एक शरीरकी अवगाहनासे रोका गया जो आकाशप्रदेश है वह एक क्षेत्र है । इससे एक क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है । यद्यपि शरीरकी अवगाहना जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त होती है । उसका आदि भेद तो घनांगुलको पत्यके असंख्यातवें भागका

नेकक्षेत्रं अनेकक्षेत्रम् बुद्धकुम्भितेनैकक्षेत्रेनैकक्षेत्रंगळोळु एकक्षेत्रं ६ अनेकक्षेत्रं ३६ क्षेत्रनुसारि  
 प प  
 ० ०

स्थितं तंतम्म क्षेत्रानुसारियागिहं रूपि सर्वपुद्गलद्रव्यं विभागिसत्पट्टोडेकानेकक्षेत्रंगळोळु  
 ५ त्रैराशिकसिद्धयंगळिनिस्तिनितपुषु । प्र ३ । फ १६ ख । इ ६ लब्धमेकक्षेत्रस्थितरूपि  
 प  
 ०  
 १६ ख ६ प्र ३ फ १६ ख । इ ३ ६ लब्धमनेकक्षेत्रास्थिररूपि १६ ख ३ ६  
 ३ प प ३ प  
 ० ० ०

एयाणेयखेत्तट्ठयरूपि अणंतिमं हवे जोगं ।

अवसेसं तु अजोगं सादि अणादी हवे तत्थ ॥१८७॥

एकानेकक्षेत्रस्थितरूप्यन्तैकभागे भवेद्योग्यं । अवशेषं त्वयोग्यं साधनादि भवेत्तत्र ॥

१० भवतीत्यर्थः । तु पुनः तेनैकक्षेत्रेण ऊनं अवशेषलोकक्षेत्रं अनेकक्षेत्रं ३६ तत्तत्क्षेत्रानुसारितया स्थितं रूपि  
 प  
 ०  
 पुद्गलद्रव्यमेवं सिद्धयति तत्र प्र ३ फ १६ ख इ ६ लब्धं एकक्षेत्रस्य द्रव्यं १६ ख ६ प्र । ३ फ  
 प ३ प  
 ० ०  
 १६ ख इ ३ ६ लब्धं अनेकक्षेत्रस्य द्रव्यं १६ ख ३ ६ ॥१८६॥  
 प ३ प  
 ० ०

भाग दे, उतना है । अन्तिम भेद समुद्घातकी अपेक्षा लोकप्रमाण है । सो अन्तमें-से आदिको  
 घटाकर एक मिलानेसे अवगाहनाके समस्त भेद होते हैं । तथापि बहुत जीव घनांगुलके  
 १५ असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाके धारक होनेसे मुख्यतासे एक क्षेत्रका प्रमाण घनांगुल-  
 के असंख्यातवें भाग मात्र कहा है । सो इतने क्षेत्रके बहुत प्रदेश हैं । इससे प्रदेशोंकी अपेक्षा  
 यही अनेक क्षेत्र है । तथापि निवक्षावश यहाँ इस क्षेत्रको एकक्षेत्र कहा है । और इस क्षेत्रके  
 परिमाणसे हीन शेष लोकाकाशके क्षेत्रको अनेक क्षेत्र कहा है । सो उस-उस क्षेत्रके अनुसार  
 स्थित रूपी पुद्गल द्रव्यका परिमाण इस प्रकार जानना—

२० जो समस्त लोकमें सर्व पुद्गल द्रव्य पाया जाता है तो एक क्षेत्रमें कितना पुद्गल द्रव्य  
 पाया जाता है । ऐसा त्रैराशिक करना । उसमें प्रमाणराशि समस्त लोक, फलराशि पुद्गल-  
 द्रव्यका परिमाण, इच्छाराशि एक क्षेत्रका परिमाण । फलसे इच्छाराशिको गुणा करके  
 प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतना एक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गल-  
 द्रव्य जानना । तथा इच्छाराशि अनेक क्षेत्र रखनेपर पूर्वोक्त सब विधान करनेसे जो लब्ध-  
 २५ राशिका प्रमाण आवे उतना अनेक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गलद्रव्य जानना ॥१८६॥

एकानेकक्षेत्रस्थितरूप्यनन्तैकभागः भवेद्योग्यं एकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्यानन्तैकभागमेकक्षेत्र-  
स्थितयोग्यरूपिद्रव्यमवकुं । अनेकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्यानन्तैकभागमनेकक्षेत्रस्थितयोग्यरूपिद्रव्यमवकुं—

|              |     |             |       |
|--------------|-----|-------------|-------|
| एक =         | यो  | अनेक =      | योग्य |
| १६ ख । ६ । १ |     | १६ ख ३६ । १ |       |
| =            | प ख | =           | प ख   |
|              | ०   |             | ०     |

ई येरडु राशिगळिदं होतंगळप्प तंतम्म राशिगळैकानेकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपिद्रव्यंगळप्पुवल्लि

|                          |          |                            |           |          |
|--------------------------|----------|----------------------------|-----------|----------|
| एकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपि | १६ ख ६ ख | अनेकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपि | १६ ख ३६ ख | तत्र अव- |
|                          | ३ प ख    |                            | ३ प ख     |          |
|                          | ०        |                            | ०         |          |

रोळु एकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यरूपिद्रव्यंगळोळु प्रत्येकं सादिरूपिद्रव्यमेदुमनादिरूपिद्रव्यमेदु ५  
द्विविधमपुवल्लि साद्यनादियोग्यायोग्यद्रव्यप्रमाणंगळो उपपत्तियं वेळवपरु :—

तयोरेकानेकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्ययोरनन्तैकभागः स्वस्वयोग्यरूपिद्रव्यं भवति—एक = योग्यं

|          |
|----------|
| १६ ख ६ । |
| = प १    |
| ० ख      |

अनेक = योग्यं तेन विहीनं स्वस्वावशेषमयोग्यरूपिद्रव्यं भवति । तत्रैकक्षेत्रस्य १६ ख ६ ख अनेक-  
१६ ख ३६  
= प १  
० ख

क्षेत्रस्य १६ ख ३६ । ख तेष्वेकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यरूपिद्रव्येषु प्रत्येकं सादिरूपिद्रव्यं अनादि-  
= प ख  
०

रूपिद्रव्यं च भवति ॥१८७॥ तत्र साद्यनादियोग्यायोग्यद्रव्यप्रमाणानामुपपत्तिमाह—

१०

एक क्षेत्र और अनेकक्षेत्रमें स्थित पुद्गलद्रव्यका जितना परिमाण है उसके अनन्तवें  
भाग तो अपना-अपना योग्य पुद्गलद्रव्य है और शेष अयोग्य पुद्गलद्रव्य है । उनमें-से एक  
क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गल द्रव्यके परिमाणमें अनन्तसे भाग दें । एक भाग प्रमाण कर्मरूप होनेके  
योग्य पुद्गलोंका प्रमाण है । शेष भाग प्रमाण कर्मरूप होनेके अयोग्य पुद्गलोंका प्रमाण है ।  
इस प्रकार चार भेद हुए—एक क्षेत्रमें स्थित योग्य द्रव्य, एक क्षेत्रमें स्थित अयोग्य द्रव्य, १५  
अनेक क्षेत्रस्थित योग्यद्रव्य, अनेक क्षेत्र स्थित अयोग्य द्रव्य । एक-एक भेदमें भी सादि द्रव्य  
और अनादि द्रव्य जानना । जो अतीतकालमें जीवके द्वारा ग्रहण किया गया वह सादिद्रव्य  
है । और जो अनादिकालसे जीवके द्वारा ग्रहण नहीं किया गया वह पुद्गलद्रव्य अनादि-  
द्रव्य जानना ॥१८७॥

आगे इनका प्रमाण जाननेके लिए कथन करते हैं—

२०



जेठ्ठे समयप्रबद्धे अतीतकालाहदेण सव्वेण ।

जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिदिट्ठं ॥१८८॥

जेठ्ठे समयप्रबद्धे अतीतकालाहतेन सव्वेण । जीवेन हते सव्वं सादी भवतीति निर्दिष्टं ॥

- उत्कृष्टयोगाज्जितोत्कृष्टसमयप्रबद्धमनतीतकालादिदं गुणिसत्पट्टु सर्वजीवराशियिदं  
 ५ गुणिसुत्तं विरलु सर्वजीवसंबन्धि सादिद्रव्यमवकुमे'दु श्रीवीतरागसर्वज्जिदं पेळलपट्ट परमागमदोळु  
 पेळलपट्टुदल्लि त्रैराशिकंगळमाडलपडुवुवदे'ते'दोडे एकसमयदोळुत्कृष्टसमयप्रबद्धद्रव्यं स्वीकृत-  
 मागुत्तं विरलु संख्यातावल्लिगुणितसिद्धराशिप्रमितमप्य अतीतकालसमयंगळगेनितु द्रव्यमवकुमे'दितु  
 त्रैराशिकमं माडिदोडे प्र । स १ । फ स ३२ इ । अ । बंद लब्धमेकजीवसंबन्धि सादिद्रव्यमवकु ।  
 स ३२ । अ । मदं सर्वजीवराशियिदं गुणिसिदोडे त्रैराशिकसिद्ध । प्र १ । जी १ । फ स ३२ । अ ।  
 १० । इ । जी १६ । लब्धप्रमितं सर्वजीवसंबन्धि सादिद्रव्यमवकु । स ३२ । अ १६ ॥

अनन्तरमेकानेकक्षेत्रस्थितकर्मयोग्यायोग्यद्रव्यंगळोळित्तिर्दं योग्यायोग्यसादिद्रव्यप्रमाणं  
 पेळदपरु :—

सगसगखेतगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी ।

सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिदिट्ठं ॥१८९॥

- १५ स्वस्वक्षेत्रगतस्य चान्तैकभागो योग्यद्रव्यगतसादि । शेषमयोग्यसंगतसादि भवतीति  
 निर्दिष्टं ॥

- उत्कृष्टयोगाज्जितोत्कृष्टसमयप्रबद्धे अतीतकालगुणितसर्वजीवराशिना गुणिते सति सर्वजीवसंबन्धि सादि-  
 द्रव्यं भवति । तत्रैकसमये यद्युत्कृष्टसमयप्रबद्धद्रव्यं गृह्णाति तदा संख्यातावल्लिहृतसिद्धराशिमात्रातीतकाले  
 कियदिति प्र—स १ फ—स ३२ इ अ, लब्धमेकजीवसंबन्धि सादिद्रव्यं भवति । स ३२ अ । इदं पुनः सर्वजीव-  
 २० राशिना गुणितं सर्वजीवसंबन्धि भवतीति जिने'निर्दिष्टं स ३२ अ १६ ॥१८८॥ अथैकानेकक्षेत्रस्थितकर्मयोग्या-  
 योग्यद्रव्येषु स्थितयोग्यायोग्यसादिद्रव्यप्रमाणमाह—

- उत्कृष्ट योगके द्वारा उपार्जित उत्कृष्ट समयप्रबद्धको अतीतकालसे गुणा करनेपर जो  
 प्रमाण हो, उसको सर्व जीवराशिके प्रमाणसे गुणा करनेपर सर्वजीव सम्बन्धी सादिद्रव्यका  
 प्रमाण होता है । संख्यात आवलीसे सिद्धराशिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना  
 २५ अतीतकालके समयोंका प्रमाण है । यदि एक समयमें उत्कृष्ट समयप्रबद्ध प्रमाण पुद्गलद्रव्य-  
 का ग्रहण होता है तो अतीतकालके समयोंमें कितने पुद्गलद्रव्यका ग्रहण हुआ ऐसा त्रैराशिक  
 करो । सो प्रमाणराशि एक समय, फलराशि उत्कृष्ट समयप्रबद्ध, इच्छाराशि अतीतकालके  
 समय । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना सर्वजीव  
 सम्बन्धी सादि पुद्गलद्रव्य जानना । इस प्रमाणको समस्त पुद्गलराशिके प्रमाणमें-से  
 ३० घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उतना अनादि पुद्गलद्रव्य जानना ॥१८८॥

आगे पूर्वोक्त भेदोंमें सादि द्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

स्वस्वक्षेत्रगतस्य एकानेकक्षेत्रस्थितद्रव्यद तंतम्म कर्मयोग्यद्रव्यद अनंतैकभागः जीवन दृष्टानंतभागहारदिवं खंडितैकखंडं तंतम्म योग्यद्रव्यस्थितसादिद्रव्यमवकुं । शेषं तंतम्म अयोग्य-संगतसादि द्रव्यमवकु—

|                                                        |                                                                     |                                                                |
|--------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------|
| एकक्षेत्रसठवद्रव्यं<br>१६ ख । ६<br>≡ प<br>०            | एकक्षेत्रसादि<br>स ३२ । अ १६ । ६ । १<br>≡ प<br>०                    | अनेकक्षेत्रद्रव्यं ।<br>१६ ख । ६<br>≡ प<br>०                   |
| यो = द्रव्य १६ ख ६ । १<br>योग्यसादि≡ प ख<br>०          | ६ —<br>अयो द्र १६ ख प ख<br>≡ ० ख                                    | यो द्र १६ ख≡६ ख<br>≡ प<br>०                                    |
| द्रव्य स ३२ अ ६ ख १<br>१६ प<br>≡ ०                     | ६ —<br>अयो सा । स ३२अ १६प ख<br>≡ ० ख                                | यो सा । स ३२ अ १६≡प ख<br>०                                     |
| योग्यानाविद्रव्यं<br>१<br>१६ ख । ६ । ख<br>≡ प<br>० ६ १ | अयोग्यानादि<br>१६ ख ६ । ख<br>प ख ६ । ख<br>स ३२ अ ० १६ ।<br>≡ प<br>० | योग्यानादि<br>१६ ख≡६ ख<br>≡ प<br>० ६ —<br>स ३२ अ १६≡प ख<br>≡ ० |

|                                                                          |                                                                               |                              |
|--------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------|------------------------------|
| अनेकक्षेत्र सादि<br>६<br>स ३२ अ १६≡प<br>०<br>≡                           | सर्वक्षेत्र<br>≡                                                              | सर्वद्रव्य<br>१६ ख           |
| अयो १६ ख≡६ ख<br>प<br>≡ ० ख                                               | एकक्षेत्र<br>६<br>प<br>०                                                      | अनेकक्षेत्र<br>≡ ६<br>प<br>० |
| अयो । सा । स ३२ अ १६≡६ ख<br>≡ प ख<br>०                                   |                                                                               |                              |
| अयोग्यानादि<br>६ —<br>१६ ख≡ प ख<br>≡ ० ख<br>६ ख<br>स ३२ अ १६≡—प ख<br>≡ ० | समस्त सादिद्रव्यं<br>स ३२ अ १६<br>समस्त अनादिद्रव्यं<br>१६ ख )<br>स ३२ अ १६ ) |                              |

एकानेकक्षेत्रस्थितसादिद्रव्यस्य जिनदृष्टान्तभक्तैकभागः स्वस्वयोग्यद्रव्यस्थितसादिद्रव्यं भवति शेषं

एक क्षेत्र और अनेक क्षेत्रमें स्थित सादिद्रव्यमें जिनदेवके द्वारा देखे गये अनन्तसे

मेदितु परमागमदोळ प्रणीतमादुददेते दोडे इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । घनलोकसर्व-  
प्रदेशंगळोळ सर्वजीवसंबंधि सादिद्रव्यमिनितिरुत्तं विरलागळेकजीवावगाहित घनांगुलासंख्यातैक-  
भागमात्रक्षेत्रदोळं घनांगुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रानेकक्षेत्रदोळमेनितु सादिद्रव्यमिक्कुमेदितु  
त्रैराशिकंगळं माडिदोडे । प्र३फ स ३२ । अ १६ । इ ६ प्र३फ स ३२ । अ १६ ।

५ इ । ≡ ६ लब्धंगळेकानेकक्षेत्रस्थित सादिद्रव्यंगळप्रमाणंगळपुवु । एक क्षे = साद =  
प स ३२ । अ १६ । ६  
० ≡ प  
०

अनेकक्षेत्रसादि = ई एकानेकक्षेत्रगत सादिद्रव्यं गळ अनंतैकभागंगळु योग्यसादिद्रव्यंगळपुवु—  
स ३२ । अ १६ ≡ ६  
≡ प  
०

स्वस्वायोग्यसंगतसादिद्रव्यं भवतीति प्रणीतम् । यदि घनलोकसर्वप्रदेशेषु सर्वजीवसंबन्धिसादिद्रव्यं एतावत् तदा  
एकजीवावगाहितघनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रक्षेत्रे घनाङ्गुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रानेकक्षेत्रे च कियत्  
स्यात् ? इति त्रैराशिके कृते प्र—३, फ स ३२ अ १६, इ ६ । प्र ३, फ स ३२ अ १६, इ ६

१० लब्धं एकानेकक्षेत्रस्थितसादिद्रव्यं भवति एकक्षेत्रसादि = अनेकक्षेत्रसादि = तयोर्द्रव्ययोरनन्तैक-  
स ३२ अ १६ ६ स ३२ अ १६ ≡ ६  
प प  
≡ ० ≡ ०

भागौ योग्यसादिद्रव्ये भवतः—

एकक्षेत्रयोग्यसादि = अनेकक्षेत्रयोग्यसादि =  
स ३२ अ १६ । ६ स ३२ अ १६ । ≡ ६  
प १ प १  
० ख ० ख

शेषो अनन्तबहुभागी एकानेकक्षेत्रगतायोग्यसादिद्रव्ये भवतः ॥१८९॥

भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो अपना-अपना योग्य सादिद्रव्य है, शेष अयोग्य सादिद्रव्य है ऐसा कहा है । वही कहते हैं—

- १५ जो सर्वलोकके प्रदेशोंमें सर्वजीव सम्बन्धी सादिद्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण पाया जाता है तो एक जीवकी अवगाहनारूप घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण एक क्षेत्रमें और एक क्षेत्रके परिमाणसे हीन लोक प्रमाण अनेक क्षेत्रमें कितना पाया जायेगा । इस प्रकार दो त्रैराशिकमें-से एकमें प्रमाणराशि सर्वलोक, फलराशि सादिद्रव्यका प्रमाण, इच्छाराशि एक क्षेत्र । सो फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतना
- २० एक क्षेत्र सम्बन्धी सादिद्रव्य जानना । दूसरेमें, प्रमाण सर्वलोक, फल सादिद्रव्यका प्रमाण, इच्छा अनेक क्षेत्र । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया, उतना अनेक क्षेत्र सम्बन्धी सादिद्रव्य जानना । एक क्षेत्र सम्बन्धी सादिद्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण एक क्षेत्र सम्बन्धी कर्मरूप होनेके योग्य सादिद्रव्य

एक क्षेत्र योग्यसादि

स ३२ अ १६ । ६ १

≡ प ख  
०

अनेक क्षेत्र योग्यसादि

स ३२ अ १६ ≡ ६ ख

≡ प  
०

शेषानंतबहुभागंगळ-

मेकानेकक्षेत्रगताऽयोग्यसादिद्रव्यंगळपुबु

एक क्षेत्र योग्यसादि

अनेकक्षेत्रायोग्यसादि

स ३२ अ १६ । ६ ख

≡ प ख  
०

स ३२ । अ १६ ≡ ६ ख

≡ प ख  
०

अनंतरमेकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यअनादिद्रव्यप्रमाणंगळं पेळवपरः—

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे य होदि णियमेण ।

जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं ॥१९०॥

स्वस्वसादिविहीने योग्यायोग्ये च भवति नियमेन । योग्यायोग्यानां पुनरनादिद्रव्याणां परिमाणं ॥

एकानेकक्षेत्रगतयोग्यायोग्यद्रव्यंगळोलु यथाक्रमविदं स्वस्वयोग्यायोग्यसादिद्रव्यंगळं कळेयुत्तिरलु एकानेकक्षेत्रस्थित योग्यायोग्यद्रव्यंगळ अनादिद्रव्यपरिमाणंगळपुबुः—

एकक्षेत्रायोग्यसादि

स ३२ अ १६ ६ ख  
प ख  
≡ ०

अनेकक्षेत्रायोग्यसादि

स ३२ अ १६ ≡ ६ ख  
प ख  
≡ ०

अर्थेकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यानादि द्रव्यप्रमाणान्याह—

एकानेकक्षेत्रगतयोग्यायोग्यद्रव्येषु यथाक्रमं स्वस्वयोग्यायोग्यसादिद्रव्येष्वपनीतेषु एकानेकक्षेत्रस्थित-

जानना । शेष बहुभाग प्रमाण एक क्षेत्र सम्बन्धी अयोग्य सादि द्रव्य जानना । इसी प्रकार अनेक क्षेत्र सम्बन्धी सादि द्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण अनेक क्षेत्रमें स्थित योग्य सादिद्रव्य जानना, शेष बहुभाग प्रमाण अनेक क्षेत्रमें स्थित अयोग्य सादि द्रव्य जानना ॥१८९॥

आगे अनादिद्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

एकक्षेत्रमें स्थित योग्यद्रव्य और अयोग्यद्रव्य तथा अनेकक्षेत्रमें स्थित योग्यद्रव्य और अयोग्यद्रव्यका जो परिमाण कहा है उनमें-से अपने-अपने सादिद्रव्यका परिमाण घटानेपर जो शेष प्रमाण रहे उतना-उतना क्रमसे एकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्यका और एकक्षेत्रस्थित अयोग्य अनादि द्रव्यका तथा अनेकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्यका और अनेक क्षेत्र स्थित अयोग्य अनादि द्रव्यका प्रमाण होता है । इनमें-से योग्य सादिद्रव्यसे अथवा योग्य अनादि-द्रव्यसे अथवा योग्य उभय द्रव्यसे एक समयप्रबद्ध प्रमाण मूलप्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृति-रूपसे प्रतिसमय प्रदेशबन्ध करता है । इसका भावार्थ यह है कि जीव मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे प्रतिसमय कर्मरूप होनेके योग्य समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओंको ग्रहण करके उन्हें

५

१०

१५

२०

## उक्त समुदायरचना

| एक क्षेत्र यो० अनादि                                      | अनेक क्षेत्र यो० अनादि                                      |
|-----------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------|
| १६ ख ६ ख<br>≡ प<br>०<br>स ३२ अ १६ १ ६<br>≡ प ख<br>०       | १६ ख ≡ ६ १<br>≡ प ख<br>०<br>स ३२ अ १६ ≡ ६ १<br>≡ प ख<br>०   |
| एक क्षेत्र अयो० अनादि०                                    | अनेक क्षेत्र अयो० अ०                                        |
| १६ ख १ ६ ख<br>≡ प ख<br>०<br>स ३२ १ अ १६ ६ ख<br>≡ प ख<br>० | १६ ख १ ≡ ६ ख<br>≡ प ख<br>०<br>स ३२ १ अ १६ ६ ख<br>≡ प ख<br>० |

अनंतरमी पेळलपट्ट योग्यसाविद्रव्यमं मेणु योग्यानादिद्रव्यमं मेणुभयद्रव्यमुमं मेणु कर्म-  
परिणमनयोग्यकाम्मंणवर्गणास्कंधगळनेकसमयप्रबद्धप्रमितमं मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपविबं  
प्रतिसमयं प्रदेशबंधमं माळकुमा समयप्रबद्धप्रमाणमुभिनिते दु पेळवपर :-

योग्यायोग्यद्रव्याणां अनादिद्रव्यप्रमाणानि भवन्ति, तस्माद्योग्यसाविद्रव्याद् वा योग्यानादिद्रव्याद् वा योग्योभय-  
द्रव्याद् वा एकसमयप्रबद्धप्रमितं मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेण प्रतिसमयं प्रदेशबंधं करोति ।

एकक्षेत्र यो = अनादि

१६ ख ६ १  
≡ ख प )  
० )  
स ३२ अ १६ १ ६ १  
≡ प ख  
०

एकक्षेत्र अयो = अनादि

१६ ख ६ १ ख  
≡ प ख )  
० ख )  
स ३२ अ १६ १ ६ ख  
≡ प ख  
०

अनेकक्षेत्रयोग्य अनादि

१६ ख ≡ ६ १  
≡ ख प )  
० )  
स ३२ अ १६ १ ≡ ६ १  
≡ प ख  
०

अनेकक्षेत्र अयो-अनादि

१६ ख ≡ ६ ख  
≡ प ख )  
० ख )  
स ३२ अ १६ १ ≡ ६ ख  
≡ प ख  
०

॥१९०॥

कमरूप परिणमाता है । सो किसी समय तो जीवके द्वारा पूर्वमें ग्रहणमें आये सादिद्रव्यरूप  
परमाणुओंको ही ग्रहण करता है, किसी समय किसी भी जीवके द्वारा पूर्वमें ग्रहण न किये

सयलरसरूपगंधेहिं परिणदं चरिमचदुहिं फासेहिं ।

सिद्धादो अभव्वादो अणंतिमभागं गुणं दव्वं ॥१९१॥

सकलरसरूपगंधैः परिणतं चरमचतुर्विधं स्पर्शः । सिद्धादभव्यादनंतैकभागो गुणं द्रव्यं ॥

सर्वरसरूपगंधस्पर्शचतुर्विधं चरमशीतोष्णस्निग्धरूक्षचतुःस्पर्शगणितं परिणतमप्युदुं  
सिद्धराशियं नोडलुमनंतैकभागमुमप्युदुं । मभव्यराशियं नोडलुमनन्तगुणमुमप्युदुं । मितप्प समय- ५  
प्रबद्धद्रव्यं मूलप्रकृतिगळोळेतु पसत्पडुगुम दोडे पेळवपरुः—

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो ।

घादितिये वि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिण ॥१९२॥

आयुर्भागः स्तोकः नामगोत्रयोः समस्ततोऽधिकः । घातित्रयेऽपि च ततो मोहे ततस्तृतीये ॥

आयुर्भागः आयुष्यकर्मव भागं स्तोकः एल्लवर भागमं नोडलु किरिदक्कु । ततः आ १०  
आयुर्भागमं नोडलुं नामगोत्रयोः नामगोत्रंगळोळु अधिकः अधिकमक्कुमवुवुं समः तम्मोळु सम-  
नागि पसत्पडुगुं । ततः आ नामगोत्रद्वयव भागमं नोडलु घातित्रये अन्तराय दर्शनावरणज्ञानावरण-  
त्रयदोळु अधिकः अधिकमक्कु । मवुवुं समः तम्मोळु समनागि पसत्पडुगुं । ततः आ घातित्रयव  
भागमं नोडलुं मोहे मोहनोयकर्मदोळु अधिकः अधिकमक्कुं । ततः आ मोहनोयव भागमं नोडलु

तत्प्रमाणमाहु—

सर्वरसरूपगंधस्पर्शचरमशीतोष्णस्निग्धरूक्षचतुःस्पर्शश्च परिणतं सिद्धराश्यनन्तैकभागं अभव्यराश्यनन्त-  
गुणं समयप्रबद्धद्रव्यं भवति ॥१९१॥ तन्मूलप्रकृतिषु कथं विभज्यते ? इति चेदाहु—

आयुःकर्मणो भागः स्तोकः । नामगोत्रयोः परस्परं समानोऽपि ततोऽधिकः । अन्तरायदर्शनज्ञानावरणेषु

गये अनादि द्रव्यरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है । और किसी समय कुछ सादि द्रव्यरूप  
और कुछ अनादिद्रव्यरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है ॥१९०॥

आगे उस समयप्रबद्धका प्रमाण कहते हैं—

वह समयप्रबद्धरूप परमाणुओंका समूह सब रस, सब रूप, सब गन्ध किन्तु शीत,  
उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष चार प्रकारके स्पर्शसे युक्त होता है । उसमें गुरु, लघु, मृदु और कठिन ये  
चार स्पर्श नहीं होते । तथा उस समयप्रबद्धमें सिद्धराशिके अनन्तर्वे भाग और अभव्यराशि-  
से अनन्तगुणे परमाणु होते हैं । इतने परमाणुओंको प्रतिसमय ग्रहण करके कर्मरूप परिण- २५  
माता है अर्थात् जीवके भावोंका निमित्त पाकर इतने परमाणुं प्रतिसमय स्वयं कर्मरूप  
परिणमते हैं ॥१९१॥

उस समयप्रबद्धका विभाजन मूल प्रकृतियोंमें किस प्रकारसे होता है यह कहते हैं—

सब मूल प्रकृतियोंमें आयुकर्मका भाग थोड़ा है । नाम और गोत्रकर्मका भाग परस्पर-  
में समान होते हुए भी आयुकर्मके भागसे अधिक है । अन्तराय, ज्ञानावरण और दर्शना- ३०  
वरणका भाग परस्परमें समान है तथापि नाम और गोत्रके भागसे अधिक है । उससे

तृतीये वेदनीयदोषोऽधिकः अधिकमवकु । मित्तु पसत्पडुत्तिरलु मिथ्यादृष्टियोऽनु नरकतिर्यग्-  
मनुष्यदेवायुर्भेददिदं चतुर्विधमवकु ।

सासादननोऽतिर्यगमनुष्यदेवायुर्भेददिदं त्रिविधमवकु । असंयतनोऽनु मनुष्यदेवायुर्भेददिदं  
द्विविधमवकु । देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोऽनु देवायुष्यभेददिनेकविधमेवकु । मायुर्बन्धरहितपेक्षेयिदम-  
५ निवृत्तिकरणपर्यंत ९ गुणस्थानगोऽनु सप्तविधमूलप्रकृतिप्रदेशबन्धमवकु । सूक्ष्मसांपरायनोऽनु ६  
षड्विधमूलप्रकृतिगण्य प्रदेशबन्धमवकु उपशान्तादिसयोगकेवलिपर्यंतमेकमूलप्रकृतिगे सर्वसमय-  
प्रबद्धद्रव्यरूपात्मकप्रदेशबन्धमवकु ।

| वेद स ८८ | मो स ८८ | जा स ८८ | द स ८८ | अन्तराय स ८८ | गो स ८८ | ता स ८८ | आ स ८८ |
|----------|---------|---------|--------|--------------|---------|---------|--------|
| ८१९      | ८१९     | ८१९     | ८१९    | ८१९          | ८१९     | ८१९     | ८१९    |
| स ८८     | स ८८    | स ८८    | स ८८   | स ८८         | स ८८    | स ८८    | स ८८   |
| ९९       | ९९      | ९९      | ९९     | ९९           | ९९      | ९९      | ९९     |

अनन्तरं वेदनीयके सर्वतोऽधिकमवकु के कारणं पेक्षदपरः—

सुखदुःखनिमित्तादो बहुनिज्जरगोत्ति वेयणीयस ।

१० सर्वेहितो बहुगं द्रव्यं होदिति निदिष्टं ॥१९३॥

सुखदुःखनिमित्तात् बहुनिज्जरेति वेदनीयस्य । सर्वतो बहुकं द्रव्यं भवतीति निदिष्टं ॥

वेदनीयस्य वेदनीयके सुखदुःखनिमित्तात् सुखदुःखकारणदिदं बहुनिज्जरेति बहुनिज्जरेयु-  
टेदिन्तु सर्वतः सर्वप्रकृतिगण्य भागेय द्रव्यं नोडलं बहुकं द्रव्यं पिरिदुं द्रव्यं भवतीति निदिष्टं

१५ तथा समानोऽपि ततोऽधिकः । ततो मोहनीयेऽधिकः ततो वेदनीयेऽधिकः । एवं भक्त्वा दत्ते सति मिथ्यादृष्टो  
आयुश्चतुर्विधम् । सासादने नारकं नेति त्रिविधम् । असंयते तैरश्चमपि नेति द्विविधम् । देशसंयतादित्रये एकं  
देवायुरेव । उपर्यनिवृत्तिकरणात् सप्तविधमूलप्रकृतीनां प्रदेशबन्धः सूक्ष्मसांपराये षण्णां उपशान्तादित्रये  
एकाया उदयात्मिकायाः ॥१९२॥ अथ वेदनीयस्य सर्वतः आधिक्ये कारणमाह—

वेदनीयस्य सुखदुःखनिमित्त्वात् बहुकं निर्जरयति इति हेतोः सर्वप्रकृतिभागद्रव्यात् बहुकं द्रव्यं भव-

२० मोहनीयका भाग अधिक है । मोहनीयसे वेदनीयका भाग अधिक है । सो मिथ्यादृष्टि गुण-  
स्थानमें चारों आयुका बन्ध सम्भव है । सासादनमें नरकायुके बिना तीन आयुका बन्ध होता  
है । असंयतमें नरक और तिर्यचके बिना दो आयुका बन्ध होता है । देशसंयत, प्रमत्त और  
अप्रमत्तमें एक देवायुका ही बन्ध होता है । ऊपर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त आयुके बिना सात  
ही कर्मोंका प्रदेशबन्ध होता है । सूक्ष्म सांपरायमें आयु और मोहनीयके बिना छह कर्मोंका  
बन्ध होता है । उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवलीमें एक वेदनीयका बन्ध होता  
२५ है जो उदयरूप ही है । जहाँ जितने कर्मोंका बन्ध होता है वहाँ समयप्रबद्धमें उतने ही  
कर्मोंका बँटवारा होता है ॥१९२॥

आगे वेदनीय कर्मका सबसे अधिक भाग होनेका कारण कहते हैं—

वेदनीय कर्म सुख और दुःखमें निमित्त होता है । इससे उसकी निर्जरा बहुत होती

१. षष्ठे मूलप्रकृतयः सप्त, सूक्ष्मसांपराये षट् । उपशान्तादित्रये एका उदयात्मिका ।

अवकुमेदितु परमाणमदोळु पेळ्ळपट्टुदु ॥

अनन्तरं शेषप्रकृतिगळो स्थित्यनुसारिद्रव्यविभंजनमवकुमेदु पेळ्ळपट्टु :—

सेसाणं पयडीणं ठिदिअणुभागेण होदि दव्वं तु ।

आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ॥१९४॥

शेषाणां प्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन भवति द्रव्यं तु । आवल्यसंख्यभागः प्रतिभागो भवति नियमेन ॥

शेषमूलप्रकृतिगळोत्तलं स्थितिप्रतिभागद्विदं द्रव्यमवकुं । तु मत्ते । अधिकागमननिमित्त-  
माणि । प्रतिभागं प्रतिभागहारं । आवल्यसंख्यभागः आवल्यसंख्यातैकभागमेवकुं । नियमेन  
नियमद्विदं । भागहारान्तरनिवृत्त्यर्थमाणि नियमवचनमा भागहारवके तवांकं संदृष्टियवकुं ९ ॥

ई आवल्यसंख्यातद्विदं भागसि पसुगेयं माळ्ळप क्रममं पेळ्ळपट्टु :—

१०

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागमिह ।

उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देयो दु ॥१९५॥

बहुभागे समभागोऽष्टानां भवत्येकभागे । उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागे बहुकस्य देयस्तु ॥

तीति परमाणमे निदिष्टम् ॥१९३॥ अथ शेषाणां स्थित्यनुसारिद्रव्यविभंजनमित्याह—

शेषसर्वमूलप्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन द्रव्यं भवति । तु—पुनः तत्राधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः १५  
आवल्यसंख्येयभागो नियमेन । भागहारान्तरनिवृत्त्यर्थं नियमवचनम् । तत्संदृष्टिर्नवाङ्कः ९ ॥१९४॥ अनेन  
विभागक्रमं दर्शयति—

है । अतः अन्य सब मूल प्रकृतियोंके भागरूप द्रव्यसे वेदनीयका द्रव्य बहुत है, ऐसा परमा-  
गममें कहा है ॥१९३॥

शेष कर्मके द्रव्यका विभाग उनकी स्थितिके अनुसार होता है, यह कहते हैं—

२०

वेदनीयके बिना शेष सब मूल प्रकृतियोंका द्रव्य स्थितिके प्रतिभागके अनुसार होता है  
अर्थात् जिस कर्मकी स्थिति बहुत है उसका द्रव्य अधिक है । जिनकी स्थिति परस्परमें समान  
है उनका द्रव्य परस्परमें समान जानना । जिसकी स्थिति कम है उसका द्रव्य थोड़ा है ।  
अधिक भाग लानेके लिए प्रतिभागहार आवलीका असंख्यातवाँ भाग नियमसे होता है ।  
'नियम' पद इसलिए दिया है कि अन्य भागहार नहीं होता । उसकी संदृष्टि 'नौ'का अंक है । २५  
इसका भाग देनेपर जो लब्ध आवे सो एक भाग जानना । और एक भागके बिना शेष सब  
भागको बहुभाग जानना ॥१९४॥

आगे विभागका क्रम कहते हैं—



- ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिगच्छेत् बहुभागदोऽसमभागमवकुं । एकभागस्मि शेषैक-  
भागदोऽसमभागः पूर्वोक्तक्रममवकुमल्लि तु मत्ते । बहुभागः बहुभागः । बहुकस्य देयः पिरिदपु-  
वक्के देयमवकुमदेते दोडे सिद्धराशियं नोडलुमनंतैकभागमुमभव्यराशियं नोडलुमनंतगुणमुमप्य  
कार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमनिदं । स ० । पूर्वोक्तावत्यसंख्यातैकभागमात्रप्रतिभागहारदिवं भागिसि  
बहुभागमं स ० ८ आयुर्वंधकालदोऽसमभागमूलप्रकृतिगच्छेत् एकमेल्लमिनितु द्रव्यमागलो दु प्रकृतिगेनितु  
५ द्रव्यमवकुमे दु त्रैराशिकमं माडि बंदलब्धमन टेडेयोळं प्रत्येकमिरिसि शेषैकभागमनिदं स ० १  
मत्तमावत्यसंख्यातैकभागदिवं भागिसि बहु भागमनिदं स ० ८ बहुकस्य देयमे दु वेदनीयक्के कोट्टु  
शेषैकभागमं स ० १ मत्तमावत्यसंख्यातदिवं भागिसि बहुभागमनिदं स ० ८ मोहनीयक्के कोट्टु  
शेषैकभागमं स ० १ मत्तमावत्यसंख्यातैकभागदिवं भागिसि बहुभागमं स ० ८ ज्ञानावरण-  
दर्शनावरणान्तराय घातित्रयक्क कोट्टुवं मूररिदं भागिसि समनादुदं स ० ८ प्रत्येकं मूरडेयोळं  
कोट्टु शेषैकभागमं स ० १ पूर्वोक्तावत्यसंख्यातदिवं भागिसि बहुभागमनिदं स ० ८ नामगोत्र-

- मूलप्रकृतीनामष्टानां बहुभागे समभागो देयः । तत्रैकभागे उक्तक्रमो भवति । तत्र तु पुनः बहुभागः  
बहुकस्य देयः । तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं स ० तत् आवत्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स ० ८  
अष्टभिर्भक्त्वा स ० ८ अष्टसु स्थानेषु प्रत्येकं स्थाप्यः, शेषैकभागे स ० १ आवत्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः  
स ० ८ बहुकस्य वेदनीयस्य देयः । शेषैकभागे स ० १ पुनरावत्यसंख्यातभक्तबहुभागः मोहनीयस्य देयः  
स ० ८ शेषैकभागे स ० १ पुनरावत्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः स ० ८ त्रिभिर्भक्त्वा स ० ८  
स ० ८ शेषैकभागे स ० १ पुनरावत्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः स ० ८ त्रिभिर्भक्त्वा स ० ८

- आठ मूल प्रकृतियोंको बहुभाग तो बराबर-बराबर समान देना चाहिए । जो एक  
भाग रहा उसको उक्त क्रमसे देना । किन्तु उसमें भी जिसका बहुत द्रव्य हो उसको बहुभाग  
देना चाहिए । वही कहते हैं—  
एक समयमें जो कार्माण सम्बन्धी समयप्रबद्ध ग्रहण किया, उसके परमाणुओंका  
जो प्रमाण है उसे कार्माण समयप्रबद्ध द्रव्य कहते हैं । उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे  
एक भागको पृथक् रखकर बहुभागके आठ समान भाग करें । भाग दें । और एक-एक  
समान भाग आठ स्थानोंमें अलग-अलग रखें । और जो एक भाग अलग रखा है उसमें भी  
आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें । तथा एक भागको अलग रखकर शेष बहुभाग  
जिसका बहुत द्रव्य कहा है उस वेदनीय कर्मको दें । सो पूर्वोक्त आठ समान भागोंमें-से

द्वयकं कोट्दुवनेरडरिदं भागिसि समानादुदं स ७ ८ प्रत्येकमेरडेड्योळं कोट्दु शेषैकभागमनिदं  
१९९९९१२

स ७ १ आयुष्यकके कोडुबुद्धिन्तु कुडुत्तं विरलु वेदनीयं पोरगागि शेषप्रकृतिगळो तंतम्म स्थित्यनु-  
१९९९९

सारियागि द्रव्यगळायुष्यकर्मकके सर्वतः स्तोकमक्कुं । नामगोत्रगळोळधिकमागियुं तंतम्मोळु  
सरियक्कुं । मन्तरायदर्शनावरणज्ञानावरणत्रयकधिकमागियुं तम्मोळु सरियक्कुं । मोहनीयदोळु  
अधिकमक्कुं । वेदनीयदोळमधिकमक्कुमेंदु मुपेळद मूलप्रकृतिगळ पसुगेय द्रव्यगळु सिद्धमादुवु ॥ ५

अनंतरं ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिगळो पेळद पिडद्रव्यमं तंतम्मत्तरप्रकृतिगळोळु विभागिसि  
कुडुव प्रकारमं पेळदपरः—

ज्ञानदर्शनावरणांतरायेषु प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे स ७ १ पुनरावत्यसंस्थातेन भवते बहुभागः द्वाभ्यां  
१ ९ ९ ९

भक्त्वा स ७ ८ प्रत्येकं नामगोत्रयोर्देयः । शेषैकभागं स ७ १ आयुषि दद्यात् । एवं दत्ते  
१ ९ ९ ९ ९ २ १ ९ ९ ९ ९

आउगभागो थोवो इति गायोक्तक्रमः सिद्धः ॥१९५॥ अथ मूलप्रकृतीनां उक्तपिण्डद्रव्यं स्वस्योत्तरप्रकृतिषु १०  
भक्त्वा दानक्रममाह—

एक समान भागमें उस बहुभागको मिलानेसे जितना प्रमाण हो उतने परमाणु उस  
समयप्रबद्धमें-से वेदनीय कर्मरूप परिणमते हैं । अब जो एक भाग रहा उसमें भी आवलीके  
असंख्यातवें भागसे भाग दें ! और एक भागको अलग रख शेष बहुभाग मोहनीय  
कर्मको दें । इस बहुभागको भी आठ समान भागोंमें-से एक भागमें मिलानेपर जो १५  
प्रमाण हो उतने परमाणु मोहनीय कर्मरूप परिणमते हैं । अलग रखे एक भागमें भी  
आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें और एक भागको अलग रख शेष बहुभागके तीन  
समान भाग करें । और एक-एक भाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायको दें । इस  
एक-एक भागको आठ समान भागोंमें एक-एक भागमें मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-  
उतने परमाणु क्रमसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मरूप परिणमते हैं । इन २०  
तीनोंका द्रव्य परस्परमें समान होता है । अलग रखे एक भागमें भी आवलीके असंख्यातवें  
भागसे भाग दें । एक भागको अलग रख बहुभागके दो समान भाग करके एक-एक भाग  
नाम और गोत्रको दें । और उन आठ भागोंमें-से एक-एक समान भागमें इस एक-एक भाग-  
को मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु क्रमसे नाम और गोत्ररूप परिणमते हैं ।  
इन दोनोंका द्रव्य परस्पर समान होता है । एक भाग जो रहा वह आयु कर्मको दें और २५  
उन आठ समान भागोंमें-से शेष रहे एक भागमें मिला दें । जो प्रमाण हो उतने परमाणु  
आयुर्कर्मरूप परिणमते हैं । इस प्रकार जो 'आउगभागो थोवो' आदि गायामें कहा था वह  
निष्पन्न हुआ ॥१९५॥

आगे मूल प्रकृतियोंमें जो उपर पिण्डद्रव्य कहा है उसे अपनी-अपनी उत्तर प्रकृतियोंमें  
विभाजित करके देनेका क्रम कहते हैं—

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवन्ति हीनकमा ।

अहियकमा पुण नामा विग्धा य ण भंजणं सेसे ॥१९६॥

उत्तरप्रकृतिषु पुनर्मोहावरणानि भवन्ति हीनकमाः । अधिककमाः पुनर्नामानि विघ्नाश्च न भंजनं शेषे ॥

- ५ उत्तरप्रकृतिगळोळ पुनः मत्ते मोहावरणानि मोहनीयंगळुं ज्ञानावरणंगळुं दर्शनावरणंगळुं हीनकमा भवन्ति हीनक्रमंगळपुवु । पुनः मत्ते नामकर्मप्रकृतिगळु मन्तरायकर्मप्रकृतिगळुं अधिक-कमा भवन्ति अधिकक्रमंगळपुवु । शेषवेदनीयगोत्रायुष्यंगळोळु द्रव्यविभंजनमिल्लेकें दोडे तत्-प्रकृतिगळुं बंधकालदोळेकैकंगळे बंधमपुवितरंगळगे बंधमिल्लपुवुदरिदं मूलप्रकृतिगळोळु पेळद द्रव्यमनितुं विवक्षितबंधप्रकृतिगोयक्कुं । पुणपद्विवक्षितबंधंगळगमितरंगळुं बंधमिल्लपुवुदरिदं ।
- १० सातमुमुच्चैर्गोत्रं देवायुष्यं बंधमप्पागळु इतरासातं नीचैर्गोत्रं नरकतिथ्यं मनुष्यायुष्यंगळो बंधमिल्लदु कारणादिदं मूलप्रकृतिगळोळु पेळद द्रव्यमिवक्केयक्कुमा असातनीचैर्गोत्रादिगळु बंध-मप्पागळु सातादिगळो बंधमिल्लपुवुदरिदं । मूलप्रकृतिद्रव्यमनितुविवक्कक्कुमे बुदत्थं ॥

अनंतरं घातिकर्मंगळोळु सर्वघातिप्रकृतिगळुं देशघातिप्रकृतिगळुं द्रव्यविभंजनक्रमं पेळदपहः—

१५ सव्वावरणं दब्बं अणंतभागो दु मूलपयडीणं ।

सेसा अणंतभागा देसावरणे हवे दब्बं ॥१९७॥

सर्वावरणद्रव्यमनन्त भागस्तु मूलप्रकृतीनां । शेषानन्ता भागाः देशावरणे भवेत् द्रव्यं ॥

- उत्तरप्रकृतिषु पुनः मोहनीयज्ञानदर्शनावरणानि हीनक्रमाणि भवन्ति । नामान्तरायो पुनः अधिकक्रमा भवतः । शेषवेदनीयगोत्रायुस्म द्रव्यविभजनं नास्ति, तेषां एकैकस्या एव तदुत्तरप्रकृतेर्बन्धात् । तेन तन्मूल-
- २० प्रकृत्युक्तद्रव्यं सर्वमेव स्यात् इत्यर्थः ॥१९६॥ अथ घातिकर्मसु सर्वघातिदेशघातिद्रव्यविभजनक्रममाह—

- उत्तर प्रकृतियोंमें मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण ये तो हीनक्रम होते हैं अर्थात् क्रमसे घटता-घटता द्रव्य इनकी उत्तर प्रकृतियोंमें दिया जाता है । जैसे ज्ञानावरणमें मति-ज्ञानावरणसे श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है । उससे अवधि ज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है । उसे मनःपर्ययज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है । तथा नामकर्म और अन्तराय कर्मकी उत्तर
- २५ प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य दिया जाता है । जैसे अन्तराय कर्ममें दानान्तरायके द्रव्यसे लाभान्तरायका द्रव्य अधिक है । उससे भोगान्तरायका द्रव्य अधिक है । शेष वेदनीय, गोत्र आयुर्कर्ममें बँटवारा नहीं है क्योंकि इनकी एक-एक ही प्रकृति बँधती है । जैसे वेदनीय कर्मके भेदोंमें-से या तो साताका ही बन्ध होता है या असाताका ही बन्ध होता है । दोनोंका बन्ध एक समयमें नहीं होता । इसी तरह गोत्रकर्ममें-से या तो नीच-गोत्रका बन्ध होता है या उच्चगोत्रका बन्ध होता है । आयु भी एक समयमें एक ही बँधती है । अतः इन तीनों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें बँटवारा नहीं है । जिस समयमें इनकी जिस उत्तर प्रकृतिका बन्ध होता है उस समयमें मूल प्रकृतिको जो द्रव्य मिलता है वह सब उसकी उत्तर प्रकृतिका ही होता है ॥१९६॥

आगे घातिकर्मोंमें सर्वघाती और देशघाती द्रव्यका बँटवारा कहते हैं—

मूलप्रकृतीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयमेव मूलप्रकृतिगुणं तन्तन्म द्रव्यगणोक्तु  
सर्ववरणद्रव्यं सर्वघातिप्रकृतिसंबन्धिद्रव्यं अनन्तभागस्तु जिनदृष्टान्तभागहारभक्तान्तैकभाग-  
मवकुं । तु मत्ते शेषानन्ता भागाः शेषानन्तबहुभागांस्तु देशावरणे भवेत् द्रव्यं स्वस्वदेशघातिप्रकृति-  
संबन्धिद्रव्यगणोक्तु । तद्यथा — ज्ञानावरणमूलप्रकृतिद्रव्यमिदं स ० । ८ यिल्लि विशेषरूपदिनिर्द्

९ । ८  
स ० । ८  
९९९९ । ३

कैलगणावत्यसंख्यातैकभागमं तदु साधिकं माडि स ० । ८ गुणकारदोलेकरूपहोनत्त्वमनवगणि- ५  
८ । ९

सियपर्वतिसि स ० जिनदृष्टान्तभागहारदिदं भागिसि बंद लब्धमेकभागं ज्ञानावरणसर्वघाति-  
८

प्रकृतिसंबन्धिद्रव्यमवकुं स ० । १ शेषबहुभागद्रव्यं मतिज्ञानावरणादिदेशघातिप्रकृतिसंबन्धिद्रव्य  
८ । ख

मवकुं स ० । ख दर्शनावरणमूलप्रकृतिसर्वद्रव्यमनिदं स ० ननन्तदिदं भागिसिदेकभागमिदु  
८ ख ८

स ० । १ तत्सर्वघातिषट्कसंबन्धिद्रव्यमवकुं । शेषबहुभागद्रव्यं चक्षुर्दर्शनादिदेशघातित्रयसंबन्धि  
८ । ख

द्रव्यमवकुं स ० ख मोहनीयमूलप्रकृतिद्रव्यं अन्तरायदर्शनावरणज्ञानावरणघातित्रयद्रव्यमं नोडलु १०  
८ । ख

साधिकमवकुमिदं स ० अनन्तभागहारदिदं भागिसिदेकभागद्रव्यमिदु स ० । १ मिथ्यात्व-  
८ ख ८

द्वादशकषायसर्वघातिप्रकृतिसंबन्धिद्रव्यमवकुं । शेषबहुभागद्रव्यं संज्वलननोकषाय त्रयोदश देश-

घातिप्रकृतिसंबन्धिद्रव्यमवकुं स ० ख मपवर्तितमनिदं स ० संज्वलनाकषायद्रव्यविभागनिमित्त-  
८ । ख ८

ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयमूलप्रकृतीनां स्वस्वद्रव्येषु सर्वावरणद्रव्यं अनन्तैकभागो भवति । तु-पुनः शेषा  
अनन्ता भागाः देशघातिद्रव्यं भवति । यथा ज्ञानावरणस्य इदं स ० ८ अधस्तनावत्यसंख्यातैकभागे साधिकी- १५  
९ ८

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय इन मूल प्रकृतियोंके अपने-अपने द्रव्यमें अनन्त-  
का भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती द्रव्य है और शेष अनन्त बहुभाग प्रमाण  
देशघाती द्रव्य है । जैसे ज्ञानावरणके द्रव्यका जो प्रमाण पहले कहा था, उसमें जिन भगवान्-  
के द्वारा देखे गये अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती द्रव्य है शेष सर्वभाग  
प्रमाण देशघाती द्रव्य है । ऐसे ही दर्शनावरण और मोहनीयमें भी जानना ॥१९॥

२०

१. ब ° भागेन साधिकं कृत्वा ।

माध्वल्यसंख्यातद्विदं भागिसिदेकभागमुं स <sup>१</sup>०।१ शेषबहुभागद्रव्यमं। स <sup>१</sup>०।८ समनागि येरडु  
८।९ ८।९

भागं माडिदल्लि येकभागमुं। स <sup>१</sup>०।८।१ संज्वलनदेशघातिचतुष्प्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कुं  
८।९।२

स <sup>१</sup>०।८।१ शेषबहुभागार्द्धद्रव्यमकषायदेशघातिप्रकृतिनवकसंबंधिद्रव्यमक्कुं स <sup>१</sup>०।८  
८।९।२ ८।९।२

अन्तरायपंचकमुं देशघातियेषपुदरिवं मूलप्रकृतिसर्वद्रव्यमुमक्कुं स <sup>१</sup>० यो नाल्कुं घातिकम्मंगळ  
८

- ५ देशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यगळगे पेळवन्योन्याभ्यस्तराशिमे सर्वावरणघनात्थं प्रतिभागप्रमाणमेदु  
पेळदपरदेकेदोडे रूपोनान्यान्योभ्यस्तराशिदिदं ज्ञानावरणादिघातिकम्मंगळ सर्वघातिसंबंधि-  
द्रव्यदोळं देशघातिप्रकृतिगळगे भागमुंटपुदरिनदु सहितमाद देशघातिसंबंधिसर्वद्रव्यमं भागि-  
सिदोडे देशघातिज्ञानावरणचतुष्कमुं त्रिदर्शनावरणमुमन्तरायपंचकमुं संज्वलनचतुष्कनवनो-

कृते स ० ८ गुणकारस्य एकरूपहीनत्वमवगणय्य अपवर्त्य स ० जिनदृष्टानन्तभागहारेण भक्त्वा एकभागः  
१ ८ ८

- १० स ० १ तत्सर्वघातिप्रकृतिसंबन्धी भवति शेषबहुभागः तद्देशघातिसंबन्धी भवति स ० ख तथा दर्शना-  
८ ख ८ ख

ऊपर जो सर्वघाती द्रव्यका परिमाण कहा है आगे उसका बँटवारा सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियोंमें करेंगे। सो देशघाती मतिज्ञानावरणादिके द्रव्यका जो परिमाण है उसमें सर्वघाति परमाणुओंका प्रमाण लानेके लिए प्रतिभागहारका प्रमाण कहते हैं—

- १५ चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, चार संज्वलन और नौ नोकषायके द्रव्यकी नाना गुणहानि शलाका अनन्त है। और जितनी नाना गुणहानि शलाका हैं उतने दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है वह भी अनन्त संख्यावाली है।

- जैसे अंक संदृष्टिमें द्रव्य इकतीस सौ ३१००, स्थिति स्थान चालीस ४०, एक-एक गुणहानिका प्रमाण आठ ८, दो गुणहानिका प्रमाण सोलह १६, नाना गुणहानि पाँच ५।  
२० नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि  $२ \times २ \times २ \times २ \times २ = ३२$  बत्तीस। सो इसकी रचना पूर्वमें कही है वैसे ही जानना। अस्तु।

सो यहाँ जो अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण है वही सर्वघाती द्रव्यका परिमाण लानेके लिए प्रतिभाग होता है। वही कहते हैं—

- २५ मतिज्ञानावरण आदि चार प्रकृतियोंका द्रव्य केवलज्ञानावरणके भागसे हीन अपने सर्वघाती द्रव्य सहित देशघातिद्रव्यका जितना प्रमाण है उतना है। अर्थात् इन देशघाति प्रकृतियोंका देशघाती द्रव्य तो अपना है ही सर्वघाती द्रव्य भी है। वह सर्वघाती द्रव्य केवल-

कषायप्रकृतिगळ शैलभागेय चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमंतादोडे शैलभागे मोदलागि केळगे दाहबहुभागपर्यंत सर्वघातिस्वमुंष्टपुदरिनी घातिगळ देशघातिद्रव्यं दाहवर्नंतैकभागपर्यंत निक्षेपिसल्पडुगुमपुदरिनंतु शैलभागचरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमेवु ओविसिदंगुत्तरं पेळल्प-डुगुमवेतें दोडे—देशघातिप्रकृतिगळगे स्वस्वसर्वघातिप्रकृतिगळत्तिगं बंद भागेय द्रव्यं दाहबहुभागं मोदलगेडु शैलभागचरमपर्यंत निक्षेपिसल्पडुगुं । देशघातिप्रकृतिभागद्रव्यं स्वस्व-दाहवर्नंतैकभागपर्यंतमे निक्षेपिसल्पडुगुमिन्तुभयद्रव्यमं कूडि लताशक्तिमोदलागि शैलशक्तिपर्यंत निक्षेप्यमक्कुमन्तु निक्षेपमागुत्तिरलेकगोपुच्छरूपदिनिकुमेविन्तु केवलं देशघातिगळप्पन्तराय-पंचकदोळु ई रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिगे तद्द्रव्यदोळ प्रतिभागतं विरोधिसल्पडुगुमेनल्वेडेके दोडे “आवरणवैसघादंतरायसंजळणपुरिससत्तरसं । चदुविधेभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाण” मेळी सूत्रप्रमाणविदमंतरायदेशावरणगळगमुभयसर्वदेशघातिशक्तिसंभवमक्कुमपुदरिवं ।

१५

१०

देसावरणणोण्णन्मत्थं तु अणंतसंखमेत्तं सु ।

सन्धावरणधण्डं पडिभागो होदि घादीणं ॥१९८॥

|         |             |           |                                      |                                                           |
|---------|-------------|-----------|--------------------------------------|-----------------------------------------------------------|
| संघाति  | म सु अ म के | शे        | स ० २ ०<br>८ ख ख<br>स ० २ ०<br>८ ख ख | शैल चरम<br>गुणहानि द्रव्य<br>तद्वि चरमगुण-<br>हानि द्रव्य |
|         |             | अ         | स ० २ १ २<br>८ ख ख<br>० ० ० ०        | तत्त्रि चरम<br>गुणहानि                                    |
|         |             | दा १<br>ख | स ० ख ख<br>८ ख ख २ २ २               | दाह बहुभागप्रथम<br>गुणहानि द्रव्य                         |
|         |             | दा १<br>ख | स ० ख ख<br>८ ख ख २ २<br>० ० ० ०      | दाहन्तैक भाग<br>चरमगुणहानि द्रव्य                         |
| देशघाति | म सु अ म    | ल         | स ० ख ख<br>८ ख ख २                   | लता प्रथम गुण-<br>हानि द्रव्य                             |
|         |             | बं        | स ० ख ख<br>८ ख ख २                   |                                                           |

वरणमोहनीययोरपि ज्ञातव्यं ॥१९७॥ उक्तसर्वघातिद्रव्येषु तद्देशघातिप्रकृतिभागस्य वक्ष्यमाणत्वात् तत्सहित-घातिद्रव्येषु सर्वावरणधनार्थं प्रतिभागहारप्रमाणमाह—

ज्ञानावरणका जितना भाग है उससे हीन है सब नहीं है । इस तरह देशघाती और सर्वघाती १५

१. अ तत्सहितदेशघाति ।

वेशावरणान्योन्याभ्यस्तस्त्वनन्तसंख्यामात्रः खलु । सर्वेश्वरवर्णनार्थं प्रतिभागो भवति घातीनां ॥

देशघातिप्रकृतिसंबन्धिद्रव्यनानागुणहानिशलाकेगलनंतप्रमितंगलपुर्वरिदं तावन्मात्रद्विकव-  
गितसंवर्गसंजनितमपुर्वरिदमन्योन्याभ्यस्तराशिनानागुणहानिशलाकाराशियं नोडलुमनंतानंतगुण-  
५ मपुर्वरिदं । तु मत्तमनंतसंख्यावच्छिन्नमवकुमदु सर्वघातिशक्तियुक्तघातिकर्मगल तत्सर्वघाति-  
संबन्धिद्रव्यगुणसंकलितधनप्रमाणावधारणार्थमागि प्रतिभागमवकुमद्वैतैवोडे घातिकर्मगलोडु

चतुर्जानावरणत्रिदर्शनावरणपञ्चांतरायचतुःसंज्वलननवनोकषायद्रव्याणां नानागुणहानिशलाकाः अनन्ता इति तन्मात्रद्विकसंवर्गजनितोऽन्योन्याभ्यस्तराशिरपि अनन्तसंख्यो भवति । स खलु तेषां सर्वघातिद्रव्यस्य गुणसंकलितधनप्रमाणावधारणार्थं प्रतिभागो भवति । तद्यथा—

१० द्रव्य मिलकर मतिज्ञानावरणादिका द्रव्य होता है ।

शंका—देशघाति प्रकृतियोंमें सर्वघाती परमाणु कैसे कहे हैं ?

समाधान—पूर्वमें कहा है कि मतिज्ञानावरणादिका अनुभाग शैल, अस्थि, दारु और लतारूपसे चार प्रकार है । उनमें-से दारुका अनन्तवाँ भाग और लताभाग तो देशघाती है । ऐसे अनुभागवाले परमाणु देशघाती होते हैं । तथा शैल, अस्थि और दारुका बहुभाग १५ सर्वघाती है । ऐसे अनुभागवाले परमाणु सर्वघाती हैं । सर्वघातीके उदयमें किंचित् भी आत्मगुण प्रकट नहीं होता । जैसे एकेन्द्रियादिके चक्षुदर्शनके सर्वघाती परमाणुका उदय होनेसे चक्षुदर्शन नहीं होता । किन्तु देशघातीके उदयमें आत्मगुण प्रकट होता है जैसे चौइन्द्रिय आदि जीवोंके चक्षुदर्शनके देशघाती परमाणुओंका उदय है फिर भी चक्षुदर्शन होता है । इस प्रकार देशघाति प्रकृतियोंमें सर्वघाती और देशघाती द्रव्य होता है । अस्तु,

२० मतिज्ञानावरणादि चारका वह द्रव्य केवलज्ञानके बिना अपने सर्वघाति द्रव्यसहित देशघातिद्रव्य प्रमाण है सो कुछ अधिक समय प्रवद्धके आठवें भाग है । उसमें एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका परिमाण होता है । पश्चात् नीचेकी ओर एक-एक गुणहानिमें दूना-दूना द्रव्य होते-होते दारु भागके अनन्त भागोंमें-से एक भाग बिना शेष बहुभाग सम्बन्धी द्रव्य उनकी प्रथम गुणहानिमें २५ शैलभागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको यथायोग्य आधे अनन्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना । क्योंकि यहाँ तक जितनी गुणहानि हुई वही गच्छ है । सो एक कम गच्छमात्र दोके अंकोको गुणा करनेपर सर्वघाती सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि अनन्त प्रमाण होती है । उसका जो आधा है वही यहाँ गुणकार है । इन सब गुणहानियोंके द्रव्यको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु सर्वघाती सम्बन्धी जानने । इसीसे सर्वघाती द्रव्य ३० लानेके लिए अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रतिभाग कहा है । आगे देशघातीका द्रव्य कहते हैं—

दारुभागके बहुभागकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यसे नीचे दारु भागके अनन्त भागोंमें-से एक भागकी अन्तिम गुणहानिका द्रव्य दूना है । तथा नीचे प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता हुआ लताभागकी प्रथम गुणहानिमें एक कम सर्व नाना गुणहानिका जितना प्रमाण है उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अन्योन्याभ्यस्त राशिका ३५ है । उसके आधे प्रमाणसे शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर जो प्रमाण

सर्व्वधातिकेवलज्ञानावरणादि प्रकृतिगळ संबंधिद्रव्यमिदरोळु स ०।१ केवलज्ञानावरण भागम-  
८।ख

निदं स ०।८ कळदुळिद सर्व्वधातिद्रव्यमनितुं स ०।५ मतिज्ञानावरणादि देशधातिचतुष्क-  
८।ख।५

संबंधि सर्व्वधातिशक्तियुक्तद्रव्यमवकुमोयनंतैकभाग द्रव्यमं स ० तंतम्म भागमं हीनक्रमदो-  
८।ख।५

ळिदुंयं तंतम्म हीनक्रमदिदमिदं शेषधातिसंबंधिद्रव्यदोळकूडिदोडे मतिज्ञानावरणाद्विशेषधातिद्रव्यं  
प्रत्येकं समयप्रबद्धानंतैकभागाधिकसमयप्रबद्धाष्टमभागद्रव्यमवकु स ०।१ मिदं मुंपेळ्वनंतप्रमाणा- ५  
८

वळिछन्नान्योन्याभ्यस्तराशियोळेरूपं होतं माडि भागिसिबोडेक भागमिदु स ०।१ मतिज्ञान-  
८।ख।ख

वरणादिदेशधातिगळ सर्व्वधातिशक्तियुक्तसर्व्वोत्कृष्टशैलभागचरमगुणहानिद्रव्यमवकुमिदु मोडेलो-  
डु कलगे केळगे गुणहानि प्रति गुणहानि प्रति द्विगुण द्विगुणक्रमविदं वंदु दारु बहुभाग प्रथमगुण-  
हानियोळु तद्योग्यानन्ताद्धगुणितचरमगुणहानिप्रमितद्रव्यमवकु स ०।१ ख मेकंदोडे रूपोनगच्छ-  
८।ख।२

मात्रानन्तद्विक संवर्गसंजनितराशियपुर्व्वरिदमत्ति सर्व्वधातिसंबंधि द्रव्यं तीदुंयंदु कारणविदमो १०

मतिज्ञानावरणादीनां चतुर्णां देशधातिद्रव्यं केवलज्ञानावरणभाग स ०।८।१ न्यूनस्वकीयसर्व्वधातिद्रव्य  
८।ख।५

स ०।८।५ युतं तत्साधिकसमयप्रबद्धाष्टभागमात्रं ० रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भवतं स ०  
८।ख।५ ८ ख ख

शैलभागचरमगुणहानिद्रव्यं भवति । ततोऽधः गुणहानि गुणहानि प्रति द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा दारुबहुभाग-  
प्रथमगुणहानौ तत्तद्योग्यानन्ताद्धगुणिते भवति स ०।१ ख रूपोनगच्छमात्रानन्तद्विकानां तद्गुणकारत्वात् । अत्र  
८।ख।२

हो उतना द्रव्य जानना । इन गुणहानियोको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु देशधाती १५  
सम्बन्धी जानने ।

जैसे अंकसंदृष्टिसे सर्व्वद्रव्य इकतीस सौ ३१०० । इसको एक कम अन्योन्याभ्यस्त  
राशि इकतीससे भाग देनेपर सौ आये । यही शैलभागकी अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना ।  
पश्चात् प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता है । यथा २००, ४००, ८०० । एक कम



सर्वावरणगुणसंकलितधनप्रमाणावधारणात्थंमन्योन्याभ्यस्तराशिघातिगच्छो  
मेतेदोडे :—

प्रतिभागमवकु-

“रूऊणणोणवभत्यवहिदवव्वं तु चरिमगुणवव्वं ।

होवि तवो वुगुणकमं आविमगुणहानि वव्वोत्ति ॥”

५ येदी गुणसंकलितधनं तरत्तपडुगुमप्युदरिवं आ दाव बहुभागप्रथमगुणहानिसर्वघातिजघन्य-  
शक्तियुक्तगुणहानिप्रथमवर्गगणानन्तराधस्तनदाव्वनंतैकभागदेशघातिसर्वोत्कृष्टचरमगुणहानिद्रव्यमा  
जघन्यशक्तियुक्तसर्वावरणगुणहानिद्रव्यमं नोडलु द्विगुणितमवकु स ० ख १ २ मो कर्मवि-

८ ख ख १ २

केळो केळो द्विगुणद्विगुणगळागुत्तं योगि लताभागसर्वजघन्यशक्तियुक्तप्रथमगुणहानियोळ रूपो-  
नसर्वनानागुणहानिशलाकाराशिमाम्रद्विकंगळु वर्गितसंघर्गगळावोडे अन्योन्याभ्यस्तराश्यद्वंमवकु-  
१० मवरिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं देशघातिसर्वजघन्यशक्तियुक्तप्रथमगुणहानिद्रव्यमवकुं

स ख ख ख इल्लि द्रव्यस्थिति गुणहानि वोगुणहानि नानागुणहानियन्योन्याभ्यस्तराशिगच्छांक-  
८ ख ख १ २

संदृष्टियुमत्थंसंदृष्टियुमिदु—

| द्र  | स्थि  | गु  | वो    | ना | अन्योन्या |
|------|-------|-----|-------|----|-----------|
| १३०० | ४०    | ८   | १६    | ५  | ३२        |
| १    |       |     |       |    |           |
| स ०  | ख ख ख | ख ख | ख ख ख | ख  | ख ख       |
| ८    |       |     |       |    |           |

सर्वघातिद्रव्यं समाप्तं तत एवान्योन्याभ्यस्तराशिः सर्वावरणघनार्थं प्रतिभाग इत्युक्तं तत् दावबहुभागप्रथम-  
गुणहानिद्रव्यादधस्तनदाव्वनंतैकभागचरमगुणहानिद्रव्यं द्विगुणं भवति स ० ख २ तदधः द्विगुणद्विगुणक्रमेण

८ ख ख २

१५ गत्वा लताभागप्रथमगुणहानो द्रव्यं रूपोनसर्वनानागुणहानिमात्रद्विकसंघर्गसंजातान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणित-  
चरमगुणहानिद्रव्यमात्रं भवति स ० ख १ एवं त्रिदर्शनावरणादिद्रव्याणामपि ज्ञातव्यं । अत्र द्रव्य-स्थिति-

८ ख ख २

नाना गुणहानि चार है । सो उतने दोके अंक रखकर २×२×२×२ परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए । वही अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीसका आधा प्रमाण है । उससे शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्य सौको गुणा करनेपर सोलह सौ हुए । यही लताभागकी

अनंतरं मुपेन्द्र सर्वघातिदेशघातिद्रव्यंगणो विशेषविभजनक्रमं पेन्द्रपरः—

सर्ववावरणं द्रव्यं विभज्जणिज्जं तु उभयपयडीसु ।

देसावरणं द्रव्यं देसावरणेषु जेविदरे ॥१९९॥

सर्ववावरणद्रव्यं विभजनीयमुभयप्रकृतिषु । देशावरणद्रव्यं देशावरणेषु नैवेतरस्मिन् ॥

गुणहानि—दोगुणहानि—नानागुणहानि—अन्योन्याभ्यस्तराशीनामंकसंदृष्ट्यर्थं संदृष्टिः—

| द्र      | स्थि  | गु  | दो    | ना | अन्योन्या |
|----------|-------|-----|-------|----|-----------|
| ३१००     | ४०    | ८   | १६    | ५  | ३२        |
| स ०<br>८ | ख ख ख | ख ख | ख ख २ | ख  | ख ख       |

॥१९८॥ अथ प्रागुक्तसर्वघातिदेशघातिद्रव्ययोर्विशेषविभजनक्रममाह—

प्रथमं गुणहानिका द्रव्यं जानना । इसी प्रकार दर्शनावरण आदिके द्रव्योंमें भी सर्वघाती और देशघाती द्रव्यका प्रमाण जानना ॥१९८॥

आगे सर्वघाती और देशघाती द्रव्यके विशेष विभागका क्रम कहते हैं—

| १. | म | श्रु | अ | म | के | शं     | स ०         |
|----|---|------|---|---|----|--------|-------------|
|    |   |      |   |   |    |        | ८ ख ख       |
|    |   |      |   |   |    | अ      | स ० २ १ २   |
|    |   |      |   |   |    |        | ८ ख ख       |
|    |   |      |   |   |    | दा ख ख | ०           |
|    |   |      |   |   |    |        | स ० ख       |
|    |   |      |   |   |    |        | ८ ख ख २     |
|    |   |      |   |   |    | दा ख   | स ० ख २     |
|    |   |      |   |   |    |        | ८ ख ख       |
|    |   |      |   |   |    | ल      | स ० ख २ १ २ |
|    |   |      |   |   |    |        | ८ ख ख २     |
|    |   |      |   |   |    |        | ०           |
|    |   |      |   |   |    |        | स ० ख ख     |
|    |   |      |   |   |    |        | ८ ख ख २     |

मूलप्रकृतिघातिकर्मगळ स्वस्वसमस्तद्रव्यगळोळनन्तैकभागमन्तैकभागंगळु सर्वघाति-  
प्रकृतिसंवंधिद्रव्यगळपुवु :—

|            |            |         |         |                                 |
|------------|------------|---------|---------|---------------------------------|
| णा स ० । १ | दं स ० । १ | मोह     | अन्तरा  | बहुभागंगळु देशघातिप्रकृतिप्रति- |
| ८ । ख      | ८ । ख      | स ० । १ | स ० । १ |                                 |
|            |            | ८ । ख   | ८       |                                 |

|               |            |            |            |            |
|---------------|------------|------------|------------|------------|
| बहुद्रव्यगळपु | णा स ० । ख | दं स ० । ख | मो स ० । ख | अन्त स ० । |
|               | ८ । ख      | ८ । ख      | ८ । ख      | ८          |

वेदितु मुन्नं पेळल्पट्टुवलि सर्वविरणद्रव्यं सर्वघातिगळोळं देशघातिगळोळं हीनक्रमविदं  
५ विभागिसि कुडल्पडुगुं । देशावरणद्रव्यं देशावरणगळोळे विभागिसि कुडल्पडुवुदितरसर्वघातिगळोळु  
विभागिसि कुडल्पडु ॥

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळोळु द्रव्यविभंजनक्रमं पेळवपरु :—

बहुभागे समभागो बंधाणं होदि एकभागमिह ।

उत्तक्रमो तत्थवि बहुभागे बहुगस्स देओ दु ॥२००॥

१० बहुभागे समभागो बंधानां भवति एकभागे । उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागे बहुकस्य  
देयस्तु ॥

बंधानां बंधकालदोळु युगपदबंधगैलागुत्तं विदुत्तरप्रकृतिगळगे बहुभागे आवल्यसंख्यातैक-  
भागमात्रप्रतिभागविदं भागिसल्पट्टुस्वस्वद्रव्यबहुभागदोळु समभागः समनानि भागं कुडल्पडुगुं ।

घातिकर्मणां स्वस्वसमस्तद्रव्यस्यानन्तैकभागः सर्वघातिद्रव्याणि बहुभागे देशघातिद्रव्याणि इति  
१५ प्रागुक्तानि । तत्र सर्वविरणद्रव्यं सर्वघातिषु देशघातिषु च हीनक्रमेण भक्त्वा देयं देशावरणद्रव्यं तु देशावरणेष्वेव  
न सर्वघातिषु ॥१९९॥ अथोत्तरप्रकृतिषु आह—

सहसंभवद्वन्धोत्तरप्रकृतीनां आवल्यसंख्यातैकभागभक्तस्वस्वद्रव्यस्य बहुभागे समभागो देयः । एकभागे

घातिकर्मोंके अपने-अपने द्रव्यमें अनन्तका भाग देवें । एक भाग प्रमाण तो सर्वघाति  
द्रव्य है और बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है । यह पहले कहा है । उसमें-से सर्वघाति द्रव्य  
२० तो सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियोंमें हीनक्रमसे विभाग करके देना चाहिए । किन्तु  
देशघाती द्रव्य देशघाति प्रकृतियोंमें ही देना चाहिए, सर्वघाति प्रकृतियोंमें नहीं देना  
चाहिए ॥१९९॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें विभाग कहते हैं—

अपने-अपने पिण्डरूप द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग एक  
२५ साथ बँधनेवाली उत्तर प्रकृतियोंको बराबर-बराबर समभाग करके देना चाहिए । शेष एक

१. म बद्धानां २. बद्धानां ३. मं द्वद्वंग । °

एकभागे शेषैकभागवोळु उक्तक्रमः मुन्नं पेळत्पट्ट मोहावरणंगळोळु हीनक्रममुं नामान्तरायंगळोळ-  
धिकक्रममक्कुं । तत्रापि अल्लियुं बहुभागः प्रतिभागभक्तबहुभागं तु मत्ते बहुकस्य देयः पिरिवक्के  
देयमक्कुमदेंतेंदोडे पेळदपरु :—

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु ।

उत्तक्रमेण य देयं विवरीयं णामविग्घाणं ॥२०१॥

घातित्रयाणां स्वस्वसर्वावरणीय सर्वद्रव्यं तु । उक्तक्रमेण देयं विपरीतं नामविघ्नानां ॥

घातित्रयाणां ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीयमेंव घातित्रयंगळ स्वस्वसर्वावरणीयसर्वद्रव्यं  
तंतम्म सर्वघातिप्रकृतिगळ सर्वद्रव्यं उक्तक्रमेण देयं । मुपेळ्ळ क्रमदिदं सर्वघातिगळं देशघाति-  
गळं हीनक्रमदिदं देयमक्कुं । नामविघ्नानां नामकस्मांतरायकर्मगळ सर्वद्रव्यं विपरीतं हीन-  
क्रमक्कधिकक्रममप्य विपरीतविभंजनमक्कुमदेंतेंदोडे ज्ञानावरणीयसर्वद्रव्यमपवर्तितमनिदं स ० १०

जिनदृष्टान्तप्रतिभागदिदं विभक्तानंतैकभागं सर्वघातिप्रकृतिप्रतिबद्धसर्वघातिशक्तियुक्तद्रव्य-  
मक्कु स ० ११ मिदनुक्तक्रमदिदं सर्वघातिगळोळं देशघातिगळोळं विभागिसि कुडुवल्लि प्रति-  
८ । ख

भागमावत्यसंख्यातैकभागमात्रमक्कु । ९ । भदरिदं भागिसि बहुभागं स ० ८ बहुभागे समभागः  
८ । ख । ९ ।

येदु ज्ञानावरणप्रकृतिपंचकक्कं समं माडल्लेडियदरिदं भागिसि प्रत्येकमिनितितितं स ० ८  
८ । ख । ९ । ५

मोहावरणानि हीनक्रमाणि नामान्तरायी अधिकक्रमो इत्युक्तक्रमः कार्यः । तत्र बहुभागः तु-पुनः बहुकस्य १५  
देयः ॥२००॥ तद्यथा—

ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयानां स्वस्वसर्वाघातिद्रव्यमुक्तक्रमेण देयं, नामविघ्नप्रकृतीनां च विपरीतम् ।  
तद्यथा—

ज्ञानावरणीयसर्वद्रव्यमिदं स ० जिनदृष्टान्तेन भक्तवैकभागः सर्वघातिद्रव्यं स ० इदमावत्यसंख्या-  
८ ख

भागमें-से मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरणकी प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता-घटता देना और २०  
नामकर्म तथा अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक देना । जिसका बहुत द्रव्य  
कहा हो उसे बहुभाग देना चाहिए ॥२००॥

वही कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीयका अपना-अपना सर्वघाती द्रव्य उक्त क्रमसे २५  
देना चाहिए और नाम तथा अन्तरायका द्रव्य उनकी उत्तर प्रकृतियोंमें विपरीत क्रमसे देना  
चाहिए । वही कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मका सर्वद्रव्य जो पूर्वमें कहा है उसे जिनदेवके द्वारा देखे गये यथा-  
योग्य अनन्तका भाग दें । एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है । इस सर्वघाती द्रव्यका

कोटदु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ८ पूर्वोक्तक्रमविदं देयमण्पुर्वारिबनिलि  
८।ख।९९

मत्यागवरणदोळु बहुकमण्पुर्वारिदं बहुभागं कोटदु शेषैकभागदोळु मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागं

स ० ८ श्रुतावरणके कोटदु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ८  
८।ख।९९९ ८।ख।९९९९

अवधिज्ञानावरणके कोटदु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ८ मनःपर्यया-  
८।ख।९९९९९

५ वरणके कोटदु शेषैकभागं केवलज्ञानावरणके कोडुउदु स ० १ मत्तं देशघातिप्रति-  
८।ख।९९९९९

बद्धान्तबहुभागं स ० ८ ख पूर्वोक्तक्रमविदं प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ८ ख ८  
८।ख ८।ख।९

तेन भवत्वा बहुभागः स ० ८ ज्ञानावरणपञ्चकस्य पञ्चभिर्भक्त्या प्रत्येकं स ० ८ देयः । शेषैकभागे  
८ ख ९ ८ ख ९।५

प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ मत्यावरणस्य देयः । शेषैकभागे पुनः प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८  
८ ख ९।९ ८ ख ९९९

श्रुतावरणस्य देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ अवधिज्ञानावरणस्य देयः । शेषैक-  
८ ख ९९९९

१० भागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ मनःपर्ययज्ञानावरणस्य देयः । शेषैकभागं केवलज्ञानावरणस्य  
८ ख ९९९९९

स ० १ दद्यात् ।  
८ ख ९९९९९

विभाग करते हैं—इस सर्वघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें । एक भाग बिना बहुभागके पाँच समान भाग करके पाँचों प्रकृतियोंमें दें । जो एक भाग रहा उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें, और एक भागको अलग रख बहुभाग मतिज्ञानावरणको दें । उस एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाग दें ।

१५ और बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको दें । शेष एक भागमें भी प्रतिभागका भाग दें और बहुभाग अवधिज्ञानावरणको दें । शेष एक भागमें भी प्रतिभागका भाग दें और बहुभाग मनःपर्ययज्ञानावरणको दें । शेष एक भाग केवल ज्ञानावरणको दें । इस प्रकार जो पूर्वमें समान भाग कहे थे उनमें अपने-अपने पीछेके एक-एक भागको जोड़नेसे अतिज्ञानावरण आदिका सर्वघाती द्रव्य होता है । तथा ज्ञानावरणके द्रव्यके अनन्त भागोंमेंसे एक भागके बिना शेष  
२० बहुभाग देशघाती द्रव्य है । उसको उसी आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाग

मत्यावरणादिचतुष्टयकं बहुभागे समभागः एतु चतुर्भागं स ० ख ८ प्रत्येकं नात्केड्योळं  
८ ख १९१४

कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ख ८ बहुकक्के देयमेतु मत्यावरणकके  
८ ख १९१९

कोट्टु शेषैकभागदोळं प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ख ८ श्रुतावरणकके कोट्टु  
८ ख १९१९१९

शेषैकभागदोळं प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ख ८ अधिज्ञानावरणकके कोट्टु शेषैक-  
८ ख १९१९९

भागं स ० ख १ मनःपर्यावरणकके कुडुवुदी प्रकारदिवं दर्शनावरणद्रव्यं सर्वघाति- ५  
८ ख १९१९९

देशघातिविभागनिमित्तमागियनन्तदिवं भागिसि देकभागं स ० ख १ प्रतिभागभक्तबहुभागं  
८ ख

पुनर्देशघातिप्रतिबद्धानन्तबहुभागे स ० ख पूर्वोक्तक्रमेण प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ख ८  
८ ख ९

चतुर्भिर्भक्त्वा स ० ख ८ मत्यावरणादिचतुष्टयस्य प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः  
८ ख ९१४

स ० ख ८ मत्यावरणस्य देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ख ८ श्रुता-  
८ ख ९१९

वरणस्य देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ख ८ अधिज्ञानावरणस्य देयः । शेषैकभागं १०  
८ ख ९१९९

स ० ख १ मनःपर्यायज्ञानावरणस्य दद्यात् । एवं दर्शनावरणद्रव्यमपि सर्वघातिदेशघातिविभाग-  
८ ख ९१९९

देवें । और एक भागको अलग रख बहुभागके चार समान भाग करके एक-एक भाग मतिज्ञानावरण आदि चार प्रकृतियोंको देना चाहिए । शेष एक भागमें भी प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको देवें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अधिज्ञानावरणको दें । शेष एक भाग मनःपर्यायज्ञानावरणको दें । इन एक-एक भागोंको १५ पहले मिले अपने-अपने समान भागोंमें मिलानेसे मतिज्ञानावरण आदिके देशघाती द्रव्यका परिमाण होता है । अपना-अपना देशघाती तथा सर्वघाती द्रव्य मिलानेपर ज्ञानावरणकी उत्तर प्रकृतियोंके सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है ।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके सर्वद्रव्यके परिमाणमें अनन्तका भाग दें । एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है । उस सर्वघाती द्रव्यमें प्रतिभागसे भाग दें । एक भागको अलग २०

स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चक्षुर्दृशनावधिदर्शन केवलदर्शनावरणनवकंगळोळु

समनागि माडल्वेडि नवमभागम स ० १ ८ नो भत्तेडेयोळिरिसि शेषैकभागम ज्ञानावरणपंचकके  
८ १ ख १९।९

पेळवंते प्रतिभागभक्त एकैकभागंगळ बहुभागंगळहीनक्रमविदं कोट्टु चरमबोळु द्विचरमशोशैकभागबोळु  
प्रतिभागभक्तबहुभागम अवधिदर्शनावरणकके कोट्टु शेषैकभागम केवलदर्शनावरणकके कुडुवुडु ।

५ तद्देशघाति प्रतिबद्धानन्तबहुभागद्रव्यमं स ० ख प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ख १ ८ समनागि  
८ १ ख ८ १ ख १९

चक्षुर्दृशनाचक्षुर्दृशनावधिदर्शनत्रयकके सरिमाडि त्रिभागमं स ० ख ८ प्रत्येकमित्तु शेषैक-  
८ १ ख १९।३

भागबोळु प्रतिभागभक्तबहुभागंगळं चक्षुरचक्षुर्दृशनंगळिगतु शेषैकभागमनवधिदर्शनावरणकके

कुडुवुडु । अन्तरायपंचकमुं देशघातियप्पुरिवं तत्सर्वद्रव्यमं स ० प्रतिभागभक्तबहुभागमं सममं  
८

माडि पंचमभागमं प्रत्येकं कुडुवुडु । शेषैकभागबोळु प्रतिभागभक्तबहुभागंगळनधिकक्रमविदं कोट्टु

१० निमित्तं अनन्तेन भक्त्वा एकभागस्य स ० प्रतिभागभक्तबहुभागो नवभिर्भक्त्वा स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्रा-  
८ ख

प्रचलाप्रचलानिद्राप्रचलाचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानां प्रत्येकं देयः स ० ८ शेषैकभागः ज्ञानावरण-  
८ ख १९।९

पञ्चकवत्प्रतिभागभक्तबहुभागबहुभागान् हीनक्रमेण दत्त्वा चरमे शेषैकभागं दद्यात् । तद्देशघातिप्रतिबद्धानन्त-

बहुभागस्य स ० ख प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ख ८ त्रिभिर्भक्त्वा स ० ख ८ चक्षुर-  
८ ख ८ ख ९ ८ ख १९।३

चक्षुरवधिदर्शनावरणानां प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं चक्षुरचक्षुर्दृशनावरणयोः

- १५ रख शेष बहुभागके नौ समान करके नौ प्रकृतियोंमें दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग स्त्यानगृद्धिको देवें । शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग निद्रा-निद्राको देवें । इसी तरह एक भागमें प्रतिभागका भाग दे-देकर बहुभाग क्रमसे प्रचला-प्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरणको क्रमसे हीन-हीन देना । शेष रहा एक भाग केवलदर्शनावरणको देना । पहले कहे समान
- २० भागमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेपर स्त्यानगृद्धि आदिका सर्वघाती द्रव्यका प्रमाण होता है । तथा दर्शनावरण द्रव्यके अनन्त भागोंमें-से एक भाग बिना बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है । उसमें प्रतिभागका भाग दें । एक भागको अलग रख बहुभागके तीन समान भाग करें । और चक्षु, अचक्षु तथा अवधिदर्शनावरणको एक-एक समान भाग दें । शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग चक्षुर्दर्शनावरणका देवें ।
- २५ शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अचक्षु दर्शनावरणको दें । शेष एक भाग

चरमशेषैकभागं दानांतरायबोळु कुडुवुवन्तु कुडुत्तिरलधिकक्रमंगळपुविवक्के कर्मदिदं संदृष्टि-  
रचनेयिदु :-

| मदिणाण           | मुदणाण           | ओहिणाण           | मणपज्जवणाण        | केवळणाण           | दे। मदिणाण         | दे। मुदणाण         |
|------------------|------------------|------------------|-------------------|-------------------|--------------------|--------------------|
| स ० ८<br>८ ख १।५ | स ० ८<br>८ ख १।५ | स ० ८<br>८ ख १।५ | स ० ८<br>८ ख १।५  | स ० ८<br>८ ख १।५  | स ० ख ८<br>८ ख १।४ | स ० ख ८<br>८ ख १।४ |
| स ० ८<br>८ ख १९  | स ० ८<br>८ ख १९९ | स ० ८<br>८ ख १९९ | स ० ८<br>८ ख १९९९ | स ० १<br>८ ख १९९९ | स ० ख ८<br>८ ख १९  | स ० ख ८<br>८ ख १९९ |

→ ५

| दे। ओहिणाण          | दे। मणपज्जवणाण      | थीणगित्थि       | णिहाणिहा         | पयळापयळा          | णिहा              |
|---------------------|---------------------|-----------------|------------------|-------------------|-------------------|
| स ० ख ८<br>८ ख १।१४ | स ० ख ८<br>८ ख १।४  | स ० ८<br>८ ख १  | स ० ८<br>८ ख १   | स ० ८<br>८ ख १    | स ० ८<br>८ ख १    |
| स ० ख ८<br>८ ख १९९९ | स ० ख १<br>८ ख १९९९ | स ० ८<br>८ ख १९ | स ० ८<br>८ ख १९९ | स ० ८<br>८ ख १९९९ | स ० ८<br>८ ख १९९९ |

→ १०

| पयळा                | चक्खु            | अचक्खु           | ओहिंव            | केवळदं           | चक्खुवंदे          | अचक्खुवंदे         |
|---------------------|------------------|------------------|------------------|------------------|--------------------|--------------------|
| स ० ८<br>८ ख १      | स ० ८<br>८ ख १   | स ० ८<br>८ ख १   | स ० ८<br>८ ख १   | स ० ८<br>८ ख १   | स ० ख ८<br>८ ख १।३ | स ० ख ८<br>८ ख १।३ |
| स ० ८<br>८ ख १९९९९९ | स ० ८<br>८ ख १।७ | स ० ८<br>८ ख १।८ | स ० ८<br>८ ख १।९ | स ० १<br>८ ख १।९ | स ० ख ८<br>८ ख १।९ | स ० ख ८<br>८ ख १९९ |

→ १९

| अवधिदं दे          | विरिदे           | उप दे            | भोग दे           | लाभ दे            | दान दे            |
|--------------------|------------------|------------------|------------------|-------------------|-------------------|
| स ० ख ८<br>८ ख १।३ | स ० ८<br>८ ख १।९ | स ० ८<br>८ ख १।९ | स ० ८<br>८ ख १।९ | स ० ८<br>८ ख १।९  | स ० ८<br>८ ख १।९  |
| स ० ख १<br>८ ख १९९ | स ० ८<br>८ ख १   | स ० ८<br>८ ख १   | स ० ८<br>८ ख १९९ | स ० ८<br>८ ख १९९९ | स ० १<br>८ ख १९९९ |

→ २०

दत्त्वा शेषैकभागं अवधिदर्शनावरणस्य दद्यात् । अन्तरायपञ्चकस्य स ० प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यं पञ्चभि-

अवधिदर्शनावरणको दे । पहले समान भागमें अपना-अपना एक भाग मिलानेपर चक्षु-  
दर्शनावरण आदिका अपना-अपना देशघाती द्रव्य होता है । चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शना-  
वरणके अपने-अपने सर्वघाती और देशघाती द्रव्योंको मिलानेपर उनके सर्वद्रव्यका प्रमाण  
होता है । शेष छह प्रकृतियोंमें सर्वघाती ही द्रव्य होता है ।

अन्तराय कर्मके सर्वद्रव्यमें प्रतिभागका भाग दें । एक भागको अलग रख बहुभागके  
पाँच समान भाग करके एक-एक प्रकृतिको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर



अनंतरं मोहनीयदोषो द्रव्यविभंजनकके विशेषमुंटे दु पेळदपरः—

मोहे मिच्छत्तादी सत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं ।

संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ॥२०२॥

५ मोहे मिथ्यात्वादीनां सप्तदशानां तु दीयते हीनं । संज्वलनानां भागे इव भवति पंच नोकषायाणां ॥

मिथ्यात्वादीनां सप्तदशानां मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धिलोभमायाक्रोधमानं संज्वलनलोभ-  
मायाक्रोधमानं, प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानमप्रत्याख्यानलोभमाया क्रोधमानमैबी सप्तदशप्रकृति-  
गळोळ हीनं दीयते हीनक्रमविदं कुडत्पडुगुं । संज्वलनानां भागे इव भवति पंच नोकषायाणां

संज्वलनंगळ भागेयोळेंतु वक्ष्यमाणदेयक्रममंते वेदत्रयरत्यरति । हास्यशोक । भय जुगुप्स्युर्मेव  
१० पंचप्रकृतिस्थानंकंगळोळ देयक्रममवकुमवैते दोडे पेळदपरः—

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं ।

इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ॥२०३॥

संज्वलनभागबहुभागाद्धमकषायसंगतं द्रव्यं । एकभागसहितबहुभागाद्धं संज्वलनप्रतिबद्धं ॥

भक्त्वा प्रत्येकं देयम् । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं अधिकक्रमेण दत्त्वा शेषैकभागं दानान्तराये  
१५ दद्यात् । एवं दत्ते सति अधिकक्रमा भवन्ति ॥२०१॥

अथ मोहनीयस्य विशेषमाह—

मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिसंज्वलनप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानानां सप्तदशानां हीनक्रमेण  
दीयते । संज्वलनानां भागे इव वेदत्रयरत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्सानां देयक्रमो भवति ॥२०२॥ तथा—

बहुभाग वीर्यान्तरायको दे । शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग उपभोगान्त-  
२० रायको दे । इसी प्रकार एक भागमें प्रतिभाग दे-देकर बहुभाग भोगान्तरायको फिर  
लाभान्तरायको दे । शेष एक भाग दानान्तरायको देना । पहले पाँच समान भागोंमें पीछेसे  
दिये एक-एक भागको मिलानेपर अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण होता है । अन्तरायकर्म देशघाती  
है इससे इसमें सर्वघातीका बाँटवारा नहीं है । तथा सर्वत्र प्रतिभागका प्रमाण आवलीका  
असंख्यातवाँ भाग है ॥२०१॥

२५ मोहनीय कर्ममें कुछ विशेष है उसे कहते हैं—

मोहनीय कर्ममें मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी लोभ, माया, क्रोध, मान, संज्वलन, लोभ,  
माया, क्रोध मान, प्रत्याख्यानानावरण लोभ, माया, क्रोधमान, अप्रत्याख्यानानावरण लोभ, माया,  
क्रोधमान, इन सत्तरह प्रकृतियोंमें क्रमसे हीन द्रव्य देना । पाँच नोकषायोंका भाग संज्वलनके  
भागके बराबर होता है । नोकषाय नौ हैं किन्तु एक समयमें उनमें-से पाँच ही बाँधती हैं ।  
३० तीन वेदोंमें-से एक समयमें एक ही वेद बाँधता है । रति-अरतिमें-से भी एक समयमें एक ही  
बाँधती है । हास्य और शोकमें-से एक समयमें एकका ही बन्ध होता है । भय और जुगुप्सा  
दोनों बाँधती हैं । इस तरह एक साथ पाँच ही बाँधती हैं ॥२०२॥

इल्लि मोहनीयसर्वद्रव्यमिदु स ० इदं सर्वघातिदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यनिमित्तमागि वोत-  
८

रागसर्वज्ञदृष्टान्तप्रतिभागदिवं भागिसि बंद लब्धमेकभागमिदु । स ० १ सर्वघातिप्रतिबद्ध-  
८ ख

द्रव्यमक्कुं । शेषबहुभागद्रव्यं देशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कु स ० ख मिलिळि गुणकारभूतानन्तदोळेक-  
८ ख

रूपहीनतेयनवगणिसि भाज्य भागहार भूतानन्तगठनपवर्तिसि कळेदुळिदुदनिदं स ० समयप्रब-  
८

द्धाष्टमभागप्रमितमनावल्यसंख्यातेकभागमात्र प्रतिभागदिवं भागिसि बहुभागमनिदं स ० ८  
८ ख

संज्वलनकषायंगळगमकषायंगळगं पसल्लेडि द्विरूपदि भागिसिददंमनोदु भागद्रव्यमनकषायंग-

ळिगत्त स ० ८ शेषबहुभागाद्धंद्रव्यमुमेकभागमुं सहितमागि संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कुं-  
८ १ १ २

अत्र मोहनीयसर्वद्रव्यमिदं स ० अनन्तेन भक्त्वा एकभागः स ० १ सर्वघातिप्रतिबद्धं भवति ।  
८ ख

शेषबहुभागो देशघातिप्रतिबद्धं भवति स ० ख । अत्र गुणकारे एकोनतामवगणय भाज्यभागहारभूतानन्त-  
८ ख

योरपवर्तने स ० समयप्रबद्धाष्टमभागः । तमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स ० ८ द्वाभ्यां भक्त्वा  
८ ९ १०

स ० ८ अकषायाणां देयः । शेषबहुभागाद्धमेकभागं संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धं भवति स ० ८ उक्तत्रि-  
८ १ १ २ ८ १ २

पूर्वमें जो मोहनीय कमका सर्वद्रव्य कहा था, उसमें अनन्तसे भाग दें । उसमें-से एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है और शेष बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है । उस देशघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें । जो बहुभाग आवे उसका आधा तो नोकषायोंको दें । तथा बहुभागका आधा और एक भाग संज्वलन सम्बन्धी देशघाती द्रव्य होता है । इस प्रकार ये तीन द्रव्य हुए । उसमें-से प्रथम सर्वघाती द्रव्यका विभाग करते हैं—

सर्वघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रतिभागसे भाग दें । एक भाग-को अलग रख शेष बहुभागके सतरह भाग करें । और एक-एक समान भाग एक-एक

स ० १ ई मोहनोयत्रिविधद्रव्यगळोळु सर्वघातिप्रतिबद्धद्रव्यमं स ० १ मिथ्यात्वादि सप्तदश  
८।९।२ ८।ख

स ० १  
८।९

सर्वघातिगळो होनक्रमदिदं पसल्वेडि आवल्यसंख्यातप्रमितप्रतिभागदिदं भागिसि बंद लब्धम-

नेकभागमं बेरिरिसि स ० १ बहुभागद्रव्यमनिदं स ० ८ बहुभागे समभागो बंधानामेद्वित्तु  
८।ख।९ ८।ख।९

बहुभागमं सरियागि सप्तदशप्रकृतिगळगं पसल्वेडि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदेते दोडे सप्तदशप्रकृति-  
५ गळो मेल्लमिनितु द्रव्यमागलागळेकप्रकृतिगेनितु द्रव्यमक्कुमेद्वित्तु त्रैराशिकं माडि प्र १७।फ

स ० ८ इ १ बंदलब्धमेकप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कु स ० ८ मंदं प्रत्येकं सप्तदशप्रकृति-  
८।ख।९ ८।ख।९।१७

गळोळु क्रमदिदमिदं शेषैकभागदोळु स ० १ मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८  
८।ख।९ ८।ख।९।९

बहुभागो बहुकस्य देयः येद्वित्तु होनक्रमदिदं देयमप्युदरिदं मिथ्यात्वप्रकृतिगित्तु शेषैकभागदोळु मत्तं  
प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ अनंतानुबंधिलोभदोळित्तु शेषैकभागदोळुमो प्रकारदिदं प्रति-  
८।ख।९।९

१० भागभक्तबहुभागगळननन्तानुबंधिमायाकषाधादिगळोळु क्रमदिनीयुत्तं पोगि अप्रत्याख्यानक्रोधदोळु  
बहुभागमुमिनित्तु। तत्रत्यचरमशेषैकभागमं स ० १ अप्रत्याख्यानमानकषा-  
८।ख।९।१०।१७

विषद्रव्येषु सर्वघातीदं स ० १ आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागं स ० १ पृथक् संस्थाप्य बहुभागः  
८।ख ८।ख।९

स ० ८ सप्तदशभिर्भक्त्वा स ० ८ प्रत्येकं सप्तदशसु स्थानेषु देयः। शेषैकभागे स ० १ प्रतिभाग-  
८।ख।९ ८।ख।९।१७ ८।ख।९

भक्तबहुभागं बहुभागं मिथ्यात्वादिषु षोडशसु क्रमेण दत्ता एकभागं स ० १ अप्रत्याख्यानमाने दद्यात्।  
८।ख।९।१७

- १५ प्रकृतिको देवं। जो एक भाग रहा उसमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग मिथ्यात्वको दें।  
पुनः शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी लोभ को दें। शेष एक  
भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी मायाको दें। इसी प्रकार शेष रहे  
एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग क्रमसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान,  
संज्वलन लोभ, संज्वलन माया, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, प्रत्याख्यान लोभ, प्रत्या-  
२० ख्यान माया, प्रत्याख्यान क्रोध प्रत्याख्यान मान, अप्रत्याख्यान लोभ, अप्रत्याख्यान माया,  
अप्रत्याख्यान क्रोध को देना। और अन्तमें शेष रहा एक भाग अप्रत्याख्यान मानको देना।

यक्के कुडुवुडु । द्वितीयसंज्वलनप्रतिबद्धदेशघातिद्रव्यं स्थापिसि स ० ८ एकभागद्रव्यमनेर-  
८१९१२

स ० १  
८१९

डरिदं समच्छेदनिमित्तमागि गुणिसि स ० २ यदरोळकरूपं तेगुवुकोडु स ० १  
८१९१२ ८१९१२

बहुभागार्द्धबोळूडि स ० ८ आवल्यसंख्यातमनावल्यसंख्यातक्के सरिगळु स ० १  
८१९१२ ८१२

मुन्नमेकरूपं तेगुवुळिदेकभागार्द्धं स ० १ असंख्यातैकभागं साधिकं माडि स ० प्रति-  
८१९१२ ८१२

भागभक्तबहुभागं स ० ८ बहुभागे समभाग एंडु बहुभागं नाल्करोळं सममप्पुदरिदं नाल्करि  
८१२१९

भागिसि स ० ८ चतुर्णांशं प्रत्येकं नाल्केडेयोळं स्थापिसि शेषैकभागबोळु  
८१२१९१४

स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ८ बहुभागो बहुकस्य देयः एंवित्तु संज्वलनलोभवो-  
८१२१९ ८१२१९

द्वितीय संज्वलनदेशघातिद्रव्यं स ० ८ संस्थाप्य अषस्तनमेकभागद्रव्यं द्वाभ्यां समुच्छिद्य स ० २ अर्धक-  
८९२ ८९२

स ० १  
८९

रूपं गृहीत्वा स ० १ बहुभागार्धं निक्षिप्य स ० ८ आवल्यसंख्यातं आवल्यसंख्यातेन अवल्यं स ०  
८९२ ८१९१२ ८१२

शेषैकभागार्धं स ० १ असंख्यातैकभागं साधिकं कृत्वा स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ चतु- १०  
८१२ ८२ ८२९

भिर्भक्त्वा स ० ८ चतुर्षु स्थानेषु प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८  
८२९४ ८९२ ८२९९

सो जो पहले सतरह समान भाग कहे थे उनके एक-एक भागमें पीछे कहे अपने-अपने भागको मिलानेसे अपना-अपना सर्वघाती द्रव्यका प्रमाण होता है ।

दूसरे संज्वलनके देशघाती द्रव्यके प्रमाणमें प्रतिभागसे भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभागके चार समान भाग करके चारोंको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन लोभको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन

ळित्तु शेषैकभागदोळु स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ संज्वलनमायाकषायविक्तु  
८१२।९९ ८१२।९९९

शेषैकभागदोळु स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ संज्वलनक्रोधकषायदो-  
८१२।९९९ ८१२।९९९९

ळित्तु शेषैकभागमं स ० १ संज्वलनमानकषायवके कुडुवुदु । अंतु कुडुत्तं विरलु  
८१२।९९९९  
हीनक्रमवेद्यमक्कुं ।

५ मत्तं तृतीयनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यमनिदं स ० ८ गुणकारदोळेकरूपहीनतेयनवगणिसि  
८१९।२

८१२।९९२ भाज्यभागहारभूतावत्यसंख्यातंगळनपवृत्तिसि कळदु शेषद्रव्यमनिदं स ० प्रति-  
८१२

भागविदं भागिसि बहुभागद्रव्यमं स ० ८ बहुभागे समभागो बंधानामेंदु बहुभागदोळु बंधप्रकृति-  
८१२।९

संज्वलनलोभे देयः । शेषैकभागे स ० १ प्रतिभागबहुभागः स ० ८ संज्वलनमायायां देयः । शेषैक-  
८२९९ ८२९९९

भागे स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ संज्वलनक्रोधे देयः । शेषैकभागं स ० १  
८२९९९ ८२९९९९ ८२९९९९

१० संज्वलनमाने दद्यात् । एवं दत्ते सति हीनक्रमेण दत्तं भवति । पुनः तृतीयं नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यमिदं स ० ८  
८२९

गुणकारे एकरूपहीनतामवगणय्य भाज्यभागहारी आवत्यसंख्यातो अपवर्त्य स ० प्रतिभागेन भक्त्वा बहु-  
८२

भागस्य स ० ८ पञ्चशः पञ्चसु स्थानेषु प्रत्येकं स ० ८ देयः । शेषैकभागे स ० १ प्रतिभागभक्तबहु-  
८२९ ८२९५ ८२९

मायाको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन क्रोधको दें । शेष एक भाग संज्वलन मानको दें । पहले कहे चार समान भागोंमें पीछे कहा अपना-अपना  
१५ एक भाग मिलानेसे अपने-अपने देशघाती द्रव्यका प्रमाण होता है सो संज्वलन कषायकी चार प्रकृतियोंके देशघाती और सर्वघाती द्रव्यको मिलानेसे सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है ।

मिथ्यात्व और बारह कषायका द्रव्य सर्वघाती ही है और नोकषायोंका सब द्रव्य अघाती ही है । उनका बँटवारा कहते हैं—पूर्वमें जो नोकषाय सम्बन्धी तीसरा द्रव्य कहा, उसमें प्रतिभागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभागके पाँच समान भाग करके

गच्छो समभागमक्कुमपुवरिवं । वेदत्रितयादिपंचस्यानंगळोळं प्रत्येकं पंचमांशमं स्थापिसि

स ० ८ शेषैक भागदोळु स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यमं स ० ८  
८१२१९१५ ८१२१९ ८१२१९९

बहुभागो बहुकस्य देय एदितु वेदत्रितयस्य कोट्टु शेषैकभागदोळु स ० १ प्रतिभागभक्तबहु-  
८१२१९९

भागमं स ० ८ रत्यरतिगळिगत्तु शेषैकभागदोळु स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं  
८१२१९९९ ८१२१९९९

स ० ८ हास्यशोकंगळिगत्तु शेषैकभागदोळु स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं ५  
८१२१९९९९ ८१२१९९९९

स ० ८ भयनोकषायविकत्तु शेषैकभागमं स ० १ जुगुप्सानोकषायविकत्तु  
८१२१९९९९९ ८१२१९९९९९

कळेबुदंतीवुत्तमिरलु नोकषायपिण्डप्रकृतिद्रव्यस्य विभागविशेषमुंटावुवे दोडे पेळ्ळवरु :—

तण्णोकषायभागो संबंधपण्णोकसायपयडीसु ।

हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं ॥२०४॥

तन्नोकषायभागः संबंधपंचनोकषायप्रकृतिषु । हीनक्रमो भवति तथा देशे देशावरणद्रव्यं ॥ १०

भागः स ० ८ वेदत्रये देयः । शेषैकभागे स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ रत्यरत्योर्देयः ।  
८२९९ ८२९९ ८२९९९

शेषैकभागे स ० १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ हास्यशोकयोर्देयः । शेषैकभागे स ० १  
८२९९९ ८२९९९९ ८२९९९९

प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ भये देयः । शेषैकभागं स ० १ जुगुप्सायां दद्यात् ॥२०३॥  
८२९९९९९ ८२९९९९९

एवं दत्ते नोकषायपिण्डप्रकृतिद्रव्यस्य विशेषमाह—

पाँचों प्रकृतियोंको देवें । शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर एक भागको अलग रख १५  
बहुभाग तीनों वेदोंमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें । एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर  
बहुभाग रति और अरतिमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें । शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग  
देकर बहुभाग हास्य और शोकमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें । शेष एक भागमें प्रतिभागका  
भाग देकर बहुभाग भयको देना । शेष एक भाग जुगुप्साको देना । पहले कहे समान पाँच  
भागोंमें-से एक-एकमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेपर अपने-अपने द्रव्यका २०  
प्रमाण होता है ॥२०३॥

इस प्रकार देनेपर नोकषायरूप पिण्ड प्रकृतिके द्रव्यमें कुछ विशेष है वह कहते हैं—

ई पेळल्पट्ट नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स ० ८ संबंधपञ्चनोकषायप्रकृतिषु सहबंधगळप  
८१२१९

पुंवेदरतिहास्यभयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळ मिथ्यादृष्टि मोदलोडु अपूर्वकरणपर्यंतमाद  
गुणस्थानवर्तिगळो हीनक्रमं देयमक्कुं मेणु पुंवेद । अरति । शोक । भय । जुगुप्सा प्रकृतिपंचक-  
दोळ मिथ्यादृष्टिमोदलोडु प्रमत्तपर्यन्तमाद षड्गुणस्थानवर्तिगळो हीनक्रमं देयमक्कुं । स्त्रीवेद-  
५ रतिहास्यभयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळ मेणु स्त्रीवेद-अरतिशोक-भयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळ  
मिथ्यादृष्टिगं सासादनं हीनक्रमं देयमक्कुं । नपुंसकवेद रतिहास्य भयजुगुप्सा प्रकृति पंचकदोळ  
मेणु नपुंसकवेद अरति शोक भय-जुगुप्सा प्रकृतिपंचकदोळ मिथ्यादृष्टियोळे हीनक्रमं देयमक्कुं ।  
अनिवृत्तिकरणदोळ पुंवेद नोकषायमोदे बंधमपुर्वरिदमकषायप्रतिबद्धद्रव्यमनितु मनिवृत्तिसवेद-  
भागे पर्यन्तमदोळयक्कुमे बी विशेषमरियल्पडुगुं । देशे देशघाति संज्वलनकषायदोळ देशावरण-

१० द्रव्यं संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यं स ० ८ तथा संबंधप्रकृतिषु अहंगे सहबंधप्रकृतिगळो हीन-  
८१२  
क्रमं देयमक्कुमदेते दोडे मिथ्यादृष्टिमोदलोडु अनिवृत्तिकरणक्रोधबंधभागे पर्यंतं सहबंध-  
संज्वलन चतुष्टयदोळ हीनक्रमं देयमक्कुं । क्रोधबंधोपरतानिवृत्तितृतीयभागदोळ सहबंधसंज्वलन-

तन्नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स ० ८ संबन्धपञ्चनोकषायप्रकृतिषु पुंवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु अपूर्व-  
८२९

करणान्तां वा पुंवेदारतिशोकभयजुगुप्सासु प्रमत्तांतानां स्त्रीवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु स्त्रीवेद-अरति-शोकभय-  
१५ जुगुप्सासु मिथ्यादृष्टिसासादनयोः नपुंसकवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु वा नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सासु मिथ्या-  
दृष्टिश्च हीनक्रमेण देयम् । अनिवृत्तिकरणे एकः पुंवेद एव बध्यते, तेन अकषायप्रतिबद्धद्रव्यं सर्वं सवेदभागपर्यंतं  
तत्रैव देयं इति विशेषो ज्ञातव्यः । देशघातिसंज्वलनकषाये देशावरणद्रव्यं स ० ८ संबन्धप्रकृतिषु हीनक्रमेण  
८२

देयम् । तद्यथा—

२० नोकषाय सम्बन्धी द्रव्य एक साथ बँधनेवाली पाँच नोकषायोंमें हीनक्रमसे देना  
चाहिए । सो मिथ्यादृष्टिसे लगाकर पुरुषवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्साका अपूर्वकरण  
पर्यन्त अथवा पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका प्रमत्त पर्यन्त एक साथ बन्ध होता है ।  
तथा स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका मिथ्यादृष्टि और सासादनमें एक साथ बन्ध होता  
है । तथा नपुंसक वेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्साका अथवा नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय,  
जुगुप्साका मिथ्यादृष्टिमें एक साथ बन्ध होता है । सो नोकषाय सम्बन्धी द्रव्यका बँटवारा  
२५ जैसे पूर्वमें कहा है उसी प्रकार जिन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध हो उनको क्रमसे हीन-हीन देना ।  
अनिवृत्तिकरणमें एक पुरुषवेदका ही बन्ध होता है अतः वहाँ सवेद भाग पर्यन्त नोकषाय  
सम्बन्धी सब द्रव्य एक पुरुषवेदको ही देना चाहिए । तथा देशघाती संज्वलन कषायका  
देशघाती द्रव्य, एक साथ जितनी प्रकृतियाँ बँधे उनको हीनक्रमसे देना चाहिए । सो

कषायत्रयदोषो होनक्रमं देयमवकुं । मानबन्धोपरतानिवृत्तिकरणचतुर्थ्यभागदोषो संज्वलनकषायद्वय-  
दोषो होनक्रमं देयमवकुं । मायाबन्धोपरतानिवृत्तिपञ्चमभागदोषो संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमनितुं  
लोभसंज्वलनकषायदोषो देयवकुं ॥

अनन्तरं संबंधनोकषायंगुणो निरन्तरबन्धाद्धा प्रमाणमं पेळदपर :—

पुंबंधा अंतोमुहुत्त इत्थिम्मि हस्सजुगले य ।

५

अरदिजुगे संखगुणा णउंसगद्धा विसेसहिया ॥२०५॥

पुंबंधाऽऽन्तर्मुहूर्तं स्त्रियां हास्ययुगले च अरतिद्विके संखगुणा नपुंसकाद्धा विशेषा-  
धिका ॥

पुंवेदके निरन्तरबन्धाद्धे जिनदृष्टान्तर्मुहूर्तमिदु । २१ । २ । संख्यातगुणितसंख्यातावलि-  
प्रमितमवकुं । स्त्रियां स्त्रीवेदके निरन्तरबन्धाद्धेयं नोडलु संख्यातगुणितमवकु । २१ । ४ मिदं १०  
नोडलु हास्ययुगले च हास्यरतिगुणो निरन्तरबन्धाद्धे संख्यातगुणितमवकु । २१ । १६ । मिदं  
नोडलु अरतिद्विके अरतिशोकंगळ निरन्तरबन्धाद्धे संखगुणा संख्यातगुणितमवकुं । २१ । ३२ ।  
नपुंसकाद्धा नपुंसकवेदनिरन्तरबन्धाद्धेरतिद्विकाद्धेयं नोडलु विषाधिका विशेषाधिकमवकुं । २१ ।  
४२ । इत्थि वेदत्रयशलाकेगळं कूडिबोडे अन्तर्मुहूर्तशलाकेगळं नात्वत्तेटप्पुवु । २१ । ४८ ।  
हास्यद्विकारतिद्विकान्तर्मुहूर्तशलाकेगळं कूडिबोडेयं तावन्मात्रंगळप्पुवु । २१ । ४८ ॥

१५

मिथ्यादृष्ट्यानिवृत्तिकरणक्रोधबन्धभागपर्यंत सहबन्धसंज्वलनचतुष्टये क्रोधबन्धोपरतानिवृत्तितृतीयभागे  
सहबन्धसंज्वलनत्रये मानबन्धोपरतानिवृत्तिकरणचतुर्थभागे संज्वलनद्वये च होनक्रमेण देयम् । मायाबन्धो-  
परतानिवृत्तिपञ्चमभागे संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यं सर्वं लोभसंज्वलन एव देयम् ॥२०४॥ अथ संबंधनो-  
कषायाणां निरन्तरं बन्धाद्धा प्रमाणयति—

पुंवेदस्य निरन्तरबन्धाद्धा जिनदृष्टान्तर्मुहूर्तः २१ । २ स च <sup>१</sup>संख्यातावलिमात्रः । स्त्रीवेदे ततः २०  
संख्यातगुणः २१ । ४ अतो हास्यरत्योः संख्यातगुणः २१ । १६ अतः अरतिशोकयोः संख्यातगुणः २१ । ३२ ।  
ततः नपुंसकवेदे विशेषाधिकः २१ । ४२ । अत्र वेदत्रयस्य मिलित्वा अंतर्मुहूर्तशलाकाः अष्टचत्वारिंशत्

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके दूसरे भाग पर्यन्त चारोंमें बँटवारा करना चाहिए ।  
तीसरे भागमें जहाँ क्रोधका बन्ध नहीं होता वहाँ तीनमें ही बँटवारा करना । चौथे भागमें  
जहाँ मानका भी बन्ध नहीं होता, दोमें ही बँटवारा करना । पाँचवें भागमें जहाँ मायाका २५  
भी बन्ध नहीं होता वहाँ संज्वलनका सब देशघाती द्रव्य एक लोभको ही देना ॥२०४॥

आगे बन्धको प्राप्त नोकषायोंके निरन्तर बन्ध होनेका काल कहते हैं—

पुरुषवेदका निरन्तर बन्धकाल, जैसा जिनदेवने देखा तदनुसार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण  
है । वह संख्यात आवली प्रमाण है । उसकी सहनानी ( चिह्न ) दो गुणा अन्तर्मुहूर्त है ।  
स्त्रीवेदका निरन्तर बन्धकाल उससे संख्यात गुणा है । उसकी सहनानी चार गुणा अन्तर्मुहूर्त ३०  
है । हास्य और रतिका उससे भी संख्यातगुणा है । उसकी सहनानी सोलह गुणा अन्तर्मुहूर्त  
है । अरति और शोकका उससे भी संख्यातगुणा है । उसकी सहनानी बत्तीसगुणा अन्तर्मुहूर्त



यिन्नु त्रैराशिकंगळु माडलपडुवुवदे ते बोडे वेदत्रयदिनितंतम्मुहूर्तंगळगेस्लमिनितुं द्रव्यमागु-  
तिरलागळिनितंतम्मुहूर्तंगलाकेगळगेनितु द्रव्यमक्कुमेंदिन्तनुपातत्रैराशिकं माडि प्र.मु. २१।४८।

फ- स ० इ।मु. २१।२। बंद लब्धं पुंवेदप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकमक्कुं स ०।२ मत्तमते  
८।१० ८।१०।४८

प्र.मु. २१।४८। फ स ० इ।मु. २१।४। बंद लब्धं स्त्रीवेदप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणित-  
८।१०

५ द्रव्यमक्कुं स ०।४ मत्तमते प्र.मु. २१।४८। फ स ० इ।मु. २१।४२। बंद  
८।१०।४८ ८।१०

लब्धं नपुंसकवेद प्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणितमक्कुं स ०।४२ मत्तमो प्रकारविदं हास्य-  
८।१०।४८

रत्यरतिशोकंगळुं मुहूर्तंगलाकेगळु प्र.मु. २१।४८। फ स ० = इ.मु. २१।१६। बंद लब्धं  
८।१०

रतिनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकमक्कुं स ० = १६ मत्तमते प्र.मु. २१।४८। फ स ० = इ.मु.  
८।१०।४८ ८।१०

२१।४८। हास्यद्विकारतिद्विकयोरपि तावत्यः २१।४८। यदि वेदत्रयस्य तावतीनां एतावद्द्रव्यं तदा

१० एतावतीनां कियत् ? इति प्र.मु. २१।४८। फ स ० इ.मु. २१।२ लब्धं पुंवेदप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकं  
८।१०

स ०।२ तथा प्र.मु. २१।४८ फ स ० इ.मु. २१।४ लब्धं स्त्रीवेदस्य संख्यातगुणं स ०।४  
८।१०।४८ ८।१० ८।१०।४८

तथा प्र.मु. २१।४८। फ स ० इ.मु. २१।४२ लब्धं नपुंसकवेदस्य संख्यातगुणं स ०।४२ एवं प्र  
८।१० ८।१०।४८

१५ है। नपुंसक वेदका उससे कुछ अधिक है। उसकी सहनानी बयालीस गुणा अन्तर्मुहूर्त है।  
तीनों वेदोंका काल मिलानेपर २ + ४ + ४२ = अड़तालीस अन्तर्मुहूर्त होता है। हास्य-शोक  
और रति-अरतिका काल मिलानेपर भी १६ + ३२ अड़तालीस मुहूर्त होता है। मिले हुए  
कालको प्रमाण राशि, पिण्डरूप द्रव्यको फलराशि, और अपने-अपने कालको इच्छाराशि  
करनेपर त्रैराशिक द्वारा लब्धराशिमें अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण आता है।

२० सो तीनों वेदोंके सत्तार्थे स्थित द्रव्यका जो प्रमाण है उसको तीनोंके मिले हुए कालकी  
सहनानी अड़तालीस मुहूर्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसको पुरुषवेदके कालकी  
सहनानी दो अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना पुरुषवेद सम्बन्धी द्रव्य  
जानना। यह सबसे थोड़ा है। तथा स्त्रीवेदके कालकी सहनानी चार अन्तर्मुहूर्तसे गुणा  
करनेपर जो प्रमाण हो उतना स्त्रीवेद सम्बन्धी द्रव्य है। यह पुरुषवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा

२१। ३२। बंद लब्धमरतिनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणमवकुं। स  $a \equiv 32$  मत्तमो प्रका-  
८। १०। ४८

रविदं प्र मु २१। ४८। फ स  $a =$  इ मु २१। १६। बंद लब्धं हास्यनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं  
८। १०

संख्यातगुणहीनमवकुं स  $a = 16$  मत्तमन्ते प्र मु २१। ४८। फ स  $a =$  इ। मु २१ ३२। बंद  
८। १०। ४८ ८। १०

लब्धं शोकनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणितमवकुं स  $a = 32$  संबंधपंचनोकषायप्रकृति-  
८। १०। ४८

गच्छु क्रमदिव विशेषहीनक्रमंगळादोडं पिडंगळो तम्मोळु कालसंचयमनाभयिसि उक्तप्रकारविदं ५  
द्रव्यविभंजनं तंतम्म बंधकालदोळपुवु ॥

मु २१ ४८। फ स  $a$  मु इ २१ १६। लब्धं रतिनोकषायस्य स्तोकं स  $a = 16$  तथा प्र मु २१ ४८।  
८। १० ८। १० ४८

फ स  $a =$  इ मु २१ ३२ लब्धं अरतिनोकषायस्य संख्यातगुणं स  $a = 32$  एवं प्र मु २१ ४८ फ स  $a =$   
८। १० ८। १० ४८ ८। १०

इ मु २१ १६ लब्धं हास्यनोकषायस्य संख्यातगुणहीनं स  $a = 16$  तथा प्र मु २१। ४८ फ स  $a \equiv$   
८। १० ४८ ८। १०

इ मु २१। ३२ लब्धं शोकनोकषायस्य संख्यातगुणं—स  $a \equiv 1. 32$  संबंधपञ्चनोकषायाः विशेषहीनक्रमा १०  
८। १० ४८

अपि पिण्डानां परस्परं कालसंचयमाश्रित्य उक्तप्रकारेण द्रव्यविभंजनस्वस्वबन्धकाले भवति ॥ २०५ ॥

है। तथा नपुंसक वेदके कालकी सहनानी बयालीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण  
आवे उतना नपुंसकवेद सम्बन्धी द्रव्य है। यह स्त्रीवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। रति और  
अरति सम्बन्धी द्रव्यको अड़तालीस अन्तर्मुहूर्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको रतिके  
काल सोलह अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह रति सम्बन्धी द्रव्य जानना। १५  
वह थोड़ा है। तथा अरतिके काल बत्तीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह  
अरति सम्बन्धी द्रव्य जानना। वह रतिके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। तथा हास्य और शोक  
सम्बन्धी द्रव्यको अड़तालीस अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे हास्यके काल  
सोलह अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना हास्य सम्बन्धी द्रव्य है। तथा शोक-  
के काल बत्तीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह शोक सम्बन्धी द्रव्य है। वह २०  
हास्यके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। इस प्रकार जिनका एक साथ बन्ध होता है उन पाँच  
नोकषायका द्रव्य पूर्वोक्त क्रमसे हीनहीन होता है। तथापि पिण्डरूपमें नाना कालमें एकत्र  
होनेकी अपेक्षा इस प्रकारसे द्रव्यका बँटवारा अपने-अपने बन्ध कालमें होता है। सो तीन  
वेदोंका एक पिण्ड होता है। रति-अरतिका एक पिण्ड होता है। हास्य-शोकका एक पिण्ड  
होता है ॥२०५॥

अनन्तरं पंचविघ्नदोळं सहबंधपिंडापिंडनामबंधस्थानंगळोळं विपरीतदेयक्रममेंदु  
पेळवपरुः—

पणविग्घे विवरीयं संबंधपिंडिदरणामठाणे वि ।

पिंडं दव्वं च पुणो संबंधसगपिंडपयडीसु ॥२०६॥

- ५ पंचविघ्ने विपरीतः संबंधपिंडेतरनामस्थानेऽपि । पिंडद्रव्यं च पुनः संबंधस्वपिंडप्रकृतिषु ॥  
पंचानां दानादीनां विघ्नः पंचविघ्नस्तस्मिन् । दानादिविघ्नपंचकदोळं विपरीतः मुपेळव-  
क्रमदिदमधिकक्रमं देयमक्कुं । संबंधपिंडेतरनामस्थाने पिंडाद्वेतराश्च पिंडेतराः सहबंधोदया सांताः  
संबंधाः पिंडेतरा यस्मिन् तच्च तन्नामस्थानं च तस्मिन् संबंधपिंडेतरनामस्थानेऽपि विपरीतः  
पिंडापिंडसंबन्धनामबंधस्थानदोळं प्रकृतिपाठक्रमदोळु घातिगळो तु हीनक्रममन्तल्लदधिकक्रमपु-  
१० वरिवं पंचविघ्नदोळं तंते अधिकक्रममक्कुमदेते दोडे नामकर्मसर्वद्रव्यमिदु स ० । ८ यिदं केळगण  
८१९

असंख्यातैकभागमं साधिकमं माडि स ० । ८ साधिकबहुभागदोळेकरूपहीनतेयनवगणिसि भाज्य  
८१९

भागहारंगळनपवत्तिसि शेषद्रव्यमनिद स ० । नेकविशतिसहबंध पिंडापिंडप्रकृतिगळु तिर्यग्गति  
८

अथ विघ्नपञ्चके नामबन्धस्थानेषु चाह—

पञ्चदानाद्यन्तरायेषु प्रागुक्तक्रमाद्विपरीतोऽधिकक्रमो भवति पुनः सबन्धपिण्डेतरनामस्थानेऽपि विपरीतः ।

- १५ उच्यते—नामकर्मसर्वद्रव्यमिदं स ० ८ अधस्तनासंख्यातैकभागं साधिकं कृत्वा स ० ८ अर्थकरूपहीनता-  
८ ९  
स ०  
९ ९ ९ ९ ९ । २

मदगण्य भाज्यभागहारावपवर्त्येदं स ० त्रयोविशतिकस्थानस्य सहबन्धपिण्डप्रकृतिषु तिर्यग्गत्येकेन्द्रियौ-  
८

आगे अन्तरायकी पाँच प्रकृति और नामकर्मके बन्धस्थानोंमें कहते हैं—

पाँच दानान्तराय आदिमें पूर्वोक्त क्रमसे विपरीत उत्तरोत्तर अधिक-अधिक द्रव्य  
जानना । तथा नामकर्मके स्थानोंमें एक साथ बँधनेवाली नामकर्मकी गति आदिरूप पिण्ड  
२० प्रकृति और अगुरुलघु आदि अपिण्ड रूप प्रकृतियोंमें भी विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर अधिक  
द्रव्य जानना । वही कहते हैं—

एक साथ जिनका बन्ध होता है ऐसा नामकर्मका स्थान तेईस प्रकृतिवाला है यथा—  
तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस् कार्मण शरीर, हुण्डक संस्थान, वण, गन्ध,  
रस, स्पर्श, तिर्यचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर,

एकेंद्रियजाति औदारिक तैजसकार्मणपिण्डहंडसंस्थानवर्णगंधरसस्पर्शतिर्यगानुपूर्व्यं अगुरुलघु उप-  
घातस्यावर सूक्ष्म अपर्याप्ति साधारणशरीर अस्थिरअशुभदुर्भग अनादेय अयशस्कीर्तिनिर्माणमेघी  
एकविंशतिसंबंधपिंडापिण्डप्रकृतिस्थानंगठोळ पसल्वेडि आवल्यसंख्यातैकभागप्रमितप्रतिभागदिदं  
भागिसि बहुभागमं स ०।८ बहुभागे समभागो बंधाना स ०।८ मंदैकविंशतिस्थानंगठोळ-  
८१९ ९९९९१२

मेकविंशति भवतैकभागमं स ०।८ प्रत्येकमिरिसि शेषैकभागदोळ स ०।१ उक्तक्रमः ५  
८१९१२१ ८१९

प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यं स ०।८ बहुकस्य देय एंदु प्रकृतिपाठक्रमदोळ तुविदिदं मोदल्वरं  
८१९१९११  
विपरोतमागि देयं होनक्रममप्युदरिदं निर्माणनामकर्मदोळ कुडल्पडुगुमन्ते शेषैकभागदोळ प्रति-  
भागभक्तबहुभागद्रव्यमयशस्कीर्तिनामदोळ कुडल्पडुगु स ०।८ मन्ते शेषैकभागदोळ प्रतिभाग-  
८१९१९१२  
भक्तबहुभागद्रव्यमनादेयनामदोळ कुडल्पडुगु स ०।८ मन्तु प्रतिभागभक्तशेषैकभागबहुभाग-  
८१९१९१३

दरिकतैजसकार्मणहण्डसंस्थानवर्णगन्धरसस्पर्शतिर्यगानुपूर्व्यागुरुलघूपघातस्यावरसूक्ष्मपर्याप्तिसाधारणास्थिराशुभ - १०

दुर्भगानादेयायशस्कीर्तिनिर्माणनाम्नीषु दातुं आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स ०।८ एकविंशत्या  
८९

भक्त्वा स ०।८ प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे स ०।१ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ०।८ निर्माणे  
८९२१ ८९ ८९९

देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः अयशस्कीर्ती देयः स ०।८ शेषैकभागे प्रतिभागभक्त-  
८९९१२

अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण । इन तेईस प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध १५  
मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यच करता है । सो यह स्थान साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध-  
पर्याप्तक भवको प्राप्त करनेके योग्य है अर्थात् इसका बन्ध करनेवाला मरकर साधारण  
सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक भवमें उत्पन्न होता है । इनका बँटवारा कहते हैं—

पूर्वमें मूल प्रकृतियोंके बँटवारेमें जो नामकर्मका द्रव्य कहा है उसमें आवलीके २०  
असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभागके समान इक्कीस भाग करें ।  
और एक-एक भाग एक-एक प्रकृतिको दें । यद्यपि बन्धमें तेईस प्रकृतियाँ हैं तथापि औदारिक,  
तैजस, कार्मण ये तीनों एक शरीर नामक पिण्डप्रकृतिमें आ जाती हैं और पिण्ड प्रकृतियोंमें  
एक-एक प्रकृतिका ही बन्ध है । इससे यहाँ इक्कीस भाग ही किये हैं । शेष रहे एक भागमें

द्रव्यंगलु क्रमविदं दुर्भंगनामं मोदलागि एकेंद्रियजातिनामपद्व्यंतं कुडल्पडुवुवु । तत्रत्य चरम-  
शेषैकभागद्रव्यं स ० । १ तिर्यग्गतिनामदोळु कुडल्पडुगुमिदुपलक्षणमिन्ते शेषनामबंधस्थानं-  
८१५।१२०

गळोळमरियत्पडुगुमी पेळत्पट्टु साधारणसूक्ष्मैकेन्द्रियलब्धपद्व्याप्तजीवभवदोळुदयोचितत्रयोविंशति-  
प्रकृतिनामबंधस्थानस्वामिगळु तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयमिथ्यादृष्टिजीवंगळप्पह । पिण्डद्रव्यं च पुनः  
५ शरीरनामपिण्डप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यं मत्ते स्वबंधस्वपिण्डप्रकृतिषु सहबंधंगळप्प औदारिकतैजसकाम्भरण-  
शरीरनामस्वपिण्डप्रकृतिगळोळु औदारिकं मोदलागि तैजसकाम्भरणंगळोळु तम्भोळधिकक्रममवकु-  
मिन्तु त्रयोविंशतिनामसबंधपिण्डापिण्डप्रकृतिस्थानदोळे तु द्रव्यविभंजनमन्ते वक्ष्यमाण शेष । २५।२६।

बहुभागः स ० ८ अनादेये देयः । एवं प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं दुर्भंगाद्येकेन्द्रियान्तेषु इत्वा  
८ १ १ । ३

चरमशेषैकभागं स ० १ तिर्यग्गतौ दद्यात् । इदमुपलक्षणं, तेन शेषनामबंधस्थानेषु अपि ज्ञातव्यम् । इदं  
८ १ १ २०

१० त्रयोविंशतिकं साधारणसूक्ष्मैकेन्द्रियलब्धपद्व्याप्तकभवोदयोचितं नरतिर्यग्मिथ्यादृष्टिरेव बध्नाति । पिण्डद्रव्यं च  
पुनः शरीरनामपिण्डप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यं पुनः सहबन्धोदारिकतैजसकाम्भरणेषु औदारिकतोऽधिकक्रमेण देयम् ।

आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रतिभागसे भाग दें । उसमें-से बहुभाग अन्तमें कही  
निर्माण प्रकृतिको दें । शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अयशस्कीर्तिको  
देना । शेष रहे एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अनादेयको दें । इसी प्रकार  
१५ शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग दे-देकर बहुभाग क्रमसे दुर्भंग, अशुभ, अस्थिर, साधा-  
रण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, स्थावर, उपघात, अगुरुलघु, तिर्यचानुपूर्वी, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण,  
हुण्डक संस्थान, शरीररूप पिण्ड प्रकृति और एकेन्द्रिय जातिको दें । शेष रहे एक भागको  
सबसे पहले कही तिर्यचगतिको दें । सो पूर्वमें जो इक्कीस भाग कहे थे, उन एक-एक भागमें  
अपना-अपना पीछे कहा भाग मिलानेसे अपनी-अपनी प्रकृतिका द्रव्य होता है । इसी प्रकार  
२० जहाँ एक साथ पचचीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतियोंका एक  
साथ बन्ध होता है उनका भी बँटवारा कर लेना । जहाँ ऊपरमें एक यशस्कीर्तिका ही बन्ध  
होता है वहाँ नामकर्षका सब द्रव्य उस एक ही प्रकृतिको देना । इन स्थानोंमें पिण्ड प्रकृतिके  
द्रव्यका बँटवारा बन्धको प्राप्त पिण्ड प्रकृतिके भेदोंमें करना । जैसे तेईस प्राकृतिक स्थानमें  
एक शरीर नामक पिण्ड प्रकृतिके तीन भेद हैं । सो बँटवारेमें शरीर प्रकृतिको जो द्रव्य मिला,  
२५ उसे प्रतिभागसे भाग देकर बहुभागके तीन समान भाग करके तीनोंको देना । शेष एक भागमें  
प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग कार्माणको देना । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर  
बहुभाग तैजसको देना । शेष एक भाग औदारिकको देना । पूर्वोक्त समान भागमें इन  
भागोंको मिलानेपर अपना-अपना द्रव्य होता है । इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना । जहाँ  
पिण्डके भेदोंमें-से एक ही का बन्ध हो वहाँ पिण्ड प्रकृतिका सब द्रव्य उस एक ही प्रकृतिको  
देना चाहिए ।

२८।२९।३०।३१।१। स्थानसंबंधप्रकृतिगण्येकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळ स्वामित्वमुं पेळल्पडुगु-  
मण्डुवरिनित्तिल प्रवेशबन्धप्रकरणबोळु द्रव्यविभंजनक्रममेकदेशादिवं सूचिसत्त्वट्टुदु :—

| ति० गति         | एकैद्वि         | औ ते का         | हुं             | वर्ण            | गंध             | रस              |
|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|
| स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ |
| स ० १<br>८।९।२० | स ० ८<br>८।९।२० | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२० | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ |

| स्पर्श          | ति० अनु         | अगुह            | उपघात           | स्थावर          | सूक्ष्म         | अपघर्षा         |
|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|
| स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ |
| स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ |

| साधार           | अस्थिर          | अशुभ            | दुर्भग          | अनादे           | अयशस्की         | निर्माण         |
|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|-----------------|
| स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ |
| स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ | स ० ८<br>८।९।२१ |

एवं वक्ष्यमाण शेष २५।२६।२८।२९।३०।३१।१। स्थानेष्वप्येकचत्वारिंशज्जीवपदेषु वक्तव्यं  
इति अत्र प्रदेशबन्धप्रकरणे द्रव्यविभंजनक्रमः सूचितः ॥२०६॥

इकतालीस जीवपदोंमें नामकर्मके स्थानोंका बन्ध जिस प्रकारसे होता है उसका कथन  
आगे करेंगे। इस प्रकार प्रदेशबन्धके कथनमें द्रव्यका बँटवारा कहा। उसका आशय यह है  
कि समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओंमें जिस प्रकृतिका जितना द्रव्य कहा उतने परमाणु उस  
प्रकृतिरूप परिणमते हैं।

विशेषार्थ—कोई बहुभाग आदिको न समझता हो तो उसके लिए दृष्टान्त द्वारा  
समझाते हैं—जैसे सर्वद्रव्य चार हजार छियानबे ४०९६ है। उसका बँटवारा चार जगह  
करना है। प्रतिभागका प्रमाण आठ है। सो चार हजार छियानबेको आठसे भाग दें।  
एक भाग बिना बहुभाग ३५८४ आया; क्योंकि चार हजार छियानबेमें आठका भाग देनेसे  
छब्ब पौंच सौ बारह आया। उसे चार हजार छियानबेमें घटानेपर ३५८४ रहा। उसके  
चार समान भाग करनेपर एक-एक भागमें आठ सौ छियानबे आये। शेष एक भाग पौंच  
सौ बारहमें प्रतिभाग आठका भाग देनेपर चौंसठ आये। सो अलग रख बहुभाग चार सौ  
अड़तालीस बहुत द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग चौंसठमें प्रतिभागका भाग देनेपर आठ  
आये। उसे अलग रख बहुभाग छप्पन उससे हीन द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग आठमें

अनंतरमुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्य जघन्य प्रदेशबंधगच्छो साद्यादिभेदसंभवासंभवविशेषं  
मूलप्रकृतिगच्छो पेच्छपरः—

छण्हंपि अणुककस्सो पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु ।  
सेसतिये दुवियप्पो मोहाऊणं च दुवियप्पो ॥२०७॥

५ वण्णामप्यनुत्कृष्टः प्रदेशबंधस्तु चतुर्विकल्पस्तु । शेषत्रये द्विविकल्पो मोहायुषोश्च-  
तुर्विकल्पः ॥

वण्णां ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीयनामगोत्रान्तरायंगच्छे आरं मूलप्रकृतिगच्छ अनुत्कृष्टः  
प्रदेशबंधः अनुत्कृष्टप्रदेशबंधं चतुर्विकल्पस्तु साद्यानादिध्रुवाध्रुवभेदविधं चतुर्विकल्पमक्कुं । तु  
मत्तमा षड्मूलप्रकृतिगच्छ शेषत्रये अनुत्कृष्टवर्जितोत्कृष्टाजघन्यजघन्यशेषत्रयगच्छो द्विविकल्पः  
१० साद्याध्रुवभेदद्विविकल्पमेयक्कुं । तु मत्तं मोहायुषोः मोहनीयायुष्यंगच्छेरडर चतुर्विकल्पः उत्कृष्टा-  
नुत्कृष्टाजघन्यजघन्यमेव चतुर्विकल्पमुं साद्याध्रुवमेवेरडे विकल्पंगच्छनुच्छवप्पुनुः—

| णा  | वं  | वे  | मो  | आ   | ना  | गो  | अं  |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ | उ २ |
| आ ४ | आ ४ | आ ४ | आ ४ | आ २ | आ ४ | आ ४ | आ ४ |
| अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ | अ २ |
| ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ | ज २ |

अथ उत्कृष्टादीनां साद्यादिविशेषं मूलप्रकृतिष्वह—

वण्णां ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायाणामनुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः साद्यानादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतु-  
र्विधो भवति । तु—पुनः शेषोत्कृष्टाजघन्यजघन्येषु साद्याध्रुवभेदाद् द्विविध एव । तु—पुनः मोहायुषोः उत्कृष्टादि-

- १५ प्रतिभाग आठसे भाग देनेपर एक आया । उसे अलग रख बहुभाग सात उससे भी हीन  
द्रव्यबालेको देना । शेष एक भाग एक उससे भी हीन द्रव्यबालेको देना । अपने-अपने  
समान भागमें इनको मिलानेपर क्रमसे तेरह सौ चवालीस १३४४, नौ सौ बावन ९५२,  
नौ सौ तीन ९०३ और आठ सौ सत्तानवे ८९७ द्रव्यका प्रमाण आया । इस प्रकार चार  
हजार छियानवेका बँटवारा हुआ । इसी प्रकार उक्त प्रकृतियोंका भी जानना । ज्ञानावरण,  
२० दर्शनावरण और मोहनीयकी प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता द्रव्य होता है । अन्तराय और नाम-  
कर्मकी प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य होता है । वेदनीय आयु और उच्च गोत्रकी  
उत्तर प्रकृति एक समयमें एक ही बँधती है । अतः इनका द्रव्य मूल प्रकृतिवत् होता  
है ॥२०६॥

इस प्रकारप्रदेश बन्धके प्रकरणमें द्रव्यके विभागका क्रम कहा । आगे मूल प्रकृतियोंमें  
२५ उत्कृष्ट आदि प्रदेशबन्धके सादि आदि भेद कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र, अन्तराय इन छह कर्मोंका अनुत्कृष्ट  
प्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है । इन्हीं छहोंका उत्कृष्ट

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळुत्कृष्टादिगळगे साध्यादि संभवविकल्पंगळं पेळवपरु :—

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो ।

सेसतिये दुवियप्पो सेसचउक्केवि दुवियप्पो ॥२०८॥

त्रिशतामनुकृष्ट उत्तरप्रकृतिषु चतुर्विधो बन्धः । शेषत्रये द्विविकल्पः शेषचतुर्केषु  
द्विविकल्पः ॥

उत्तरप्रकृतिषु उत्तरप्रकृतिगण्डोऽत्रिंशतां भूवत् प्रकृतिगळ अनुत्कृष्टः अनुत्कृष्टमध्य प्रदेशबंधः प्रदेशबंधं चतुर्विधः चतुर्विधमन्कुमवर शेषत्रये उत्कृष्टाजघन्यजघन्यमेव शेषत्रयवोऽत्र द्विविकल्पः साध्यध्रुवविकल्पद्वयमवकां । शेषचतुष्केपि शेषाणां नवति प्रकृतोनामुत्कृष्टाविचतुष्टयस्तस्मिन् । शेषप्रकृतिगळत्कृटादिचतुर्विकल्पगण्डोऽत्र द्विविकल्पः साध्यध्रुव द्विविकल्पमेववकां—

| ૩૦ | ૧૦ |
|----|----|
| ૩૨ | ૩૨ |
| ૪૪ | ૪૨ |
| ૫૨ | ૫૨ |
| ૬૨ | ૬૨ |

अनंत रमा त्रिशत्प्रकृतिगळावुबंदोडे पेळ्ळपदः—

णाणंतरायदसयं दंसणछक्कं च मोह वोद्दसयं ।

तीसण्हमणुककस्सो पदेसबंधो चदुवियण्णो ॥२०९॥

ज्ञानान्तरायवशकं दर्शनवट्कं च मोहचतुर्दशकं । त्रिशतामनुकृष्टः प्रवेशबन्धश्चतुर्विधकल्पः ॥

चतुर्विधोऽपि साद्यन्त्रवभेदाद्विविधः ॥२०७॥ अथोत्तरप्रकृतीनामाह—

उत्तरप्रकृतिषु त्रिंशतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः, चतुर्विधः शेषोत्कृष्टादित्रयेऽपि सास्यध्वभेदाद् द्विविकल्पः । १५  
शेषनवतिप्रकृतोनामुत्कृष्टादिबन्धचतुर्केऽपि सास्यध्वभेदाद् द्विविकल्प एव ॥२०८॥ तां त्रिंशत्तामह—

अजबन्ध और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अघ्रुवके भेदसे दो प्रकार ही है। मोहनीय और आयुके उत्कृष्ट आदि चारों ही प्रदेशबन्ध सादि और अघ्रुवके भेदसे दो प्रकार हैं ॥२०७॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

उत्तर प्रकृतियोंमें तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और २० अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है। शेष उत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार है। शेष नवेबे प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार हो हैं ॥२०८॥

वे तीस प्रकृतियाँ कहते हैं—

[illegible]



ज्ञानावरणपञ्चकमन्तरायपञ्चकमुं निद्राप्रचलाचक्षुर्दृशनमचक्षुर्दृशनमवधिवर्शनकेवलदर्शना-  
वरणमन्त्रं दर्शनषट्कमुं अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलनक्रोधमानमायालोभं भयं जुगुप्सा-  
मेव मोहश्चतुर्दशकममिन्तु त्रिशत्प्रकृतिगळनुत्कृष्टप्रदेशबन्धं चतुर्विकल्पः साधनादिध्रुवाध्रुवभेद-  
विदं चतुर्विकल्पमकम् ।

५ अनन्तरमुत्कृष्टबन्धस्वामिसामग्रीविशेषं पेन्द्रपरः—

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबन्धमप्पदरो ।

कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीयं ॥२१०॥

उत्कृष्टयोगः संज्ञिपर्याप्तः प्रकृतिबन्धात्पतरः । करोति प्रदेशोत्कृष्टं जघन्येन जानीहि  
विपरीतं ॥

१० प्रदेशोत्कृष्टं प्रदेशोत्कृष्टं उत्कृष्टयोगः उत्कृष्टयोगमनुकृतं संज्ञिपञ्चद्विपसंज्ञिजीवनं  
पर्याप्तः परिपूर्णपर्याप्तिकनुं प्रकृतिबन्धात्पतरः प्रकृतीनां बन्धोऽल्पतरो यस्यासौ प्रकृतिबन्धात्पतरः  
अल्पतरमाह प्रकृतिगळ बन्धमनुकृतं करोति माकृतं । जघन्येन जघन्यविदं प्रदेशबन्धदोळ विपरीतं  
जानीहि उक्तसामग्रीविशेषविपरीतं स्वामियेदरियेवुं शिष्य संबोधिसत्पटं ।

जघन्ययोगमनुकृतनुमसंज्ञियुमपर्याप्तनुं प्रकृतिबन्धबहुतरनुं जघन्यप्रदेशबन्धं माकृतपनेबुदर्थं ।

१५ अनन्तरं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबन्धके गुणस्थानदोळ स्वामित्वमं पेन्द्रपरः—

आउक्कस्सपदेसं छत्तुं मोहस्य णव दु ठाणाणि ।

सेसाणं तणुकसाओ बन्धदि उक्कस्सजोगेण ॥२११॥

आयुहत्कृष्टप्रदेशं षडतीत्य मोहस्य नव तु स्थानानि । शेषाणां तनुकषायो बध्नात्युत्कृष्ट-  
योगेन ॥

२० पञ्चज्ञानावरणपञ्चान्तरायाः निद्राप्रचलाचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-  
संज्वलनक्रोधमानमायालोभभयजुगुप्साश्चेति त्रिशतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धश्चतुर्विकल्पो भवति ॥२०९॥ अथोत्कृष्ट-  
बन्धस्य सामग्रीविशेषमाह—

प्रदेशोत्कृष्टं उत्कृष्टयोगः संज्ञिपर्याप्त एव प्रकृतिबन्धात्पतरः करोति । जघन्ये विपरीतं जानीहि ।

जघन्ययोगासंज्ञिपर्याप्तप्रकृतिबन्धबहुतर एव जघन्यप्रदेशं बन्धं करोतीत्यर्थः ॥२१०॥ अथ मूलप्रकृतीनां

२५ उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य गुणस्थाने स्वामित्वमाह—

पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, निद्रा, प्रचला, चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल  
दर्शनावरण, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय और  
जुगुप्सा इन तीसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि आदि चार प्रकार हैं ॥२०९॥

आगे उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी सामग्री कहते हैं—

१० जो जीव उत्कृष्ट योगसे युक्त होनेके साथ संज्ञी और पर्याप्त होता है तथा थोड़ी  
प्रकृतियोंका बन्ध करता है वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है । और जो उससे विपरीत होता है  
अर्थात् जघन्य योगसे युक्त होता है, असंज्ञी और अपर्याप्त होता है तथा बहुत प्रकृतियोंका  
बन्ध करता है वह जघन्य प्रदेशबन्ध करता है ॥२१०॥

आगे मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामिपना गुणस्थानोंमें कहते हैं—

आयुस्कृष्टप्रदेशं आयुष्यकर्मकृत्कृष्टप्रदेशं षडतीत्य षड्गुणस्थानंगठनतिक्रमिति  
वर्तमाननप्य अप्रमत्तं बध्नाति कटदुगुं । मोहस्य मोहनीयकके प्रदेशोत्कृष्टम् । तु मत्ते । नव  
स्थानानि नवगुणस्थानंगठनेद्विद अनिवृत्तिकरणं बध्नाति कटदुगुं । शेषाणां ज्ञानावरणदर्शनावरण-  
वेदनीय नामगोत्रान्तरायमेव शेषषण्मूलप्रकृतिगठ उत्कृष्टप्रदेशं तनुकषायः सूक्ष्मसांपरायं बध्नाति  
कटदुगुमो प्रकृतिगठुत्कृष्टप्रदेशबंधकके कारणमुत्कृष्टयोगमुं प्रकृतिबंधात्पतरत्वमुमक्कुं । आयुष्य- ५  
कर्मकप्रमत्तं मोहनीयककनिवृत्तिकरणं शेषज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायंगठो  
सूक्ष्मसांपरायनुमेवो मूहं गुणस्थानवर्त्तिगठुत्कृष्टयोगमुं प्रकृतिबंधात्पतरत्वमुं कारणमागुत्तं विरलु  
तंतम्म बंधप्रकृतिगठुत्कृष्टप्रदेशबंधं माळपरे बुद्धयं ।

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगठुत्कृष्टप्रदेशबंधस्वामिगठं गुणस्थानदोळु पेळदपरु गाथात्रयार्दिवं :—

सत्तर सुहुमसरागे पंचअणियट्टिमि देसगे तदियं ।

१०

अयदे बिदियकसायं होदि हु उक्कस्सदव्वं तु ॥२१२॥

सप्तवश सूक्ष्मसांपराये पंचानिवृत्ती देशगे तृतीयः । असंयते द्वितीयकषायो भवति खल-  
त्कृष्टद्वयं तु ॥

छण्णोकसायणिहापयलातित्थं च सम्मगो य जदी ।

सम्मो वामो तेरं णरसुरआऊ असादं तु ॥२१३॥

१५

छण्णोकषायनिद्रा प्रचलास्तीत्यर्थं च सम्यग्दृष्टिर्द्वयं । सम्यग्दृष्टिर्द्वयमिन्द्रियोदश तरसुरायुषी  
असातं तु ॥

देवचउक्कं वज्जं समचउरं सत्थगमणसुभगतियं ।

आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥२१४॥

देवचतुष्कं वज्रं समचतुरत्वं शस्तगमनसुभगत्रयं । आहारमप्रमत्तः शेषप्रदेशोत्कटं मिथ्या- २०  
दृष्टिः ॥

आयुष उत्कृष्टप्रदेशं षड्गुणस्थानान्यतीत्य अप्रमत्तो भूत्वा बध्नाति, मोहस्य तु पुनः नवमं गुणस्थानं  
प्राप्य अनिवृत्तिकरणो बध्नाति । शेषज्ञानदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायाणां सूक्ष्मसांपराय एव । अत्रापि  
स्थानत्रये उत्कृष्टयोगः प्रकृतिबंधात्पतरः इति विशेषणद्वयं जातव्यम् ॥२११॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथात्रयेणाह—

आयुर्कर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध छह गुणस्थानोंको उलंघकर अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती  
करता है । मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नीवें गुणस्थानको प्राप्त करके अनिवृत्तिकरण गुण- २५  
स्थानवर्ती करता है । शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम-गोत्र और अन्तरायका  
उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवर्ती ही करता है । इन तीनों स्थानोंमें भी उत्कृष्ट  
योगका धारक और अल्प प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला ये दो विशेषण जानना । अर्थात् उक्त  
गुणस्थानोंमें भी वही उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है जिसके उत्कृष्ट योग होता है और जो थोड़ी  
प्रकृतियाँ बाँधता है ॥२११॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको कहते हैं—

- ज्ञानावरणपंचकं दर्शनावरणचतुष्कमु मन्तरायपंचकमु यशस्कीर्तिनाममुच्चैर्गोत्रं सात-  
वेदनीयमेव सप्तदशप्रकृतिगळु १७ सूक्ष्मसांपरायनोळु । तु मत्ते पुंवेदमुं संज्वलनचतुष्कमेव  
पंचप्रकृतिगळु ५ अनिवृत्तिकरणनोळु । तृतीयः प्रत्याख्यानकषायचतुष्कं ४ देशगे देशमेकदेशं  
व्रतं गच्छतीति देशगस्तस्मिन् । देशसंयतनोळु । द्वितीयकषायः अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कं ४  
५ असंयते असंयतसम्यग्दृष्टियोळु यितो नात्कुं गुणस्थानंगळोळु कूडि ३० प्रकृतिगळुत्कृष्टद्रव्यमक्षकुं ।  
खलु स्फुटमागि । षण्णोकषायनिद्राप्रचलास्तीर्थं च हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साषण्णोकषायगळुं ६  
निद्रादर्शनावरणमु १ प्रचलादर्शनावरणमुं १ तीर्थं १ भुमेव नवप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधमं सम्यग्-  
दृष्टिश्च सम्यग्दृष्टि माळकुं । त्रयोदश वक्ष्यमाणत्रयोदशप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधमं सम्यग्दृष्टिश्च  
सम्यग्दृष्टियुं । यदि एतलानुं आमश्च मिथ्यादृष्टियुं माळकुमदाउबेदोडे पेळदपरु :—नरसुरायुषी  
१० मनुष्यायुष्यमुं १ सुरायुष्यमुं १ असातं तु । तु मत्तमसातवेदनीयमुं १ देवचतुष्कमुं देवगति देव-  
गत्यानुपूर्व्यं वैक्रियिकशरीर तदंगोपांगमं देवचतुष्कमुं ४ । वज्रं वज्ररूपभनाराचसंहननमुं १ ।  
समचतुरस्रं समचतुरस्रशरीरसंस्थानमुं १ । शस्तगमनसुभगत्रयम् प्रशस्तविहायोगतियुं १ ।  
सुभगसुस्वरादेयमेव सुभगत्रयमुं ३ ये विवु त्रयोदशप्रकृतिगळुप्पुवु । आहारं आहरकद्वयके २  
अप्रमत्तनुत्कृष्टप्रदेशबंधमं माळकुमिन्तु सू १७ । अ ५ । दे ४ । अ ४ । सम्यग्दृष्टिगळ ९ । सम्यग्-  
१५ दृष्टिमिथ्यादृष्टिगळ १३ । अप्रमत्तन २ अन्तुक्त ५४ प्रकृतिगळं कळेदु शेषदर्शनावरणस्त्यानगृद्धि-  
त्रयमुं ३ मिथ्यात्वमनंतानुबंधिचतुष्कमुं स्त्रीवेदमुं नपुंसकवेदमुमेव मोहनीयसमकमुं ७ । नरक-  
तिथ्यंगायुर्द्वयमुं २ । नरकतिथ्यंगमनुष्यगतित्रितयमुं ३ एकंद्रियादि जाति पंचकमु ५ । औदारिक  
तैजसकामर्मणशरीरत्रयमुं ३ । न्यग्रोधपरिमंडल स्वातिकुब्जवामनहुडशरीरसंस्थानपंचकमुं ५ ।

- पञ्च चतुःपञ्चज्ञानदर्शनावरणान्तराययशस्कीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानामुत्कृष्टद्रव्यं सूक्ष्मसांपराये भवति ।  
तु—पुनः पुंवेदसंज्वलनानां अनिवृत्तिकरणे भवति । प्रत्याख्यानकषायाणां देशसंयते, अप्रत्याख्यानकषायाणाम-  
२० संयते खलु स्फुटम् । षण्णोकषायनिद्राप्रचलातीर्थानामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिः करोति । वक्ष्यमाणत्रयोदशानां  
सम्यग्दृष्टिः मिथ्यादृष्टिर्वा यदि । तानि त्रयोदश तु—पुनः नरसुरायुषी असातं देवगतिद्वयानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीर-  
तदङ्गोपाङ्गानि वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं प्रशस्तविहायोगतिः सुभगसुस्वरादेयानि भवन्ति ।  
आहारद्वयस्य अप्रमत्तः उत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । उक्तचतुःपञ्चाशतः शेषाणां स्थानगृद्धित्रयमिध्वात्वानन्तानु-  
बन्धिस्त्रीनपुंसकवेदनरकतिथ्यंगायुर्नरकतिथ्यंगमनुष्यगतिपञ्च जात्यौदारिकतैजसकामर्मण्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्ज-

- २५ पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, साता-  
वेदनीय इन सतरहका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्म साम्परायमे होता है । पुरुषवेद और चार  
संज्वलन कषाय इन पाँचका अनिवृत्तिकरणमे होता है । तीसरी प्रत्याख्यान कषायोंका देश-  
विरतमे होता है । दूसरी अप्रत्याख्यान कषायोंका असंयतमे होता है । छह नोकषाय, निद्रा,  
प्रचला और तीर्थकरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि करता है । आगे कही गयी तेरह  
३० प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि करता है । वे तेरह इस प्रकार हैं—मनुष्यायु,  
देवायु, असातावेदनीय, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वज्रर्षभ-  
नाराचसंहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय । आहारक-

औदारिकांगोपांगमुं १ वज्रनाराचनाराच अर्धनाराच कीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननपंचकमु ५  
वर्णचतुष्कमुं ४ । नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रितयमुं ३ अगुरुलघुकमुं १ उपघातमुं १ परघातमुं  
१ उच्छ्वासमुं १ आतपमुं १ । उद्योतमुं १ अप्रशस्तविहायोगतियुं १ त्रसस्थावरद्विकमुं २  
बादरसूक्ष्मद्विकमुं २ । पर्याप्तपर्याप्तद्विकमुं २ । प्रत्येक साधारणशरीरद्विकमुं २ । स्थिरास्थिर-  
द्विकमुं २ । शुभाशुभद्विकमुं २ । दुर्भंगमुं १ दुःस्वरमुं १ अनादेयमुं १ अयशस्कीर्तियुं १ । निर्माण- ५  
नाममु १ नीचैर्गोत्रमुं मेघ षट्षष्टिप्रकृतिगच्छे प्रदेशोत्कटमं मिथ्यादृष्टिये माळकु । यितुक्तानुक्त  
१२० प्रकृतिगच्छे प्रदेशोत्कटबंधकारमुत्कृष्टयोगप्रकृतिबंधात्पतरत्वमनुक्त संज्ञिपर्याप्तजीवंगळे  
प्रदेशोत्कटबंधमं माळपर । इल्लि मिथ्यात्वप्रकृतिगे मिथ्यादृष्टियोळ व्युच्छित्तियागलनन्तानुबंधिगे  
सासादननोळेकिंतु अप्रहणमेशोडे मिथ्यात्वद्रव्यक्के देशघातिगळे स्वामिगळपुदरिदमदु कारण-  
मागिये प्रकृत्यत्पतराभावमपुदरिदं मुन्निनंते संबंधप्रकृतिगळपुदरिननन्तानुबंधिगातनोळग्रहण- १०  
मवकुं ।

अनंतरं मुन्नं जहणए जाण विवरीयमेदरपुदरिदमा जघन्यप्रदेशबंधस्वामिसामग्रीविशेषमं  
पेळवपर :-

वामनहुण्डीदारिकाङ्गोपाङ्गवज्रनाराचार्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकाचतुर्वर्णनरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यागुरुलघू-  
पघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिर- १५  
शुभाशुभदुर्भंगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तिनिर्मणनीचैर्गोत्राणां षट्षष्टेः मिथ्यादृष्टिरेव करोति । एवमुक्तानुक्त १२०  
प्रकृतीनां उत्कृष्टप्रदेशबन्धकारणमुत्कृष्टयोगादिप्रागुक्तमेवावसेयम् । अत्र मिथ्यात्वस्य मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिद्रव्य-  
मुत्कृष्टमुक्तं, तथानन्तानुबन्धिनः सासादने किमिति नोच्यते ? तन्न मिथ्यात्वद्रव्यस्य देशघातिनामेव स्वामित्वात्  
॥२१२-२१४॥ अथ पूर्वं 'जहणये जाण विवरीय' इत्युक्तं तत्सामग्रीविशेषमाह—

द्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अप्रमत्त करता है । इन चौवन प्रकृतियोंसे शेष रहीं स्थानगृद्धि २०  
आदि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी कषाय चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकायु, तिर्यचायु,  
नरकमति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर,  
न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान,  
औदारिक अंगोपांग, वज्रनाराच, अर्धनाराच, कीलित, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, वर्णादि २५  
चार, नरकानुपूर्वी, तिर्यगनुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास,  
आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक,  
साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भंग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण,  
नीचगोत्र इन छियासठका मिथ्यादृष्टि ही करता है । इस प्रकार गाथामें कही गयी और न  
कही गयी एक सौ बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कारण पूर्वमें कहे उत्कृष्ट योग आदि  
जानना । ३०

संका—यहाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्तिका द्रव्य उत्कृष्ट कहा है ।  
इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीका सासादनमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—

आगे मूल प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामी कहते हैं—

सुहृमणिगोदअपज्जत्तयस्य पढमे जहण्णए जोगे ।

सत्तण्हं तु जहण्णं आउगबंघेवि आउस्स ॥२१५॥

सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकस्य प्रथमे जघन्येन योगेन । सप्तानां तु जघन्यः आयुर्बन्धेऽप्युषः ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकन भवप्रथमसमयबोद्धुं जघन्ययोगविदं ज्ञानावरणादिसप्तमूल-  
५ प्रकृतिगच्छेजघन्यमप्य प्रदेशबन्धमक्कु । आयुर्बन्धबोद्धुमवक्कुं जघन्यप्रदेशबन्धमक्कुं ।

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगच्छे जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिविशेषमं पेळवपरः—

घोटणजोगोऽसण्णो णिरयदुसुरणिरय आउगजहण्णं ।

अपमत्तो आहारं अयदो तित्थं च देवचऊ ॥२१६॥

घोटमानयोगोऽसंज्ञिनरकद्वयसुरनारकायुज्जंघन्यमप्रमत्त आहारकस्यासंयतस्तीर्त्यस्य च देव

१० चतुष्कस्य ॥

घोटमानयोगः येषां योगस्थानानां वृद्धिहान्यवस्थानं च संभवति । तानि घोटमानयोगस्थान-  
नानामानि । परिणामयोगस्थानानोति भणितं भवति । हानिवृद्धयवस्थानंगळिबं परिवर्त्तमानयोगमं  
परिणममानयोगमं घोटमानयोगमेबुदंतप्य घोटमानयोगस्थानयुतनप्य असंज्ञिजीवनु नरकद्वयसुरा-  
युन्नारकायुर्द्वयमेव ४ नात्कुं प्रकृतिगच्छे जघन्यप्रदेशबन्धमं माळकुं । आहारद्वयवक्कुप्रमत्तं जघन्य-

१५ प्रदेशबन्धमं माळकुमेकं बोद्धुपूर्वकरणनं नोडलुमप्रमत्तसंयतंगष्टविधकर्मबन्धसंभवमप्युदरिवंबहु-  
प्रकृतिबन्धं संभविगुमप्युदरिवं असंयतसस्यगृष्टिगुं भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योपपादयोगयुतं  
तीर्त्यकरनामवक्कुं सुरचतुष्कवक्कुं जघन्यप्रदेशबन्धमं माळकुमिन्तेकावशप्रकृतिगळं कळवु शेषनघो-  
त्तरशतप्रकृतिगच्छे जघन्यप्रदेशबन्धमं माळप्य स्वामिविशेषमं पेळवपरः—

सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकः स्वभवप्रथमसमये जघन्ययोगेन सप्तमूलप्रकृतीनां जघन्यं प्रदेशबन्धं करोति ।

२० आयुर्बन्धे च आयुषोऽपि ॥२१५॥ अथोत्तरप्रकृतीनामाह—

येषां योगस्थानानां वृद्धिः हानिः अवस्थानं च संभवति तानि घोटमानयोगस्थानानि—परिणामयोग-  
स्थानानोति भणितं भवति । तद्योगोऽसंज्ञिनरकद्वयसुरनारकायुषां जघन्यप्रदेशबन्धं करोति । आहारकद्वयस्य  
अप्रमत्तः करोति, कुतः ? अपूर्वकरणस्य बहुप्रकृतिबन्धसंभवात् । असंयतो भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योप-  
पादयोगः तीर्थकरत्वस्य सुरचतुष्कस्य च ॥२१६॥ उक्तैकादशम्यः शेषाणां विशेषमाह—

२५ सूक्ष्म निगोदिया लब्ध पर्याप्तक जीव अपनी पर्याप्तके प्रथम समयमें जघन्य योगके  
द्वारा सात मूल प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । आयुबन्ध होनेपर आयुका जघन्य  
प्रदेशबन्ध भी वही करता है ॥२१५॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

जिन योगस्थानोंकी वृद्धि भी होती है, हानि भी होती है और जैसेके तैसे भी रहते हैं  
३० उनको घोटमान योगस्थान अथवा परिणाम योगस्थान कहते हैं । ऐसे योगका धारी असंज्ञी  
जीव नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवायु और नरकायु इन चारोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है ।  
आहारकद्विकका अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है; क्योंकि अपूर्वकरणसे वह अधिक प्रकृतियों-  
को बाँधता है । भव ग्रहण करनेके प्रथम समयमें जघन्य उपपाद योगस्थानका धारी असंयत  
सम्यग्दृष्टी तीर्थकर, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य  
३५ प्रदेशबन्ध करता है ॥२१६॥

सुहृमणिगोदो बंधदि सेसाणं अवरबंधं तु ॥२१७॥

तु मत्तं चरमापूर्णंभवस्थः द्वादशोत्तरखट्सहस्रस्वकीयापठ्याप्रभवंल चरमभवदोलु

इति द्वि विविग्रहे विग्रहगतिः, त्रिविक्रमलोः प्रथमविग्रहे प्रथमवक्रदोः स्थितः पिरल्पदृ सूक्ष्म-  
निगोदः सूक्ष्मं निगोदजीवं । शेषाणां शेष १०९ नवोत्तरशत प्रकृतिगळगे अवरोधं जघन्यप्रदेश-  
बंधं बध्नाति कट्टुगुं । इन्ती प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधप्रकरणगळोः प्रथमोक्तप्रकृतिबंधदोः  
मूलोत्तरप्रकृतिगळनु येकजीवनेकसमयदोः कट्टुव संबंधज्ञानावरणाद्यष्टविधसर्वप्रकृतिस्थानगळ  
जघन्योत्कृष्टमध्यमगळगे तद्वंधकालदोः तद्वंधस्थानगतप्रकृतिगळगे स्थित्यनुभागप्रदेशबंध-  
भेदगळमुपपुदरितं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानगळोः रचनाविशेषं वृत्तिकारनिवं तोरिसल्पगुं— १०

|       |         |      |    |             |              |                         |                  |
|-------|---------|------|----|-------------|--------------|-------------------------|------------------|
| अ     | ५       | ४    | १  | ५           | ४१३१२११      | ०                       | ११               |
| अ     | ५       | ६४   | १  | ९           |              | ०                       | २८१२५३०३१११      |
| अ     | ५       | ६    | १  | ९           |              | १                       | २८१२५३०३१११      |
| प्र   | ५       | ६    | १  | ९           |              | १                       | २८१२५            |
| वे    | ५       | ६    | १  | १३          |              | १                       | २८१२५            |
| अ     | ५       | ६    | १  | १७          |              | १                       | २८१२५३०          |
| मि    | ५       | ६    | १  | १७          |              | ०                       | २८१२५            |
| सा    | ५       | ९    | १  | २१          |              | १                       | २८१२५३०          |
| मि    | ५       | ९    | १  | २२          |              | १                       | २३१२५१२६१२८१२५३० |
|       |         | वे   |    |             | २६१२५१२१११७१ |                         |                  |
| सात १ | णा ५९६४ | वे २ | मो | १३१५१४१३१११ | आ ४          | ना १२१२५१२६१२८१२५३०३१११ |                  |

|           |   |                    |      |       |      |       |     |       |      |      |      |    |   |
|-----------|---|--------------------|------|-------|------|-------|-----|-------|------|------|------|----|---|
| १         | ५ | २२।२१।२०।१९।१८     |      |       |      |       |     |       |      |      |      |    |   |
| १         | ५ | ५५।५६।५७।५८।५९।    |      |       |      |       |     |       |      |      |      |    |   |
| १         | ५ | ५६।५७।५८।५९।       |      |       |      |       |     |       |      |      |      |    |   |
| १         | ५ | ५९।५७।             |      |       |      |       |     |       |      |      |      |    |   |
| १         | ५ | ६०।६१।             | आ०   | ०     | ०    | ०     | ०   | ०     | ०    | ०    | ०    | ०  | ० |
| १         | ५ | ६४।६५।६६।          | स।०  | ०     | १    | ०     | ०   | ०     | ०    | ०    | ०    | ०  | १ |
| १         | ५ | ६३।६४।             | सी।० | ०     | १    | ०     | ०   | ०     | ०    | ०    | ०    | ०  | १ |
| १         | ५ | ७१।७२।७३।          | उ।०  | ४     | १    | ०     | ०   | ०     | ०    | ०    | ०    | ०  | १ |
| १         | ५ | ६७।६९।७०।७२।७३।७४। | सू ५ | ४     | १    | ०     | ०   | १     | १    | १    | ५    | १७ |   |
| मो २ अं ५ |   | अंतु कंगलिवु       | णा ५ | वें ९ | वे २ | मो २६ | आ ४ | ना ९३ | गो २ | अं ५ | बंक. |    |   |

तु-पुनः द्वादशोत्तरषट्सहस्रापर्याप्तभवानां चरमभवस्यो विग्रहगतित्रिवक्त्रेषु प्रथमवक्त्रे स्थितः सूक्ष्म-  
निगोदः शेषनवोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं बध्नाति । अत्र चतुर्थं बन्धेषु प्रथमोक्तप्रकृतिबन्धे मूलोत्तर-

छह हजार बारह क्षुद्रभवोंमें-से अन्तिम क्षुद्रभवमें स्थित तथा विप्रवृत्तिके तीन

प्रकृतीनामेकजीवस्य एकसमये सबन्धप्रकृतिजघन्यादिस्थानानां बन्धकाले तद्गतप्रकृतीनां स्थित्यनुभागप्रदेश-  
बन्धभेदा भवन्ति इति मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु रचनाविशेषो वृत्तिकारेण दर्शयते—

|      |   |      |       |                                     |      |                                   |             |   |                       |
|------|---|------|-------|-------------------------------------|------|-----------------------------------|-------------|---|-----------------------|
| अ    | ० | ०    | ०     | ०                                   | ०    | ०                                 | ०           | ० | ०                     |
| स    | ० | ०    | १     | ०                                   | ०    | ०                                 | ०           | ० | १                     |
| क्षी | ० | ०    | १     | ०                                   | ०    | ०                                 | ०           | ० | १                     |
| उ    | ० | ०    | १     | ०                                   | ०    | ०                                 | ०           | ० | १                     |
| सू   | ५ | ४    | १     | ०                                   | ०    | १                                 | १           | ५ | १७                    |
| अ    | ५ | ४    | १     | ५४१३१२१                             | ०    | १                                 | १           | ५ | २२१२१२०११९।<br>१८     |
| अ    | ५ | ६४   | १     | ९                                   | ०    | २८१२९१३०।<br>३११                  | १           | ५ | ५५१५६१५७१५८।<br>२६    |
| अ    | ५ | ६    | १     | ९                                   | १    | २८१२९१३०।<br>३१                   | १           | ५ | ५६१५७१५८१५९           |
| प्र  | ५ | ६    | १     | ९                                   | १    | २८१२९                             | १           | ५ | ५६१५७                 |
| हे   | ५ | ६    | १     | १३                                  | १    | २८१२९                             | १           | ५ | ६०१६१                 |
| अ    | ५ | ६    | १     | १७                                  | १    | २८१२९१३०                          | १           | ५ | ६४१६५१६६              |
| मि   | ५ | ६    | १     | १७                                  | ०    | २८१२९                             | १           | ५ | ६३१६४                 |
| सा   | ५ | ९    | १     | २१                                  | १    | २८१२९१३०                          | १           | ५ | ७११७२१७३              |
| मि   | ५ | ९    | १     | २२                                  | १    | २३१२५१२६।<br>२८१२९१३०             | १           | ५ | ६७१६९१७०।<br>७२१७३१७४ |
|      | ५ | १६१२ | बे. २ | मो. २६१२२१२१।<br>१७१३१९१५<br>४१३१२१ | आ. ४ | ना २३१२५१२६।<br>२८१२९१३०।<br>३१११ | मो. २, अ. ५ |   |                       |

५ मोड़ोंमें-से प्रथम मोड़ेमें स्थित सूक्ष्म निगोदिया जीव शेष एक सौ नौ प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

यहाँ चार प्रकारके बन्धोंमें प्रथम कहे प्रकृतिबन्धमें मूल और उत्तर प्रकृतियोंका एक जीवके एक समयमें एक साथ बँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्यादि भेदरूप स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्धके भेद होते हैं। सो मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें टीकाकार रचनाविशेष दिखाते हैं—

| गुण.  | ज्ञाना-<br>वरण | दर्शनाव-<br>र्ण | वेदनीय | मोहनीय                    | आयु                    | नाम                    | गोत्र             | सब प्रकृतियोंका एक<br>जीवके एक कालमें<br>बन्धका प्रमाण |
|-------|----------------|-----------------|--------|---------------------------|------------------------|------------------------|-------------------|--------------------------------------------------------|
| अ.    | ०              | ०               | ०      | ०                         | ०                      | ०                      | ०                 | ०                                                      |
| स.    | ०              | ०               | १      | ०                         | ०                      | ०                      | ०                 | १                                                      |
| क्षी. | ०              | ०               | १      | ०                         | ०                      | ०                      | ०                 | १                                                      |
| उ.    | ०              | ०               | १      | ०                         | ०                      | ०                      | ०                 | १                                                      |
| सू.   | ५              | ४               | १      | ०                         | ०                      | १                      | १                 | १७                                                     |
| अ.    | ५              | ४               | १      | ५४३२११                    | ०                      | १                      | १                 | २२/२१/२०/१९/१८                                         |
| अ.    | ५              | ६/४             | १      | ९                         | ०                      | २८/२९/३०/३१/११         | १                 | ५५/५६/५७/५८/२६                                         |
| अ.    | ५              | ६               | १      | ९                         | १                      | १                      | १                 | ५६/५७/५८/५९                                            |
| अ.    | ५              | ६               | १      | ९                         | १                      | २८/२९                  | १                 | ५६/५७                                                  |
| दे.   | ५              | ६               | १      | १३                        | १                      | २८/२९                  | १                 | ६०/६१                                                  |
| अ.    | ५              | ६               | १      | १७                        | १                      | २८/२९/३०               | १                 | ६४/६५/६६                                               |
| मि.   | ५              | ६               | १      | १७                        | ०                      | २८/२९                  | १                 | ६३/६४                                                  |
| सा.   | ५              | ९               | १      | २१                        | १                      | २८/२९/३०               | १                 | ७१/७२/७३                                               |
| मि.   | ५              | ९               | १      | २२                        | १                      | २३/२५/२६/२८/२९/३०/३१/१ | १                 | ६७/६९/७०/७२/७३/७४                                      |
|       | ज्ञाना-<br>वरण | दर्शनाव-<br>र्ण | वे. १  | २६/२२/२१/१७/१३/१५/४/३/२/१ | म. ४<br>आ. ४<br>प्र. ४ | २३/२५/२६/२८/२९/३०/३१/१ | गोत्र २<br>में एक | ५                                                      |

इसका आशय यह है कि एक जीवके एक कालमें ज्ञानावरणकी पाँच ही प्रकृतियोंका बन्ध होता है। दर्शनावरणकी नौका, छहका अथवा चारका बन्ध होता है। वेदनीयकी दोमें एकका ही बन्ध होता है। मोहनीयकी छब्बीसमें-से बाइस या इक्कास या सतरह या तेरह या नौ या पाँच चार दो और एकका बन्ध होता है। आयु चारमें-से एक ही बँधती है। नामकर्मकी तेईस या पच्चीस या छब्बीस या अठाईस या उनतीस या तीस या इक्तीस या एक प्रकृतिका बन्ध होता है। गोत्र दोमें-से एक बँधता है। अन्तराय पाँचका ही बन्ध होता है।



- यिल्लि मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळ स्थानविकल्पंगळो प्रत्येकं प्रकृतिभेदादि भंगंगळु पुट्टुमेदेते दोर्ड मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ ६७ स्थानमेकप्रकारमेयवकुमत्त ६९ मरुवत्तो भत्तर स्थानदोळ नवभंगंगळप्पुवु । मत्तं ७० २ स्थानदोळ ८ भंग गळप्पुवु मत्तं ७२ स्थानदोळ नव-भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७३ २२ स्थानदोळो भत्तुसासिरवइन्नूर हदिनार ९२१६ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ९२१६
- ५ ७४ २ स्थानदोळ ४६०८ भंगंगळप्पुवु । सासादनन ७१ २ स्थानदोळ ८ भंगंगळप्पुवु । ४६०८
- मत्तं ७२ २ स्थानदोळ ६४०० भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७३ २२ स्थानदोळ ३२०० भंगंगळ- ६४०० ३२००
- प्पुवु । मिश्रन ७३ २२ स्थानदोळ ८ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७४ २ स्थानदोळ ८ भंगंगळप्पुवु ।
- असंयतन अरुवत्तनात्कर ६४ २ स्थानदोळ एंटु ८ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ६५ २ स्थानदोळ १६ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ६६ २२ स्थानदोळ ८ भंगंगळप्पुवु । देशसंयतन ६० । ६१ एंटु भंग- ८ । ८

- १० अत्र गुणस्थानेषु स्थानविकल्पानां प्रकृतिभेदेन भङ्गा उत्पद्यन्ते । तत्र मिथ्यादृष्टौ ६७ स्थाने एको १ भङ्गः । पुनः ६९ स्थाने १ नवभङ्गाः पुनः ७० स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ७२ स्थाने नव ९ । पुनः ७३ स्थाने नवसहस्रद्विशतषोडश ९२१६ । पुनः ७४ स्थाने ४६०८ । सासादनस्य ७१ स्थाने अष्टौ ८ । पुनः ७२ स्थाने ६४०० । पुनः ७३ स्थाने ३२०० । मिश्रस्य ६३ स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ६४ स्थाने अष्टौ ८ । असंयतस्य ६४ स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ६५ स्थाने १६ । पुनः ६६ स्थानेऽष्टौ ८ । देशसंयतस्य ६० । ६१ अष्टावष्टौ । अप्रमत्तस्य

- १५ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण नौ, वेदनीय एक, मोहनीय बाईस, आयु एक, नामकर्म तेईस या पच्चीस या अठाईस या उनतीस या तीसका, गोत्र एक और अन्तराय पाँचका बन्ध होता है । सब प्रकृतियोंको जोड़नेपर सड़सठ या उनहत्तर या सत्तर, या बहत्तर या तेहत्तर या चौहत्तरका बन्ध होता है । इसी प्रकार सासादन आदि गुणस्थानोंमें भी ऊपर कहे अनुसार जानना ।

- २० प्रकृतियोंके बदलनेसे भंग होते हैं । जैसे चौहत्तरके बन्धमें वेदनीय कर्मका बन्ध है । उसमें साता या असाताके बन्धकी अपेक्षा दो भंग होते हैं । इसी प्रकार प्रकृतियोंके घटने-बढ़नेसे स्थानभेद होते हैं । और एक ही स्थानमें प्रकृतियोंके बदलनेसे भंग होते हैं । वही कहते हैं—

- २५ मिथ्यादृष्टिमें सड़सठके स्थानमें एक भंग है । उनहत्तरके स्थानमें नौ भंग हैं । सत्तरके स्थानमें आठ भंग हैं । बहत्तरके स्थानमें नौ भंग हैं । तेहत्तरके स्थानमें बानवे सौ सोलह भंग हैं । चौहत्तरके स्थानमें छियालीस सौ आठ भंग हैं । सासादनमें इकहत्तरके स्थानमें आठ भंग हैं । बहत्तरके स्थानमें चौंसठ सौ भंग हैं । तेहत्तरके स्थानमें बत्तीस सौ भंग हैं । मिश्रमें तिरसठ चौंसठ दोनों स्थानोंमें आठ-आठ भंग हैं । असंयतमें चौंसठ, पैसठ, छियासठ-के स्थानोंमें आठ-आठ भंग हैं । देशसंयतमें साठ और इकसठके स्थानमें आठ-आठ भंग हैं ।

गळप्पुवु । प्रमत्तन ५६ । ५७ एते दु भंगगळप्पुवु । अप्रमत्तन ५६ । ५७ । ५८ । ५९ स्थानंग-  
८ । ८ १ १ १ १  
ळोळु प्रत्येकमो दो वप्पुवु । अपूर्वकरणन ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । २६ एकैकभंगगळप्पुवु ।  
१ १ १ १  
अनिवृत्तिकरणन २२ । २१ । २० । १९ । १८ एकैकभंगगळप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायन १७ र  
१ १ १ १ १  
स्थानदोळेकभागमेयक्कुमी भंगगळु मुंदे नामस्थानकथनदोळु सुव्यक्तमावप्पुवु ॥

अनंतरं प्रकृतिप्रदेशबंधगळगे कारणयोगस्थानंगळ स्वरूपसंख्यास्वामिगळं द्विचत्वारिंशद्गा-  
थासूत्रंगळिदं पेन्डवपरः :

जोगट्टाणा तिविहा उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।

भेदा एक्केक्कंपि य चोदसभेदा पुणो तिविहा ॥२१८॥

योगस्थानानि त्रिविधान्युपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदादेकैकमपि च चतुर्दशभेदानि पुनस्त्रि-  
विधानि ॥

योगस्थानानि योगस्थानंगळ उपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदात् उपपादएकान्तानुवृद्धिपरि-  
णामभेदाद्विदं त्रिविधानि त्रिप्रकारंगळप्पुवु । च मत्ते एकैकमपि उपपादैकान्तवृद्धिपरिणामगळा-  
कैकमुं प्रत्येकं चतुर्दश भेदानि चतुर्दशभेदंगळनुळुवु । पुनः मत्ते त्रिविधानि सामान्यजघन्योत्कृष्ट-

५६ । ५७ अष्टावष्टी । अप्रमत्तस्य ५६ ५७ ५८ ५९ एकैकः । अपूर्वकरणस्य ५५ ५६ ५७ ५८ २६ एकैकः  
१ १ १ १ १

अनिवृत्तिकरणस्य २२ । २१ । २० । १९ । १८ एकैकः । सूक्ष्मसांपरायस्य १७ स्थाने एकः । एते भङ्गा  
१ १ १ १ १

अष्टे नामस्थानकथने सुग्यक्तं संति ॥२१७॥ अथ प्रकृतिप्रदेशबन्धकारणयोगस्थानानां स्वरूपसंख्यास्वामिनो  
द्विचत्वारिंशद्गाथाभिराह—

योगस्थानानि उपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदात्त्रिविधानि । च—पुनः तेषामेकैकमपि प्रत्येकं चतुर्दशभेदं

प्रमत्तमें छप्पन और सत्तावनके स्थानमें आठ-आठ भंग हैं । अप्रमत्तमें छप्पन, सत्तावन,  
अठावन और उनसठके स्थानोंमें एक-एक भंग है । अपूर्वकरणमें पचपन, छप्पन, सत्तावन,  
अठावन और छब्बीसके स्थानोंमें एक-एक भंग हैं । अनिवृत्तिकरणमें बाईस, इक्कीस, बीस,  
उन्नीस और अठारहके स्थानोंमें एक-एक भंग है । सूक्ष्म साम्परायमें सतरहके स्थानमें एक  
भंग है । ये भंग आगे नामकर्मके स्थानोंमें प्रकट करेंगे ॥२१७॥

आगे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके कारण योगस्थानोंका स्वरूप, संख्या और स्वामी  
बयालीस गाथाओंसे कहते हैं—

योगस्थान तीन प्रकारके हैं—उपपाद योगस्थान, एकान्तवृद्धि योगस्थान और परिणाम  
योगस्थान । उनमेंसे एक-एक भेदके चौदह जीव समासोंकी अपेक्षा चौदह-चौदह भेद होते  
हैं । ये चौदह-चौदह भेद भी सामान्य, जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारके हैं ।

भेदविदं त्रिविधं गच्छेत्तु :

| उपपा | एकां | परिणा        |
|------|------|--------------|
| १४   | १४   | १४ सा        |
| २८   | २८   | २८ सा<br>ज   |
| ४२   | ४२   | ४२ सा ज<br>उ |

अनंतरं सामान्य सामान्य जघन्य सामान्य जघन्योत्कृष्टभेदविदं १४। २८। ४२।  
पदिनात्कुमिष्यते तु नात्वन्तरदुमुपपादयोगस्थानंगत्पुष्यतिथं पेञ्चपदः—

उपपादयोगाणां भवादिसमयट्ठयस्स अवरवरा ।

विग्गहउजुगइगमणे जीवसमासेषु णायव्वा ॥२१९॥

उपपादयोगस्थानानि भवादिसमयस्थितस्यावरवराणि । विग्रहजुगतिगमने जीवसमासेषु  
ज्ञातव्यानि ॥

उपपादयोगस्थानानि उपपादयोगस्थानंगळु भवादिसमयस्थितस्य पूर्वभवशरीरं विदुत्तर  
भवादिसमयदोळिहस्तिहंगे । अवरवराणि जघन्योत्कृष्टयोगंगळु विग्रहजुगतिगमने विग्रहगतिविब-  
१० मुत्तरभवक्के सलुवल्लियं ऋजुगतिगमनदिदमुत्तरभवक्के सलुवल्लियं । यथासंख्यमागिजघन्योपपाद-  
योगस्थानंगळुमुत्कृष्टोपपादयोगस्थानंगळु जीवसमासेषु चतुर्दशजीवसमासेगळोळुत्तरचनाविशेषोळु  
ज्ञातव्यानि अरियत्पडुवुवु । उपपद्यते प्राप्यते भवप्रथमसमयो जंतुनेत्युपपादः । एवंतु उपपाद-

भवति । तेषां भेदाः पुनः सामान्यजघन्योत्कृष्टभेदास्त्रिविधा भवन्ति ॥२१८॥ अथ सामान्यजघन्यसामान्यो-  
त्कृष्टभेदेन १४। २८। ४२ चतुर्दशाष्टाविंशतिश्चात्वारिंशदुपपादयोगस्थानानामुत्पत्तिमाह—

१५ उपपादयोगस्थानानि उत्तरभवस्य आदिसमये स्थितस्य, विग्रहगत्योत्तरभवगमने जघन्यानि, ऋजु-  
गत्यादोत्कृष्टानि भवन्ति । तानि जीवसमासे चतुर्दशसूक्तरचनाविशेषे ज्ञातव्यानि । उपपद्यते प्राप्यते भव-

सामान्यके भेदसे चौदह भेद हैं, सामान्य और जघन्यके भेदसे अठ्ठाईस भेद हैं । तथा  
सामान्य, जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे बयालीस भेद हैं ॥२१८॥

आगे उपपाद योगस्थानका स्वरूप कहते हैं—

२० भवके प्रथम समयमें स्थित जीवके उपपाद योगस्थान होता है । जो जीव विग्रह  
गतिसे जाकर नवीन भव धारण करता है उसके जघन्य उपपाद योगस्थान होता है । और  
जो बिना मोड़ेवाली ऋजुगतिसे जाकर नवीन भव धारण करता है उसके उत्कृष्ट उपपाद  
योगस्थान होता है । वे चौदह जीव समासोंमें होते हैं । ‘उपपद्यते’ अर्थात् जो जीवके द्वारा

योगद सामान्य सामान्यजघन्य सामान्यजघन्योत्कृष्टयोगभेदंगन्तितुं भवप्रथमसमयसंभविगळपु-  
र्वेवृत्त्यमनंतरं परिणामयोगके पेन्द्रपरः—

प्रथमसमये जन्तुना इत्युपपादः । तस्य सामान्यादिभेदाः सर्वेऽपि भवप्रथमसमये एव संभवतीत्यर्थः ।

|                                                                                                              |                                                                                    |                                                                                   |                                                                                |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------|
| स्थिति । ए । सू । प<br>परि । उ०००ज<br>०<br>उ २१ ०<br>०<br>इं २१परि । उ०००ज<br>श २१परि । उ०००ज<br>परि । उ०००ज | स्थिति । ए । सू । अप<br>परि । उ०००ज<br>०<br>०<br>०<br>१ । १ ०<br>१ । १३ परि । उ००ज | स्थिति । ए । बा । प<br>परि । उ००ज<br>उ ०<br>इं ०<br>०<br>०<br>०<br>श २१परि । उ००ज | स्थिति । ए । बा । अप<br>परि । उ०००ज<br>१ । १ । ०<br>१ । १३ ०<br>०<br>परि उ०००ज |
| शरीर प २१ एकां । उ<br>०<br>०<br>१ एकांतानुवृद्धि । ज                                                         | एकांतानु उ<br>१ । २ ०<br>१ । १३ ०<br>१ । एकांतानुवृद्धि ज                          | श २ १ एकांतानुवृद्धि उ<br>०<br>०<br>०<br>१ एकांतानुवृद्धि ज                       | एकांता उ<br>१ । २ । ०<br>१ । १३ ०<br>१ एकांता ज                                |
| विग्रह १ । ज । उप = ० ऋ उ<br>।<br>०                                                                          | १ । ज । उप = ० ऋ उ<br>।<br>०                                                       | १ । ज । उपपा = ० ऋ उ<br>।<br>०                                                    | १ ज उप = ० ऋ उ<br>।<br>०                                                       |

पूर्वभवशरीर

पूर्वभवशरीर

पूर्वभवशरीर

पूर्वभवशरीर

|                                                                                  |                                                                              |                                                                               |
|----------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------|
| स्थिति । द्वी । प<br>भा परि । उ०००ज<br>उ ०<br>इं ०<br>०<br>०<br>श २१ परि । उ०००ज | स्थिति । द्वी । अप<br>परि । उ०००ज<br>१ । १ ०<br>१ । १३ ०<br>०<br>परि । उ०००ज | स्थिति । त्रीं प<br>भा परि । उ०००ज<br>उ ०<br>०<br>इं ०<br>०<br>श २१ परि उ०००ज |
| श २ १ एकांत उ<br>०<br>१ एकांता ०<br>ज                                            | एकांता उ<br>१ । २ ०<br>१ । १३ ०<br>१ । एकांता ज                              | श २ १ एकांता उ<br>०<br>१ । एकांतानु ०<br>ज                                    |
| १ । ज । उपपा ० ऋ उ<br>।<br>०                                                     | १ । ज उपपा ० ऋ उ<br>।<br>०                                                   | १ । ज । उपपा ० ऋ उ<br>।<br>०                                                  |

पूर्वभवशरीर

पूर्वभवशरीर

पूर्वभवशरीर

भवके प्रथम समयमें प्राप्त किये जाते हैं वे उपपाद योगस्थान हैं । उसके सब सामान्य आदि  
भेद भवके प्रथम समयमें ही होते हैं ॥२१९॥

परिणामजोगठाणाशरीरपञ्जत्तगादु चरिमोत्ति ।

लद्धियपञ्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोद्धव्वा ॥२२०॥

परिणामयोगस्थानानि शरीरपर्याप्तिस्तु चरमपर्यंतं । लद्धपर्याप्तिकानां चरमत्रिभागे बोद्धव्यानि ॥

५ परिणामयोगस्थानानि परिणामयोगस्थानंगळु तु मत्त शरीरपर्याप्तेः शरीरपर्याप्ति-  
प्रथमसमयं भोदलोडु चरमसमयपर्यंतं स्वस्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं बोद्धव्यानि अरियत्पडुवुवु ।

| स्थिति । त्री । अप<br>परि । उ०००ज | स्थिति । चप<br>परि । उ०००ज | स्थिति । च । अप<br>परिणा । उ०००ज | स्थिति । असं । प<br>भा परि । उ०००ज |
|-----------------------------------|----------------------------|----------------------------------|------------------------------------|
| १ । १ । ०                         | ०                          | १ । १ । ०                        | ०                                  |
| १ । ८ । ३ । ०                     | भा ०                       | १ । ८ । ३ । ०                    | उ ०                                |
| ०                                 | उ ०                        | ०                                | ०                                  |
| ०                                 | इ ०                        | ०                                | इ ०                                |
| परि । उ०००ज                       | श २ १ परि । उ०००ज          | परि । उ०००ज                      | श २ १ परि । उ०००ज                  |
| १ । २ । एकांता उ                  | १ । २ । एकांतानु उ         | १ । २ । एकांतानु उ               | १ । २ । एकांतानु उ                 |
| १ । ८ । ३ । ०                     | ०                          | १ । ८ । ३ । ०                    | ०                                  |
| ०                                 | १ । एकांतानु ०             | ०                                | १ । एकांतानु ०                     |
| १ । एकांतानुवृद्धि ज              | ०                          | १ । एकांतानु ज                   | ज                                  |
| १ । ज । उपपा ० ऋ । उ              | १ । ज । उपपा ० ऋ । उ       | १ । ज । उपपा ० ऋ । उ             | १ । ज । उपपा ० ऋ । उ               |
| ०                                 | ०                          | ०                                | ०                                  |

| स्थिति । असं । अप<br>परि । उ०००ज | स्थिति । सं । प<br>म परि । उ०००ज | स्थिति । सं । अप<br>परि । उ०००ज |
|----------------------------------|----------------------------------|---------------------------------|
| १ । १ । ०                        | ०                                | १ । १ । ०                       |
| १ । ८ । ३ । ०                    | भा ०                             | १ । ८ । ३ । ०                   |
| ०                                | उ ०                              | ०                               |
| परि । उ०००ज                      | इ ०                              | परि । उ०००ज                     |
| ०                                | श २ १ परि । उ०००ज                | ०                               |
| एकांतानु उ                       | एकांतानु उ                       | एकांतानु उ                      |
| १ । २ । ०                        | १ । २ । ०                        | १ । २ । ०                       |
| १ । ८ । ३ । ०                    | ०                                | १ । ८ । ३ । ०                   |
| ०                                | १ । एकांतानु ०                   | ०                               |
| १ । एकांतानु ज                   | ज                                | १ । एकांतानुवृद्धि ज            |
| १ । ज । उपपा ० ऋ । उ             | १ । ज । उपपा ० ऋ । उ             | १ । ज । उपपा ० ऋ । उ            |
| ०                                | ०                                | ०                               |

॥२१९॥ अथ परिणामयोगस्याह—

परिणामयोगस्थानानि तु-पुनः पूर्णशरीरपर्याप्तिप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं जात-

परिणाम योगस्थान शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके प्रथम समयसे लेकर अपनी आयुके

लब्धपर्याप्तकानां लब्धपर्याप्तकसङ्गो चरमत्रिभागे स्वस्थितिपुच्छवासाष्टादशैकभागमवकुम्भर  
चरमत्रिभागप्रथमसमयं मोदलोडु चरमसमयपर्यन्तं परिणामयोगस्थानंगळु बोद्धव्यानि अरिय-  
ल्पडुवु ।

सगपजजत्तीपुण्णे उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।

सव्वत्थ होदि अवरं लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठं पि ॥२२१॥

स्वपर्याप्तौ पूर्णायामपरि सर्वत्र योग उत्कृष्टः । सर्वत्र भवत्यवरो लब्धपर्याप्तकस्यो-  
त्कृष्टोऽपि ॥

स्वपर्याप्तौ पूर्णायामं सत्याम् स्वशरीरपर्याप्तिपरिपूर्णमागुत्तं विरलु तच्छरीरपर्याप्ति-  
प्रथमसमयं मोदलोडु उपरि मेले सर्वत्र सर्वस्थितिसमयंगळोडु उत्कृष्टयोगः उत्कृष्टयोगमुं  
सर्वत्र सर्वस्थितिसमयंगळोडु अवरो योगः जघन्ययोगमुं भवति परिणामयोगबोळकुं । लब्ध-  
पर्याप्तकस्य लब्धपर्याप्तकसङ्गो स्वस्थितिपुच्छवासाष्टादशैकभागचरमत्रिभागप्रथमसमयं मोद-  
लोडु चरमसमयपर्यन्तं मेले सर्वस्थितिसमयंगळोडु उत्कृष्टः उत्कृष्टपरिणामयोगमुं अपि  
सर्वत्र जघन्यपरिणामयोगमुं भवति अक्कुमेकेंदोडे पर्याप्तजीवंगळ परिणामयोगस्थानंगळनितुं  
घोटमानयोगंगळपुदरिदं । हानिवृद्धयवस्थानरूपेण परिणम्यत इति परिणाम येदितु निरुक्ति-  
सिद्धमवकुं ।

अनंतरमेकांतानुवृद्धियोगक्के सामान्यजघन्योत्कृष्टस्थानंगळं जीवसमासेगळं कटाक्षिसि  
पेळदपरः—

व्यानि । लब्धपर्याप्तकानां च स्वस्थितेरुच्छवासाष्टादशकभागस्य चरमत्रिभागप्रथमसमयादि कृत्वा चरम-  
पर्यन्तं जातव्यानि ॥२२०॥

स्वस्वशरीरपर्याप्तौ पूर्णायामं तत्प्रथमसमयात्प्रभृति उपरि सर्वस्थितिसमयेषु परिणामयोगस्य उत्कृष्टमपि  
सर्वस्थितिसमयेषु जघन्यमपि भवति । लब्धपर्याप्तकस्वस्वस्थितेरुच्छवासाष्टादशैकभागस्य चरमत्रिभागप्रथम-  
समयमादि कृत्वा चरमसमयपर्यन्तं सर्वस्थितिर्विकल्पेषु उत्कृष्टपरिणामयोगोऽपि जघन्यपरिणामयोगोऽपि भवति ।  
उभयजीवानां तानि योगस्थानानि सर्वाण्यपि घोटमानयोगा एव स्युः, हानिवृद्धयवस्थानरूपेण परिणमनात्  
॥२२१॥ अयैकान्तानुवृद्धियोगस्याह—

अन्त समय पर्यन्त होते हैं । लब्धपर्याप्तक जीवोंके उच्छवासके अठारहवें भाग प्रमाण  
अपनी स्थितिके अन्तिम त्रिभागके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त होते हैं ॥२२०॥

अपनी-अपनी शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर उसके प्रथम समयसे लेकर ऊपर आयुके सब  
समयोंमें परिणाम योगस्थान होता है । तथा सब समयोंमें उत्कृष्ट भी होता है और जघन्य  
भी होता है । तथा लब्धपर्याप्तककी अपनी स्थिति श्वासके अठारहवें भाग प्रमाण है ।  
उसके अन्तिम त्रिभागके पहले समयसे लगाकर अन्तिम समय पर्यन्त सब स्थितिके समयोंमें  
उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान भी होता है और जघन्य परिणाम योगस्थान भी होता है । पर्याप्त  
और अपर्याप्त दोनों ही प्रकारके जीवोंके वे सब परिणाम योगस्थान घोटमान योग ही होते  
हैं क्योंकि ये घटते भी हैं, बढ़ते भी हैं और जैसेके तैसे भी रहते हैं ॥२२१॥

आगे एकान्तानुवृद्धि योगस्थानको कहते हैं—

एयंतवद्धिडाणा उभयडाणानमंतरे ह्येति ।

अवरवरडाणाओ सगकालादिस्मि अंतस्मि ॥२२२॥

एकान्तवृद्धिस्थानान्गुभयस्थानानामन्तरस्मिन्भवन्ति । अवरवरस्थानानि स्वकालादावन्ते ॥

एकान्तवृद्धिस्थानानि एकान्तानुवृद्धियोगस्थानंगत् पर्याप्तजीवंगत् रूपोनशरीरपर्याप्ति-

- ५ कालपर्यन्तांतर्मुहूर्त-चरमसमय-पर्यंतमुपपादयोग-परिणामयोगंगत्तुभय-नामयोगंगत्तराळदोळ-  
पुवु । अवरवरस्थानानि जघन्योत्कृष्टस्थानंगत् स्वकालादावन्ते तदेकांतवृद्धि योगकालदादियोळ  
जघन्ययोगमक्कुमन्तदोळ चरमसमयदोळुत्कृष्टयोगमक्कुमदु कारणमागि एकान्तेन नियमेन  
स्वकालप्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयसंख्यातगुणितक्रमेण तद्योग्याविभागप्रतिच्छेद-  
वृद्धिर्यस्मिन् स एकान्तवृद्धियोगः येदितु निरुक्तिस्मिदमप्य योगमेकान्तवृद्धियोगमेबुदक्कु ।  
१० मित्तुक्तयोगविशेषंगळनितुं मुन्नं स्थापिसिद चतुर्दशजीवसमासरचनाविशेषदोळतिव्यक्तमपुवर्दिरद  
मदु भाविसत्पडुगुं ॥

अनंतरं योगस्थानद्वयवंगळं पेळदपरुः—

अविभागपडिच्छेदो वर्गो पुण वर्गणा य फड्डयगं ।

गुणहाणीवि य जाणे ठाणं पडि होदि नियमेण ॥२२३॥

- १५ अविभागप्रतिच्छेदो वर्गः पुनर्वर्गणा च स्पर्द्धकं । गुणहानिरपि च जानीहि स्थानं  
प्रति भवेन्नियमेन ॥

समस्तयोगस्थानंगत् श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रंगत्पुववरोळु अविभागप्रतिच्छेदाः अविभाग-  
प्रतिच्छेदंगळेंदुं वर्गाः वर्गमेदुं पुनः मत्ते वर्गणा च वर्गणयेदुं स्पर्द्धकं स्पर्द्धकमेदुं

- एकान्तानुवृद्धियोगस्थानानि पर्याप्तजीवानां रूपोनशरीरपर्याप्तिकालस्य अंतर्मुहूर्तचरमसमयपर्यन्तं उप-  
२० पादपरिणामयोगयोः अंतराले भवति । तस्य जघन्यस्थानानि स्वकालस्य आदौ उत्कृष्टानि च अन्ते भवन्ति । तत  
एवैकांतेन नियमेन स्वकालप्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयसंख्यातगुणितक्रमेण तद्योग्याविभागप्रतिच्छेद-  
वृद्धिर्यस्मिन् स एकान्तानुवृद्धिरित्युच्यते । एवमुक्तयोगविशेषाः सर्वेऽपि पूर्वस्थापितचतुर्दशजीवसमासरचनाविशेषे-  
ऽतिव्यवर्तं संभवन्तीति संभावयितव्याः ॥२२२॥ अथ योगस्थानस्यावयवानाह —

समस्तयोगस्थानानि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राणि । तेषु अविभागप्रतिच्छेदः, वर्गः पुनः वर्गणा स्पर्द्धकं

- २५ एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पर्याप्त जीवोंके एक समय कम शरीर पर्याप्ति काल  
अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समय पर्यन्त उपपाद और परिणाम योगस्थानोंके मध्यमें होता है ।  
उसका जघन्य स्थान तो अपने कालके आदिमें और उत्कृष्ट अन्तमें होता है । इसीसे एकान्त  
अर्थात् नियमसे अपने कालके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय  
असंख्यात गुणे-असंख्यातगुणे अपने योग्य अविभाग प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि जिसमें हो उसे  
३० एकान्तानुवृद्धि कहते हैं । इस प्रकार कहे सब योगविशेष चौदह जीव समासोंमें  
होते हैं ॥२२२॥

आगे योगस्थानके अवयव कहते हैं—

समस्त योगस्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । उनमें अविभाग

गुणहानिरपि च गुणहानियुमेंदुं स्थानं प्रति प्रतिस्थानदोळं भवति नियमेन अवकुं नियमदिदमेदिवं जानीहि नोनरिये'दुं शिष्य संबोधिसत्पट्टनल्लि :—

पल्लासंखेज्जदिमा गुणहाणिसला इवन्ति इमिठाणे ।

गुणहाणि फह्याओ असंखभागं तु सेटीए ॥२२४॥

पल्यासंख्यातैकभागा गुणहानिशलाका भवन्ति एकस्थाने । गुणहानिस्पद्धंकायसंख्यभागस्तु श्रेण्याः ॥ १

एकस्थाने एकयोगस्थानबोळु । पल्यासंख्यातैकभागाः पल्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळु गुणहानिशलाका भवन्ति गुणहानिशलाकेगळपुवु प नानागुणहानिशलाकेगळं बुदत्थं । गुणहानि-  
००

स्पद्धंकानि एकगुणहानिस्पद्धंकंगळु तु मत्ते श्रेण्याः जगच्छ्रेणिय असंख्यभागाः असंख्यातैकभागप्रमितंगळपुवु ००

१०

फड्ढयगे एकैकके वग्गणसंखा हु तत्तियालावा ।

एकैकवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ ॥२२५॥

स्पद्धके एकैकस्मिन् वग्गणासंख्या खलु तावन्मात्रालापा । एकैकवग्गणायामसंख्यप्रतराः खलु वग्गाः ॥

एकैकस्मिन् स्पद्धके एकैकस्पद्धकदोळु वग्गणासंख्या वग्गणासंख्ये खलु स्फुटमाणि १५  
तावन्मात्रालापा श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रालापमुळुदक्कं ० एकैकवग्गणायाम् एकैकवग्गणेयोळु वग्गाः वग्गंगळु असंख्यप्रतराः असंख्यातगुणितजगत्प्रतरप्रमितंगळपुवु । = ०

गुणहानिरपि च स्थानं प्रति भवतीति नियमेन जानीहि ॥२२३॥

एकस्मिन् स्थाने गुणहानिशलाकाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रावो भवन्ति प नानागुणहानिशलाका  
० ०

इत्यर्थः । एकैकगुणहानिस्पद्धंकानि तु पुनः श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितानि ० ० ॥२२४॥

२०

एकैकस्मिन् स्पद्धके वग्गणासंख्या खलु स्फुटं तावन्मात्रालापाः श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रालापा भवन्ति ० एकैकस्या वग्गणायां पुनः वग्गाः असंख्यातजगत्प्रतरप्रमिता भवन्ति = ० ॥२२५॥

प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और गुणहानि प्रत्येक योगस्थानमें होते हैं यह नियमसे जानना ॥२२३॥

एक योगस्थानमें गुणहानि शलाका पल्यके असंख्यातवें भाग हैं । यह नाना गुणहानि शलाका जानना । तथा एक-एक गुणहानिमें स्पर्धक जगत्श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥२२४॥

एक-एक स्पर्धकमें वर्गणाओंकी संख्या भी उतनी ही अर्थात् जगत्श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है । और एक-एक वर्गणामें असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण वर्ग होते हैं ॥२२५॥



एकैकके पुन वर्गे असंखलोका हवन्ति अविभागा ।

अविभागस्स प्रमाणं जहण्णउट्ठी पदेसाणं ॥२२६॥

एकैकस्मिन् पुनर्वर्गं असंखलोका भवन्त्यविभागाः । अविभागस्य प्रमाणं जघन्यवृद्धिः प्रवेशानां ॥

- ५ पुनः मत्ते एकैकस्मिन्वर्गे एकैकवर्गदोळु असंखलोका भवन्त्यविभागाः असंख्यात-  
लोकंगळविभागंगळपुवु  $\equiv$  अविभागस्य प्रमाणं अविभागद प्रमाणमुं प्रवेशानां जघन्यवृद्धिः  
घनप्रमितजीवप्रदेशंगळ मध्यदोळु जघन्यवृद्धिः सर्वजघन्यवृद्धियेनितनितक्कं । अविभा-  
गशक्त्यंशमक्कुमेबुदत्थं । यितविभागप्रतिच्छेदादिगळु विलोमक्रमदिदं पेळत्पट्टुवदुकरणाणि  
अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्गः, वर्गसमूहो वर्गणा, वर्गणासमूहः स्पर्धकं स्पर्धकसमूहो गुणहानिः  
१० गुणहानिसमूहःस्थानमेंदु पेळद तेरनक्कुमेकयोगस्थानदोळु गुणहानिशलाकेगळु प एकगुणहानि-  
२८

स्पर्धकंगळु  $\equiv$  एकस्पर्धकवर्गणाशलाकेगळु  $\equiv$  एकवर्गणावर्गंगळु  $\equiv$  एकवर्गावि-  
भागप्रतिच्छेदंगळु  $\equiv$  अविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं जीवप्रदेशंगळोळ जघन्याविभागिशक्त्यंशमक्कुं ॥

अनंतरमेकयोगस्थानगतसर्वस्पर्धकादिगळ प्रमाणं पेळदपरः—

इगिठाणफट्टयाओ वर्गणसंखा पदेसगुणहाणी ।

- १५ सेटि असंखेज्जदिमा असंखलोका हे अविभागा ॥२२७॥

एकस्थानस्पर्धकानि वर्गणासंख्या प्रदेशगुणहानिः । श्रेण्यसंख्येयभागाः असंखलोकाः खल्वविभागाः ॥

एकस्थानस्पर्धकानि येकयोगस्थानगतसर्वस्पर्धकंगळु वर्गणासंख्या अहंमे एकयोगस्थान-  
गतवर्गणासंख्येयुं प्रदेशगुणहानिः प्रदेशगुणहान्यायाममुं प्रत्येकं श्रेण्यसंख्येयभागाः सामान्यान्नापदिदं

- २० पुनरेकैकस्मिन् वर्गे असंख्यातलोका अविभागा भवन्ति  $\equiv$  अविभागस्य प्रमाणं पुनः आत्मप्रदेशानां  
सर्वजघन्यवृद्धिः अविभागशक्त्यंशः इत्यर्थः । एवं विलोमगत्योक्तम् । तेन अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्गः । वर्ग-  
समूहो वर्गणा । वर्गणासमूहः स्पर्धकम् । स्पर्धकसमूहो गुणहानिः । गुणहानिसमूहः स्थानमिति जातव्यम् ॥२२६॥  
अर्थेकयोगस्थानगतसर्वस्पर्धकादीनि प्रमाणयति—

एकयोगस्थानस्य सर्वस्पर्धकानि सर्ववर्गणासंख्या प्रदेशगुणहान्यायामश्च प्रत्येकं श्रेण्यसंख्येयभागः

- २५ एक-एक वर्गमें असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं । अविभागका  
प्रमाण प्रवेशोंकी जघन्य वृद्धिरूप जानना । परमार्थसे जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे  
शक्तिके अंशको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं । गाथाओंमें उलटे रूपसे कहा है । अतः अविभाग  
प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं । वर्गोंका समूह वर्गणा है । वर्गणाओंका समूह स्पर्धक  
है । स्पर्धकोंका समूह गुणहानि है और गुणहानियोंका समूह स्थान है, ऐसा जानना ॥२२६॥

- ३० आगे एक योगस्थानमें सब स्पर्धक आदिका प्रमाण कहते हैं—

एक योगस्थानमें सब स्पर्धक, सब वर्गणाओंकी संख्या और असंख्यात प्रदेशोंमें गुण-  
हानि आयामका प्रमाण ये सब सामान्यसे जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं । किन्तु

जगच्छ्रेष्ठसंख्येयभागंगलपुवु । वस्तुवृत्तिर्दिदं हीनाधिक भावंगलपुवदेंदोडे प्र गु १ प स्प

०० इ गु प बंद लब्धमेकस्थानगतसर्ववर्गकंगल प्रमाणमवकुं । ०० प मत्तं । प्र स्प  
०० ००

१ । फ व ० इ स्प ०० प बंद लब्धमेकस्थानगतसर्ववर्गणाप्रमाणमवकुं ०००० मत्तं । प्र  
००

स्प १ । फ । व ० इ । स्प । ० ० बंद लब्धमेकगुणहानिगतवर्गणाप्रमितमवकुं ००० । यिल्लि  
गुणकारंगलं नोडलु भागहारमधिकंगलो समंगलो मेण हीनंगलो येदितु विकल्पत्रयमं माडि श्रेष्ठ  
संख्येयभागकथनान्यथानुपपत्तियत्तिगंदं भागहारमं नोडलु गुणकारंगलसंख्यातगुणहीनंगलेंदितो ५  
गाथामूत्रदिदमे परियत्पडुवुवु । असंख्यलोकाः खल्वविभागाः एकस्थानगतसमस्ताविभागप्रतिच्छेद-  
गलूमसंख्यातलोकप्रमितंगलेयपुवनंतंगलत्तु । कर्मपरमाणुगताविभागप्रतिच्छेदंगलूमनंतसंख्या-  
सर्वनिकृष्टज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगलुवच्छिन्नंगलपुवी योगस्थानविषयदोळु कर्मवानजीवसर्व-  
प्रदेशशक्तियसंख्यातलोकमात्रमेयकुमेंबुवाचाप्यन हृदगतात्थमवकुं ॥ १०

सामान्यालापेन भवति । वस्तुवृत्त्या तु हीनाधिक्यं भवति । तद्यथा—

प्र गु १ फ स्प ० ० इ गु प लब्धमेकस्थानगतस्य स्पर्धकानि भवन्ति ० ० प पुनः प्र  
० ० ० ०

स्प फ १ व ० इ स्प ० ० प लब्धं एकस्थानगतसर्ववर्गणाप्रमाण भवति ० ० प पुनः प्र  
० ० ० ० ० ० ० ०

स्प १ फ व ० इ स्प ० ० लब्धं एकगुणहानिगतवर्गणा भवन्ति ० ० ० अत्र गुणकारो भागहार-  
द्वोनोऽधिकः समो वा असंख्यातगुणहीनो जातव्यः, कुतः ? श्रेष्ठसंख्येयभागस्य अन्यथानुपपत्तेः । एकस्थान- १५  
गतसमस्ताविभागप्रतिच्छेदाः खलु असंख्यातलोकप्रमिता एव, न कर्मपरमाणुवत् सर्वनिकृष्टज्ञानवद्वा अनंता

वास्तवमें परस्परमें हीन अधिक हैं । एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण है उसको एक  
स्थानमें जो गुणहानिका प्रमाण है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने एक योगस्थानमें  
स्पर्धक होते हैं । तथा जो एक स्पर्धकमें वर्गणाओंका प्रमाण कहा है उसको, एक योगस्थानमें  
जो स्पर्धकोंका प्रमाण कहा है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना एक योगस्थानमें २०  
वर्गणाओंका प्रमाण जानना । तथा एक स्पर्धकमें जो वर्गणाओंका प्रमाण जगतश्रेणिके  
असंख्यातवें भागमात्र कहा है उसको, एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण कहा है उससे  
गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना एक गुणहानिमें वर्गणाओंका प्रमाण जानना । वहाँ  
गुणकारका प्रमाण जगतश्रेणिके भागहारके प्रमाणसे असंख्यातगुणा हीन जानना । ऐसा न  
होनेसे श्रेणिका असंख्यातवाँ भाग सिद्ध नहीं हो सकता । इसीका नाम गुणहानि आयाम २५  
है । सामान्यसे ये सब जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं क्योंकि असंख्यातके भेद बहुत हैं ।

सर्वजीवप्रदेशगणः ॥ नाना । प अन्योन्याभ्यस्त प एकगुणहानिस्पर्धकगणः । ० ० ।  
० ० ०

एकस्पर्धकवर्गणाशलाकगणः ० एकगुणहानिसर्ववर्गणगणः ० ० ० एकस्थानसर्ववर्गणगणः  
० ० । ० प ई राशिगणः नानागुणहानिशलाकगणः दद्यादुत्तरोत्तरराशिगणः असंख्यातगुणितक्रम-  
० ०  
णः पुनः—

| अवि | वर्ग | वर्गणा | स्पर्ध | गुण | स्थान |
|-----|------|--------|--------|-----|-------|
| ० ० | = ०  | ०      | ० ०    | ० ० | १     |
| S   | २५६  | ४      | ९      | ५   | १     |

५ भवन्ति । एकजीवगतसर्वप्रदेशाः ॥ नानागु प अन्योन्याभ्यस्त प एकगुणहानिस्पर्धकानि ० ० एक-  
० ० ०

स्पर्धकवर्गणाशलाकाः ० एकगुणहानितसर्ववर्गणा ० ० । ० एकस्थानगतसर्ववर्गणा ० ० । ० ० ०  
एते नानागुणहानिशलाकाद्याः उत्तरोत्तरे असंख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ॥ २२७ ॥

- एक योगस्थानमें समस्त अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं, कर्म-
- १० परमाणुओं अथवा सबसे जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणकी तरह अनन्त नहीं हैं। जीवके प्रदेश लोक प्रमाण हैं। एक स्थानमें नाना गुणहानिका प्रमाण पल्यमें दो बार असंख्यातका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना है। नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अन्योन्याभ्यस्त राशि है। सो पल्यको एक बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी है। एक गुणहानिमें स्पर्धक
- १५ जगतश्रेणिमें दो बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने हैं। एक स्पर्धकमें वर्गणा जगतश्रेणिको एक बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी हैं। एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण है उसको, एक स्पर्धकमें जो वर्गणाओंका प्रमाण है उससे गुणा करनेपर एक गुणहानिमें सब वर्गणाओंका प्रमाण होता है। उसको एक योगस्थानमें जो नाना गुणहानिका प्रमाण उससे गुणा करनेपर एक योगस्थानमें सब वर्गणाओंका
- २० प्रमाण होता है। ये सब नाना गुणहानिसे लेकर क्रमसे असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे जानना ॥ २२७ ॥

१. सर्वजीवप्रदेशाः ।

| अवि | वर्ग | वर्गणा | स्पर्धक | गुण | स्थान |
|-----|------|--------|---------|-----|-------|
| ० ० | = ०  | ०      | ० ०     | ० ० | १     |
| व   | २५६  | ४      | ९       | ५   | १     |

सर्वे जीवपदसे दिक्द्वगुणहानिभाजिते पटमा ।

उपरि उत्तरहीनं गुणहानिं पटि तद्वृत्तम् ॥२२८॥

सर्वस्मिन् जीवप्रदेशे द्व्यर्द्धगुणहानिभाजिते प्रथमा । उपर्युत्तरहीनं गुणहानिं प्रति तद्वृत्तं क्रमः ॥

सर्वस्मिन् जीवप्रदेशे सर्वलोकप्रमितजीवप्रदेशराशियंस्थापिति—

| द्रव्य | स्थिति | गुण | नाना | दोगु | अन्योन्या |
|--------|--------|-----|------|------|-----------|
| ≡      | ०      | ००  | ० ०  | ००   | ०         |
| ३१००   | ४०     | ८   | ५    | १६   | ३२        |

द्व्यर्द्धगुणहानिभाजितेसाधिकद्व्यर्द्धगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु प्रथमाप्रथमवर्गणयक्कुं  
 ३१०० मपर्वत्तितमिदु = ००२ उपर्युत्तरहीनं यथा भवति तथा कृते मेले चयहीनमेतक्कुमते  
 ००२ माडुत्तं विरलु गुणहानिं प्रति गुणहानि-गुणहानि द्रव्ये तद्वृत्तंक्रममक्कुमे ते दोडे मोदलोळक-  
 संदृष्टितोरल्पडुगं । सर्वद्रव्यं । ३१०० । ई राशियं रुद्रणणोण्णभत्थवहिद्वद्वं तु चरमगुण-  
 द्रव्यं येदु रूपानान्योन्याभ्यस्तराशियिदं भागिसिदोडेकभागं चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुं ३१०० १०

होदि तदो दुगुणक्रमं आदिमगुणहानिद्रव्योति अल्लिदं केळगे प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुण  
 क्रम द्रव्यगच्छपुवु । १००।२००।४००।८००।१६००। इहिगे गुणहानिं प्रति अर्द्धाद्धक्रमदिदं गुणहानि-

सर्वस्मिन् लोकमात्रैकजीवप्रदेशे द्व्यर्द्धगुणहान्या भवते सति प्रथमवर्गणा भवति ३२ अपर्वत्तिते एवं =

$$\frac{3}{002}$$

००२ उपर्युत्तरहीना यथा भवति तथा गत्वा गुणहानिं प्रति अर्द्धाद्धक्रमा भवति । सा च अंकसंदृष्टी यथा—

सर्वद्रव्ये ३१०० रूपानान्योन्याभ्यस्तराशिना भवते चरमगुणहानिद्रव्यं भवति ३१०० ततोऽधोः १५

प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमं भवति १०० । २०० । ४०० । ८०० । १६०० । एवं प्रतिगुणहानि-

एक जीवके प्रदेश लोक प्रमाण है । उनमें डेढ़ गुणहानिसे भाग देनेपर प्रथम गुणहानि-  
 के प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा होती है । उसमें एक-एक विशेष घटानेपर एक-एक वर्गणा  
 होती है । गुणहानि गुणहानि प्रति क्रमसे आधा प्रमाण जानना । उसकी अंकसंदृष्टि इस  
 प्रकार है— सर्वद्रव्य ३१०० को एक घाट अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर ३१००  
 अन्तिम गुणहानिका द्रव्य आता है । उससे नीचे-नीचे प्रथम गुणहानिपर्यन्त दूना-दूना होता २०

| १ | द्रव्य | स्थिति | गुण | नाना | दोगु | अन्योन्या |
|---|--------|--------|-----|------|------|-----------|
| ≡ | ०      | ००     | ० ० | ० ०  | ० ०  | ०         |
|   | ३१००   | ४०     | ८   | ५    | १६   | ३२        |

द्रव्यगुणलघुत्व। सञ्चे जीवपदेसे सर्वजीवप्रदेशगुणे भूख साविरव नूर संदृष्टियवकु। ३१००।  
मिबं द्व्यर्धगुणहानिभाजिते साधिकद्व्यर्धगुणहानिर्धिवं भागिसुत्तं विरलु प्रथमा प्रथमवर्गणयेवकु-  
मिल्लियधिकप्रमाणमेनिते दोडे प्र २५६। फ। श। इ ३१००। एनितु शलाकेगळवकुमे दोडे

लब्धं साधिकद्व्यर्धगुणहानिप्रमाणमक्कुं  $\frac{१२१७}{६४}$  मिदरिदं  $\frac{७७५}{६४}$  द्रव्यमं भागिसुत्तं विरलु—

५ ३१००।६४ प्रथमा प्रथमगुणहानि प्रथमस्पर्धक प्रथमवर्गणाप्रमाणमक्कुं। २५६। उपर्युत्तरहीनं ७७५

मेले विशेषहीनमागुत्तं प्रथमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणयेव्यंतं पाणि चरम वर्गणयेव्योळु  
रूपोनगच्छमात्रविशेषहीनगळपुवु १४४ इल्लि विशेषप्रमाणमेनिते दोडे प्रथमवर्गणयेव्यं दो

१६०

१७६

१९२

२०८

२२४

२४०

२५६

द्रव्याणि अर्धार्धक्रमेण सिद्धानि। पुनः सर्वजीवप्रदेशे शताधिकत्रिसहस्रे ३१०० साधिकद्व्यर्धगुणहान्या भाजिते  
प्रथमवर्गणा भवति। यद्येतावतः प्र २५६ एका शलाका फ श १ तदैतावतः इ ३१०० किमिति? लब्धं  
१० साधिकद्व्यर्धगुणहानिप्रमाणं १२१७ अनेन ७७५ द्रव्ये भवते ३१००। ६४ प्रथमगुणहानिस्पर्धकप्रथमवर्गणा-  
६४ ६४ ७७५

प्रमाणं भवति २५६। उपर्युत्तरहीनं भूत्वा प्रथमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणायां रूपोनगच्छमात्रविशेष-  
हीयते—१४४

१६०

१७६

१९२

२०८

२२४

२४०

२५६

है—१००।२००।४००।८००।१६००। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य कमसे आधा-आधा  
सिद्ध होता है। सब जीवके प्रदेश तीन हजार एक सौमें ३१०० साधिक डेढ़ गुणहानिसे भाग  
देनेपर प्रथम वर्गणा होती है। यदि २५६ की एक गुणहानि होती है तो ३१०० की कितनी  
१९ होगी। ऐसा त्रैराशिक करनेपर साधिक गुणहानिका प्रमाण १२  $\frac{१६००}{६४}$  होता है। इसमें  $\frac{१६००}{६४}$

द्रव्यमें भाग देनेपर  $\frac{३१०० \times ६४}{७७५}$  प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रमाण  
२५६ होता है। ऊपर उत्तरोत्तर हीन होकर प्रथम गुणहानिके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम  
वर्गणामें एक हीन गच्छमात्र चय घटते हैं। यथा २५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४।

गुणहानियिदं भागिसिदोडे २५६ क भागं विशेषप्रमाणमक्कु १६ मन्तेत्ता गुणहानिगळ  
१६  
प्रथमवर्गणेयं दोगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु तंतम्म गुणहानियोळु विशेषप्रमाणमक्कु १ मवु  
२  
४  
८  
१६

कारणदिदमो दोगुणहानिगे निषेकहारमे'ब पेसरक्कु । गुणहानि पडि तदद्वकमं गुणहानिगुणहानि-  
दपदे द्रव्यगळुं वर्गणेगळुं विशेषगळुमद्धाद्ध'क्रमगळपुवे'दितु निश्चयि-

|     |    |    |    |
|-----|----|----|----|
| ७२  | ३६ | १८ | ९  |
| ८०  | ४० | २० | १० |
| ८८  | ४४ | २२ | ११ |
| ९६  | ४८ | २४ | १२ |
| १०४ | ५२ | २६ | १३ |
| ११२ | ५६ | २८ | १४ |
| १२० | ६० | ३० | १५ |
| १२८ | ६४ | ३२ | १६ |

सत्पडुवुवु यितु सामान्यदिदमंकसंदृष्टियिदं गमनिकेयं तोरि विशेषनिर्णयमनर्थसंदृष्टियिदं  
पेळदपरः—

अत्र विशेषप्रमाणं तु प्रथमवर्गणायां दोगुणहानिभक्तायां २५६ भवति १६ । तथा सर्वगुणहानीनामपि  
१६

ज्ञातव्यं १ तत एव दोगुणहानिनिषेकहार इत्युच्यते । एवं गुणहानि गुणहानि प्रति द्रव्याणि वर्गणाः विशेषाश्च

२

४

८

१६

अर्धाधिक्रमा भवन्ति ।

|     |    |    |    |
|-----|----|----|----|
| ७२  | ३६ | १८ | ९  |
| ८०  | ४० | २० | १० |
| ८८  | ४४ | २२ | ११ |
| ९६  | ४८ | २४ | १२ |
| १०४ | ५२ | २६ | १३ |
| ११२ | ५६ | २८ | १४ |
| १२० | ६० | ३० | १५ |
| १२८ | ६४ | ३२ | १६ |

॥२२८॥ एवं सामान्येन अंकसंदृष्ट्या गमनिकां प्रदर्श्य विशेषनिर्णयं अर्थसंदृष्ट्या आह—

प्रथम वर्गणामे दो गुणहानिसे भाग देनेपर २५६ चयका प्रमाण १६ आता है । इसी तरह सब  
गुणहानियोंका भी चय जानना १६।८।४।२।१ । इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य, वर्गणा  
और चय आधा-आधा होता है ॥२२८॥

इस प्रकार अंकसंदृष्टिके द्वारा दिखाकर अर्थसंदृष्टिके द्वारा कहते हैं—

फड्ढयसंखाहि गुणं जड्ढणवर्गं तु तत्थ तत्थादी ।

विदियादिवर्गणां वर्गा अविभागअहियकमा ॥२२९॥

स्पर्धकसंख्याभिर्गुणो जघन्यवर्गस्तु तत्र तत्रादौ । द्वितीयादिवर्गणानां वर्गा अविभागा-  
धिकक्रमाः ॥

- ५ स्पर्धकसंख्याभिर्गुणो जघन्यवर्गः तत्र तत्रादौ । प्रथमगुणहानि प्रथमस्पर्धकं मोदल्गोडु  
चरमगुणहानिचरमस्पर्धकपर्यंतमाद सव्वर्गगुणहानि सव्वर्गप्रथमस्पर्धकंगळ जघन्यवर्गः कोत्थः  
प्रथमवर्गणेय वर्गं तत्र तत्रादौ अल्ललिय आवियोळु स्पर्धकसंख्याभिर्गुणः स्पर्धकसंख्येगळिदं  
गुणिसत्पट्टुवक्कुं । तु मत्ते द्वितीयादिवर्गणानां वर्गाः द्वितीयादिवर्गणेगळ वर्गागळु अविभागा-  
गाधिकक्रमाः अविभागाधिकक्रमंगळप्पुवु । इल्लिसव्वजघन्ययोगस्थानसव्वयोगाविभागप्रतिच्छेद-  
१० मेलापनविधानं पेळत्पडुगुमल्लि प्रथमदोळु अन्नेवरं प्रथमगुणहानिस्पर्धकंगळ धनसंयोजनक्रमं पेळ-  
त्पडुगुमदेते दोडे जघन्यस्पर्धकादिवर्गणा २५६ प्रदेशसमूहं । वि १६ जघन्यवर्गविदं गुणिसि ।  
व वि १६ । मत्ते एकस्पर्धकवर्गणाशलाकेगळिदं गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपविदं जघन्यस्पर्धकं  
वक्कुं । व वि १६।४। मत्तमा जघन्यस्पर्धकमादियुमुत्तरमुमेकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छसंकलनं  
तरुत्तं विरलु ऋण सहितमप्प प्रथमगुणहानिद्रव्यमितिक्कु । व वि १६ । ४ । ९ । ९ मिल्लि ऋण-  
२ । १

- १५ प्रमाणं तरत्पडुगुं । जघन्यवर्गगुणैकविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलने प्रथम-

प्रथमगुणहाविमादि कृत्वा चरमगुणहानिपर्यन्तं सर्वस्पर्धकेषु तत्र तत्र प्रथमवर्गणावर्गः स्पर्धकसंख्याभि-  
गुणितो भवति । तु—पुनः द्वितीयादिवर्गणानां वर्गाः अविभागाधिकक्रमा भवन्ति । अत्र सर्वजघन्ययोगस्थानस्य  
सर्वयोगाविभागप्रतिच्छेदमेलापनविधानमुच्यते—

- तत्र तावत् प्रथमगुणहानिस्पर्धकानां धनसंयोजनक्रमोऽयं जघन्यस्पर्धकादिवर्गणा २५६ प्रदेशसमूहेऽस्मिन्  
२० वि १६ जघन्यवर्गेण गुणयित्वा व वि १६ एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिर्गुणिते स्थूलरूपेण जघन्यस्पर्धकं भवति व  
वि १६ । ४ । इदमेवाद्युत्तरं कृत्वा एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छं कृत्वा संकलिते सति ऋणसहितप्रथम-

गुणहानिद्रव्यं भवति व वि १६ ४ ९ ९ अत्रत्यं ऋणमानीयते—  
२ । १

- प्रथम गुणहानिसे लेकर अन्तिम गुणहानि पर्यन्त सब स्पर्धकोंमें प्रथम वर्गणाके वर्ग  
स्पर्धकोंकी संख्यासे गुणा करनेपर होते हैं । और द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्ग अविभाग-  
२५ प्रतिच्छेद अधिक-अधिक लिये होते हैं ।

[ इससे आगे टीकामें सबसे जघन्य योगस्थानके सब योगोंके अविभागप्रतिच्छेद  
मिलानेका कथन बहुत विस्तारसे किया है । पं. टोडरमलजी साहबने भी उसे छोड़ दिया  
है । अतः हम भी उसे छोड़कर उनके अनुसार ही उक्त गाथाओंका आशय स्पष्ट करते हैं । ]

स्पर्धकदोळु ऋणमक्कुं । तत्प्रमाणमिदु व वि ३ । ४ इत्लि नवीनमुंटवावुदेवोडे रूपोनैकस्पद्धकव-  
२ । १

गर्गाशलाकागच्छसंकलनमात्र-

|           |          |                  |
|-----------|----------|------------------|
| ३ वि ३    | १ वि ३   | २ वि ३           |
| २ वि २    | १ वि २   | १ वि २           |
| १ वि १    | १ वि १   | ०                |
| ०         | ०        | ०                |
| अधिक      | वि ३ । ४ | वि २ । २ । ३ । ४ |
| ऋण न्यासः | २ १      | ३ २ १            |

विशेषाधिकविदमुं मेकविशेषाद्युत्तरद्विरूपोनैकस्पद्धकवर्गाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलन-  
मिदु वि २ । २ । ३ । ४ ऋणस्य धनं धनराशेः ऋणं भवति ये विदमूनीतमप्यादिवर्गाणामात्रप्रदेशा-  
३ । २ । १

युत्तररूपोनैकस्पद्धकवर्गाशलाका गच्छ ३ वि १६ संकलनमात्रंगळु वि १६ । ३ । ४-  
२ वि १६  
१ वि १६  
००० २ । १

एकाद्येकोत्तरक्रमविनिर्दविभागप्रतिच्छेदंगळु अधिकंगळुद्वयके जघन्यवर्गद असंख्यातेकभागमात्र-  
त्वाविशमविवक्षेयक्कुमदु कारणविदमे द्वितीयादिस्पद्धकंगळुमवक्कविवक्षेयक्कुमीग द्वितीयस्प-  
द्धकऋणं तरल्पडुगुं । जघन्यवर्गगुणविशेषाद्युत्तररूपोनस्पद्धकवर्गाशलाकागच्छ संकलनमं—

जघन्यवर्गगुणविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पद्धकवर्गाशलाकागच्छसंकलनं प्रथमस्पद्धकऋणं भवति व वि  
३ । ४ अत्र नवीनमस्ति रूपोनैकस्पद्धकवर्गाशलाकागच्छसंकलनमात्रं वि ३ । ४ विशेषाधिकम् ।  
२ १ २ १

|           |          |            |
|-----------|----------|------------|
| ३ वि ३    | १ वि ३   | २ वि ३     |
| २ वि २    | १ वि २   | १ वि २     |
| १ वि १    | १ वि १   | ०          |
| ०         | ०        | ०          |
| अधिकधनस्य | वि ३ । ४ | वि २ २ ३ ४ |
| ऋणन्यासः  | २ १      | ३ २ १      |

एकविशेषाद्युत्तरद्विरूपोनैकस्पद्धकवर्गाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमिदं-वि २ । २ । ३ । ४  
३ २ १

धनस्य ऋणं धनराशेः ऋणमिति तद्वाश्यूनितो द्विवर्गाप्रदेशमात्रो द्व्युत्तररूपोनैकस्पद्धकवर्गाशलाकागच्छ  
३ वि १६ संकलनधनमात्राः वि १६ । ३ । ४ एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्थिताविभागप्रतिच्छेदा अधिकाः संति ।  
२ वि १६ २ १  
१ वि १६  
०

ते जघन्यवर्गस्यासंख्यातेकभागत्वान्न विवक्षिताः । तथैव द्वितीयादिस्पद्धकेष्वपि ज्ञातव्यम् । इदानीं द्वितीय-  
स्पद्धकऋणमानीयते—

१. ब० तादिव० । २. ब० त्राद्युत्त० ।



|                 |            |            |   |
|-----------------|------------|------------|---|
| ३               | ३          | ३          | ३ |
| व २ वि ४        | व १ २ वि ३ | व १ २ वि ४ |   |
| २               | २          | २          | २ |
| व वि ४          | व वि २     | व १ २ वि ४ |   |
| —               | —          | —          | — |
| व २ वि ४        | व २ वि १   | व २ वि ४   |   |
| द्वितीय स्पर्धक | ऋण साधिक   | व २ वि ४   |   |
| ऋण न्यासः       | ऋण न्यासः  | पृथक्ताधिक |   |
|                 |            | ऋण न्यास   |   |

तदु द्विगुणिसुतं विरलितवकुं व । वि । ३ । ४ । २ मत्ते जघन्यवर्गमात्रविशेषमनेक-  
२ । १

स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसि रूपोनस्पर्धकसंख्या २ गच्छसंकलनेय १ । २ द्विगुण-  
२ । १

विदमुं । १ । २ । गुणिसुतं विरलु इतितवकुं । व । वि । ४ । ४ । १ । २ । मी एरडु राशिगळु द्वितीय-  
स्पर्धकऋणमवकुं । मत्तं जघन्यवर्गमात्रविशेषगळ—

|                    |                |                    |   |
|--------------------|----------------|--------------------|---|
| ३                  | ३              | ३                  | ३ |
| व । ३ । वि । ४ । २ | व । ३ । वि । ३ | व ३ । वि ४ । २     |   |
| २                  | २              | २                  | २ |
| व । ३ । वि । ४ । २ | व । ३ । वि २   | व । ३ । वि । ४ । २ |   |
| १                  | १              | १                  | १ |
| व । ३ । वि । ४ । २ | व । ३ । वि । १ | व । ३ । वि । ४ । २ |   |
| १                  | ०              | व । ३ । वि । ४ । २ |   |
| व । ३ । वि । ४ । २ | ऋणस्याधिक      | पृथक्ताधिक         |   |
| तृतीय स्पर्धक      | न्यासः         | ऋण न्यास           |   |
| सर्व ऋण न्यासः     |                |                    |   |

जघन्यवर्गगुणितविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं—

|          |          |            |   |
|----------|----------|------------|---|
| ३        | ३        | ३          | ३ |
| व २ वि ४ | व २ वि ३ | व २ वि ४ । |   |
| २        | २        | २          | २ |
| व २ वि ४ | व २ वि २ | व २ वि ४ । |   |
| १        | १        | १          | १ |
| व २ वि ४ | व २ वि १ | व २ वि ४ । |   |
| व २ वि ४ | ०        | व २ वि ४ । |   |

आनीय द्विगुणितं व वि ३ । ४ । २ पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण रूपोन-  
२ । १

स्पर्धकसंख्या २ गच्छसंकलनेन १ । २ द्विगुणेन च १ । २ । गुणितः व वि ४ । ४ । १ । २ एतद्वाशिद्वयं  
२ । १

द्वितीयस्पर्धकऋणम् । पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषाणां—

रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छ संकलनं त्रिगुणमुत्तं विरलनितक्कुं । व । वि । ३ । ४ । ३  
२ । १

मत्तं जघन्यवर्गमात्रविशेषगच्छमेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसि रूपोनगच्छसंकलन

३ । ३ द्विगुणदिदं २ । ३ । २ गुणिसुत्तं विरलनितक्कुं । व । वि । ४ । ४ । ३ । २ । मी  
२ । १ २ । १

येरडुं राशिगळु तृतीयस्पर्द्धकऋणमक्कुमिन्तु प्रथम—

|               |               |               |   |   |   |
|---------------|---------------|---------------|---|---|---|
| ३             | ३             | ३             | ३ | ३ | ३ |
| व ३ वि १६—४।२ | व ६ वि १६—४।५ | व ९ वि १६—४।८ |   |   |   |
| २             | २             | २             |   |   |   |
| व ३ वि १६—४।२ | व ६ वि १६—४।५ | व ९ वि १६—४।८ |   |   |   |
| १             | १             | १             |   |   |   |
| व ३ वि १६—४।२ | व ६ वि १६—४।५ | व ९ वि १६—४।८ |   |   |   |
| १             |               |               |   |   |   |
| व ३ वि १६—४।२ | व ६ वि १६—४।५ | व ९ वि १६—४।८ |   |   |   |
| ३             | ३             | ३             |   |   |   |
| व २ वि १६—४   | व ५ वि १६—४।४ | व ८ वि १६—४।७ |   |   |   |
| २             | २             | २             |   |   |   |
| व २ वि १६—४   | व ५ वि १६—४।४ | व ८ वि १६—४।७ |   |   |   |
| १             | १             | १             |   |   |   |
| व २ वि १६—४   | व ५ वि १६—४।४ | व ८ वि १६—४।७ |   |   |   |
| व २ वि १६—४   | व ५ वि १६—४।४ | व ८ वि १६—४।७ |   |   |   |
| ३             | ३             | ३             |   |   |   |
| व १ वि १६—३   | व ४ वि १६—४।३ | व ७ वि १६—४।६ |   |   |   |
| २             | २             | २             |   |   |   |
| व १ वि १६—२   | व ४ २ १६—४।३  | व ७ वि १६—४।६ |   |   |   |
| १             | १             | १             |   |   |   |
| व १ वि १६—१   | व ४ वि १६—४।३ | व ७ वि १६—४।६ |   |   |   |
| व १ वि १६—    | व ४ वि १६—४।३ | व ७ वि १६—४।६ |   |   |   |

|            |          |              |   |
|------------|----------|--------------|---|
| ३          | ३        | ३            | ३ |
| व ३ वि ४ २ | व ३ वि ३ | व ३ वि ४ । २ |   |
| २          | २        | २            |   |
| व ३ वि ४ २ | व ३ वि २ | व ३ वि ४ । २ |   |
| १          | १        | १            |   |
| व ३ वि ४ २ | व ३ वि १ | व ३ वि ४ । २ |   |
| व ३ वि ४ २ | ०        | व ३ वि ४ । २ |   |

रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं त्रिगुणितं व वि ३ । ४ । ३ पुनर्जघन्यवर्गमात्रविशेषः—  
२ । १

एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण रूपोनगच्छसंकलनेन ३ ३ द्विगुणेन व २ । ३ । २ गुणितः व वि ४ । ४ । ३ । २  
२ । १ २ । १

१. अ गुणितः रूपोनैकस्पर्धक एतौ ।

गुणहानियोळु स्पद्धकं प्रति रूपोनैकस्पद्धकवर्गणशलाकासंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्र-  
विशेषंगळु गुणकारंगळु गच्छमात्रंगळु प्रथमऋणपंक्तियोळुपुवु—

|                  |   |
|------------------|---|
| व । वि । ३ । ४ । | ९ |
| २                |   |
| व वि । ३ । ४ ।   | ८ |
| २                |   |
| व वि । ३ । ४ ।   | ७ |
| २                |   |
| व वि । ३ । ४ ।   | ६ |
| व वि । ३ । ४ ।   | ५ |
| २                |   |
| व वि । ३ । ४ ।   | ४ |
| २                |   |
| व वि । ३ । ४ ।   | ३ |
| २                |   |
| व वि । ३ । ४ ।   | २ |
| व वि । ३ । ४ ।   | १ |
| प्रथम पंक्तिऋण ॥ |   |

स्पद्धकवर्गणशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळु रूपोनगच्छद्विगुणसंकलनमात्र-  
गुणकारंगळु द्वितीयऋणपंक्तियोळुपुवु—

|                         |
|-------------------------|
| व । वि । ४ । ४ । २ । ३६ |
| व । वि । ४ । ४ । २ । २८ |
| व । वि । ४ । ४ । २ । २१ |
| व । वि । ४ । ४ । २ । १५ |
| व । वि । ४ । ४ । २ । १० |
| व । वि । ४ । ४ । २ । ६  |
| व । वि । ४ । ४ । २ । ३  |
| व । वि । ४ । ४ । २ । १  |
| ०                       |
| द्वितीयपंक्तिऋण         |

५ रूपोनगुणहानिस्पद्धकशलाकेगळु द्विगुणद्विकवारसंकलनदिदं स्पद्धकवर्गणा शलाकावर्ग-  
गुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळु गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्ति सर्वऋणं समासमेतावन्मात्रमकुं ।

व वि । ४ । ४ । २ । १ । १ । १ । १ । मत्तं गुणहानिस्पद्धकशलाकासंकलनदिदं रूपोनस्पद्धकवर्गणा  
३ । २ । १

शलाकासंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळु गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिऋणसमासमिनितकुं ।

एतो द्वौ राशौ तृतीयस्पर्धकऋणम् । एवं प्रथमगुणहानौ प्रतिस्पर्धकं रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनगुणित-  
जघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गुणकारा गच्छमात्राः प्रथमपंक्तौ गच्छन्ति । द्वितीयपंक्तौ च स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्ग-  
गुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुणैकवारसंकलनमात्रा गच्छन्ति ।

व। वि ३।४।९।९ ई राशियं मेऽपि सत्वेडि द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमास चरमगुणकार-  
 दोष्केरूप चतुर्थभागं प्रक्षेपिसुतं विरलुभयपंक्तिसर्वऋणसंयोगमेतावन्मात्रमवकुं । व वि ४४।  
 ९।९।९ ई राशियं मुन्नं तव प्रथम गुणहानिद्रव्यवोऽनु व वि।१६।४।९।९ कळ  
 दोडे प्रथमगुणहानि सर्वयोगाविभागप्रतिच्छेदंगळु यथास्वरूपदिदं वपुंनु । तत्प्रमाणमिव व वि  
 ४४।९।९।४ यिल्लि इदुवे आदिधनमवकुमुत्तरधनमिल्ल । मत्तमोगळु द्वितीयगुणहानिद्रव्यं  
 पेळल्पडुगुं । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणा व २१६ ङ्गं एकस्पर्धकवर्गणाशलाकेगळिवमुं  
 रूपाधिकगुणहानिस्पर्धकशलाकेगळिदं गुणिसिदोडे द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकमेतावन्मात्रमवकुं ।

|                     |                    |
|---------------------|--------------------|
| व वि ३ ४ ९          | व वि ४ ४ २ ३६      |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ ८          | व वि ४ ४ २ २८      |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ ७          | व वि ४ ४ २ २१      |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ ६          | व वि ४.४ २ १५      |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ ५          | व वि ४ ४ २ १०      |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ ४          | व वि ४ ४ २ ६       |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ ३          | व वि ४ ४ २ ३       |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ २          | व वि ४ ४ २ १       |
| २                   |                    |
| व वि ३ ४ १          |                    |
| प्रथमपंक्ति २ ऋणं । | द्वितीयपंक्तिऋणं । |

रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकानां द्विगुणद्विकवारसंकलनेन स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र-

विशेषेषु गुणितेषु द्वितीयपंक्तिसर्व—ऋणसमासोऽयं व वि ४।४।२।९।९ पुनः गुणहानिस्पर्धकशलाका-  
 ३२१

संकलेन रूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनेन च गुणितजघन्यमात्रवर्गविशेषः प्रथमपंक्तिऋणसमासोऽयं व वि १०

३४९९ अस्य मेलनं कर्तुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासचरमगुणकारे एकरूपचतुर्थभागे प्रक्षिप्ते उभय-  
 २१२१

व वि । १६ । ४ । ९ । मेतावन्मात्रं सर्वत्र कळदु पृथक्स्थापिसि—

पंक्तिः सर्वशृणुसंयोगो भवति व वि ४ ४ ९ ९ ९ । अस्मिन् प्रागानीतप्रथमगुणहानिद्रव्ये व वि १९ ४ ९ ९  
३ २ १

अपनीते प्रथमगुणहानि—

|     |         |         |   |     |         |         |   |     |         |         |   |
|-----|---------|---------|---|-----|---------|---------|---|-----|---------|---------|---|
| ३   | व ३     | वि १६—४ | २ | ३   | व ६     | वि १६—४ | ५ | ३   | व ९     | वि १६—४ | ८ |
| २   |         |         |   | २   |         |         |   | २   |         |         |   |
| व ३ | वि १६—४ | २       |   | व ६ | वि १६—४ | ५       |   | व ९ | वि १६—४ | ८       |   |
| १   |         |         |   | १   |         |         |   | १   |         |         |   |
| व ३ | वि १६—४ | २       |   | व ६ | वि १६—४ | ५       |   | व ९ | वि १६—४ | ८       |   |
| व ३ | वि १६—४ | २       |   | व ६ | वि १६—४ | ५       |   | व ९ | वि १६—४ | ८       |   |
| ३   | व २     | वि १६—४ |   | ३   | व ५     | वि १६—४ | ४ | ३   | व ८     | वि १६—४ | ७ |
| २   |         |         |   | २   |         |         |   | २   |         |         |   |
| व २ | वि १६—४ |         |   | व ५ | वि १६—४ | ४       |   | व ८ | वि १६—४ | ७       |   |
| १   |         |         |   | १   |         |         |   | १   |         |         |   |
| व २ | वि १६—४ |         |   | व ५ | वि १६—४ | ४       |   | व ८ | वि १६—४ | ७       |   |
| व २ | वि १६—४ |         |   | व ५ | वि १६—४ | ४       |   | व ८ | वि १६—४ | ७       |   |
| ३   | व १     | वि १६—३ |   | ३   | व ४     | वि १६—४ | ३ | ३   | व ७     | वि १६—४ | ६ |
| २   |         |         |   | २   |         |         |   | २   |         |         |   |
| व १ | वि १६—३ |         |   | व ४ | वि १६—४ | ३       |   | व ७ | वि १६—४ | ६       |   |
| १   |         |         |   | १   |         |         |   | १   |         |         |   |
| व १ | वि १६—३ |         |   | व ४ | वि १६—४ | ३       |   | व ७ | वि १६—४ | ६       |   |
| व १ | वि १६   |         |   | व ४ | वि १६—४ | ३       |   | व ७ | वि १६—४ | ६       |   |

प्रथमगुणहानिरवना ।

सर्वयोगाविभागप्रतिच्छेदा यथास्वरूपेण आयाति । व वि ४ ४ ९ ९ ९ ६ इदमादिघनम् । उत्तरघनं  
५ नास्ति । इदानीं द्वितीयगुणहानिद्रव्यमुच्यते—

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणार्धे एकस्पर्धकवर्गणाशकाभिः कृताधिकगुणहानिसाद्वकेश्व गुणिते द्वितीय-

गुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात् व वि १६ ४ ९ एतावन्मात्रं सर्वत्रापनीय पृथक् संस्थाप्य—

|              |              |
|--------------|--------------|
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। ८ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। ७ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। ६ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। ५ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। ४ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। ३ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। २ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। १ |
| २            | २            |
| व वि १६।४। ९ | व वि १६।४। ० |
| २            | २            |
| मूल धनं ॥    | संकलन धनं ॥  |

यल्लि प्रथमराशियन् गुणहानिस्पद्धकशलाकगळिदं गुणिसुत्तं विरलु सव्वसमासमेता-  
वन्मात्रमवकुं । व । वि । १६।४। ९। ९ ॥ यिवक्के मूलधनमेव संज्ञेयवकुं । मत्तं प्रथमगुणहानि-

जघन्यस्पद्धकाद्धवाद्युत्तरक्रमविदं द्वितीयाविस्पद्धकंगळोळिहं शेवं रूपोनगुणहानिस्पद्धकशलाका-  
संकलनदिदं गुणिसुत्तं विरलेतावन्मात्रमवकुं । व वि । १६।४। ९। ९ । यिवक्के संकलितधनमेव

संज्ञेयवकुमत्रतनऋणमं । व वि । १६।४। १। ९ । मूलधनवधिकरूपवोळु कळेबु शेगमुं । व वि । ५

१६।४। १। ९ । मूलधनवोळे प्रक्षेपितल्पडुगुमो येरडुं राशिगळु द्वितीयगुणहानियोळु स्थूलधन-  
मवकुमिल्लि ऋणं तरल्पडुगुं—

|                                                                                                              |                                                                                                                              |                                                                                                                            |                                                                                                                          |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| ३ २ ३<br>व। ९। वि १६-४<br>२<br>२ २ २<br>व। ९। वि १६-४<br>२                                                   | ३ ४ ३<br>व। ९। वि १६-४।३<br>२<br>२ ४ २<br>व। ९। वि १६-४।३<br>२                                                               | ३ ६ ३<br>व। ९। वि १६-४।५<br>२<br>२ ६ २ २<br>व। ९। वि १६-४।५<br>२                                                           | ३ ८ ३<br>व। ९। वि १६-४।७<br>२<br>२ ८ २ २<br>व। ९। वि १६-४।७<br>२                                                         |
| २<br>व। ९। वि १६-४<br>२<br>२<br>व। ९। वि १६-४<br>२<br>३ १<br>व। ९। वि १६-३<br>२<br>२ १<br>व। ९। वि १६-२<br>२ | ४ १<br>व। ९। वि १६-४।३<br>२<br>४ ०<br>व। ९। वि १६-४।३<br>२<br>३ ३ ३<br>व। ९। वि १६-४।२<br>२<br>२ ३ २<br>व। ९। वि १६-४।२<br>२ | ६ १<br>व। ९। वि १६-४।५<br>२<br>६ १<br>व। ९। वि १६-४।५<br>२<br>५ ३<br>व। ९। वि १६-४।४<br>२<br>५ २ २<br>व। ९। वि १६-४।४<br>२ | ८ १<br>व। ९। वि १६-४।७<br>२<br>८ २<br>व। ९। वि १६-४।७<br>२<br>७ ३<br>व। ९। वि १६-४।६<br>२<br>७ २<br>व। ९। वि १६-४।६<br>२ |
| १<br>व। ९। वि १६-१<br>२<br>१<br>व। ९। वि १६-<br>२                                                            | ३ १<br>व। ९। वि १६-४।२<br>२<br>३ १<br>व। ९। वि १६-४।२<br>२                                                                   | ५ १<br>व। ९। वि १६-४।४<br>२<br>५ १<br>व। ९। वि १६-४।४<br>२                                                                 | ७ १<br>व। ९। वि १६-४।६<br>२<br>७ २<br>व। ९। वि १६-४।६<br>२                                                               |

## द्वितीयगुणहानि

|                                                                                                                              |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| ३ ९ ३<br>व। ९। वि १६-४।८<br>२<br>२ ९ २<br>व। ९। वि १६-४।८<br>२<br>९ १<br>व। ९। वि १६-४।८<br>२<br>९ १<br>व। ९। वि १६-४।८<br>२ |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|

|             |   |             |   |             |   |             |   |
|-------------|---|-------------|---|-------------|---|-------------|---|
| ३ २         | ३ | ३ ४         | ३ | ३ ६         | ३ | ३ ८         | ३ |
| व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ५ | व ९ वि १६—४ | ७ |
| २ २ २       | २ | २ ४ २       | २ | २ ६ २       | २ | २ ८ २       | २ |
| व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ५ | व ९ वि १६—४ | ७ |
| १ २ २       | १ | १ ४ २       | १ | १ ६ २       | १ | १ ८ २       | १ |
| व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ५ | व ९ वि १६—४ | ७ |
| २ २         |   | ४ २         |   | ६ २         |   | ८ २         |   |
| व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ३ | व ९ वि १६—४ | ५ | व ९ वि १६—४ | ७ |
| २           |   | २           |   | २           |   | २           |   |
| ३ १         | ३ | ३ ३         | ३ | ३ ५         | ३ | ३ ७         | ३ |
| व ९ वि १६—३ | २ | व ९ वि १६—४ | २ | व ९ वि १६—४ | ४ | व ९ वि १६—४ | ६ |
| २ १ २       | २ | २ ३ २       | २ | २ ५ २       | २ | २ ७ २       | २ |
| व ९ वि १६—२ | २ | व ९ वि १६—४ | २ | व ९ वि १६—४ | ४ | व ९ वि १६—४ | ६ |
| १ १ २       | १ | १ ३ २       | १ | १ ५ २       | १ | १ ७ २       | १ |
| व ९ वि १६—१ | २ | व ९ वि १६—४ | २ | व ९ वि १६—४ | ४ | व ९ वि १६—४ | ६ |
| १ २         |   | ३ २         |   | ५ २         |   | ७ २         |   |
| व ९ वि १६—१ | २ | व ९ वि १६—४ | २ | व ९ वि १६—४ | ४ | व ९ वि १६—४ | ६ |
| २           |   | २           |   | २           |   | २           |   |

| द्वितीयगुणहानिः | मूलधनं | संकलितधनं   |
|-----------------|--------|-------------|
| ३ १             | १—     | व वि १६—४ ८ |
| व ९ वि १६—४ ८   | १      | २           |
| २               | १—     | व वि १६—४ ७ |
| २ १             | १      | २           |
| व ९ वि १६—४ ८   | १—     | व वि १६—४ ६ |
| २               | १      | २           |
| १ १             | १—     | व वि १६—४ ५ |
| व ९ वि १६—४ ८   | १      | २           |
| २               | १—     | व वि १६—४ ४ |
| १               | १      | २           |
| व ९ वि १६—४ ८   | १—     | व वि १६—४ ३ |
| २               | १      | २           |
| १               | १—     | व वि १६—४ २ |
| व ९ वि १६—४ ८   | १      | २           |
| २               | १—     | व वि १६—४ १ |
| १               | १      | २           |
| व ९ वि १६—४ ८   | १      |             |
| २               |        |             |

अत्र प्रथमराशौ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते सर्वसमासः स्यात् व वि १६ ४ ९ ९ अस्य मूलधन-  
२

मिति संज्ञा । पुनः प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकाद्युत्तरक्रमेण द्वितीयादिस्पर्धकस्थितशेषे रूपानुगुणहानिस्पर्धक-



जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनधनम् व। वि। ३  
 २  
 व। वि। २  
 २  
 व। वि। १

रूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसि। व। वि। ३। ४। ९। अधिकरूपम् कलेदु  
 व। वि। ३। ४  
 २ २

पृथक् स्थापिसिद्धौ प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणंगलितत्पुत्रु। व। वि। ३। ४। ९ व। वि। ३। ४। ९  
 २ २ २ ४

ई एरडु राशिगळु प्रथमस्पर्द्धकऋणमवकुं। मत्तं पूर्वोक्तविशेषाद्युत्तरगच्छसंकलनेयं।

५ व। ९। वि। ३ व। वि। ३। ४। ९ द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसि  
 ग २ २ २  
 उ २ वि २  
 व ९ २  
 आ २ वि  
 व। ९। २ १

शलाकासंकलनेन गुणिते एतावत् व। वि। १६ ४ १ ९ अस्य संकलितधनमिति संज्ञा। अत्रतनऋणं व। वि।  
 २ २ १

१६ ४ १ ९ मूलधनस्याधिकरूपे व। वि। १६ ४ १ ९, अपनीय शेषं व। वि। १६ ४ १ ९ मूलधने प्रक्षेप्यं व। वि।  
 २ २ २ २

१६ ४ ९ ९ एतौ द्वौ राशी द्वितीयगुणहानी स्थूलधनं स्तः। अत्रत्यं ऋणमानीयते—

जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं व। वि। ३ व। वि। ३ ४ रूपा-  
 २ २ १  
 व। वि। २  
 २  
 व। वि। १  
 २

१० धिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशिना संगुण्य व। वि। ३ ४ ९ अधिकरूपेऽपनीय पृथक्स्थापिते प्रथमद्वितीय-  
 २ २ १

पंक्तिऋणे स्तः व। वि। ३ ४ ९ व। वि। ३ ४ १ एते द्वे प्रथमस्पर्द्धकऋणम्। पुनः पूर्वोक्तविशेषाद्युत्तरगच्छ-  
 २ २ १ २ २ १

संकलनं

अधिकरूपद्विकमं तेगदु पृथक्स्थापिसुतं विरलु क्रमदिदं प्रथमद्वितीयपंक्तिरुगंगळ  
एतावन्मात्रंगळप्पु व। वि। ३। ४। ९ व। वि। ३। ४। २ वु। मत्तमेकस्पद्वंकवर्ग-

णाशलाकावर्गगुणजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषंगळं द्विरूपाधिकगुणहानिस्पद्वंकशलाकेगळिदं गुणिसि—

२ २  
१। ९। वि। ४ व। ९। वि। ४। ४ अधिकरूपद्विकमं कळेदु पृथक्स्थापिसुतं विरलु क्रमदिदं  
२ २ २ २

व। ९। वि। ४

२ २

व। ९। वि। ४

२ २

१। ९। वि। ४

तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळं तावन्मात्रंगळप्पुवु । व वि ४। ४। ९। व। वि। ४। ५  
२ २

४। २। १। यो नालकुं राशिगळु द्वितीयस्पद्वंकऋणमक्कुं । मत्तं पूर्वोक्ताद्युत्तरगच्छसंकलनेयं

द्वितीयस्पद्वंकाधिकऋणन्यासः

|   |   |      |
|---|---|------|
|   | २ |      |
| व | ९ | वि ३ |
|   | २ | २    |
| व | ९ | वि २ |
|   | २ | २    |
| व | ९ | वि १ |
|   | ० | २    |

|   |    |   |   |
|---|----|---|---|
|   |    |   | २ |
| व | वि | ३ | ९ |
|   | २  | २ | ४ |
|   |    |   | १ |

द्विरूपाधिकगुणहानिस्पद्वंकशलाकाराशिना संगुण्य अधिकरूपद्विकेऽपनीय पृथक्स्थापिते क्रमेण प्रथमद्वितीय-  
पंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ व वि ३ ४ २ पुनरेकस्पद्वंकवर्गणाशलाकावर्गगुणजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषान्  
२ २ २ २

द्विरूपाधिकगुणहानिस्पद्वंकशलाकाभिः संगुण्य—

१०

|   |   |      |
|---|---|------|
|   | २ |      |
| व | ९ | वि ४ |
|   | २ | २    |
| व | ९ | वि ४ |
|   | २ | २    |
| व | ९ | वि ४ |
|   | २ | २    |
| व | ९ | वि ४ |
|   | २ | २    |

|   |   |        |
|---|---|--------|
|   | २ |        |
| व | ९ | वि ४ ४ |
|   |   | २      |

अपिताधिकरणन्यासो द्वितीयस्पद्वंकस्य—

अधिकरूपद्विकेऽपनीय पृथक् स्थापिते क्रमेण तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ ९ व वि ४ ४ २ १ ।  
२ २

| प्रथमपंक्तिऋण    | द्वितीयपंक्तिऋण  | तृतीयपंक्तिऋण     | चतुर्थपंक्तिऋण     |
|------------------|------------------|-------------------|--------------------|
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ४।४।९।८<br>२ | व वि ४।४।२।३६<br>२ |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।८<br>२२ | व वि ४।४।९।७<br>२ | व वि ४।४।२।२८<br>२ |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।७<br>२२ | व वि ४।४।९।६<br>२ | व वि ४।४।२।२१<br>२ |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।६<br>२२ | व वि ४।४।९।५<br>२ | व वि ४।४।२।१५<br>२ |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।५<br>२२ | व वि ४।४।९।४<br>२ | व वि ४।४।२।१०<br>२ |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।४<br>२२ | व वि ४।४।९।३<br>२ | व वि ४।४।२।६<br>२  |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।३<br>२२ | व वि ४।४।९।२<br>२ | व वि ४।४।२।३<br>२  |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।२<br>२२ | व वि ४।४।९।१<br>२ | व वि ४।४।२।१<br>२  |
| व वि ३।४।९<br>२२ | व वि ३।४।१<br>२२ | ०                 | ०                  |

३  
व ९ वि ३  
२

३  
व ९ वि ३।४  
२२

त्रिरूपाधिकगुणहानिस्पदं कशलाकाराशियिबं गुणिसि रूपत्रयसं

३  
व ९ वि ३  
२

३  
व ९ वि १  
२

कळेदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणं कळे तावन्मात्रंगळपुषु । व वि । ३ । ४ । ९  
२ २

व । वि । ३ । ४ । २ मत्तं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषंगळं व ९ वि ४ । २ । व ९ । वि । ४ । ४ । २  
२ २ २ २

|                        |
|------------------------|
| ३<br>व ९ वि ४ । २<br>२ |
| ३<br>व ९ वि ४ । २<br>२ |
| ३<br>व ९ वि ४ । २<br>२ |

तृती. स्प. अंताविऋण न्यासः

स्पष्टकवर्गणाशलाकावर्गविदं गुणिसि द्विगुणितत्रिरूपाधिकगुणहानिस्पष्टकशलाकाराशियिदमुं  
गुणिसि अधिकरूपत्रयमं कळेदु पृथक् स्थापिसुतं विरलु तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रं-  
गळप्पुवु व वि ४।४।९।२ व वि ४।४।२।२ ई नालकुं राशिगळु तृतीयस्पष्टकऋण-  
मिन्तु प्रथमपंक्तिऋणंगळवस्थितक्रमविदं द्वितीयपंक्तिगुणकारंगळु पदमात्रक्रमविदं तृतीयपंक्ति-  
गुणकारंगळु रूपोनपदमात्रक्रमविदं चतुर्थपंक्तिगुणकारंगळु द्विगुणरूपोनपदसंकलनक्रमविदं ५

एते चत्वारो द्वितीयस्पर्धकऋणं पुनः पूर्वोक्ताद्युत्तरगच्छसंकलनं व ९ वि ३ व ९ वि ३ ४ त्रिरूपाधिक-  
तृतीयस्पर्धकाधिक व ९ वि २ २ २  
ऋणन्यासः ३ २  
व ९ वि १  
२

गुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिता संगुण्य रूपत्रयेऽनीय पृथक् स्थापिते प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः—व वि  
३ ४ ९। व वि ३ ४ ३ पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषान्—

तृतीयस्पर्धकापिताधिक-  
ऋणन्यासः

|            |
|------------|
| ३          |
| व ९ वि ४ २ |
| ३ २        |
| व ९ वि ४ २ |
| ३ २        |
| व ९ वि ४ २ |
| ३ २        |
| व ९ वि ४ २ |
| २          |

३  
व ९ वि ४ ४ २  
२

स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणत्रिगुणरूपाधिकगुणहानिस्पष्टकशलाकाभिश्च संगुण्य अधिकरूपत्रयेऽनीय  
पृथक् स्थापिते तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ ९ २ व वि ४ ४ २ ३ एते चत्वारः तृतीयस्पर्धक- १०  
ऋणम् । एवं प्रथमपंक्तिऋणान्यवस्थितक्रमेण द्वितीयपंक्तिगुणकाराः पदमात्रक्रमेण तृतीयपंक्तिगुणकाराः रूपोन-  
पदमात्रक्रमेण चतुर्थपंक्तिगुणकाराः रूपोनपदसंकलनक्रमेण च गच्छन्ति ।

नडेववेदितु प्रथमपंक्तिय प्रथमराशियं स्थापिसि गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसुत्तं विरलु  
प्रथमपंक्तिसर्वश्रृणसमासमेतावन्मात्रमवकुं । व वि ३।४।९।९। मत्तं द्वितीयपंक्तिप्रथम-  
२ २

राशियं स्थापिसि गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिदं गुणिसिबोडे द्वितीयपंक्तिसर्वश्रृणसमास-  
मेतावन्मात्रमवकुं व वि । ३।४।९।९। मत्तं तृतीयपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि रूपोनगुण-  
२ २ २

५ हानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिदं गुणिसुत्तं विरलु—

| प्रथमपंक्तिः        | द्वितीयपंक्तिः      | तृतीयपंक्तिः        | चतुर्थपंक्तिः        |
|---------------------|---------------------|---------------------|----------------------|
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।८<br>२ | व। वि। ४।४।२।३६<br>२ |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।८<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।७<br>२ | व। वि। ४।४।२।२८<br>२ |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।७<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।६<br>२ | व। वि। ४।४।२।२१<br>२ |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।६<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।५<br>२ | व। वि। ४।४।२।१५<br>२ |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।५<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।४<br>२ | व। वि। ४।४।२।१०<br>२ |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।४<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।३<br>२ | व। वि। ४।४।२।६<br>२  |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।३<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।२<br>२ | व। वि। ४।४।२।३<br>२  |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।२<br>२ २ | व। वि। ४।४।९।१<br>२ | व। वि। ४।४।२।१<br>२  |
| व। वि। ३।४।९<br>२ २ | व। वि। ३।४।१<br>२ २ | ०                   | ०                    |

अत्र प्रथमपंक्तिप्रथमराशी गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशिना गुणिते प्रथमपंक्तिसर्वश्रृणसमासो भवति  
व। वि। ३।४।९।९। पुनर्द्वितीयपंक्तिप्रथमराशी गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेन गुणिते द्वितीयपंक्ति-

२।२

श्रृणसमासो भवति व। वि। ३।४।९।९। पुनस्तृतीयपंक्तिप्रथमराशी रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाका-  
२ २ २

|                      |                          |   |
|----------------------|--------------------------|---|
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | ८ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | ७ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | ६ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | ५ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | ४ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | ३ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | २ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | व वि १६।४।<br>४          | १ |
| व वि १६।४।९।२ १<br>४ | संकलनधन<br>एषोऽधिको भागः |   |

मूलधन

तृतीयपंक्तिसर्वऋणसमासमेतावन्मात्रमङ्कुं । व। वि ४।९।९ मत्तं चतुर्थपंक्ति-  
प्रथमराशियं स्थापिसि ह्योनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेयिदं गुणिसुत्तं विरलु  
चतुर्थपंक्तिसर्वऋणसमासमेतावन्मात्रमङ्कुं व वि ४।४।२।९।९।९ इदनपर्वतिसि-  
२ ३ २ १

बोडिदु व। वि ४।४।९।९ ई चतुर्थपंक्तिसर्वऋणचरमगुणकारदोळु द्वितीयपंक्तिसर्व-  
२ ३

संकलनेन गुणिते तृतीयपंक्तिऋणसमासो भवति व। वि। ४।४।९।९।९ पुनश्चतुर्थपंक्तिप्रथमराशी ५  
२ २ १

रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेन गुणिते चतुर्थपंक्तिऋणसमासो भवति—

व। वि। ४।४।२।९।९।९ अयमपर्वतितः व। वि। ४।९।९।९।९ अस्य चरमगुणकारे द्वितीय-  
३ २ १ २ ३ २ १

ऋणमं कूडत्वडि एकरूपचतुर्भागमं प्रक्षेपिसिदुवनिवं व वि ४।४।९।९।९ मुन्नं स्थूलरूप-  
 दिवं तंव संकलितधनवोळु व वि १६।४।९।९।९ ई राशिय वोगुणहानियं विच्छिरसिवो-  
 डिदु। व वि ४।४।९।९।९।२ यिवरोळु शोधिसिवोडे द्वितीयगुणहानियोळु शुद्धमावि-  
 धनमेतावन्मात्रमक्कुं। व वि।४।४।९।९।९।४ मतं प्रथमपंकितसर्वऋणसंयोगार्थं  
 ६।२

- ५ तृतीयपंकितसर्वऋणचरमगुणकारवोळु एकरूपं प्रक्षेपिसिदुवनिवं व वि।४।४।९।९।९  
 मुन्नं स्थूलरूपदि तंव मूलधनवोळु। व वि।१६।४।९।९।९ अपवर्तितमिवरोळु  
 व वि ४।४।९।९।९।२ कळेदु शेषमनिवं। व वि ४।४।९।९।९।३  
 मूररिदं समच्छेदनिमित्तं मेगेयुं कळगेयुं गुणिसिवोडे द्वितीयगुणहानियोळु शुद्धमुत्तर-  
 धनमेतावन्मात्रमक्कुं व वि ४।४।९।९।९।९ ई येरडुं राशिगळु द्वितीयगुणहानिसर्व-  
 ६।२
- १० धनमक्कुमिल्लिदं मुंवे तृतीयगुणहानिधनं पेळल्पट्टपुववेतेवोडे तृतीयगुणहानिरचनेयिदु।

पंकितसर्वऋणं निक्षेप्तुं एकरूपचतुर्थभागं प्रक्षिप्येदं व। वि।४।४।९।९।९ प्राक्स्थूलरूपानीतसंकलितधनं  
 व। वि।१६।४।९।९।९ गतदोगुणहानिःसंभेद्य संस्थाप्य व। वि।४।४।९।९।९।२  
 शोध्यते तदा द्वितीयगुणहानौ शुद्धमादिधनं भवति व। वि।४।४।९।९।९ पुनः प्रथमपंकितसर्वऋणसंयोगार्थं  
 तृतीयपंकितसर्वऋणचरमगुणकारे एकरूपं प्रक्षिप्येदं व। वि।४।४।९।९।९ पूर्वं स्थूलरूपानीतमूलधने  
 व। वि।१६।४।९।९।९ अपवर्तितेऽस्मिन्—

- १५ व + वि।४।४।९।९।९।२ अपनीय शेषे व। वि।४।४।९।९।९।३ समच्छेदनिमित्तं  
 उपर्यधस्त्रिभिर्गुणिते द्वितीयगुणहानिशुद्धमुत्तरधनं भवति व। वि।४।४।९।९।९।९ एतौ द्वौ राशी  
 द्वितीयगुणहानिसर्वधनं। इतस्तृतीयगुणहानिधनमुच्यते तद्वचनेयं—

|                             |                             |                               |                               |
|-----------------------------|-----------------------------|-------------------------------|-------------------------------|
| ३ २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२ | ३ २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२ | ३ ६<br>व १२। वि १६-४ ५<br>२।२ | ३ ८<br>व १२। वि १६-४ ७<br>२।२ |
| २ २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२ | २ २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२ | २ ६<br>व १२। वि १६-४ ५<br>२।२ | २ ८<br>व १२। वि १६-४ ७<br>२।२ |
| २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२   | २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२   | ६<br>व १२। वि १६-४ ५<br>२।२   | ८<br>व १२। वि १६-४ ७<br>२।२   |
| १<br>व १२। वि १६-४<br>२।२   | १<br>व १२। वि १६-४<br>२।२   | ६<br>व १२। वि १६-४ ५<br>२।२   | ८<br>व १२। वि १६-४ ७<br>२।२   |
| ३ १<br>व १२। वि १६-३<br>२।२ | ३ २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२ | ३ ५<br>व १२। वि १६-४ ४<br>२।२ | ३ ७<br>व १२। वि १६-४ ६<br>२।२ |
| २ १<br>व १२। वि १६-२<br>२।२ | २ २<br>व १२। वि १६-४<br>२।२ | २ ५<br>व १२। वि १६-४ ४<br>२।२ | २ ७<br>व १२। वि १६-४ ६<br>२।२ |
| १<br>व १२। वि १६-१<br>२।२   | १<br>व १२। वि १६-४<br>२।२   | ५<br>व १२। वि १६-४ ४<br>२।२   | ७<br>व १२। वि १६-४ ६<br>२।२   |
| १<br>व १२। वि १६—<br>२।२    | १<br>व १२। वि १६-४<br>२।२   | ५<br>व १२। वि १६-४ ४<br>२।२   | ७<br>व १२। वि १६-४ ६<br>२।२   |

तृतीय गुणहानिरचने ॥

|                                              |
|----------------------------------------------|
| तृतीय गुणहानि<br>३<br>व १२। वि १६-४ ८<br>२।२ |
| २<br>व १२। वि १६-४ ८<br>२।२                  |
| ८<br>व १२। वि १६-४ ८<br>२।२                  |
| ८<br>व १२। वि १६-४ ८<br>२।२                  |



प्रथमगुणहानिजघन्यस्पद्धकचतुर्थभागसं रूपाधिकद्विगुण गुणहानिस्पद्धकशलाकाराशियिदं

गुणिसुतं विरलु स्थूलरूपविदं तृतीयगुणहानिप्रथमस्पद्धकमेतावन्मात्रमवकु व वि १६। ४। ९। २  
४

मो राशियं गुणहानिस्पद्धकशलाकेगळिदं गुणिसुतं विरलु सव्यमूलधनमेतावन्मात्रमवकुं

|                |    |                   |    |                   |    |
|----------------|----|-------------------|----|-------------------|----|
| ३ २            | ३- | ३ ४               | ३  | ३ ६               | ३- |
| व ९। २ वि १६—४ |    | व ९। २ वि १६—४। ३ |    | व ९। २ वि १६—४। ५ |    |
| २ २            | २- | २ ४               | २  | २ ६               | २- |
| व ९। २ वि १६—४ |    | व ९। २ वि १६—४। ३ |    | व ९। २ वि १६—४। ५ |    |
| १ २            | १- | १ ४               | १  | १ ६               | १- |
| व ९। २ वि १६—४ |    | व ९। २ वि १६—४। ३ |    | व ९। २ वि १६—४। ५ |    |
| ९              |    | ४                 | २२ | ६                 | २२ |
| व ९। २ वि १६—४ |    | व ९। २ वि १६—४। ३ |    | व ९। २ वि १६—४। ५ |    |
| २२             |    | २२                |    | २२                |    |

|               |   |                 |    |                 |    |
|---------------|---|-----------------|----|-----------------|----|
| ३ १           | ३ | ३ ३             | ३  | ३ ५             | ३  |
| व ९ २ वि १६—३ |   | व ९ २ वि १६—४ २ |    | व ९ २ वि १६—४ ४ |    |
| २ १           | २ | २ ३             | २  | २ ५             | २  |
| व ९ २ वि १६—२ |   | व ९ २ वि १६—४ २ |    | व ९ २ वि १६—४ ४ |    |
| १ १           | १ | १ ३             | १  | १ ५             | १  |
| व ९ २ वि १६—१ |   | व ९ २ वि १६—४ २ |    | व ९ २ वि १६—४ ४ |    |
| १             |   | ३               | २२ | ५               | २२ |
| व ९ २ वि १६—  |   | व ९ २ वि १६—४ २ |    | व ९ २ वि १६—४ ४ |    |
| २२            |   | २२              |    | २२              |    |

|                   |    |
|-------------------|----|
| ३ ८               | ३- |
| व ९। २ वि १६—४। ७ |    |
| २ ८               | २- |
| व ९। २ वि १६—४। ७ |    |
| १ ८               | १- |
| व ९। २ वि १६—४। ७ |    |
| ८                 | २२ |
| व ९। २ वि १६—४। ७ |    |
| २२                |    |

|                 |    |
|-----------------|----|
| ३ ७             | ३  |
| व ९ २ वि १६—४ ६ |    |
| २ ७             | २  |
| व ९ २ वि १६—४ ६ |    |
| १ ७             | १  |
| व ९ २ वि १६—४ ६ |    |
| ७               | २२ |
| व ९ २ वि १६—४ ६ |    |
| २२              |    |

व वि १६।४।९।२।९ मत्तं प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकचतुर्थभागाद्युत्तररूपोनगुणहानि-  
४

स्पर्द्धकशलाकागच्छधनं तरल्पदुत्तं विरलु संकलितधनमेतावन्मात्रमवकु व वि १६।४।९।९।  
४ २

मी येरडुं राशिगळु तृतीयगुणहानि ऋणसहितधनमवकुमा ऋणं तरल्पदुगुं । जघन्यवर्गगुणरूपोन-

| तृतीयगुणहानि:   | मूलधन             | संकलितधनं     |
|-----------------|-------------------|---------------|
| ३९              | १—                |               |
| व ९।२ वि १६—४।८ | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।८ |
| २९ २२ २—        | ४ १—              | ४             |
| व ९।२ वि १६—४।८ | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।७ |
| १९ २२ १—        | ४ १—              | ४             |
| व ९।२ वि १६—४।८ | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।६ |
| ९ ९२            | ४ १—              | ४             |
| व ९।२ वि १६—४।८ | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।५ |
| २२              | ४ १—              | ४             |
|                 | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।४ |
|                 | ४ १—              | ४             |
|                 | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।३ |
|                 | ४ १—              | ४             |
|                 | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।२ |
|                 | ४ १—              | ४             |
|                 | व। वि। १६।४।९।२।१ | व। वि। १६।४।१ |
|                 | ४ १—              | ४             |
|                 | व। वि। १६।४।९।२।१ |               |

प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकत्रतुभगि व वि १६।४ रूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाभिर्गुणिते स्थूल-  
४

रूपेण तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकमिदं व वि १६।४।९।२ गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाभिर्गुणितं सर्वमूलधनं  
४

स्यात् व वि १६।४।९।२।९ पुनः प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकचतुर्भागाद्युत्तररूपोनगुणहानिस्पर्द्धक-  
४

शलाकागच्छसंकलनमिदं व वि १६।४।९।२।९ एते द्वे तृतीयगुणहानिऋणसहितधनं भवतः ।  
४

स्पद्धक वर्गणाशलाकासंकलनमात्रविशेष व १।२। वि । ३ चतुर्भागमं रूपाधिकद्विगुण-

व १।२। वि । २

व १।२। वि । १

गुणहानिस्पद्धकशलाकाराशियिदं गुणिसि अधिकरूपनेतिकोऽङ्गु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु प्रथम-  
द्वितीयपंक्तिऋणंगले तावन्मात्रंगलपुवु व वि । ३।४। ९।२। व वि । ३।४। १ मत्तं द्वितीय-

४ २

४ २

स्पद्धक सर्व्वऋणमिदु व । १।२। वि । ४ प्रथमद्वितीयोभयपंक्तितंबंधिऋणमिदु । इदं

४

व । १।२। वि । ४

व । १।२। वि । ४

व । १।२। वि । ४

तदृणमानीयते — जघन्यवर्गगुणरूपो नस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रविशेष—

|   |   |   |    |   |
|---|---|---|----|---|
| व | १ | २ | वि | ३ |
|   | १ | — | ४  |   |
| व | १ | २ | वि | २ |
|   | १ | — | ४  |   |
| व | १ | २ | वि | १ |
|   |   |   | ४  |   |

चतुर्भागे रूपाधिकद्विगुणगुणहानिस्पद्धकशलाकागुणिते व वि ३।४ ९२ अधिकरूपे च पृथक् स्थापिते

४ २

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ २ व वि ३ ४ १ पुनर्द्वितीयस्पर्धकसर्व्वऋणमिदं

४ २

४ २

संकलितं व वि ३।४।९।२<sup>२</sup> अधिकद्विरूपमं तैगदु पृथक्स्थापितबोडे प्रथमस्पद्धं कप्रथम-  
पंक्तिसमानं प्रथमपंक्तिऋणमक्कु व वि ३।४।९।२। प्रथमस्पद्धं कद्वितीयपंक्तिऋणमं नोडली  
द्वितीयस्पद्धं कद्वितीयपंक्तिऋणं रूपाधिकगुणकारगुणमक्कु व वि ३।४।२ शेषतृतीय-  
चतुर्थपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदु

|   |             |
|---|-------------|
| २ | व १।२। वि ४ |
| ४ |             |
| २ | व १।२। वि ४ |
| ४ |             |
| २ | व १।२। वि ४ |
| ४ |             |
| २ | व १।२। वि ४ |
| ४ |             |

जघन्यवर्गमात्रस्पद्धं कवर्गणाशलाका-

अपनीताधिकऋणन्यासः

|            |     |
|------------|-----|
| २          | ३   |
| व १ २ वि ४ |     |
| २          | ४ २ |
| व १ २ वि ४ |     |
| २          | ४ १ |
| व १ २ वि ४ |     |
| २          | ४ ४ |
| व १ २ वि ४ |     |

प्रथमद्वितीयपंक्तिसंबन्धि ऋणमिदं

|       |      |
|-------|------|
| २     | वि ३ |
| व १   | ४    |
| २     | वि २ |
| व १ २ | ४    |
| २     | वि १ |
| व १ २ | ४    |

संकलय्य व वि ३ ४ १ २  
४ २

अधिकरूपद्वये पृथक्स्थापिते प्रथमस्पर्धकप्रथमपंक्तिसमानं प्रथमपंक्तिऋणं भवति व वि ३ ४ १ २ प्रथम-  
स्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणादिदं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं रूपाधिकगुणकारगुणं व वि ३ ४ २ शेषतृतीय-  
चतुर्थपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदं

चतुर्थपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदं

|   |            |
|---|------------|
| २ | व १ २ वि ४ |
| ४ |            |
| २ | व १ २ वि ४ |
| ४ |            |
| २ | व १ २ वि ४ |
| ४ |            |
| २ | व १ २ वि ४ |
| ४ |            |

जघन्यवर्गमात्रस्पर्धकवर्गणाशलाका-

वर्गगुणस्वविशेषगणं द्विरूपाधिकद्विगुणहानिस्पद्धकशलाकेमळिदं गुणिसि व वि १ ४ ४ ९ २  
 अधिकद्विरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पद्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणं गळेताबन्मात्रं-  
 गळपु व वि १ ४ ४ ९ २ व वि ४ ४ ९ २ वु। मत्तं तृतीयस्पद्धकसर्वऋणमिदु

|              |   |
|--------------|---|
| ३            | ३ |
| व ९ २ वि ४ २ |   |
| ४            |   |
| ३            | २ |
| व ९ २ वि ४ २ |   |
| ४            |   |
| ३            | २ |
| व ९ २ वि ४ २ |   |
| ४            |   |
| व ९ २ वि ४ २ |   |
| ४            |   |

इत्लि प्रथमद्वितीयपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदु

|            |  |
|------------|--|
| व ९ २ वि ३ |  |
| ४          |  |
| व ९ २ वि २ |  |
| ४          |  |
| व ९ २ वि १ |  |
| ४          |  |

इदं संकळिसि व वि ३ ४ ९ २ अधिकत्रिरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु तृतीयस्पद्धक-

वर्गगुणस्वविशेषद्विरूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिते व वि ४ ४ ९ २ अधिकद्वये च पृथक् स्थापिते  
 द्वितीयस्पर्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः । व वि ४ ४ ९ २ व वि ४ ४ २ ।

पुनस्तृतीयस्पर्धकसर्वऋणमिदं

|              |     |
|--------------|-----|
| ३            | ३   |
| व ९ २ वि ४ २ |     |
| ३            | ४ २ |
| व ९ २ वि ४ २ |     |
| ३            | ४ १ |
| व ९ २ वि ४ २ |     |
| ३            | ४   |
| व ९ २ वि ४ २ |     |
| ४            |     |

अत्र प्रथमद्वितीयपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदं

|            |   |
|------------|---|
| ३          |   |
| व ९ २ वि ३ |   |
| ३          | ४ |
| व ९ २ वि २ |   |
| ३          | ४ |
| व ९ २ वि १ |   |
| ४          |   |

संकलय्य व वि ३ ४ ९ २ अधिकरूपत्रये पृथक् स्थापिते तृतीयस्पर्धक-

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु

व वि ३।४।९।२  
४ २

व वि ३।४।३  
४ २

तृतीयचतुर्थपंक्तिसंबन्धिऋणमिदु

|       |        |
|-------|--------|
| ३     |        |
| व ९।  | वि।४।२ |
|       | ४      |
| ३     |        |
| व ९।२ | वि।४।२ |
|       | ४      |
| ३     |        |
| व ९।२ | वि।४।२ |
|       | ४      |
| ३     |        |
| व ९।२ | वि।४।२ |
|       | ४      |

यिदनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाके-

गळिदं गुणिसि अधिकत्रिरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं धिरलु तृतीयस्पर्द्धकं तृतीयचतुर्थपंक्तिऋण-  
गळेतावन्मात्रंगळप्पुवु व वि।४।४।९।२ | व वि।४।४।३ यितु स्पर्द्धकं प्रतिप्रथम-

पंक्तिगळु अवस्थितक्रमविदं द्वितीयपंक्तिगळु पदमात्ररूप गुणितक्रमविदं तृतीयपंक्तिगळु रूपोन-  
पदमात्ररूपगुणितक्रमविदं चतुर्थपंक्तियोलु द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनगुणितक्रमविदं नडेववेदितु  
स्थापिसि

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ २। व वि ३ ४ ३ शेषतृतीयचतुर्थपंक्तिसंबन्धिऋणमिदं  
४ २ १ ४ २ १

|       |        |
|-------|--------|
| ३     |        |
| व ९ २ | वि ४ २ |
| ३     | ४      |
| व ९ २ | वि ४ २ |
| ३     | ४      |
| व ९ २ | वि ४ २ |
| ३     | ४      |
| व ९ २ | वि ४ २ |
|       | ४      |

एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकाभिः संगुण्य व वि ४ ४ २ ९ २ अधिकरूपत्रये  
४

पृथक्स्थापिते तृतीयस्पर्द्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ २ ९ २ व वि ४ ४ २ ३ एवं  
४ ४

प्रतिस्पर्द्धकं प्रथमपंक्तयोऽवस्थितक्रमेण द्वितीयपंक्तयः पदमात्ररूपगुणितक्रमेण तृतीयपंक्तयो रूपोनपदमात्ररूप- १०  
गुणितक्रमेण चतुर्थपंक्तयो रूपोनगच्छसंकलनगुणितक्रमेण च गच्छन्ति । ताः संस्थाप्य—

| प्रथमपंक्तिऋण       | द्वितीयपंक्तिऋण   | तृतीयपंक्तिऋण      | चतुर्थपंक्तिऋण     |
|---------------------|-------------------|--------------------|--------------------|
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।९<br>४ २ | व वि ४।४।९।२८<br>४ | व वि ४।४।२।३६<br>४ |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।८<br>४ २ | व वि ४।४।९।२७<br>४ | व वि ४।४।२।२८<br>४ |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।७<br>४ २ | व वि ४।४।९।२६<br>४ | व वि ४।४।२।२१<br>४ |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।६<br>४ २ | व वि ४।४।९।२५<br>४ | व वि ४।४।२।१५<br>४ |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।५<br>४ २ | व वि ४।४।९।२४<br>४ | व वि ४।४।२।१०<br>४ |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।४<br>४ २ | व वि ४।४।९।२३<br>४ | व वि ४।४।२।६<br>४  |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।३<br>४ २ | व वि ४।४।९।२२<br>४ | व वि ४।४।२।३<br>४  |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।२<br>४ २ | व वि ४।४।९।२१<br>४ | व वि ४।४।२।१<br>४  |
| व वि ३।४।९।२<br>४ २ | व वि ३।४।१<br>४ २ | ०                  | ०                  |

यिल्लि प्रथमपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि व वि ३।४।९।२ गुणहानिस्पद'कशलाके-  
४ २

गळिवं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्वऋणसंयोगमिनितवकुं व वि।३।४।९।२।९ मत्तं  
४ २

| प्रथमपंक्तिः        | द्वितीयपंक्तिः    | तृतीयपंक्तिः       | चतुर्थपंक्तिः      |
|---------------------|-------------------|--------------------|--------------------|
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।९<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२८<br>४ | व।वि।४।४।२।३६<br>४ |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।८<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२७<br>४ | व।वि।४।४।२।२८<br>४ |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।७<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२६<br>४ | व।वि।४।४।२।२१<br>४ |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।६<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२५<br>४ | व।वि।४।४।२।१५<br>४ |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।५<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२४<br>४ | व।वि।४।४।२।१०<br>४ |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।४<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२३<br>४ | व।वि।४।४।२।६<br>४  |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।३<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२२<br>४ | व।वि।४।४।२।३<br>४  |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।२<br>४ २ | व।वि।४।४।९।२१<br>४ | व।वि।४।४।२।१<br>४  |
| व।वि।३।४।९।२<br>४ २ | व।वि।३।४।१<br>४ २ | ०                  | ०                  |

द्वितीयपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि व वि ३ ४ १ १ गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेयिदं

गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिऋणसंयोगमिनितक्कु व वि ३ ४ १ १ १ मत्तं तृतीयपंक्ति प्रथम-  
४ २ २

राशियं स्थापिसि व वि ४ ४ १ १ २ १ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेयिदं गुणिसुत्तं  
४

विरलु तृतीयपंक्तिऋणसंयोगमिनितक्कु व वि ४ ४ १ १ २ १ १ मत्तं चतुर्थपंक्तिप्रथम-  
४ २

राशियं स्थापिसि व वि ४ ४ १ २ १ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेयिदं

गुणिसुत्तं विरलु चतुर्थपंक्तिऋणसमासमिनितक्कु व वि ४ ४ १ २ १ १ १ १ ई चतुर्थ-  
४ ३ २ १

पंक्तिचरमगुणकारदोळु द्वितीयपंक्तिसर्वऋणमेलापनार्थमेकरूपचतुर्थभागं प्रक्षेपिसि मुन्नं  
स्थूलरूपविदं तदं संकलनधनदोळु शोधिसुत्तं विरलु तृतीयगुणहानिशुद्धमाविधनमेतावन्मात्रमक्कु  
व वि ४ ४ १ १ १ १ १ ४ मत्तं प्रथमपंक्तिसर्वऋणसंयोगार्थं तृतीयपंक्तिसर्वऋणचरम-  
४ २ २

गुणकारदोळु एकरूपं प्रक्षेपिसिदुक्तं तदु मुन्नं स्थूलरूपवि तदं मूलधनदोळु शोधिसि मेलैयुं केळगेयुं  
त्रिगुणिसिदोडे तृतीयगुणहानियोळु शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु व वि ४ ४ १ १ १ १ १ २  
६ १ २ २

ई येरडुं राशिगळु तृतीय गुणहानिसर्वधनमक्कुमी प्रकारविदं गुणहानि प्रत्याविधनमर्द्धाद्धमागि  
उत्तरधनमर्द्धाद्धमागियुं रूपोनगच्छगुणमुमागि नडेगुमन्तु नडेडु—

अत्र प्रथमपंक्तिप्रथमराशौ व वि ३ ४ १ २ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते प्रथमपंक्तिसर्वऋण-  
४ २ १

संयोगो भवति व वि ३ ४ १ २ १ पुनर्द्वितीयपंक्तिप्रथमराशौ व वि ३ ४ १ गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन  
१-४ २ १ ४ २ १

गुणिते द्वितीयपंक्तिऋणसंयोगो भवति व वि ३ ४ १ १ पुनस्तृतीयपंक्तिप्रथमराशौ व वि ४ ४ १ २ १ रूपोन-  
४ २ १ २ १ ४

गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणिते तृतीयपंक्तिऋणसंयोगो भवति व वि ४ ४ १ २ १ १ पुनश्चतुर्थपंक्ति-  
४ २

प्रथमराशौ व वि ४ ४ २ १ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेन गुणिते चतुर्थपंक्तिऋणं भवति व वि  
४

४ ४ २ १ १ १ अस्य गुणकारे द्वितीयपंक्तिसर्वऋणमेलापनार्थं एकरूपचतुर्थभागं प्रक्षिप्य प्राक्स्थूलरूपापनीत-  
३ २ १

संकलितधने शोधिते तृतीयगुणहानिशुद्धमाविधनमायाति— व वि ४ ४ १ १ १ ४ पुनः प्रथमपंक्तिसर्वऋण-  
६ २ २

संयोगार्थं तृतीयपंक्तिसर्वर्णचरमगुणकारे एकरूपं प्रक्षिप्य इदं प्राक्स्थूलरूपापनीतमूलधने संशोध्य उपर्यङ्गच त्रिभिः





चरमगुणहानियोऽष्ट एरडुं धनगच्छे रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळ भागहारंगळप्पुवुत्तर-  
धनगुणकारमुं मत्ते रूपोननानागुणहानिमात्रमक्कुं । सर्वत्रमेरडुं धनगच्छे गुणहानिस्पदकशलाका-  
घनस्पदकवर्गणाशलाकाकृतिगुणजघन्यवर्गमात्रविशेषं गुणराशिसमानमक्कुं । गुणकारमुं मत्ते  
आदिधनक्के चतुःषड्भागादिद्विगुणहीनमक्कुमुत्तरधनक्के नवषड्भागादिद्विगुणहीनमक्कुं ।  
रूपोनपदगुणितमुमक्कुमितु गुणहीनाधिकस्वरूपदिदं स्थितिसर्वगुणहानिगळ संकलनसूत्रमिदुः—  
पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं वैकं सहोत्तराद्यंशगुणं ।

विपदघनचयं विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना ॥

ई सूत्रदर्थं सुगममक्कु । विपदघनचयमेदितु पदेन घनः पदघनः गच्छेन हत इत्यर्थः । स  
चासौ चयश्च पदघनचयः विगतः पदघनचयो यस्मात्तद्विपदघनचयं विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहता-  
द्यच्छिदिनेति । विगतमेकेन वैकं वैकं च तत्पदं च वैकपदं । तन्मात्रगुणकाराणामन्योन्याभ्यासस्तेन-  
हतेनाद्यच्छिदिना विभजेदिति संबंधः । येदितिल्लि नानागुणहानिमात्रद्विकंगळवर्गितसंवर्गदिदं

पुट्टिद राशि अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कु प मदर्शकैकरूपं हीनं माडि प आद्युत्तरांशगळं कूडि

गुणिसिद राशियुमं १३ प उत्तरधनपदघनचयं ऋणमप्पुदरिना ऋणराशियुमं ९ प रूपोनपद-

मात्रद्विकंगळ रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळं वर्गितसंवर्गं माडि संजनितान्योन्याभ्यस्त राश्यद्वि-  
दिदं गुणिसलपट्ट आद्यच्छेदरूपषट्कदिदं भागिसुत्तं विरलु आद्युत्तराभयधनमुं ऋणमुमक्कुं—

अत्र सर्वत्र घनद्वये गुणहानिस्पदकशलाकाघनस्पदकवर्गणाशलाकाकृतिगुणजघन्यवर्गमात्रविशेषो गुणं  
समानं गुणकारः आदिघने चतुःषड्भागादिद्विगुणहीनः । उत्तरधने नवषड्भागादिद्विगुणहीनोऽपि रूपोनपद-  
गुणितो भवति । एवं गुणहीनाधिकरूपस्थितसर्वगुणहानिघनसंकलनसूत्रं—

‘पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं व्येकं सहोत्तराद्यंशगुणं विपदघनचयं विभजेत् व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छि-  
दिना ।’ अस्यार्थः—[विपदघनचयं पदेन घनः पदघनः गच्छेन हतः इत्यर्थः, स चासौ चयश्च पदघनचयः, विगतः  
पदघनचयो यस्मात्तं विपदघनचयं । व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विगतं एकेन व्येकं तच्च तत्पदं च व्येकपदं  
तन्मात्रगुणकाराणामन्योन्याभ्यासः तेन हतेन आद्यच्छिदिना विभजेदिति संबंधः । ] पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं

नानागुणहानिमात्रद्विकानां परस्परगुणनं प व्येकं—एकरूपोनं प सहोत्तराद्यंशगुणं उत्तरधनांशसहिताविधनां-

सिंहतं कृत्वा १३ प विपदघनचयं पदघनोत्तरधनचयः ऋणमस्तीति तं पृथग् न्यसेत् ९ प ती राशी व्येक-

पदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणिताद्यच्छेद-

व वि ४।४।९।९।९। धनं प ऋण व वि ४।४।९।९।९।९। प मत्तं  
 १३ ० ६। प ० ०  
 ६। प ०  
 ३ २

धनस्थितऋणमनुभयांशंगळं तेगदु व वि ४४९९९।१३ ऋणऋणयोरैक्यमेदितु ऋण-  
 ६ प  
 ० ०

राशियगुणकारदोळु रूपोननानागुणहानियोळु कूडुत्तं विरलु सर्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं—

व वि ४।४।९।९।९।९। प-१ १३ बळिकं धनद गुणकार भागहारंगळनपवत्तिसि भागिसि  
 ६ प ० ०  
 ० १ २

५ मत्तं ऋणद गुणकारभागहारंगळनपवत्तिसि रूपासंख्यातैकभागं १ कळयुत्तं विरलु किंचिदून-  
 ०

त्रिभागाधिकरूपचतुष्टयगुणकारमकुमदक्के संदृष्टिः—

१ व वि ४।४।९।९।९।९। ४ मत्तमी करणसूत्राभिप्रायप्रकटनाथं सर्वगुणहानिगळ  
 १  
 ३

मध्यदोळु प्रथमगुणहानिमोदलोडष्टगुणहानिगळ धनं तरल्पदुगुमदेतेदोडेः—

अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणमेदितु गुणसंकलनसूत्रदिदं तरल्पदुदो धनसंदृष्टि—

१० षट्केन विभजेत् इत्युभयधनऋणे स्यातां । व वि ४४९९९१३ प व वि ४४९९९९ प तद्वनस्थ-  
 ० ० ० ०  
 ६ प ६ प  
 ० २ ० २

ऋणं पृथक् कृत्य व वि ४४९९९१३ ऋणऋणयोरैक्यमिति ऋणराशौ प्रक्षिप्य  
 ६ प  
 ० २

व वि ४४९९९९१३ प अपवर्तिते रूपासंख्यातैकभागः १ अपवर्तितधने १३ अपनीतस्तदा किंचिदून-  
 ० ० ३  
 ६ प  
 ० २

त्रिभागाधिकरूपचतुष्टयं गुणकारो भवति । तत्संदृष्टिः व वि ४४९९९४ पुनः सूत्राभिप्रायप्रकटनाथं प्रथमा-  
 १—  
 ३

अष्टगुणहानीनां धनमानोयते—

१५ अंतधनं गुणगुणियं आदिविहीणमिति गुणसंकलनसूत्रानीतादिधनं । संदृष्टिः—

व । वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ २५६ उत्तरघनसमासबोळु तत्रतत्रतनगुणकारंगळोळु पृथक्-पृथक्  
६ २५६  
स्थापितुं विरळु—  
२

|                        |                  |                  |                  |                  |
|------------------------|------------------|------------------|------------------|------------------|
| ९।१ आदिघन<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ |
| ९।१<br>६।२२२२२२२       | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ |
| ०                      | ०                | ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२   |
| ०                      | ०                | ९।१<br>६।२२२२    | ९।१<br>६।२२२२    | ९।१<br>६।२२२२    |
| ९।१<br>६।२२२           | ९।१<br>६।२२२     | ९।१<br>६।२२२     | ९।१<br>६।२२२     | ९।१<br>६।२२२     |
| ९।१<br>६।२ अ. घ.       | ९।१<br>६।२       | ९।१<br>६।२२२     | ९।१<br>६।२२२     |                  |
| ९।१<br>६               |                  | ९।१<br>६।२२      |                  |                  |

|                  |                    |                    |
|------------------|--------------------|--------------------|
| ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२   | ॥ ९।१<br>६।२२२२२२२ |
| ९।१<br>६।२२२२२२२ | ॥ ९।१<br>६।२२२२२२२ |                    |
| ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२२२   |                    |

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ २५६ उत्तरघनसमासे तु तत्र तत्रतनगुणकारेषु पृथक् पृथक् स्थापितेषु—  
६ २५६  
२

|                  |                  |                  |                  |                  |                  |                  |
|------------------|------------------|------------------|------------------|------------------|------------------|------------------|
| ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ |
| ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ | ९।१<br>६।२२२२२२२ |
| ०                | ०                | ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२   |                  |
| ०                | ०                | ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२   | ९।१<br>६।२२२२२   |                  |                  |
| ९।१<br>६।२२२     | ९।१<br>६।२२२     | ९।१<br>६।२२२     | ९।१<br>६।२२२     |                  |                  |                  |
| ९।१<br>६।२२      | ९।१<br>६।२२      | ९।१<br>६।२२      |                  |                  |                  |                  |
| ९।१<br>६।२       | ९।१<br>६।२       |                  |                  |                  |                  | ९।१<br>६।२२२२२२२ |
| ९।१<br>६।२       | ९।१<br>६।२       |                  |                  |                  |                  |                  |
| ९।१<br>६।१       |                  |                  |                  |                  |                  |                  |

सप्तपंक्तिगळपुत्रु । अवरमध्यदोळ मुन्नमूर्ध्वरूपविदं चरममं बिट्ठु शेषषट्पंक्तिगळं  
संकलिसि बळिकं चरमदोळ तत्प्रमाणऋणमनिक्कि संकलिसि बळिकं तिग्यंघूपसंकलननिमित्त-  
मागियुमष्टमस्थानदोळं तावन्मात्रऋणमनिक्कि ९।१ तिग्यंघूपविदं संकलिसि चरम-  
६।२२२२२२२

सप्तमस्थानदोळिकिदऋणमं कळेयुत्तं विरलु उत्तरधनसमासमेतावन्मात्रमक्कुं—

५ व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ९ । २५६ आदिविहीनमादिविहीनमेदु सर्वत्र स्थाप्यमागिर्दं  
६ । २५६  
२

ऋणसमासदोळमष्टमस्थानदोळं कूडि सर्वत्रऋणमेतावन्मात्रमक्कुं व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २५६ इत्तु  
६ । २५६  
२

मूर्धं सिद्धराशिगळ विषयदोळ गुणहीनाधिक संकलनासूत्रं प्रवर्तिसुगुर्मेदितु तत्सूत्राभिप्रायं  
सम्यग्दक्षितमादुदुभयधनयोगमिदु व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । १३ । २५६ अत्रतनहीनरूपं तेगदु  
६ । २५६  
२

ऋणऋणंगळोक्तत्वमेदितु कूडुत्तं विरलु अष्टषष्टिसप्तशतहृतपंचाशीतिगुणकारमक्कुमदक्केसंदृष्टि  
१० व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ८५ मत्तं धनव गुणकारभागहारंगळनपवर्तिसि ४ ऋणमं कळेयुत्तं  
७६८  
१  
३

सप्त पंक्तयः स्मृः । तासु षड्धरूपेण संकलय्य सप्तम्यां तत्प्रमाणऋणं प्रक्षिप्य पश्चात्तिर्यक्संकलनायं  
अष्टमस्थाने एतावद्गुणं ९ । १  
६ । २२२२२२२

निक्षिप्य संकलय्य अष्टमस्थाननिक्षिप्तऋणे अपनोते उत्तरधनसमासोऽयं व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २५६ आदि-  
६ २५६  
२

विहीनमिति सर्वत्र स्थाप्यतया अवस्थितऋणसमासः अष्टस्थानानामेतावान् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ८ एवं  
६ २५६  
२

१० त्रयाणामपि सिद्धराशीनां विषये गुणहीनाधिकसंकलनसूत्रं प्रवर्तत इति सूत्राभिप्रायः सम्यग्दक्षितः ।  
उभयधनयोगोऽयं—व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ २५६ अत्रतनहीन १३ १ रूपमपनीय ऋणार्णयोरैक्यमिति  
६ २५६ ६ २५६  
२ २

युक्तोऽष्टषष्टिसप्तशतहृतपंचाशीतिचाशीतिगुणकारः स्यात् तत्संदृष्टिः— व वि ४ ४ ९ ९ ९ ८५ पुनः धन-  
७६८

१. मं किं बळिकं । २. मं समष्टस्यं ।

विरलु किञ्चिदूनत्रिभागाधिकचतुरूपगळु गुणकारमक्कुमदक्के संदृष्टि— व वि । ४।४।९।९।९।९  
१७१ शेष  
२५६ ३

मत्तमी करणसूत्राभिप्रायदिदमष्टगुणहानिगळ धनं तंदु तोरलुपडुगुं । पदमात्रगुणगच्छमात्रगुणकारं-  
गळं स्थापिसि २२२२२२२२ अन्योन्याभ्यस्तः परस्परं गुणिसि । २५६ । वैकं एकरूपमं होनं माडि

२५६ बळिककी राशियं सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तरधनांशंगळं कूडि १३ । गुणिसिदराशियोळु

१३ । २५६ विपदघनचयं पदमात्रमुत्तरधनविशेषंगळं । ९ । ८ । कळेंबुदंतु कळेंयुतं विरलु शेष-  
मिदु । ३२४३ । ई राशियं व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विभजेत् । रूपोनपदमात्रगुणकारंगळ  
२।२।२।२।२।२।२।२ अन्योन्यगुणपरस्परगुणविदं पुट्टिद लब्धराशिपिदं २५६ हताद्यच्छिदिना गुणिसल्पट्टा-

द्यच्छिदविदं ६२५६ विभजेत् भागिसुबुदन्तु भागिसुतं विरलु ३२४३ बंद लब्धमष्टगुणहानिगळ  
२ ७६८

शुद्धधनमक्कु ४ भागे १७१ मंबुदिदु करणसूत्राभिप्रायमक्कुमिदु किञ्चिदूनत्रिभागाधिकरूप-  
२५६।३

चतुष्टयं गुणकारमक्कुं व वि ४४।९।९।९।९ शेषगुणहानिगळ धनानयनवोळु नवमगुण- १०  
१  
३

हानियोळु आदिधनदाद्यच्छेदं बेसदछप्पण्णहतषट्कमक्कुं ४ उत्तरधनवोळुमाद्यच्छेदं तावन्मात्र-  
६ । २५६

मयक्कुं ९।८ उभयधनांशंगळुं कूडि सर्वत्र षट्सप्ततिमात्रमक्कुं व वि ४४।९९९।७६  
६ । २५६ ६ । २५६

गुणकारभागहारावपवर्यं ४ ऋणेऽपनीते किञ्चिदूनत्रिभागाधिकचतुरूपाणि गुणकारः स्यात् । तत्संदृष्टिः—  
१  
३

व वि ४४ ९ ९ ९ ४ पुनरेतत्करणसूत्राभिप्रायेण अष्टगुणहानिधनमानोयते—  
१७१  
२५६ ३

पदघनं च पदमात्रगुणा २ २ २ २ २ २ २ २ न्योन्याभ्यासं २५६ व्येकं २५६ सहोत्तराद्यंशगुणं १५

१३ २५६ विपदघनचयं पदघनचयेन ९ ८ रहितं ३२४३ व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विभजेत् ३२४३  
६ २५६ ७६८  
२

इत्यष्टगुणहानिशुद्धधनं ४ भाग १७१ किञ्चिदूनत्रिभागार्धैकरूपचतुष्टयं गुणकारो भवति व वि ४४ ९ ९ ९ ४  
२५६।३ १—  
३

शेषगुणहानियनानयने नवमगुणहानी आदिधनं बेसदछप्पण्णहतषट्कभवतषट्कसप्ततिः—  
क-३९

मेकं दोडे अष्टरूपोननानागुणहानिमात्रसर्वपदंगळोळु अष्टरूप गुणितोत्तरवके ९।८। संयुतरूप-  
चतुष्टयस्वविदं । यितागुत्तं विरलु नवमगुणहानियोळुत्तरधनमिल्लेकं दोडे तत्सर्ववकं स्वकादियोळ  
संक्रांतत्वविमंतागुत्तं विरलु दशमगुणहानियोळुभयधनच्छेदं द्विगुणवेसदछप्पणहतषट्कमक्कु ।  
मेलेयुभयधनंगळ हारंमळु द्विगुणद्विगुणंगळानि नडेववन्तु नडेदु चरमदोळु उभयधनंगळोळं  
५ द्विगुणवेसदछप्पणभाजितान्योन्याभ्यस्तराशियुणितस्वकादिच्छेदं हारमक्कुमुत्तरधनगुणकारमुमेका-  
व्येकोसरक्रमविदं नडेयल्पडुत्तिदुदु । चरमदोळु नवरूपोननानागुणहानिमात्रमक्कुमिल्लि पूर्वकर-  
णसूत्रविदं मेण तवभिप्रायक्रमविदं धनंतरल्पडुगुभल्लि करणसूत्रविदं धनं तरल्पडुगुमदं ते दोडे

|                      |                             |
|----------------------|-----------------------------|
| ७६<br>६ प<br>० २५६।२ | ९ प ९<br>५ ० ० ६<br>० २५६।२ |
| ०                    | ०                           |
| ७६<br>६।२।२५६        | ९।१<br>६२।२५६               |
| ७६<br>६।२५६          | ०                           |

पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं पदमात्रगुणकारंगळ अन्योन्याभ्यास-

विदं पुट्टिब रासि वेसदछप्पण भक्तान्योन्याभ्यस्तराशियक्कु ५ मदं वैकं एकरूपविदं हीनं  
० २५६

माडुवुदु । ५ अन्तु माडिद राशियं सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तर धनंशंगळं कूडि गुणिसूदु ८५ प  
०।२५६ ७६ ९ ०

व वि ४४९९९ ७६ कुतः ? तत्रतना ४ १८ शुत्तरधनयोरादावेव संक्रांतत्वात्  
६।२५६ ६।२५६/६२५६

तत्रोत्तरधनं नास्ति । दशमगुणहानो उभयधनच्छेदः द्विगुणवेसदछप्पणहतषट्कं उपरि द्विगुणद्विगुणो भूत्वा  
चरमे द्विगुणवेसदछप्पणभक्तान्योन्याभ्यस्तगुणितादिच्छेदः स्यात् । उत्तरधनगुणकारः एकाद्येकोत्तरक्रमेण  
गच्छेच्चरमे नवो नानागुणहानिमात्रो भवति । अत्रापि उक्तकरणसूत्रतदभिप्रायाभ्यां घनमानेतव्यम् । तत्र  
करणसूत्रेण यथा—

|                      |                             |
|----------------------|-----------------------------|
| ७६<br>६ प<br>० २५६।२ | ९ प-९<br>६ प ० ०<br>० २५६।२ |
| ०                    | ०                           |
| ०                    | ०                           |
| ०                    | ०                           |
| ७६<br>६।२५६।२        | ९।१<br>६।२५६।२              |
| ७६<br>६।२५६          | ०                           |

अन्तु गुणिसिद्ध राशियोळु विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचयः । ९ प ८ मिदु कळेयल्वेळकुमेदु वेरि-  
० ०

रिसिया येरडुं राशिगळं व्येकपदरूपोनगच्छमात्रगुणकारंगळ अन्योन्याभ्यासजनितराशियिदं  
प गुणिसल्पट्ट आद्यच्छिदिना आद्यच्छेदविदं विभजेत् भागिसुबुदु धनं ।  
० २५६ । २

८५ प ०  
० २५६ । ५ ६ । २५६ २५६ । ६ प ० ० २५६ । २ यितु स्थापिसल्पट्ट धनऋणंगळोळु धनदोळिहं

६।९  
ऋणरूपनुभयांशप्रमितमनेतिकोडु वेरिरिसि ८५ । १ ऋणराशियोळिहं ऋणं राशिगे धन- ५  
६ प २५६  
० २५६ । २

मक्कुमप्पुवरिदं । द्विसप्ततिप्रमितांशमं तेगदुकोडु समच्छेदंगळप्पुवरिदं पंचाशीतियोळु द्विसप्ततियं  
कळेडु शेषऋणम १३ निदं त्रयोदशरूपं ऋणदोळे निक्षेपिसि १३  
२५६।६।५ ९ । प  
० २५६ । २ २५६।००६ प  
० २५६ । २

सर्वगुणहानिगळ संकलनेयोळु जनितरुणसमानमुनी ऋणमुमक्कुमेदु निरीक्षिसि धनऋणंगळ

पदामात्रगुणान्योन्याभ्यासं प व्येकं प सहोत्तराद्यंशगुणं ८५ प विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचयः  
० २५६ ० २५६ ० २५६  
९ प-८ अपनेतव्योऽस्तीति तं पृथक् संस्थाप्य तौ राशी व्येकपदान्योन्याभ्यस्त प २५६ । हताद्यच्छिदिना १०  
० ०

विभजेत् इति धनं—८५ प ऋणं—९ प-८ धनस्थं ऋणं पृथक् संस्थाप्य  
६।२५६ प ० । २५६ ०  
० २ । २५६ ६ । २५६ प ० ०  
० २ । २५६

८५ १ ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवतीति द्विसप्तति ७२  
६ । २५६ प ६ । २५६ प  
० २५६ । २ ० २५६ । २

पंचाशीत्यामपनीय शेषत्रयोदशसु ऋणे निक्षिप्तेषु इदं—९ प निरीक्ष्य धनऋणे अपवर्तयितव्ये ।  
० ०  
६ । २५६ प  
० २५६ । २

तत्र घने अन्योन्याभ्यस्तेन वेसदछप्पणं वेसदछप्पणेन द्विकं षड्रूपस्थद्विकेन चापवर्त्य शेषं ८५  
२५६ । ३



गुणकारभागहारंगठनपर्वत्तिसुबल्लि धनदोळन्योन्याभ्यस्तराशियन्योन्याभ्यस्तराशियोडने बेसद-  
छप्पणनं बेसदछप्पणनोडनपर्वत्तिसि द्विकमं षड् रूपस्थितद्विकदोडनपर्वत्तिसिदोडे शेषधनमिदु  
८५ ऋणमं निरोक्षिसियपर्वत्तिसिदोडेकरूपासंख्यातैकभागमवकु १ । मिदं कळेयुत्तं विरलु  
२५६ । ३

किंचिदूनाष्टषष्टिसप्तशतभक्तपंचाशीतिप्रमितमवकुमवस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमवकु

५ व वि ४४ । ९ ९ ९ । ८५ मिदनष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकसप्तत्युत्तरशतदोळ मुन्नितष्टगुणहानि-  
२५६ । ३

द्रव्यगुणकारदोळ ८५ प्रक्षेपिलुधंतु प्रक्षेपिसिदुदिदु २५६ किंचिदूनत्रिभागमवकुमी त्रिभागविदमा-  
१७१ ७६८

धिकमप्य रूपचतुष्टयमेनवस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमं माडुत्तिरलु सर्वगुणहानिद्रव्यसमासमेता-  
वन्मात्रमवकु व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४ मथवा व्यतिरेकमुखदिदं शेषगुणहानिगळ द्रव्यं तरलपडुवल्लि  
१  
३

अष्टगुणहानिद्रव्यमं व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४ सर्वगुणहानिगळ द्रव्यदोळ व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४  
१७१ १  
७६८ ३

१० कळेयुत्तं विरलु एकरूपासंख्यातैकभागोनाष्टषष्टिसप्तशतभक्तपंचाशीतिगुणकारमवकु व वि  
४४ । ९ ९ ९ । ८५ ई जघन्ययोगस्थानरचना सर्वद्रव्यमनिदं स्थापिसि व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४  
७६८ १  
३

अपवर्तितऋणेन एकरूपासंख्यातैकभागेन १ ऊनिते अष्टषष्टिसप्तशतभक्तकिंचिदूनपचाशीतिः अवस्थितगुण्यस्य  
७

गुणकारः स्यात् । व वि ४४ । ९ ९ ९ । ८५ अस्मिन् अष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकसप्ततिशते अष्टगुणहानिद्रव्यगुणकारे  
२५६ । ३

प्रक्षिप्ते २५६- किंचिदूनत्रिभागः । अनेन अधिकरूपचतुष्टये अवस्थितगुण्यस्य गुणकारे कृते सर्वगुणहानिद्रव्य-  
७६८

१५ मेतावद्भवति— व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४ अथवा व्यतिरेकमुखेन शेषगुणहानिद्रव्यमानीयते —  
१-  
३

तत्राष्टगुणहानिद्रव्ये व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४ सर्वगुणहानिद्रव्यात् व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४ अपनीते  
१७१ १-  
७६८ ३

अष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकरूपासंख्यातैकभागोनपंचाशीतिगुणकारः स्यात् व वि ४४ । ९ ९ ९ । ८५ तज्जघन्ययोग-  
७६८

इल्लि संदृष्टिनिमित्तमाणि चारिणवगा अट्ट एंदितु गुणहानियनुत्पादिसि रूपत्रिभागमं वेरे तेगेदि-  
रिसि व वि ८४९९१ गुणकारभूतचतुष्कं भेदेसि द्विकद्वयमं माडि २।२। एकद्विकदिदमा

३

गुणहानियं गुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कु १६ । मागळु सव्वराशिविन्यासमिदु व वि १६ । ४।९९।२  
ई प्रकारदिदं त्रिभागेयोळु संदृष्टिनिमित्तमाणि द्विकदिदं मेगेयुं केळगेयुं गुणिसिदोडे तद्विन्यास-  
मिदु व वि १६ । ४।९।९।१-२ इवनी रूपषड्भागमं व वि १६ । ४।९९।१- पूर्व- ५

३।२

६

राशिय गुणकारद्विकदोळु साधिकमं माडि जघन्यस्पद्वकप्रमाणदिदं प्रमाणिसुत्तं विरलु किचिदून-  
षड्भागाधिकद्विरूपदिदं गुणितैकगुणहानिस्पद्वकशलाकावर्गमात्रंगळु जघन्यस्पद्वकंगळपुवदक्के  
संदृष्टि १।९।१।२ । एकगुणहानिस्पद्वकशलाकाप्रमाणश्रेण्यसंख्यातैकभागवर्गं साधिकद्विगुण-

मक्कुमवर प्रमाण ० ० मिदेत्तलानुं प्रतरासंख्येयभागमेंदितु संदेहमं जिनियिक्कुमंतादोडं श्रेण्यसंख्येय-  
भागमात्रमे शलाकाराशियक्कुमेंदितु गृहीतव्यमक्कु । ० मेकेंदोडे "इगि ठाण पड्डयाओ वगण- १०  
संखा पदेसगुणहाणी । सेडियसंखेज्जदिमा" एंदितु सूत्रोक्तमपुदरिदं चोदकनेदपनन्तु प्रतरासंख्येय-  
भागमेव संवेहदिदं सूत्रविरोधमेकादपुवा श्रेण्यसंख्येयभागत्वमल्लि पडेयत्पडुत्तं विरलेंदोडंतत्तु ।  
प्रतरासंख्येयभागमसंख्यातश्रेणिप्रसंगमपुदरिदमदु कारणदिदं जघन्यस्पद्वकशलाकावर्गप्रविष्ट-  
भागहारभूतासंख्यातंगळु गुणिसिकोडु असंख्यातश्रेणिप्रमितंगळपुदरिदं श्रेण्यसंख्यातैकभागमेयक्कु-  
मेंदुवत्थं । भागहार = ० लब्धं ० ।

१५

स्थानरचनासर्वद्रव्यमिदं संस्थाप्य व वि ४४९९९४ अत्र संदृष्टिनिमित्तं चारिणवगा अट्ट इति गुण-

१—

३

हानिमुत्पाद्य गुणकारभूतचतुष्कं संभेद्य द्विकद्वयं कृत्वा २।२। एकद्विकेन तां संगुण्य दोगुणहानी उत्पादितायां  
१६ तद्विन्यासोऽयं— व वि १६ ४ ९ ९ २ शेषत्रिभागेन संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्विगुणितेन व वि १६ ४ ९ ९ १—  
३।२

अनेनैकरूपषड्भागेन व वि १६ ४ ९ ९ १— साधिकीकृत्य व वि १६ ४ ९ ९ २ जघन्यस्पर्धकेन प्रमाणितः  
६

किचिदूनषड्भागाधिकद्विरूपगुणितैकगुणहानिस्पर्धकशलाकावर्गमात्रजघन्यस्पर्धकमात्रो भवति । तत्संदृष्टिः— २०

१ ९ २ अयं श्रेण्यसंख्येयभागवर्गः ० । ० । २ प्रतरासंख्येय इव दृश्यते तथापि श्रेण्यसंख्येयभाग एव अन्यथा  
इगिठाणपड्डयाओसेडिअसंखेज्जदिमा इति सूत्रं विरुध्यते तथात्वेऽपि तावत् एव लब्धाददोषः ? तन्न,

तत्रासंख्यातश्रेणीनामपि प्रसंगात् तेन तद्भागहारभूतासंख्यातद्वयं गुणितमसंख्यातश्रेणिप्रमितं = ० अपवर्तिते

श्रेण्यसंख्यातैकभाग एवेत्यर्थः ० । अथ प्रागुक्तमेव—

- अनंतरं मुन्नं पेळ्लपट्टु “अविभागपडिच्छेदो वर्गो पुन वर्गणाय पड्डयगो । गुणहाणी विय-  
जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण” एवो सूत्रार्थमिल्लि विशदमवकुमप्पुदरिदं पेळ्लपड्डुगुमे ते दोडे—  
किं स्थानं नाम । एकसमये एकस्य जीवस्य संभवद्गुणहानिसमूहः स्थानम् । का गुणहानिः स्पर्धक-  
समूहः । किं स्पर्धकं क्रमवृद्धिहानिवर्गणासमूहः । का वर्गणा वर्गसमूहः । को वर्गः अविभाग-  
५ प्रतिच्छेदसमूहः । को विभागप्रतिच्छेदः जीवप्रदेशस्य कर्मादानशक्त्या जघन्यवृद्धिः योगस्याधिकृ-  
तत्वात् एदितिल्लि जघन्यवृद्धिप्रमाणमावुदे दोडे लोकमात्रजीवप्रदेशंगळं स्थापिसि ≡ अल्लि  
सर्वजघन्यशक्तिविशिष्टमपेकप्रदेशं कोडु । १ । तत्प्रदेशगतशक्तियं बुद्धियिदं प्रसारिसि मत्तमा  
प्रदेशशक्तियं तोडलविभागप्रतिच्छेदोत्तरशक्तिविशिष्टप्रदेशं कोडु । १ । तत्प्रदेशगतशक्तियं मुन्नं  
प्रसारितप्रदेशशक्तियं नेले प्रसरितं माडि अधिकप्रमाणदिदं प्रथमप्रसारितप्रदेशशक्तियं खंडिसुत्तिरलु  
१० असंख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदंगळप्पुवु ||||| तत्समूहं वर्गमे बुदवकुं । मत्तं तज्जघन्य-  
≡ ०  
शक्तिवृत्तप्रदेशसदृशधनिकंगळुमसंख्यातप्रतरमात्रप्रदेशंगळप्पावुं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितद्वयद्व-

“अविभागपडिच्छेदो वर्गो पुन वर्गणाय पड्डयगो । गुणहाणीविय जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण ॥”

इति सूत्रार्थं पुनर्विशदयति—

- किं स्थानं ? एकसमये एकस्य जीवस्य संभवद्गुणहानिसमूहः । का गुणहानिः ? स्पर्धकसमूहः ।  
१५ किं स्पर्धकं ? क्रमवृद्धिहानिवर्गणासमूहः । का वर्गणा ? वर्गसमूहः । को वर्गः ? अविभागप्रति-  
च्छेदसमूहः । को विभागप्रतिच्छेदः ? जीवप्रदेशस्य कर्मादानशक्तौ जघन्यवृद्धिः योगस्याधिकृ-  
त्वात् । किं तज्जघन्यवृद्धिप्रमाणं ? लोकमात्रजीवप्रदेशान् संस्थाप्य ≡ एषु सर्वजघन्यशक्तिकमेकं प्रदेशं  
स्वीकृत्य १ तद्गतशक्तिं बुद्ध्या प्रसार्य पुनः ततोऽविभागप्रतिच्छेदोत्तरप्रदेशं स्वीकृत्य १ तद्गतशक्तिं  
पूर्वप्रसारितशक्तेरुपरि प्रसार्य अधिकप्रमाणेन प्रथमप्रसारितप्रदेशशक्तौ खंडितायां असंख्यातलोकमात्रा-  
२० विभागप्रतिच्छेदा भवन्ति ||||| ≡ ० तत्समूहो वर्गः । स व इति संदृष्ट्या लिखितव्यः ।  
तदग्रे तत्सदृशधनिकाः यावन्तस्तावन्तो लिखितव्याः । ते च असंख्यातलोकप्रतरमात्राः, श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रा

- अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि और स्थान ऊपर कहे हैं । एक  
जीवके एक समयमें होनेवाले गुणहानि समूहको स्थान कहते हैं । स्पर्धकोंके समूहको गुण-  
हानि कहते हैं । क्रमसे वृद्धिहानिरूप वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं । वर्गके समूहको  
२५ वर्गणा कहते हैं । और अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं । जीवके प्रदेशोंमें  
कर्मको ग्रहण करनेकी शक्तिमें जो जघन्य वृद्धि होती है उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं ।  
यहाँ योगका अधिकार होनेसे योगरूप शक्तिके अविभागी अंशका ग्रहण किया है । आगे  
जघन्य वृद्धिका प्रमाण कहते हैं—

- जीवके प्रदेश लोकप्रमाण हैं । उनको स्थापन करके इन सब प्रदेशोंमें-से जिस प्रदेशमें  
३० योगोंकी जघन्य शक्ति पायी जाये, उस प्रदेशको अलग रखकर उस प्रदेशमें जितनी योगशक्ति  
हो उसको अपनी बुद्धिसे फैलाइये । उस जघन्य शक्तिसे अधिक और अन्य शक्तिसे हीन  
शक्ति जिसमें पायी जाये ऐसे किसी अन्य प्रदेशको ग्रहण करके, उसमें जितनी योगशक्ति  
पायी जाये उसे पहले फैलायी गयी जघन्य शक्तिके ऊपर बुद्धिसे ही फैलाइए । सो उस

गुणहानिर्यदि लोकमात्रजीवप्रदेशंगळनपर्वत्तिसुतं विरला  $\equiv$  आदिवर्गणाजीवप्रदेशागमन-  
 $\frac{3}{222}$

मुंठपुर्वरिदं = २२२ आ वर्गणाविभागप्रतिच्छेदंगळ पृथक् पृथक् वर्गसंज्ञितंगळ मुन्निन  
 $\frac{3}{3}$  वर्गपाश्वर्दोळ रचयितव्यंगळपुवु

|   |   |   |   |   |
|---|---|---|---|---|
|   |   |   |   |   |
|   |   |   |   |   |
|   |   |   |   |   |
|   |   |   |   |   |
| व | । | व | । | व |

यितु रचयिसल्पटु संख्यातप्रतरमात्रवर्गंगळसमूहके वर्गणये ब संज्ञेयकुं । मत्तमी रचितवर्गंगळ  
 मेले अविभागप्रतिच्छेदोत्तरंगळप्य पूर्ववर्गंगळ नोडलु दोगुणहानिभाजितादिवर्गणाप्रदेशमात्र-  
 विशेष ।-२२२२ हीनप्रदेशंगळ रचने रचयिसल्पटुगु

|   |   |
|---|---|
|   |   |
| व | व |
| व | व |
| व | व |

मन्तु रचयिसल्पटुवर्गंगळगे द्वितीयवर्गणये ब व्यपदेशमवकुमितविभागप्रतिच्छेदोत्तरमुं विशेष-  
 हीनक्रमविदं श्रेण्यसंख्यातैकभागपर्ववस्थितंगळप्य वर्गणंगळ समूहमेकस्पट्टकमवकुं । मत्तविभाग-  
 प्रतिच्छेदोत्तरंगळप्य प्रदेशंगळिल्ल । मत्त तप्य शक्तियुक्तप्रदेशंगळोळवर्दोडे आदिवर्गणये वर्गमं  
 नोडलु द्विगुणा व । २ विभागप्रतिच्छेदसंयुक्तप्रदेशंगळोळववर सदृशधनिकंगळगे पूर्ववन्ते प्रथम- १०  
 स्पट्टकचरमवर्गंगळ मेळे रचनेयं माडि :-

द्वयवर्गगुणहान्या लोकमात्रजीवप्रदेशेषु भक्तेषु  $\equiv$  ३ आदिवर्गणाजीवप्रदेशागमनात् = २ २ २ तद्वर्गणाविभाग-  
 $\frac{3}{222}$

प्रतिच्छेदाः पृथक्पृथक्वर्गसंज्ञाः प्राक्तनपाश्वे रचयितव्याः । एवं रचिताऽसंख्यातप्रतरमात्रः वर्गसमूहस्य

वर्गणेति संज्ञा स्यात्

|   |   |   |   |   |
|---|---|---|---|---|
|   |   |   |   |   |
|   |   |   |   |   |
|   |   |   |   |   |
|   |   |   |   |   |
| व | व | व | व | व |

इयं प्रथमा वर्गणा । पुनरेषां वर्गणामुपर्यविभाग-

प्रतिच्छेदोत्तरा अपि पूर्ववर्गेभ्यः एकविशेषहीनसंख्याका वर्गा लिखितव्याः

|          |     |
|----------|-----|
| १-१-१-१- |     |
| व व व व  |     |
| व व व व  | व व |

इयं द्वितीया वर्गणा । एवमविभागोत्तरविशेषहीनक्रमेण श्रेण्यसंख्येयभागमात्रवर्गणासमूहः एकं स्पर्धकम् । पुनः  
 द्विगुणादादिवर्गणावर्गित् स्तोकशक्तिकाः प्रदेशा न सन्ति ततस्तेषां द्विगुणानामेव सदृशधनिकानां प्रथमस्पर्धक-

जघन्य शक्तिके ऊपर स्थापन की गयी शक्ति जितनी वृद्धिको लिये हुए हो उतनी वृद्धिका  
 नाम योगोंका अविभाग प्रतिच्छेद है । इसका आशय यह है कि जघन्य शक्तिवाले प्रदेशसे

|                 |     |
|-----------------|-----|
| व । २ । व । २ । |     |
| ४               |     |
| व व व व         | व   |
| व व व व         | व व |

यवर मेले अविभागोत्तरमं विशेषहीनक्रममुभागी सदृश-

धनिकंगळो पूर्व्वदन्ते श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रवर्गणो गळं कोडु रचियिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पर्द्धक-  
मक्कुमिन्तु मेले मेले “पड्डयसंखा हि गुणं जहणवग्गं तु तत्थ तत्थादी” येव्विती सूत्रोक्तक्रमविदम-  
संख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदोत्तरंगळप्प श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रस्पर्द्धकंगळो प्रथमगुणहानि-  
योळु अव्यामोहविदं रचने माडत्पडुगुमल्लिदं मेले प्रथमगुणहान्यादिवर्गणासदृशधनिकंगळं  
५ नोडलु द्वितीयगुणहान्यादिवर्गणासदृशधनिकजीवप्रदेशसंख्ये द्विगुणहीनमक्कुमल्लिदं मेले विशेष-  
हीनक्रमंगळप्पुवु । नवीनमुंटावुदेदोडे मुनिन विशेषमं नोडलो द्वितीयगुणहानिविशेषमद्वंमात्रमे-  
यक्कुमिन्तप्प गुणहानिगळु पळितोपमासंख्यातैकभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलौडु योगस्थानमक्कुमिदु  
सर्व्वजघन्ययोगस्थानमक्कुमिन्तु शक्तिप्रधानमागि पेळत्पट्टुदु । मत्तमिवर संकलननिमित्तं प्रदेश-  
प्रधानरचनास्वरूपं निरूपिसत्पडुगुमदेतेदोडे प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशकलापमं

१० चरमवर्गणाया उपरि रचना कर्त्तव्या तस्या

|            |     |
|------------|-----|
| व २ व २    |     |
| ० ४        |     |
| १-१-१-१-१- |     |
| व व व व व  |     |
| व व व व व  | व व |

उपरि पुनः प्राग्वद-

विभागोत्तरविशेषहीनक्रमेण श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रेषु वर्गणासु रचितासु द्वितीयं स्पर्द्धकं । एवमुपर्युपरि  
फट्टयसंखाहि गुणं जहणवग्गं तु तत्थतत्थादीत्युक्तक्रमेण श्रेण्यसंख्येयभागस्पर्द्धकानि प्रथमगुणहानौ रचितव्यानि ।  
तत उपरि द्वितीयगुणहान्यादिवर्गणा प्रथमगुणहान्यादिवर्गणार्धमात्रौ उपरि विशेषहीनक्रमेण गच्छति । अयं  
विशेषोऽपि पूर्व्वविशेषार्धमात्रः । एवं पळितोपमासंख्यातैकभागमात्रगुणहानिषु गच्छंतीषु एकं योगस्थानं । इदं

१५ सर्वजघन्यं शक्तिप्राधान्येनोक्तं । पुनः तदेव प्रदेशप्राधान्येन संकलयति—

एक अविभागी अंश अधिक शक्तिके धारी दूसरे प्रदेशमें उस जघन्य शक्तिसे जितनी  
शक्ति बढ़ती हुई हो उस बढ़ती हुई शक्तिके प्रमाणको योगका अविभाग प्रतिच्छेद  
कहते हैं । पहले फैलायी गयी प्रदेशकी जघन्य शक्तिके उस अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण,  
खण्ड करनेपर असंख्यात लोक प्रमाण खण्ड होते हैं । अतः असंख्यात लोक प्रमाण

२० अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं । इसीसे एक वर्गमें असंख्यात लोक प्रमाण  
अविभाग प्रतिच्छेद कहे हैं । उसकी सहनानी ( पहचान ) ‘व’ अक्षर है । उसके आगे जिन  
प्रदेशोंमें जघन्य शक्ति पायी जाती है वे सब लिखें । इस प्रकार जघन्य शक्तिके धारक जीवके  
प्रदेश असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण होते हैं क्योंकि लोक प्रमाण जीवके प्रदेशोंमें डेढ़ गुण-  
हानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने जघन्यशक्ति प्रमाण शक्तिके धारक प्रदेश हैं । सो  
२५ एक गुणहानिमें जितना वर्गणाका प्रमाण कहा है उसका द्योदा करनेपर डेढ़ गुणहानिका

= ० ० २ दोगुणहानियिदं ० ० २ । भागिसुत्तं विरलु विशेषमक्कु । - ० ० ० ० मिदु लघुसंदृष्टि-

निमित्तं । वि । एदितु माडल्पदुददं मत्ते दोगुणहानियिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानियोळु प्रथमस्पर्द्धकदादिवर्गणोयक्कु । वि १६ । तंदवस्थंगळेयपुवु । हीनाधिकभावमिल्लेदिहंतिहंवेवुदत्थं । मत्तं जघन्यवर्गमात्रशक्तियं कुरुत्तु सदृशधनिकत्वादिदं त्रैराशिकविधानदिदं प्र १ । फ । व । इ । वि १६ । बंद लब्धं प्रथमगुणहानियोळु प्रथमस्पर्द्धकदादिवर्गणोयक्कु । व । वि १६ । मेले सर्वत्र विशेषहीनप्रदेशंगळो अविभागोत्तरादिजघन्यवर्गं त्रैराशिकदिदमुत्पन्नगुणकारं सुगममक्कु । नवीन-मुंदाबुदेदोडे गुणहानि गुणहानि प्रतियादियं नोडलादियद्धाद्धंक्रममक्कुमेकंदोडे सर्वत्र रूपोनगुण-हानिमात्रविशेषहीनविवक्षितगुणहानिप्रथमवर्गणोये तच्चरमवर्गणोयपुदरिना चरमवर्गणाप्रदेशं-गळिदं तदुत्तरगुणहान्यादिवर्गणाप्रदेशंगळु पूर्वैकविशेषहीनत्वदिदमद्धाद्धंगळपुवपुदरिदं । यिल्लिदं मेले द्वितीयादिगुणहानिगळोळु विशेषमुमद्धाद्धंक्रममक्कुमाउदोडु कारणदिदं दोगुण-हानियिदं स्वस्वादि भागिसल्पदुत्तिरलागळा विशेषं वक्कुमपुदरिदंमा सर्वगुणहानिगळोळन्नेवरं

प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशकलापे = ० ० २ दोगुणहान्या ० ० भवते विशेषः स्यात्—

० ० ० ० स एव पुनः लघुसंदृष्टिनिमित्तं वि इति कृत्वा दोगुणहान्या गुणितः प्रथमगुणहानौ प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणा स्यात् वि १६ । इयं तदवस्थैव न च हीनाधिकेत्यर्थः । पुनर्जघन्यवर्गमात्रशक्तिं प्रति सदृशधनिकत्वात् त्रैराशिक-विधानेन प्र १ फ व इ वि १६ लब्धं प्रथमगुणहानौ प्रथमस्पर्द्धकादिवर्गणा भवति व वि १६ । एवमुपरि सर्वत्राविभागोत्तरादिजघन्यवर्गः त्रैराशिकोत्पन्नगुणकारः सुगमः, किंतु गुणहानि गुणहानि प्रति आदितः आदिः अर्धाधिक्रमः । कुतः ? पूर्वगुणहान्यादिवर्गणायाः गुणहानिमात्रस्वविशेषहीनायाः उत्तरगुणहान्यादिवर्गणात्वात् । तथा विशेषोऽप्यर्धाधिक्रमः स्वस्वादेः दोगुणहानिभक्तस्य तत्प्रमाणत्वात् । तासु सर्वगुणहानिषु तावत् प्रथम-

प्रमाण होता है । वह जगतश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र ही है । उसका भाग जीवके प्रदेशोंमें देनेपर असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण प्रदेशोंका प्रमाण होता है । सो इतने प्रदेशोंके समूहको प्रथम वर्गणा कहते हैं । इसीसे एक वर्गणामें असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग कहें हैं ।

आगे उस जघन्य शक्तिरूप वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण कहा उससे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद जिनमें पाये जायें ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उतने प्रदेश उसके ऊपर लिख । ये प्रदेश प्रथम वर्गणामें जितने प्रदेश कहे थे उनसे एक चय हीन होते हैं । प्रथम वर्गणामें जो प्रदेशोंका प्रमाण है उसे दो गुणहानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो वही चय या विशेषका प्रमाण जानना । सो विशेषकी सहनानी 'वि' अक्षर जानना । एक गुणहानिमें जो वर्गणाओंका प्रमाण है उसको दूना करनेपर दो गुणहानिका

प्रथमगुणहानिचरमवर्गणैर्बुद्धिदु । व ९ वि १६—४ । ८ द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्गणैर्बुद्धिदु ।  
 व ९ वि १६—४ । ८ । द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणैर्बुद्धिदु ऋणमनिदं । वि ४ । ९ ।  
 चारि नवगा अट्ट एदित्तु गुणहानियमुत्पादिसि वि ८ । दोगुणहानियोळु विशेषमात्रगुणहानिगळ्णे  
 विशेषमात्रगुणहानिगळं तोरि तोरलिल्लद द्विकदोळात्मप्रमाणमेकरूपं कळेयुत्तिरलु शेषमेकगुण-  
 ५ हानिमात्रविशेषगळ्ळेयुत्तुवदं वि ८ । संदृष्टिनिमित्तं मेलेयुं केळगेयुं द्विगुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुण-  
 हानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशगळं नोडलो द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशं  
 द्विगुणहीनमागि स्फुटमागि काणल्पट्टुदु । व ९ वि ८ । १२ । गुणिसल्पडुत्तिरलिदर न्यासमितिक्कु  
 २

व ९ वि १६ । मिन्तु सर्वत्र नेतव्यमवकुमिल्लिदं मेले सर्वाविभागप्रतिच्छेदमेलापविधानं  
 २  
 पेळल्पडुगुमल्लि मुन्नं प्रथमगुणहानिस्पर्धकगळसंयोजनक्रमं पेळल्पडुगुमदेतेंदोडे जघन्यस्पर्ध-  
 १० कादिवर्गणैर्नेकस्पर्धकवर्गणाशलाकेर्गळिदं गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपदिदं जघन्यस्पर्धकमेता-

गुणहानिचरमवर्गणैर्बुद्धिदु व ९ वि १६—४ ८ द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्गणैर्बुद्धिदु व ९ वि १६—४ ९ । अत्रस्थमृणमिदं वि  
 ४ ९ चारिनवगा अट्ट इति गुणहानियमुत्पाद्य वि ८ दोगुणहानौ विशेषमात्रगुणहानौनां विशेषमात्रगुणहानौः  
 प्रदर्श्य तत्रस्थद्विके आत्मप्रमाणैकरूपेऽस्तीति शेषमेकगुणहानिमात्रविशेषमिति । तस्मिन् वि ८ १ संदृष्टिनिमित्त-  
 मुपर्यधो द्वाभ्यां गुणिते प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्धकवर्गणाप्रदेशेभ्यो द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशा  
 १— १—  
 १५ द्विगुणहीनाः स्फुटं दृश्यन्ते व ९ वि ८ १ २ गुणिते तन्न्यासोऽयं व ९ वि १६ एवं सर्वत्र नेतव्यं । इतः परं  
 २ २  
 सर्वाविभागप्रतिच्छेदान् संकलयति—

तत्र जघन्यस्पर्धकस्यादिवर्गणायां एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः गुणितायां स्थूलरूपेण जघन्यस्पर्धकं

प्रमाण होता है । सो प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणमें-से विशेषको घटानेपर जो प्रमाण  
 रहे उतने प्रदेशोंके समूहको द्वितीय वर्गणा कहते हैं । यहाँ पूर्वोक्त जघन्य शक्तिसे एक अवि-  
 २ भाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिका धारक जो प्रदेश है उसे वर्ग कहते हैं । उनका समूह  
 दूसरी वर्गणा है । द्वितीय वर्गणा सम्बन्धी वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उससे एक  
 अविभाग प्रतिच्छेद अधिक जिसमें हो ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उतने उनके  
 ऊपर लिखें । वे प्रदेश द्वितीय वर्गणामें जितने कहे थे उनमेंसे विशेषका प्रमाण घटानेपर  
 जितना प्रमाण रहे उतने होते हैं । यहाँ द्वितीय वर्गणा सम्बन्धी वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे  
 २५ एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिके धारक प्रदेशको वर्ग कहते हैं । उनका समूह तीसरी  
 वर्गणा है । इसी क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये और एक-एक  
 विशेष हीन प्रमाणको लिये हुए जो वर्ग हैं उनका समूह एक-एक वर्गणा होता है । ऐसे

वन्मात्रमवकुं व वि १६। ४। विवनेपाद्युत्तरभागेकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छसंकलनेयं तद्वत्तं

विरलु ऋणसहितमागि प्रथमगुणहानिद्रव्यमिनिवकु व वि १६। ४। ९। ९। मिलिल प्रथम-  
२। १

स्पर्धकबोळु ऋणंतरल्पडुगुमलिल यन्नेवरं द्वितीयादिवर्गणोगळोळु जघन्यवर्गव मेले एकादये-  
कोत्तरक्रमदिनिर्द्द अविभागप्रतिच्छेदधनमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि :—

वि १६-३। ३ इल्लिर्द्दऋणमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि वि। ३। ३  
वि १६-२। २ वि। २। २  
वि १६-१। १ वि। १। १

यिल्लिल संकलनानिमित्तं प्रथमपंक्तियगुणकारंगळोळैकैकरूपं सर्वत्र तेगदुपृथक् स्थापिसल्पडुगुं—

वि २। ३ ऋणद्वयं वि १। ३ धन वि १६। १ यिल्लिल ऋणद्वयबोळु चरमराशिय  
वि १। २ वि १। २ वि १६। २  
० वि १। १ वि १६। ३  
०

एकविशेषादि एकविशेषोत्तररूपोनेकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रमं वि ३। ४  
२। १

द्विरूपोनेकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमात्रविशेषंगळोळु—

स्यात्। व वि १६। ४। एतदाद्युत्तरैकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छसंकलनायां ऋणसहितं प्रथमगुणहानि- १०  
१—

द्रव्यमिदं व वि १६। ४। ९। ९। अत्र प्रथमस्पर्धके ऋणमानीयते—  
२

तत्र तावद् द्वितीयादिवर्गणासु जघन्यवर्गस्योपरि एकाद्येकोत्तराविभागप्रतिच्छेदधनं पृथक् संस्थाप्यं,  
तत्संदृष्टिः— वि १६-३। ३ अत्रस्थं ऋणमपि पृथक् संस्थाप्यं, तत्संदृष्टिः वि ३। ३ अत्र संकलना-  
वि १६-२। २ वि २। २  
वि १६-१। १ वि १। १

निमित्तं प्रथमपंक्तेर्गुणकारेणैकरूपे सर्वत्र पृथक्स्थापिते ऋणद्वयं— वि २। ३ धनं वि १६। ३  
वि १। २ वि १। २ वि १६। २  
० वि १। १ वि १६। १  
०

अत्र ऋणद्वये चरमराशेरैकविशेषाद्युत्तररूपोनेकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रं वि ३। ४ द्विरूपोनेक- १५  
२। १

जगत्श्रेणिके असंख्यातवै भाग प्रमाण वर्गणा होनेपर एक स्पर्धक होता है। इसीसे एक स्पर्धकमें जगत्श्रेणिके असंख्यातवै भाग प्रमाण वर्गणा कही है। उसकी सहनानी चार ४ का अंक है। इस प्रथम स्पर्धकको जघन्य स्पर्धक कहते हैं।

इस प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके वर्गमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका जो प्रमाण है उसके ऊपर प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उनसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद जिनके हों ऐसी शक्तिके धारक पाये जाते हैं। उससे हीन २०



वि २।३।४।२ साधिकं माडि रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रादिवर्गणाप्रदेश-  
३।२।१

दोळु किंचिद्वनितं माडुत्तिरलु शेषधनमेतावन्मात्रमक्कुं वि १६।३।४- मत्तमपनीताधिका-  
२

विभागप्रतिच्छेदशेषजघन्यस्पर्धकरचनेयिदु व वि १६-३ इल्लि द्वितीयादिवर्गणेगळोळु स्थित-  
व वि १६-२  
व वि १६-१  
व वि १६।

ऋणमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि व वि ३ यिदं संकलिसुत्तं विरलु रूपो-  
व वि २  
व वि १

५ नैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रं विशेषमक्कु व वि ३।४।  
२

एतस्मात्कारणात् यिदु कारणमागि पूर्वमानिताधिकाविभागप्रतिच्छेदाधिक धनमिदु। वि १६।३।४।।  
२

जघन्यवर्गमात्रासंख्यातलोकगुणकाराभावादिदमविवक्षितमक्कुमदु कारणमागि द्वितीयादिस्पर्धक-  
गळ द्वितीयादिवर्गणेगळोळेकाछेकोत्तरकर्मदिदमिदं अविभागप्रतिच्छेदधनंगळगविवक्षेयुमक्कु-

स्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमात्रविशेषेषु वि २ ३ ४ २ साधिकं कृत्वा वि २ २ ३ ४ अनेन  
३ २ १ ३ २ १

१० रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रादिवर्गणाप्रदेशेषु किंचिद्वनितेषु शेषधनमिदं वि १६ ३ ४ पुनरपनीता-  
२

धिकाविभागप्रतिच्छेदशेषजघन्यस्पर्धकरचनेयं—

व वि १६-३  
व वि १६-२  
व वि १६-१  
व वि १६

अत्र द्वितीयादिवर्गणास्थं ऋणं पृथक् स्थाप्यं। तत्संदृष्टिः—

व वि ३  
व वि २  
व वि १

अस्य संकलनं रूपो-

नैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषः व वि ३ ४ तच्च प्रागानीताधिकाविभाग-  
२ १

प्रतिच्छेदाधिकधनमिदं वि १६ ३ ४ जघन्यवर्गमात्रासंख्यातलोकमात्रगुणकाराभावान्न विवक्षितं तत एव  
२ १

- १५ शक्तिका धारक प्रदेश नहीं पाया जाता। अतः जिनमें जघन्य वर्गसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद पाये जायें ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उनकी रचना प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके ऊपर करें। वे प्रदेश प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणमें-से एक विशेष घटानेपर जो प्रमाण रहें उतने जानना। यहाँ जघन्य वर्गसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद-रूप शक्तिके धारक प्रदेशको वर्ग जानना। उनका समूह दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणा है।
- २० इस प्रथम वर्गणाके वर्गसे एक अविभाग प्रतिच्छेद जिसमें अधिक हो ऐसी शक्तिके धारक

मोगळु द्वितीयस्पर्धकऋणमेतरल्पदुत्तं विदे अविभागोत्तररहितद्वितीयस्पर्धकमिदु—

व २ वि १६-४<sup>३</sup> अत्रतन ऋणमं कळदु पृथक्स्थापिमुत्तं विरलिदु व २ वि ४<sup>३</sup> यिल्लियधिक-

व २ वि १६-४<sup>२</sup> व २ वि ४<sup>२</sup>

व २ वि १६-४<sup>१</sup> व २ वि ४<sup>१</sup>

व २ वि १६-४ व २ वि ४

रूपगळ रचनेइदु व २ वि ३ इवर संकलने जघन्यवर्गमात्रविशेषमावियुमुत्तरमं रूपोनैक-  
व २ वि २  
व २ वि १

स्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रं द्विगुणितप्रमाणमक्कु व वि ३।४।२ मिदु प्रथम-  
२

स्पर्धकऋणद मेले स्थापिसल्पदुगुं। शेषमिदु व २ वि ४ त्रैराशिकदिदं सिद्धमप्य राशिय ५  
व २ वि ४  
व २ वि ४  
व २ वि ४

प्रमाणजघन्यवर्गमात्रविशेषमनेकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसल्पदुदं रूपोत्तगच्छ

द्वितीयादिस्पर्धकानां द्वितीयादिवर्गणासु अपि एकाद्येकोत्तरक्रमस्थिताविभागप्रतिच्छेदघनानि न विवक्षितानि ।

संप्रति द्वितीयस्पर्धकऋणानयने अविभागोत्तररहितद्वितीयस्पर्धकमिदं

|             |             |
|-------------|-------------|
| ३-          | अत्रस्थमुणं |
| व २ वि १६-४ |             |
| २-          |             |
| व २ वि १६-४ |             |
| १-          |             |
| व २ वि १६-४ |             |
| व २ वि १६-४ |             |

पृथक्संस्थाप्य अधिकरूपरचनेयं—

|          |          |
|----------|----------|
| ३-       | व २ वि ३ |
| व २ वि ४ | व २ वि २ |
| २-       | व २ वि १ |
| व २ वि ४ |          |
| १-       |          |
| व २ वि ४ |          |
| व २ वि ४ |          |

अस्याः संकलनाजघन्यवर्गमात्रविशेषा-

द्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं द्विगुणितं स्यात् । व वि ३।४।२ इदं प्रथमस्पर्धकऋणस्योपरि १०  
२

जो प्रदेश हैं वे ही वर्ग हैं । दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणसे एक विशेष हीन जो प्रदेशरूप वर्ग हैं उनका समूह दूसरे स्पर्धककी दूसरी वर्गणा है । इसी प्रकार क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये हुए और एक-एक विशेष घटते हुए जो वर्ग हैं उनके समूह एक-एक वर्गणा होते होते जगतश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा होती है । उनका समूह दूसरा स्पर्धक है ।

संकलनाद्विगुणविदं गुणितमात्रं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रमवकुं । व वि ४।४।१।२।  
स्वकीयपूर्वऋण पार्श्वदोळु स्थापितस्पर्धुगु । मो येरडुं राशिगळु द्वितीयस्पर्धकऋणमवकुं ।

मत्तमविभागप्रतिच्छेदोत्तररहिततृतीयस्पर्धकमिदु व ३ वि १६-४।२ अत्रतनऋणमं तेगदु  
व ३ वि १६-४।२  
व ३ वि १६-४।२  
व ३ वि १६-४।२

पृथक् स्थापितमिदु व ३ वि ४।२ इल्लियधिरूपंगळ स्थापनेयिदु व ३ वि ३ यिदर संक-  
व ३ वि ४।२ व ३। वि २  
व ३। वि १  
व ३ वि ४।२  
व ३ वि १४।२

५ स्थाप्यं । शेषमिदं व २ वि ४ त्रैराशिकसिद्धप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण  
व २ वि ४  
व २ वि ४  
व २ वि ४

द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनेन च गुणितः द्वितीयपंक्तिऋणमिदं व वि ४४१२ स्वकीयपूर्वऋणपार्श्वे स्थापयेत् ।

एते द्वे द्वितीयस्पर्धकऋण स्थातां । पुनरविभागप्रतिच्छेदोत्तररहिततृतीयस्पर्धकमिदं

३-  
व ३ वि १६-४२  
२-  
व ३ वि १६-४२  
१-  
व ३ वि १६-४२  
व ३ वि १६-४२

अत्रस्थमृणं पृथक् संस्थाप्य

३-  
व ३ वि ४२  
२-  
व ३ वि ४२  
१-  
व ३ वि ४२  
व ३ वि ४२

अस्याधिकरूपस्थापनेयं

व ३ वि ३ अस्याः संकलना-  
व ३ वि २  
व ३ वि १

१० उस दूसरे स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके ऊपर प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेदवाले शक्तिके धारक प्रदेश पाये जाते हैं, उससे कम शक्तिवाले नहीं पाये जाते । अतः जघन्य वर्गसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्तिके धारक जो प्रदेश हैं वे ही वर्ग हैं । उस द्वितीय स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्रदेशोंसे एक विशेष हीन प्रदेशरूप वर्गोंका जो समूह है वह तीसरे स्पर्धककी

लने जघन्यवर्गमात्रविशेषाद्युत्तररूपोनस्पद्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनात्रिगुणितप्रमाणमक्कु ।  
 व वि ३।४।३ मिदु द्वितीयस्पद्धकप्रथमऋणद मेले स्थापिसत्पडुगुं विशेषमिदु । व ३ वि ४।२  
 २ व ३ वि ४।२  
 व ३ वि ४।२  
 व ३ वि ४।२

त्रैराशिकदिदमुत्पन्नराशिप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रविशेषमनेकस्पद्धक वर्गणाशलाकावर्गदिदं  
 गुणितमं रूपोनगच्छसंकलनेय द्विगुणदिदंगुणितमात्रमक्कु । व वि ४।४।२।३।३।३ मिदु द्वितीय-  
 स्पद्धकद्वितीयऋणपंक्तिय मेले स्थापिसत्पडुगुमी एरडुं राशिगळुं तृतीयस्पद्धकऋणमक्कुमिन्तु  
 प्रथमगुणहानियोळु स्पद्धकं प्रतिरूपोनैकस्पद्धकवर्गणाशलाकासंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्र-  
 विशेषंगळ गुणकारंगळु गच्छमात्रंगळुगि नडेवु प्रथमपंक्तिऋणंगळु मत्तं स्पद्धकवर्गणाशलाका-  
 वर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र विशेषंगळ रूपोनस्पद्धकसंख्या गच्छद्विगुणसंकलनमात्रगुणकारंगळु  
 द्वितीयऋणपंक्तियोळुपुवु—

|            |                |
|------------|----------------|
| व वि ३।४।९ | व वि ४।४।८।९।२ |
| २          | २              |
| व वि ३।४।८ | व वि ४।४।७।८।२ |
| २          | २              |
| ०          | ०              |
| ०          | ०              |
| व वि ३।४।२ | व वि ४।४।२।३।२ |
| २          | २              |
| व वि ३।४।१ | व वि ४।४।१।२।२ |
| २          | २              |

जघन्यवर्गमात्रविशेषाद्युत्तररूपोनस्पद्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं त्रिगुणितं स्यात्— व वि ३।४।३ इदं  
 २

द्वितीयस्पद्धकप्रथमऋणस्योपरि स्थाप्यं । शेषमिदं व ३ वि ४।२ त्रैराशिकोत्पन्नराशिप्रमाणं जघन्यवर्ग-  
 व ३ वि ४।२  
 व ३ वि ४।२  
 व ३ वि ४।२

मात्रविशेषः एकस्पद्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनेन च गुणितः व वि ४४३२ । इदं  
 द्वितीयस्पद्धकद्वितीयऋणपंक्तेरुपरि स्थाप्यं । एते द्वे तृतीयस्पद्धकऋणे भवतः । एवं प्रथमगुणहानी प्रतिस्पद्धकं  
 प्रथमपंक्तौ रूपोनैकस्पद्धकवर्गणाशलाकासंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गच्छमात्राः गुणकारा भूत्वा

प्रथम वर्गणा है । इससे ऊपर पूर्ववत् एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये  
 हुए और एक-एक विशेष होन प्रमाणको लिये हुए वर्गोंके समूहरूप एक-एक वर्गणा

१. व० सार्धक संकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गच्छमात्राः । द्वितीयपंक्तौ तु स्पद्धकवर्गणाशलाका-  
 वर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र विशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुणऋणे भवतः । एवं प्रथमगुणहानी प्रतिस्पद्धकं प्रथमपंक्तौ  
 रूपोनैकस्पद्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्राश्च गुणकारा भवन्ति । एषां संकलना० ।

ई प्रथमगुणहानिय प्रथमद्वितीय पंक्तिय ऋणगणं संकलिसुत्तं विरलु रूपोनगुणहानिस्पद्धक-  
संकलिसुत्तं विरलु रूपोनगुणहानिस्पद्धकशलाकेगळु द्विगुणद्विकवार संकलनेयिदं स्पद्धकवर्गणा-  
शलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळु गुणिसत्पटुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासमेता-  
वन्मात्रमवकुं । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । मत्तं गुणहानिस्पद्धकशलाका संकलनेयिदं रूपोन-

५ रूपोनस्पद्धकवर्गणाशलाकासंकलनेयिदमुं गुणिसत्पटु जघन्य वर्गमात्रविशेषंगळु प्रथमपंक्तिसर्व-  
ऋणसमासमेतावन्मात्रमवकु । व वि ३ । ४ । ९ । ९ । मो राशियं मेलापिसत्वेडि द्वितीयपंक्ति-

प्रथमपंक्तिऋणानि, द्वितीयपंक्ती तु स्पर्धकवर्गणाशलाकवर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुण-  
संकलनमात्राश्च गुणकारा द्वितीयपंक्तिऋणानि भवन्ति—

| प्रथमपंक्तिऋणं |    |   |   |   | द्वितीयपंक्तिऋणं |    |   |   |   |
|----------------|----|---|---|---|------------------|----|---|---|---|
| व              | वि | ३ | ४ | ९ | व                | वि | ४ | ४ | ८ |
|                |    | २ |   |   |                  |    |   | २ | ९ |
| व              | वि | ३ | ४ | ८ | व                | वि | ४ | ४ | ७ |
|                |    | २ |   |   |                  |    |   | ० | ८ |
|                |    | ० |   |   |                  |    |   | ० | २ |
|                |    | ० |   |   |                  |    |   | ० |   |
| व              | वि | ३ | ४ | ३ | व                | वि | ४ | ४ | २ |
|                |    | २ |   |   |                  |    |   | २ | ३ |
| व              | वि | ३ | ४ | २ | व                | वि | ४ | ४ | १ |
|                |    | २ |   |   |                  |    |   | २ | २ |
| व              | वि | ३ | ४ | १ |                  |    |   | ० |   |
|                |    | २ |   |   |                  |    |   |   |   |

एषां संकलनायां रूपोनगुणहानिस्पद्धकशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनगुणितस्पर्धकवर्गणाशलाका-

१० वर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाः द्वितीयपंक्तिसर्वऋणं भवति व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ पुनर्गुणहानिस्पद्धक-

शलाकागच्छसंकलनेन रूपोनस्पद्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनेन च गुणिते जघन्यवर्गमात्रविशेषाः प्रथमपंक्ति-

होते-होते जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणाओंके होनेपर उनका समूहरूप तीसरा  
स्पर्धक होता है । इसी अनुक्रमसे जघन्य वर्गको स्पर्धकोंकी संख्यासे गुणा करनेपर प्रथम  
वर्गणा होती है । प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गके अविभाग  
प्रतिच्छेदोंके प्रमाणसे चौगुना करनेपर चौथे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग  
प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । पाँच गुना करनेपर पंचम स्क्न्धकी प्रथम वर्गणाके वर्गके  
अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । छह गुणा करनेपर छठे स्पर्धककी प्रथम  
वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । इस प्रकार जिस संख्याके  
स्पर्धककी प्रथम वर्गणा विवक्षित हो जघन्य वर्गसे उतना गुणा करनेपर उस स्पर्धककी  
प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । तथा प्रथम वर्गणाके

सर्वऋणसमासचरमगुणकारबोलेकरूपचतुर्थांशं प्रक्षेपिसुतं विरलुभयपंक्तिऋणसमासमेता-  
वन्मात्रमवकु । व वि ४।४।९।९।९ मी प्रथमगुणहानिऋणं संदृष्टिनिमित्तमागि द्विक-

विदं मेलैयुं कळनेथुं गुणिसिदुर्दानदं व वि ४।४।९।९।९ मुन्नं सामान्यविदं तदं प्रथम-  
६

गुणहानिद्रव्यबोळु— व वि १६।४।९।९ अत्रतनगुणहानियं द्विकविदं भेदिसि द्विकमं मुंदे  
स्थापिसि गुणहानियं भेदिसि एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणितस्पर्धकवर्गणाशलाकेगळं माडि ।  
४।९। चतुष्कमं चतुष्कद नवकमं नवकव पादवर्बोळु स्थापितस्पर्धदुदं मूररिदं समच्छेदमं माडि ।

व वि ४।४।९।९।९ ६ दो धनराशिपोळु कळैयुतं विरलु प्रथमगुणहानिशुद्धसर्वाविभागप्रतिच्छे-  
६ दंगळे तावन्मात्रंगळु यथास्वरूपविदं बर्पुवु । तत्प्रमाणमिदु व वि ४।४।९।९।९ ४ यी  
६

प्रथमगुणहानियोळिदेयाविधनमवकुमुत्तरधनमिल्ल ॥

अनंतरं द्वितीयगुणहानिद्रव्यं पेळल्पदुगुमल्लि प्रथमाविस्पर्धकंगळ प्रथमाविधनगंगेगलेक  
गुणहानिस्पर्धकशलाकेगल मेलिदंधिकरूपंगळं तेगदु मुन्नं संकलिसुतं विरलु प्रथमगुणहानिद्रव्य-

१—  
सर्वऋणं स्यात् व वि ३४९९ इदं मेलापयितुं द्वितीयपंक्तिऋणसमासचरमगुणकारे एकरूपचतुर्थांशे  
२ २

१—  
प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४४९९ इदं प्रथमगुणहानिऋणं संदृष्टिनिमित्तं द्विकेन उपर्यधो  
३

१— १—  
गुणितं व वि ४४९९ ९ २ प्राक् सामान्यानीतप्रथमगुणहानिद्रव्य व वि १६४९ ९ स्थांदोगुणहानि  
६ २

द्विकेन संभेद्य द्विकमग्रे संस्थाप्य गुणहानि संभेद्य एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणितस्पर्धकवर्गणाशलाकाः कृत्वा  
१— १५

४।९। चतुष्कं चतुष्कस्य नवकं नवकस्य च पादवर्बे संस्थाप्य त्रिभिः समच्छेदोक्ते व वि ४४९९ ९ ९ ६  
६

तस्मिन् धनराशावपनीतं तदा प्रथमगुणहानिशुद्धसर्वाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं स्यात् व वि ४४९९ ९ ४  
६

इदं प्रथमगुणहानावादिधनं, उत्तरधनं नास्ति । अथ द्वितीयगुणहानिद्रव्यमानीयते—

तत्र प्रथमादिस्पर्धकप्रथमादिवर्गणानां एकगुणहानिस्पर्धकशलाकोपरि स्थिताधिकरूपाणि पृथक्कृत्य

वर्गसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेदं बढानेपर द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्गोंके अविभाग  
प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । और आगे प्रत्येक वर्गणामें एक-एक विशेष हीन वर्गोंका

वर्धमेतावन्मात्रमेवकु । व वि ४।४।९।९।९।४ निवस्कादिघनसंज्ञेयवकुमिदु मुन्निन  
६।४

प्रथमगुणहानिद्रव्यद मेले स्थापितसत्पङ्गु । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्धमनेकस्पर्धकवर्गणा-  
शलाकेर्गळिदमेकगुणहानिस्पर्धकशलाकेर्गळिदमुं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धक-  
मेतावन्मात्रमकु । व वि १६।४।९। मी राशियं स्पर्धकं प्रतिगच्छमात्रमवस्थितस्वरूपविद-

५ मिरुत्तिर्हृदे बु त्रैराशिकक्रमविदं गुणहानिस्पर्धकशलाकेर्गळिदं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानि-  
योळु ऋणसहितमुत्तरधनमेतावन्मात्रमकु । व वि १६।४।९९। मीयुत्तरधनव ऋणं तरस्व-

हुग्मदे तो दोडे उत्तरधनव प्रथमस्पर्धकसंस्थानमिदु :—

व ५ वि १६-३ यिल्लि द्वितीयादि वर्गणोगळोळिहं ऋणमं तोगदु पृथक् स्थापितमिदु :—

व ९ वि १६-२

व ९ वि १६-१

व ९ वि १६-

२

तेषु पूर्व संकलितेषु प्रथमगुणहानिद्रव्यस्याधं स्यात् । व वि ४४९९९४ इदमादिघनसंज्ञितं प्राक्तन-  
६२

१० प्रथमगुणहानिद्रव्यस्योपरि स्थाप्यं । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाधं एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिरेकगुणहानिस्पर्धक-  
शलाकाभिश्च संगुणितं द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात् ।

व वि १६४९ अयं राशिः प्रतिस्पर्धकं गच्छमात्रमवस्थितरूपेण तिष्ठतीति त्रैराशिकक्रमेण गुणहानिस्पर्धक-

शलाकागुणितो द्वितीयगुणहानौ ऋणसहितमुत्तरधनं भवति व वि १६४९९ अस्य ऋणमानोयते—

उत्तरधनप्रथमस्पर्धकसंस्थानमिदं व ९ वि १६-३ अत्र द्वितीयादिवर्गणास्थितमृणं पृथक् संस्थाप्य

व ९ वि १६-२

व ९ वि १६-१

व ९ वि १६

२

२

२

१५ प्रमाण होता है । तथा जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्णणाओंके समूहका एक  
स्पर्धक होता है । इस प्रकार जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्धक होनेपर एक  
गुणहानि होती है । इसीसे एक गुणहानिमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग स्पर्धक कहे हैं ।  
इसकी सहनानी नौका अंक ९ है । उसके ऊपर दूसरी गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम

व ९। वि। ३ यिदं संकलिसुत्तं विरलु रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्य-

व ९। वि। २

व ९। वि। १

वर्गमात्रस्वविशेषमेकगुणहानिस्पर्धकशलाकेर्गलितं गुणितमात्रमक्कुं । व वि ३। ४। ९।  
२ २

मत्तमुत्तरधनद्वितीयस्पर्धकमिदु व ९ वि १६-४ यिल्लिहं ऋणमं तेगदु पृथक्स्थापितमिदु—  
२ २  
व ९ वि १६-४  
२  
व ९ वि १६-४  
२  
व ९ वि १६-४  
२

व ९ वि ४ अत्रतनाधिकऋणरूपस्थापनेयिदु—  
२ २

व ९ वि ४  
२

व ९ वि ४  
२

व ९ वि ४  
२

व ९ वि ३ संकलितं रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं एकगुणहानि-

व ९ वि २

व ९ वि १

व ९ वि १  
२

स्पर्धकशलाकागुणितं स्यात्—व वि ३ ४ ९ पुनस्तत्तरधनस्य द्वितीयस्पर्धकमिदं—व ९ वि १६-४ अत्रस्थमुणं  
२ २ २ २

व ९ वि १६-४  
२ १

व ९ वि १६-४  
२

व ९ वि १६-४  
२

वर्गणाके प्रदेशरूप वर्ग हैं। वे प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणासे आधे



व ९ वि १ यिबर संकलने रूपोनैकस्पद्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्व-

व ९ वि २

व ९ वि २

व ९ वि ३

व ९ वि २

विशेषमेकगुणहानिस्पर्धकशलाकेगळिदमुं गुणितमक्कु । व वि ३ । ४ । ९ । मिदु प्रथम-

स्पर्धक ऋणद मेळे स्थापिसत्पडुगुं । शेषमिदु । व ९ वि ४ त्रैराशिकविदमुत्पन्नराशिप्रमाणं

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमनेकस्पद्धकवर्गणाशलाकावर्गादिदमेकगुणहानिस्पर्धकशलाकेगळिदमुं

५ गुणितमात्रं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रं व वि ४ । ४ । ९ । स्वपूर्वऋणपार्श्व-

दोळु स्थापिसत्पडुगुमी एरडुं राशिगळु द्वितीयस्पद्धकऋणमक्कुं । मत्तमुत्तरधनतृतीयस्पद्धकरचना-

पुयक् संस्थाप्य व ९ वि ४ अत्रतनाधिकरूपस्थापनेयं व ९ वि ३ संकलिता रूपोनैकस्पद्धकवर्गणाशलाका-

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

व ९ वि ४

गच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषा एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिता व वि ३ ४ ९ प्रथमस्पर्धकऋण-

स्योपरि स्थाप्या शेषमिदं व ९ वि ४ त्रैराशिकोत्पन्नप्रमाणमेकस्पद्धकवर्गणाशलाकावर्गेण एकगुणहानिस्पर्धक-

शलाकाभिश्च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ३ स्वपूर्व-

१० होते हैं । इस वर्गणाके वर्गोंमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण एक अधिक एक गुणहानिके

|                |                |                                   |             |
|----------------|----------------|-----------------------------------|-------------|
| विन्यासमिदु    | व ९ वि १६-४। २ | अत्रतनऋणमं तेगदु पृथक्स्थापितमिदु | व ९ वि ४। ३ |
|                | २              |                                   | २           |
|                | २              |                                   | व ९ वि ४। २ |
| व ९ वि १६-४। २ | २              |                                   | २           |
|                | २              |                                   | व ९ वि ४। २ |
| व ९ वि १६-४। २ | २              |                                   | २           |
|                | २              |                                   | व ९ वि ४। २ |
| व ९ वि १६-४    | २              |                                   | २           |

|                               |             |           |                            |
|-------------------------------|-------------|-----------|----------------------------|
| अत्रस्थिताधिकरूपऋणविन्यासमिदु | व ९ वि ३    | इदरसंकलने | रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाका- |
|                               | २           |           |                            |
|                               | व ९ वि १। २ |           |                            |
|                               | २           |           |                            |
|                               | व ९ वि १। १ |           |                            |
|                               | २           |           |                            |

गच्छसंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमेकगुणहानिस्पर्धकशलाकेगळिदु गुणितमक्रकु ।  
व वि ३। ४। ९। सो राशिद्वितीयस्पर्धकप्रथमपंक्तिऋणद मेले स्थापिसल्पदुगुं । शेषमिदु—  
२ २

ऋणपार्श्वे स्याप्यं । एतौ द्वौ राशी द्वितीयस्पर्धकऋणं भवतः । पुनस्तत्तत्तृतीयस्पर्धकरचनेऽयं—

|                |                          |             |                              |
|----------------|--------------------------|-------------|------------------------------|
| व ९ वि १६-४। २ | अत्रतनमृणं पृथक्स्थाप्य— | व ९ वि ४। २ | अत्रस्थाधिकरूपऋणविन्यासोऽयं— |
| २              | २                        | २           | २                            |
| व ९ वि १६-४ २  |                          | व ९ वि ४। २ |                              |
| २ १            |                          | २ १         |                              |
| व ९ वि १६-४ २  |                          | व ९ वि ४। २ |                              |
| २              |                          | २           |                              |
| व ९ वि-१६-४ २  |                          | व ९ वि ४। २ |                              |
| २              |                          | २           |                              |

व ९ वि ३ संकलितो रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकामच्छसंकलनेन एकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणित-

व ९ वि २  
२  
व ९ वि १  
२  
०

स्पर्धकोके प्रमाणसे जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना । सो अविभाग प्रतिच्छेदोका अनुक्रम तो पूर्ववत् ही जानना । और प्रदेशरूप वर्गोका

व ९ वि ४। २ अँराशिकदिस्वपन्नराशिप्रमाण जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमनेकस्पर्धकवर्गणा-  
२

व ९ वि ४। २  
२

व ९ वि ४। २  
२

व ९ वि ४। २  
२

शलाकावर्गादिद्विगुणितैकगुणहानिस्पर्धकशलाकगच्छिदमुं गुणितमात्रमक्कु । व वि ४। ४। ९। २।  
२

मो राशि द्वितीयस्पर्धकद्वितीयऋणद मेळे स्थापितस्पर्धुगुमी येरहुं राशिगळुं तृतीयस्पर्धकऋण-  
मक्कुमल्लिदं मुंदे चतुर्थादिस्पर्धकंगळोळुत्तरधनदऋणानयनं सुगममेकेदोडे प्रथमपंक्तिऋणम-

५ वस्थितरूपदिदं

|              |                 |
|--------------|-----------------|
| व वि ३। ४। ९ | व वि ४। ४। ९। ८ |
| २ २          | २               |
| व वि ३। ४। ९ | व वि ४। ४। ९। ७ |
| २ २          | २               |
| ०            | ०               |
| ०            | ०               |
| व वि ३। ४। ९ | व वि ४। ४। ९। २ |
| २ २          | २               |
| व वि ३। ४। ९ | व वि ४। ४। ९। १ |
| २ २          | २               |
| व वि ३। ४। ९ |                 |
| २ २          |                 |

जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः व वि ३ ४ ९ द्वितीयस्पर्धकप्रथमपंक्तिऋणस्योपरि स्थाप्यः शेषमिदं—व ९ वि ४ २  
२ २

व ९ वि ४ २  
२

व ९ वि ४ २  
२

व ९ वि ४ २  
२

अँराशिकेनोत्पन्नप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्धक-  
शलाकाभिश्च गुणितं व वि ४ ४ ९ २ द्वितीयस्पर्धकद्वितीयऋणस्योपरि स्थाप्यं । उभौ राशी तृतीयस्पर्धक-  
२

ऋणं भवतः । अग्रे चतुर्थादिस्पर्धकेषु उत्तरधनस्य ऋणानयनं तु प्रथमपंक्तावस्थितत्वेन—

- १० प्रमाण प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रमाणसे दूसरी गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रमाण आधा जानना । उसमें एक विशेष घटानेपर दूसरी वर्गणा का प्रमाण होता है । सो इस दूसरी गुणहानिमें विशेषका प्रमाण प्रथम गुणहानिके विशेषके

द्वितीयपंक्तियोज्य रूपोनगच्छगुणकारगुणिततत्त्वविदं गमनदर्शनादिदं मद्रु कारणमागि रूपोन-  
गुणहानिस्पद्धकशलाकासंकलनेइदमेकगुणहानिस्पद्धकशलाकेगळिदमुमेरुस्पद्धकवर्गणाशलाकाव-  
वर्गादिदमु जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषगळु गुणिसल्पडुतिरलु द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासमेतावन्मात्र-  
मवकु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । मत्तमेकगुणहानिस्पद्धकशलाकेगळिदं रूपोनैकस्पद्धकवर्गणा-  
शलाकासंकलनेयिदमु गुणितजघन्यवर्गमात्र स्वविशेषगळु सर्वत्रावस्थितस्वरूपदिदमिहतिद्विपवें-  
वितु त्रैराशिकक्रमदिदमेकगुणहानिस्पद्धकशलाकेगळिदं गुणिसुतं विरलु प्रथमपंक्तिऋणमेतावन्मा-  
त्रमवकु । व वि ३ । ४ । ९ । ९ । मी राशियं मेलापिसत्वेडि द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासद  
ऋणसहितमागिद्वि गुणकारदोळेकरूपं प्रक्षिप्तमागुतं विरलु उभयपंक्तिसर्वऋणसंयोगमेतावन्मात्र-  
मवकु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । मी रूपमुं मुन्नं स्थूलरूपदिदं तरल्पदृत्तरधनदोळु

|                |
|----------------|
| व वि ३ ४ ९     |
| २ २            |
| व वि ३ ४ ९     |
| २ २            |
| ०              |
| ०              |
| व वि ३ ४ ९     |
| २ २            |
| व वि ३ ४ ९     |
| २ २            |
| व वि ३ ४ ९     |
| २ २            |
| प्रथमपंक्तिऋणं |

|                  |
|------------------|
| व वि ४ ४ ९ ८     |
| २                |
| व वि ४ ४ ९ ७     |
| २                |
| ०                |
| ०                |
| व वि ४ ४ ९ २     |
| २                |
| व वि ४ ४ ९ १     |
| २                |
| ०                |
| द्वितीयपंक्तिऋणं |

द्वितीयपंक्तौ रूपोनगच्छगुणितत्वेन च गमनदर्शनात् । सुगमं । ततो रूपोनगुणहानिस्पद्धकशलाका-  
संकलनया एकगुणहानिस्पद्धकशलाकाभिः एकस्पद्धकवर्गणाशलाकावर्गेण च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः  
द्वितीयपंक्तिसर्वऋणं स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ पुनरेकगुणहानिस्पद्धकशलाकाभिः रूपोनैकस्पद्धकवर्गणा-  
शलाकासंकलनेन च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः सर्वत्रावस्थितरूपेण तिष्ठति इति त्रैराशिकक्रमेण एकगुण-  
हानिस्पद्धकशलाकागुणितः प्रथमपंक्तिऋणं स्यात् । व वि ३ ४ ९ ९ इदं मेलापयितुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणस्य  
ऋणसहितस्थितगुणकारे एकरूपे प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिसर्वऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ इदं पुनः पूर्वं स्थूल-

प्रमाणसे आधा होता है । इसी प्रकार एक एक विशेष घटानेपर तीसरी आदि वर्गणाओंका प्रमाण होता है । इसी प्रकार दूसरी गुणहानिसे तीसरी गुणहानिकी वर्गणाओंमें वर्गोंका

व वि १६।४।९।९। शोधसि। व वि।४।४।९।९।९।४-१ केलमेयुं मेमेयुं त्रिगु-  
२ २

णिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानियोळ शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु। व वि ४।४।९९।९।४  
६।२

मत्तं तृतीयगुणहानि द्रव्यं पेळस्पडुगुमल्लि प्रथमादिवर्गणेगळ मध्यदोळ द्विगुणगुणहानिस्पद्धक-  
शलाकेगळ मेले स्थिताधिकरूपगळ तेगडु मुन्नं संकलिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानिय आविधनार्ध-  
५ मेतावन्मात्रमक्कु। व वि ४।४।९।९।९।४। मिदु द्वितीयगुणहान्याविधनद मेळे स्थापि-  
६।२।२

सत्पडुगुं। मत्तमुत्तरधनं तरलपडुगुं। प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाचतुर्भगिमानेकस्पद्धकवर्गणा-  
शलाकेगळिदं द्विगुणगुणहानिस्पद्धकशलाकेगळिदमुं गुणिसुत्तं विरलु तृतीयगुणहानिप्रथमस्पद्धक-  
मेतावन्मात्रमक्कु। व वि १६।४।९।२। मिनितु द्रव्यं स्पद्धकं प्रतिगच्छमात्रमवस्थित-  
४

स्वरूपदिदमिरुत्तिकुंमैदितु त्रैराशिककर्मदिदं गुणहानिस्पद्धकशलाकाराशियिदं गुणिसुत्तं विरलु  
१० ऋणसहितमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु। व वि १६।४।९९।२। मिल्लि ऋणं तरलपडुगुं।  
४

जघ्न्यवर्गगुण स्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पद्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलने द्विगुणगुणहानिस्पद्धक-  
शलाकेगळिदं गुणिसत्पडुत्तं विरलु प्रथमस्पद्धकऋणमेतावन्मात्रमक्कु। व वि।३।४।९।२।  
४ २

मिनिते ऋणमवस्थितं प्रतिस्पद्धकमिरुत्तिकुंमैदितु त्रैराशिककर्मदिदमेकगुणहानिस्पद्धकशलाके-

रूपानीतोत्तरधने व वि १६ ४ ९ ९ संशोष्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४-१ उपर्यधस्त्रिभिर्गुणितं द्वितीय-  
२ २ २

१५ गुणहानी शुद्धमुत्तरधनं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ पुनस्तृतीयगुणहानिद्रव्यमुच्यते—  
६।२

तत्र प्रथमादिवर्गणामु द्विगुणगुणहानिस्पद्धकशलाकानामुपरिस्थिताधिकरूपाणि स्वीकृत्य प्राक् संकलितानि  
द्वितीयगुणहान्यादिधनार्धं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ इदं द्वितीयगुणहान्यादिधनस्योपरि स्याप्यं।  
६ २ २

पुनश्चत्तरधनमानीयते—

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाचतुर्भगिः एकस्पद्धकवर्गणाशलाकाभिः द्विगुणगुणहानिस्पद्धकशलाकाभिश्च  
२० गुणितः तृतीयगुणहानिप्रथमस्पद्धकं स्यात् व वि १६ ४ ९ २ एतावत्प्रतिस्पद्धकमस्तीति गुणहानिस्पद्धक-  
४

शलाकागुणितं ऋणसहितोत्तरधनं स्यात् व वि १६ ४ ९ ९ २ अत्रत्यमृणमानीयते—  
४

जघ्न्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पद्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलना द्विगुणगुणहानिस्पद्धकशलाका-  
गुणिता प्रथमस्पद्धकऋणं स्यात्—व वि ३ ४ ९ २ एतावत्प्रतिस्पद्धकमस्तीति गुणहानिस्पद्धकशलाकागुणिते  
४ २

प्रमाण तथा विशेषका प्रमाण आधा-आधा जानना। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग  
२५ गुणहानियोंके होनेपर एक योगस्थान होता है। इसीसे एक स्थानमें पल्यके असंख्यातवें

गळिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्वशृणसमासमेतावन्माश्रमवकु । व वि । ३ । ४ । ९ । २ । ९ ।  
४ २

मत्तं जघन्यवर्गगुणस्वविशेषमुमनेकस्पृष्टकवर्गणाशलाकावर्गदिदं द्विगुणगुणहानिस्पृष्टकशला-  
केगळिदमुं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पृष्टकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रमवकु। व वि ४।४।९।२।  
४

मिन्तु तृतीयादिस्पष्टकङ्गळोळं द्विगुणत्रिगुणादिक्रमदिवं रूपोनगच्छमात्रमिहस्तिःकुर्मंवितु रूपोनैक-  
गुणहानिस्पष्टकङ्गळोळोळं द्विगुणत्रिगुणादिक्रमदिवं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिसर्वश्रृणसमासमेतावन्मात्रमक्कु । ५

व वि ४।४।९।२९९। सो द्वितीयपंक्तिऋणसमासदोष्ट प्रथमपंक्तिसर्वऋणमं कूडत्वडि  
४ ३

द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणबोद्धु ऋणसहितमावुबोद्धु गुणकारमा गुणकारबोद्धकुरु प्रक्षेपितत्पडुतं  
विरलु उभयपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमेतावन्मात्रमक्कु । व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । १ । २ । मो ऋणम्

मुन्नं स्थूलरूपविदं तदुत्तरधनदोळु । य वि १६।४।९।९।२। निरोक्षसि गोधिसिदोडिबु ।  
४

व वि ४।४।९।९।९।२।३। यिवं मेलेयुं कळगैयुं त्रिगुणितं माडल्पडुतं विरलु तृतीय- १०  
४ २

गुणहानियोळ शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमवकु । व वि ४।४।९।९।९।२ मो प्रकारदिवं  
६।२।२

चतुर्थादिगुणहानिगळोळु चरमगुणहानिपर्यन्तमुभयधनंगळोळु द्वि क्रमंगळपुवु । विशेषमुंटावुदं  
दोडे उत्तरधनदोळु रूपोनपदमात्रगुणकारंगळोळु चरमगुणहानियोळु येरडुं धनंगळो रूपोननाना-

गुणहानिमात्र  $\frac{0}{22}$  प। २ द्विकंगळु भागहारंगळपुवु। उत्तरधनगुणकारमुं मर्त्त रूपोननानागुणहानि-

प्रथमपंक्तिः सर्वकृष्णं स्यात् व वि ३ ४ ९ २ ९ पुनर्जघन्यवर्गगुणस्वविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुण- १५  
४ २

गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणितो द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं स्यात् व वि४ ४ ९ २ एवं तृतीयादिस्पर्धकेषु  
४

द्विगुणत्रिगुणादिक्रमेण रूपोनैकगुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणने द्वितीयपंक्ति-  
सर्व णं स्यात् । व वि ४ ४ ९ २ ९ ९ अस्मिन् प्रथमपंक्तिसर्वमृणं निक्षेप्तुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणे ऋणसहित-

स्थितैकगुणकारे एकरूपे प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिसर्वशृणं स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ इदं प्राक्स्यूलरूपानोतोत्तर-  
४ २

घने व वि १६ ४ ९ ९ २ संशोध्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ । ३ उपर्यधस्त्रिभिर्गुणिते तृतीयगुणहानी शुद्ध- २०  
४ ४ २

भाग गुणहानियाँ कही हैं। यह सब कथन जघन्य योगस्थानका है। जो शक्तिकी प्रधानता

क-४२

मात्रमक्कुं । सर्वत्रमेरुं धनं गच्छेत् गुणहानिस्पृहं कशलाकाधनस्पृहं कवर्गणाशलाकावर्गगुणजघन्य-  
वर्गमात्रविशेषं गुण्यमानराशिसदृशमेव ककुं । गुणकारमुं मत्ते आदिधनवक्के चतुःषड्भागमुपपद्युपरि  
द्विगुणहीनमक्कुमुत्तरधनवक्के नवषड्भागार्द्धमुपपद्युपरि द्विगुणहीनमुं रूपोनपदगुणितमुमक्कुमिस्तु  
गुणहीनाधिकस्वरूपदिवं नडेववर सर्वगुणहानिगळः—

| आदिधन              | उत्तरधन                    |
|--------------------|----------------------------|
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | व वि ४ ४ १ १ १ १ १ १ १ १ ५ |
| ० ६ ५              | ० ६ ० ०                    |
| ० ० १ २            | ० ५ ० १ २                  |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | व वि ४ ४ १ १ १ १ १ ३       |
| ६ १ २ १ २ २        | ६ १ २ १ २ २                |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | व वि ४ ४ १ १ १ १ १ २       |
| ६ १ २ १ २          | ६ १ २ १ २                  |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | व वि ४ ४ १ १ १ १ १ १       |
| ६ १ २              | ६ १ २                      |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | ०                          |
| ६                  |                            |

५ धनसंकलनासूत्रमिदु ॥ “पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं वैकं सहोत्तराद्यंशगुणं । विपदघनचयं  
विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना ॥” एदितु मुन्नं संकलितधनं तरत्पट्ट क्रमदिवं समस्त-  
गुणहानिगळं सर्वविभागप्रतिच्छेदंगळं तरत्पट्टगुं । पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं पदं नानागुणहानि

मुत्तरधनं स्यात्— व वि ४ ४ १ १ १ १ २ एवं चतुर्थादिगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यंतासु उभयधनानि  
४ ६ २ २

अर्धार्धकमाप्यपि उत्तरधनानि रूपोनपदगुणितानि स्युः । संदृष्टिः—

| आदिधनं             | उत्तरधनं           |
|--------------------|--------------------|
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | १ —                |
| ० ६ ५ २            | व वि ४ ४ १ १ १ १ ५ |
| ० ० ०              | ० ०                |
| ० ० ०              | ० ६ ५ ० ०          |
|                    | ० ० २              |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | व वि ४ ४ १ १ १ १ ३ |
| ६ २ २ २            | ६ २ २ २            |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | व वि ४ ४ १ १ १ १ २ |
| ६ २ २              | ६ २ २              |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | व वि ४ ४ १ १ १ १ १ |
| ६ २                | ६ २                |
| व वि ४ ४ १ १ १ १ ४ | ०                  |
| ६                  |                    |

१०. लेकर किया है । प्रदेशोंकी प्रधानतासे कथन करते हैं । सब जीवके प्रदेश लोक प्रमाण है ।

पत्यासंख्यातैकभागमक्कुं प एतावन्मात्रद्विकंगलनन्योन्याभ्यासं माडुत्तं विरलु पुट्टिव राशियं  
००

पत्यासंख्यातैकभागमात्रमप्य अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुं प व्येकं एकरूपविदं होतमप्य राशियं  
०

प सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तरधनांशगळं कूडि गुणिसि १३ प वी राशियं विपदघनचयं पदविदं  
०

गुणिसत्पट्टुत्तरधनचयविदं ९ प होतं माडिदी राशियं १३ प ९ प व्येकपदान्योन्यगुणहताद्य-  
० ० ० ० ० ०

च्छिदिना विभजेत् । रूपहोनपदप्रमितं प रूपोत्तानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गविदं पुट्टिव राशि-  
००

यन्योन्याभ्यस्तराशयद्वैमक्कुं प मिदनादिच्छेदविदं षड्रूपं गळिदं गुणिसि प ६ व राशियिदं  
० २ ० २

भागिपुबुदंतु भागिसिद राशियं तन्नस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमाडि व वि ४।४।२।२।२।२ प-९ प  
० ० ०

ऋणमं तेगु पृथक्स्थापिसिदोडे धनऋणराशिद्वयमितिक्कुं :—  
६ ०  
० २

धन  
व वि ४।४।२।२।२।२ प व वि ४।४।२।२।२ प मिलिः ऋणर्णयोरेक्यमेवितु धन-  
० ६ प ० ०  
६ प ० २  
० २

संकलनसूत्रं पदमात्रं प गुणान्योन्याभ्यासं प व्येकं प सहोत्तराद्यंशगुणं १३ प विपदघनचयं १०  
० ० ० ०

१३ प—९ प व्येकपदा प न्योन्यगुण प हताद्यच्छिदिना प ६ विभजेत् इति भक्तराशि स्वावस्थित-  
० ० ० ० ० ० ० २

गुणस्य गुणकारं कृत्वा व वि ४४९९९९१३ प—९ प ऋणे पृथक्स्थापिते धन ऋणे एतावती स्यातां  
० ० ० ०  
६ प २  
०

व वि ४४९९९९१३ प व वि ४४९९९९९ प अत्र ऋणार्णयोरेक्यमिति धनस्यं उभयधनगुणकारांश-  
६ प ० ० ०  
० २ ६ प ० २

पीछे अं ४ संदृष्टिमें ३१०० बताया है । नानागुणहानि पत्यके असंख्यातवें भाग । इसकी



दोळिर्द्वुभयधनगुणकारांशमात्रकृतं पृथग्भूतं माडि व वि ४।४।९।९।९।९।१३।१ ऋण-  
६ प २  
०

दोळु कूडिरिसि :— व वि ४।४।९।९।९।९।९ धनदणगुणकारभागहारंगठनपवत्तिसि  
६ प ००  
० २

गुणिसि भागिसिदोडे रूपचतुष्टयगुणकारमुं त्रिभागाधिकमुमक्कु । व वि ४।४।९।९।९।९।४  
१  
३

मो त्रिभागदोळु ऋणमं निरोक्षिसिपवत्तिसिदोडेकरूपासंख्यातैकभागमक्कु १ मेकेंदोडे नाना-  
०

५ गुणहानिगुणकारमं नोडलु भागहारभूताभ्योन्याभ्यस्तराशियर्द्धमसंख्यातगुणितमपुदरिंदमा रूपसं-  
ख्यातयिकभागमं कळदोडे किचिदूनत्रिभागाधिकरूपचतुष्टयं गुणकारमक्कु :—

व वि ४।४।९।९।९।९।४ मो सर्वजघन्योपपादयोगस्थानद अविभागप्रतिच्छेदंगळं मुन्नितंतं  
१  
३

चारिनवगा अट्ट एंडु गुणहानियनुत्पादिसि चतुर्गुणकारदोळेकद्विकमं कोडु गुणिसि दोगुणहानियं  
माडि चतुष्कदिदं गुणिसि जघन्यस्पर्द्धकमनुत्पादिसि द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्गदिदं

१० गुणिसि । व वि १६।४।९।९।९।२। चरमगुणकारद्विकदोळु मुन्नितंतं किचिदूनषड्भागमं—  
व वि १६।४।९।९।९।१-२। साधिकं माडि । प्र । व । वि । १६।४। फ १ । इ व वि १६।  
३ २

४।९।९।२। लब्धमिति सु स्पद्धकंगळपुवु । ९।९।२। इवु गुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्गमं

मार्त्त ऋणं पृथक्कृत्य व वि ४४९९९९१३ १ ऋणे प्रक्षिप्य व वि ४४९९९९१३ प अववत्तितं  
६ प  
० २ ० ०  
६ प  
० २

१

रूपासंख्यातैकभागः स्यात् ० धनस्य गुणहारभागहारावपवर्त्य भक्त्वा तृतीयभागे तद्रूपासंख्यातैकभागेऽपनीते  
१५ किचिदूनत्रिभागाधिकरूपचतुष्टयगुणकारः स्यात् । व वि ४४९९९९४। अमी सर्वजघन्योपपादयोगस्थान-

१—  
३

स्याविभावप्रतिच्छेदाः प्राग्भत् चारिनवगा अट्ट इति गुणहानिमुत्पाद्य चतुर्गुणकारे एकद्विकं स्वीकृत्य दोगुणहानि  
कृत्वा चतुष्केन संगुण्य जघन्यस्पर्द्धकमुत्पाद्य द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्गेण संगुण्य व वि १६४९९९२  
चरमगुणकारद्विकं प्राग्भत् किचिदूनषड्भागेन व वि १६४९९९१—२ साधिकं कृत्वा प्र व वि १६४।  
३ २

अंक संदृष्टि पाँच है । एक गुणहानिका आयाम जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग । इसकी

द्विगुणिसिद्धनितकुमवर प्रमाणनिधु ० ० २ यिदेत्तलानुं - प्रतरासंख्येयभागमवकुमे'दु संकिसत्वेडे के'दोडे "मिगिठानपड्डयाओवग्गणसंखापदेसगुणहाणी । सेडिपसंखेज्जदिमा असंखळोगा हु अविभागा ॥" एंकी सूत्राभिप्रायदिदं श्रेण्यसंख्यातैकभागमेयवकु ० सी जघन्ययोगस्थानव मेले सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पद्धकंगळु पेच्चुत्तं पोगियो'दो'दपूर्वस्पद्धकंगळु पेच्चुत्तं पोगि-युत्कृष्टस्थान पुट्टुगुमे'बुदं मुंदणसूत्रद्वयादिदं पेळदपर :—

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तावरफड्डया उड्ढी ।

अंतरछक्कं मुच्चा अवरड्डाणादु उक्कस्सं ॥२३०॥

अंगुलासंख्यभागप्रमाणमात्रावरस्पद्धकवृद्धिरन्तरषट्कं मुक्त्वावरस्थानादुत्कृष्टं ॥

अवरस्थानात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तभवंगळु चरमभवद त्रिविग्रहंगळोळु प्रथमविग्रह-दुपपादयोगसर्वजघन्यस्थानवत्तणिनन्तरस्थानं मोदत्तो'डु प्रथमस्य हानिर्वा नास्ति वृद्धिर्वा १० नास्ति ये'दन्तरयोगस्थानवोळु वृद्धियुट्पुवरिदमा द्वितीयस्थानं मोदत्तो'डु सर्वोत्कृष्टयोगस्थानं पुट्टुवन्नेवरं सांतरनिरंतर सांतरनिरंतरगळु'ब त्रिविधयोगस्थानंगळोळु सर्वत्र निरंतरक्रमदिदं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्र प्रमितंगळु जघन्यस्पद्धकंगळु । युगपत् स्थानं स्थानं प्रति पूर्वपूर्वस्था-नंगळु मेळे वृद्ध्यामियुत्तरोत्तरस्थानंगळागुत्तं पोपुवन्तु पेच्चुत्तं पोगुत्तं विरलु ।

फ १ । इ व वि १६ ४ ९ ९ २ लब्धमेतावति स्पर्धकानि ९ ९ २ । साधिकद्विगुणगुणगुणहानिस्पर्धकशलाका- १५

वर्गमात्राणि ० ० २ । इमानि प्रतरासंख्येयभाग इति नाशंकनीयं 'इमि ठानफड्डयाओ' इति सूत्रेण श्रेण्य-

संख्यातैकभागप्रतिपादनात् । ० ॥२२९॥ तज्जघन्ययोगस्थानस्योपरि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्य-स्पर्धकानि बधित्वा बधित्वा एकैकमपूर्वस्पर्धकं, एवं गत्वोत्कृष्टस्थानमुत्पद्यते इत्यप्रतनसूत्रद्वयेन आह—

तस्मात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तस्य सर्वजघन्यचोपपादयोगस्थानादनंतरस्थानमादि कृत्वा सर्वोत्कृष्ट-योगस्थानोत्पत्तिपर्यंतं सांतरेषु निरंतरेषु सांतरनिरंतरेषु च अमोषु योगस्थानेषु निरंतरं सूच्यंगुलासंख्यातैकभाग- २० मात्राणि जघन्यस्पर्धकानि युगपत्प्रतिस्थानं वर्धते तदा एकैकमुत्तरोत्तरस्थानमुत्पद्यते ॥२३०॥ तथा सति—

अंक संदृष्टि आठ है । इत्यादि सब पूर्ववत् जानना । ऊपर टीकामें अविभाग प्रतिच्छेदोंके मिलानेका विधान विस्तारसे किया है । यह जघन्य योगस्थानका कथन हुआ ॥२२९॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके सबसे जघन्य उपपाद योगस्थान होता है । उसके अनन्तरवर्ती स्थानसे लेकर सर्वोत्कृष्ट योगस्थानकी उत्पत्ति पर्यन्त सान्तर, निरन्तर और २५ सान्तरनिरन्तर सब ही योगस्थानोंमें-से प्रत्येक योगस्थानमें निरन्तर सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक युगपत् बढ़ते हैं । तब उत्तरोत्तर एक-एक स्थान उत्पन्न होता है ॥२३०॥

विशेषार्थ—जघन्य स्थानमें प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धकमें जितने अविभागी प्रतिच्छेद होते हैं उनसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुने अविभाग प्रतिच्छेद उससे ३० ऊपरके दूसरे योगस्थानमें होते हैं । इसी प्रकार दूसरेसे तीसरेमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें

सरिसायामेणुवरिं सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि ।

चडिदेवकेक्कमपुव्वं फट्ठयमिह जायदे चयदो ॥२३१॥

सदृशायामेनोपरि श्रेण्यसंख्येयभागस्थानानि । चटित्वा एकैकमपूर्वम् स्पृष्ट्वैकमिह जायते चयतः ॥

५ वृद्धिप्रमाणमायामः । इति प्राक्तनप्रतिपदं । सदृशायामेनोपरि सर्वजघन्ययोगस्थानायाश्च समानायामद मेलं चयतः सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पृष्टकंगळु सर्वजघन्यवनंतरं द्वितीय स्थानं मोदल्लोडु पेच्चुत्तं पेच्चुत्तं पोगियोदेड्योळु जघन्यस्थानायामद मेलं पेच्चिद चयदिवमोडु अपूर्वस्पृष्टकं पुट्टुगुं । अदेनितु स्थानंगळं नडेडु पुट्टुगुमेवोडे अनुपातत्रैराशिकविदमा स्थानंगळ साधिसत्पडुगु । प्र व वि । १६ । ४ । २ । फ । स्था । १ । इ । व । वि । १६ । ४ । २ ना इतितिति-

१० तविभागप्रतिच्छेदंगळपेच्चियोडु स्थानविकल्पं पुट्टुत्तं विरलागळितितविभागंगळु पेच्चिदल्लिगेनितु स्थानविकल्पंगळपुवेदितु त्रैराशिकमं माडि वंद लब्धप्रमितं अ १ ना वि १६ । ४ अपवर्तित-  
व वि अ १६ । ४ । २

तत्सर्वजघन्ययोगस्थानस्य समानायामस्योपरि उक्तप्रमाणचयेन एकमपूर्वस्पर्धकमुत्पद्यते । कति स्थानानि गत्वा गत्वा ? इति चेत् यद्येतावत्सु अविभागप्रतिच्छेदेषु प्र-व वि १६ ४ २ वक्षितेषु एकस्थानं फ स्था १

१—

तदेतावत्सु इ व वि १६ ४ २ ना वक्षितेषु कति स्थानानि ? इति त्रैराशिकेन लब्धमात्राणि  
अ

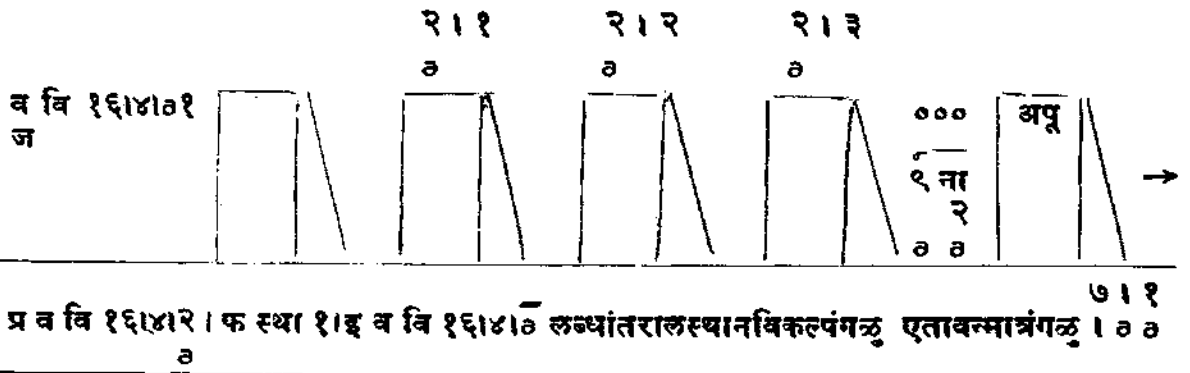
१५ भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक अधिक होते हैं । तीसरेसे चौथेमें, चौथेसे पाँचवेंमें, इसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पर्यन्त एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते-बढ़ते होते हैं । आगे छह अन्तर कहेंगे, उनको छोड़कर जघन्य स्थानसे उत्कृष्ट पर्यन्त जीवोंके योगस्थान होते हैं ॥२३०॥

२० सबसे जघन्य योगस्थानके समान आयामके ऊपर पूर्वोक्त प्रमाण वृद्धिरूप चयके होनेपर एक-एक अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है । कितने-कितने स्थान जानेपर होता है ? इसके उत्तरमें त्रैराशिक करना चाहिए । सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धकोंके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हों उनके बढ़नेपर यदि एक स्थान होता है तो जघन्य स्थानके सब अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें एक गुणहानि सम्बन्धी स्पर्धकोंकी संख्याको नाना गुणहानिसे गुणित उनकी अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने  
२५ जघन्य स्पर्धक बढ़नेपर कितने स्थान होंगे, ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशिका प्रमाण जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग आता है । इसी प्रकार इसके अनन्तर समान आयामको लिये द्वितीय स्थानसे लेकर, सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक एक स्थानमें

१. अ इत्यपूर्वस्पर्धकं कथयति नायं भागहारः ।

मिनितु १ ना श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रस्थानंगळपुवु । ० । = । मत्तमन्ते तदनंतरसदृशायागद  
अ २

द्वितीयस्थानं मोदतगोडु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रतद्योग्ययोगस्थानंगळ सवृद्धिकंगळ नडु मत्ते वोडु  
द्वितीयापूर्वस्पर्द्धकं पुट्टुगुमो क्रमविदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशिप्रमित ०० मपूर्वस्पर्द्ध-  
मपूर्वस्पर्द्धकंगळ पेच्चिदल्लि जघन्ययोगस्थानं द्विगुणमक्कु मो क्रमविदं तद्विगुणद्विगुणक्रमविदं  
नडु संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवसर्वोत्कृष्ट योगस्थानं पुट्टुगुमो यत्त्यमं प्रद्योतिसत्समर्थमप्य रचना- ५  
विशेषसंदृष्टियिदु—

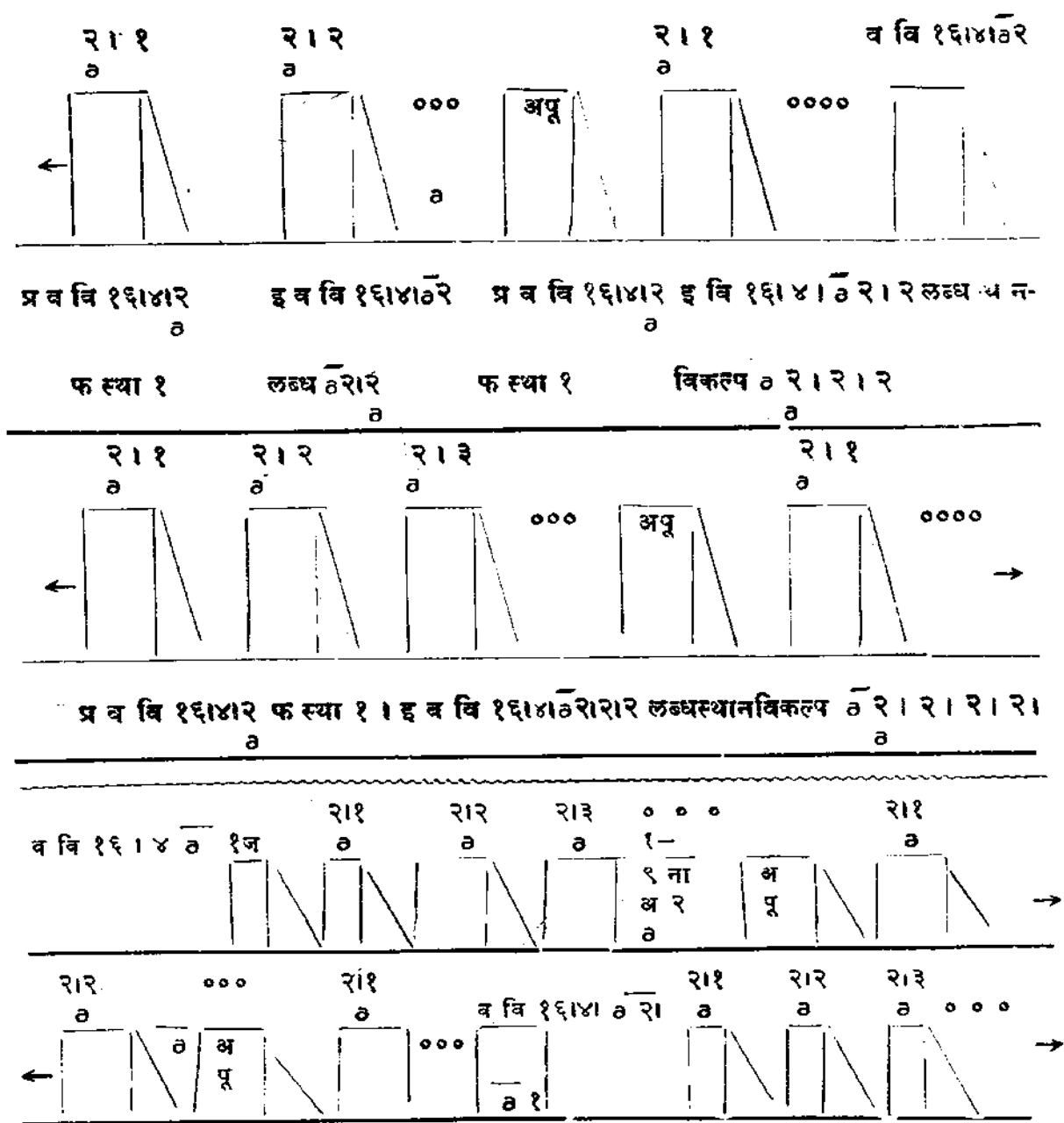


प्र व वि १६४०२ । फ स्था १ । इ व वि १६४०० लब्धांतरालस्थानविकल्पंगळ एतावन्मात्रंगळ । ० ०

|                      |           |            |                                                            |
|----------------------|-----------|------------|------------------------------------------------------------|
| १—<br>व वि १६ ४ १ ना | अपवतितानि | १—<br>१ ना | श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राणि भवन्ति ० तथा तदनंतरं सदृशायागं |
| व वि १६ ४ २ अ        |           | अ २        |                                                            |
| ०                    |           | ०          |                                                            |

द्वितीयस्थानमादि कृत्वा श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रतद्योग्ययोगस्थानानि सवृद्धिकानि गत्वा पुनरेकं द्वितीयमपूर्व-  
स्पर्द्धकमुत्पद्यते । एवमेकहानिगुणस्पर्द्धकशलाकामात्रे ०० स्वपूर्वस्पर्द्धकेषु जघन्ययोगस्थानं द्विगुणं स्यात् । एवं  
द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवस्य सर्वोत्कृष्टयोगस्थानमुत्पद्यते । अस्य संदृष्टिः—

बदे इस प्रकार जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान होनेपर दूसरा अपूर्व स्पर्द्धक  
होता है । उसके ऊपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान होनेपर तीसरा अपूर्व  
स्पर्द्धक होता है । इसी प्रकार एक गुणहानिमें जितने स्पर्द्धकोंका प्रमाण कहा था उतने अपूर्व  
स्पर्द्धक होनेपर जघन्य योगस्थान बना होता है । यहाँ अपूर्व स्पर्द्धक होनेका विधान समझमें  
न आनेके कारण नहीं लिखा है ।

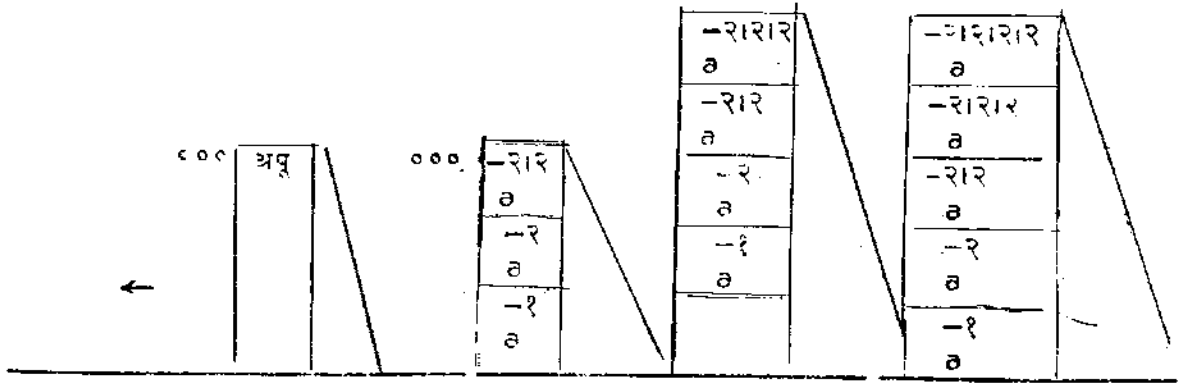


विशेषार्थ—एक गुणहानिमें स्पर्धकोंका प्रमाण जगतश्रेणिमें दो बार असंख्यातका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना कहा था। सो उतने ही अपूर्व स्पर्धक होनेपर जो योग-स्थान होता है उसके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे जघन्य योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदसे दूने हैं। उससे ऊपर उतने ही अपूर्व स्पर्धक होनेपर जो योगस्थान होता है वह उस योगस्थानसे भी दूना होता है। इस प्रकार कमसे दूना-दूना होते संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक



रूपोन्गुणेन हतं गुणितं ० २ ३१ । १ प्रभवेण भाजितं ० २ ३१ सैकं ३२ यतिकृत्वो  
० ० ० २ ०

गणभक्तं ३२ । रूपं स्यात्तति भवेद्गच्छः । इवभ्योऽप्रभ्यस्तगुणकारशलाकगळवकुं । ई प्रति-  
२०२२२



प्र—व वि १६ ४ २ फ—स्या १ । इ—व वि १६ ४ ० लब्धस्थानविकल्पाः ० २ पुनः प्र—व वि १६ ४ २  
० ० ०

फ—स्या १ इ व वि १६ ४ ० २ । लब्धस्थानविकल्पाः ० २ २ पुनः प्र—व वि १६ ४ २ फ—स्या १ इ व  
० ० ०

५ वि १६ ४ ० २ २ लब्धस्थानविकल्पाः ० २ पुनः प्र व वि १६ ४ २ । फ—स्या १ । इ व वि १६ ४  
० ० ०

० २ २ २ । लब्धस्थानविकल्पाः ० २ पुनः प्र—व वि १६ ४ २ । फ—स्या १ इ व वि १६ ४ ० २ २ २ २ ।  
० ० ०

लब्धस्थानविकल्पाः ० २ अंतघणं ० २ २ २ २ २ गुणगुणियं ० २ २ २ २ २ २ आदि ० २ विहोणं  
० ० ० ० ० ० ०

० २ ३१ रुऊणुत्तरभजियं इतीदं सर्वयोगस्थानविकल्पप्रमाणं भवति ० २ १ इदं पुनः रूपोन्गुणेन हतं गुणितं  
० ० ०

० २ ३१ १ प्रभवेण भाजितं—० २—२ सैकं ३२ : यतिकृत्वो गुणभक्तं ३२ रूपं स्यात् तति भवेत् गच्छः,  
० ० ० २ २ २ २ २

- १० क्रमसे एक, दो, चार, आठ, सोलह और बत्तीस गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना ।  
यहाँ फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको  
१. व. स्यात्तै = तावान् = यावतो वारान् १ ति भ. ।

पादने मुंदे व्याख्यानदोळ बरेयल्पट्टपुदिदरभिप्रायमेने दोडे जघन्ययोगस्थानद ० मेले तावन्मात्रं पेच्चि ० द्विगुणस्थानं पुट्टिद कारणं प्रथमत्रैराशिकदोळ ० इतिनु पेच्चिगे विच्छाराशिधेदरि-  
बुहु । इदरि प्रथमांतरालव योगविकल्पंगळ बंदबु मत्ते द्विगुणस्थानद ० २ मेले अनिते ० २  
पेच्चिचतुर्गुणस्थानं ० २ । २ पुट्टिद कारणं द्वितीयत्रैराशिकदल्लि ० २ इहु इच्छाराशि । विदरि  
द्वितीयांतरालविकल्पंगळ बंदबु मत्तं मुंदे इदे क्रममेंदु भाविसिको बुहु ॥

ई जघन्ययोगस्थानं मोदल्लो डु सर्वोत्कृष्टयोगस्थानपर्यन्तमिदं समस्तयोगस्थानविकल्पंगळ  
तरलपडुगुमवेते दोडे जघन्ययोगस्थानं मोदल्लो डु सवृद्धिकस्थानंगळ नडेदाबुदो देडेपोळ जघन्ययो-  
गस्थानं द्विगुणमवकुमल्लिगेतिनु स्थानविकल्पंगळकुमेंदोडे त्रैराशिकं माडलपडुगुं । इतितविभाग-  
प्रतिच्छेदंगळ पेच्चिदोडो डु स्थानविकल्पमवकु मागळेनितविभागप्रतिच्छेदंगळ पेच्चिदल्लिगेतिनु  
स्थानविकल्पंगळपुत्रेदितनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र ० फ सा १ इ ० । लब्धस्थानविकल्पंगळि- १०  
०

इत्यन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाः स्युः । जघन्यात् आ उत्कृष्टं सर्वयोगस्थानविकल्पेषु यत्र यत्र जघन्यं द्विगुणं  
द्विगुणं स्यात् तत्र तत्र कति कति विकल्पाः स्युः ? इति चेत् उच्यते—एतावदविभागप्रतिच्छेदवृद्धो एको  
विकल्पः तदा एतावद्वृद्धो कति इति प्र—व वि १६ ४ २ फ—स्या १ इ व वि १६ ४—। लब्धाः स्थान-  
० ०

सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको अनुक्रमसे एक, दो, चार  
आठ और सोलहसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने स्थानभेद होते हैं । १५

यहाँ अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा सोलह पर्यन्त ही गुणकार कहा है । इनका जोड़ देते हैं—

‘अंतर्धनं गुणगुणियं आदिविहीणं रुडणुत्तरभजियं’ इस गणित सूत्रके अनुसार अन्त-  
का धन जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो  
प्रमाण हो उससे सोलह गुना है । उसको गुणकार दोसे गुणा करें । उसमें आदिका प्रमाण,  
जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दें उतना है । उसको २०  
घटानेपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करके  
इकतीससे गुणा करें, उतना होता है । तथा एक हीन उत्तर एक, उससे भाग देनेपर भी  
इतना ही रहा । सो इतना सब योगस्थानोंके भेदोंका प्रमाण है । उसको एक हीन गुणकार  
एकसे भाग देनेपर भी इतना ही रहा । उसको आदिसे भाग देनेपर लब्ध इकतीस आया ।  
उसमें एक मिलानेपर बत्तीस हुए । सो जितनी बार गुणकार दोका भाग देनेपर एक रहता २५  
है उतना गच्छ जानना । सो पाँच बार दोका भाग बत्तीसमें देनेपर एक रहता है अतः  
अन्योन्याभ्यस्त राशिकी गुणकार शलाका पाँच है । पाँच जगह दोके अंक रखकर परस्परमें  
गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण बत्तीस आता है ।

इसी प्रकार जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त सब योग स्थानोंके जघन्य  
भेदोंमें जघन्य योगस्थान जहाँ-जहाँ दूना होता है वहाँ-वहाँ योगस्थानोंके कितने भेद होते ३०  
हैं सो कहते हैं—



नित्यपुत्र — १ मत्तं प्र व वि १६।४।२ फ स्था १ इ व वि १६।४० लब्धस्थानविक-  
 ०।२ ०

लपंगलु — २ मत्तं प्र व वि १६।४।२। प स्था १ इ व वि १६।४।-२२ लब्धस्थानविकल्पं-  
 ०२ ० ०

गलु ०२।२२ मत्तं प्र व वि १६।४।२। फ स्था १। इ। व वि १६।४।-२२२ लब्धस्थान-  
 ० ० ०

विकल्पंगलु ०२ २२२। यितु स्थानविकल्पंगलु द्विगुणद्विगुणवृद्धिस्थानंगळंतराळंगळोळ द्विगुण-

५ द्विगुणंगलुगुत्तं योगि सर्वोत्कृष्टयोगस्थानगळोळ पंचिचद पेचर्चुगेयनिच्छाराशियं माडिद त्रैराशिक  
 दल्लि प्र व वि १६।४२। फ स्था १। इ। व वि १६।४।० छे २। लब्धस्थानविकल्पंगलु  
 ० ० ०

०२ छे एतावन्मात्रंगलुपुत्री चरमस्थानविकल्पंगळनन्तधनं गुणगुणियं — छे २। आदि-  
 ००२ ०२०२ ०

विहीणं — छे ० रुद्रगुत्तरभजियमेदेकरुगदिदं भागिसिद राशि तावन्मात्रमेयकुमी सर्वयोग-  
 ०२० ०

विकल्पाः एतावन्तः ०२१ पुनः प्र-व वि १६४२ फ-स्था १। इ व वि १६४-२ लब्धस्थानविकल्पा  
 ० ० ०

१० एतावन्तः ०२ पुनः प्र-व वि १६४२ फ-स्था १ इ व वि १६४-२२ लब्धस्थानविकल्पाः एतावन्तः  
 ० ० ०

०२२ पुनः प्र-व वि १६४२। फ-स्था १। इ व वि १६४-२२२ लब्धस्थानविकल्पाः  
 ० ० ०

एतावन्तः ०२२२२ एवं गत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थाने इच्छाराशी कृते प्र-व वि १६४२ फ-स्था १ इ व वि  
 ० ० ०

१६४ — छे लब्धस्थानविकल्पाः एतावन्तः — २ छे एते च अंतधनं गुणगुणियं ०२ छे २ आदिविहीणं  
 ००२ ०००२ ००२

१५ प्रमाण फल और इच्छाराशि क्रमसे पूर्वोक्त प्रमाण जानना। इतना ही विशेष है कि  
 यह कथन अंक संदृष्टिकी अपेक्षा न होकर यथार्थ अपेक्षा है। अतः पूर्वमें जैसे अन्तधनमें

स्थानविकल्पगच्छो नानागुणहानिशलाकेगळरियत्पडवदु कारणमाणि तत्तदन्तराळस्थानंगळु द्विगुण-  
द्विगुणक्रमदिदमेनितु स्थानंगळनडेववेबि नानागुणहानिशलाकेगळु गच्छमवकुमदु तरत्पडुत्तिदे  
रूपोन गुणेन हतं गुणिशतं प्रभवे भाजितं सैकं । यतिकृत्वो गुणभक्तं रूपं स्यात्तति भवेदगच्छं ॥

एदिती करणसूत्राभिप्रायदिदं नानागुणहानिशलाकेगळेनितपुवेदोडे केळपेळदपे :—

रूपोनगुणेन द्विगुणगुणसंकलनविधानमपुदरिदं गुणकारमेरडरोळोदु रूपं कळेदोडोदे ५

रूपमवकुमदरिदं हतं गुणितं गुणिसत्पट्ट धनरूपसर्वस्थानविकल्पगळं  $\overline{a} \ 2 \ \overline{a}$  प्रभवेण भाजितं  
 $\overline{a} \ \overline{a}$

प्रभा मेंबुदादियस्थानविकल्पगळवरिद भागिसत्पट्ट राशियं  $\overline{a} \ 2 \ \overline{a}$  अपवर्तितमिदु  $\overline{a}$  सैकं  
 $\overline{a} \ \overline{a} \ \overline{a} \ 2$   
 $\overline{a} \ \overline{a}$

एकरूपं कूडिदुदं छे यतिकृत्वः वारे कृत्व...एदु यावतो वारान् यतिकृत्वः एनितु वारंगळनु गुण-  
भक्तं रूपं गुणकारभूतद्विकदिदमी यन्योन्याभ्यस्तराशियं छेदासंख्यातैकभागमात्रराशियं भागिसिद  
वारंगळ रूपं तति तावत्प्रमितं गच्छं स्यात् गच्छमवकुमेदितु तिर्य्यग्वर्गदिदं नानागुणहानिशलाकेगळु १०  
असंख्यातरूपहीनपल्यवर्गशलाकाप्रमितमपु ।  $\overline{a}$  । वेकेंदोडे छेदराशिय अर्द्धच्छेदंगळप्य वर्गशला-  
के द्विकमनितु संवर्गमं माडुत्तिरलु पल्यच्छेदराशि पुटदुगं । विरलनराशीदो पुण जेतिथमेत्ताणि  
हीणरूवाणि । तेसि अण्णणहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ एदा वर्गशलाकेय हीनरूपगळसंख्या-

—२ छे ङ्गुत्तरभजियं इति सर्वयोगस्थानविकल्पाः स्युः । त एव पुनः रूपोनगुणेन एकेन हताः  $\overline{a} \ 2 \ \overline{a}$   
 $\overline{a} \ \overline{a} \ \overline{a}$

प्रभवेन आदिस्थानविकल्पैर्भाजिताः  $\overline{a} \ 2 \ \overline{a}$  अवतिताः छे १ एकरूपसहिताः छे यावतो वारान् गुणेन १५  
 $\overline{a} \ \overline{a} - \overline{a}$   $\overline{a}$   $\overline{a}$

द्विकात्मकेन भक्ताः संतो रूपं जायते ते वाराः तिर्यग्रूपेण नानागुणहानिशलाकाः स्युः । ताश्च असंख्यातरूपहीन-

सोलहका गुणकार कहा, वैसे ही यहाँ क्रमसे दूना-दूना पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें  
भागका आधा प्रमाण मात्र गुणकार जानना । सो 'अंतर्धर्ण गुणगुणिय' इत्यादि सूत्रके  
अनुसार जोड़नेपर सब योगस्थानोंके भेदोंका प्रमाण होता है । उसको एक हीन गुणकारसे  
गुणा करके आदिस्थानसे भाग दें, एक मिलानेपर पल्यके अर्धच्छेदोंका असंख्यातवाँ भाग २०  
होता है । उसमें जितनी बार गुणकार दोसे भाग देनेपर एक रहे उतनी नाना गुणहानि शलाका  
है । सो असंख्यात हीन पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण जानना । क्योंकि पल्यकी वर्गशलाका  
प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेद मात्र प्रमाण होता है ।  
और उसमें घटाये असंख्यात । उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर असंख्यातका

तंगळं विरक्तिसि रूपंप्रति द्विकमं कोटदु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलाबुदो दु लब्धराशियदुबुमसंख्यात-  
मेयक्कुमा राशि छेदराशिगे हारमक्कुमपुदरिदमसंख्यातरूपहीनवर्गशलाकेगळे नानागुणहानि-  
शलाकेगळिल्लिगपु बेबुदु निब्बाधिवोधविषयमक्कुमी सर्वयोगस्थानगळोळगे पदिनात्कुं जीव-  
समासंगळ उपपादयोगएकातानुबुद्धियोग परिणामयोगमेबी योगत्रयंगळ जघन्योत्कृष्टविषयंगळ  
५ ८४ नैभत्तनात्कुं पदंगळिदमल्पबहुत्वमं गायानवर्कदिदं पेळदपरः—

एदेसिं ठाणाणं जीवसमासाण अवरवरविषयं ।

चउरासीदिपदेहिं अप्पायहुगं परुवेमो ॥२३२॥

एतेषां स्थानानां जीवसमासानामवरवरविषयं । चतुरशीतिपदैरल्पबहुत्वं प्ररूपयामः ॥

१० ई पेळल्पट्ट सर्वयोगस्थानविकल्पंगळ जीवसमासेगळ जघन्योत्कृष्टविषयमं च शब्ददिदमु-  
पपादयोगमेकातानुबुद्धियोग परिणामयोगमेबी योगत्रयमनाश्रयिसि चतुरशीतिपदंगळिदमल्प-  
बहुत्वमं पेळधेमेदु पेळळुपक्रमिसि मुंदण सूत्रमं पेळदपरः—

सुहुमगलद्धि जहण्णं तण्णिन्वत्तो जहण्णयं तत्तो ।

लद्धियपुण्णुकस्सं वादरलद्धिस्स अवरमदो ॥२३३॥

सूक्ष्मलब्धियजघन्यं तन्निर्वृत्तेर्जघन्यकं ततः । लब्ध्यपूर्वोत्कृष्टं वादरलब्धेरवरमतः ॥

११ इत्थि एकेन्द्रियसूक्ष्मवादरद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिय असंज्ञिपंचेन्द्रियसंज्ञिपंचेन्द्रियंगळगे संदृष्टिः

पत्यवर्गशलाकामात्रयो भवन्ति व—० कुतः पत्यवर्गशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गोत्पन्नपत्यच्छेदराशोर्हीनरूपासंख्यात-  
मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नासंख्यातस्य हारत्वसंभवात् ॥२३१॥ अयानंतरं अभिधेयस्य प्रतिज्ञासूत्रमाह—

एतेषामुक्तयोगस्थानानां मध्ये चतुर्दशजीवसमासानां जघन्योत्कृष्टविषयमल्पबहुत्वं चशब्दात् उपपादादि-  
योगत्रयमाश्रित्य चतुरशीतिपदैः प्ररूपयामः ॥२३२॥ तद्यथा—

२० अत्र सूक्ष्मवादरैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेन्द्रियाणां संदृष्टिः—

भागहार होता है । आशय यह है कि असंख्यातहीन पत्यकी वर्गशलाकाका जो प्रमाण है  
उतनी बार जघन्य योगस्थान दूना होनेपर उत्कृष्ट योगस्थान होता है । इससे इसको नाना  
गुणहानि शलाका कहा है । इस नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा  
करनेपर पत्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है । उससे  
२५ जघन्यको गुणा करनेपर उत्कृष्ट योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । इस  
तरह योगस्थानोंका प्रमाण होता है ॥२३१॥

आगेके कथनकी प्रतिज्ञा करते हैं—

ऊपर कहे इन योगस्थानोंमें चौदह जीव समासोंके जघन्य-उत्कृष्टकी अपेक्षा और 'च'  
शब्दसे उपपाद आदि तीन योगोंकी अपेक्षा चौरासी पदोंके द्वारा अल्पबहुत्व कहते हैं ॥२३२॥

३० यहाँ सूक्ष्म, वादर, एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञिपंचेन्द्रिय और  
संज्ञी पंचेन्द्रियकी संदृष्टि इस प्रकार जानना—

| सू. | वा. | वि. | ति. | च. | अ. | सं. |
|-----|-----|-----|-----|----|----|-----|
| ०१  | ८   | ०२  | ०३  | ०४ | ०५ | ०६  |
|     |     | ०   | ०   | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     | ०   | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     |     | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     |     |    | ०  | ०   |
|     |     |     |     |    |    | ०   |

सूक्ष्मलब्धजघन्यं सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकैः त्रियजीवनोपपादजघन्ययोगस्थानं सर्वतः स्तोकमक्कु १ मदं नोडलु तन्निवृत्तेर्जघन्यकं आ सूक्ष्मनिगोदनिर्वृत्यपर्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु १२। ततः तस्मात् अदं नोडलु लब्धचूर्णोत्कृष्टं सूक्ष्मलब्धपर्याप्तजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु १३। अतः अदं नोडलु बादरलब्धेरवरं बादरलब्धपर्याप्तजीवोपपादजघन्ययोगस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु १४।

५

| सू. | वा. | वि. | ति. | च. | अ. | सं. |
|-----|-----|-----|-----|----|----|-----|
| ०१  | ०१  | ०२  | ०३  | ०४ | ०५ | ०६  |
|     |     | ०   | ०   | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     | ०   | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     |     | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     |     |    | ०  | ०   |
|     |     |     |     |    |    | ०   |

सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकस्य उपपादजघन्यं स्थानं सर्वतः स्तोकं १। ततः तन्निवृत्त्यपर्याप्तजघन्यं पत्यासंख्यातगुणं २। ततः सूक्ष्मलब्धपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पत्यासंख्यातगुणं ३। ततः बादरलब्धपर्याप्तस्य तज्जघन्यं पत्यासंख्यातगुणं ॥४॥२३३॥

| सू. | वा. | वि. | ति. | च. | अ. | सं. |
|-----|-----|-----|-----|----|----|-----|
| ०१  | ०१  | ०२  | ०३  | ०४ | ०५ | ०६  |
|     |     | ०   | ०   | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     | ०   | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     |     | ०  | ०  | ०   |
|     |     |     |     |    | ०  | ०   |
|     |     |     |     |    |    | ०   |

सूक्ष्मनिगोद लब्धपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान सबसे थोड़ा है १। उससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पत्यका असंख्यातवाँ भाग गुणा है। अर्थात् पत्यके असंख्यात भागोंमेंसे एक भागके द्वारा पूर्व योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने अविभाग प्रतिच्छेद दूसरे स्थानमें हैं। ऐसे ही आगे भी समझ लेना २। उससे सूक्ष्म लब्धपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें भागगुणा है ३। उससे बादर लब्धपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ४ ॥२३३॥

णिर्वृत्तिसुहृमजेदं बादरणिर्वृत्तियस्स अवरं तु ।

बादरलब्धस्स वरं बीडंदियलद्विगजहृणं ॥२३४॥

निर्वृत्तिसूक्ष्मोत्कृष्टं बादरनिर्वृत्तेरवरं तु । बादरलब्धेर्वरं द्वीन्द्रियलब्धजघन्यं ॥

निर्वृत्तिसूक्ष्मोत्कृष्टं आ बादरलब्धपर्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानमं नोडलु निर्वृत्त्य-  
५ पर्याप्तसूक्ष्मजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं । ५। तु पुनः मत्तमवं नोडलु  
बादरनिर्वृत्तेरवरं बादरनिर्वृत्त्यपर्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु  
। ६। मदं नोडलु बादरलब्धेर्वरं बादरलब्धपर्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पत्यासंख्यातयिक-  
भागगुणितमक्कु । ७। मदं नोडलु द्वीन्द्रियलब्धेर्जघन्यम् द्वीन्द्रियलब्धपर्याप्तजीवोपपादजघन्ययोग-  
स्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं । ८॥

१० बादरणिर्वृत्तिवरं णिर्वृत्तिविइंदियस्स अवरमदो ।

एवं वितिचित्तिचित्तिच चउविमणो होदि चउविमणो ॥२३५॥

बादरनिर्वृत्तिवरं निर्वृत्तिद्वीन्द्रियस्याऽवरं अवरः । एवं द्वित्रिद्वित्रिचतुश्चतुस्त्रिचतुर्विंशतो  
भवति चतुर्विंशतः ॥

आ द्वीन्द्रियलब्धपर्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानमं नोडलु बादरैकैन्द्रियनिर्वृत्तिवरं  
१५ बादरैकैन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । ९॥ मतः  
अदं नोडलु द्वीन्द्रियनिर्वृत्तेरवरं निर्वृत्त्यपर्याप्तद्वीन्द्रियजीवोपपादजघन्ययोगस्थानं पत्यासंख्यातगुणित  
मक्कुं । १०। एवं ई प्रकारं विदं द्वित्रिलब्धपर्याप्त द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियजीवंगळ यथासंख्यमाणि उत्कृष्ट-  
जघन्योपपादयोगस्थानंगळ पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ३। ज । अवं नोडलु द्वित्रि  
११ १२

ततः सूक्ष्मनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पत्यासंख्यातगुणं ! ५ । तु-पुनः ततो बादरनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य  
२० तज्जघन्यं पत्यासंख्यातगुणं ६ । ततः बादरलब्धपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पत्यासंख्यातगुणं ७ । ततः द्वीन्द्रियलब्ध-  
पर्याप्तस्य तज्जघन्यं पत्यासंख्यातगुणं ॥८॥ २३४॥

ततो बादरैकैन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पत्यासंख्यातगुणं ९ । अतः द्वीन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य  
तज्जघन्यं पत्यासंख्यातगुणं १० । एवं लब्धपर्याप्तद्वित्रीन्द्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थाने

उससे सूक्ष्म निर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें भाग  
२५ गुणा है ५ । उससे बादर निर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें  
भाग गुणा है ६ । उससे बादर लब्धपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें  
भाग गुणा है ७ । उससे दो इन्द्रिय लब्धपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पत्यके  
असंख्यातवें भाग गुणा है ८ ॥२३४॥

उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें  
३० भाग गुणा है ९ । उससे दो इन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पत्यके  
असंख्यातवें भाग गुणा है १० । इसी प्रकार उससे दो इन्द्रिय लब्धपर्याप्तकका उत्कृष्ट और

निर्वृत्यपर्याप्तद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियजोवंगल यथासंख्यमाणि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगसंख्यं पल्यासंख्यातैक-  
भागगुणितंगलपुवु उ । ज अवं नोडलु त्रिचतुः लब्धपर्याप्तत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजोवंगल यथासंख्य-  
१३ । १४

माणि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगल पल्यासंख्यातैकभागगुणितंगलपुवु उ । ज त्रिचतुः सत्तं  
१५ । १६

निर्वृत्यपर्याप्तचतुरिन्द्रियजोवंगल यथासंख्यमाणि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगल पल्या-  
संख्यातैकभागगुणितक्रमंगलपुवु उ । ज चतुर्विमतः सत्तसंते लब्धपर्याप्तचतुरिन्द्रिय असंजि-  
१७ । १८

पंचेन्द्रियजोवंगल यथासंख्यमाणि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगल पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमं-  
गलपुवु । १९ । २० । अवं नोडलु सत्तसंते चतुर्विमतः निर्वृत्यपर्याप्तचतुरिन्द्रिय असंजिपंचेन्द्रिय-  
जोवंगल यथाक्रमद्विदमुपपादयोगोत्कृष्टजघन्यस्थानंगल पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगलपुवु ।  
२१ । २२ ॥

तद् य असण्णी सण्णी असणिसणिसस सणिसववदं ।

१०

सुहुमेइंदियलद्विग अवरं एयंतवडिडस ॥ २३६ ॥

तथा चासंसिंसंजिसंसिंसंजिन संज्युपपादः । सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्धवरमेकांतवृद्धे ॥

तथा च आ प्रकारद्विदमसंसिंसंजि असंसिंपंचेन्द्रियसंसिंपंचेन्द्रियलब्धपर्याप्तजोवंगल यथा-  
क्रमद्विदमुपपादयोगोत्कृष्टस्थानं जघन्यस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगलपुवु । २३ । २४ ॥  
सत्तसंते असंसिंसंजिनां निर्वृत्यपर्याप्तासंसिंसंजिजोवंगल यथाक्रमद्विदमुपपादयोगोत्कृष्टस्थानं १५

पल्यासंख्यातगुणे भवतः । ११ । १२ । ततः निर्वृत्यपर्याप्तद्वित्रीन्द्रिययोर्ध्यासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यात-  
गुणे । १३ । १४ । ततः लब्धपर्याप्तत्रिचतुरिन्द्रिययोर्ध्यासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १५ । १६ ।  
पुनः निर्वृत्यपर्याप्तचतुरिन्द्रिययोर्ध्यासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १७ । १८ । तथा लब्धपर्याप्त-  
चतुरसंसिंपंचेन्द्रिययोर्ध्यासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १९ । २० । ततः निर्वृत्यपर्याप्तचतुरसंसिं-  
पंचेन्द्रिययोर्ध्यासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । २१ । २२ ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

२०

तथा च असंसिंसंजिलब्धपर्याप्तयोर्ध्यासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे २३ । २४ । पुनस्तथा

तेइन्द्रिय लब्धपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग पत्यके  
असंख्यावें भाग गुणे हैं । ११ । १२ । उससे निर्वृत्यपर्याप्त दो-इन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्य-  
पर्याप्त तेइन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं । १३ । १४ ।  
उससे लब्धपर्याप्त तेइन्द्रियका उत्कृष्ट और लब्धपर्याप्त चौइन्द्रियका जघन्य उपपाद योग-  
स्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं । १५ । १६ । उससे निर्वृत्यपर्याप्त तेइन्द्रियका  
उत्कृष्ट और निर्वृत्यपर्याप्त चौइन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें  
भाग गुणे हैं । १७ । १८ । उससे लब्धपर्याप्त चौइन्द्रियका उत्कृष्ट और लब्धपर्याप्त असंजि  
पंचेन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं । १९ । २० । उससे  
निर्वृत्यपर्याप्त चौइन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्यपर्याप्त असंजि पंचेन्द्रियका जघन्य उपपाद  
योगस्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ॥ २१ । २२ ॥ २३५ ॥ उससे असंजि लब्ध-

२५

३०

जघन्यस्थानमुं पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । २५ । २६ ॥ आ पूर्वमं नोडलु संयुपपादं  
लब्धपथ्याप्तिसंज्ञिपंचेन्द्रियजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । २७ । मवं  
नोडलु सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्धपथ्याप्तिजीवजघन्यमेकान्तानुवृद्धियोगस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु  
। २८ ॥ मवं नोडलु :—

५ सणिणसुववादवरं निवृत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स ।

एयंतवडिहअवरं लद्धिदरे थूलथूले य ॥२३७॥

संज्ञिन उपपादवरं निवृत्तिगतस्य सूक्ष्मजीवस्य । एकान्तानुवृद्धिजघन्यं लब्धोत्तरस्मिन्  
स्थूलस्थूले च ॥

१० संज्ञिनः उपपादवरं निवृत्तिगतस्य संज्ञिनिवृत्त्यपथ्याप्तिजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पत्या-  
संख्यातैकभागगुणितमक्कु । २९ ॥ अवं नोडलु सुहुमजीवस्स सूक्ष्मनिवृत्त्यपथ्याप्तिजीवन एकान्तानु-  
वृद्धिजघन्यं एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानं पत्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । ३० ॥ मवं नोडलु  
लब्धोत्तरस्मिन् लब्धपथ्याप्तनिवृत्त्यपथ्याप्तिजीवे स्थूलस्थूले च बादरदोळं बादरदोळं एने बुदत्थमे-  
दोडे बादरलब्धपथ्याप्तिजीवजघन्यैकान्तानुवृद्धियोगमुं निवृत्त्यपथ्याप्तबादरैकेन्द्रियजघन्यैकान्तानु-  
वृद्धियोगस्थानमुं पत्यासंख्यातैकभागवृद्धिक्रमंगळे बुदत्थं । ३१ । ३२ ॥

१५ तह सुहुम-सुहुम-जेडुं तो बादरबादरे वरं होदि ।

अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे ॥२३८॥

तथा सूक्ष्मसूक्ष्मज्येष्ठं ततो बादरबादरे वरं भवति । अंतरमवरं लब्धिगसूक्ष्मेतरमपि  
परिणामे ॥

२० असंज्ञिसंज्ञिनिवृत्त्यपथ्याप्तयोर्यथाक्रमं तदुत्कृष्टजघन्ये पत्यासंख्यातगुणे । २५ । २६ । ततः लब्धपथ्याप्तिसंज्ञिस्त-  
दुत्कृष्टं पत्यासंख्यातगुणं २७ । ततः सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्धपथ्याप्तस्य एकान्तानुवृद्धिजघन्यं पत्यासंख्यातगुणं । २८ ।  
ततः—

संज्ञिनिवृत्त्यपथ्याप्तस्वोपपादोत्कृष्टं पत्यासंख्यातगुणं २९ । ततः सूक्ष्मैकेन्द्रियनिवृत्त्यपथ्याप्तस्य एकान्तानु-  
वृद्धिजघन्यं पत्यासंख्यातगुणं ३० । ततः बादरैकेन्द्रियलब्धपथ्याप्तनिवृत्त्यपथ्याप्तयोरैकान्तानुवृद्धिजघन्ये पत्या-  
संख्यातगुणितक्रमे । ३१ । ३२ ॥२३७॥

२५ पर्याप्तकका उत्कृष्ट और संज्ञी लब्धपथ्याप्तका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पत्यके  
असंख्यातवें भाग गुणे हैं । २३।२४। उससे असंज्ञी निवृत्त्यपथ्याप्तका उत्कृष्ट और संज्ञी  
निवृत्त्यपथ्याप्तका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं । २५।२६।  
उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धपथ्याप्तका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें भाग  
गुणा है । २७। उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपथ्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पत्य-  
३० के असंख्यातवें भाग गुणा हैं । २८ ॥२३६॥

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निवृत्त्यपथ्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पत्यके असंख्यातवें  
भाग गुणा है । २९ । उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निवृत्त्यपथ्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग-  
स्थान पत्यके असंख्यातवें भाग गुणा है । ३० । उससे बादर एकेन्द्रिय लब्धपथ्याप्तक और  
बादर एकेन्द्रिय निवृत्त्यपथ्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पत्यके  
३५ असंख्यातवें भाग गुणे हैं । ३१।३२।२३७॥

तथा निर्वृत्यपर्याप्तबादरैकेन्द्रियजघन्यैकान्तानुवृद्धियोगसं नोडलु सूक्ष्मसूक्ष्मज्येष्ठम् सूक्ष्म-  
लब्धपर्याप्तजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं निर्वृत्यपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धि-  
योगस्थानमुं पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळपुबु । ३३ । ३४ ॥ ततः अदं नोडलुं बादरबादरे  
वरं भवति लब्धपर्याप्तबादरैकेन्द्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं निर्वृत्यपर्याप्तबादरै-  
केन्द्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळपुबु । ३५ । ३६ ॥ ५  
अनंतरं बळिक्रमंतरमेबुदकुमन्तरमेबुदेनेदोडे निर्वृत्यपर्याप्तबादरैकेन्द्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धि-  
योगस्थानद सूक्ष्मलब्धपर्याप्तजीवपरिणामयोगस्थानद अन्तराळदोळु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोग-  
स्थानंगळु निःस्वामिकंगळगंतरमेब व्यपदेशमक्कुमा प्रथमांतरमनतिक्रमिसि अवरं लब्धिसूक्ष्मेतर-  
वरमपि परिणामे लब्धपर्याप्तसूक्ष्मबादरंगळ परिणामे परिणामयोगदोळु जघन्यस्थानंगळुमा  
सूक्ष्मेतरलब्धपर्याप्तजीवंगळ परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळु मिन्नु नालकुं स्थानंगळु पत्यासंख्या- १०  
तैकभागगुणितक्रमंगळपुबु । ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥

अंतरमुवरीवि पुणो तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं ।

एयंत वडिठ्ठाणा तसपणलद्धिस्स अवरवरा ॥२३९॥

अंतरमुपर्याप्ति पुनस्तत्पूणानां चोपर्याप्तरितमेकान्तानुवृद्धिस्थानानि असंपंचलब्धेरवर-  
वराणि ॥

१५

तथा सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्धपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तयोः एकान्तानुवृद्धयुत्कृष्टे पत्यासंख्यातगुणक्रमे ३३ । ३४ ।  
ततः बादरैकेन्द्रियलब्धपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तयोरेकान्तानुवृद्धयुत्कृष्टे पत्यासंख्यातगुणितक्रमे ३५ । ३६ । ततः  
अंतरमिति बादरैकेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तैकान्तानुवृद्धयुत्कृष्टसूक्ष्मैकेन्द्रियलब्धपर्याप्तपरिणामयोगजघन्ययोरंतराले श्रेण्य-  
संख्यातैकभागमात्रयोगस्थानानि निःस्वामिकानि तानि चातीत्य सूक्ष्मबादरलब्धपर्याप्तयोः परिणामयोगस्य  
जघन्योत्कृष्टानि पत्यासंख्यातगुणक्रमाणि ॥ ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥ २३८ ॥

२०

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट  
एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ३३।३४। उससे बादर  
एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक और बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान  
क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ३५।३६। उसके पश्चात् अन्तर है। अर्थात् बादर  
एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध- २५  
पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानके मध्यमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान  
ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है। ये योगस्थान किसी जीवके नहीं पाये जाते। इससे  
यह अन्तर पड़ा है। इन स्थानोंको उलंघकर या छोड़कर सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय  
लब्धपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अनुक्रमसे पत्यके असंख्यातवें  
भाग गुणे हैं। यहाँ सूक्ष्मका जघन्य, बादरका जघन्य, सूक्ष्मका उत्कृष्ट, बादरका उत्कृष्ट ३०  
यह क्रम लेना। ३७।३८।३९।४०। ऐसे ही आगे भी जानना ॥२३८॥



अंतरं तद्बादरैकैन्द्रियलब्धपर्याप्तजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानद सूक्ष्मपर्याप्तजीवपरि-  
णामयोगजघन्यस्थानद द्वितीयांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानविकल्पंगळनतिक्रमिसि  
उपर्यपि पुनः मेल्युं मत्ते तत्पूर्वानां च आ सूक्ष्मैकैन्द्रियपर्याप्तजीवंगळ बादरैकैन्द्रियपर्याप्तजीवंगळ  
जघन्यपरिणामयोगस्थानंगळमा सूक्ष्मबादरपर्याप्तजीवंगळ परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळ भिन्नु  
५ नालकुं स्थानंगळ पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळपुवु । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ ॥ उपर्यंतरितं  
मेले तृतीयांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगळनंतरिसलपट्टुद्वेतपुवुद्वेत त्रसपंचलब्धेः द्वौन्द्रियत्रौन्द्रिय-  
चतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियासंज्ञि पंचेन्द्रियसंज्ञि लब्धपर्याप्तजीवंगळ एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानंगळमद्यु  
मवहतकृष्टस्थानंगळमद्युभिन्नु १० पत्तुं स्थानंगळ पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळपुवु । ४५ ।  
४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ ॥

१० लद्वीणिव्वत्तीणं परिणामेयंतवडिठ्ठाणाओ ।  
परिणामट्टाणाओ अंतरियंतरिय उवरुवरि ॥२४०॥

लब्धिनिवृत्तीनां परिणामैकान्तवृद्धिस्थानानि परिणामस्थानानि च अंतरित्वांतरित्वो-  
पर्युपरि ॥

मसमा संज्ञिपंचेन्द्रियलब्धपर्याप्तजीवैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टस्थानद द्वौन्द्रियलब्धपर्याप्त-  
१५ जीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद चतुर्त्यांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानविकल्पंगळनतिक्रमिसि  
लब्धपर्याप्त द्वौन्द्रियत्रौन्द्रियचतुरिन्द्रिय असंज्ञिपंचेन्द्रिय संज्ञिपंचेन्द्रियजीवंगळ जघन्यपरिणामयोग-

तत उपरि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानानि द्वितीयमंतरं । तदतीत्य पुनः तत्सूक्ष्मबादरैकैन्द्रिया-  
पर्याप्तयोः परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पत्यासंख्यातगुणक्रमाणि ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । उपरि तृतीयांतरं  
श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानान्यतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेन्द्रियलब्धपर्याप्तानामेकान्तानुवृद्धेर्जघन्योत्कृष्टानि दशपत्या-  
२० संख्यातगुणक्रमाणि ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ ॥२३९॥

( पुनः तत्संज्ञिलब्धपर्याप्तैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टद्वौन्द्रियलब्धपर्याप्तपरिणामयोगजघन्ययोरंतरगतं )

इसके बाद दूसरा अन्तर है अर्थात् बादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम  
योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई  
स्वामी नहीं है । अतः इनको छोड़कर सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य  
२५ और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान ये चार अनुक्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ४१।  
४२।४३।४४। उसके ऊपर तीसरा अन्तर है अर्थात् बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट परिणाम  
योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी  
नहीं है । उनको छोड़कर दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय  
लब्धपर्याप्तके जघन्य और उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पत्यके  
३० असंख्यातवें भाग गुणे हैं ४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४ ॥२३९॥

इसके पश्चात् चौथा अन्तर है । अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानु-  
वृद्धि योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थानोंका कोई स्वामी नहीं

१. कोष्ठकान्तर्गतपाठो नास्ति व प्रती ।

स्थानंगच्छिदु मवस्तुकृष्ट परिणामयोगस्थानंगच्छिदु मिन्तु पत्तुं स्थानंगच्छुं पत्त्यासंख्यातैकभाग-  
गुणितक्रमंगच्छपुवु । ५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४। मत्तमा लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिपंचे-  
द्रियजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानद निर्वृत्यपर्याप्तद्वीन्द्रियजीवैकान्तानुवृद्धियोगस्थानद पंचमांतर-  
गतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगच्छनतिक्रमसि निर्वृत्यपर्याप्तद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिय असंज्ञिपंचेन्द्रिय  
संज्ञिपंचेन्द्रियजीवंगच्छ एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानंगच्छिदुमवस्तुकृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानंगच्छुम-  
यिदुमिन्तु पत्तुं स्थानंगच्छुं प्रत्येक पत्त्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगच्छपुवु । ६५।६६।६७।६८।६९।७०।  
७१।७२।७३।७४॥ मत्तमा संज्ञिपंचेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तजीवैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टस्थानद  
पर्याप्तद्वीन्द्रियजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद षष्ठान्तरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगच्छनतिक्रमसि  
पर्याप्तद्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असंज्ञिपंचेन्द्रिय संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवंगच्छ परिणामयोगजघन्यस्थानंग-  
च्छिदुमवर परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगच्छिदु मिन्तु पत्तुं स्थानंगच्छुं प्रत्येक पत्त्यासंख्यातैकभाग-  
गुणितक्रमंगच्छपुवु । ७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४॥ यितु पदिना-  
त्कुं जीवसमासंगच्छ उपवादयोगमुनेकान्तानुवृद्धियोगमुं परिणामयोगमुभे ब त्रिविधयोगंगच्छ  
जघन्योत्कृष्टविषयंगच्छ चतुरङ्गीतियोगस्थानंगलगत्पबहुत्वं सूक्ष्मैकैन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तजीवोपपाद-  
योगजघन्यस्थानद अनंतरोक्तसूक्ष्मैकैन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तजीवोपपादजघन्यस्थानं मोदल्लोडु संज्ञिपंचे-

पुनः चतुर्धांतरं श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानान्यतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानां परिणामयोगस्य  
जघन्योत्कृष्टानि पत्त्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमाणि ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ ।  
पुनः ( तैल्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिपरिणामोत्कृष्टनिर्वृत्यपर्याप्तद्वीन्द्रियैकान्तानुवृद्धियोगजघन्ययोरंतरगत ) श्रेण्यसंख्यातैक-  
भागस्थानानि पंचमांतरमतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तानां एकान्तानुवृद्धेर्जघन्योत्कृष्टानि पत्त्या-  
संख्यातैकभागगुणक्रमाणि । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । पुनः ( तैसंज्ञि-  
निर्वृत्यपर्याप्तैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टपर्याप्तद्वीन्द्रियपरिणामयोगजघन्ययोरंतरगत ) श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानानि  
षष्ठान्तरमतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तानां परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पत्त्यासंख्यातगुणक्रमाणि । ७५ ।

है । उनको छोड़कर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय  
लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पत्यके असंख्यातवें  
भाग गुणे हैं ५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४ । इसके पश्चात् पाँचवाँ अन्तर है ।  
अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके  
असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । उनको छोड़कर दो-  
इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके जघन्य  
और उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ६५।  
६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४ । इसके पश्चात् छठा अन्तर है । अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय  
निर्वृत्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग  
प्रमाण योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । सो इनको छोड़कर दोइन्द्रिय,  
तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट

द्विपय्याप्रजीव परिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमगणैर्दु पेटुदनीयत्  
ग्रंथकारं मुदण माथासूत्रविदं पेठदपं ।

एतेमि ठाणाओ पत्यासंखेज्जभागगुणितदकया ।

हेट्ठिमगुणद्वानिदया अण्णोण्णमस्यमेत्तं तु ॥२४१॥

५ एतेषां स्थानानि पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमाणि । अधस्तनगुणहानिशलाकाः अन्योन्या-  
भ्यस्तमात्रं तु ॥

ई पेटल्पट्ट चतुरशीति अण्यबहुत्वयोगस्थानंगत् पत्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमेऽष्टपुत्रंता-  
गुत्तं विरलु सः श्रेतकृष्टयोगस्थानं जघन्ययोगस्थानमं नोडलु पत्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमण्डु ।  
आ जघन्योत्कृष्ट योगस्थानंगत् अधस्तनगुणहानिशलाकेगत् कियत्प्रमितंगत्पुर्वेदोडे पुत्तं पेटल्पट्ट  
१० असंख्यातरूपोनपत्यवर्गशलाकाप्रमितंगत्पु । व-० विवु । अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगत्बु-  
वपुदरिदमदेतेदोडे :— प्र व वि १६ । ४ । २ फ स्थान १ इ । व वि १६ । ४ । ० १ लब्ध

स्थानविकल्पंगत्  $\overline{a}2$  मत्तः—  
 $\overline{a}$

प्र व वि १६ । ४ । २ फ स्थान १ इ । व वि । १६ । ४-छ लब्धस्थानविकल्पंगत्  $\overline{a}$  छे  
 $\overline{a}$   $\overline{a}2$   $\overline{a}$  २ । २  
 $\overline{a}$

अन्तधणं गुणगुणियं  $\overline{a}2$  छे २ आदिबिहीणं  $\overline{a}2$  छे छळगुत्तर भजियमोदु तावन्भात्रमे-  
 $\overline{a}$   $\overline{a}$   $\overline{a}$   $\overline{a}$

१५ यक्कुमन्तागुत्तं विरलु रूपोनगुणेन हतं गुणितं  $\overline{a}2$  छे १ प्रभवेन भाजितं  $\overline{a}2$  छे  
 $\overline{a}$   $\overline{a}$   $\overline{a}$   $\overline{a}$

७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ ॥२४०॥ इममुक्तगुणकारं ग्रन्थकारः प्राह—

एतेषां चतुर्दशजीवसमासानामुपपादादियोगत्रयस्य जघन्योत्कृष्टचतुरशीतिस्थानानि पत्यासंख्यातगुणित-  
क्रमाण्यपि सर्वोत्कृष्टं जघन्यात् पत्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणमेव । तयोर्जघन्योत्कृष्टयोरंतरालस्या अधस्तनगुण-

परिणाम योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ७५।७६।७७।७८।७९।  
८०।८१।८२।८३।८४। इस तरह ये चौरासी स्थान जानना ॥२४०॥

२० आगे ग्रन्थकार स्वयं उक्त गुणकारको कहते हैं ।

चौदह जीव समासोंके उपपाद आदि तीन योगोंके जघन्य और उत्कृष्ट भेदसे ये चौरासी स्थान यद्यपि क्रमसे पत्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं । तथापि जघन्य योगस्थानसे

१. गुणकारशलाकेगलेंबुदर्थ ।

सैकं । छे । यतिकृत्वो गुणभक्तं रूपं यावतो वारान् । गुणेन भक्तं रूपं । व-३ । तति भवेद्गच्छः ।

a

एतदिति असंख्यातरूपोनपत्यवर्गशलाकामात्रमन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळ प्रमाणमक्कुमवर प्रमाणमधस्तनगुणहानिशलाकेगळपुर्वेबुदर्थं ॥

अनंतरमुपपादादियोगत्रयके जघन्योत्कृष्टदिदं निरंतरप्रवृत्तिकालप्रमाणं मुदण गाथासूत्र-  
दिद पेळदपरः—

५

अवरुक्कस्सेण हवे उववादेयंतवडिठ्ठाणां ।

एकसमयं हवे पुण इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ॥२४२॥

जघन्योत्कृष्टेन भवेदुपपादैकान्तवृद्धिस्थानानामेकसमयो भवेत्पुनरितरेषां यावदष्टौ समया-  
स्तावत्पर्यंतं ॥

उपपादयोगमेकान्तानुवृद्धियोगमेंबी एरडुं योगस्थानंगळगे जघन्योत्कृष्टदिदं येकसमयमे १०  
प्रवृत्तिकालप्रमाणमक्कु । मितरेषां इतरंगळप्प परिणामयोगस्थानंगळगे द्विसमयादियोगदष्टसमय-  
गळेप्पेवरमप्पेवरं निरंतरप्रवृत्तिकाल प्रमाणमक्कु । उक्तार्थोपयोगियोगस्तंभरचनेयिदुः—

अस्यां स्तंभरचनायां शून्यानि त्रिकोणानि च किमर्थमिति चेदुच्यते—एकं शून्यं सूक्ष्मजीव  
इति संज्ञार्थं । द्वे शून्ये द्वौद्रियजीव इति संज्ञानिमित्तं । त्रिचतुः पंचषट् शून्यानि त्रिचतुः संज्ञाऽसंज्ञि  
जीव प्रतिपादकानि लघुसंदृष्टिनिमित्तं शून्यानि कृतानि । अत्र रचनायां त्रिकोणाकारं किमर्थं १५  
इत्यारेकायां इदमुच्यते त्रिकोणाकारमत्र बादरजीवसंज्ञा निमित्तं । अत्र शून्यावस्थितगोत्राकारं  
ॐ शोभात्थमेव शून्यं सूक्ष्मजीव संज्ञा इति अव्यामोहेन इयं स्तंभरचना प्रतिपादनीया ।

हानिशलाकाः कति ? पूर्वोक्ता असंख्यातरूपोनपत्यवर्गशलाकामात्रः व-३ ता एव अन्योन्याभ्यस्तस्य गुणकार-  
शलाका नाम ॥२४१॥ अथोपपादादीनां जघन्योत्कृष्टेन निरंतरप्रवृत्तिकालप्रमाणमाह—

उपपादैकान्तानुवृद्धियोगद्वयस्थानानां प्रवृत्तिकालो जघन्येन उत्कृष्टेन च एकसमय एव स्यात् । इतरेषां २०  
परिणामयोगस्थानानां द्विसमयाद्यष्टसमयपर्यंतं स्यात् ॥२४२॥ उक्तार्थोपयोगिनी योगस्तंभरचनेयं—

सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पत्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा हैं । इन जघन्य और  
उत्कृष्ट योगस्थानके मध्यमें स्थित अधस्तन गुणहानिशलाका असंख्यात हीन पत्यकी वर्ग-  
शलाका प्रमाण हैं । वे ही अन्योन्याभ्यस्त राशिकी गुणकार शलाका हैं ॥२४१॥

आगे उपपाद आदिके जघन्य और उत्कृष्टसे निरन्तर प्रवर्तनका काल कहते हैं—

२५

उपपाद योगस्थान और एकान्तानुवृद्धि योगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल जघन्य और  
उत्कृष्टसे एक समय ही है । और परिणाम योगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल दो समयसे लेकर  
आठ समय पर्यन्त है ॥२४२॥

विशेषार्थ—उपपाद योगस्थान जन्मके प्रथम समयमें ही होता है और एकान्तानुवृद्धि  
योगस्थान प्रतिसमय वृद्धिरूप होनेसे अन्य-अन्य होता रहता है । अतः इन दोनोंके प्रवर्तने- ३०  
का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । एक परिणाम योगस्थान ही ऐसा है जो  
दो समयसे लेकर आठ समय तक रहता है ॥२४२॥

|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|----------------|--|--|--|--|--|--|--|--|--|-----------------------|--|--|--|--|--|--|--|--|--|
| लब्धपर्याप्तिक |  |  |  |  |  |  |  |  |  | निर्वृत्त्यपर्याप्तिक |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
|                |  |  |  |  |  |  |  |  |  |                       |  |  |  |  |  |  |  |  |  |

[illegible]



अदुसमयस्स थोवा उभयदिसासु वि असंखसंगुणिदा ।

चउसमयोत्ति तहेव य उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ॥२४३॥

अष्टसमयस्य स्तोकाः उभयदिशास्वपि असंख्यसंगुणिताः । चतुःसमयपर्यन्तं तथैव चोपरि त्रिद्विसमययोग्याः ॥

द्वौद्रियपर्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानमादियागि संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवपरिणाम-

योगोत्कृष्टस्थानपर्यन्तमाद सर्वनिरन्तर योगस्थानंगळोळु -१ छे पल्यासंख्यातभाजितबहुभाग-  
११ ०

स्थानंगळु २ छे प द्विसमयनिरन्तरपरिणामयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळुपुवु । शेषैकभागपल्या-  
१ ० ०  
प

संख्यातबहुभागस्थानविकल्पंगळु त्रिसमयनिरन्तरयोगप्रवृत्तिपरिणामस्थानविकल्पंगळुपुवु —

—२ छे प शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागाद्धस्थानविकल्पंगळु अधस्तन चतुःसमयनिरन्तरयोग-  
० २ ० ० ० ०  
० प प  
० ०

प्रतिपत्तिस्थानविकल्पंगळुपुवु । शेषाद्धस्थानविकल्पंगळुपरितनचतुःसमयनिरन्तरयोगप्रवृत्तिस्थान- १०

द्वौद्रियपर्याप्तपरिणामयोगस्थानादारम्य संज्ञिपर्याप्तपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं सर्वेषु निरन्तरयोग-

स्थानेषु— छे पल्यासंख्यातभाजितबहुभागः— छे प द्विसमयनिरन्तरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः, शेषैकभागस्य  
० २ ० ० २ ० ०  
० ० ० ० ० ०

पल्यासंख्यातबहुभागस्त्रिसमय— निरन्तरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः— छे प शेषैकभागस्य पल्या-  
० २ ० ० ० ० ०  
० प प  
० ०

दो-इन्द्रिय पर्याप्त जीवके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लगाकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त अन्तररूप योगस्थानोंको छोड़कर जो निरन्तर योगस्थान हैं उनकी जौ नामक अन्नके आकार रचना कालकी अपेक्षा करते हैं । जो योगस्थान निरन्तर आठ समय तक होते हैं उन्हें मध्यमें लिखें । जो योगस्थान निरन्तर सात समय तक होते हैं उनमें-से आधे तो आठ समयवालोंके ऊपर लिखें और आधे नीचे





|           |             |
|-----------|-------------|
| — छे १ प  | — १ छे प    |
| १ २ १ ० २ | १ २ १ ० २   |
| ११११११    | ० १         |
|           | प प प प प प |
|           | ० ० ० ० ० ० |

शेषैक भागमष्टसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिमध्यमयोग-

स्थानविकल्पंगळपु — छे १ प प प प प प वदुकारणमाणि अष्टसमयस्य स्थानविकल्पाः स्तोकाः  
१ २  
० १ ० ० ० ० ० ०

एदितु पेळल्पट्टुदु । उभयदिशास्वपि असंख्यातगुणिताः अधस्तनोपरितनोभयदिशेगळोळमसंख्यात-  
गुणित क्रमंगळपुविन्तु अधस्तनोपरितनोभयदिशेगळोळं चतुःसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पं-

|                   |     |                   |     |                                        |
|-------------------|-----|-------------------|-----|----------------------------------------|
| — २ छे            | प २ | — २ छे            | प २ | शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्धमधस्तनो- |
| ० २ ० प प प प प ० |     | ० ० ० प प प प प ० |     |                                        |
| ० ० ० ० ०         |     | ० ० ० ० ०         |     |                                        |

|                                           |                     |     |                     |     |
|-------------------------------------------|---------------------|-----|---------------------|-----|
| परितनसप्तसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः— | — २ छे              | प २ | — २ छे              | प २ |
|                                           | ० ० ० प प प प प प ० |     | ० ० ० प प प प प प ० |     |
|                                           | ० ० ० ० ० ०         |     | ० ० ० ० ० ०         |     |

शेषैकभागोष्टसमयनिरंतरप्रवृत्तिमध्यस्थानविकल्पाः — २ छे प प प प प प १  
० ० ० ० ० ० ० ०

अत एव अष्टसमयस्य स्तोका इत्युक्तं । उभयदिशासु च असंख्यातगुणिताः । तत्र चतुःसमयनिरंतरप्रवृत्ति-

और आधे ऊपर लिखें । जो योगस्थान निरन्तर तीन समय तक होते हैं वे सब चार समयवालोंके ऊपर ही लिखना । जो योगस्थान निरन्तर दो समय तक होते हैं वे सब तीन समयवालोंके ऊपर लिखें । १०

अब इन स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

दो इन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगसे लेकर संज्ञी पर्याप्तके उत्कृष्ट परिणाम योग पर्यन्त योगस्थान—जगतश्चेतिसे असंख्यातवें भागको एक घाटि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागसे गुणा करें और सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दें । जो प्रमाण हो १५ उसमें एक जोड़ें—इतने हैं । उनके इस प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें । एक भाग बिना बहुभाग तो निरन्तर दो समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें । एक भाग बिना बहुभाग तीन समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें । एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके चार समय निरन्तर होनेवाले २०

गच्छ पद्यंतमसंख्यातगुणितक्रमंगच्छपुवपरितनत्रिसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगच्छसंख्यात-  
गुणितंगच्छपुवत्रं नोडलुमुपरितनद्विसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगच्छसंख्यातगुणितंगच्छपु-  
वल्लि कालं विवक्षितमपुर्दारदं यवाकाररचनेयक्कुमदक्के संदृष्टियिदु :—

५ स्थानविकल्पपर्यंतमुभयदिशां अंशं संख्यातगुणितक्रमाः त्रिसमयनिरंतरप्रवृत्तियोग्या द्विसमयनिरंतरप्रवृत्तियोग्याश्च  
उपर्युपर्येव अंशं संख्यातगुणितक्रमा भवति । अत्र कालो विवक्षितोऽस्तीति यवाकाररचना । तत्संदृष्टिः—

योगस्थानोंका प्रमाण है । और आधा ऊपरके चार समय निरन्तर प्रवर्तनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें । एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके पाँच समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है और आधा बहुभाग ऊपरके पाँच समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें । एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके छह समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है और आधा ऊपरके छह समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें । एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके निरन्तर सात समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है और आधा ऊपरके निरन्तर सात समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । शेष जो एक भाग रहा उतने निरन्तर आठ समय तक होनेवाले योगस्थान होते हैं । इसीसे गायामें आठ समयवालोंका प्रमाण थोड़ा कहा है । और शेषका ऊपर और नीचे असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा कहा है । सो चार समयवालों पर्यन्त नीचे और ऊपर दोनों दिशामें स्थापित किये हैं । किन्तु तीन और दो समयवाले योगस्थान ऊपर की ओर ही स्थापित किये हैं । इस प्रकार यह कालकी अपेक्षा यवाकार रचना है । जैसे यव ( जी ) मध्यमें मोटा और ऊपर-नीचेकी ओर पतला होता है । उसी प्रकार मध्यमें आठ समयवाले लिखे और ऊपर नीचे एक-एक कम समयवाले लिखे । ऐसे यवाकार-रचना होती है ॥२४३॥

आगे पर्याप्त त्रस जीवोंके परिणाम योगस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण कहते हैं और उसकी यवाकार रचना रचते हैं—

[illegible]

|                 |   |   |
|-----------------|---|---|
| ३१              | २ | ३ |
| ० २ ५           |   | ० |
| ० ०             |   |   |
| ३१              | ३ | ३ |
| ० २ ५ ५         |   | ० |
| ० ० ०           |   |   |
| ३१              | ४ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५       |   | ० |
| ० ० ० ०         |   |   |
| ३१              | ५ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५     |   | ० |
| ० ० ० ० ०       |   |   |
| ३१              | ६ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५ ५   |   | ० |
| ० ० ० ० ० ०     |   |   |
| ३१              | ७ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५ ५ ५ |   | ० |
| ० ० ० ० ० ० ०   |   |   |
| ३१              | ८ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५ ५ ५ |   | ० |
| ० ० ० ० ० ० ०   |   |   |
| ३१              | ७ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५ ५ ५ |   | ० |
| ० ० ० ० ० ० ० ० |   |   |
| ३१              | ६ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५ ५ ५ |   | ० |
| ० ० ० ० ० ० ०   |   |   |
| ३१              | ५ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५ ५   |   | ० |
| ० ० ० ० ० ०     |   |   |
| ३१              | ४ | ३ |
| ० २ ५ ५ ५ ५     |   | ० |
| ० ० ० ० ०       |   |   |

मज्जे जीवा बहुमा उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता ।

हेट्ठमगुणहानिसलागादुवरि सलागा विसेसहिया ॥२४४॥

मध्ये जीवा बहुकाः उभयत्रविशेषहीनक्रमयुक्ताः । अधस्तनगुणहानिशलाकाया उपरि शलाका विशेषाधिकाः । जीवयवमध्यदोष्ठु जीवंगठु बहुकंगठपुवु । अधस्तनोपरितनोभयत्र विशेष-  
हीनक्रमयुक्तंगठु अधस्तनगुणहानिशलाकंगठं नोडलुमुपरितनगुणहानिशलाकंगठं विशेषाधिकंगठ- ५  
पुवदेते दोडे :—

द्ववतियं हेट्ठुवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोणं ।

जीवजवे चोदससयवावीसं होदि वत्तीसं ॥२४५॥

द्रव्यत्रयमधस्तनोपरितनदलवारा द्विगुणमुभयमःप्योन्यं । जीवयवे चतुर्दशशतद्वाविंशति-  
वर्भवति द्वात्रिंशत् ॥

१०

चत्तारि तिण्णि कमसो पण अड अट्ठं तदो य वत्तीसं ।

किंचूणतिगुणहानिविभजिद दव्वे दु जवमज्झं ॥२४६॥

चत्वारि त्रीणि क्रमशः पंचाष्टाष्टौ ततश्च द्वात्रिंशत् । किंचिद्वनत्रिगुणहानिविभाजिते  
द्रव्ये तु यवमध्यम् ॥

द्वीन्द्रियपर्याप्त जीवपरिणामयोगजधन्यस्थानमिदु  $\frac{a}{b}$   $\frac{p}{q}$  इदनपर्वत्तिसिदोडिदु  $\frac{a}{b}$  । १५

यिदर नंतरस्थानविकल्पमिदु २ इदु मोदलागि सवृद्धिस्थानंगठु संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तजीवपरिणाम-  
 $\frac{a}{b}$

$\frac{a}{b}$

जीवयवमध्ये जीवा बहुकाः अध उपरि च विशेषहीनक्रमयुक्ताः अधस्तनगुणहानिशलाकाम्यः उपरितन-  
गुणहानिशलाका विशेषाधिकाः ॥२४४॥ तद्यथा—

जीवोंकी संख्याकी अपेक्षा यवाकार रचनामें मध्यमें जीव बहुत हैं । ऊपर और नीचे अनुक्रमसे विशेष हीन-हीन हैं । नीचेकी गुणहानि शलाकासे ऊपरकी गुणहानि शलाकाका प्रमाण कुछ अधिक है ॥२४४॥

२०

विशेषार्थ—जैसे यव ( जौका दाना ) मध्यमें मोटा होता है और ऊपर-नीचे क्रमसे घटता-घटता होता है । उसी प्रकार पर्याप्त त्रस सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंमें यवाकारमें जो मध्यका स्थान है उसमें जीव बहुत हैं अर्थात् उन योगस्थानोंके धारी जीव बहुत हैं । उस बीचके स्थानसे ऊपरके और नीचेके स्थानोंमें जीवोंका प्रमाण क्रमसे घटता हुआ है । अर्थात् उन योगस्थानोंके धारक जीव क्रमसे घटते हुए हैं । इस तरह यह यवाकार रचना है ॥२४४॥

२५

जीवोंकी संख्याकी यवाकार रचनामें प्रथम अंकसंदृष्टिसे कथन करते हैं—

योग सर्वोत्कृष्टस्थानपठयितं निरंतरवृद्धिस्थानंगच्छ नडदु सर्वोत्कृष्ट परिणामयोगस्थानमिदु ७ छे

आदीयन्ते सुद्धे वेडिहहिदे रूवसंजुदे ठाणा घेंदु सव्वनिरंतरपरिणामयोगस्थानविकल्पगळित्तिपुंबु

व वि १६ । ४ । उ छे । उ ई योगस्थानंगळो स्वामिगळु द्वींद्रियादित्रसपर्याप्तजीवर शिद्रव्य-

o o

सर्व ० ५१

२ ज

3

व वि १६।४।०१

मं बुद्धकुं । स्थितियं बुद्धुं निरंतरपरिणामयोगस्थानविकल्पगळकुं । गुणहानियं बुद्धुं सामान्य-

५ छेदासंख्यातैकभागप्रमितनानागुणहानिभक्तस्थित्येकभागमक्कुं । पितु द्रव्यत्रयमु अद्यस्तनोपरितन-

दळवाराः अवस्तनोपरितननानागुणहानिशलाकैगळं दुगुण दोगुणहानिय उभयमन्यान्य अवस्तनो-

परितनान्योन्याभ्यस्तराजद्वयमुमा यवाकारजवसल्यारचनपात्रि मुनिमकसदाष्टायद मनबुगि-

सत्वेडि यथासह्यमाग द्रव्यप्रमाणं चतुर्दशशतद्विंशतिभवेति साविरेदं भानूरप्यंतरदुः काल्यः

सल्पदुदु । स्थितप्रमाणं त्रींशत् चत्वारि गुणहान्यायाम् नाल्कु रूपगुणकुम्भस्तनापारत्तनानां  
 विपरीतवर्णं कपयिष्यं श्रीणि पञ्च मरुत्पङ्कजमुदरं रूपाङ्गपद्म । दोगणद्वानिप्रमाणं अष्ट

मैत्रेयः कृपायुक्तः । अथस्ततोपरितृप्तान्योन्याभ्यस्तराशिगळः क्रमविदमैत्रेयः सर्वतरङ्गमप्यव । यितक-

.....

यवाकारजावसंस्थारचनायां तावदकसदृष्ट्या प्रतीत्युपादानाय द्वयं चतुरश्रशितद्वाविंशतिः १४२२,  
 निम्नः नर्गिस्त ३३, गुणानुसारायुक्तव्यारः ४ । अथस्वोपरितवनानागणनानिष्ठाकाः कुमेण तिष्ठः पञ्च ।

सो द्रव्य पर्यप्ति त्रसजीवोका प्रमाण चौदह सो बाइस १४२२ ह । और स्थिति अथात्

अर्थात् एक गणहानि स्थानोंका प्रमाण चार ४ है। ऐसी सब गणहानियाँ आठ ८ हैं। इनको

नाना गुणहानि कहते हैं। उनमें-से नाँचेकी गुणहानिका प्रमाण तीन ३ और ऊपरकी गुणहानि-

का प्रमाण पाँच ५, इस प्रकार आठ नाना गुणहानियाँ हैं ।

नाना गुणहानि प्रमाण दोके अक रख उह परस्परमे गुणा करनेपर अन्यान्याभ्यस्त-

अन्त्योन्त्याभ्युत्तराजिका प्रमाण बत्तीस इ३. इस प्रकार सब बालीस १०० । इत्युक्त प्रमाणमें ऊपर

कम तिगुनी गुणहानिका भाग देनेपर यथाकारके मध्यमें जीवोंकी संख्या होती है। सो

गणहानि आयामका प्रमाण चार ४ है। उसको तिगुना करनेपर बारह हुए। कुछ कम कहने-

से इसमें से एकके चाँसठ भागामें से सत्तावन भाग घटानेपर समच्छेद विधानके अनुसार

१. म. व. वि. १२. ६।४।२ द्विदे ।      २. म. व. प. ल. प. वि. द. क. प. १ ।

द्रव्यादिराशिगळ विन्यासमिदु :—

| द्रव्य | स्थिति | गुण | नाना | दो गुण- | अन्योन्या- |
|--------|--------|-----|------|---------|------------|
| १४२२   | ३२     | ४   | ८    | ८       | २५६        |
|        |        |     | ५    |         | ३२         |
|        |        |     | ३    |         | ८          |

यितु स्थाविसत्पट्ट राशिगळोळु तु मत्ते किंचिदूनत्रिगुणहानिविभाजिते द्रव्ये गुणहानियेंबुदु नाल्कु  
रूपगळपुववं त्रिगुणितं माडिदोडे द्वादशरूपगळपुववरोळु किंचिदूनं माडलपडुगुमा ऊनप्रमाण-  
मेनितेदोडे सप्तपंचाशच्चतुःषष्टिभागमक्कुमदं त्रिगुणहानियोळु चतुःषष्टिरूपगळिदं समच्छेदमं  
माडि ७६८ अयिवरेळं कळेदोडे शेषमिदु ७११ ई किंचिदूनत्रिगुणगुणहानियिदं द्रव्यं भागि- ५  
६४ ६४  
सत्पडुत्तिरलु लब्धं जीवयवमध्यमक्कु । १२८ । मद्दु कारणमागि मज्जे जीवा बहुगा एदितु पेळल्-  
पट्टुदु । उभयत्य विसेसहीणक्रमजुता येदी यवमध्यप्रथमयोगस्थानस्वामिगळप जीवंगळ संख्येयं  
नोडलु उपरितनानंतरयोगस्थानस्वामिगळ संख्ये मोदल्गोडु तद्गुणहानिचरमयोगस्थानस्वामिगळ  
संख्येयपदर्थ्यतं विशेषहीनक्रमगळपुवु । तद्यवमध्यानंतराधस्तनगुणहानि प्रथमयोगस्थानस्वामि-  
गळप जीवंगळसंख्ये मोदल्गोडु अधोधस्तनगुणहानिचरमयोगस्थानस्वामिजीवसंख्ये पदर्थ्यतं १०  
तदुपरितनगुणहानिविशेषप्रमि १६ त विशेषदिदमे :—

३ । ५ । दोगुणहानिः अष्टौ ८ । अधस्तनोपरितनान्योन्याभ्यस्तराशी क्रमेण अष्टौ द्वात्रिंशत् ८ । ३२ । तु-  
पुनः त्रिगुणगुणहान्या १२ सप्तपंचाशच्चतुःषष्टिभागैः किंचिदूनया ७११ द्रव्ये भक्ते १४२२ × ६४ जीवयवमध्यं  
६४ ७११

स्यात् । १२८ । तन्मध्ये जीवा बहुकाः इत्युक्तम् । उभयत्यविसेसहीणक्रमजुता । तेष्वयं यवमध्यजीवेष्वः  
तन्मध्येत् अधस्तनोपरितनगुणहानिनिषेकेषु जीवाः तत्तद्गुणहानिविशेषेण हीनक्रमयुक्ता भवन्ति । तत्तद्विशेष- १५  
प्रमाणं तु तत्तद्गुणहानेरादिनिषेके दोगुणहान्या भक्ते, चरमनिषेके वा रूपाधिकगुणहान्या भक्ते भवति । तेन

सात सौ ग्यारहका चौंसठवाँ भाग हुआ । इसका भाग सर्व द्रव्य चौदह सौ बाईसमें देनेपर  
एक सौ अठ्ठाईस आया । यही यवाकार रचनाके मध्यमें जीवोंका प्रमाण है इसीसे मध्यमें  
जीव बहुत कहे हैं । मध्यसे ऊपर और नीचेके गुणहानि निषेकोंमें अपनी-अपनी गुणहानिमें २०  
जितना विशेषका प्रमाण है उतना क्रमसे घटता जानना । सो अपनी-अपनी गुणहानिके  
प्रथम निषेकको दो गुणहानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो अथवा अन्तिम निषेकको एक  
अधिक गुणहानि आयामका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना विशेषका प्रमाण जानना ।  
अतः नीचेकी और ऊपरकी गुणहानिका द्रव्य तथा विशेष क्रमसे आधा-आधा होता है । वही  
कहते हैं—

ऊपरकी गुणहानि पाँच, उनमें पहली गुणहानिके पहले निषेकका प्रमाण एक सौ २५  
अठ्ठाईस है । उसको दो गुणहानि आठका भाग देनेपर सोलह आये । वही विशेष है ।  
सो एक-एक निषेकमें सोलह-सोलह घटाइए । अन्तके निषेकमें एक कम गुणहानि आयाम



|    |                        |                      |   |                                                  |                                |
|----|------------------------|----------------------|---|--------------------------------------------------|--------------------------------|
| १  | ५<br>६<br>७<br>८       | १२८।४।३<br>४।२।२।२।२ | ↑ | १६ ऋ                                             | धन                             |
| २  | १०<br>१२<br>१४<br>१६   | १२८।४।३<br>४।२।२।२   |   | ११२                                              | १२८।४।३                        |
| ४  | २०<br>२४<br>२८<br>३२   | १२८।४।३<br>४।२।२     |   | १६ ऋ<br>९६<br>१६ ऋ<br>८०<br>१६ ऋ<br>६४           | ४<br>ऋ ६४                      |
| ८  | ४०<br>४८<br>५६<br>६४   | १२८।४।३<br>४।२       |   | ऋ ८<br>५६<br>ऋ ८<br>४८<br>ऋ ८<br>४०<br>ऋ ८<br>३२ | धन<br>१२८।४।३<br>४।२<br>ऋ ३२   |
| १६ | ८०<br>९६<br>११२<br>१२८ | १२८।४।३<br>४         | ४ | ऋ ४<br>२८<br>ऋ ४<br>२४<br>ऋ ४<br>२०<br>ऋ ४<br>१६ | धन<br>१२८।४।३<br>४।२।२<br>ऋ १६ |
|    |                        |                      | ↓ |                                                  |                                |

विशेषहीनक्रमंगलपुबुभयत्रमा विशेषप्रमाणमेनितक्कुमेदोडे हानिविवक्षेइदं स्वस्वादिनिषेकंगळं-  
१२८। दोगुणहानियिदं भागिसिदोडे विशेषं बक्कुं। १२८ वृद्धिविवक्षेयिदं स्वस्वादिनिषेकंगळं  
४।२

८० रूपाधिकगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु ८० विशेषं बक्कुंमदु कारणमागि यवमध्यराशियं  
५

दोगुणहानियिदं भागिसिदोडे १२८ लब्धं विशेषप्रमाणमक्कु १६ मेकेदोडा विशेषमं दोगुणहानि-  
८

५ यिदं गुणिसिदोडादिवर्गगाप्रमाणमक्कुमपुदरिदमा विशेषदिदं हीनक्रमंगलपुवेबुदर्थमहिल  
बळिक्कमधस्तनोपरितनगुणहानि द्रव्यंगळर्द्धादिक्रमंगलपुदरिदमवर विशेषंगळुमर्द्धादिक्रमंगळेय-  
पुबु। अदे ते दोडे :—

व्येकपदं चयगुणितं भूमौ मुखे च ऋणधनं च कृते ।

मुखभूमियोगदले पदगुणिते पदधनं भवति ॥

१० अधस्तनोपरितनगुणहानीनां द्रव्याणि विशेषाच्च अर्धाधिक्रमेण भवन्ति । तद्यथा —

प्रमाण विशेष घटानेषर आदि निषेक एक सौ अठाईस, मध्य एक सौ बारह और छियानवे,  
तथा अन्त निषेक अस्सी हुआ १२८।११२।९६।८०। इन सबको जोड़िए। करणसूत्र है—‘मुंह-

येदो रूपोनपदमात्र १६। ४ विशेषंगळं। ४८। भूमियोळु १२८ कळेदोडे शेषमिदु ८०  
मुखमक्कुमो मुखमं भूमियुमं कूडिदोडे २०८ अष्टोत्तरद्विशतमक्कुमदं दळियिसिदोडे १०४ चतुस्तर-  
शतमक्कुमदं पदादिदं ४ गुणिसिदोडे १०४। ४। पदधनमक्कु ४१६। इदुपरितनप्रथमगुणहानि-  
द्रव्यमक्कुमिदं संदृष्टिनिमित्तं नात्कारिदं केळगेयुं मेगेयुं गुणिसि ४१६। ४ मूवत्तेरडरिदं  
भेदिसिदोडिदु ३२। १३। ४ इदं गुणिसिदोडिदु। १२८। १३ यिल्लि गुणकारभूतत्रयोदशरूप-  
४

गळं रूपाधिकत्रिगुणहानियं माडिरिसिदोडिदु १२८। ४। ३ उपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुं।  
तदनंतरोपरितनगुणहानिगळोळ्ढाद्विक्रमदिदं योगि चरमगुणहानियोळु रूपोनोपरितननानागुणहा-  
निप्रमाणद्विकंगळु भागहारंगळपुवु १२८। ४। ३ अधस्तनगुणहानिगळोळमो प्रकारदिदं  
४। २। २। २। २  
यवमध्यदो १२८। लोडु स्वविशेषमं कळेदोडे १२८-१६। शेषमधस्तनगुणहानिप्रथमयोगस्थान-  
स्वामिजीवंगळ प्रमाणमक्कु ११२ मिंदरोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळं १६। ४। १०

उपरि प्रथमगुणहानी मुख ८० भूमि १२८ योग २०८ दले १०४ पद ४ गुणिदे ४१६ इदं संदृष्टिनिमित्तं  
चतुर्भिरथ उपरि संगुण्य ४१६। ४ द्वात्रिंशता संभेध ३२। १३। ४ गुणयित्वा १२८। १३ गुणकारभूतत्रयो-  
४

दशमु रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिकृतेषु १२८। ४। ३ प्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात्। इदं उपरि प्रतिगुणहान्यर्धाधि-  
४

क्रमेण गच्छत् चरमगुणहानी रूपोनोपरितननानागुणहानिमात्रद्विकैर्भवंतं स्यात् १२८। ४। ३। अधस्तनगुण-  
४। २। २। २। २

हानावप्येवम्। यवमध्ये १२८ एकस्वविशेषेऽस्तीति १२८-१६। अधस्तनप्रथमगुणहान्यादिनिषेकः भूमिः ११२। १५

भूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि'। यहाँ मुख ८० और भूमि १२८ इनको जोड़ा दो सौ  
आठ हुए। उन्हें आधा करनेपर एक सौ चार हुए। उन्हें पद अर्थात् गच्छ आयाम चारसे  
गुणा करनेपर पदधन चार सौ सोलह हुआ। इस प्रकार ऊपरकी प्रथम गुणहानिका सर्वधन  
चार सौ सोलह जानना। यवमध्यके प्रमाणको एक अधिक तिगुने गुणहानि आयामसे गुणा  
करें और गुणहानि आयामसे भाग दें। उतना ही प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है। सो २०  
यवमध्यका प्रमाण एक सौ अठाईसको तिगुनी गुणहानि बारहमें एक जोड़कर तेरह हुए।  
उससे गुणा करके और आयाम चारका भाग देनेपर चार सौ सोलह हुए। वही प्रथम  
गुणहानिका द्रव्य है। आगे एक-एक गुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण और विशेषका प्रमाण आधा-  
आधा होता है। एक कम नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करने-  
पर जो प्रमाण हो, उसका भाग प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका २५

कळेदोडे मुखमखत्तनाल्कवकु ६४ । सो मुखभुमं भूमियुमं ११२ । कूडि १७६ । दत्रिसिदोडेण्व-  
सैटवकु । ८८ । मदं पददिदं गुणिसिदोडे । ८८ । ४ । इनितवकुमिदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यमवकुमदं  
संदृष्टिनिमित्तमागिकेळगेयं मेगेयं नाल्करिदं गुणिसि ८८ । ४ । ४ गुण्यभूताष्टाशीतियं गुणकारभूतै-

कश्चतुष्कदिदं गुणिसि पदिनाररिदं भेदिसिदोडिडु १६ । २२ । ४ ई राशिय गुणकारभूतद्वाविशतियं

५ द्विकदिदं भेदिसि गुणकारभूतचतुष्कमं द्विगुणिसिदष्टरूपुगळिदं गुण्यभूतपदिनारं गुणिसिदोडेकादश-  
गुणितयवमध्यचतुर्भागमवकु १२८ । ११ मिदरोळु ऋणमनित १२८ । २ निक्किवोडे

रूपाधिकत्रिगुणहानिगुणितयवमध्यचतुर्भागप्रमितमवकु १२८ । ४ । ३ मधोऽधः अर्द्धाद्धिक्रमंग-

अत्र रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषेषु १६ । ४ । अर्धनीतेषु चरमनिषेकः ६४ । मुखभूमियोग १७६ दले ८८ पद-  
गुणिते ८८ । ४ । अधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात् । इदं संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधश्चतुर्भिः संगुण्य ८८ । ४ । ४

१० अष्टाशीति गुणकारचतुष्केन संगुण्य षोडशभिर्भित्वा १६ । २२ । ४ द्वाविशति द्विकेन भित्वा तेन चतुष्कं  
संगुण्य अष्टभिः षोडशके गुणिते एकादशगुणितयवमध्यचतुर्भागः स्यात् १२८ । ११ अत्रैतावति ऋणे

१२८ । २ निक्षिप्ते रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिगुणितयवमध्यचतुर्भागः स्यात् १२८ । ४ । ३ । अधो-

प्रमाण आता है । सो ऊपरकी गुणहानि पाँचमें-से एक घटानेपर चार रहे । चार जगह दोके  
अंक रखकर  $२ \times २ \times २ \times २$  परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए । उसका भाग प्रथम गुण-  
१५ हानिके द्रव्य चार सौ सोलहमें देनेपर छब्बीस आये । यही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य  
जानना । तथा नीचेकी गुणहानि तीनमें-से पहली गुणहानिमें यवमध्यमें जो प्रमाण है उसमें-  
से एक विशेष घटानेपर प्रथम निषेक होता है । सो यवमध्य एक सौ अठाईसमें-से विशेषका  
प्रमाण-सोलह घटानेपर एक सौ बारह रहे । यही आदि निषेकका प्रमाण है । इसमें एक-एक  
निषेकमें एक-एक विशेष घटानेपर अन्तके निषेकमें-से एक कम गुणहानिका आयाम प्रमाण  
२० विशेष घटानेपर चौसठ रहते हैं । सो मुख ६४, भूमि ११२ को जोड़नेपर एक सौ छिहत्तर  
१७६ हुए । उसका आधा अठासी ८८ को पद चारसे गुणा करनेपर तीन सौ बावन ३५२ हुए ।  
यही नीचेकी प्रथम गुणहानिका सर्व द्रव्य जानना । यवमध्य एक सौ अठाईसमें ग्यारहसे गुणा  
करके चारसे भाग देनेपर भी तीन सौ बावन होता है । ऊपरकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें यव-  
मध्यको दूना करके चारसे भाग देनेपर जो आवे उतना ऋण जानना । सो यवमध्य एक सौ  
२५ अठाईसको दूना करके चारसे भाग देनेपर चौसठ आये । इसको ऊपरकी प्रथम गुणहानिके  
द्रव्यमें-से घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है । तथा ऊपरकी गुणहानिके

अधुनागुत्तं पोगि चरमाधस्तनगुणहानियोक्तु रूपोनाधस्तननानागुणहानिप्रमितद्विकंगळु भागहारं-

गळुपुत्रु १२८।४।३ ऋणमुं प्रथमाधस्तनगुणहानियोक्तु निक्षिप्तऋणमं नोडलु गुणहानि प्रति-  
४।२।२

यद्धाईगळपु १२८।२ १२८।२ १२८।२ बी ऋणंगळं संकलितिसिद्धोडे अन्तधणं  
४ ४।२ ४।२।२

गुणगुणियं १२८।२।२ आदिविहीणं नाल्करिदं ४ समच्छेदमं माडि कळेदोडे १२८।१।६।२  
४ १६

ई सर्वऋणप्रमाणं गुणहानिगुणितचरमाधस्तनगुणहानिविशेषादि हीनमप्ययवमध्यराशिप्रमाण- ५

मक्कुं । ११२। अन्तधणं १२८।४।३ गुणगुणियं १२८।१३।२ आदिविहीणं नाल्क-  
४ ४

रिदं समच्छेदमं माडि गुणित आदियं कळेद शेषमिदु। ७२८ अधस्तनगुणहानिगळ सर्वद्रव्य-  
सक्कु । सत्तं अन्तधणं १२८।१३ गुणगुणियं १२८।१३।२ आदिविहीणं । ई राशियं पदि-  
४ ४

धोऽर्थाधिक्रमेण चरमगुणहानौ रूपोनाधस्तननानागुणहानिमात्रद्विकैर्भक्तः स्यात् १२८।४।३ ऋणमपि प्रथम-  
४।२।२

गुणहानिनिक्षिप्तात् प्रतिगुणहान्यर्धार्धं स्यात् । १२८।२।१२८।२।१२८।२ संकलिते अन्तधणं गुण- १०  
४ ४।२ ४।२।२

निषेकोंमें-से नीचेकी गुणहानिके निषेकोंमें ऊपरकी गुणहानिके चय प्रमाण ऋण होता है। जैसे ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक एक सौ अठाईस है। उसमें-से चयका प्रमाण सोलह घटानेपर नीचेकी गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। तथा प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य आधा-आधा जानना। एक कम नीचेकी गुणहानि प्रमाण दुओंका भाग आदि गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तकी गुणहानिका द्रव्य होता है। तथा १५  
प्रथम गुणहानिमें जो ऋण कहा है वह भी आगे-आगेकी गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है जैसे ६४।३२।१६। सो 'अन्तधणं गुणगुणियं आदिविहीणं' इस सूत्रके अनुसार अन्तधन चौसठको गुणकार दोसे गुणा करनेपर और आदि सोलह घटानेपर सबसे नीचेकी गुणहानिमें ऋणका प्रमाण होता है। सो गुणहानि आयामके प्रमाणसे नीचेकी अन्तिम गुण-  
हानिमें जो विशेषका प्रमाण है उसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना यवमध्यके प्रमाणमें- २०  
से घटानेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। सो गुणहानि आयाम चारसे नीचेकी अन्तिम गुणहानिके विशेष चारको गुणा करनेपर सोलह हुए। सो यवमध्यमें-से घटानेपर एक सौ बारह रहे। सो सर्वऋण होता है। चौसठ, बत्तीस और सोलहको जोड़नेपर भी एक सौ बारह ही होता है। तथा नीचे की और ऊपरकी सर्वगुणहानियोंका सर्वद्रव्य 'अन्तधणं गुण-  
गुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार जोड़नेपर तथा उसमें-से उक्त ऋणको घटानेपर शुद्ध द्रव्य २५  
चौदह सौ बाईस १४२२ होता है।

नाररिदं समच्छेदमं माडि आदियनदरोळकळेद शेषनिवु । ८०६ । उपरितनगुणहानिगळ समस्त-  
धनमक्कुं । कूडिदुभयधनमिदु १५३४ यिदरोळगे अधस्तनगुणहानिगळोळ प्रविष्टकृणमनि-  
नितं ११२ कळेदोडे शुद्धद्रव्यप्रमाणमिदु । १४२२ । इन्तु "मज्जेमजीया बहुगा उभयस्थविसेस  
हीणकमजुत्ता । हेदिठमगुणहानिसत्तादुवरि सत्तागा विसेसहिप्पा ॥ एंदी गाथा सूत्रार्थं विगदं

५ गुणियं १२८ । २ । २ आदिविहीणमिति १२८ । १६-२ इदं सर्वकृणं गुणहानिगुणितचरमाधस्तनगुणहानि-  
विशेषेण हीनयवमध्यराशिसात्रं स्यात् --

|    |     |               |
|----|-----|---------------|
| १  | ५   | १२८ । ४ । ३   |
|    | ६   | ४ २ २ २ २     |
|    | ७   |               |
|    | ८   |               |
| २  | १०  | १२८ । ४ । ३   |
|    | १२  | ४ १ २ १ २ १ २ |
|    | १४  |               |
|    | १६  |               |
| ४  | २०  | १२८ । ४ । ३   |
|    | २४  | ४ १ २ १ २     |
|    | २८  |               |
|    | ३२  |               |
| ८  | ४०  | १२८ । ४ । ३   |
|    | ४८  | ४ १ २         |
|    | ५६  |               |
|    | ६४  |               |
| १६ | ८०  | १२८ । ४ । ३   |
|    | ९६  | ४             |
|    | ११२ |               |
|    | १२८ |               |

↓

|    |     |             |
|----|-----|-------------|
| १६ | १६  | धन —        |
|    | ११२ | १२८ । ४ । ३ |
|    | १६  | ४           |
|    | ९६  |             |
|    | १६  |             |
|    | ८०  | कृ ६४       |
|    | १६  |             |
|    | ६४  |             |
| ८  | ८   | धन —        |
|    | ५६  | १२८ । ४ । ३ |
|    | ८   | ४ । २       |
|    | ४८  |             |
|    | ८   |             |
|    | ४०  |             |
|    | ८   |             |
|    | ३२  | कृ ३२       |
| ४  | ४   | धन —        |
|    | २८  | १२८ । ४ । ३ |
|    | ४   | ४ । २ । २   |
|    | २४  |             |
|    | ४   |             |
|    | २०  |             |
|    | ४   |             |
|    | १६  | कृण १६      |

गुणहानिके निषेकोमें घटाये जानेवाले विशेषोंका प्रमाण, योगस्थानरूप निषेकोमें जीवोंका प्रमाण, गुणहानिमें सर्वद्रव्यका प्रमाण, नीचेकी और ऊपरकी गुणहानिमें घटाये जानेवाले कृणका प्रमाण ये सब दिखानेके लिए आगे यन्त्र लिखते हैं—

१० इस यन्त्रका आशय इस प्रकार जानना—

अस पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योगस्थान बत्तीस कहे । उनमें ऊपरकी गुणहानिके प्रथम निषेकरूप जो योगस्थान हैं उनके धारक जीव एक सौ अठाईस हैं । उसको यवमध्य कहते हैं । उस स्थानसे पहले और पिछले दो योगस्थानोंके धारी जीव एक सौ बारह, एक सौ बारह हैं । इसी प्रकार सब योगस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण जानना । जैसे

१५ अंकोंके द्वारा कथन दिखाया है वैसे ही यथार्थ कथन जानना ।

माडल्पदुदु । यिल्लियुपरितननानागुणहानिशलाकेगळु अधस्तननानागुणहानिशलाकेगळं नोडलु विशेषाधिकंगळेयपुवंबुदुं सिद्धमादुवैतेदोडधस्तनगुणहानिशलाकेगळु ३ । इव नोडलु उपरितनना-  
नागुणहानिशलाकेगळयिदु ५ अयिदु । अदु कारणमागि द्विगुणंगळल्लवेरडु लुपुगळिदमधिकंगळपु-  
दरिवं विशेषाधिकंगळेयपुवंबुदुत्थं ॥

एतानि अधस्तनोपरितनगुणहानिद्रव्याणि पूयगंतधनमित्यादिना संकलय्य मेलयित्वा तत्र तदृणेष्वनीते  
शुद्धद्रव्यं तावन्मात्रमेव स्यात् १४२२ । तदानीयते—

[अंतर्घणं गुणगुणियं १२८ । १३ । २ चतुभिः समच्छेद्य संगुण्यादिविहीणं ७२८ अधस्तनगुणहानिसर्व-

द्रव्यं स्यात् । पुनः अंतर्घणं १२८ । १३ गुण २ गुणियं १२८ । १३ । २ षोडशभिः समच्छेद्यादिविहीणं ८०६

उपरितनगुणहानिसमस्तधनं स्यात् । मिलित्वा उभयधनमिदं १५ । ३४ । अत्राधस्तनगुणहानिप्रविष्टऋणे ११२ १०  
अपनीते शुद्धद्रव्यं स्यात् । १४२२ ] ॥ २४५-२४६ ॥

| नाम                         | विशेष<br>का<br>प्रमाण | निषेकोमें जीवों<br>का प्रमाण | गुणहानिमें<br>सर्वद्रव्यका<br>प्रमाण | नीचेकी<br>प्रथम<br>गुणहानि | ऊपरकी प्रथम<br>गुणहानिके निषेकोमें-<br>से ऋण १६<br>११२<br>९६<br>८०<br>६४ | ऊपरकी प्रथम<br>गुणहानिके<br>सर्वद्रव्यमें<br>ऋण ६४ शेष<br>रहे<br>३५२      |
|-----------------------------|-----------------------|------------------------------|--------------------------------------|----------------------------|--------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------|
| ऊपरकी<br>पाँचवीं<br>गुणहानि | १                     | ५<br>६<br>७<br>८             | २६                                   |                            |                                                                          |                                                                           |
| ऊपरकी<br>चौथी<br>गुणहानि    | २                     | १०<br>१२<br>१४<br>१६         | ५२                                   | नीचेकी<br>दूसरी<br>गुणहानि | ऊपरकी दूसरी<br>गुणहानिके निषेकोमें<br>ऋण ८<br>५६<br>४८<br>४०<br>३२       | ऊपरकी द्वितीय<br>गुणहानिके<br>सर्वद्रव्यमें-से<br>ऋण ३२<br>शेष रहे<br>१७६ |
| ऊपरकी<br>तीसरी<br>गुणहानि   | ४                     | २०<br>२४<br>२८<br>३२         | १०४                                  |                            |                                                                          |                                                                           |
| ऊपरकी<br>दूसरी<br>गुणहानि   | ८                     | ४०<br>४८<br>५६<br>६४         | २०८                                  | नीचेकी<br>तीसरी<br>गुणहानि | ऊपरकी तीसरी<br>गुणहानिके निषेकोमें-<br>से ऋण ४<br>२८<br>२४<br>२०<br>१६   | ऊपरकी तीसरी<br>गुणहानिके<br>सर्वद्रव्यमें<br>ऋण १६<br>शेष रहे<br>८८       |
| ऊपरकी<br>प्रथम<br>गुणहानि   | १६                    | ८०<br>९६<br>११२<br>१२८       | ४१६                                  |                            |                                                                          |                                                                           |

१. कोष्ठक्रान्तर्गतो पाठः न प्रती नास्ति ।



स्थानंगत्रिल्लिगे स्थिति येंबुदक्कुमेकंदोडे जवन्प्रस्थानं मोदल्लोडुत्कृष्टस्थानपर्यन्तमागिर्ह  
परिणामयोगसमस्तस्थानविकल्पगळोळैकैकस्थानं प्रति स्वामित्वादिदं द्वौद्रियादिपर्याप्तत्रसराशि  
पसलपडुगुमपुर्दारिदं छेदासंख्यस्य पत्यच्छेदासंख्यातैकभागद । छे । असंख्यबहुभागे यथायोग्य-

मप्य असंख्यातदिदं खंडिसिद बहुभागेयोळु छे  $\frac{0}{a}$  दळं अर्धंमुं छे  $\frac{0}{a}$  मत्तमिगिभागं च दळं  
 $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$  २

येक भागमुं छे १ बहुभागादर्थमुं छे  $\frac{0}{a}$  एकभागयुतबहुभागादर्थमेबुदर्थं छे  $\frac{0}{a}$  मित्तु  
 $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$  २  $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$  २  
यथाक्रमदिदं द्रव्यद्वयं द्रव्यमुं स्थितियुमेव द्वितयमुं उभयदळवाराः अधस्तनोपरितनदळवारंगळेंबुवु  
नानागुणहानिशलाकेगळगे पसरक्कुमी सूत्रदिदमित्तु नाल्कुं राशिगळपेळत्पदुवु ॥

रूवसंजुदे — इत्यानीतविकल्पाणि योगस्थानानि स्थितिः, पर्याप्तत्रसराशेः तेषु स्वामित्वेन भक्त्वा दीयमान-  
 $\frac{0}{a}$  २ ३१  
 $\frac{0}{a}$

त्वात् । पत्यच्छेदासंख्यातैकभागस्य छे असंख्यातेन उपर्यधोगुणितस्य छे  $\frac{0}{a}$  एकभागं पृथक्संख्याप्य छे १ शेष-  
 $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$

बहुभागान् छे  $\frac{0}{a}$  द्वाभ्यां भक्त्वा तत्रैकार्धं छे  $\frac{0}{a}$  अधस्तननानागुणहानिशलाका भवन्ति । पृथक्स्थापितैक-  
 $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$  २  $\frac{0}{a}$  २

भागयुतमपराधं छे  $\frac{0}{a}$  उपरितननानागुणहानिशलाका भवन्ति ॥ २४७ ॥  
 $\frac{0}{a}$   $\frac{0}{a}$  २

ऊपर जो चौरासी स्थान कहे हैं उनमें-से दोइन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योग-  
स्थानका प्रमाण जगत श्रेणिके असंख्यातवें भागको पिचहत्तर बार पत्यके असंख्यातवें भागसे  
गुणा करो । अपवर्तन करनेपर जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग ही हुआ । उसमें सूच्यंगुलका  
असंख्यातवाँ भाग मिलानेपर उसके अनन्तरवर्ती स्थान होता है । उसको आदि देकर संज्ञी  
पर्याप्तका उत्कृष्ट योगस्थान संदृष्टि अपेक्षा जघन्यसे बत्तीस गुणा और यथार्थकी अपेक्षा  
पत्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा है । वहाँ तक स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

दोइन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगस्थानसे जो अनन्तर स्थान है वह तो आदि  
हुआ, और संज्ञी पर्याप्तका उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अन्त हुआ । ‘आदी अंते सुद्वे  
वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा’ इस सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाइए । एक-एक  
स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि होती है, अतः  
उससे भाग दें । जो प्रमाण हो उसमें एक मिलाइए तब त्रस पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योग-  
स्थानोंका प्रमाण होता है । वही स्थितिका प्रमाण जानना ।

इन स्थानोंके धारक जीव कितने हैं यह बतलानेके लिए कहते हैं—

जैसे आठ नाना गुणहानियोंमें-से तीन नीचे को कही थीं, पाँच ऊपरकी कही थीं, उसी  
प्रकार पत्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण समस्त नाना गुणहानि है । उसमें

५

१०

१५

२०

२५



णाणागुणहानिशला छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ ।

गुणहानीजद्वाणं सव्वस्थ वि होदि सरिसं तु ॥२४८॥

नानागुणहानिशलाकाः छेदासंख्यातैकभागमात्राः । गुणहानीनामध्वानं सर्वत्रापि भवति सदृशं तु ॥

५ अधस्तनोपरितनोक्त नानागुणहानिशलाकेगळुं कूडि छेदासंख्यातैकभागमात्रंगळपुवो नाना-  
गुणहानिशलाकेगळिदं स्थितियं त्रैराशिकविज्ञानदिदं भागिसुत्तं विरलु प्र छे प <sup>०</sup> ३१ इ १ बं  
० २  
०

लब्धं गुणहान्यायाममक्कु <sup>०</sup> ३१ मीयायाममुभयत्राधस्तनोपरितनानागणहानिगळोळु सदृशं  
२ छे  
० ०

समानं तु नियमदिदं ॥

अण्णोण्णगुणिदरासी पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु ।

१० हेट्ठमरासीदो पुण उवरिल्लमसंखसंगुणिदं ॥२४९॥

अन्योन्यगुणितराशिः पत्यासंख्येयभागमात्रस्तु । अधस्तनराशितः पुनरुपरितनोऽसंख्य-  
गुणितः ॥

ता उभयनानागुणहानिशलाका मिलिताश्छेदासंख्यातैकभागमात्राः । ताभिः स्थितौ भक्तायां  
प्र छे फ <sup>०</sup> इ १ लब्धगुणहान्यायामः स्यात् - २ छे ३१ स च अधस्तनोपरितनानागुणहानिषु सदृशः  
० ० २ ३१ ० ० ०  
०

१५ समानः तु-नियमेन ॥२४८॥

असंख्यातसे भाग दें । एक भागको पृथक् रखकर शेष बहुभागके आधा प्रमाण तो नीचेकी नाना गुणहानि जानना । तथा बहुभागका आधा और अलग रखा एक भाग मिलेकर ऊपरकी नाना गुणहानि जानना ॥२४७॥

यही आगे कहते हैं—

२० नीचे और ऊपरकी नाना गुणहानियाँ मिलानेपर पत्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग हैं । उससे स्थितिमें भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना एक गुणहानि आयामका प्रमाण जानना । जैसे पूर्वमें स्थिति बत्तीस कही थी । उसको सर्वे नाना गुणहानि आठसे भाग देनेपर चार आये । सो चार एक गुणहानि आयामका प्रमाण है । वैसे ही यहाँ भी जानना । गुणहानि आयामका प्रमाण ऊपरकी गुणहानि और नीचेकी गुणहानिमें समान है । एक-एक गुणहानिमें इतने स्थान होते हैं । इस गुणहानि आयामका दूना प्रमाण दोगुणहानिका प्रमाण है ॥२४८॥

२५

अन्योन्याभ्यस्तराशिः पल्यासंख्यातैकभागमात्रं सामान्यदिदमक्कुं ।  
 प १ तु पुनः मत्ते विशेषदिद अधस्तनराशितः अधस्तनान्योन्याभ्यस्तराशियं नोडलु उपरितनः  
 उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यसंशुणितः असंख्यातसंशुणितमक्कुं । अधस्तनान्योन्याभ्यस्त-  
 राशि प उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशि प इत्युक्तनवराशिगणने संदृष्टिः—  
 a a a a a

|         |        |         |                    |                        |
|---------|--------|---------|--------------------|------------------------|
| द्रव्य  | स्थिति | गुणहानि | सामान्यनानागुणहानि | सामान्यान्योन्याभ्यस्त |
| ४       | ३१     | ३१      | ३१                 | ३१                     |
| ५       | २      | २       | २                  | २                      |
|         | ०      | ०       | ०                  | ०                      |
| उपरि    |        | उपरि    |                    | अन्योन्याभ्यस्त        |
| ०       |        | ०       |                    | ०                      |
| ० ० २   |        | ० ०     |                    | ० ०                    |
| अधस्त   |        | अधस्त   |                    | नान्योन्याभ्यस्त       |
| ०       |        | ०       |                    | ०                      |
| ० ० १ २ |        | ० ०     |                    | ० ० ०                  |

अंततरं जघन्यपरिणामयोगस्थानस्थितिमोदलो दुत्कृष्टपरिणामयोगस्थानस्थितिपर्यंतं प्रति  
 स्थिति पर्याप्तसराशिविभाजिसत्पडुगुमते दोडे किचूगतिगुणहानिविभजिदे दव्वे दु जवमज्जं  
 एंदु किचिदूनत्रिगुणहानियिदं द्रव्यं भागिसत्पडुत्तिरलु लब्धं यवमध्यमक्कु ४। गु ३ मो राशियं  
 ५

दो गुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु लब्धं प्रचयप्रमाणमक्कु ४ गु ३ गु २ मो प्रचयमं मत्ते दो-  
 ५

अन्योन्याभ्यस्तराशिः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः सामान्येन भवेत् प तु-पुनः विशेषेण अधस्तनान्योन्या-  
 भ्यस्तराशितः प उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशिरसंख्यातगुणितः स्यात् प । अथ जघन्यपरिणामयोग-  
 स्थानमादि कृत्वा उत्कृष्टपरिणामयोगस्थानपर्यन्तेषु स्थितिविकल्पेषु पर्याप्तसराशिविभज्यते तद्यथा—  
 a a a a a

नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त  
 राशि होती है । जैसे नीचेकी आठ और ऊपरकी बत्तीस अन्योन्याभ्यस्त राशि कही थी वैसे ही  
 सामान्यसे पल्यके असंख्यातवै भाग अन्योन्याभ्यस्तराशि है । तथापि नीचेकी अन्योन्याभ्यस्त  
 राशिसे ऊपरकी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यात गुणी है । अब जघन्य परिणाम योगसे  
 लेकर उत्कृष्ट परिणाम योग पर्यन्त योगस्थानोंमें जीवोंका विभाग अंक संदृष्टिकी तरह इस  
 प्रकार जानना—  
 १५

गुणहानियिदं गुणिसुतं विरलु लब्धं यवमध्यप्रमाणमेयक्कुं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मेले द्वितीयपुंजं मोदलोडु तत्प्रथमगुणहानिचरमपर्यन्त मेकैकविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानि-

मात्रचयंगळु हीनमक्कुं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मा चरमदोळोडु विशेषमं कळेदोडे उपरितनाद्वितीय

गुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणमक्कुं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मिल्लि संदृष्टिनिमित्तमागि मेगेयुं कळेगेयुं

५ द्विगुणिसिदोडे जीवयवमध्यप्रमाणदद्वं प्रमितमक्कुं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ २ मेले मुन्नितंते तद्वितीय- गुणहानिचरमपर्यन्तं स्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्रचयंगळु हीनमक्कुं ।

$\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ २ मत्तमा चरमदोळु पूर्वविशेषमनेयोदं कळेदोडे उपरितनतृतीयगुणहानि

प्रथमजीवराशिप्रमाणमक्कुं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु १ २ मिल्लियुं मुन्नितंते संदृष्टिनिमित्तमागि कळेगेयुं

किंचिन् न्यूनत्रिगुणगुणहान्या द्रव्ये भक्ते यवमध्यं स्यात् == तच्च दोगुणहान्या भक्तं प्रचयः  
 $\frac{४}{५}$  गु ३-

१० स्यात् == स एव पुनः दोगुणहान्या गुणितः यवमध्यं स्यात् == गु २  
 $\frac{४}{५}$  गु ३- गु २  $\frac{४}{५}$  गु ३- गु २

उपरि द्वितीयपुंजमादि कृत्वा तत्प्रथमगुणहानिचरमपर्यन्तं एकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानि-

मात्रचया होमाः स्युः = गु तस्मिन् पुनः एकविशेषेऽपनीते उपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमजीव-  
 $\frac{४}{५}$  गु ३- गु २

राशिप्रमाणं स्यात् = गु । इदं संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधोद्विकेन गुणिते जीवयवमध्याधं  
 $\frac{४}{५}$  गु ३- गु २

१५ किंचित् न्यून त्रिगुनी गुणहानि आयामका भाग सर्वद्रव्यको देनेपर यवमध्यका प्रमाण होता है । उसको दो गुणहानिसे भाग देनेपर चयका प्रमाण होता है । चय और विशेषका एक ही अर्थ है । इस चयको दोगुणहानिसे गुणा करनेपर यवमध्यका प्रमाण होता है । ऊपरकी गुणहानिमें प्रथम निषेक तो जितना यवमध्यका प्रमाण है उतना है । उससे

मेलेषु द्विगुणिसिद्धौ द्वितीयगुणहानिप्रथमद्रव्यं नोडली तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यमद्धंमवकु  
 = गु २  
 ४ गु ३ गु २। २। २ मित्तु मेले चयहीनमागुत्तं पोगि चरमदोळ् रूपोनगुणहानिमात्र-

स्वविशेषगळुहीनमवकु = गु  
 ४ गु ३ गु २। २। २ मिल्लियोडु विशेषं कळेदोडे चतुर्थ-

गुणहानिप्रथमद्रव्यमवकु-। = गु  
 ४ गु ३ गु २। २। २ मिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं मेगेयुं

द्विगुणिसिद्धौ तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यं नोडली चतुर्थगुणहानिप्रथमराशिद्रव्यमद्धंमवकु-।  
 = गु  
 ४ गु ३ गु २। २। २। २ मिल्लिदं मेले चयहीनमागुत्तं पोगि चरमदोळ् रूपोनगुणहानिमात्र-

स्यात् = गु २ उपरि द्वितीयगुणहानिचरमपर्यंतं स्वविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानि-  
 ४ गु ३-गु २ २

मात्रचयहीनाः स्युः = गु तस्मिन् पुनः एकविशेषेऽपनोते उपरितनतृतीयगुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणं  
 ४ गु ३-गु २ ३

स्यात् = गु तच्च उपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं स्फुटं द्वितीयगुणहानिमात्रप्रथमद्रव्यार्थं दृश्यते  
 ४ गु ३-गु २ २

= गु २ उपरि चयहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीनाः स्युः- १०  
 ४ गु ३-गु २ २ २

= गु अत्रैकविशेषेऽपनोते चतुर्थगुणहानिप्रथमद्रव्यं स्यात् = गु तच्च उपर्यधो-  
 ४ गु ३-गु २ २ २ २

ऊपर द्वितीयादि निषेक एक एक चय हीन जानना । सो एक कम गुणहानिके आयाम प्रमाण चय यवमध्यमें-से घटानेपर प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है । उसमें एक चय घटानेपर यवमध्यसे आधा प्रमाण होता है वही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक होता है । इससे ऊपर एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं । सो एक कम गुणहानि आयाम प्रमाण चयोंके घटानेपर अन्तिम निषेक होता है । यहाँ प्रथम गुणहानिमें जो चयका प्रमाण था उससे आधा दूसरी गुणहानिमें चयका प्रमाण जानना । तथा दूसरी गुणहानिके अन्तिममें-से एक चय घटानेपर दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकसे आधा प्रमाण होता है । १५

स्वविशेषगळं हीनमक्कु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २।२।२।२ मित्तु पंचमदिगुणहानिगळोळं तत्तद्गुण-

हानि प्रथमजीवद्रव्यगळार्द्धाद्धक्रमदिदं पोगियुपरितनगुणहानिगळ चरमगुणहानियोळ चरमजीवद्रव्य-  
दोळ उपरितनरूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळ हारंगळपुववनन्योन्याभ्यासं माडिदोडे लब्धमुपरि-

तनान्योन्याभ्यस्तराशियद्धं हारमक्कुमागि रूपाधिकगुणहानिगुणकारमक्कुं- $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ प  
००० २

५ मत्तमधस्तनगुणहानिगळोळु यवमध्याधस्तनानंतरप्रथमगुणहानिप्रथमजीवद्रव्यं मोदल्गोळु गुण-  
हानिगुणहानि प्रति समस्तस्थितिद्रव्यदोळु चरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यपर्यन्तमेकैकस्वस्वगुण-  
हानिप्रचयंगळं ऋणमनिक्किदोडे अधस्तननानागुणहानिशलाकाप्रमितोपरितननानागुणहानिगळ  
स्थितिद्रव्यंगळोळु समानमक्कुमन्तु ऋणमिक्कल्पडुत्तिरलु अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमु-

द्विक्रेन गुणितं तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्याधं स्फुटं स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ २ २ उपरि चयहीनं सत् चरमे रूपोन-

१० गुणहानिमात्रस्वविशेषहीनं स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ २ २ एवं पंचमादिगुणहानिषु तत्तद्गुणहानिप्रथमजीवद्रव्याणि

अर्धधिक्रमेण गत्वा चरमगुणहानौ चरमजीवद्रव्ये रूपोनोपरितननानागुणहानिमात्रद्विकानि हारा भवंति

तेषामभ्यासे उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशियद्धं स्यात् । गुणकारो रूपाधिकगुणहानिः स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ प  
०० २

१५ पुनरधस्तनगुणहानिषु यवमध्याधस्तनानंतरप्रथमगुणहानिप्रथमजीवद्रव्यमादि कृत्वा गुणहानि गुणहानि प्रति  
समस्तस्थितिद्रव्येषु चरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यपर्यन्तेषु एकैकस्वस्वगुणहानिप्रचयप्रमितऋणे निक्षिप्ते अधस्तन-  
नानागुणहानिशलाकाप्रमितोपरितननानागुणहानिस्थितिद्रव्येण समानं स्यात् तेन अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथम-

वही तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक जानना । यहाँ चयका प्रमाण दूसरी गुणहानिके चयसे  
आधा जानना । उतना चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं । इस तरह अन्तकी गुणहानि  
पर्यन्त जानना । प्रत्येक गुणहानिमें जीवोंका प्रमाण आधा-आधा होता जाता है । नीचेकी  
गुणहानिमें यवमध्यसे नीचे प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे लगाकर अन्तकी गुणहानिके  
अन्तिम निषेक पर्यन्त प्रत्येक गुणहानिके समस्त निषेकोंमें जो-जो ऊपरकी गुणहानिके  
निषेकोंमें प्रमाण कहा है उनमें-से अपनी-अपनी गुणहानिमें जितना-जितना चयका प्रमाण  
कहा है उतना-उतना निषेकमें घटानेपर निषेकोंका प्रमाण होता है । वही कहते हैं—

१६ परितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यसमानमवकु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मिल्लिदं केळगेकैक-  
११२

विशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळु हीनमवकु

$\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मिल्लियोदु विशेषमं होन माडिदोडेयधस्तनद्वितीयगुणहानियोळु प्रथम-

स्थितिद्रव्यमुपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यसमानमवकु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मिल्लि संदृष्टि-

निमित्तं पूर्वदंतं केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसुत्तं विरलु जीवयमध्यप्रमाणदर्दमवकु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ ५

मल्लिदं केळगे केळगे स्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्व-

विशेषंगळु हीनमवकु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २। २ मल्लियोदु विशेषमं हीनमं माडिदोडे तृतीयाधस्तन-

गुणहानि प्रथमस्थितिद्रव्यमवकु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २। २ मिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं

स्थितिद्रव्यं उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं च समानं =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ इतोऽधः एकैकविशेषहीनक्रमेण

गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयन्ते =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ पुनरेकविशेषेऽपनीते अथस्तनद्वितीय- १०

गुणहानौ प्रथमस्थितिद्रव्यमुपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं समानं स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ इदं संदृष्टि-

निमित्तं उपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं जीवयवमध्यप्रमाणार्धं स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ इतोऽधः विशेषहीनक्रमेण गत्वा

चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयन्ते =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ अत्रैकविशेषहीने तृतीयाधस्तनगुण-

ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक यवमध्य प्रमाण है। उसमें-से प्रथम गुणहानिमें जितना विशेष ( चय ) का प्रमाण कहा है, उतना घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। तथा ऊपरकी प्रथम गुणहानिके दूसरे निषेकका जो प्रमाण कहा १५

मेलेयुं द्विगुणिसिद्धोऽप्युपरितन द्वितीयगुणहानि प्रथमस्थितिद्रव्याद्धंसमानमागियधस्तनद्वितीय-  
गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धमात्रमो तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु ।  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २।२।२  
यिदरन्तर स्थितिद्रव्यं मोदल्गो डेकैकस्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोन-  
गुणहानिप्रमितस्वविशेषंगळु हीनमक्कु ।  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २।२।२ मिल्लियोडु विशेषमं हीनमं

५ माडिदोडे चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २।२।२ मिल्लियुं संदृष्टि-  
निमित्तमागि केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसिद्धोऽप्युपरितन तृतीय-  
गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्याद्धंसमानमुमागि तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्याद्धंसमो चतुर्थाध-  
स्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २।२।२।२ मिल्लिवं केळगे द्वितीयस्थिति  
द्रव्यं मोदल्गो डेकैकस्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळु

१० हीनमक्कु ।  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २।२।२।२ मितु पंचमाद्यधस्तनगुणहानिगळोळं तत्तद्गुणहानि-

हानिप्रथमस्थितिद्रव्यं भवेत् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ इदमपि संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं उपरितनद्वितीय-

गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धसमानं अद्यस्तनद्वितीयगुणहानिद्रव्यार्धमात्रं तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं  
स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ २ अद्यः एकैकस्वविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिप्रमितस्व-

विशेषा हीयन्ते =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ २ अत्रैकविशेषे हीने चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ २

१५ इदमपि संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधोद्विकेन गुणितं चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं उपरितनतृतीयगुणहानिप्रथमस्थिति-  
द्रव्यार्धसमानं अद्यस्तनतृतीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धमात्रं स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ २ २ इतोऽद्यः एकैकस्व-

है उसमें-से प्रथम गुणहानिके चय प्रमाण घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिके दूसरे निषेकका प्रमाण होता है । इस तरह प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त जानना । तथा ऊपरकी दूसरी गुणहानिमें जो प्रथम निषेकका प्रमाण कहा था उसमें-से दूसरी गुणहानिमें जो विशेष-

प्रथमस्थितिद्वयंगळद्धाद्विक्रमविदं पोगियधस्तन चरमगुणहानिघोळु चरमस्थितिद्वयदोळु अधस्तन-  
रूपोन नानागुणहानिमात्रद्विकंगळु हारमागिपुंववनन्योन्याभ्यासं माडिदोडे लब्धमधस्तनान्योन्या-

भ्यस्तराश्यद्धमागि हारमवकुं । गुणकारमुं रूपाधिकगुणहानि यक्कु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ प मो  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ प ०००२

राशिषु मीयधस्तननानागुणहानिगळ शलाकाप्रमितोपरितनगुणहानिगळ चरमगुणहानिचरमस्थिति-  
द्वयदोळु समानमवकुमिन्तुक्ताधस्तनगुणहानिगळगमवर ऋणंगळगमुपरितनगुणहानिगळगं यथाक्रम- ५  
विदं विन्यासरचनाविशेषमिदु :-

| अधस्तनगुणहानि                                                                                                                                                          | मुखभूमीत्यादि                                                                                                                                                      | ऋणं                                                                                                                                                                        | उपरितनगुणहानि                                                                                                                                                   |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| <p>प्रथम गुण</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २                   | <p>मुखभूमीत्यादि</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २           | <p>प्रथमगुणहानि समस्त ऋण</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २           | <p>चरमगुणहानि</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प |
| <p>अधस्तन चरमगुणहानि</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प | <p>मुखभूमीत्यादि</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प | <p>चरमगुणहानि समस्त ऋण ॥</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प | <p>उपरितन</p> $\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प<br>$\frac{४}{५}$ गु ३ गु २ प     |

विशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्वये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयंते =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ २ २ २ एवं

पंचमाद्यधस्तनगुणहानिषु तत्तद्गुणहानिप्रथमस्थितिद्वयाणि अर्धार्धक्रमेण गत्वा अधस्तनचरमगुणहानौ चरम-  
स्थितिद्वये रूपोनाधस्तननानागुणहानिमात्रद्विकानि हाराः स्युः । तेषामभ्यासे अधस्तनान्योन्याभ्यस्तार्थं स्यात् । १०

गुणकारो रूपाधिकगुणहानिः स्यात् =  $\frac{४}{५}$  गु ३-गु २ प अयं राशिः अधस्तननानागुणहानिशलाकाप्रमितो-  
५ ०००२

का प्रमाण कहा है उतना घटानेपर नीचेकी द्वितीय गुणहानिमें प्रथम निषेकका प्रमाण जानना । उसमें-से उतना ही घटानेपर उसके दूसरे निषेकका प्रमाण जानना । इस तरह अन्तके निषेक पर्यन्त जानना । इसी प्रकार तृतीय आदि गुणहानिमें भी जानना । नीचेकी गुणहानियोंकी रचनामें चयका प्रमाण जोड़ देनेपर नीचेकी गुणहानिका प्रमाण ऊपरकी १५



मुखभूमीत्यादि

$$\begin{array}{c} = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array} \quad \begin{array}{c} \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ००२ \end{array}$$

मुखभूमीत्यादि

$$\begin{array}{c} = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array} \quad \begin{array}{c} \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ००२ \end{array}$$

परितनगुणहानिचरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यसमः । उक्ताधस्तनगुणहानीनां तदृणानामुपरितनगुणहानीनां क्रमेण विन्यासोऽयं—

| अधस्तनप्रथमगुणहानिः                                                                                               | मुखभूमीत्यादिनानी-<br>ताधस्तनप्रथमगुण-<br>हानिद्रव्यं                                                                             | ऋणं उपरि                                                                                                          | उपरितनचरमगुणहानिः                                                                                                 | मुखभूमीत्यादि                                                                                                                     |
|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| $\begin{array}{c} = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array}$                              | $\begin{array}{c} = \text{गु } ३ - \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ र } \\ ५ \end{array}$                    | $\begin{array}{c} = \text{गु } १ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array}$                              | $\begin{array}{c} = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } \\ ५ \end{array}$                   | $\begin{array}{c} = \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ५ \end{array}$                   |
| $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array}$            | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } ३ - \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ र } \\ ५ \end{array}$  | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } १ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array}$            | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } \\ ५ \end{array}$ | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ५ \end{array}$ |
| $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } \\ ५ \end{array}$ | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ५ \end{array}$ | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } १ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } \\ ५ \end{array}$ | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array}$            | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ५ \end{array}$ |
| $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } \\ ५ \end{array}$ | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ५ \end{array}$ | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } १ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } \\ ५ \end{array}$ | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \\ ५ \end{array}$            | $\begin{array}{c} \circ \\ \circ \\ = \text{गु } ३ \text{ गु } २ \\ ४ \text{ गु } ३ - \text{गु } २ \text{ प } २ \\ ५ \end{array}$ |

गुणहानिके समान हो जाता है । इस तरह जिस-जिस निषेकमें जितना-जितना प्रमाण हो उस-उस योगस्थानमें उतना-उतना जीवोंका प्रमाण होता है ।

अनंतरमी त्रिविधपंक्तिगळ संकलन पेळल्पडुगुमदे तंदोडे :—अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथम-

स्थितिद्रव्यमिदु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मुखभूमीजोग

$\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ दळे  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ । २ पदगुणिदे  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ । २ पदधणं होदि

एंदिदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमधस्तनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ प  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २

तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ । २ मुखभूमीजोगदळे पदगुणिदे पदधनं होदि थंडु ५

तंव धनमिदु । अधस्तनचरमगुणहानि द्रव्यमक्कु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ प २ अंतधणं गुणगुणियं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २

अपवर्तितमिदु  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ आदिविहोणं रुऊगुत्तरभजियं एंदु आदियं कळेदोडे

तेषां संकलनोच्यते—अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्य-

मिदं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मुखभूमीजोगदळे— =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ पदगुणिदे =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ पदधणं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २

होदि इति तदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात् । अधस्तनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं—

१०

=  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ मुखभूमीजोगदळे पदगुणिदे  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २

पदधणं होदि इत्यधस्तनचरमगुणहानिद्रव्यं भवति =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ अंतधणं गुणगुणियं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २

गुणहानियोंमें सब द्रव्यको जोड़नेके लिए 'मुख भूमि जोगदळे पदगुणिदे पदधणं होदि' इस सूत्रके अनुसार मुख हुआ अन्तिम निषेक, भूमि हुई आदि निषेक, दोनोंको जोड़कर

=  $\frac{\text{गु ३ प}}{\text{४ गु ३ २}}$  ० ० ० २ प इदु अधस्तनगुणहानिगळ समस्तधनमवकुमी धनदोळिहं  
५ ० ० ० २

ऋणमेनिते दोडे प्रथमाधस्तनगुणहानियोळु गच्छमात्रस्वविशेषगळवकुं ।  $\frac{\text{गु ३ गु २}}{\text{४ गु ३ २}}$  चरमाध-

स्तनगुणहानियोळं गच्छमात्रस्वविशेषगळवकुं  $\frac{\text{गु ३ गु २ प}}{\text{४ गु ३ २}}$  मन्तागुत्तं विरलन्तधणं  
५ ० ० ० २ गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियमेदु तंद समस्ताधस्तनगुणहानिगळ ऋणमिनितवकुं ।

५  $\frac{\text{प}}{\text{४ गु ३ २}}$  ० ० ० २ प उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदु  $\frac{\text{गु २}}{\text{४ गु ३ गु २}}$  तद-

गुणहानिचरमस्थितिद्रव्यमिदु  $\frac{\text{गु ३ गु २}}{\text{४ गु ३ २}}$  मुखभूमोजोगदळे पदगुणिदे पदधणं होदि एंदु

अपवर्तितं =  $\frac{\text{गु ३}}{\text{४ गु ३-२}}$  आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं =  $\frac{\text{गु ३ प}}{\text{४ गु ३-२}}$  ० ० ० ० ० ० इत्यधस्तनगुणहानिसर्व-

धनं स्यात् । अत्रस्थं ऋणं तु प्रथमाधस्तनगुणहानौ गच्छमात्रस्वविशेषाः स्युः—  $\frac{\text{गु ३-गु २}}{\text{४ गु ३-गु २}}$  चरमाधस्तन-

गुणहानावपि तावन्तः स्युः =  $\frac{\text{गु ३-गु २}}{\text{४ गु ३-२}}$  ० ० ० २ अंतधणं गुणगणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजिय-

१० मित्यधस्तनसर्वगुणहानिऋणं स्यात्—  $\frac{\text{प}}{\text{४ गु ३-२}}$  ० ० ० ० ० ० उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थिति-

द्रव्यमिदं =  $\frac{\text{गु २}}{\text{४ गु ३-गु २}}$  तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं—  $\frac{\text{गु २}}{\text{४ गु ३-गु २}}$  मुहभूमोजोगदळे पदगुणिदे पदधणं -

आधा करें । फिर उसे गुणहानिके आयामसे गुणा करें । जो-जो प्रमाण हो उतना-उतना अपनी-अपनी गुणहानिमें सब द्रव्यका प्रमाण जानना । सो प्रथम गुणहानिके सब द्रव्यसे दूसरी गुणहानिका द्रव्य आधा है । इस तरह उत्तरोत्तर गुणहानिका द्रव्य आधा-आधा जानना । सब गुणहानियोंके द्रव्यको जोड़नेके लिए 'अंतधणं गुणगणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार प्रथम गुणहानिका द्रव्य अन्तधन, उसको गुणकार दोसे गुणा करो । उसमें अन्तिम गुणहानि-

तदुपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु १ गु २ १ २ उपरितनचरमगुणहानिप्रथमस्थिति-

द्रव्यमिदं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ प तदगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यमिदं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ प मुख-  
० ० २ ० ० २

भूमीजोगदले  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ प २ पदगुणिदे पदधनं होइ एतुं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु १ २ प २ तंद  
० ० २ ० ० २

चरमोपरितनगुणहानि द्रव्यमकुं । मत्तमंतधनं गुणगुणियं  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ अपवर्तितमिदु

$\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ आदिविहीणं रुऊणुत्तर भजियमेंदु आदियं कळेदोडे  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ ० ० २ प २  
० ० २

यिदु उपरितनगुणहानिगळ समस्तधनमक्कुमिन्तुक्तमूरुं राशिगळं क्रमदिवं स्थपिसत्पडुत्तिरलु उपरि-

होदीति उपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ १ २ उपरितनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं

=  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ १ २ मुहभूमीजोगदले =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ प २  
० ० २ ० ० २ ० ० २

पदगुणिदे पदधनं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ गु २ १ २ इत्युपरितनचरमगुणहानिद्रव्य भवति । पुनः अंतधनं गुण-  
० ० २

गुणियं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ अपवर्तितं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ आदिविहीणं रुऊणुत्तरभजियं =  $\frac{४}{५}$  गु ३ गु २ ० ० २ १०  
० ० २ ० ० २ ० ० २

के द्रव्य आदि धनको घटाकर एकका भाग देनेपर ऊपर और नीचेकी सब गुणहानियोंके द्रव्यका प्रमाण होता है । नीचेकी गुणहानियोंमें जो अपना-अपना विशेष प्रमाण घटाया है उसको गुणहानि आयामसे गुणा करनेपर अपनी-अपनी गुणहानिमें घटायें गये विशेषका प्रमाण होता है । सब घटायें गये ऋणको जोड़नेके लिए 'अंतधनं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके

तनगुणहानिब्रध्यमुमधस्तनगुणहानिब्रध्यमुमस्तिलय ऋणमुमितुरपुं०

उपरितन-  
धन = गु ३ प  
४ गु ३ २ ०० २  
५ ०० प  
००

अधस्तन धन = गु ३ प  
४ गु ३ २ ००  
५ ००

ऋण मिदु = प  
४ ००० गु ३ प  
५ ०००

ई मूलं राशिगळ तंतम्म ऋणरूपगळं तंतम्म केळगेस्थापिसिदोडे यथाक्रमविदमित्पुं० :

|                                 |                                 |                                      |
|---------------------------------|---------------------------------|--------------------------------------|
| गु प<br>४ गु ३ २ ०० प<br>५ ००   | गु प<br>४ गु ३ २ ०० प<br>५ ००   | ऋण = गु ३ प<br>४ गु ३ ००० प<br>५ ००० |
| गु ३ १<br>४ गु ३ २ ०० प<br>५ ०० | गु ३ १<br>४ गु ३ २ ०० प<br>५ ०० | गु ३ १<br>४ गु ३ प<br>५ ०००          |

मत्तमो मूल राशिगळनपववर्तिसि स्थापिसिदोडित्पुं०

५ इत्युपरितनगुणहानिसर्वधनं स्यात् । उत्तरराशित्रयं क्रमेणैदं-उपरितनधनं— = गु ३ प अधस्तन-  
४ गु ३-२ प ० ०  
५ ० ०

धनं— = गु ३ प ऋणं = प स्वस्वऋणरूपे स्वस्थापि स्थापिते एवं—  
४ गु ३-२ प ० ० ० ४ गु-३ प ० ० ०  
५ ० ० ० ५ ० ० ०

|                                                   |                                                        |                                         |
|---------------------------------------------------|--------------------------------------------------------|-----------------------------------------|
| उपरि प<br>१— ० ०<br>= गु ३<br>४ गु ३-२ प<br>५ ० ० | अधस्त प<br>१— ० ० ०<br>= गु ३<br>४ गु ३-२ प<br>५ ० ० ० | ऋणं प<br>= ० ० ०<br>४ गु ३-प<br>५ ० ० ० |
| १— ०<br>= गु ३ १<br>४ गु ३-२ प<br>५ ० ०           | १— ०<br>= गु ३ १<br>४ गु ३-२ प<br>५ ० ० ०              | ०<br>= १<br>४ गु ३-प<br>५ ० ० ०         |

अनुसार प्रथम गुणहानिके ऋणको गुणकार दोसे गुणा करके तथा अन्तिम गुणहानिके ऋणको उसमेंसे घटाकर एकका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने ऋणके प्रमाणको ऊपरकी

|                                                                                              |                                                                                              |                                                                                     |
|----------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------------|
| $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २} \\ \text{५} \end{array}$   | $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २} \\ \text{५} \end{array}$   | $\begin{array}{c} \text{ऋण} \\ = \text{१} \\ \text{४ गु ३} \\ \text{५} \end{array}$ |
| $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २ प} \\ \text{५} \end{array}$ | $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २ प} \\ \text{५} \end{array}$ | $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ ५} \\ \text{५} \end{array}$             |

उभयधनराशिगळं कूडिसियपवर्तिसियधिकरूपं कळगे स्थापिसिदोडिदु  $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २} \\ \text{५} \end{array}$  कळगे

स्थापिसिद अधिकरूपिगे प्रथमऋणं समानमेदु शोधिसि कळेदु मत्तं ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवति  
येदु प्रथमऋणदऋणमं द्विकदिदं समच्छेदमं माडिदुनिदं  $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ २ प २} \\ \text{५} \end{array}$  अधस्तनगुणहानि

द्वितीयऋणरूपिनोळु शोधिसिदोडिदु  $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ २ प} \\ \text{५} \end{array}$  ई द्वितीयाधस्तनगुणहानि ऋणरूपि

अपवर्तिते एव

|                                                                                              |                                                                                              |                                                                                      |
|----------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------|
| $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २} \\ \text{५} \end{array}$   | $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २} \\ \text{५} \end{array}$   | $\begin{array}{c} \text{ऋणं} \\ = \\ \text{४ ३—} \\ \text{५} \end{array}$            |
| $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २ प} \\ \text{५} \end{array}$ | $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३ १} \\ \text{४ गु ३ २ प} \\ \text{५} \end{array}$ | $\begin{array}{c} \text{०} \\ = \text{१} \\ \text{४ गु ३ ५} \\ \text{५} \end{array}$ |

उभयधने संयोज्य अपवर्तिते अधिकरूपमधः संस्थाप्य  $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{गु ३} \\ \text{४ गु ३—} \\ \text{५} \end{array}$  =  $\begin{array}{c} \text{१—} \\ = \text{१—तेन प्रथमऋणं समानमिति} \\ \text{४ गु ३—} \\ \text{५} \end{array}$

देयं पुनः ऋणस्य ऋणं राशेर्धनमिति प्रथमऋणस्य ऋणं द्वाभ्यां समच्छिद्य  $\begin{array}{c} = \\ \text{४ गु ५} \\ \text{५} \end{array}$  २ अधस्तनगुण-

गुणहानिके द्रव्यमें घटानेपर अथवा नीचेकी गुणहानिके द्रव्यमें मिलानेपर नीचे और ऊपरकी गुणहानियोंका द्रव्य समान हो जाता है। तथा ऊपर और नीचेकी सर्वगुणहानियोंके सब



अदु कारणमागि वृत्तिकारं पेळद संकलने ग्रंथकारन संकलनेयोळु विरोधिसल्पडुगुमेदु  
भ्रांतिसल्वेडेकेदोडे धनऋणंगळगे हीनाधिकभावमिल्लपुदरिदं ।

अनंतरमुक्त द्वीन्द्रियपथ्यामिजीवजघन्यपरिणामयोगस्थानं मोदल्लोडु संज्ञिपंचेंद्रियपथ्यामि-  
जीवोत्कृष्टपरिणामयोगस्थानावसानमादनिरंतरतमागि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पष्टकं-  
गळिदमेकादशवृद्धिबद्धितंगळप्प समस्तयोगस्थानंगळोळु जघन्यस्थानमादियागेकैकस्थानंगळगे  
स्वामिगळु यवाकाररचनेयप्पंतु स्वस्थानदोळु चयाधिकंगळं परस्थानदोळु द्विगुणंगळं चयाधि-  
कंगळंमागुत्तं पोगि यवमध्यदोळु सर्वोत्कृष्टंगळुमल्लिदं मेले स्वस्थानदोळु चयहीनंगळं परस्थान-  
दोळु द्विगुणहीनंगळं चयहीनं हीनंगळंमागुत्तं पोगि सर्वोत्कृष्टयोगस्थानदोळु सर्वतस्तोकंगळा-  
गिर्द जीवंगळु तंतम्मयोगस्थानदिदमेतप्प प्रदेशबंधमं माळमुवेदोडे त्रैराशिकसिद्धमप्प समय-  
प्रबद्ध जयवृद्धिप्रमाणमं निरूपिसिदपरु :—

१०

|                                                                                     |                                                                                     |                                                                                       |                                                                                       |
|-------------------------------------------------------------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------|
| $\begin{array}{r} \text{= गु २} \\ \times \text{गु ३-गु २} \\ \hline ५ \end{array}$ | $\begin{array}{r} \text{= गु २} \\ \times \text{गु ३-गु २} \\ \hline ५ \end{array}$ | $\begin{array}{r} \text{= गु २} \\ \times \text{गु ३-गु २।२} \\ \hline ५ \end{array}$ | $\begin{array}{r} \text{= गु २} \\ \times \text{गु ३-गु २।२} \\ \hline ५ \end{array}$ |
|                                                                                     |                                                                                     |                                                                                       | →                                                                                     |
|                                                                                     |                                                                                     |                                                                                       | $\begin{array}{r} \text{= गु २} \\ \times \text{गु ३-गु २ प} \\ \hline ५ \end{array}$ |
|                                                                                     |                                                                                     |                                                                                       | $\begin{array}{r} \text{= गु २} \\ \times \text{गु ३-गु २ प} \\ \hline ५ \end{array}$ |

तद्वचनेन वृत्तिकारोक्तसंकलना विरुध्यते तन्न । धनर्णयोर्हीनाधिक्याभावात् ॥ २४९ ॥ अथोक्तं  
द्वीन्द्रियपथ्यामिपरिणामयोगोत्कृष्टपर्यतेषु निरंतरं सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रजघन्यसार्धकवृद्ध्या बधितेषु समस्त-  
योगस्थानेषु जघन्यादेकैकस्थानस्वामिनः यवाकाररचनारूपेण स्वस्थाने चयाधिकाः परस्थाने द्विगुणहीनाश्च  
भूत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थाने सर्वतः स्तोकाः ते रचिता जीवाः स्वस्वयोगस्थानेन कियंतं प्रदेशबंधं कुर्वतीति प्रश्ने  
तद्वृद्धिप्रमाणमाह—

योगस्थानोंके धारक जीव बहुत हैं । उसके नीचे या ऊपर जो योगस्थान हैं उनके धारक  
जीव पूर्वोक्त क्रमानुसार थोड़े-थोड़े हैं । इसीसे यवके आकार रचना कही है ॥ २४९ ॥

१५



इगिताणफड्ढयाओ समयप्रबद्धं च जोगवड्ढी च ।

समयप्रबद्धचयड्ढं एदे हु पमाणफल इच्छा ॥२५०॥

एकस्थानस्पर्धकानि समयप्रबद्धश्च योगवृद्धिश्च । समयप्रबद्धचयार्थमेताः खलु प्रमाण-  
५ फलेच्छाः ॥

जघन्ययोगस्थानस्पर्धकगणं समयप्रबद्धं योगवृद्धिं समयप्रबद्धचयनिमित्तमागिक्रमविदं  
प्रमाणफलेच्छाराशिगणेषु

|     |   |         |   |   |   |   |   |           |
|-----|---|---------|---|---|---|---|---|-----------|
| प्र | व | वि १६।४ | — | फ | स | इ | व | वि १६।४।२ |
|     |   |         | ० |   |   |   |   | ०         |

अन्तागुतं विरलु लब्धं समयप्रबद्धवृद्धिप्रमाणमितिक्कु स २ मिनितु वृद्धि निरंतरक्रम-  
० ०

विदमगुतं पोगियो दो देड्योळु जघन्यसमयप्रबद्धं द्विगुणं चतुर्गुणमष्टगुणमो क्रमविदं द्विगुण-  
द्विगुणमागुतं पोगि पोगि चरमवोळु पत्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमक्कुमेल्लि योगस्थानं द्विगुण-  
१० मक्कुमेल्लि समयप्रबद्धं द्विगुणमक्कुमेल्लि योगस्थानं चतुर्गुणमक्कुमेल्लि समयप्रबद्धं चतुर्गुण-  
मक्कुमो क्रमविदं पोगि चरमवोळु योगस्थानं छेदासंख्यातैकभागगुणितमावोडल्लि समयप्रबद्धं  
तावन्मात्रगुणितमेयक्कुमेबुदत्थं ।

तद्द्वीन्द्रियपर्याप्तस्य जघन्यपरिणामयोगस्थानस्पर्धकानि समयप्रबद्धः [योगवृद्धिश्चामी त्रयः समय-  
प्रबद्धचयनिमित्तं क्रमेण प्रमाणफलेच्छाराशयो भवति । प्र = व वि १६ ४ — । फ = स । इ व वि १६ ४ २  
० ०

१५ इति लब्धसमयप्रबद्धवृद्धिप्रमाणेन स २ जघन्यसमयप्रबद्धो निरंतरं वर्धित्वा वर्धित्वा यत्र योगस्थानं द्विगुणं

० ०

तत्र द्विगुणः, यत्र चतुर्गुणं तत्र चतुर्गुणः एवं गत्वा चरमे छेदासंख्यातगुणः ॥२५०॥

आगे इन योगस्थानोंके धारी जीव कितना-कितना प्रदेशबन्ध करते हैं इस प्रश्नके  
समाधानके लिए समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण कहते हैं—

२० दो-इन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगस्थान सम्बन्धी स्पर्धक, समयप्रबद्ध और  
योगोंकी वृद्धि ये तीन एक-एक योगस्थानमें समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण लानेके लिए क्रमशः  
प्रमाण, फल और इच्छाराशिरूप होते हैं । जघन्य परिणाम योगस्थानमें श्रेणीके असंख्यातवें  
भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक पाये जाते हैं । यह प्रमाण राशि है । और इस जघन्य योग-  
स्थानके द्वारा जो जघन्य समयप्रबद्ध प्रमाण प्रदेशोंका बन्ध होता है वह फलराशि हुई । और  
२५ एक-एक योगस्थानमें सूर्यगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं यह इच्छा-  
राशि हुई । सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर को लब्धराशि आयी  
उतना-उतना अधिक प्रदेशोंको लिये हुए ऊपरके एक-एक योगस्थानमें समयप्रबद्ध बँधता है ।  
अर्थात् जघन्य योगस्थानसे तो जघन्य समयप्रबद्ध बँधता है उसके अनन्तरवर्ती योगस्थानसे  
इतने अधिक प्रदेशों को लिये हुए समयप्रबद्ध बँधता है । इस तरह निरन्तर बढ़ते-बढ़ते जहाँ  
योगस्थान दूना होता है वहाँ समयप्रबद्ध भी दूना बँधता है । जहाँ वह चौगुना होता है  
३० वहाँ समयप्रबद्ध भी चौगुना बँधता है । इस प्रकार संज्ञी पर्याप्तकका उत्कृष्ट योगस्थान

जगत्तु द्वौद्रियपर्याप्तजीवजघन्ययोगस्थानं मोदलागि संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टयोगस्थानपर्यंतम-  
वस्थितवृद्धिक्रमेण नडेव योगस्थानंगळ क्रमसंख्यापंचकदिवं पेळदपरु :—

बीइंदियपज्जत्तजहण्णट्टाणा दु सण्णिपुण्णस्स ।

उक्कस्सट्टाणोत्ति य जोगट्टाणा कमे उड्ढा ॥२५१॥

द्वौद्रियपर्याप्तजघन्यस्थानात्संज्ञिपूर्णस्योत्कृष्टस्थानपर्यंतं च योगस्थानानि क्रमेण वृद्धानि ॥ ५

द्वौद्रियपर्याप्तजीव जघन्यपरिणामयोगस्थानमादियागि संज्ञिपर्याप्तजीवोत्कृष्टपरिणाम-  
योगस्थानपर्यंतं परिणामयोगस्थानंगळु अवस्थितवृद्धिक्रमदिवं पेच्चत्पट्टुवु । अन्तु पेच्चत्पट्टु  
स्थानंगळोळु :—

सेटिपसंखेज्जदिमा तस्स जहण्णस्स फड्ढया होत्ति ।

अंगुलअसंखभागा ठाणं पडि फड्ढया उड्ढा ॥२५२॥

१०

श्रेष्ठ संख्यातैकभागप्रमितानि तस्य जघन्यस्य स्पर्धकानि भवन्ति । अंगुलसंख्यभागप्रमि-  
तानि स्थानं प्रति स्पर्धकानि वृद्धानि ॥

तस्य द्वौद्रियपर्याप्त जीवजघन्यपरिणामयोगस्थानवके स्पर्धकंगळुश्रेष्ठसंख्यातैकभागभात्रं-  
गळपुवु । व वि । १६ । ४ । ७ । तज्जघन्यस्थानानंतरस्थानविकल्पं मोदल्लोडु स्थानं प्रति  
सूच्यंगुलसंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्धकंगळु पेच्चत्पट्टुवंतु पेच्चत्पट्टु :—

१५

तत्र छेदासंख्यातगुणः इतीमं क्रमं गाथापंचकेनाह—

द्वौद्रियपर्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानात् संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थानपर्यंतं परिणामयोगस्थानानि  
अवस्थितवृद्धिक्रमेण वृद्धानि सन्ति ॥२५१॥

तेषु द्वौद्रियपर्याप्तजघन्यपरिणामयोगस्थानं श्रेष्ठसंख्यातैकभागमात्रस्पर्धकं । व वि १६ ४ — । तदनंतर-

८

विज्ञानमार्गि कृत्वा प्रतिस्थानं सूच्यंगुलसंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्धकानि वर्धन्ते ॥२५२॥

२०

जघन्य योगस्थानसे पत्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवाँ भाग गुणा होता है । तो उससे जो  
समयप्रबद्ध बँधता है वह जघन्य समयप्रबद्धसे पत्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा  
होता है ॥२५०॥

आगे उक्त कथनको पाँच गाथाओं से कहते हैं—

दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लेकर संज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्ट  
परिणाम योगस्थान पर्यन्त परिणाम योगस्थान क्रमसे समान वृद्धिको लिये हुए बढ़ते  
हैं ॥२५१॥

२५

उनमें-से दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानके स्पर्धक जगतश्रेणिके  
असंख्यातवें भागमात्र होते हैं । उसके अनन्तरवर्ती स्थानसे लेकर प्रत्येक स्थानमें सूच्यंगुलके  
असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं । अर्थात् जघन्य स्पर्धकके जितने अविभाग  
प्रतिच्छेद हैं उन्हें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने  
अविभाग प्रतिच्छेद एक-एक योगस्थानमें बढ़ते हैं ॥२५२॥

३०



अनंतरमी निरंतरस्थानविकल्पगच्छेनितक्कुमेंदोडे पेळदपरः—

आदी अंतेसुद्धे वडिटहिदे रूपसंयुदे ठाणा ।

सेहि असंखेज्जदिमा जोगट्ठाणा निरंतरगा ॥२५४॥

आदावन्ते शुद्धेवृद्धिहते रूपसंयुते स्थानानि । श्रेण्यसंख्येयानि योगस्थानानि निरंतराणि ॥

आदियप्प जघन्यस्थानमन्त स्थानदोळु कळयत्पडुत्तं विरलु शेषममल्लिगे पच्चिद पेच्चु-

५

गेय प्रमाणमक्कु  $\frac{0}{0 \ 0}$  छे मदं त्रैराशिकविधानदिदं । प्र व वि १६ । ४ । २ । फ स्था १ । इ व वि

१६ । ४  $\frac{0}{0 \ 0}$  छे प्रमाणराशिभूतवृद्धिप्रमाणदिदं भागिसुत्तं विरलु लब्धं सवृद्धिस्थानसंख्येयक्कु-

मदरोळु जघन्यस्थानमं कूडुत्तं विरलु समस्तनिरंतरयोगस्थानंगळ प्रमाणमिनितक्कु  $\frac{0}{0 \ 0 \ 1 \ 2 \ 0}$

|                 |             |                         |
|-----------------|-------------|-------------------------|
| २ । २           | —२२२        | ० ० ० —छे ० ० ० ० —छे   |
| ०               | ०           | ० ० २ ० ०               |
| —२ २ ० ० ०      | ०           |                         |
| ०               | ०           |                         |
| ← स २ । २       |             | ० ० ० स छे ० ० ० ० स छे |
| — ०             |             | ० २ ०                   |
| ०               |             |                         |
| स २ । २ । ० ० ० | स २ । २ । २ |                         |

॥ २५३ ॥ ते स्थानविकल्पाः कति ? इति चेदाह—

आदी जघन्यस्थाने व वि १६ ४ — । अंते उत्कृष्टस्थाने व वि १६ ४ — छे शुद्धे शोधिते सति शेषे १०

व वि १६ ४  $\frac{0}{0 \ 0}$  छे सूच्यंगुलासंख्येभागजघन्यस्पर्धकवृद्ध्या भवते सवृद्धिकस्थानानि । अत्र जघन्यस्थाने निक्षिप्ते

है । अर्थात् जघन्य योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणको पत्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने सर्वोत्कृष्ट योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ॥२५३॥

समस्त निरन्तर योगस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

आदि जघन्य स्थानको अन्त उत्कृष्ट स्थानमेंसे घटाइए । अर्थात् अन्तके उत्कृष्ट स्थानके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उनमेंसे जघन्य स्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंको घटानेपर जो प्रमाण आवे उसे वृद्धिसे भाग दें । सो एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग

१५

मित्रु श्रेण्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळेयप्पुवु ॥

अन्तरमन्तरगतस्थानंगळनितक्कुमेंदोडे पेळ्दपहः—

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेठियसंखभागा हु ।

सांतरणिरंतराणि वि सव्वाणि वि जोगठाणाणि ॥२५५॥

- ५ अन्तरगतानि तदसंख्यातैकभागप्रमितानि खलु । सांतरनिरंतराण्यपि सर्वाण्यपि योगस्थानानि ॥

अंतरगतयोगस्थानंगळु निरंतरयोगस्थानंगळ असंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवं  $\frac{१}{००२०}$  छे तादोडं

श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयक्कुं । सान्तरनिरंतराण्यपि सांतरनिरंतरस्थानंगळुं तदसंखेज्जदिमा

अंतरगतस्थानविकल्पंगळ असंख्यातैकभागमक्कु  $\frac{०}{००२१०१०}$  छे मादोडमवुं श्रेण्यसंख्यातैकभाग-

- १० मात्रंगळेयक्कुं । सर्वाण्यपि योगस्थानानि ई निरंतर सान्तर सांतरनिरंतरंगळे'व त्रिविधयोग-

१—

समस्तनिरंतरयोगस्थानानि —  $\frac{१}{०००}$  छे एतानि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राण्येव — ॥२५४॥

अंतरगतयोगस्थानानि निरंतरयोगस्थानानामसंख्यातैकभागोऽपि —  $\frac{१}{००००}$  छे श्रेण्यसंख्यातैकभाग एव ।

सांतरनिरंतराण्यपि अंतरगतानामसंख्यातैकभागोऽपि —  $\frac{१}{०००००}$  छे श्रेण्यसंख्यातैकभाग एव । तानि त्रिवि-

- १५ स्पर्धकोंके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हों उतनी वृद्धि होती है उससे भाग दें । जो प्रमाण आवे उतनी वृद्धि सहित स्थान जानना । उनमें एक जघन्य योगस्थान मिलानेपर जो प्रमाण हो, उतने सर्व निरन्तर योगस्थान होते हैं । वे स्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं ॥२५४॥

- अन्तरगत योगस्थान निरन्तर योगस्थानोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर भी जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग ही हैं । सान्तर निरन्तर मिश्ररूप योगस्थान अन्तरगत योगस्थानोंके असंख्यातवें भाग हैं । फिर भी वे जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं । निरन्तर, २० सान्तर और निरन्तरसान्तर ये तीनों योगस्थान मिलकर भी जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग

स्थानंगळं कूडियुं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयपुवु ० छे ० यिन्तुक्त सर्व्वयोगस्थानंगळो-  
० १ २ ०  
०

ळाद्यंतस्थानंगळं पेळदपरः—

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो ।

पज्जत्तसण्णिपंचिदियस्स उक्कस्सओ होदि ॥२५६॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य प्रथमे जघन्यो योगः । पर्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियस्योत्कृष्टो भवति ॥ ५

अन्तुक्तसर्व्वयोगस्थानंगळो मुन्नं पेळद विशेषणविशिष्टरूप सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तजीवन-  
चरमभवप्रथमसमयदोळानुदोदुपपादयोगजघन्यस्थानमदादियक्कुं । पर्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवपरि-  
णामयोगोत्कृष्टस्थानमदवसानस्थानमक्कु-॥ मनन्तरमिन्तु पेळल्पट्ट प्रकृतिबंधस्थितिवंधमनुभाग-  
बंध प्रदेशबंधमेव चतुर्विधबंधंगळो कारणंगळं पेळदपरः—

जोगा पयडिपदेसा ठिदियणुभागा कसायदो होंति ।

अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्टिदिकारणं णत्थि ॥२५७॥

१०

योगात्प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतो भवतः । अपरिणतोच्छिन्नेषु च बंधस्थिति-  
कारणं नास्ति ॥

धानि मिलित्वापि सर्वाणि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राण्येव— १-  
छे ० ॥ २५५ ॥ एतेषु आद्यंत-  
० २ ० ०  
०

स्थाने आह—

उक्तविशेषणविशिष्टं सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तस्य चरमभवप्रथमसमये यदुपपादयोगजघन्यस्थानं तदाद्यं  
भवति । पर्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियस्य परिणामयोगोत्कृष्टस्थानं तदत्यं भवति ॥ २५६ ॥ उक्तचतुर्विधबंधानां  
कारणान्याह—

१५

हैं । इसका कारण यह है कि असंख्यातके बहुत भेद हैं । अतः यथायोग्य असंख्यातका भाग  
जानना ॥२५५॥

२०

आगे इन योगस्थानोंमें आदिस्थान और अन्तस्थान कहते हैं—

उक्त सब योगस्थानोंमें सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके अन्तिम क्षुद्रभवके पहले  
समयमें जो जघन्य उपपाद योगस्थान होता है वह आदिस्थान है । और संज्ञी पंचेन्द्रिय  
पर्याप्तकका जो उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान है वह अन्तिमस्थान है ॥२५६॥

आगे चार प्रकारके बन्धके कारण कहते हैं—

२५

योगात् योगादिदं प्रकृतिप्रदेशौ भवतः प्रकृतिबंधमुं प्रदेशबंधमुमप्युवु । स्थित्यनुभागो स्थिति-  
बंधमुमनुभागबंधमुमेरडु कषायतो भवतः कषायस्थानोदयदिदमप्युवु । अपरिणतजघन्यदिदमेक-  
समयमुत्कृष्टदिदमन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं कषायस्थानोदयापरिणतनप्य उपशांतकषायनोळं उच्छिन्नेषु  
५ कालिकबंधवके स्थितिबंधकारणमिळ । च शब्ददिदमयोगिकेवलिजितनोळं प्रकृतिप्रदेशबंध-  
कारणमप्य योगमुं स्थित्यनुभागबंधकारणमप्य कषायस्थानोदयमुमितल ॥

अनंतरं योगस्थानप्रकृतिसंग्रहस्थितिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायानुभागबंधाध्यवसायकर्म-  
प्रदेशमेधिवक्कल्पबहुत्वमं पेळदपरु गाथासूत्रदिदं :—

सेढिअसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणाणि होंति सब्वाणि ।

१० तेहिं असंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥२५८॥

श्रेण्यसंख्येय भागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति सर्वाणि । तैरसंख्येयगुणः प्रकृतीनां संग्रहः  
सर्वैः ॥

प्रकृतिप्रदेशबंधौ योगाद्भवतः । स्थित्यनुभागबंधौ कषायतो भवतः । जघन्यतः एकसमय उत्कृष्टतो-  
ऽन्तर्मुहूर्त अपरिणतकषायस्थानोदयोपशांतकषाये क्षपितकषायक्षीणकषायसयोगयोश्च तात्कालिकबंधस्य स्थिति-  
१५ बंधकारणं नास्ति । चशब्दादयोगकेवलानि प्रकृतिप्रदेशबंधकारणं योगः स्थित्यनुबंधकारणं कषायस्थानोदयश्च  
नास्ति ॥२५७॥ अथ योगस्थानप्रकृतिसंग्रहस्थितिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायानुभागबंधाध्यवसायकर्मप्रदेशाना-  
मल्पबहुत्वं गाथात्रयेणाह—

प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योगसे होते हैं । अर्थात् जैसा शुभ या अशुभ योग होता  
है वैसा ही प्रकृतिबन्ध होता है और जैसा योगस्थान होता है वैसा ही समयप्रबद्ध बंधता है ।  
२० अतः ये दोनों बन्ध योगसे होते हैं । स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषायसे होते हैं । जैसी  
कषाय होती है वैसी ही यथायोग्य स्थिति और अनुभाग बंधते हैं । जघन्यसे एक समय  
और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त काल तक जिसमें कषाय स्थान उदयरूप नहीं है ऐसे उपशान्त  
कषाय और कषायरहित क्षीणकषाय और सयोगकेवलोके जो प्रतिसमय बन्ध होता है  
उसके स्थितिबन्धका कारण नहीं है । 'च' शब्दसे अयोगकेवलीमें प्रकृति और प्रदेशबन्धका  
२५ कारण योग तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका कारण कषाय दोनों ही नहीं हैं अतः  
उसके बन्ध नहीं होता ॥२५७॥

आगे योगस्थान, प्रकृतिसंग्रह, स्थितिभेद, स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान, अनुभाग-  
बन्धाध्यवसाय स्थान और कर्मोंके प्रदेश, इनका अल्पबहुत्व तीन गाथाओंसे कहते हैं—

निरन्तरं, सांतर, निरन्तर, सांतरभेदभिन्नसर्वयोगस्थानगळु श्रेण्यसंख्येयभागंगळपु-  $\frac{0}{a} \frac{0}{a} \frac{0}{a}$  ३१ २१ ०

वर्द्धिदुमसंख्यातलोकगुणं । सर्वप्रकृतिसंग्रहमक्कु  $\equiv a \equiv a$  २ मोयुत्तरोत्तरप्रकृतिसंख्येयं तादुदे-  
दोडे पेळल्पडुगुमदेतेदोडे मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलज्ञानावरणीयमेदु ज्ञानावरणीयदुत्तरप्रकृति-  
गळ ५ अप्पुवु । अवरोळु श्रुतज्ञानावरणीयोत्तरोत्तरप्रकृतिगळसंख्यातलोकप्रमितंगळपुवेतेदोडे  
मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलज्ञानमेदु ज्ञानपंचकत्वे प्रत्येकं भेदप्रभेदंगळु जीवकांडोळपेळल्पट्ट ५  
प्रकारदिदमिवरोळु पर्यायश्रुतज्ञानमादियागि लोकविदुसारपूर्वश्रुतज्ञानमवसानमाद समस्तश्रुत-  
ज्ञानविकल्पंगळु पर्याय अक्षर पद संघातप्रतिपत्ति अनुयोग प्राभूतक, प्राभूतकप्राभूतक वस्तु पूर्वमेव  
पत्तं भेदंगळुमवर समासंगळु सहितमागि अक्षरानक्षरात्मक क्षायोपशमिकश्रुतज्ञानविकल्पंगळुम-  
संख्येयलोकमात्रंगळपुवु  $\equiv a \equiv a$  । १ । एतितु ज्ञानविकल्पंगळपुवनितेयावरणविकल्पंगळपुवल्लि  
विशेषमुंदादुदेदोडे पर्यायज्ञानं निरावरणज्ञानमक्कुमेकेदोडु सर्वानिकृष्टज्ञानमपुर्दिदमदक्का- १०  
वरणमुंदाकुम्पोडे जीवाभावमागिबक्कुमदुकारणमागिरूपोनश्रुतज्ञानविकल्पमात्रश्रुतज्ञानावरण-  
गळुत्तरोत्तरप्रकृतिगळपुवु । श्रुतं मतिपूर्वमेदितु मतिज्ञानविकल्पंगळु श्रुतज्ञानविकल्पप्रमितंगळ-  
पुर्दिदं तदावरणंगळुमुत्तरोत्तरप्रकृतिगळु तावन्मात्रंगळेयपुवु ।  $\equiv a \equiv a$  । १ । देशावधि परमा-  
वधिज्ञानमेवरेडुमवधिज्ञानंगळु सविकल्पज्ञानंगळपुर्दिदं देशावधिज्ञानविकल्पंगळु विषयभेदादिदं  
त्रैराशिकसिद्धंगळपुवा त्रैराशिकमेतंदोडे एकप्रदेशं क्षेत्रदोळु वृद्धियागुत्तं विरलु सूच्यंगुलासंख्या- १५  
तैकभागद्रव्यविकल्पंगळपुवागळु घनांगुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रप्रदेशंगळु क्षेत्रदोळु वृद्धिया-

निरन्तरसांतरतदुभयभेदभिन्नसर्वयोगस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागमात्राणि  $\frac{1}{a} \frac{1}{a} \frac{1}{a}$  २ ३१ ० एभ्योऽसंख्यात-

लोकगुणः सर्वप्रकृतिसंग्रहः ।  $\equiv a \equiv a$  २ तद्यथा-ज्ञानावरणीयस्य उत्तरप्रकृतयः पंच तत्र श्रुतावरणानि  
पर्यायज्ञानस्य निरावरणत्वात् असंख्यातलोकषट्स्थानवृद्धिवधितपर्यायसमासादिभेदमात्राणीत्येतावन्ति  $\equiv a \equiv a$   
'श्रुतं मतिपूर्व' इति मत्यावरणान्यपि तावन्ति  $\equiv a \equiv a$  देशावध्यावरणानि घनांगुलासंख्येयभागोने लोके सूच्यं- २०

निरन्तर, सान्तर और निरन्तरसान्तरके भेदसे भिन्न सब योगस्थान जगतश्रेणिके  
असंख्यातवें भाग हैं । उनसे असंख्यात लोक गुना सब प्रकृतियोंका समूह है । अर्थात् सब  
योगस्थानोंके प्रमाणको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर कर्मोंकी प्रकृतियोंका प्रमाण होता  
है । वही कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ पाँच हैं । उनमें-से श्रुतज्ञानावरणमें पर्यायश्रुत-  
ज्ञानके निरावरण होनेसे असंख्यात लोकबार षट्स्थान वृद्धिसे वधित पर्याय समास आदि २५  
भेदोंके आवरणकी अपेक्षा असंख्यात लोकको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर जो राशि हो  
उतने श्रुतज्ञानावरणके भेद हैं । तथा श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है अतः उतने ही मतिज्ञाना-



दल्लिगेनितु द्रव्यविकल्पंगळपुवेदिनु त्रैराशिकमं माडुतं विरलु प्र। १ वृ। फ। २। इ = ६ वृ

लब्धं देशावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पंगळ प्रमाणमक्कुमा द्रव्यविकल्पंगळेनितनिते देशावधिज्ञान-  
विकल्पंगळपुवु = ६। २ परमावधिज्ञानविकल्पंगळं परमावहिस्सभेदासगओगाहणवियप्पहदतेऊ

येदिनु तेजस्कायिकजीवावगाहनविकल्पंगळिदं गुणिसत्त्वदु तत्तेजस्कायिकजीवराशिप्रमाणमक्कु

५ = ० ६ ० सर्वावधिज्ञानं निर्विकल्पकमप्य क्षायोपशमिकज्ञानमप्युदरिदमेकविधमेयक्कु १। सर्वा-

वधिदेशावधिज्ञानविकल्पंगळं परमावधिज्ञानविकल्पंगळोळु साधिकमं माडिदोडे मतिज्ञानविकल्पं-

गळं नोडुलुमसंख्यातगुणहीनमक्कु। = ० तावन्मात्रंगळे तदावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळपुवु। मनः-

पर्ययज्ञानविकल्पंगळुमसंख्यातकल्पप्रमितंगळपुवु। क ०। तावन्मात्रंगळे तदावरणोत्तरोत्तर-

प्रकृतिगळपु। केवलज्ञानं क्षायिकनिर्विकल्पकज्ञानमप्युदरिदं तदावरणमुमेकविधमेयक्कु। केवल-

१० ज्ञानावरणमनःपर्ययज्ञानावरणावधिज्ञानावरणोत्तरोत्तर प्रकृतिगळं तंदु श्रुतज्ञानावरणोत्तरोत्तर-

प्रकृतिगळोळु साधिकं माडि मतिज्ञानावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळोळु कूडिदोडे साधिकद्विगुणमक्कु

= ० = ० २ मप्युदरिदं। सर्वप्रकृतिगळं नामप्रत्ययंगळपुदरिदं पूर्व्वंशरीराकाराविनाशो यस्यो-

गुलासंख्येयभागगुणिते सेके सति यत्प्रमाणं तावन्ति- = ६। २ परमावध्यावरणानि स्वावगाहविकल्पहततेजस्का-

यिकराशिमात्राणि = ० ६ ० सर्वावध्यावरणमेकं १। मनःपर्ययज्ञानावरणान्यसंख्यातकल्पमात्राणि। क ०।

१५ केवलज्ञानावरणमेकं १ मिलित्वा सर्वज्ञानावरणानि अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानावरणाधिकश्रुतावरणयुतमत्या-

वरणके भेद हैं।

अवधिज्ञानावरणमें, घनांगुलके असंख्यातवें भागसे हीन लोकको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर देशावधिके भेद होते हैं अतः देशावधि अवधिज्ञानावरणके भेद भी इतने ही हैं। अग्निकायके जीवोंके प्रमाणको २० उनकी शरीरके अवगाहनाके भेदोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने परमावधिके भेद हैं। अतः परमावधिज्ञानावरणके भी इतने ही भेद हैं। सर्वाधिका एक ही भेद है अतः सर्वावधिज्ञानावरणका भी एक ही भेद है। बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कल्पकालको असंख्यातसे गुणा करनेपर मनःपर्ययज्ञानके भेद होते हैं। अतः मनःपर्ययज्ञानावरणके भी इतने ही भेद हैं। केवलज्ञानावरण एक होनेसे केवलज्ञानावरण भी एक है। ये सब २५ मिलकर अवधिज्ञानावरण मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण तथा श्रुतज्ञानावरण सहित मतिज्ञानावरण, प्रमाण ज्ञानावरणकी उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेद होते हैं।

वयान्द्रवति तदानुपूर्व्यनाम एदितु नामतः सिद्धमप्य क्षेत्रविपाकी सामान्यानुपूर्व्यनामकर्म नार-  
कानुपूर्व्यं तिर्द्यंगानुपूर्व्यं मनुष्यानुपूर्व्यं देवानुपूर्व्यमेदितु चतुर्विधमवकुमलित नारकानुपूर्व्य  
नामकर्म नरकक्षेत्रविपाकियप्पुदरिदं नरकक्षेत्रदोळदयिसुगुमा नरकक्षेत्रप्रमाणमेनिते दोडे नारक-  
रेल्लहं त्रसपंचेंद्रियपर्याप्तजीवंगलेयप्पुदरिदमा नरकक्षेत्रं त्रसनाळदोळेयागलेळकुमपुदरिदं  
त्रसनालप्रमितमेकैकरज्जु भुजकोटिप्रमितमुष्ट्रादिमुखाकारदोळुपरितनोपपादस्थानदोळल्लदे मत्ते- ५  
ल्लियुं बिलदोळुत्पत्तियिल्लप्पुदरिदं प्रमाणसूच्यंगुलासंख्यातैकभागायामगुणितमप्य नरकक्षेत्र-  
दोळेतप्य जीवंगळु बंदु पुट्टुगुमेदोडे तिर्द्यंगमनुष्यपंचेंद्रियत्रसपर्याप्तजीवंगळु पूर्वशरीरसं-  
बिदुदु विग्रहगतिरिधं स्वयोग्योत्पत्तिनरकस्थानवके वर्पागळु नरकानुपूर्व्योदयादेवं पूर्वशरीरा-  
विनाशमुदत्पुदरिदमा तिर्द्यंगमनुष्यपंचेंद्रियत्रसपर्याप्तजीवशरीरजघन्यावगाहनद घनांगुलसंख्यातैक-  
भागदिदं गुणिसिदोडे प्रथमविकल्पवक्तुं = २१ ६ द्वितीयादिवि प्लवंगळोळेकैकप्रदेशोत्तरक्रम- १०

४९।१।१७

मध्यमविकल्पंगळु नडुदु संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवावगाहनगुणितक्षेत्रं चरमविकल्पमवक्तुं = २१ ६७

४९ ०

मिस्तागुत्तं विरलु आदीयंते सुदये चडिहिदे रुवसंजुदे ठाणा । एंडु लब्धं सर्वविकल्पंगळि

इनितप्पुवु = २६ ७।७ तिर्द्यंगानुपूर्व्यनामकर्म तिर्द्यंगगतिक्षेत्रविपाकियप्पुदरिदं तिर्द्यंगानु-  
४९ ० १ ७

वरणमात्राणि स्युः = ० = ० २ सर्वा प्रकृतयो नामकर्मप्रत्ययाः इति नारकानुपूर्व्यं नरकक्षेत्रविपाकित्वा-  
त्क्षेत्रमेकरज्जुप्रतरमुष्ट्रादिमुखाकारेभ्योऽन्यत्रोत्पत्त्यभावात् प्रमाणसूच्यंगुलासंख्यातैकभागायामगुणितं तिर्द्यंगमनु- १५  
ष्यपंचेंद्रियपर्याप्तानां तत्र गमनकाले नरकानुपूर्व्योदयेन पूर्वाकाराविनाशाज्जघन्यावगाहघनांगुलसंख्यातैकभागेन  
गुणिते प्रथमविकल्पः = २६ संख्यातघनांगुलेर्गुणिते चरमः = २६ १ आदी अंते सुद्धे इत्यादिना  
४९ ० १ ७ ४९ ०

सब प्रकृतियाँ नामकर्मके निमित्तसे होती हैं । अतः नामकर्मकी प्रकृतियोंमें आनुपूर्वी  
प्रकृतिके उत्तरोत्तर भेद कहते हैं । आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है । अतः क्षेत्रकी अपेक्षा उसके भेद  
होते हैं । नारकानुपूर्वी नरकक्षेत्र विपाकी है । नरकक्षेत्र एक राजु प्रतरप्रमाण है वहाँ उष्ट्रादि २०  
मुखाकारोंके सिवाय अन्यत्र उत्पत्ति नहीं होती । अतः प्रमाणरूप सूच्यंगुलके असंख्यातवें  
भाग प्रमाण आयामसे उसे गुणा करें । तथा पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्द्यं और मनुष्य जब  
नरकको जाते हैं तब नारकानुपूर्वीका उदय होता है । उससे पहले तिर्द्यं या मनुष्य पर्यायमें  
जो आकार होता है उसका नाश नहीं होता । इससे वहाँ पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्द्यं या  
मनुष्यकी जघन्य अवगाहना तो घनांगुलके संख्यातवें भाग है । उससे पूर्वोक्त क्षेत्रको गुणा २५  
करनेपर जो क्षेत्रका प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वीका पहला भेद है । उन्हींकी उत्कृष्ट अवगाहना  
संख्यात घनांगुल प्रमाण है । उसको पूर्वोक्त क्षेत्रसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो नरकानु-  
पूर्वीका अन्तिम भेद है । 'आदी अंते सुद्धे चडिहिदे रुवसंजुदे ठाणा' इस सूत्रके अनुसार  
अन्तिम भेदमें जितना क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण हो उसमेंसे पहले भेदके क्षेत्रके प्रदेशोंके

- स्तिर्यङ्गतिनामकर्मोदयसहचरितिर्यङ्गानुपूर्व्यं तिर्यङ्गतिक्षेत्रकुदयिसुगुमा तिर्यङ्गतिक्षेत्र-  
प्रमाणमेनिते'दोडे तिर्यंचरु स्थावरंगळु असंगळुमण्डुरिदमा जीवंगळुत्पत्तियोग्यक्षेत्रमुं सर्व-  
लोकमवकुमो तिर्यंग्लोकक्षेत्रदोळु पुटदुव जीवंगळुमवावुवे'दोडे सर्वपृथ्वय नारकरुगळुं स्थावर-  
त्रसभेदतिर्यंचरुगळुं कर्मभूमिपर्याप्तापर्याप्तमनुष्यरुगळुं अतारसहस्रारकल्पद्वयावसानमाव  
५ देववर्कळुं पुटदुवरा जीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतिर्यिदं तिर्यङ्गतिक्षेत्रदोळुपुटदुववि-  
वर्पागळु तिर्यङ्गायुस्तिर्यङ्गतिनामकर्मोदयसहचरित तिर्यङ्गानुपूर्व्यनामकर्मोदयविदं पूर्व-  
शरीरावगाहनाकारापरित्यागभावमण्डुरिदमा तिर्यंचरोळु सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तजीवजघन्या-  
वगाहनद घनांगुलासंख्यातैकभागगुणिततिर्यङ्गतिक्षेत्रं प्रथमविकल्पमवकुं = ६ द्वितीयावि-  
विकल्पंगळोळेकैकप्रदेशोत्तरक्रमविदं पूर्वतारकतिर्यङ्गमनुष्यदेवजीवंगळु शरीरावगाहनविकल्पं  
१० गळेल्लमिल्लि मध्यमविकल्पंगळुगुत्तं पोगि पर्याप्तपंचेंद्रियतिर्यङ्गजीवोत्कृष्टावगाहनसंख्यातघनां-  
गुलगुणितप्रमितमदु चरमविकल्पमवकुं = ६७ अन्तागुत्तं विरलादी अन्ते सुद्धे वडिद हिदे रुवसंजुदे
- ठाणा ये'दितो सूत्रेष्टविदं तंद सर्वावगाहविकल्पगुणितसर्वक्षेत्रविकल्पंगळिनितपुवु = ६७ अ
- मनुष्यानुपूर्व्यनामकर्मं मनुष्यक्षेत्रविपाकियपुनिदं मनुष्यक्षेत्रकुदयिसुगुमा मनुष्यक्षेत्रप्रमाणमु-

- १-  
एतावद्विकल्पं स्यात् । = २. ६ । १ । १ तिर्यङ्गानुपूर्व्यं तिर्यङ्गक्षेत्रविपाकीति तत्क्षेत्रं सर्वलोकः । नारकत्रस-  
४९०१
- १५ स्यावरकर्मभूमिमनुष्यसहस्रारपर्यंतदेवानां तत्र गमनकाले आयुर्गतिसहचरितिर्यङ्गानुपूर्व्योदयात् सूक्ष्मनिगोद-  
लब्धपर्याप्तजघन्यावगाहनेन गुणिते प्रथमविकल्पः = ६ उत्कृष्टावगाहनेन गुणिते चरमः = ६१ आदी अंते

सुद्धे वडिद हिदे रुवसंजुदे ठाणा; इत्येतावद्विकल्पं स्यात् = ६१ अ । मनुष्यानुपूर्व्यं मनुष्यक्षेत्रविपाकित्वात्

- प्रमाणको घटानेपर जो शेष रहे उसमें एकसे भाग देकर एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने  
नरकानुपूर्वकी उत्तरोत्तर भेद होते हैं । इसी प्रकार तिर्यंचानुपूर्वी तिर्यंच क्षेत्रविपाकी है ।  
२० सो तिर्यंचका क्षेत्र सर्वलोक है । नारकी, त्रस-स्थावर-तिर्यंच, कर्मभूमिया मनुष्य तथा  
सहस्रार स्वर्ग तकके देव तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होते हैं । सो वे आनुपूर्वीके उदयसे पूर्व  
शरीरके आकारको नहीं छोड़ते । अतः सूक्ष्म निगोदिया लब्धपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना  
घनांगुलके असंख्यातव भाग प्रमाणसे पूर्वोक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर तिर्यंचानुपूर्वीका प्रथम  
भेद होता है । तथा उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, उससे गुणा करनेपर अन्त-  
२५ का भेद होता है । सो 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाकर  
उसे एकसे भाग देकर और उसमें एक मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने भेद तिर्यंचानुपूर्वीके

मेनिते दोडे मनुष्यरेल्लर त्रसपर्याप्तापर्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळपुर्दारिदमा जीवंगळ स्वोत्पत्तियोग्य-  
मनुष्यक्षेत्रप्रमाणमुं पंचोत्तर चत्वारिशलक्षयोजनवृत्तविष्कंभगुणितत्रसनालप्रतरप्रमितमक्कुं  
= ४५ ल नात्वत्तैदु लक्षयोजनसमचतुरस्त्रमेके ग्रहिसत्पदे दोडे मानुषोत्तरपध्वतदिदं पोरगण-  
४९

चतुष्कोणमनुष्यक्षेत्रदोळु मनुष्यगुंत्पत्ति यल्लपुर्दारिदं । ई मनुष्यक्षेत्रदोळु पुट्टुव मनुष्यरुगळा- ५  
वावगतिजरपरें दोडे षष्ठपृथिवपध्वस्तमाद षट्पृथिवगळ नारकरुगळुं ६ । वरत्रसभेदभिन्नकर्म-  
भूमितिर्ध्वचरं कर्मभूमिपर्याप्तापर्याप्तमनुष्यरुगळुं सव्वार्थसिद्धिविमानावसानमाद देवगतिजर  
पुट्टुवरा जीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतिविदं मनुष्यगतिक्षेत्रदोळुपुट्टुवेडि बर्पांगळु  
मनुष्यागुण्यमनुष्यगतिनामकर्मोदयसहचरितमनुष्यानुपूर्व्यनामकर्मोदयविदं पूर्वपरित्यक्तशरीरा-  
वगाहनाकाराऽपरित्यागमुंत्पुर्दारिदं तिर्ध्वचरोळु सूक्ष्मनिगोदलध्यपर्याप्तजीवशरीरावगाहनाकार- १०  
जघन्यघनांगुलाऽसंख्यातैकभागगुणितमनुष्यक्षेत्रं प्रथमविकल्पमक्कुं = ४५ ल ६ द्वितीयावि-  
४९ ०

विकल्पंगळुमेकैक प्रदेशोत्तरकर्मादिदं चतुर्गतिजरवागाहनाऽकारंगळु मध्यविकल्पंगळुगुत्त पोगि  
पंचेंद्रियपर्याप्तजीवोत्कृष्टावगाहनाकारं संख्यातघनांगुलगुणितप्रमितमिदु चरमविकल्पमक्कु  
= ४५ ल १ ६७ मिन्तागुत्तं विरलु आदी अंते सुद्धे वडिहहिदे रुवसंजुदे ठाणा एंदी सूत्रेष्टदिदं तंद  
४९

मनुष्यानुपूर्व्यविकल्पंगळुनितपुवु = ४५ ल ६ ७ ० देवानुपूर्व्यमुं देवगतिक्षेत्रविपाकियपुर्दारिदं ११  
४९ ०

तत्क्षेत्रं तेषां त्रसपर्याप्तापर्याप्तपंचेंद्रियत्वात् उत्पत्तियोग्यमनुष्यक्षेत्रवृत्तविष्कंभगुणितत्रसनालीप्रतरप्रमितं = ४५  
४९

ल । तत्समचतुरस्रं कुतो न गृह्यते मानुषोत्तराद्वह्निवृत्तः कोणेषु मनुष्याणामनुत्पत्तेः । आद्यषट्पृथ्वीनारकत्रस-  
त्वावरकर्मभूमितिर्यग्मनुष्यदेवानां तत्र गमनसमये तदायुर्गतिसहचरितानुपूर्व्यादयाज्जघन्यावगाहनेन गुणिते  
प्रथमविकल्पः = ४५ ल ६ उत्कृष्टावगाहनेन गुणिते चरमः = ४५ ल ६ ७ आदी अंते सुद्धे इत्यादिना  
४९ ०

होते हैं । मनुष्यगत्यानुपूर्वी मनुष्यक्षेत्र विपाकी है । मनुष्यक्षेत्र मनुष्योंके पर्याप्त अपर्याप्त २०  
पंचेन्द्रियपना होनेसे उनकी उत्पत्तिके योग्य पैतालीस लाख योजन प्रमाण गोल विष्कम्भसे  
गुणित त्रसनाली एक राजू प्रतर प्रमाण है । मानुषोत्तरसे बाहर चारों कोनोंमें मनुष्योंकी  
उत्पत्ति न होनेसे चौकोर क्षेत्र नहीं कहा है । आदिकी छह पृथिवियोंके नारकी, त्रस,  
स्थावर, कर्मभूमिया तिर्यच और मनुष्य तथा देव मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं । वे मनुष्यानु-  
पूर्वीके उदयसे अपना पूर्व आकार नहीं छोड़ते । अतः जघन्य अवगाहिना घनांगुलके २५  
असंख्यातवर्ग भागसे गुणा करनेपर पहला भेद और उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुलसे  
गुणा करनेपर अन्तिम भेद होता है । अतः 'आदी अंते सुद्धे' सूत्रके अनुसार अन्तमें-से

देवगतिक्षेत्रकृदयिसुगुमा देवगतिक्षेत्रप्रमाणमेनिते'दोडे देवकर्कळेल्लह' त्रसपर्याप्तपंचेंद्रियजोवंगळे-  
यप्पुदरिदं आ जीवंगळुत्पत्तियोग्य देवगतिक्षेत्रं विवक्षितज्योतिर्लोकावसानमादनवशतयोजन-  
गुणिततसनाळप्रतरमक्कु = ९०० शेषदेवक्षेत्रनोळु पुट्टुव जीवंगळुत्पंगळयप्पुदरिदं अविवक्षित-

४९

मक्कुमी भवनत्रयदेवगतिक्षेत्रदोळु पुट्टुव जीवंगळावावगतियरे'दोडे कर्मभोगभूमितिर्यक्पंचेंद्रिय-  
पर्याप्तकरु' कर्मभोगभूमिमनुष्यपर्याप्तकरु' पुट्टुवहळिदवावु जीवंगळुत्पट्टवेके'दोडे तद्गतिक्षेत्र-  
जननकारणाभावदिदल्लिल पुट्टुव तिर्यग्मनुष्यजीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतियिदं  
भवनत्रयदेवगतिक्षेत्रदोळुपुट्टुवहळि बर्पांगळु देवायुष्यदेवगतिनामकर्मोदयसहचरितदेवानुपूर्व्य-  
नामकर्मोदयविदं पूर्व परित्यक्तशरीरावगाहनाकारापरित्यागविदं, पंचेंद्रियपर्याप्तत्रसजीवशरीर-  
जघन्यावगाहनाकारं घनांगुलसंख्यातैकभागगुणितदेवगतिक्षेत्रमदु प्रथमविकल्पमक्कु = ९०० । ६

४९

१० द्वितीयादिविकल्पंगळुमेकैकप्रदेशोत्तरक्रमविदं पोगि तिर्यक्पंचेंद्रियपर्याप्तत्रसजीवोत्कृष्टावगाहनाकारं  
संख्यातघनांगुलविदं गुणितत्पट्ट क्षेत्रमदु चरमविकल्पमक्कु = ९०० । ६७ मन्तागुत्तं विरलु आवी

४९

अंते सुद्धेत्यादिसूत्रविदं तरत्पट्ट लब्धं देवानुपूर्व्यविकल्पंगळिनितप्पु = यो ९०० । ६१ १ वी

४९

१

१-  
एतावद्विकल्पं = ४५ ल ६ १ ० देवानुपूर्व्य क्षेत्रविपाकित्वात्तक्षेत्रं तेषां त्रसत्वाद्विवक्षितज्योतिर्लोका-  
१-४९ ०

वसाननवशतयोजनगुणितत्रसनालीप्रतरं = ९०० शेषदेवोत्पत्तिक्षेत्रं स्तोक्तवान्न विवक्षितं पंचेंद्रियपर्याप्त-  
४९

१५ तिर्यग्मनुष्याणामेव तत्र गमनकाले देवायुर्गतिसहचरितानुपूर्व्योदयेन घनांगुलसंख्येयभागेन गुणिते प्रथमविकल्पः  
= ९०० । ६ संख्यातघनांगुलैर्गुणिते चरमः— = ९०० । ६१ आदो अंते सुद्धे इत्यादिनानीतैतावद्विकल्पं  
४९ १ ४९

आदिको घटाकर एकका भाग देकर और एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने भेद मनुष्यानु-  
पूर्वीके हैं

२० देवानुपूर्वी देवक्षेत्रविपाकी है। और देव सब त्रस होते हैं अतः उनका क्षेत्र विवक्षित  
ज्योतिर्लोकके अन्तपर्यन्त नौ सौ योजनसे त्रसनालीके प्रतरक्षेत्रका गुणा करनेपर जो प्रमाण  
हो उतना जानना। देवोंका उत्पत्ति क्षेत्र थोड़ा है इससे उसकी विवक्षा यहाँ नहीं की है।  
ज्योतिषी देवोंकी ही मुख्यतासे कथन किया है। पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यक् और मनुष्य ही  
देवोंमें जन्म लेते हैं। देवगतिमें गमन करते समय देवायु और देवगतिके उदयके साथ  
देवानुपूर्वीके उदयसे पूर्व आकारका नाश न होनेसे उनकी जघन्य अवगाहनाको संख्यात  
२५ घनांगुलसे उक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर प्रथम भेद होता है। उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात  
घनांगुल प्रमाण है उससे गुणा करनेपर अन्तिम भेद होता है। सो 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि

नालकुमानुपूर्व्यगच्छे क्षेत्रविषयभेदं दमुत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पंगळादुर्विव मुन्तिन साधिकद्विगुणाऽ  
संख्यातलोकमतिज्ञानोत्तरोत्तरप्रकृतिगुणकारदोळ साधिकं माडिदोडे प्रकृतिसंग्रहमिन्तु प्रमाणवकु  
≡ ० ≡ ० २ मुळिदुत्तरप्रकृतिगळ उत्तरोत्तर प्रकृतिगळगुणपदेशमिल्लवे पोय्दु । इंतु प्रकृतिसंग्रह-  
रचनानुसारमागि व्याख्यानि सलपट्टुदु । बहुश्रुतरुगळिदं शोधिसलपडुवुदु ।

अनंतरं स्थितिविकल्पंगळमनवर स्थितिबंधाध्यवसायंगळगल्प बहुत्वमं पेळदपरु :—

तेहि असंखेज्जगुणा ठिदि अवसेसा हवति पयडीणं ।

ठिदिबंधज्जवसाणट्ठाणा ततो असंखगुणा ॥२५९॥

तैरसंख्येयगुणा स्थितिविशेषा भवति प्रकृतीनां । स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि ततोऽसंख्येय  
गुणितानि भवति ॥

प्रकृतिगळ सर्वस्थितिविकल्पंगळ तैरसंख्येयगुणितानि भवति तत्प्रकृतिसंग्रहभेदंगळं २०  
नोडलुमसंख्यातगुणितंगळपु । स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळ ततोऽ-  
संख्येयगुणितानि अशेषस्थितिविकल्पंगळं नोडलुमसंख्येयगुणितंगळपुवु अदेते दोडे विवक्षितैक-  
ज्ञानावरणविशेषोत्तरोत्तरप्रकृतिजघन्यस्थितियन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमवकुमदु संख्यात-  
पत्यप्रमितमवकु । प १ । मदर द्वितीयादिस्थितिविकल्पंगळ समयोत्तरवृद्धिक्रमदिदं पोगि चरम-  
स्थितिविकल्पमदं नोडलु संख्यातगुणमवकु । प १ १ । मन्तागुत्तं विरलु आदी । प १ । अन्ते । २५

स्यात् = १०० । १ १ १ अमीभिरानुपूर्व्योत्तरोत्तरभेदः प्रागानीतज्ञानावरणोत्तरभेदेषु साधिकोक्ततेषु  
१४९ १

प्रकृतिसंग्रहः एतावान् स्यात् ≡ ० ≡ ० २ शेषोत्तरप्रकृत्युत्तरोत्तरभेदानामुपदेशो नास्ति । इत्ययं संग्रहो  
रचनानुसारेण व्याख्यातो बहुश्रुतः शोधितव्यः ॥२५८॥

तैम्यः प्रकृतिसंग्रहभेदेभ्यः प्रकृतीनां सर्वस्थितिविकल्पा असंख्यातगुणा भवति । कुतः ? एकप्रकृति-

सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाकर एकका भाग देकर एक मिलानेपर जो प्रमाण २०  
हो उतने भेद देवगत्यानुपूर्वीके जानना । आनुपूर्वीके इन उत्तरोत्तर भेदोंको पूर्वोक्त ज्ञाना-  
वरणके उत्तरोत्तर भेदोंमें मिलानेसे प्रकृति संग्रह होता है । टीकाकारका लिखना है कि शेष  
प्रकृतियोंके उत्तरोत्तर भेदोंका उपदेश प्राप्त नहीं है । यह प्रकृतिसंग्रह रचनाके अनुसार  
किया है । बहुश्रुतोंको इसको शुद्ध कर लेना चाहिए ॥२५८॥

प्रकृतिसंग्रहसे प्रकृतियोंकी स्थितिके भेद असंख्यात गुने हैं । क्योंकि जघन्य स्थितिको २५  
उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटाकर एक समयसे भाग दे और उसमें एक मिलानेसे जघन्य स्थितिसे  
उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त एक-एक स्थितिके संख्यात पत्य प्रमाण भेद होते हैं । यदि एक स्थितिके  
भेद संख्यात पत्य प्रमाण होते हैं तो पूर्वोक्त सब उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेदोंकी स्थितिके  
भेद कितने होंगे ऐसा त्रैशिक करनेपर प्रकृति संग्रहके प्रमाणसे संख्यात पत्य गुणे स्थितिके  
भेद होते हैं । इन स्थितिके भेदोंसे स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात गुने हैं । जिन ३०

प १ १। सुद्धे। प १ १। वद्धिहिदे रुवसंजुदे ठाण । प १ १। एदितिनितु मेकप्रकृतिस्थिति-  
विकल्पंगळपुवतागुत्तं विरलु त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदे ते दोडेकप्रकृतिविकल्पन्किनितु स्थिति-  
विकल्पंगळगुत्तं विरलिनितु प्रकृतिविकल्पंगळगेनितु स्थितिविकल्पंगळक्कुमे दितु माडल्पडुत्तं विरलु

प्र १। फ प १ १ इ ≡ ० ० २ बंद लब्धं सर्वप्रकृति सर्वस्थितिविकल्पप्रमाणमक्कु

५ ≡ ० ≡ २ प १ १ महु कारणमागि सर्वप्रकृतिविकल्पंगळं नोडलुमवर स्थितिविकल्पंगळु  
संख्यातपत्यगुणितंगळपुदरिदमसंख्यातगुणितंगळं दु पेळल्पट्टुदी स्थितिविकल्पंगळं नोडलुमिवर  
स्थितिबंधनिबंधनकषायपरिणामस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकगुणितंगळपुवदे ते दोडे एक-

प्रकृतिस्थितिविकल्पंगळगे। प १ १। स्थितिबंधकारणकषायपरिणामस्थानंगळुमसंख्यातलोक-

प्रमितंगळपुववु द्रव्यमक्कु ≡ ० मा येकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळु स्थितिये बुदक्कु। प १ १।

१० मिवर नानागुणहानिशलाकेगळु पत्यच्छेदासंख्यातैकभागमात्रंगळक्कु छे मदक्कन्योग्याभ्यस्त-

विकल्पस्य यद्येतावन्तः— प १ १ स्थितिविकल्पाः तदेतावतां ≡ ० ≡ ० २ प्रकृतिविकल्पानां कति

स्थितिविकल्पाः स्युः ? इति त्रैराशिकेन संख्यातपत्यैगुणितत्त्वप्रसिद्धेः— ≡ ० ≡ ० १ २ प १ १ एभ्यः  
स्थितिविकल्पेभ्यः स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यातगुणितानि तद्यथा—एकप्रकृतिस्थितिबंधकारणकषाय-

परिणामा असंख्यातलोकाः द्रव्यं ≡ ० एकप्रकृतिस्थितिविकल्पाः स्थितिः प १ १ नानागुणहानिशलाकाः

१५ परिणामोंसे स्थितिबन्ध होता है उनके स्थानोंको स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान कहते हैं।  
इनका कथन अंकसंदृष्टिसे करते हैं—

२० एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण कषाय परिणाम इकतीस सौ ३१००। यह तो द्रव्य  
हुआ। उस एक प्रकृतिकी स्थितिके भेद चालीस ४०। यह स्थिति स्थान हुए। नाना गुण-  
हानि पाँच ५। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे अन्योन्या-  
भ्यस्त राशि हुई बत्तीस ३२। एक गुणहानिमें स्थितिका जो प्रमाण है वही गुणहानि आयाम  
है। सो नाना गुणहानि शलाकाका भाग सर्वस्थितिमें देनेपर जो प्रमाण हो उतना ही गुण-  
हानि आयामका प्रमाण जानना। सो नाना गुणहानि पाँच ५ का भाग स्थिति चालीस ४०में

राशियुं पत्यासंख्यातैकभागमक्कुं प गुणहान्यायाममुं नानागुणहानिशलाकाराशिमक्तस्थित्येक-

भागमक्कुमो गुणहान्यायाममं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कु प १ १ मित्तागुत्तं विरलु स्थिति-

विकल्पंगळोळु सर्वजघन्यस्थितिविकल्पस्थितिबंधनिबंधनकषायाध्यवसायस्थानंगळु सर्वतस्तोकं-  
गळुपुवंतादोडमसंख्यातलोकप्रमितंगळुपुवु  $\equiv$  ० पदहतमुखमादि धनमेदी राशियं गुणहानियं  
पदमेबुदा पदविदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानियोळादिधनमक्कु  $\equiv$  ० गु । व्येकपद पददोळेक- ५  
रूपं कळदोडे रूपोनगुणहानियक्कु । गु । मिदनादिसिदोडे रूपोनगुणहान्यद्वमक्कु । गु । मदं चयधनं २

माडिदोडेयिनितक्कु गु ।  $\equiv$  ० मी चयमुं वृद्धिविवक्षेयिदमादियं रूपाधिकगुणहानियिदं भागिसि-

दोडे चयमक्कु । हानिविवक्षेयादोडे दोगुणहानियिदमादियं भागिसिदोडे चयमक्कुमिल्लि वृद्धि-  
विवक्षितमपुर्वारिदं रूपाधिकगुणहानियिदं भागिसत्पट्टुवेबुदर्थं । गुणो गच्छः गच्छदिद गुणि-

पत्यच्छेदासंख्येयमागाः छे अन्योन्याभ्यस्तराशिः पत्यासंख्यातैकभागः प गुणहान्यायामः नानागुणहानि- १०  
० ०

शलाकाभक्तस्थितिमात्रः प १ १ अयं द्विगुणितो दोगुणहानिः प १ १ २ तेषु स्थितिविकल्पेषु सर्व-  
छे छे ० ०

जघन्यस्थितेनिबंधनकषायाध्यवसायाः सर्वतः स्तोका अपि असंख्यातलोकमात्राः  $\equiv$  ० 'पदहतमुखमादिधनं

$\equiv$  ० गु 'व्येकपदा गु धं गु धनेन रूपाधिकगुणहानिभक्तादिमात्रचयेन गु  $\equiv$  ० गुणो गच्छश्चयधनं १-  
२ गु

देनेपर आठ आये । आठ एक गुणहानि आयाम जानना । उसको दूना करनेपर दो गुणहानि  
आयाम होता है । उन स्थितिके भेदोंमें-से सबसे जघन्य स्थितिके बन्धके कारण कषाया- १५  
ध्यवसाय सबसे थोड़े हैं । उनका प्रमाण नौ ९ । 'पदहतमुखमादिधनं' इस सूत्रके अनुसार  
एक गुणहानि आयाम तो पद हुआ । उससे गुणित मुख अर्थात् आदि स्थान नौ ९ वह आदि-  
धन है । सो आदिधन  $८ \times ९ = ७२$  हुआ । एक अधिक गुणहानिका भाग आदिस्थानको  
देनेपर जो प्रमाण हो वह चय जानना । सो यहाँ गुणहानिका प्रमाण आठ, उसमें एक  
अधिक करने पर नौ हुए । उसका भाग आदिस्थान नौमें देनेपर एक आया । वही चय २०  
जानना । अतः एक-एक स्थानमें एक-एक बढ़ता कषायाध्यवसाय स्थान प्रथम गुणहानि-



सत्पट्टुदादोडे चयधनमक्कुं गु ॐ ०। गु उभयधनं कूडिदोडिदु प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कु।  
गु

ॐ ० गु गु ३ द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळु द्विगुणद्विगुणंगळुगुत्तं पोगि चरमगुणहानियोळु रूपोन-  
गु २

नानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकंगळु गुणकारंगळेषुवदनन्योन्याभ्यस्तं माडिदोडे अन्योन्याभ्यस्त-  
राश्यद्वं गुणकारमक्कु ॐ ० गु गु ३ प ० मिदंतधनमप्पुदरिदमन्तधणं गुणगुणियमेदु द्विगुणक्रम-  
गु २

५ मप्पुदरिदं गुणकारमेरडु रूपुगळवरिदं गुणिसिदोडेडिदु ॐ ० गु गु ३ प २ अपवर्तितमिदु  
गु २ ० २

गु ॐ ० गु तयोर्योगः प्रथमगुणहानिद्रव्यं ॐ ० गु १ गु ३ इदं प्रतिगुणहानिद्विगुणं द्विगुणं भूत्वा चरम-  
२ १- १-  
गु गु २

गुणहानौ रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकगुणमिति अन्योन्याभ्यस्तार्धगुणं स्यात् ॐ ० गु १ गु ३ प २ इदं अंतधणं  
१- १- ० २  
गु २

- पर्यन्त जानना । सो व्येकपदार्धधनचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' एक हीनगच्छके आधेको चयसे गुणा करें । फिर गच्छसे गुणा करें । जो प्रमाण हो उतना सर्व चयधन होता है । यहाँ
- १० गच्छ आठमें-से एक घटानेपर सात रहे । उसका आधा साढ़े तीन । उसे चयके प्रमाण एकसे गुणा करनेपर साढ़े तीन ही रहे । उसे गच्छके प्रमाण आठसे गुणा करनेपर अठाईस हुए । यह चयधन जानना । आदिधन और उत्तरधन मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य होता है । सो आदिधन बहत्तर और उत्तरधन २८ को मिलानेपर १०० हुए । यही प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य जानना । आगे प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता है—
- १५ १००, २००, ४००, ८००, १६०० । इस तरह एक कम नानागुणहानि प्रमाण बार दूना-दूना होता है । सो अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधेसे प्रथमको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो अन्तका प्रमाण जानना । यहाँ नानागुणहानि पाँच में-से एक घटानेपर चार रहे । सो चार जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए । इतना ही अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीसका आधा प्रमाण है । सोलहसे प्रथम स्थान सौको गुणा करनेपर सोलह सौ हुए ।
- २० इतना ही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना । इन सबको जोड़िए—

१. म °लवनन्यो° ।

ॐ ० गु गु ३। ५ आदिविहीणमेवादिधं कळेदोडिदु ॐ ० गु गु ३। ५ सर्वगुणहानिगळ  
२ ० २ ०

गु  
सर्वधनभक्कुमन्तरं त्रैराशिकं माडल्पडुगुमवेते बोडे :—एकप्रकृतिस्थिति विकल्पंगळि नितवके  
स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळि नितगुत्तं विरलु इति तु प्रकृतिस्थिति विकल्पंगळगे नितु स्थितिबंधा-

ध्यवसायस्थानंगळपुवेदु त्रैराशिकं माडि प्र ५ १ १ क ॐ ० गु गु ३ ५ इ ॐ ० ० २ ५ १ १  
२ ० २ ०  
गु

गुणगुणियं ॐ ० गु १ गु ३ ५ २ अपवर्तितं ॐ ० गु १ गु ३ ५ आदिविहीणमिति ॐ ० गु १ गु ३ ५ ५  
१-२ ० २ १-२ ० १-१-०  
गु गु २

सर्वगुणहानिघनं स्यात् । एकप्रकृतिस्थिति विकल्पानामेषां ५ १ १ यद्येतावन्तः ॐ ० गु १ गु ३ ५  
१-२ ०  
गु

स्थितिबंधाध्यवसायाः तदा एतावतां ॐ ० ॐ ० २ ५ १ १ स्थिति विकल्पानां कति स्थितिबंधाध्यवसायाः

‘अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तर भजियं’ यह सूत्र जहाँ प्रत्येक स्थानका गुणकार समान होता है उनके जोड़ करनेके लिए है। सो गुणा करते-करते अन्तमें जो प्रमाण आवे उसको गुणकारसे गुणा करके उसमें-से आदि घटा दें। जो प्रमाण आवे उसको एक हीन उत्तरसे भाग देनेपर सर्वधन होता है। यहाँ अन्तस्थानका प्रमाण सोलह सौ १६०० और दूना-दूना किया था, इससे गुणकारके प्रमाण दोसे गुणा करनेपर बत्तीस सौ ३२०० सौ हुए। उसमें आदि का प्रमाण सौ घटानेपर इकतीस सौ रहे। यहाँ दूना-दूना किया है इससे उत्तरका प्रमाण दो हुआ। उसमें-से एक घटानेपर एक रहा। उसका भाग देनेपर इसतीस सौ ही रहे। सो पाँचों गुणहानिका जोड़ है। इस तरह एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण इकतीस सौ जानना। १५

यह तो अंक संदृष्टिसे कहा है। अब यथार्थ कथन करते हैं—एक प्रकृतिके स्थिति-बन्धके कारण असंख्यातलोक प्रमाण कषायाध्यवसाय हैं सो द्रव्य जानना। एक प्रकृतिकी जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त संख्यात पत्य प्रमाण स्थितिके भेद हैं। सो स्थिति स्थान जानना। नानागुणहानि पत्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग मात्र है। अन्योन्या-भ्यस्त राशि पत्यके असंख्यातवें भाग है। नानागुणहानिशलाकाका स्थितिमें भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसे गुणहानि आयाम जानना। उसको दोसे गुणा करनेपर दो गुणहानि होती है। २०

वद लब्धं सर्वप्रकृतिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायप्रमाणमवकु  $\equiv a \equiv a \text{ २ } \equiv a$  गु गु ३ प  
 २ a  
 गु

मनु कारणमागि सर्वप्रकृतिस्थितिबिक्लपंगळं नोडलु स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळमसंख्यातलोक-  
 गुणमंडु पेळलपट्टुदी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगनुवृष्टिविधानमुंडपुदीयलपयहुत्वकथनदोळ  
 प्रस्तुतमल्लपुवरिदं पेळलपडु मुंदे पेळलपडुगु ।

५ अनंतरमनुभागबंधाध्यवसायंगळं कर्मप्रदेशंगळमलपयहुत्वमं मुंदण सूत्रदिदं पेळलपडु ।

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो ।

एत्तो अणंतगुणिदा कम्मपदेसा मुणेदव्वा ॥२६०॥

अनुभागानां बंधाध्यवसायोऽसंख्यलोकगुणितोऽतः । इतोऽनन्तगुणिताः कर्मप्रदेशा  
 मन्तव्याः ॥

१० स्युः ? इति त्रैराशिकेन एषां—  $\equiv a \equiv a \text{ २ } \equiv a$  गु । गु ३ प स्थितिबिक्लपेभ्योऽसंख्यातलोकगुणि-  
 १— २ a  
 गु २

तत्त्वदर्शनात् । तेषां स्थितिबंधाध्यवसायानामनुकृष्टिविधानमस्त्यपि अत्राप्रस्तुतत्वान्नोक्तम् । अग्रे वक्ष्यति ॥२५९॥

सब स्थितिके भेदोंमें जधन्य स्थितिबन्धके कारण कषायाध्यवसाय स्थान सबसे थोड़े हैं । वे  
 असंख्यात लोकमात्र हैं । 'पदहतमुखमादिधनं' अर्थात् आदिस्थानको गळसे गुणा करनेपर  
 आदि धन होता है । एक अधिक गुणहानि आयामका भाग आदिमें देनेपर चयका प्रमाण  
 होता है । आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्व द्रव्य होता है । सो  
 प्रत्येक गुणहानिमें दूना-दूना होते-होते अन्तमें एक कम नानागुणहानि प्रमाण दूना होनेपर  
 अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधे प्रमाणसे आदिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अन्तकी  
 गुणहानिका द्रव्य जानना । सो 'अंतधर्णं गुणगणियं आदिविहीणं रुडणुत्तरं भजियं' इस सूत्र-  
 के अनुसार अन्तमें जो प्रमाण हुआ उसको गुणाकार दोसे गुणा करके उसमें-से आदिका  
 प्रमाण घटावे । उत्तरके प्रमाण दोमें एक घटानेपर एक रहा । उससे भाग देनेपर उतना ही  
 रहा । इस तरह करनेपर जो प्रमाण रहा उसे सर्वगुणहानिका धन जानना । एक प्रकृतिके  
 संख्यातपल्यप्रमाण स्थिति भेद और उनके इतने असंख्यातलोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसाय  
 स्थान हुए तो सर्व उत्तरोत्तर प्रकृति संग्रहके भेदोंके कितने स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हुए  
 इस प्रकार त्रैराशिक करनेसे स्थितिके भेदोंसे असंख्यातलोक गुने होते हैं । इन स्थितिबन्धा-  
 ध्यवसाय स्थानोंमें अधःप्रवृत्तकरणकी तरह अनुकृष्ट विधान होता है सो आगे कहेंगे । यहाँ  
 मुख्य कथन न होने से नहीं कहा ॥२५९॥

इन सब स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंसे अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक  
 गुने होते हैं । वही कहते हैं—

अतः तत्सर्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळं नोडलुमनुभागबंधाध्यवसायस्थानगळुमसंख्यात-  
लोकगुणितंगळपुवु । इतः पिवं नोडलुं कर्मप्रदेशंगळुमनंतगुणितंगळपुवे दितु मंतव्यंगळपुवलि-  
जघन्यस्थितिबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळो अनुभागबंधाध्यवसायंगळु असंख्यातलोक-  
गुणितासंख्यातलोकप्रमितंगळु द्रव्यमक्कु  $\equiv a \equiv a$  मा जघन्यस्थितिबंधनिबंधनासंख्यातलोकमात्र-  
षट्स्थानगतस्थितिबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळु स्थितिये बुदक्कु ।  $\equiv a$  ५  
नानागुणहानिशलाकेगळुमावत्यसंख्यातैकभागमक्कु २ मी नानागुणहानिशलाकेगळिवं स्थितियं  
भागिसिदोडे गुणहान्यायाममक्कु  $\equiv a$  मी गुणहान्यायाममं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कु  $\equiv a$  । २  
नानागुणहानिशलाकेगळो द्विकमिनित्तु वर्गितसंवर्ग माडुत्तिरलुमन्योन्याभ्यस्तराशियुमावत्य-  
संख्यातैकभागमेयक्कु । २ । मिन्तागुत्तं विरलु संकलितधनं तरलपडुगुमदेते दोडे जघन्यस्थिति-  
बंधकारणस्थितिबंधाध्यवसायंगळ जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानदोळनुभागबंधाध्यवसायस्थान- १०  
विकल्पंगळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळु स्तोकंगळिवु  $\equiv a \equiv a$  मुखमे बुदक्कु । पदहतमुखमाविधनमेदु  
मुखमं गुणहानियिवं गुणिसिदोडादिधनमक्कु ।  $\equiv a \equiv a$  गु । व्येकपदादुंनचयगुणो गच्छः उत्तर-  
धनमेदु गुणहानियोळोदु रूपं कळेदद्विसि चयदिवं गुणिसि गुणहानियिवं गुणिसिदोडे चयधनमक्कु ।

एभ्यः सर्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थानेभ्यः अनुभागबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यातलोकगुणितानि । तद्यथा-  
जघन्यस्थितिबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायसंबंधनुभागबंधाध्यवसायाः असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकमात्राः । १५  
द्रव्यं  $\equiv a \equiv a$  जघन्यस्थितिबंधाध्यवसाया असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगता अप्यसंख्यातलोकाः । स्थितिः  
 $\equiv a$  नानागुणहानिशलाकाः आवत्यसंख्यातैकभागः २ ताभिर्भक्तस्थितिगुणहान्यायामः  $\equiv a$  अयं द्विगु-  
गितो दोगुणहानिः  $\equiv a$  २ आवत्यसंख्यातैकभागोन्योन्याभ्यस्तराशिः २ । अत्र जघन्यस्थितिबंधाध्यव-  
सायस्थाने अनुभागबंधाध्यवसाया असंख्यातलोकाः सर्वतः स्तोकाः  $\equiv a \equiv a$  गुत्तमित्युच्यते । पदहतमुख-

जघन्य स्थितिबन्धके कारण जो कषायाध्यवसाय स्थान हैं उन सम्बन्धी अनुभागा- २०  
ध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकसे असंख्यात लोकको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने हैं ।  
वही यहाँ द्रव्य जानना । जघन्य स्थितिबन्धके कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान  
असंख्यात लोकवार षट्स्थान कृद्विको लिये हुए हैं तथापि असंख्यात लोक मात्र ही हैं । उन्हें  
यहाँ स्थिति स्थान जानना । नानागुणहानि शलाका आवलीको दो बार असंख्यातसे भाग  
दे उतनी हैं । नानागुणहानिका भाग स्थिति स्थानमें देनेपर जो लब्ध आवे उतना एक गुण- २५  
हानिका आयाम होता है । उसको दूना करनेपर दो गुणहानि होती है । आवलीके असंख्यातसे  
भाग प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि है । यहाँ जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानमें  
अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं । वे सबसे थोड़े हैं । उनको मुख कहें ।

गु  $\equiv$  ०  $\equiv$  १ गु मी चयधनमुमनादिधनमुमं कूडिदोडुभयधनमुं प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमिदादि-

धनमक्कु  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु गु ३ द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमदिवं पोगि चरम-

गुणहानियोळु रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रद्विकंगळु गुणकारंगळपुर्दरिदमवनन्योन्याभ्यासं  
माडुत्तं विरलु लब्धमावल्यसंख्यातैकभागप्रमितमप्प अन्योन्याभ्यस्तराश्यद्वं गुणकारमक्कु

५  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु गु ३ २ मिदन्तधनमप्पुर्दरिदमन्तधनं गुणगुणियं एंदु अन्तधनमं गुणकारदिवं

गुणिसिदोडिदु  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु गु ३ २ २ अपवर्त्तितमिदु  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु ३ २ आदिविहीनमं दि-

मादिधनं  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु 'व्येकपदार्धधनचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' - गु  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु तयोर्योगः प्रथमगुण-

हानिद्रव्यं  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु ३ प्रतिगुणहानि द्विगुणद्विगुणक्रमेण चरमगुणहानौ रूपोननानागुणहानिमात्रद्वि-

कगुणितमित्यन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धं गुणकारः स्यात् ।  $\equiv$  ०  $\equiv$  ० गु ३ २ इदमन्तधनं गुणगुणियं  $\equiv$  ०

- १० 'पदहतमुखमादिधनं' अर्थात् पद-गुणहानि आयामसे मुखको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसे आदिधन जानना । 'व्येकपदार्धधनचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'—एक हीन पद जो गुणहानि आयाम है, उसको आधा करें तथा चयसे गुणा करें, जो प्रमाण हो उसको पदसे गुणा करें । ऐसा करनेसे जो राशि आवे उसे चय धन जानो । आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य होता है । और आगे क्रमसे प्रत्येक गुणहानिमें दूना-  
१५ दूना होता जाता है । एक हीन नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका आधा प्रमाण होता है । उससे प्रथम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर अन्तिम गुणहानिका सर्वद्रव्य होता है । तथा 'अन्तधनं गुणगुणियं आदिविहीनं रूपगुणत्तर भजियं', इस सूत्रके अनुसार अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणाकार दोसे गुणा करें । गुणा करनेसे जो आवे उसमें-से प्रथमगुणहानिका द्रव्य घटावे । तथा उत्तर दोमें-से  
२० एक घटानेपर एक शेष रहा, उससे भाग देनेपर उतना ही रहा । ऐसा करनेसे जो प्रमाण

दरोळादियं कळेदोडे  $\equiv ० \equiv ०$  गु गु ३ २ ई राशि जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगु-  
भागबंधाध्यवसायस्थानंगळपुविन्नु त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदेतेदोडे एकजघन्यस्थितिविकल्प-  
वकनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळनितागुसं विरलिनितु स्थितिविकल्पंगळगेनितु अनुभाग-  
बंधाध्यवसायस्थानंगळवकुमेंदितु त्रैराशिकं माडुतविरलु प्र १ प  $\equiv ० \equiv ०$  गु गु ३ २  
गु २ ०

इ  $\equiv ० \equiv ०$  २ प १ १ वंद लब्धं सर्वस्थितिविकल्पंगळगुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पं-  
गळपुवु  $\equiv ० \equiv ०$  २ प १ १  $\equiv ० \equiv ०$  गु गु ३ २ अडु कारणमागि सर्वस्थितिबंधाध्यव-  
सायस्थानविकल्पंगळं नोडलनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळमसंख्यातलोकगुणितंकेवु परमा-  
५

$\equiv ०$  गु १ गु ३ २ २ अपवर्तितं  $\equiv ० \equiv ०$  गु १ गु ३ २ आदिविहीणमिति  $\equiv ० \equiv ०$  गु १  
२ ० २ १- २ १- गु १- गु

१- २ जघन्यस्थितेः स्थितिबंधाध्यवसायानां अनुभागबंधाध्यवसायस्थानप्रमाणं स्यात् । एकस्थिति-  
२ ०  
विकल्पस्य अनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पा एतावन्तः तदा एतावतां स्थितिविकल्पानां कति अनुभागबंधाध्य- १०

वसायस्थानानीति त्रैराशिकेन-प्र-१ फ-  $\equiv ० \equiv ०$  गु गु ३ २ इ-  $\equiv ० \equiv ०$  २ प १ १  
१- २ ० गु

लब्धानां एतावन्मात्रत्वात्  $\equiv ० \equiv ०$  २ प १ १  $\equiv ० \equiv ०$  गु १ गु ३ २ एभ्योऽनुभागबंधाध्य-  
१- २ ० गु

हुआ, उतना सब गुणहानियोंका द्रव्य हुआ । सो जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानसम्बन्धी  
अनुभागाध्यवसाय स्थानोंका इतना प्रमाण होता है । जो एक स्थिति भेदके अनुभागाध्यव-  
साय स्थानके भेद इतने हुए तो पूर्वोक्त सब स्थिति भेदोंके अनुभागाध्यवसाय स्थानके कितने  
भेद हुए । इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर लब्धराशिका जो प्रमाण होता है वह स्थितिबन्धा-  
ध्यवसाय स्थानोंसे असंख्यात गुणा होता है । १५

गमदोळपेळत्पट्टुदिन्नु कम्मप्रदेशंगळ प्रमाणसरिळपडुगुमदे ते दोडे मध्यमयोगाज्जितसमयप्रबद्धं  
द्रव्यमाबाधारहितकम्मस्थितिसंख्यातपत्तं स्थितिपत्त्यवर्गशलाकाद्धंछेदराशिहीनपत्त्याद्धंछेद-  
राशिनानागुणहानिभाजितस्थितिगुणहानिद्विगुणितगुणहानि दोगुणहानि नानागुणहानिप्रमितद्विक-  
संवर्गसंजनितस्ववर्गशलाकाभक्तपत्त्यमन्योन्याभ्यस्तराशियवकुमिवक्के यथाक्रमदिदमंकसंदृष्टियु-

५ मत्थंसंदृष्टियुमिदु :-

| द्रव्य ६३०० | स्थिति १४८ | नाना ६  | गुणहानि ८        | दोगुण १६         | अन्योन्या ६४ |
|-------------|------------|---------|------------------|------------------|--------------|
| स ०         | प १        | छे-व छे | प १।२<br>छे व छे | प १।२<br>छे-व छे | प<br>व       |

अनंतरं त्रिकोणरचनास्वरूपदिदमिदं कम्मप्रदेशंगळ संकलितधनं तरत्पडुगुमा त्रिकोण-  
रचनास्वरूपमे ते दोडनादिबंधनबद्धगळितावशेषसमयप्रबद्धंगळाबाधारहितोत्कृष्टकम्मस्थितिसमति-  
कोटीकोटिसागरोपमप्रमितंगळु विवक्षितवर्तमानसमयदोळेकैकनिषेकाधिकक्रमदिदं पोगि चरमसमय  
प्रबद्धदोळाबाधारहितोत्कृष्टकम्मस्थितिप्रमितनिषेकंगळप्पुवा समयप्रबद्धचरमगुणहानिचरमनिषेकं

१० वसायेम्यः कर्मप्रदेशाः अनंतगुणाः तद्यथा—

अनादिबंधनबद्धगळितावशेषसमयप्रबद्धानां आबाधारहितोत्कृष्टस्थितिः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपम-  
प्रमिता, विवक्षितवर्तमानसमये एकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा चरमसमयप्रबद्धे आबाधारहितोत्कृष्टस्थितिप्रमित-

इन अनुभागाध्यवसाय स्थानोंसे कर्मके प्रदेश अर्थात् कर्मपरमाणु अनन्त गुणे हैं।  
उसे ही अंक संदृष्टिसे दिखाते हैं—

- १५ एक समयमें जितने परमाणु बँधते हैं उसे समयप्रबद्ध कहते हैं। उनका प्रमाण  
तेरसठ सौ ६३००। कर्मकी स्थितिका प्रमाण अड़तालीस समय सौ स्थिति ४८। नानागुण-  
हानि ६। एक-एक गुणहानिमें जितनी स्थिति हो वह गुणहानि आयाम आठ। नानागुणहानि  
प्रमाण दोके अंक रख उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि चौंसठ। गुणहानि  
आयामको दूना करनेपर दो गुणहानिका प्रमाण सोलह। एक हीन अन्योन्याभ्यस्त राशि  
२० त्रेसठका भाग सर्वद्रव्य तेरसठ सौ में देनेपर सौ आया। सो अन्तकी गुणहानिका प्रमाण है।  
उससे दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त होता है। सो आधा अन्योन्याभ्यस्त राशिसे  
अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका द्रव्य आता है। सो बत्तीससे  
सौको गुणा करनेपर बत्तीस सौ होते हैं यही प्रथम गुणहानिका द्रव्य है। इससे दूसरी आदि  
गुणहानियोंका द्रव्य आधा-आधा होता है—३२००। १६००। ८००। ४००। २००। १००।  
२५ प्रथम गुणहानि सम्बन्धी द्रव्यको गुणहानि आयामसे भाग देनेपर मध्यधन होता है। सो  
बत्तीस सौमें आठसे भाग देनेपर चार सौ आये। यह मध्यधन है। एक हीन गुणहानि  
आयामके आधे प्रमाणको निषेक भागहारूप दो गुणहानिमें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे  
उसका भाग मध्यधनमें देनेपर जो प्रमाण आवे सो चयका प्रमाण जानना। सो एक हीन  
गुणहानि आयाम सातका आधा साढ़े तीनको दो गुणहानि सोलहमें-से घटानेपर साढ़े बारह

३० १. बं पमाणि, विं ।

मोदलगोडधोधोनानागुणहानिगळोळु प्रथमगुणहानिप्रथमोदयनिषेकपर्यन्तमिळिदु तत्प्रथमनिषेक-  
मादियागितिर्ग्यन्तमसप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाबाधारहितकर्मस्थिति प्रमितगळितावशेषसमयप्रबद्ध-  
गळोळैकनिषेकगळुदयिसलुदयवकेकसमयप्रबद्धमक्कुमा त्रिकोणरचनासंदृष्टियिदु :—

| चरमगुणहानि |  |  |  |  |  |  |  |                                |  |
|------------|--|--|--|--|--|--|--|--------------------------------|--|
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९।                             |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९। १०।                         |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९। १०। ११।                     |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९। १०। ११। १२।                 |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९। १०। ११। १२। १३।             |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९। १०। ११। १२। १३। १४।         |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५।     |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ० ० ० ० ० ० ० ०                |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ० ० ० ० ० ० ० ०                |  |
|            |  |  |  |  |  |  |  | ० ० ० ० ० ० ० ०                |  |

|                                                                     |     |
|---------------------------------------------------------------------|-----|
| ००० १४४।१६०।१७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।                                | प्र |
| ९। ००० १६०।१७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।                             | थ   |
| ९। १०। ००० १७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।                         | म   |
| ९। १०। ११। ००० १९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।                 | गु  |
| ९। १०। ११। १२। ००० २०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।             | ण   |
| ९। १०। ११। १२। १३। ००० २२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।             | हा  |
| ९। १०। ११। १२। १३। १४। ००० २४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।         | नि  |
| ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। ००० २५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।     |     |
| ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। ००० २८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।५१२। |     |

निषेका भवन्ति । तत्समयप्रबद्धचरमगुणहानिचरमनिषेकादारम्याधोधो नानागुणहानिषु प्रथमगुणहानिप्रथमोदय-  
निषेकपर्यन्तमवतीर्य तत्प्रथमनिषेकमादि कृत्वा तिर्यगाबाधोनितीत्कृष्टस्थितिप्रमितगळितावशेषसमयप्रबद्धेवैक-  
निषेकेषु दीयमानेषु एकनिषेकसमयप्रबद्ध उदेति तत्त्रिकोणरचनासंदृष्टिः—

रहे । उसका भाग मध्यधन चार सौमें देनेपर बत्तीस आये । यही प्रथम गुणहानिमें चयका  
प्रमाण है । इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो आदिनिषेक जानना ।  
सो बत्तीसको सोलहसे गुणा करनेपर पाँच सौ बारह प्रथम निषेक जानना । उसमेंसे एक  
चय बत्तीस घटानेपर चार सौ अस्सी दूसरा निषेक हुआ । इसी प्रकार प्रथम गुणहानिके  
अन्तिम निषेक पर्यन्त घटाना । प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकमेंसे प्रथम गुणहानि  
सम्बन्धी चय घटानेपर प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे आधा प्रमाण होता है । वही  
द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक है । इसमें द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी एक-एक चय घटानेपर  
द्वितीयादि निषेक होते हैं । प्रथम गुणहानिसे द्वितीय गुणहानिमें चयका तथा निषेकोंका  
प्रमाण आधा होता है । उसके अन्तिम निषेकमेंसे द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी एक चय घटाने-  
पर तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक होता है । उसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि  
निषेक होते हैं । यहाँ भी चय तथा निषेकोंका प्रमाण दूसरी गुणहानिसे आधा जानना । इसी  
तरह प्रत्येक गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है । गुणहानि यन्त्र इस प्रकार है—



|    |     |     |     |     |     |     |     |
|----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
|    |     |     |     |     |     |     | ९१  |
|    |     |     |     |     |     | ९१  | १०१ |
|    |     |     |     |     |     | ९१  | १११ |
|    |     |     |     |     | ९१  | १०१ | १२१ |
|    |     |     |     | ९१  | १०१ | १११ | १३१ |
|    |     |     | ९१  | १०१ | १११ | १२१ | १४१ |
|    |     | ९१  | १०१ | १११ | १२१ | १३१ | १५१ |
| ९  | १०१ | १११ | १२१ | १३१ | १४१ | १५१ | १६१ |
| ०  | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   |
| ०  | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   |
| ०  | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   |
| ९१ | ००० | १६० | १७६ | १९२ | २०८ | २२४ | २४० |
| ९१ | १०१ | ००० | १७६ | १९२ | २०८ | २२४ | २४० |
| ९१ | १०१ | १११ | ००० | १९२ | २०८ | २२४ | २४० |
| ९१ | १०१ | १११ | १२१ | ००० | २०८ | २२४ | २४० |
| ९१ | १०१ | १११ | १२१ | १३१ | ००० | २२४ | २४० |
| ९१ | १०१ | १११ | १२१ | १३१ | १४१ | ००० | २४० |
| ९१ | १०१ | १११ | १२१ | १३१ | १४१ | १५१ | ००० |
| ९१ | १०१ | १११ | १२१ | १३१ | १४१ | १५१ | १६१ |

| गुणहानि क्रम    | चय का प्रमाण | निषेको का प्रमाण                                     | सर्व द्रव्य का प्रमाण | चतुर्थ गुणहानि | ४ | ६४<br>६०<br>५६<br>५२<br>४८<br>४४<br>४०<br>३६ | ४०० |
|-----------------|--------------|------------------------------------------------------|-----------------------|----------------|---|----------------------------------------------|-----|
| प्रथम गुणहानि   | ३२           | ५१२<br>४८०<br>४४८<br>४१६<br>३८४<br>३५२<br>३२०<br>२८८ | ३२००                  |                |   |                                              |     |
| द्वितीय गुणहानि | १६           | २५६<br>२४०<br>२२६<br>२०८<br>१९२<br>१७६<br>१६०<br>१४४ | १६००                  | पंचम गुणहानि   | २ | ३२<br>३०<br>२८<br>२६<br>२४<br>२२<br>२०<br>१८ | २०० |
| तीसरी गुणहानि   | ८            | १२८<br>१२०<br>११२<br>१०४<br>९६<br>८८<br>८०<br>७२     | ८००                   | षष्ठम गुणहानि  | १ | १६<br>१५<br>१४<br>१३<br>१२<br>११<br>१०<br>९  | १०० |

इसका आशय इस प्रकार है—

समयप्रबद्ध तिरसठ सौ कर्मवर्गणा बन्धरूप हुई। उनका आबाधाकाल रहित शुद्ध स्थिति अड़तालीस समय। पहले समयमें पाँच सौ बारह परमाणु खिरे। पीछे बत्तीस-बत्तीस घटते हुए खिरे। प्रथम गुणहानिके कालमें बत्तीस सौ परमाणु खिरे। द्वितीय गुणहानिके प्रथम समयमें दो सौ छप्पन खिरे। पीछे सोलह-सोलह घटते हुए खिरे। इस तरह द्वितीय गुणहानिमें सर्व परमाणु सोलह सौ खिरे। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिमें आधे-आधे खिरे। इस तरह सब गुणहानियोंमें त्रिसठ सौ परमाणु खिरते हैं। इसी प्रकारसे यथार्थ रूपमें भी जानना। यहाँ मोहनीय कर्म की अपेक्षा दिखाते हैं—

मोहनीय कर्मके परमाणु एक समयप्रबद्धमें जितने बँधते हैं उतना द्रव्यका प्रमाण जानना। मोहनीय कर्मकी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर। उसमें-से आबाधा काल घटाने-पर जो प्रमाण रहे उसमें जितने समय हों उतनी स्थिति जानना। पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदीको पल्यके अर्धच्छेदोंमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतना नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण है। इसका भाग उक्त स्थितिमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना एक गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। उसको दूना करनेपर दो गुणहानि आयाम होता है। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण होता है। सो ऊपर अंकसंदृष्टिमें जैसा कहा है तदनुसार करते हुए गुणहानियोंमें और निषेकोंमें जितना द्रव्यका प्रमाण आवे सो जानना। सो आबाधाकाल बीतनेपर प्रथम समयमें तो प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण हो, उतने परमाणु खिरते हैं। दूसरे समयमें दूसरे निषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण है उतने परमाणु खिरते हैं।

इस प्रकार एक गुणहानिके जितने समय होते हैं उतने समयोंमें प्रथम गुणहानिका जितना द्रव्य होता है उतने परमाणु खिरते हैं। इसी क्रमसे प्रत्येक गुणहानिमें आधे-आधे खिरते हैं। सर्वगुणहानियोंमें सम्पूर्ण समयप्रबद्ध इस क्रमसे खिर जाता है। इस प्रकार जो समयप्रबद्ध बँधता है उसकी निर्जरा होनेका यह विधान है। तथा प्रतिसमय एक समय-प्रबद्ध नवीन बँधता है। जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि होनेसे पूर्वोक्त प्रकारसे प्रति-समय बन्ध और निर्जरा होते हुए भी जीवके कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध सदा सत्तामें रहता है। अर्थात् गुणहानि आयामके प्रमाणको ड्योढा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें कुछ प्रमाण कम करके उससे समयप्रबद्धके प्रमाणको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने कर्म परमाणुओंकी सत्ता जीवके सदा रहती है।

प्रति समय एक-एक समयप्रबद्धका बन्ध और एक-एक समयप्रबद्धका उदय होते रहते डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धकी सत्ता कैसे रहती है और कैसे एक समयप्रबद्धका उदय होता है, इस बातको अंक संदृष्टिके द्वारा त्रिकोण रचना करके दिखाते हैं—

इस रचनामें नीचेकी पंक्तिमें नौ आदि आठ निषेक लिखे हैं। बीचके बत्तीस निषेक न लिखकर बिन्दीके चिह्न दिये हैं फिर दो सौ अठासी आदि निषेक लिखे हैं। इसी प्रकार ऊपरकी पंक्तियोंके बीचमें भी बिन्दियोंके चिह्नसे बीचके निषेक जानना। आठ पंक्तियोंके ऊपर बिन्दीके चिह्नों द्वारा बत्तीस पंक्तियाँ एक-एक निषेक घटते हुए जाननी। जीवकाण्डके योगमार्गणा अधिकारमें यह त्रिकोण रचना सम्पूर्ण दी गयी है। यहाँ संक्षेपमें लिखनेके कारण बीचमें बिन्दियोंके चिह्न दिये हैं।

[illegible]

इस त्रिकोण रचनाका अभिप्राय इस प्रकार है—त्रेसठ सौ परमाणु प्रमाण जो समय-प्रबद्ध बँधा, आबाधाकाल छोड़कर वह अड़तालीस समयकी स्थितिमें क्रमसे इस प्रकार खिरता है—५१२।४८०।४४८।४१६।३८४।३५२।३२०।२८८। यह प्रथम गुणहानि हुई। २५६।२४०। २२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४। यह दूसरी गुणहानि हुई। १२८।१२०।११२।१०४।९६।८८।८०। ७२। यह तीसरी गुणहानि हुई। ६४।६०।५६।५२।४८।४४।४०।३६। यह चतुर्थ गुणहानि हुई। ३२।३०।२८।२६।२४।२२।२०।१८। यह पंचम गुणहानि हुई। १६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९। यह षष्ठम गुणहानि हुई। इन लहौं गुणहानियोंमें त्रेसठ सौ परमाणु इस प्रकार खिरते हैं।

१० कोई भी निषेक सत्तामें नहीं रहा। सब उदयमें आकर खिर गये। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक सैंतालीस समय हुए हैं उसके सैंतालीस निषेक तो खिर गये। एक अन्तका निषेक रहा। सो त्रिकोण रचनामें नौ परमाणु रूप अन्तका निषेक ऊपर लिखा है। उसके नीचे जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक छियालीस समय हुए उसके छियालीस निषेक तो खिर गये दो निषेक सत्तामें रहे। सो त्रिकोण रचनामें नौ और दस परमाणुके दो निषेक लिखे। उसके नीचे जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक पैंतालीस समय हुए उसके पैंतालीस निषेक खिर गये तीन निषेक सत्तामें रहे। सो त्रिकोण रचनामें नौ, दस और ग्यारह परमाणुके तीन निषेक लिखे। इसी प्रकार जिस-जिस समय-प्रबद्धका बन्ध हुए एक-एक समय कम हुआ है उसके एक-एक घटते हुए समयप्रबद्ध तो खिर गये, शेष एक-एक अधिक निषेक सत्तामें रहे। उनको नीचे-नीचे लिखा। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक एक समय हुआ हो उसका एक निषेक तो खिर गया शेष सैंतालीस निषेक रहे। वे नौ से लगाकर चार सौ अस्सी परमाणुके निषेक पर्यन्त लिखे हैं। उसके

ई त्रिकोणरचनेय चरमगुणहानिधनं तरल्पडुगुमदेतेदोडे चरमनिषेकमोदु ९ अनंतरा-  
घस्तन द्विचरमनिषेकंगळरेडु ९। १०। तदनंतराघस्तन त्रिचरमनिषेकंगळ मूरु ९। १०। ११।  
इतेकैकनिषेकंगळ द्विकंगळधिकंगळगुत्तं पोगि चरमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्ध  
प्रतिबद्धनिषेकंगळ गुणहानिप्रमितंगळपुवु। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६।  
यितिरुत्तं विरलु चरमनिषेकसमानमपंतु अधस्तनाधस्तननिषेकंगळोळई चरमगुणहानिचयंगळं  
तेगदु तेगदु तंतम्म सदृशनिषेकसंख्यागळ पाद्वंदोळु स्थापिसुत्तं विरलु चरमगुणहानियोळु सदृश-  
निषेकंगळ गच्छप्रमितंगळगुत्तं पोपुवु। तत्तच्चयंगळं रूपोनगच्छसंकलनप्रमितंगळगुत्तं पोपुवपु-  
वरिवं द्विकवारसंकलनक्रमंगळपुवु। संदृष्टिः—

एकवार द्विकवार

| = |   | =     |
|---|---|-------|
| ९ | १ | ०     |
| ९ | २ | १। १  |
| ९ | ३ | १। ३  |
| ९ | ४ | १। ६  |
| ९ | ५ | १। १० |
| ९ | ६ | १। १५ |
| ९ | ७ | १। २१ |
| ९ | ८ | १। २८ |

अस्याश्चरमगुणहानौ चरमनिषेकः एकः ९। अस्याधस्तनौ द्विचरमनिषेकौ द्वौ ९। १०। त्रिचरमा-  
स्त्रयः ९। १०। ११। एवमेकैकाधिकक्रमेण तत्प्रथमनिषेके नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धा गुणहानिमात्राः स्युः  
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। अत्र चरमनिषेकसमानं यथाभवति तथा अधस्तनाधस्तन-  
निषेकस्थितचरमगुणहानिचयान् पृथक्कृत्य स्वस्वसदृशनिषेकसंख्यापाद्वे स्थापितेषु सदृशघनिकानि गच्छप्रमितानि

नीचे अन्तमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए अबाधाकाल ही हुआ है और एक भी निषेक  
नहीं खिरा, उसके नौ से लगाकर पाँच सौ बारह पर्यन्त सब अड़तालीस निषेक सत्तामें हैं  
वे लिखे हैं। इस तरह त्रिकोण रचनामें गलनेके बाद जो शेष निषेक रहे वे क्रमसे लिखे हैं।  
इस सब त्रिकोण रचनाका जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो उतनी सत्ता जीवके सदा रहती है।  
इसके जोड़नेका विधान इस प्रकार जानना—

ऊपर जो त्रिकोण रचना दी है उसकी चरमगुणहानिमें चरम निषेक एक ९ है। उसके  
नीचे द्विचरम निषेक दो हैं ९। १०। इसी तरह त्रिचरम निषेक तीन हैं ९। १०। ११। इस प्रकार  
एक-एक अधिकके क्रमसे प्रथम निषेकमें नाना समय प्रबद्धोंसे प्रतिबद्ध निषेक गुणहानि  
प्रमाण होते हैं ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। यहाँ जोड़नेके लिये सबको चरमनिषेक ९ के  
समान करनेके लिए नीचे-नीचेके निषेकोंमें स्थित अन्तिम गुणहानिके चयोंको पृथक् करके  
उन्हें अपनी-अपनी समान निषेक संख्या के पासमें स्थापित करो।

ई धेरडुं पंक्तिगळं संकलिसिदोडे यथाक्रमदिदमितिपुंनु ८।८।८ १।८।८।८ ०

उभयधनयुतियितितकुं ८।८।८।४।१ अनंतरं द्विचरमगुणहानिद्रव्यं तरत्पडुगुमदेतेदोडे ६

द्विचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्ध प्रतिबद्धनिषेकंगळु चरमगुणहानिप्रथमनिषेक नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकंगळनितुं तच्चरमनिषेकद्विगुणप्रमितमोडु निषेकमुमधिकमवकुं ।

५ ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८। तदनंतराधस्तननिषेकदोळु तावन्मात्रंगळुं द्विचरमगुणहानिविशेषाधिकतच्चरमनिषेकमोदधिकमवकुं । ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०। इंतु पूर्वपूर्वमं नोडलेकैकद्विचरमगुणहानिविशेषयुतमेकैकनिषेकाधिक क्रमदिदं योगि द्विचरमगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकंगळु गच्छमात्रंगळि-

चथाश्च रूपोनगच्छसंकलनमात्रतया द्विकवारसंकलनक्रमा भवति-

|    |     |
|----|-----|
| ९१ | ०   |
| ९२ | ११  |
| ९३ | १३  |
| ९४ | १६  |
| ९५ | ११० |
| ९६ | ११५ |
| ९७ | १२२ |
| ९८ | १२८ |

अस्मिन् पंक्तिद्वये संकलिते

१० एवं १- १- १- १- १- २-  
८।८।८ १। ८।८।८ उभयधनयुतावेवं ८।८।८ ४ तथा द्विगुणहानी चरमे नानासमय- ६

प्रबद्धप्रतिबद्धाः चरमगुणहानिप्रथमनिषेका द्विगुणतच्चरमनिषेकाधिकाः ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८। तदनंतराधस्तनैतावन्तोऽपि द्विचरमगुणहानिविशेषाधिकैकनिषेकाधिकाः स्युः ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०। एवमेकैकद्विचरमगुणहानिविशेषाधिकैकनिषेकाधिकक्रमेण

अतः अन्तिम गुणहानिका अन्तिम निषेक ९ लिखकर उसके आगे एक से एक अधिक १५ लिखो । दूसरीमें अन्तमें शून्य लिखो । पीछे संकलन रूप प्रमाण लिखो—

|     |      |
|-----|------|
| ९×१ | ०    |
| ९×२ | १×१  |
| ९×३ | १×३  |
| ९×४ | १×६  |
| ९×५ | १×१० |
| ९×६ | १×१५ |
| ९+७ | १×२१ |
| ९×८ | १×२८ |

२०

नौको एकसे गुणा करने पर पहला जोड़ नौ हुआ ।  
नौ दूना अठारह और एक एकम एक । दोनों मिल उन्नीस हुए ।  
सो ९ + १० मिलकर उन्नीस होते हैं २ ।  
नौ ती सत्ताईस और एक तिया तीन । दोनों मिल तीस हुए  
सो ९ + १० + ११ मिलकर तीस होते हैं ।

इसी प्रकार सबसे अन्तमें नौ अट्ठे बहत्तर और अठाईस इकम अठाईस । दोनों मिलकर सौ हुए । सो अन्तिम गुणहानिके सब निषेकोंका जोड़ सौ होता है ।

नित्यपुत्रु । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २६ । २८ । ३० । ३२ । यितिरुत्तिर्द्वि त्रिकोणरचनाद्विचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्ध-निषेकगळोळु सर्वोत्कृष्टनिषेकमिदु । १८ ॥

ई निषेकमादियागि तत्सदृशनिषेकगळप्पन्तु तदधस्तनाधस्तननिषेकगळोळिरुत्तिर्द्वि विशेषगळं मुन्नितंते तेगतेगदु तंतम्म सदृशनिषेकगळ पाश्वर्दोळु पृथक् पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु मुन्नितंते ५  
सदृशनिषेकगळ गच्छमात्रगळगुत्तं पोपुवु । तद्विद्वचरमगुणहानिविशेषगळं रूपोनगच्छसंकलन-प्रमितंगळप्पुवपुर्दारिदं द्विकवारसंकलनाकमभागि द्विचरमगुणहानिद्विचरमनिषेकं मोदलोडु प्रथमनिषेकपदर्थन्तं पोमि यितो तेरदिनिरुत्तिर्पुवु ।

|     |   |   |    |
|-----|---|---|----|
| ९।२ | १ | ० | ०  |
| ९।२ | २ | २ | १  |
| ९।२ | ३ | २ | ३  |
| ९।२ | ४ | २ | ६  |
| ९।२ | ५ | २ | १० |
| ९।२ | ६ | २ | १५ |
| ९।२ | ७ | २ | २१ |
| ९।२ | ८ | २ | २८ |

गत्वा द्विचरमगुणहानिप्रथमनिषेके नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धाः गच्छमात्राः स्युः । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २६ । २८ । ३० । ३२ । अत्र द्विचरमगुणहानौ चरमे १०  
नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकेषु उत्कृष्टोऽयं । १८ । इदमदि कृत्वा तत्सदृशा निषेका यथा भवन्ति तथा तदधस्तनाधस्तननिषेकस्थितिविशेषान् प्राग्बदपनीयापनीय स्वस्वसदृशनिषेकपाश्वर्दे स्थापितेषु प्राग्बत् सदृश-घनिका गच्छमात्रक्रमेण विशेषा रूपोनगच्छसंकलनमात्रक्रमेण द्विकवारसंकलनक्रमा भूत्वा द्विचरमगुणहानि-प्रथमनिषेकरूपयंतं गत्वा इत्थं तिष्ठति—

|   |   |   |    |
|---|---|---|----|
| ९ | २ | १ | ०  |
| ९ | २ | २ | १  |
| ९ | २ | ३ | ३  |
| ९ | २ | ४ | ६  |
| ९ | २ | ५ | १० |
| ९ | २ | ६ | १५ |
| ९ | २ | ७ | २१ |
| ९ | २ | ८ | २८ |

द्वितीयादि गुणहानिमें भी प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य तो पूर्ववत् जानना किन्तु दोनों १५  
पंक्तियोंमें पहलेसे दूना-दूना प्रमाण जानना । यथा—

|       |    |
|-------|----|
| ९×२×१ | ०  |
| ९×२×२ | १  |
| ९×२×३ | ३  |
| ९×२×४ | ६  |
| ९×२×५ | १० |
| ९×२×६ | १५ |
| ९×२×७ | २१ |
| ९×२×८ | २८ |

नौ दूना अठारह और अठारह एकम अठारह । यह पहला निषेक हुआ । नौ दूना अठारह । अठारह दूना छत्तीस और दो एकम दो । दोनों मिलकर अड़तीस हुए । सो १८+२० मिलकर अड़तीस होते हैं । इसी तरह अन्तमें नौ दूना अठारह । अठारह २०  
अट्टे एक सौ चवालीस । और अठाईस दूना छप्पन । दोनों मिलकर दो सौ हुए । यही दूसरी गुणहानिके सब निषेकोंका जोड़ होता है ।

यिचर संकलितधन संदृष्टिगळु  $\frac{८}{२} \frac{१२}{६} \frac{८}{२} \frac{८}{६} \frac{८}{२} \frac{८}{६} \frac{८}{२}$  उभयधनयोगमिदु :—

- ८।८।८।४।२ यिल्लियुत्तरधनमिनितवकु। १००।८। मेकेदोडे सर्वत्र गुणहान्यामदोळु।  
 ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६। एतावन्मात्रनिषेकगळोळवपुर्वरिदं। मत्तं त्रिचरम-  
 गुणहानिनातासमयप्रबद्धनिषेकात्मक चरमनिषेकदोळु उपरितनगुणहानिप्रथमनिषेकभेवंगळु  
 ५ चरमगुणहानिचतुर्गुण चरमनिषेकमुमोदवकुं। ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।  
 १८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६। अनन्तराधस्तननिषेकदोळु तावन्मात्रनिषे-  
 कगळु तत्रिचरमगुणहान्येकविशेषयुततच्चरमनिषेकमुमोदवकु। ९।१०।११।१२।१३।१४।  
 १५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०। मिन्तु त्रिचरमगुणहानि-  
 त्रिचरम निषेकादिगळोळु तद्गुणहानिविशेषयुतैकैकनिषेकाधिकक्रमदिदं पोगि तत्त्रिचरमगुणहानि-  
 १० प्रथमनिषेकदोळिनिन्तु नानासमयप्रबद्धनिषेकगळवकु। ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।  
 १६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०।४४।४८।५२।५६।६०।  
 ६४। मिन्तिरुत्तिरलो त्रिचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु चतुर्गुणचरमगुणहानिचरमनिषेकमोदि-

- अनयोः संकलने संदृष्टिः—  $\frac{१-}{२} \frac{१-}{२} \frac{८-}{६} \frac{१-}{६} \frac{१-}{६} \frac{२-}{६}$  उभययुतिः। ८।८।८।४।२  
 १५ अत्रोत्तरधनं त्वेतावत् १००।८। कुतः ? सर्वत्र गुणहान्यायामे ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।  
 १६। एतावतां निषेकाणां सद्भावात्। पुनः त्रिचरमगुणहानौ चरमनिषेके उपरितनगुणहानिप्रथमनिषेकाः सर्वे  
 चरमगुणहानिचतुर्गुणचरमनिषेकश्चैकः ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।  
 २४।२६।२८।३०।३२।३६। अनन्तराधस्तने तावन्तः त्रिचरमगुणहान्येकविशेषाधिकतच्चरमनिषेकश्चैकः।  
 ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।  
 ३६।४०। एवं त्रिचरमगुणहानित्रिचरमादिनिषेकेषु तद्गुणहानिविशेषयुतैकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा  
 २० तद्गुणहानिप्रथमनिषेके एतावन्तः नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धविशेषाः स्युः ९।१०।११।१२।१३।१४।  
 १५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०।४४।४८।५२।६०।६४।

- इस दूसरी गुणहानिमें प्रथम गुणहानिका द्रव्य सर्वत्र एक-एक स्थानपर मिलनेपर  
 त्रिकोण रचनाका जोड़ होता जाता है। जैसे प्रथम गुणहानिका द्रव्य सौ मिलानेपर एक सौ  
 अठारह होते हैं। उसके नीचे अड़तीसमें मिलानेपर एक सौ अड़तीस होते हैं। इसी तरह  
 २५ सर्वत्र जानना।

- इसका कारण यह है कि सर्वत्र गुणहानि आयाममें ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६। ये  
 निषेक होते हैं। इसी प्रकार त्रिचरम गुणहानिके अन्तिम निषेकमें ऊपरकी गुणहानिके प्रथम  
 निषेक सब और अन्तिम गुणहानिका एक अन्तिम निषेक होता है—९।१०।११।१२।१३।१४।१५।  
 १६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६। इसके अनन्तर नीचे ये सब और त्रिचरम गुणहानिसे  
 ३० एक विशेष अधिक चरम निषेक होता है—९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।

रुत्तिक्कु १।४। तत्समानगळप्पंतु तत्तधस्तननिषेकंगळोळिरुत्तिर्द तत्त्रिचरमगुणहानिविशेषगळं  
तेगडु तेगडु पृथक् पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु—

|   |   |   |   |    |
|---|---|---|---|----|
| १ | ४ | १ |   |    |
| १ | ४ | २ | ४ | १  |
| १ | ४ | ३ | ४ | ३  |
| १ | ४ | ४ | ४ | ६  |
| १ | ४ | ५ | ४ | १० |
| १ | ४ | ६ | ४ | १५ |
| १ | ४ | ७ | ४ | २१ |
| १ | ४ | ८ | ४ | २८ |

यित्तिप्पुविधं संकलिसुत्तं विरलु  $\frac{१}{२}$   $\frac{०}{६}$  उभयधनयुतियुमि-

नितक्कु  $\frac{०}{६}$   $\frac{२}{४}$  ८।८।८।४।४ मिलियुत्तरधनमिनितक्कु। ३००।८। मंतदोडे सध्वत्र गुणहान्या-  
मदोळु १।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०। ५  
३२। एतावन्मात्रनिषेकंगळोळवप्पुदरिदं यितु चतुश्चरमादिगुणहानिगळोळ आदिधनंगळभुत्तरया-  
धनंगळधोऽधोद्विगुणद्विगुणक्रमंगळागुत्तलुमुत्तरधनंगळ सुपरितनगुणहान्युत्तरधनद्विधमधिकंगळागुत्तं  
योगि सध्वधस्तनप्रथमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धनिषेकंगळमेतावन्मात्रंगळवप्पुदु।

अत्र त्रिचरमगुणहानी चरमनिषेके चतुर्गुणचरमगुणहानिचरमनिषेक एकः। १।४। तत्समाना यथाभवन्ति  
तथा तदधस्तननिषेकस्थिताः त्रिचरमगुणहानिविशेषानपनीयापनीय पृथक्स्थापितेषु एवं तिष्ठन्ति—

१०

|   |   |   |      |
|---|---|---|------|
| १ | ४ | १ | ०    |
| १ | ४ | २ | ४।१  |
| १ | ४ | ३ | ४।३  |
| १ | ४ | ४ | ४।६  |
| १ | ४ | ५ | ४।१० |
| १ | ४ | ६ | ४।१५ |
| १ | ४ | ७ | ४।२१ |
| १ | ४ | ८ | ४।२८ |

एतेषु संकलितेषु  $\frac{१-१-}{२}$   $\frac{१-२-}{६}$   $\frac{१-२-}{६}$  उभयधनयुतिरियं ८।८।८।४।४। अत्रोत्तरधनं तु

३०।३२।३६।४०। इस प्रकार त्रिचरम गुणहानिके त्रिचरम आदि निषेकोमें उस-उस गुणहानिके  
विशेषसे युक्त एक-एक निषेकके क्रमसे जाकर उस गुणहानिके विशेषमें इतने नाना समय  
प्रतिबद्धोंसे प्रतिबद्ध विशेष होते हैं—१।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।  
३२।३६।४०।४४।४८।५२।६०।६४। यहाँ त्रिचरम गुणहानिके अन्तिम निषेकमें चरम गुणहानिका १५  
एक चरम निषेक चतुर्गुणा है ९×४। उसके नीचेके निषेक उसीके समान करनेके लिए



९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२।  
 ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०।  
 १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। अनन्तराधस्तन-  
 निषेकंगळोळेकैकचयोत्तरैकैकसमयप्रबद्धैकैकनिषेकाधिकक्रमविदं पोगि त्रिकोणरचनासंवाधस्तन-

- ५ प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु आबाधारहितोत्कृष्टकर्मस्थितिमात्र समतिकोटीकोटिसागरोपमप्र-  
 मितनानासमयप्रबद्धगळितावशेषयथास्थितनिषेकंगळोळेतावन्मात्रंगळपुष्टु। ९। १०। ११। १२।  
 १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८।  
 ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८। १४४। १६०।  
 १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८। ४८०।  
 १० ५१२। मितिरुत्तं विरलुमी त्रिकोणरचनाप्रथमगुणहानिधनं तरल्पडुगुमदेतं दोडे चरमनिषेकदोळु  
 नानासमयप्रबद्धनिषेकव्यक्तिगळोळु सर्वोत्कृष्टनिषेकं अन्योन्यभ्यस्तराश्यदर्धगुणितचरमगुणहानि  
 चरमनिषेकप्रमितमक्कुं। ९। ३२। तत्सदुशमर्षतु तदधस्तननिषेकंगळोळिरुतिर्दं प्रथमगुण-

इयत् ३००। ८। कुतः ? सर्वत्र गुणहान्यायामे ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८।  
 २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। एतावतां निषेकाणां सद्भावात्। एवं चतुश्चरमादिगुणहानिषु  
 १५ आद्युत्तरधनानि अधोघो द्विगुणद्विगुणक्रमाणि अपि उत्तरधनानि उपरितनगुणहान्युत्तरधनाधिकानि भूत्वा  
 सर्वाधस्तनप्रथमगुणहानिचरमनिषेके नानासमयप्रबद्धनिषेका एतावन्तः ९। १०। ११। १२। १३। १४।  
 १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६।  
 ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८।  
 २२४। २४०। २५६। २८८। अनन्तराधस्तननिषेकेषु एकैकचयोत्तरैकैकसमयप्रबद्धैकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा  
 २० त्रिकोणरचनासर्वाधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके आबाधारहितोत्कृष्टकर्मस्थितिमात्रासमतिकोटीकोटिसागरोपम-  
 प्रमितनानासमयप्रबद्धगळितावशेषनिषेका एतावन्तः। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८।  
 २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२।  
 ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४।

त्रिचरम गुणहानिके विशेषोंको उसमें-से निकालकर पृथक् स्थापित करनेपर यह स्थिति हुई—

|           |        |
|-----------|--------|
| ९ × ४ × १ | ०      |
| ९ × ४ × २ | ४ × १  |
| ९ × ४ × ३ | ४ × ३  |
| ९ × ४ × ४ | ४ × ६  |
| ९ × ४ × ५ | ४ × १० |
| ९ × ४ × ६ | ४ × १५ |
| ९ × ४ × ७ | ४ × २१ |
| ९ × ४ × ८ | ४ × २८ |

- २५ यहाँ उत्तरधन तीन सौ है। जैसे नौ चौका छत्तीसमें तीन सौ जोड़नेपर तीन सौ  
 छत्तीस तृतीय गुणहानिकी प्रथम पंक्तिका जोड़ होता है। तीन सौ उत्तरधन होनेका कारण  
 यह है कि सर्वत्र गुणहानि आयाममें ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०।

हानिचयंगळं तेगतेगदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु—

|   |    |   |    |    |
|---|----|---|----|----|
| ९ | ३२ | १ | ०  |    |
| ९ | ३२ | २ | ३२ | १  |
| ९ | ३२ | ३ | ३२ | ३  |
| ९ | ३२ | ४ | ३२ | ६  |
| ९ | ३२ | ५ | ३२ | १० |
| ९ | ३२ | ६ | ३२ | १५ |
| ९ | ३२ | ७ | ३२ | २१ |
| ९ | ३२ | ८ | ३२ | २८ |

मिन्निरुत्तिर्पुर्विवं संकलिसुत्तं विरलुभयराशिर्गळितिर्पुर्वुः ८।८।८।३२ ८।८।८।३२

८।३२ मीयुभयधनयुति इति तत्त्वकु ८।८।४।३२ मिन्निरुत्तरधनमुमिन्निरुत्तकु ३१००।८।६  
मे ते दोडे सर्वत्र प्रथमगुणहान्यायामदोळितितिनितु निषेकंगळ ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०।४४।४८।५२।५६।६०।६४।७२।८०।८८।९६।१०४।११२।१२०।१२८।१४४।१६०।१७६।१९२।

२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।५१२। एवं सति तत्त्रिकोण-रचनाधनमानीयते—

अथ प्रथमगुणहानौ चरमनिषेके नानासमयप्रबद्धनिषेकव्यक्तिषु सर्वोत्कृष्टचरमनिषेकः अन्योन्याभ्यस्तरा-  
श्वर्धगुणितचरमगुणहानिचरमनिषेकप्रमितः । ९।३२। तत्सदृशा यथाभवति तथा तदधस्तननिषेकस्थितिप्रथम-  
गुणहानिचयानपनीयापनीय पृथक्स्थापितेषु एवं तिष्ठति ।

|             |
|-------------|
| ९।३२१।०     |
| ९।३२२।३२।१  |
| ९।३२३।३२।३  |
| ९।३२४।३२।६  |
| ९।३२५।३२।१० |
| ९।३२६।३२।१५ |
| ९।३२७।३२।२१ |
| ९।३२८।३२।२८ |

एतेषु संकलितेषु उभयराशी एवं १— १— १— २— २—  
८।८।८।३२ ८।८।८।३२ उभययुतिः ८।८।८।४।६

३२ अत्रोत्तरधनं तु । एतावत् ३१००।८ कुतः ? सर्वत्र प्रथमगुणहान्यायामे एतावतामेतावतां निषेकाणां—

३२। इतने निषेक पाये जाते हैं और इन सबका जोड़ तीन सौ है । इसी प्रकार चतुश्चरमादि  
गुणहानियोंमें आदिधन और उत्तरधन नीचे-नीचे क्रमसे दुगुने-दुगुने होते जाते हैं । किन्तु

१. \* यथा संभवति ।

२०८। २२४। २४०। २५६। वोळवण्डुर्दारिदं। इन्तुक्तसव्वगुणहानिगळ धनंगळुमुत्तरधनंगळु-  
मितिकुं—

|                        |        |
|------------------------|--------|
| — २<br>८।८।८।४।१<br>६  | ०      |
| — २<br>८।८।८।४।२<br>६  | १००।८  |
| — २<br>८।८।८।४।४<br>६  | ३००।८  |
| — २<br>८।८।८।४।८<br>६  | ७००।८  |
| — २<br>८।८।८।४।१६<br>६ | १५००।८ |
| — २<br>८।८।८।४।३२<br>६ | ३१००।८ |

९।१०।११।१२। १३।१४। १५।१६। १८।२०। २२।२४।२६।२८।३०।३२।  
३६।४०।४४।४८। ५२।५६। ६०।६४।७२। ८०।८८। ९६।१०४।११२।१२८।  
५ १४४।१६०।१७६।१९२। २०८।२२४। २४०। २५६। सद्भावात्। तानि सर्वगुणहान्याद्युत्तर-  
धनानि इमानि—

|      |              |            |
|------|--------------|------------|
| १- ६ | २-<br>८।४।१  | ०<br>१००।८ |
| ८।८  | २-<br>८।४।२  | ३००।८      |
| १- ६ | २-<br>८।४।४  | ७००।८      |
| ८।८  | २-<br>८।४।८  | १५००।८     |
| १- ६ | २-<br>८।४।१६ | ३१००।८     |
| ८।८  | २-<br>८।४।३२ |            |
| १- ६ |              |            |
| ८।८  |              |            |
| ६    |              |            |

उत्तरधनमें ऊपरकी गुणहानियोंको उत्तरधन अधिक-अधिक होता जाता है।

मो धनं संकलिसत्पदुगुमदे तं दोडे प्रथमपंक्तियं अन्तधनं गुणगुणियं आदिविहीणं रुऊणुत्तर-

भजियमे'दु गुणसंकलितधनमं तंदोडिनितक्कु ८।८।८।४।६।३ मुत्तरधनमं संकलिसुवडे

ऋणमनिक्किदल्लदे संकलिसत्बारदपुदरिदं द्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमित १००।८। मं सर्वत्र-  
नानागुणहानिगळोळु गुणहानिप्रतिपिक्कि संकलिसिदोडुत्तरधनमिनितक्कु। ६३००।८। ऋणं गळुं  
नानागुणहानिमात्रद्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमितमक्कु। १००।८।६। सिन्तुक्त मूरुं राशिगळुं

यथाक्रमदिदमिन्तिर्पुवु। ८।८।८।४।६३।६।३००।८।१००।८।६। ई मूरुं राशिगळं

समयप्रबद्धविदं प्रमाणिसिदोडिनितरुत्तिर्पुवु। संदृष्टिः—

| ० आदि       | उत्तर     | ऋण      |
|-------------|-----------|---------|
| ८।८।८।४     | ६।३।६३००८ | १००।८।६ |
| ६३००।६      | ६३००।     | ६३००।   |
| १ २         |           |         |
| स ० ८।८।८।४ | स ०।८     | स ०।८।६ |
| १०० ६       |           | ६३      |

इल्लियपवत्तित शतषट्कविधानदिदिहं

इदं संकलयति-अत्र प्रथमपंक्तौ अंतधनं गुणगुणियं इत्यादिना संकलितायां आदिधनमेतावत् ८।८

८।४।६३ द्वितीयपंक्तौ सर्वत्र द्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमितं १००।८ ऋणं प्रक्षिप्य संकलितायामुत्तर-

धनमियत्। ६३००।८। तानि ऋणानि एतावन्ति १००।८।६। उक्तराशयः त्रयः क्रमेण अमी—

| १- २-     | उत्तरधनं | तदुणं   |
|-----------|----------|---------|
| ८८।८।४।६३ | ६३००।८   | १००।८।६ |
| ६         |          |         |
| आदिधनं    |          |         |

समयप्रबद्धेन प्रमाणिता एवं—

| १- २-      | ६३००।८ | १००।८।६ |
|------------|--------|---------|
| ८८।८।४।६३  | ६३००   | ६३००    |
| ६३००।६     |        |         |
| १- २-      | स ० ८  | स ० ८।६ |
| स ० ८८।८।४ |        | ६३      |
| १०० ६      |        |         |

इस प्रकार अन्तिम गुणहानि पर्यन्त दोनों पंक्तियोंमें दूना-दूना प्रमाण रखकर तथा उन दोनों पंक्तियोंके एक-एक स्थानका प्रमाण मिलानेपर तथा पहले हुई गुणहानियोंका सर्व-द्रव्य मिलानेपर जो प्रमाण हो उतना-उतना त्रिकोण रचनामें पंक्तियोंका जोड़ होता है। यह जोड़ इस प्रकार जानना।

९।१९।३०।४२।५५।६९।८४।१००।११८।१३८।१६०।१८४।२१०।२३८।२६८।३००।३३६।३७६।

प्रथमधनमिदु स ०।८।८।४ अधिकरूपं पार्श्वदोळु स्थापितमिदु स ०।८।८।४ स ०।८।४।१  
 १ २ २ २  
 ८।३। ३ ८।३ ८।३

उभयत्रोपरिस्थितद्विरूपं स्वस्वाधः स्थापिसि

|         |       |
|---------|-------|
| ८।८।४   | ८।४।१ |
| १—      | १—    |
| ८।३।    | ८।३   |
| स ०।८।२ | स ०।२ |
| १—      | १—    |
| ८।३।    | ८।३।  |

प्रथमद्विकर्म

कळगेयुं भेगेयुं त्रिगुणिसियल्लि नाल्कु रूपकोडु मेलिकियपवर्तितमिदु ८।४ विशेषमिदनु  
 ३।३  
 स ०।८।२ परितनपार्श्वदोळु स ०।८।४ यिदरोळु कूडत्पडुगुमस्तु कूडुतविरलु इनि  
 ८।३।३।३ ८।३। ३

१-२-

५ अत्र शतषट्कविधानेन अपवर्तितं प्रथमधनमिदं—स ०।८।८।४। अधिकरूपं पार्श्व स्थाप्यं  
 १—  
 ८।३।३

स ०।८।८।४। स ०।८।४ उभयत्र उपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः स्थाप्यं—  
 १— १—  
 ८।३।३ ८।३।३

|           |           |
|-----------|-----------|
| स ०।८।८।४ | स ०।८।४।१ |
| १—        | १—        |
| ८।३।३     | ८।३।३     |
| स ०।८।२   | स ०।२     |
| १—        | १—        |
| ८।३।३     | ८।३।३     |

प्रथमद्विकं स ०।८।२ अथ उपर्यपि त्रिभिः संगुण्य रूपषट्के रूपचतुष्टयं स्वीकृत्य स्वोपरितनराशौ  
 १—  
 ८।३।३

४२०।४६८।५२०।५७६।६३६।७००।७७२।८५२।९४०।१०३६।११४०।१२५२।१३७२।१५००।१६४४।  
 १८०४।१९८०।२१७२।२३८०।२६०४।२८४४।३१००।३३८८।३७०८।४०६०।४४४४।४८६०।५३०८।  
 ५७८८।६३००।

१०

विशेषार्थ—त्रिकोण रचनामें अड़तालीस पंक्तियाँ हैं उन सबका जोड़ ऊपर दिया है। पहली पंक्तिमें प्रथम गुणहानिका अन्तिम निषेक नौ है उसका जोड़ नौ है। दूसरी पंक्तिमें

१. व उपर्यधः त्रि ।

तत्कृमिदरोळः स ० १ ८ १ १४ द्वितीयद्विकमनिद स ० १ २ नोभत्तरिदं कळगेयुं मेगेयुं गुणिसि-  
८१३ ३ १३ ८१३ ३

यदरोळः पविनाल्कुरुपुगळं कोडू कूडुत्तं विरलु इनितक्कु स ० १ ८ १ १४ मिदनपवत्तिसिदोडिदु ।  
८१३ २१

स ० १ १४ मत्तं पविनाल्कुरु रूपं कळकुळिद ८१३ १ ३ ३ १ शेषमिदु स ० ४ यिदनेकरूपा-  
२१ गु ३ २१

संख्येयभागमं । ० । तंदु भागहारदोळेकरूपहीनत्वमनवगणिसि पविनाल्कुरुपुगळनिष्पत्तेळरोळप- ५  
वत्तिसिदोडेकरूपाद्वमक्कु । २ मिदरोळः साधिकमं माडि २ दिदं । ऋणमिदु ८ १ ६ व तु-  
६३

स ० ८ १ ८ १ ४ त्रिभिः समच्छिन्ने स ० ८ १ ८ १ ३ १ ४ निक्षिप्य स ० ८ १ ८ १ ३ १ ४ अपवर्तिते एवं १—  
८ १ ३ १ ३ ८ ३ १ ३ १ ३ १— ८ ३ १ ३ १ ३  
स ० १ ८ १ ४ शेषमिदं स ० ८ १ २ उपरितनपाश्वं स ० ८ ४ निक्षिप्तं तदिदं स ० ८ १ ४ द्वितीयद्विकात् १—  
३ १ ३ ८ ३ १ ३ १ ३ ८ ३ ३ ८ ३ ३ ३

स ० २ उपर्यको नवगुणितात् स ० १ ८ तद्गूहीतचतुर्दशरूपैर्युतं स ० १ ८ १ ३ १ १४ अपवर्तितं स ० १ ४ १—  
८ १ ३ १ ३ ८ १ ३ १ ४ १ ८ ३ २७ २७  
पुनर्भागहारे एकरूपहीनत्वमनवगणय चतुर्दशभिरपवर्तितमेकरूपार्धं स्यात् स ० १ १ इदं चतुर्दशरूपापनीतशेषेण १०

सौ और दस है उसका जोड़ उन्नीस है । उसमें ग्यारह जोड़नेपर तीसरी पंक्तिका जोड़ तीस होता है । उसमें बारह जोड़नेपर चौथी पंक्तिका जोड़ बयालीस होता है । इस तरह पूर्व-पूर्वकी पंक्तिके जोड़में आगे-आगेका एक-एक निषेक जोड़नेसे आगे-आगेकी पंक्तिका जोड़ आता जाता है । अन्तिम पंक्तिमें सब अड़तालीस निषेक होनेसे उसका जोड़ त्रेसठ सौ है ।

इन सब पंक्तियोंके जोड़ोंको जोड़नेपर त्रिकोण रचनाका जोड़ होता है । यह जोड़ १५  
इकहत्तर हजार तीन सौ चार ७१३०४ होता है । सो यह सब जोड़ किंचित् न्यून डेढ गुण-  
हानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण जानना । गुणहानि आयामका प्रमाण आठ है । उसको  
ढ्योदा करनेपर बारह हुए । उसे त्रेसठ सौसे गुणा करनेपर पचहत्तर हजार छह सौ हुए ।  
किन्तु यहाँ इकहत्तर हजार तीन सौ चार ही है । इससे गुणकारमें किंचित् न्यून कहा है ।

जैसे अंक सदृष्टिमें कहा है वैसे ही अर्थ सदृष्टि द्वारा भी जानना । कन्नड़ तथा २०  
तदनुसारी संस्कृत टीकामें अर्थसदृष्टि और अंकसदृष्टि द्वारा जोड़नेका विधान बिस्तारसे  
कहा है । उससे समझ लेना चाहिए ।

रूपदिवमिन्तुटवकु प १। छे व छे — अपवर्तिसिद्धोडसंख्यातपत्यवर्गशलाकाप्रमित-  
छे व छे। प  
व

मवकु। व १। मिदरोळु किचिदून माडि। व १- प्रथमधन मिदरोळु स ०। ८। ४ गुणहान्यष्टा-

दशैकभागमं ऋणमनिधिक स ०। ८। ९ अपवर्तिसि गुणहान्यर्द्धमं तंदु उत्तरधनदोळेकगुण-  
१८

हानियोळु कूडुत्तं विरलु द्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुववरोळु किचिदूनपत्यसंख्यातवर्ग-  
५ शलाकाराशियं साधिकं माडिद गुणहान्यष्टादशैकभागमात्रद्वितीयऋणदोळु साधिकं माडि स ० ८। १  
१८

किचिदूनमं माडिदोडे जीवप्रदेशंगळोळु सव्वदा सत्वरूपविनिर्द्दं कम्मप्रदेशंगळु किचिदून द्व्यर्द्ध-  
गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळु सर्वस्थित्यनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळं नोडलुमनंतगुणितंगळं वरि-

स ०। ४ एकरूपासंख्यातैकभागेन स ०। १ साधिकीकृत्य स ० १ ऋणेऽस्मिन् स ०। ८। ६ वस्तुत  
१— ० ६३

८। ३ २७

इदृशे स ० प १ अपवर्तिते संख्यातवर्गशलाकामात्रे स ० व १ अपनयेत् स ०। १ -। प्रथमधने स ० ८। ४  
९

छे व छे प  
०  
छे व छे

१० गुणहान्यष्टादशैकभागं स ०। ८। १ ऋणं निक्षिप्य स ०। ८। ९ अपवर्त्य उत्तरधने एकगुणहानो निक्षिपे  
१८ १८

द्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धाः स्युः। एते किचिदूनपत्यसंख्यातवर्गशलाकाधिकगुणहान्यष्टादशैकभागद्वितीयऋणेन

स ० ८। १ किचिदूनिता एकजीवप्रदेशेषु सर्वदा सत्त्वस्थितकर्मप्रदेशाः किचिन्न्यूनद्व्यर्द्धगुणहानिगुणितसमय-  
१८

इस प्रकार किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्मोंकी सत्ता  
जीवके सदा पायी जाती है। सो गुणहानि आयामके समयोंके प्रमाणको ड्योढ़ा करके उसमें-  
१५ से पत्यकी संख्यात वर्गशलाका प्रमाण अधिक गुणहानि आयामका अठारहवाँ भाग घटाकर  
जो शेष रहे उससे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने कर्म परमाणु जीवके  
सदा रहते हैं। इसीसे सब स्थिति सम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्म प्रदेश  
अनन्तगुणे हैं।

जैसे प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध बँधता है। उसी प्रकार एक समयप्रबद्ध प्रतिसमय  
२० उदयरूप होकर खिरता है, सो एक समयमें एक समयप्रबद्धका खिरना कैसे होता है,  
यह कहते हैं—

वर्तमान विवक्षित समयमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा काल ही पूरा  
हुआ हो और एक भी निषेक न खिरा हो उसका तो पाँच सौ बारह रूप प्रक्रम निषेकका ही  
उदय होता है। शेष निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आवेंगे।

यत्पदुष्वेदु पेळपदुदु । यितु प्रदेशबंधं सांगमाणि पेळपदुदुनंतरं चतुर्विधबंधमं पेळु प्रकृत्यु-  
दयप्रकरणमं पेळलुपकमिति प्रथमदोळु गुणस्थानदोळु पेळलवेडि केळवुप्रकृतिगळो उदयनियम-  
गुणस्थानगळं पेळदपहः : —

आहारं तु प्रमत्ते तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से ।

सम्मं वेदगसम्मं मिच्छदुगयदेव आणुदओ ॥२६१॥

५

आहारस्तु प्रमत्ते तीर्थं केवलिति मिश्रकं मिश्रे । सम्यक्तं वेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्ट्या-  
संयतेष्वेवानुपूर्व्यादयः ॥

तु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नचतुर्विधबंधस्वरूपनिरूपणानंतरं मत्ते प्रमत्ते प्रमत्त-  
संयतनोळु आहारः आहारकशरीरतदंगोपांगनामकर्मद्वयोदयमक्कुं । केवलिति केवलिंगळोळे  
तीर्थं तीर्थकरनामकर्मोदयमक्कुं । मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योळे मिश्रं मिश्रकर्मोदयमक्कुं । १०

प्रवद्धमात्राः स a १२ — सर्वस्थित्यनुभागबंधाध्यवसायस्थानेभ्योऽनंतगुणा इति ज्ञातव्यं ॥ २६० ॥ एवं  
प्रदेशबंधं प्ररूप्य इदानीमुदयप्रकरणमुपक्रमते —

तु पुनः चतुर्विधबंधनिरूपणानंतरं गुणस्थानेषु उदयनियममाह—आहारकशरीरतदंगोपांगोदयः प्रमत्त-

जिस समयप्रवद्धका बन्ध हुए आवाधाकाल पूरा होकर एक समय हुआ हो और  
जिसका एक निषेक पहले खिर गया हो उसका चार सौ अस्सी रूप दूसरा निषेक वर्तमान १५  
समयमें उदयमें आता है । शेष छियालीस निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आवेंगे ।  
जिस समयप्रवद्धका बन्ध हुए आवाधा काल और दो समय हुए हों तथा दो निषेक पूर्वमें  
खिर चुके हों उसका चार सौ अड़तालीस रूप तीसरा निषेक वर्तमान समयमें खिरता है ।  
शेष पैतालीस निषेक आगामीमें क्रमसे खिरेंगे । इसी तरह क्रमानुसार जिस-जिस समय-  
प्रवद्धका बन्ध पहले-पहले हुआ है उसका पिछला-पिछला निषेक वर्तमान कालमें उदय आता २०  
है । शेष निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आते हैं । अन्तमें जिस समयप्रवद्धका  
बन्ध हुए आवाधाकाल और सैंतालीस समय हुए हों तथा जिसके सैंतालीस निषेक पूर्वमें  
उदयमें आ चुके हों उसका अन्तिम निषेक नौ वर्तमानमें उदयमें आता है । उसका कोई  
निषेक शेष नहीं रहा । उससे पहले जो समयप्रवद्ध बंधे थे उनके सर्वनिषेक इसी क्रमसे  
पूर्वमें खिर चुके । अतः उनसे कोई प्रयोजन नहीं रहा । इस प्रकार वर्तमान विवक्षित एक २५  
समयमें पाँच सौ बारहसे लेकर नौ तक सब निषेक एक समयमें उदयमें आते हैं । ये सब  
मिलकर एक समयप्रवद्ध होता है । इस प्रकार एक-एक समयमें समयप्रवद्ध प्रमाण परमाणु  
खिरते हैं और एक समयप्रवद्ध प्रमाण परमाणु नवीन बंधते हैं । तथा किंचित् न्यून डेढ़  
गुणज्ञानि गुणित समयप्रवद्ध सत्तामें रहते हैं । जैसे अंकसंदृष्टि द्वारा कथन किया है वैसे ही  
अर्थसंदृष्टि द्वारा जानना । इसीसे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्म परमाणु अनन्तगुणे ३०  
कहे हैं ॥२६०॥ प्रदेशबन्धके साथ बन्धका निरूपण समाप्त होता है ।

आगे उदयका निरूपण करते हैं—

चार प्रकार बन्धका कथन करनेके अनन्तर गुणस्थानोंमें उदयका नियम कहते हैं—  
आहारक शरीर और आहारक अंगोपांगका उदय प्रमत्त गुणस्थानमें ही होता है ।



वेदकसम्यग्दृष्टौ वेदकसम्यग्दृष्टिष्योऽस्तु, वेदकसम्यग्दृष्टिसामान्यग्रहणादिदमसंयतादि नात्कुं गुण-  
स्थानंगळो ग्रहणमक्कुं । सम्यक्त्वसहचरितत्वादिदं । सम्यक्त्वप्रकृतिगं सम्यक्त्वव्यपदेशमक्कुमदु  
कारणमाणि असंयतादिनात्कुं गुणस्थानदोऽस्ते सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमक्कुं ।

मिथ्यादृष्ट्यासंयतेष्वेव मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि यंब मूहं गुण-  
५ स्थानंगळोऽस्ते आनुपूर्व्योदयः आनुपूर्व्यं नाम कर्मोदयमक्कुमी प्रकृतिगळगी गुणस्थानंगळोल्लस्यत्र  
गुणस्थानांतरंगळोऽस्तुदयमिल्लंबी नियममरियत्पडुगु-।

मनंतरं मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळंबी मूहं गुणस्थानंगळोऽस्ते आनु-  
पूर्व्योदयमेव नियममप्युदरिदं सासादनसम्यग्दृष्टिष्योऽस्तु नारकानुपूर्व्याद्यानुपूर्व्यं चतुष्कोदय-  
प्रसंगमादोऽस्ते विशेषमं सासादनंगे पेळदपरु :—

१० णिरयं सासाणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू ।

मिच्छादिसु सेसुदओ सगसगचरिमोत्ति णायव्वो ॥२६२॥

नरकं सासादनसम्यग्दृष्टिर्न गच्छतीति च न तस्य नारकानुपूर्व्यं । मिथ्यादृष्ट्यादिषु  
शेषोदयः स्वस्वचरमपर्यन्तं ज्ञातव्यः ॥

नरकं नरकगतियं सासादनसम्यग्दृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिजीवं न गच्छतीति च पुगनेदिनु  
१५ न तस्य नरकानुपूर्व्यं सासादननोळानरकानुपूर्व्यं नाम कर्मोदयमिल्लमदवके नियममी सूत्रमेवकु-  
मुळिदंतेल्ला प्रकृतिगळगुदयं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानंगळोऽस्तु स्वस्वचरमपर्यन्तं तंतम्मुदय-  
गुणस्थानंगळ चरमपर्यन्तं ज्ञातव्यः ज्ञातव्यमक्कुं ॥

संयते एव । तीर्थादयः केवलिन्येव । मिश्रप्रकृत्युदयः सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यावेव । सम्यक्त्वप्रकृत्युदयः वेदकसम्यग्दृष्टा-  
२० वेव असंयतादिचतुर्गुणस्थानेषु । आनुपूर्व्योदयः मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेष्वेव अन्यत्र तेषामुदयाभावात् ॥२६१॥  
आनुपूर्व्योदयं पुनर्विशेषयति—

नरकगतिं सासादनसम्यग्दृष्टिर्न गच्छति इति हेतोः तस्य सासादनस्य नारकानुपूर्व्योदयो नास्ति ।  
शेषसर्वप्रकृत्युदयः मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु स्वस्वोदयस्थाने चरमसमयपर्यन्तं ज्ञातव्यं ॥ २६२ ॥

तीर्थंकर प्रकृतिका उदय सयोगकेवली और अयोगकेवलीके ही होता है । मिश्र मोहनीयका  
२५ उदय सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है । सम्यक्त्व मोहनीयका उदय असंयत आदि  
चार गुणस्थानोंमें वेदक सम्यग्दृष्टीके ही होता है । आनुपूर्वीका उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन  
और असंयत गुणस्थानोंमें ही होता है अन्य गुणस्थानोंमें इनका उदय नहीं होता ॥२६१॥

आनुपूर्वीके उदयके विषयमें विशेष नियम कहते हैं—

सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरकगतिको नहीं जाता, इस कारणसे सासादन सम्य-  
३० दृष्टिके नरकानुपूर्वीका उदय नहीं होता । शेष सब प्रकृतियोंका उदय मिथ्यादृष्टि आदि  
गुणस्थानोंमें अपने-अपने उदय स्थानके अन्तिम समय पर्यन्त जानना चाहिए ॥२६२॥

विशेषार्थ—इस उदय प्रकरणमें भी व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय तीन प्रकारसे कथन  
किया है । जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही हो उन प्रकृतियोंका उस  
गुणस्थानके अन्त तक उदय जानना और उससे ऊपरके गुणस्थानोंमें उनका अनुदय—

अनंतरं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानगळोळुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पक्षांतरोक्तक्रममनंगी-  
करिसि पेळदपरः—

दसचउरिगि सत्तरसं अद्वय तह पंच चैव चउरो य ।

छच्छक्कएक्कदुगदुग चोदस उगुतीस तेरसुदयविही ॥२६३॥

दश चतुरेक सप्तदशाष्ट च तथा पंच चैव चत्वारः । षट् षडेक द्विद्वि चतुर्दशैकात्रिंशत्रयो- ५  
दशोदयविधिः ॥

अभेदविवक्षेयिनुदय प्रकृतिगळु नूरिपत्तेरड १२२ प्युववरोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु  
दश पत्तु १० चतुः सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु नाल्कु ४ । मिश्रगुणस्थानदोळु एक ओं दु १ ।  
असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु सप्तदश पदिनेळु १७ । देशसंयतगुणस्थानदोळु अष्ट च एंटु ८ ।  
प्रमत्तगुणस्थानदोळु पंच अदु ५ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळु चत्वारः नाल्कु ४ । अपूर्वकरणस्थान- १०  
दोळु षट् आरु ६ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु एक ओं दु १ । उपशांतकषायगुणस्थानदोळु  
द्वि एरडु २ । क्षीणकषायगुणस्थानदोळु द्वि चतुर्दश एरडु २ । पदिनाल्कु १४ । सयोगि केवलियोळु

अथ गुणस्थानेषु व्युच्छित्ति पक्षांतरक्रमेणाह—

अभेदविवक्षया उदयप्रकृतिषु द्वाविंशत्युत्तरशते उदयविधिः उदयव्युच्छित्तिः उक्तगुणस्थानादुपयुज्या-  
भावः । स मिथ्यादृष्टौ दश । सासादने चतस्रः । अस्मिन् पक्षे एकैन्द्रियस्थावरद्वौन्द्रियत्रौन्द्रियचतुरिन्द्रियनामकर्मणां १५  
मिथ्यादृष्टावेव उदयच्छेदकथनात् । मिश्रे एका, असंयते सप्तदश, देशसंयतेऽष्टौ, प्रमत्ते पंच, अप्रमत्ते चतस्रः,  
अपूर्वकरणे षट्, अनिवृत्तिकरणे षट्, सूक्ष्मसांपराये एका, उपशांतकषाये द्वे, क्षीणकषाये द्वे चतुर्दश च,

उदयका अभाव जानना । तथा जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका उदय और जितनी  
प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही हो उस गुणस्थानकी उदय प्रकृतियोंमें-से उसी गुणस्थानमें २०  
व्युच्छिन्न हुई प्रकृतियोंका प्रमाण जानना । इसमें इतना विशेष है कि यदि कोई प्रकृति  
ऊपरके गुणस्थानमें उदयमें आनेवाली है और विवक्षित गुणस्थानमें उसका उदय नहीं है तो  
उसे उदयमें-से घटा देना चाहिए । और यदि पहले गुणस्थानमें जिसका उदय न था और  
विवक्षित गुणस्थानमें उसका उदय हो तो उसे उदयमें मिला देना चाहिए । यह तो हुई उदय-  
की बात । जितनी प्रकृतियोंका मूलमें उदय कहा हो उनमें-से विवक्षित गुणस्थानमें जितनी २५  
प्रकृतियोंका उदय कहा हो, उनसे शेष जो प्रकृति रहें उनका उस विवक्षित गुणस्थानमें  
अनुदय जानना इस प्रकार व्युच्छित्ति, उदय और अनुदयका स्वरूप जानना ॥२६२॥

आगे गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति पक्षांतर अर्थात् यतिवृषभाचार्यके मतानुसार कहते हैं—

अभेद विवक्षासे उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस हैं । उनके उदयकी अवधिको उदय-  
व्युच्छित्ति कहते हैं । अर्थात् जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही है, उनका  
उदय उसी गुणस्थान पर्यन्त होता है उससे ऊपर उनका उदय नहीं होता । ३०

सो मिथ्यादृष्टिमें दसकी और सासादनमें चारकी व्युच्छित्ति जानना । क्योंकि इनके  
मतानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, और चौइन्द्रिय नामकर्मकी उदय-  
व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें कही है ।

- एकान्तत्रिंशत् ओं दुग्दे सूवत् २९ । अयोगिकेवलियोळु त्रयोदश पदिमूर १३ । यिन्तु प्रकृतिगळु-  
 दयविधानमवक्कु- । मितुक्तप्रकृतिगळुगे तत्तद्गुणस्थानचरमदोळुदयव्युच्छित्तियेवुवत्थंमो पक्षदोळु  
 एकेंद्रियजाति नामकर्ममं स्थावरनामकर्ममं द्वौद्रिय त्रौद्रिय चतुरिद्रियजातिनामकर्ममं गळुमेबी  
 प्रकृतिपंचकोदयं सासादनसम्यग्दृष्टियोळिल्लेकंदोडे आप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टियोळवक्कु-  
 ५ मपुदरिदं । उपरितनगुणस्थानेषूदयाभाव उदयव्युच्छित्तिरिति उपरितनगुणस्थानदोळुदयाभाव-  
 मक्कुमप्पोडा प्रकृतिगळुगे केळगणगुणस्थानदोळुदयवके विद्यमानत्वादिदमुदयव्युच्छित्तिगळुदय  
 व्यपदेशमक्कुं । सयोगिकेवलियुणस्थानदोळेकान्तत्रिंशत्प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियेतंदोडी पक्षदोळु  
 नानाजीवापेक्षीयदं सदसद्वेद्यंगळुदय सद्भावदिदमोदकं व्युच्छित्तियिल्लपुदरिदं मों दुग्दे सूवत्  
 प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमदु कारणमागि अयोगिकेवलियोळु येकतरोदयमागुत्तं विरलु तळुद-  
 १० दोळु पदिमूर प्रकृतिगळुदय मक्कुमितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळु नूरपदिनेळु  
 ११७ । अनुदय प्रकृतिगळु तीर्थसुमाहारद्वयमं मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेबी अय्दुं प्रकृति-  
 गळुपुवु ५ । सासादनसम्यग्दृष्टियोळु नरकानुपूर्व्यसहितमागि पक्षोदु प्रकृतिगळुकूडिदनुदय  
 प्रकृतिगळु पदिनारपुवु १६ । उदयप्रकृतिगळु नूराह १०६ । मिश्रगुणस्थानदोळु शेषानुपूर्व्यत्रि-  
 तयमुमन्तानुवंचिचतुष्कं गूडिदेळु प्रकृतिगळु सहितमागि अनुदयप्रकृतिगळुपत्त मूरपुववरोळु  
 १५ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं तेगेदुदयदोळु कूडिदोडनुदयंगळुपत्तेरदु २२ । उदय प्रकृतिगळु नूर १०० ।  
 असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियं तेगदनुदयंगळु कूडिदोडिपत्तमूरवरोळु सम्यक्त्व-  
 प्रकृति युमतानुपूर्व्यचतुष्टयमुमं तेगेदुदयप्रकृतिगळु कूडिदोडे अनुदयंगळु पदिनेदु १८ । उदय-

- सयोगिकेवलिन्येकान्तत्रिंशत् कुतः सदसद्वेद्योदययोर्नानाजीवापेक्षया एकस्यापि व्युच्छित्त्यभावात् । अयोगिकेव-  
 लिति त्रयोदश । एवं सति मिथ्यादृष्टानुदयः सदसदोत्तरशतं । अनुदयः तीर्थहारकद्वयमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतयः  
 २० पंच । सासादने नारकानुपूर्व्यं न इत्येकादश मिलित्वा अनुदयः षोडश, उदयः षडुत्तरशतं । मिश्रेऽनुदयः

- आगे मिश्रमें एक, असंयतमें सतरह, देशसंयतमें आठ, प्रमत्तमें पाँच, अप्रमत्तमें चार,  
 अपूर्वकरणमें छह, अनिवृत्तिकरणमें छह, सूक्ष्म साम्परायमें एक, उपशान्त कषायमें दो,  
 क्षीण कषायमें दो और चौदह, तथा सयोग केवलीमें उनतीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती  
 है । क्योंकि सयोग केवलीमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे सातावेदनीय और असातावेदनीयमें-  
 २५ से एककी भी व्युच्छित्ति नहीं होती । अयोगकेवलीमें तेरहकी व्युच्छित्ति होती है ।

१. इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदय एक सौ सतरह । तीर्थंकर, आहारकद्विक,  
 सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयका उदय न होनेसे अनुदय पाँचका ।

२. सासादनमें उदय एक सौ छह । क्योंकि मिथ्यात्वमें दसकी व्युच्छित्ति हुई और  
 नरकानुपूर्वीका उदय न होनेसे ५ + १० + १ = सोलहका अनुदय ।

३. मिश्रमें उदय सौ का । यहाँ आनुपूर्वीका उदय नहीं होता । तथा मिश्रमोहनीयका  
 उदय होता है । अतः सासादनमें अनुदय सोलह और उदय व्युच्छित्ति चार तथा तीन आनु-  
 पूर्वीका अनुदय, सब मिलकर १६ + ४ + ३ = २३ हुई । उनमेंसे मिश्रमोहनीय उदयमें आयी ।  
 अतः शेष बाईसका अनुदय रहा ।

प्रकृतिगळु नूर नाळकु १०४ । देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळं प्रकृतिगळुकूडिदनुदयप्रकृतिगळु  
 मूवत्तय्दु ३५ । उदयप्रकृतिगळु एणभत्तएळु ८७ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु येंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु  
 नाळवत्तमूरवरोळु आहारकद्वितयमं तेगेदुदयंगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळु नाळवत्तोडु ४१ ।  
 उदयप्रकृतिगळेणभत्तोडु ८१ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाळवत्तार ४६ ।  
 उदयप्रकृतिगळु एणत्तार ७६ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाळकुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तु ५० । ५  
 उदयप्रकृतिगळेणत्तेरडु ७२ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तार ५६ ।  
 उदयप्रकृतिगळरुवत्तार ६६ । सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तेरडु ६२ ।  
 उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६० । उपशांतकषायगुणस्थानदोळेकप्रकृतिगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तमूर ६३ ।  
 उदयप्रकृतिगळय्वत्तोभत्तु ५९ । क्षोणरूषायगुणस्थानदोळेरडु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तय्दु ६५ ।  
 उदयप्रकृतिगळय्वत्तेरडु ५७ । सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेणभत्तोडव- १०  
 रोळु तीर्थकरनामकर्ममं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळेणभत्तु ८० । उदयप्रकृति-  
 गळु नाळवत्तेरडु ४२ । अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळोडु गुंदे मूवत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नूरोभत्तु  
 १०९ । उदयप्रकृतिगळु पदिमूर १३ ॥ यितुक्तोदयव्युच्छित्त्युदयानुदयप्रकृतिगळे मिथ्यावृष्ट्यादि  
 चतुर्दशगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदं सद्दृष्टिः—

शेषानुपूर्व्यत्रयेण अनंतानुबंधिचतुष्कं मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदयाद्द्वाविंशतिः । उदयः शतं । असंयतेऽनुदयः १५  
 मिथ्यप्रकृतिमिलित्वा सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयादष्टादश । उदयश्चतुस्तरशतं । देशसंयते सप्तदश मिलित्वा  
 अनुदयः पंचविंशत् । उदयः सप्ताशीतिः । प्रमत्तेऽष्टौ मिलित्वाऽनुदयः आहारकद्वयोदयादेकचत्वारिंशत् । उदय  
 एकाशीतिः । अप्रमत्ते पंच मिलित्वा अनुदयः षट्चत्वारिंशत् । उदयः षट्सप्ततिः । अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा  
 अनुदयः पंचाशत् । उदयो द्वासप्ततिः । अनिवृत्तिकरणे षण्मिलित्वा अनुदयः षट्पंचाशत् । उदय षट्षष्टिः ।

४. असंयतमें एक सौ चारका उदय है क्योंकि यहाँ चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व २०  
 मोहनीयका उदय है अतः ये चार उदयमें आ गयी और मिश्रमोहनीयकी मिश्रमें ही  
 व्युच्छित्ति हो गयी । अतः अनुदयमें अठारह रहीं ।  $२२ + १ = २३ - ५ = १८$  ।

५. देशसंयतमें उदय सतासीका । क्योंकि असंयतमें १८ का अनुदय था और सत्तरह-  
 की व्युच्छित्ति हुई । अतः दोनों मिलकर  $१७ + १८ = ३५$  पैतीसका अनुदय रहा ।

६. प्रमत्तमें उदय इक्यासीका और अनुदय इकतालीस; क्योंकि देशसंयतमें पैतीसका २५  
 अनुदय और आठकी व्युच्छित्ति हुई तथा यहाँ आहारकद्विका उदय है अतः  $३५ + ८ = ४३ -$   
 $२ = ४१$  रहीं ।

७. अप्रमत्तमें उदय छिहत्तर और अनुदय छियालीस, क्योंकि प्रमत्तमें अनुदय  
 इकतालीसका और व्युच्छित्ति पाँच की । दोनों मिलकर छियालीस हुई ।

८. अपूर्वकरणमें उदय बहत्तर और अनुदय पचास का, क्योंकि अप्रमत्तमें अनुदय ३०  
 छियालीस और व्युच्छित्ति चार मिलकर पचास हुई ।

९. अनिवृत्तिकरणमें उदय छियामठ और अनुदय छप्पन; क्योंकि अपूर्वकरणमें छहकी  
 व्युच्छित्ति हुई ।

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | वे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | त  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|-----|
| व्यु | १०  | ४   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | २९ | १३  |
| उ    | ११७ | १०६ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ | १३  |
| अ    | ५   | १६  | २२  | १८  | ३५ | ४१  | ४६ | ५० | ५६ | ६२ | ६३ | ६५   | ८० | १०९ |

उदयप्रकृतिगळगुदीरणेयुटप्युर्दरिदमुदीरणारचनेयोळ प्रमत्तगुणस्थानपर्यंतमुदयव्युच्छित्ति-  
उदयानुदयप्रकृतिगळगुदीरणायुच्छित्त्युदीरणानुदीरणप्रकृतिगळगं विशेषमिल्ल । प्रमत्तगुण-  
स्थानदोळ मनुष्यायुष्यसदसद्वेद्यंगळे ब मूहं प्रकृतिगळगुदीरणेयुटु । अडु कारणमागियप्रमत्त-  
गुणस्थानदोळेपत्तरुमुदीरणप्रकृतिगळोळा मूहं प्रकृतिगळं कळेवनुदीरणप्रकृतिगळोळकूडिदोडनु-  
दीरणप्रकृतिगळु नाल्वत्तो भत्तु ४९ । उदीरणप्रकृतिगळेपत्तमूह ७३ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु  
नाल्लुगूडिदनुदीरण । प्रकृतिगळंयत्तमूह ५३ । उदीरणप्रकृतिगळंयत्तो भत्तु ६९ । अनिवृत्ति-  
करणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदीरणप्रकृतिगळंयत्तो भत्तु ५९ । उदीरणप्रकृतिगळु अरुवत्तमूह  
६३ । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु आरुगूडिदनुदीरणप्रकृतिगळंयत्तौदु ६५ । उदीरणप्रकृति-

१० सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयो द्वाषष्टिः उदयः षष्टिः । उपशान्तकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिषष्टिः ।  
उदयः एकान्नषष्टिः । क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचषष्टिः उदयः सप्तपंचाशत् । सयोगकेवलनि षोडश  
संयोज्य अनुदयः तीर्थकरत्वोदयादशीतिः उदयः द्वाचत्वारिंशत् । अयोगकेवलनि एकान्नत्रिंशन्मिलित्वा  
अनुदयः नवोत्तरशतं । उदयः त्रयोदश ।

उदीरणारचनायां तु प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत उदयानुदयव्युच्छित्तय एव उदीरणानुदीरणव्युच्छित्तयः  
किंतु मनुष्यायुःसदसद्वेद्यानां उदीरणा प्रमत्ते एवास्ति तेन अप्रमत्तेऽनुदीरणा एकान्नपंचाशत्, उदीरणा  
त्रिसप्ततिः । अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदीरणा त्रिपंचाशत्, उदीरणा एकोनसप्तति अनिवृत्तिकरणे षट्  
संयोज्य अनुदीरणा एकोनषष्टिः । उदीरणा त्रिषष्टिः । सूक्ष्मसाम्पराये षट् संयोज्य अनुदीरणा पंचषष्टिः,

१०. सूक्ष्म साम्परायमें उदय साठका क्योंकि अनिवृत्तिकरणमें छहकी व्युच्छित्ति हुई ।  
अतः अनुदय बासठका ।

११. उपशान्त कषायमें उदय उनसठ और अनुदय तिरसठ, क्योंकि सूक्ष्म साम्परायमें  
एककी व्युच्छित्ति हुई ।

१२. क्षीण कषायमें उदय सत्तावन और अनुदय पैसठ, क्योंकि उपशान्त कषायमें दो  
की व्युच्छित्ति हुई ।

१३. सयोगीमें उदय बयालीस, अनुदय अस्सी; क्योंकि क्षीणकषायमें सोलहकी व्युच्छित्ति  
हुई और एक तीर्थकर प्रकृति उदयमें आ गयी । अतः  $६५ + १६ = ८१ - १ = ८०$  रहीं ।

१४. अयोग केवलीमें उदय तेरह, अनुदय एक सौ नौ; क्योंकि सयोगीमें उनतीसकी  
व्युच्छित्ति हुई अतः  $८७ + २९ = १०९$  हुई ।

उदीरणाकी रचनामें प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त तो उदय, अनुदय और व्युच्छित्तिके  
समान ही उदीरणा, अनुदीरणा और उदीरणा व्युच्छित्ति जानना । किन्तु मनुष्यायु, साता-  
वेदनीय, असातावेदनीयकी उदीरणा प्रमत्तमें ही होती है । अतः अप्रमत्तमें अनुदीरणा उनचास-  
की और उदीरणा तिहत्तरकी जानना । यहाँ चारकी व्युच्छित्ति होनेसे अपूर्वकरणमें उदीरणा  
उनहत्तर की और अनुदीरणा तिरपन । यहाँ छह की व्युच्छित्ति होनेसे अनिवृत्तिकरणमें

गळवत्तेळु ५७ । उपशांतकषायगुणस्थानदोळो दुगुडिदखत्तारु' प्रकृतिगळनुदीरणाप्रकृतिगळु ६६ । उदीरणाप्रकृतिगळवत्तारु ५६ । क्षीणकषायगुणस्थानदोळु येरडु गुडिदनुदीरणाप्रकृतिगळरुत्ते'दु ६८ । उदीरणाप्रकृतिगळवत्तनाल्कु ५४ । सयोगिकेवल्लिगुणस्थानदोळु पदिनारुगुडिदनुदीरणाप्रकृतिगळु एणभत्तनाल्कु ८४ । अवरोळु तीर्थमोदं कळेदुदीरणा प्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदीरणाप्रकृतिगळेणभत्तमूरु ८३ । उदीरणाप्रकृतिगळु ओ'दुगुंदे नाल्वत्तु ३९ । अयोगिगुणस्थानदोळु ओ'दुगुंदे नाल्वत्तु प्रकृतिगळकूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ । उदीरणाप्रकृतिगळिल्ल । पितुक्तोदीरणा त्रिभंगिसंहृष्टि :—

| ०।०      | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उक्षी  | स   | अ |
|----------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|--------|-----|---|
| व्युच्छि | १०  | ४   | १   | १७  | ८  | ८   | ४  | ६  | ६  | १  | २१६३९  | ०   |   |
| उदी      | ११७ | १०६ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७३ | ६९ | ६३ | ५७ | ५६५४३९ | ०   |   |
| अनु      | ५   | १६  | २२  | १८  | ३५ | ४१  | ४९ | ५३ | ५९ | ६५ | ६६६८८३ | १२२ |   |

अनंतरं भूतबल्याचार्य्यपक्षदोळुदयप्रकृतिगळो मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु दय-व्युच्छित्तिप्रकृतिगळ' पेळदपरु :—

पण णवइगि सत्तरसं अड पंच य चउर छक्के छच्चेव ।

१०

इगि दुग सोलस तीसं वारस उदये अजोगंता ॥२६४॥

पंच नवैक सप्तदशाष्ट पंच च चतुः षट् षडैवैक द्वि षोडश त्रिंशद्वादशोदयेऽयोग्यंताः ॥

उदीरणा सप्तपंचाशत् । उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदीरणा षट्षष्टिः, उदीरणा षट्पंचाशत् । क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदीरणा अष्टषष्टिः, उदीरणा चतुःपंचाशत् । संयोगकेवल्लि षोडश संयोज्य अनुदीरणा तीर्थ-कृत्वोदीरणात् त्र्यंशोतिः, उदीरणा एकान्नचत्वारिंशत् । अयोगिनि एकान्नचत्वारिंशतं संयोज्य अनुदीरणा द्वाविंशत्युत्तरशतं । उदीरणा नहि ॥ २६३ ॥ अथ भूतबल्याचार्यादिप्रवाहोपदेशोनाह—

१५

उदीरणा तरेसठ, अनुदीरणा उनसठ । यहाँ छहकी व्युच्छित्ति होनेसे सूक्ष्म साम्परायमें उदीरणा सत्तावन, अनुदीरणा पैंसठ । यहाँ एककी व्युच्छित्ति होनेसे उपशान्त कषायमें उदीरणा छप्पन, अनुदीरणा छियासठ । यहाँ दोकी व्युच्छित्ति होनेसे क्षीणकषायमें उदीरणा चौवन, अनुदीरणा अड़सठ । यहाँ सोलहकी व्युच्छित्ति होनेसे और संयोगकेवलीमें तीर्थकरके उदयमें आनेसे उदीरणा उनतालीस और अनुदीरणा तिरासी ।

२०

संयोगकेवलीमें उनतालीसकी व्युच्छित्ति होनेसे अयोगकेवलीमें उदीरणा नहीं है । केवल अनुदीरणा ही होती है उसकी संख्या एक सौ बाईस है ॥२६३॥

अब आचार्य भूतबलीके उपदेशानुसार उदय व्युच्छित्ति कहते हैं—

उदये स्वभावाभिव्यक्तिरुदयस्तस्मिन् स्वकार्यं माडिकर्मरूपपरित्यागमुदयमेव बुद्धकु-  
मंतप्य कर्मोदयदोळु भूतबल्याचार्यादिप्रवाहोपदेशदोळु मिथ्यादृष्ट्याद्योगकेवलिगुणस्थानपर्यन्त-  
मुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळुमयदु-। मो भत्तु-। मो दु । पदिनेळ-। मे दु । मयदु । नात्कु-। माह-।  
मार-। मो दु-। मेरदु । पदिनारं । मूवत्तु । पन्नेरदु यथाक्रमविदमपुववाउवेदोडं दु गाथासूत्रं-

५ गळिदं पेळदपरः—

मिच्छे मिच्छादावं सुहुमतियं सासणे अणेइंदी ।

थावरवियलं मिस्से मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ॥२६५॥

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वात्तापं सूक्ष्मत्रयं सासादनेनंतानुबंध्येकेन्द्रियं स्थावरविकलं मिश्रे मिश्रं  
च चोदयव्युच्छिन्नाः ॥

- १० मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यात्वमातपनामकर्ममुं सूक्ष्मनामकर्ममुमपर्याप्तनाम-  
कर्ममुं साधारणनामकर्ममुंमेवो अयदुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळुपुवु । ५॥ सासादनसम्यग्दृष्टि-  
गुणस्थानदोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयमुमेकेन्द्रियजातिनामकर्ममुं स्थावरनामकर्ममुं स्थावरनाम-  
कर्ममुं द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनामकर्मगळुमितोभत्तुप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळुपुवु । ९॥  
मिथ्यगुणस्थानदोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियोदयव्युच्छित्तिवक्तुं । १ ॥

- १५ स्वभावाभिव्यक्तिः उदयः, स्वकार्यं कृत्वा कर्मरूपपरित्यागो वा । तस्मिन् अंता व्युच्छित्तयः गुणस्थानेषु  
क्रमशः पंच नव एका समदश अष्टौ पंच चतस्रः षट् षट् एका द्वे षोडश त्रिंशत् द्वादश स्युः ॥ २६४ ॥ ताः  
काः ? इति चेदष्टगाथासूत्रैराह—

- मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने मिथ्यात्वमातपः सूक्ष्ममपर्याप्तं साधारणं चेति पंच प्रकृतयः उदयतो व्युच्छिन्ना  
भवन्ति । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेन्द्रियं स्थावरं द्वीन्द्रियं त्रीन्द्रियं चतुरिन्द्रियं चेति नव । मिश्रे सम्यग्मि-  
थ्यात्वमित्येका ॥ २६५ ॥

- अपने अनुभागरूप स्वभावकी अभिव्यक्तिको उदय कहते हैं । अपना कार्य करके कर्म-  
रूपताको छोड़नेका नाम उदय है । और उदयके अन्तको उदय व्युच्छित्ति कहते हैं । अर्थात्  
जिस गुणस्थानमें जिस प्रकृतिकी उदय व्युच्छित्ति कही है उसके ऊपर उसका उदय नहीं  
होता । वह उदय व्युच्छित्ति गुणस्थानोंमें क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह, आठ, पाँच, चार,  
छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और बारह प्रकृतियोंकी होती है ॥२६४॥

- आगे अठारह गाथाओंके द्वारा उन प्रकृतियोंको कहते हैं—

- मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व, आप्त, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये पाँच प्रकृतियाँ  
उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं । सासादनमें अनंतानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, दो इन्द्रिय  
तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जाति, ये नौ प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं । मिश्रमें एक  
सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति उदयसे व्युच्छिन्न होती है ॥२६५॥

- विशेषार्थ—पूर्वपक्षानुसार मिथ्यात्वमें दसकी और सासादनमें चारकी उदय  
व्युच्छित्ति कही थी । यहाँ मिथ्यात्वमें पाँचकी और सासादनमें नौकी व्युच्छित्ति कही है ।  
पूर्वपक्षानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियका उदय मिथ्यादृष्टिके

अयदे विदियकसाया वेगुन्वियछक्क णिरयदेवाऊ ।

मणुवतिरियाणुपुव्वी दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥२६६॥

असंयते द्वितीयकषायवैक्रियिकषट् नरकदेवायुः । मानवतिर्य्यगानुपूर्व्यं दुर्भगानादेयाः-  
यशः ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळ् अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकषायंगळुं वैक्रियिक- ५  
शरीरतदंगोपांगद्वयमुं नरकगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयमुं, देवगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयमुं नरका-  
पुण्यमुं देवायुष्यमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं दुर्भगनाममुमनादेयनाममुमयशस्कीर्ति-  
नाममुमेव पविनेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु १७ ।

देसे तदियकसाया तिरियाउज्जोवणीच तिरियगदी ।

छट्ठे आहारदुगं थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ॥२६७॥

देशसंयते तृतीयकषायास्तिर्य्यगायुश्चोतनीचैर्गोत्रतिर्य्यगति षष्ठे आहारद्विकं स्थानगृद्धि-  
त्रयमुदयव्युच्छिन्नाः ॥

देशसंयतगुणस्थानदोळ् प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकषायंगळुं तिर्य्यगायुष्यमुश्चोत-  
नाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यगतिमुमेवेदं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ८ । षष्ठगुणस्थानवत्ति-  
प्रमत्तसंयतनोळ् आहारकशरीरतदंगोपांगद्वयमुं स्थानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलात्रयमुमित्थुं १५  
प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु । ५॥

अप्रमत्ते सम्मत्तं अंतिमतियसंहदी अपुव्वम्मि ।

छच्चेव णोकसाया अणियट्ठीभागभागेषु ॥२६८॥

अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमत्रयसंहननमपूर्व्वे । षट् चैव नोकषायानिवृत्तेर्भगभागेषु ॥

असंयते प्रत्याख्यानानावरणचतुष्के वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगनरकदेवगतितदानुपूर्व्याणि नरकदेवायुषी २०  
मनुष्यतिर्य्यगानुपूर्व्यं दुर्भगमनादेयमयशस्कीर्तिश्चेति सप्तदश ॥ २६६ ॥

देशसंयते प्रत्याख्यानानावरणचतुष्के तिर्य्यगायुश्चोती नीचैर्गोत्रं तिर्य्यगायुश्चेत्यष्टौ । षष्ठगुणस्थाने आहा-  
रकशरीरतदंगोपांगस्थानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाश्चेति पंच व्युच्छिन्नाः इति मध्यदोषकत्वादव्यत्रापि  
ग्राह्यं ॥ २६७ ॥

ही होता है सासादनके नहीं होता । यहाँ सासादनमें भी इनका उदय माना है, यही अन्तर २५  
है ॥२६५॥

असंयतमें अप्रत्याख्यानानावरण चार, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति,  
देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्य्यचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति  
ये सतरह उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२६६॥

देशसंयतमें प्रत्याख्यानानावरण चार, तिर्य्यचायु, उद्योत, नीचगोत्र, और तिर्य्यचगति ये ३०  
आठ तथा छठे गुणस्थानमें आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, स्थानगृद्धि, निद्रानिद्रा,



अप्रमत्तगुणस्थानदोषः सम्यक्त्वप्रकृतिर्युद्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननत्रितयमु-  
मेवो नालकुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ४॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोषः हास्यरत्यरतिशोक-  
भयजुगुप्सागळे बोयारे नोकषायगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ६॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोषः प्रकृतिविनाशनक्रममनपेक्षिसि सठेद भागेयुमवेद भागेय  
५ क्रोधादिकषाय भागेगळोळं ।

वेदतियकोहमाणं मायासंज्वलणमेव सुहुमंते ।

सुहुमो लोहो संते वज्जं नारायणारायं ॥२६९॥

वेदत्रयक्रोधमानमायासंज्वलनमेव सूक्ष्मंते । सूक्ष्मो लोभः शान्ते वज्जनाराचनाराचं ॥

सवेदभागेयोळु वेदत्रयं स्त्रीपुनपुंसकंगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ३॥ अवेदभागेयोळु

१० यथाक्रमदिदं क्रोधसंज्वलनमुं मानसंज्वलनमुं मायासंज्वलनमुमेंबोयारं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति-  
गळप्पुवु । ६ । अल्लिये बादरलोभोदयव्युच्छित्तियकुं ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानचरमसमयदोषः  
सूक्ष्मकृष्टिगत लोभकषायोदयव्युच्छित्तियकुं । १॥ उपशान्तकषायगुणस्थानदोषः वज्जनाराचनारा-  
चाचरीरसंहननद्वयमुदयव्युच्छित्तियप्पुवु । २॥

खीणकसायदुचरिमे णिहापयला य उदयवोच्छिण्णा ।

१५ णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्मि ॥२७०॥

खीणकषायद्विचरमे निद्रा प्रचला ओदयव्युच्छिन्ने । ज्ञानांतरायदशकं दर्शनचत्वारि  
चरमे ॥

अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतिः अर्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननानि चेति षटसः । अपूर्वकरणे  
हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साः षट् । अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने प्रकृतिविनाशक्रममपेक्ष्य सवेदावेद-  
२० भागयोः ॥ २६८ ॥

सवेदभागे वेदत्रयं, अवेदभागे क्रमेण क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं चेति षट् । बादर-  
लोभोऽपि तत्रैव । सूक्ष्मसांपरायचरमसमये सूक्ष्मकृष्टिगतलोभः । उपशान्तकषाये वज्जनाराचनाराचसंहनने  
द्वे ॥ २६९ ॥

प्रचलाप्रचला ये पाँच उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं । यहाँ आया 'व्युच्छिन्न' शब्द मध्यदीपक  
२५ होनेसे आगे भी लगा लेना चाहिए ॥२६७॥

अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृति, अर्धनाराच, कीलित और असम्प्राप्तसृपाटिका संहनन  
ये चार तथा अपूर्वकरणमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय उदयसे  
व्युच्छिन्न होती हैं । अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग और अवेद भाग हैं ॥२६८॥

सवेद भागमें तीनों वेदोंकी व्युच्छित्ति होती है और अवेद भागमें क्रमसे क्रोध-  
३० संज्वलन, मानसंज्वलन और मायासंज्वलनकी व्युच्छित्ति होनेसे अनिवृत्तिकरणमें छहकी  
व्युच्छित्ति होती है तथा बादर लोभकी व्युच्छित्ति भी अनिवृत्तिकरणमें ही होती है । सूक्ष्म  
साम्परायके अन्तमें सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभकी व्युच्छित्ति होती है । उपशान्त कषायमें  
वज्जनाराच और नाराचसंहननकी व्युच्छित्ति होती है ॥२६९॥

क्षीणकषायगुणस्थानद्विचरमसमयदोळु निद्राप्रचलगळेरडुं व्युच्छित्तिगळप्पुवु । २ ॥ चरमसमयदोळु  
ज्ञानावरणपंचकमंतरायपंचकदर्शनावरणचतुष्टयमेव पदिनात्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळ-  
प्पुवु । १४ ॥

तदियेकवज्जणिमिणं थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं ।

संठाणं वण्णागुरुचउक्कपत्तेय जोगम्मि ॥२७१॥

तृतीयैकवज्जनिर्माणं स्थिरशुभस्वरगत्यौदारिकतैजसद्विकं । संस्थानं वर्णागुरुचतुष्कं प्रत्येकं  
योगिनि ॥

सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु वेदनीयदोळोडुं वज्जवृषभनाराचसंहननमुं निर्माणनाममुं  
स्थिरास्थिरद्विकमुं शुभाशुभद्विकमुं सुस्वरदुस्वरद्विकमुं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्विकमुं औदारिक-  
शरीरतदंगोपांगनामद्विकमुं तैजसकामर्मणशरीरद्विकमुं संस्थानषट्कमुं वर्णाचतुष्कमुं अगुरुलघूपधा- १०  
तपरघातोच्छ्वासाचतुष्कमुं प्रत्येकशरीरमुमिन्तु मूवत्तु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ३० ॥

तदिक्कं मणुवगदी पंचिदियसुभगतसतिमादेज्जं ।

जसत्तिथं मणुवाऊ उच्चं च अजोगिचरिमम्मि ॥२७२॥

तृतीयैकं मनुष्यगतिः पंचेंद्रियसुभगत्रसत्रिकादेयं । यशस्तीर्थं मनुष्यायुर्गच्छं चायोगिचरमे ॥

अयोगिगुणस्थानचरमसमयदोळु वेदनीयद्वयदोळोडुं मनुष्यगतियं पंचेंद्रियजातियं सुभग- १५  
नाममुं त्रसबादरपर्याप्तत्रयसुमादेयनाममुं यशस्कीर्तिनाममुं तीर्थंकरनाममुं मनुष्यायुष्यमुमुच्चैर्गो-  
त्रमुमिन्तु पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । १२ ॥ सवर्गत्रसवर्गकर्मगळिगे नानाजोवापेक्षे-

क्षीणकषायगुणस्थानद्विचरमसमये निद्राप्रचले उदयव्युच्छिन्ने । चरमसमये पंचज्ञानावरणपंचांतराय-  
चतुर्दर्शनावरणानि ॥ २७० ॥

सयोगकेवलिगुणस्थाने वेदनीयैकतरं वज्जवृषभनाराचं निर्माणं स्थिरास्थिरं शुभाशुभं सुस्वरदुःस्वरी २०  
प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती औदारिकतदंगोपांगे तैजसकामर्णे संस्थानषट्कं वर्णाचतुष्कं अगुरुलघूपधातपर-  
घातोच्छ्वासाः प्रत्येकशरीरं चेति त्रिंशत् ॥ २७१ ॥

अयोगिगुणस्थानचरमसमये वेदनीयैकतरं मनुष्यगतिः पंचेंद्रियं सुभगं त्रसबादरपर्याप्तानि आदेयं

क्षीणकषायके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचला उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं । अन्तिम  
समयमें पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दशनावरण उदयसे व्युच्छिन्न २५  
होती हैं ॥२७०॥

सयोगकेवली गुणस्थानमें दोनों वेदनीयमें-से कोई एक वेदनीय, वज्जवृषभनाराच  
संहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त  
विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, तैजस, कामर्ण, छह संस्थान, वर्णादि-  
चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात उच्छ्वास, प्रत्येकशरीर इन तीसकी व्युच्छित्ति होती ३०  
है ॥२७१॥

अयोगी गुणस्थानके अन्त समयमें दोनों वेदनीयमें-से एक, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय,  
सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र ये बारह व्युच्छिन्न होती

यिदं व्युच्छित्तियं पेळु सयोगायोगरोळं तदिएक्कं तदिऐक्कमेंदिनु आवुदो दु कथनमदेकजीवं प्रति साताऽसातंगळगऽन्यतरोद्वयव्युच्छित्तियागुत्तं विरलु सातदोडनागलसातदोडनागलि मेणु तीसं बारस एंबुदक्कुं । सातासातोदयंगळगे नानाजीवापेक्षेयिदं सयोगकेवलियोदक्कं व्युच्छित्ति यिरलेंदितल्लि सयोगायोगिगळोळुगुतीसतेरमुदयविही येंदिनु पेळल्पट्टुदु ॥ कि० ॥ इतागुत्तं विरलु नानाजीवंगळं ५ कुरुत्तु तदुभयोदयसंभवमपुर्दारिदं प्राक्तनगुणस्थानवतं सयोगकेवलियोळमेकजीवं प्रति आ एरडर परावर्त्तनोदयशंके यावनोर्व्वनोळक्कुमदं निवारिसत्वेडियं पेळदपरः —

णट्टा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्मि जदो ।

तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ॥२७३॥

नष्टौ च रागद्वेषौ इन्द्रियज्ञानं च केवलिनि यतस्तेन तु सातासातजसुखदुःखं नास्तीन्द्रियजं १० केवलिनि ॥

सयोगकेवलिभट्टारकनोळु रागद्वेषौ नष्टौ रागद्वेषंगळेरडुं नष्टंगळेकेदोडे रागहेतुगळ् मायाचतुष्कमुं लोभचतुष्कमु वेदत्रितयमुं हास्यरति येव त्रयोदशप्रकृतिगळं, द्वेषहेतुगळप् क्रोधचतुष्कमुं मानचतुष्कमुमरतिलोकभयजुगप्सेगळेंव द्वादशप्रकृतिगळं निरवशेषमाणि क्षपिसत्त्वपट्टुवपु- १५ दारिदं यिन्द्रियज्ञानं च नष्टं यिन्द्रियज्ञानमुं नष्टपादुदेकेदोडे मतिश्रुतज्ञानंगळु परोक्षंगळुं क्षायोपशमि- कंगळपुर्दारिदं युगपत्सकलावभासिकेवलज्ञानोपयोगमुळळ केवलियोळु परोक्षज्ञानंगळुं क्षायोप-

यशस्कीर्तिः तीर्थकरत्वं मनुष्यायुः उच्चर्गोत्रं चेति द्वादश एता व्युच्छित्तयो नानाजीवापेक्षयैवोक्ताः । सयोगायोगयोस्तु एकं जीवं प्रति असाते साते वा व्युच्छिन्ने त्रिंशत् द्वादश नानाजीवं प्रति उभयच्छेदाभावात् एकान्तत्रिंशत् त्रयोदश ज्ञातव्याः ॥ २७२ ॥ अथ पूर्वगुणस्थानवत् सयोगेऽप्येकजीवं प्रति तदुभयोदयो भविष्यतीति शंका निराकरोति—

२० यतः घातिकर्मविनाशो सयोगकेवलिनि रागहेतुमायाचतुष्कलोभचतुष्कवेदत्रयहास्यरतीनां द्वेषहेतुक्रोधचतुष्कमानचतुष्कारतिशोकभयजुगप्सानां च निरवशेषक्षयात् रागद्वेषौ नष्टौ । युगपत्सकलावभासिनि

हैं । यह व्युच्छित्ति नाना जीवोंकी अपेक्षा कही है । सयोगी अयोगी गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा साता या असाताकी व्युच्छित्ति कही है । अतः उनमें तीस और बारहकी व्युच्छित्ति एक जीवकी अपेक्षा कही है । नाना जीवोंकी अपेक्षा उनतीस और तेरहकी व्युच्छित्ति है ॥२७२॥

२५ पूर्वके गुणस्थानोंकी तरह सयोगकेवलीमें भी एक ही जीवके साता और असाता दोनोंका उदय होगा, इस शंकाको दूर करते हैं—

क्योंकि संयोगकेवलीके घातिकर्मोंका विनाश हो गया है अतः रागके कारण चार प्रकारकी माया, चार प्रकारका लोभ, तीन वेद, हास्य-रतिका तथा द्वेषके कारण चार प्रकारका क्रोध, चार प्रकारका मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका पूर्णरूपसे क्षय होनेसे ३० उनके राग और द्वेष नष्ट हो चुके हैं । तथा एक साथ सब पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानके प्रकट होनेपर परोक्ष तथा क्षायोपशमिक रूप मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्भव नहीं हैं ॥२७२॥

अतः केवलीके इन्द्रियज्ञान भी नष्ट हो चुका है । इस कारणसे केवलीके साता और असाताके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सुख-दुःख नहीं होता; क्योंकि वह सुख-दुःख इन्द्रिय-

शमिकंगलुपयोग विरुद्धमप्युदरिदं यतः आवुदोदु घातिकर्मविनाशमाद कारणदिदं । तेन अदु कारणदिदं । तु मनो सातासातोदयजनितसुखदुःखं सातासातोदयजनितसुखमुं दुःखमुं नास्ति इल्लेकैदोडे इन्द्रियजं इन्द्रियजत्वात् तत्सातासातवेदोदयजनितसुखदुःखमिन्द्रियजनितमप्युदरिदं । सहकारिकारण-मोहनीयाभावाददमा सातासातोदयं विद्यमानवदोडे स्वकार्यकारियल्लेकैदुदर्थं ॥

अनंतरमा इन्द्रियजनितसुखदुःखकारणमोदुमिल्लेबुदक्कुपपत्तियं तोरिदपरुः—

समयद्विदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स ।

तेण असादस्सुदओ सादस्सरूपेण परिणमदि ॥२७४॥

समयस्थितिको बंधः सातस्योदयात्मको यतस्तस्य । तेनासातस्योदयः सातस्वरूपेण परिणमति ॥

यतस्तस्य सातस्य बंधः समयस्थितिकः आवुदोदुकारणदिदमा सातवेदनीयबंधं समयस्थिति- १०  
कमप्युदरिदं उदयात्मकमेयक्कुमदु कारणमागि सयोगकेवलियोळसातवेददुदयं सातस्वरूपदिदं  
परिणमिसुगुमेकैदोडे विशिष्ट विशुद्धनप्प सयोगभट्टारकओदुदधिसुत्तं विद्वं असातवेदमनंतगुणहीन-  
शक्तिकमुं स्वसहायरहितमुमप्युदरिनव्यक्तोदयमक्कुमदुवुमनंतगुणानुभागयुतत्तात्कालिकोदयात्मक  
सातबंधमुदप्युदरिदं तत्स्वरूपदिदं परिणमिसुगुमप्यु । यत्तलानुमसातस्वरूपदिदं सातमुदधिसुगु-  
मागळ सातक्के द्विसमयस्थितिकत्वमक्कुमन्यथा असातक्केये बंधप्रसंगमक्कुं ॥ १५

मतिश्रुतयोः परोक्षयोः धावोपशमिकयोरसंभवात् इन्द्रियज्ञानं च नष्टं तेन कारणेन तु—पुनः सातासातोदयजं  
सुखदुःखमपि नास्ति । कुतः ? तस्येन्द्रियजत्वात् । सहकारिकारणमोहनी । भावे तदुदयो विद्यमानोऽपि न स्वकार्य-  
कारोत्यर्थः ॥ २७ ॥ तस्य तदकारणत्वे उपपत्तिमाह —

यतस्तस्य केवलिनः सातवेदनीयस्य बंधः समयस्थितिकः ततः उदयात्मक एव स्यात् । तेन तत्रासातोदयः  
सातस्वरूपेण परिणमति । कुतः ? सातस्वरूपे परिणमनस्य विशिष्टशुद्धे तस्मिन् असातस्य अनंतगुणहीनशक्तिव- २०  
सहायरहितत्वाभ्यां अव्यक्तोदयत्वात् । बध्यमानसातस्य च अनंतगुणानुभागत्वात् तत्रातवस्यावश्यंभावात् । न च  
तत्र सातोदयोऽसातस्वरूपेण परिणमतीति शक्यते वक्तुं द्विसमयस्थितिकत्वप्रसंगात् अन्यथा असातस्यैव बंधः  
प्रसज्यते ॥ २७४ ॥

जन्य होता है । इसका अर्थ यह है कि वेदनीयका सहकारी कारण मोहनीय कर्म है । इसके  
अभावमें वेदनीयका उदय होते हुए भी वह अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता ॥२७३॥ २५

वेदनीयका उदय अपना कार्य करनेमें क्यों असमर्थ है, इसमें उपपत्ति देते हैं—

क्योंकि केवलीके सातावेदनीयका बन्ध एक समयकी स्थितिको लिए हुए होता है  
अतः वह उदयरूप ही है । इस कारणसे केवलीमें असाताका भी उदय सातारूपसे परिणमन  
करता है । क्योंकि केवलीमें विशेष विशुद्धता होनेसे असाता वेदनीयकी अनुभाग शक्ति  
अनन्तगुणी हीन हो जाती है तथा मोहकी सहायता भी नहीं रहती । इससे असातावेदनीय- ३०  
का उदय अव्यक्त रहता है । तथा बँधनेवाले सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा होता है ।  
क्योंकि केवलीके विशुद्धि विशेष है और विशुद्धतासे अनुभाग अधिक होता है । इसीसे  
असाताका भी उदय सातारूपसे परिणमन करता है । किन्तु साताका उदय असातारूप

एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु गिरंतरो उदओ ।

तेणासादणिमिक्खा परीसहा जिणवरे णत्थि ॥२७५॥

एतेन कारणेन तु सातस्यैव तु निरंतरोदयः । तेनासातनिमित्ताः परीषहा जिनवरे न संति ॥

- ५ इदु कारणदिदं तु मत्ते सातबंधमुदयात्मकमपुर्दारिदं सातकेये निरंतरोदयमवकुमदरिदम सातदुदयजनितैकादश परीषहंगळु क्षुत् पिपासा शीत उष्ण दंश मशक चर्या शय्या वध रोग तृणस्पर्शमलमेविवु जिनवरे न संति जिनस्वामियोळु घट्टियिसवु । अंतादोडेकादश जिने 'वेदनीये शेषा' येदु असातवेदनीयोदयसंभूतैकादश परीषहंगळु जिनरोळंतेदोडे घादिव्व वेयणीयं मोहस्स बळेण घाददे जीवं येवो वाक्यदिदं मोहनीयकम्मबलसहायरहित वेदनीयं फलवंतमल्ले दितुमेकादशपरीषहंगळु जिणवरे णत्थि येवो वाक्यविशेषदिदमुं निश्चयनयदिदं जिनरोळोदुं परीषहमिल्लोदुं दु कारणभूतासातवेदनीयोदयसद्भावदिदमुपचारदिदं कार्थरूपमप्य परीषहास्तित्वं ॥

- अनंतरमभेदविवर्क्षेयिदमुदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरदु १२२ । मिथ्यादृष्टियागि चतुर्दशगुणस्थानंगळोळु संभवंगळु पेळल्पडुगुमदेतेदोडे—मिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळु नूर हदिनेळु ११७ । अनुदयंगळु तीर्थमुमाहारद्वयमुं सम्यगिमिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेदिव्वदु ५ ।
- १५ सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तिगळुदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पत्तुं नरकमं सासादनं पुगनपुर्दारिदं नरकानुपूर्व्यमुं सहितमागि पन्नोदु ११ । उदयप्रकृतिगळु नूर पन्नोदु १११ । मिथ्रगुणस्थानदोळोभत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळुपत्तुं शेषानुपूर्व्यंगळु मूरं कूडिप्पत्त-

- एतेन उक्तकारणेन तु पुनः सातस्यैव निरंतरोदयः स्यात् । तेनासातोदयजनिताः परीषहाः क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्या जिनवरे न संति । 'एकादश जिने' 'वेदनीये शेषाः' इति सूत्रेणापि कारणे कार्योपचारेणैवोक्तत्वात् मुख्यतस्तेषामभावात् ।

- २० अथाभेदविवक्षया उदये द्वाविंशत्युत्तरशतं १२२ । तत्र मिथ्यादृष्टावुदयः सप्तदशोत्तरशतं, अनुदयः तीर्थकरत्वाहारकद्वयसम्यगिमिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतयः पंच । सासादने पंच नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अनुदयः

परिणमन करता है, ऐसा कहना शक्य नहीं; क्योंकि ऐसा कहनेसे साताका स्थितिबन्ध दो समय मानना होगा । अन्यथा असाताका ही बन्ध प्राप्त होगा ॥२७४॥

- २५ उक्त कारणसे केवलीके निरन्तर साताका ही उदय रहता है । अतः असाताके उदयसे उत्पन्न होनेवाली क्षुधा, प्यास, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल परीषह केवलीमें नहीं होती । तत्त्वार्थ सूत्रमें भी जो 'एकादश जिने' 'वेदनीये शेषाः' ऐसा कहा है वह कारणमें कार्यका उपचार करके ही कहा है । मुख्यरूपसे उनका केवलीमें अभाव है ।

- ३० अभेद विवक्षासे उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस हैं । उनमेंसे मिथ्यादृष्टिमें उदय एक सौ सतरह ११७, अनुदय तीर्थकर, आहारकद्विक, सम्यक्समिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति पाँच । सासादनमें उक्त पाँचमें पाँच व्युच्छित्ति और एक नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय ग्यारहका ११, उदय एक सौ ग्यारहका । और उदय व्युच्छित्ति नौ । अतः ११ + ९

मूररोळु, सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तेरडु २२ ।  
 उदयप्रकृतिगळु नूर १०० ॥ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळो दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूररोळु,  
 नाल्कानुपूरव्यंगळु, सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पदिनेदु  
 १८ । उदयप्रकृतिगळु नूर नाल्कु १०४ ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु  
 मूवत्तयडु ३५ । उदयप्रकृतिगळेणभत्तेळु ८७ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु एंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु ५  
 नाल्वत्तमूरवरोळु आहारकद्वितयमं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु नाल्व-  
 त्तोडु ४१ । उदयप्रकृतिगळेणभत्तोडु ८१ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु  
 नाल्वत्तार ४६ । उदयप्रकृतिगळेप्पत्तार ७६ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदय-  
 प्रकृतिगळु मय्यत्त ५० । उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेरडु ७२ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनु-  
 दयप्रकृतिगळवत्तार ५६ । उदयप्रकृतिगळरवत्तार ६६ । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु आरुगूडि- १०  
 दनुदयप्रकृतिगळरवत्तेरडु ६२ । उदयप्रकृतिगळु अरवत्त ६० ।

उपशांतकषायगुणस्थानदोळो दु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरवत्त मूर ६३ । उदयप्रकृतिगळवत्तो  
 भत्तु ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरवत्तयडु ६५ । उदयप्रकृतिगळ-  
 वत्तेळु ५७ ॥

सयोगिकेवल्लिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिना रुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेणभत्तोद्वरोळु तीर्थंकर- १५  
 नामप्रकृतिंतेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेणभत्तु ८० । उदयप्रकृतिगळु  
 नाल्वत्तेरडु ४२ ॥ अयोगिकेवल्लिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नूर पत्तु

एकादश, उदयः एकादशोत्तरशतं । मिश्रेऽनुदयः नव शेषानुपूर्वत्रयं च मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् द्वावि-  
 त्तिः उदयः शतं । असंयतेऽनुदयः एकां निक्षिप्य चतुरानुपूर्वसम्यक्त्वप्रकृत्युदयादष्टादश । उदयः चतुस्तरशतं ।  
 देशसंयतेऽनुदयः सप्तदश मिलित्वा पंचत्रिंशत् । उदयः सप्तांशोतिः । प्रमत्तेऽनुदयोऽष्टौ मिलित्वा आहारद्वयो- २०  
 दयादेकचत्वारिंशत् । उदयः एकांशोतिः । अप्रमत्तेऽनुदयः पंच संयोज्य षट् चत्वारिंशत् । उदयः षट्सप्ततिः ।  
 अपूर्वकरणेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य पंचाशत् । उदयः द्वासप्ततिः । अनिवृत्तिकरणेऽनुदयः षट् संयोज्य षट्पंचा-  
 शत् । उदयः षट्षष्टिः । सूक्ष्मसांपराये षट् निक्षिप्य अनुदयो द्वापष्टि, उदयः षष्टिः । उपशांतकषाये एकां  
 संयोज्यानुदयस्त्रिषष्टिः । क्षीणकषाये द्वे निक्षिप्य अनुदयः पंचषष्टिः । उदयः सप्तपंचाशत् । सयोगिकेवल्लिनि

और शेष तीन आनुपूर्वीका अनुदय तथा सम्यक् मिथ्यात्वका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय २५  
 बाईस और उदय सौ १०० । तथा व्युच्छित्ति एक । असंयतमें चार आनुपूर्वी और सम्यक्त्व  
 मोहनीयका उदय होनेसे अनुदय अठारह, उदय एक सौ चार । यहाँ व्युच्छित्ति सतरहकी  
 होनेसे देशसंयतमें अनुदय पैंतीस और उदय सत्तासी है । यहाँ व्युच्छित्ति आठकी है ।  
 अतः प्रमत्तमें ३५ + ८ = ४३ में-से आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय इकतालीस, उदय  
 इक्यासी है । यहाँ व्युच्छित्ति पाँच है । अतः अप्रमत्तमें अनुदय छियालीस और उदय छिहत्तर ३०  
 है । यहाँ व्युच्छित्ति चार है । अतः अपूर्वकरणमें अनुदय पचास और उदय बहत्तर । यहाँ  
 व्युच्छित्ति छह है । अतः अनिवृत्तिकरणमें अनुदय छप्पन, उदय छियासठ । यहाँ व्युच्छित्ति  
 छह है । अतः सूक्ष्म सांपरायमें अनुदय बासठ, उदय साठ और व्युच्छित्ति एक । अतः

११०। उदयप्रकृतिगळु पन्नेरडु १२॥ यितुक्तमिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्दशगुणस्थानंगळोळुदय-  
व्युच्छित्ति उदयानुदयप्रकृतिगळमे यथाक्रमदिदमयोगिकेवलिंगुणस्थानपद्व्यन्तं संदृष्टिरचने :—

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|-----|
| व्यु | ५   | ९   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ३० | १२  |
| उ    | ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५२ | ५७   | ४२ | १२  |
| अ    | ५   | ११  | २२  | १८  | ३५ | ४१  | ४६ | ५० | ५६ | ६२ | ६३ | ६५   | ८० | ११० |

अन्तरमुदयप्रकृतिगळ संख्येयं गुणस्थानंगळोळु पेळ्दपरु :—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी ।

५ छावडि सडि णवसगवण्णास दुदालवारुदया ॥२७६॥

सप्तदशैकादशखचतुःसहितशतं सप्तैकाशोतिः षड्विंशतिः । षट्पष्टिः षष्टि नव सप्त-  
पञ्चाशद्विचत्वारिंशद्द्वादशोदयाः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदं सप्तैकादशशून्यचतुरधिकशतंगळु सप्तैका-  
धिकाशोतिगळु षड्विकोत्तरसप्ततिगळु षट्षष्टियुं षष्टियुं नवसप्ताधिकपञ्चाशत्प्रकृतिगळु

१० द्विचत्वारिंशद्द्वादशप्रकृतिगळु दयंगळप्पुवु ।

अन्तरमनुदयप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

पंचेक्कारसवावीसट्ठारसपंचतीस इगिछादालं ।

पण्णं छप्पण्णं वित्तिपणसट्ठी असीदि दुगुणपणवण्णं ॥२७७॥

१५ पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकषट्चत्वारिंशत् पञ्चाशत् षट्पञ्चाशत् द्वित्रिपंचषष्ट्य-  
शोतिद्विगुणपंचपञ्चाशत् ॥

षोडश संयोज्य तीर्थंकरतोदयादनुदयः अशोतिः । उदयः द्वाचत्वारिंशत् । अयोगकेवलिति त्रिशतं संयोज्यानु-  
दयः दशोत्तरशतं । उदयः द्वादश ॥ २७५ ॥ अमूक्तोदयानुदयान् गाथाद्वयेनाह —

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु यथाक्रमं सप्तदशैकादशशून्यचतुरधिकशतानि सप्तैकाशोतिः षट्द्वचुत्तर-  
सप्ततिः षट्षष्टिः नवसप्ताधिकपञ्चाशती द्विचत्वारिंशत् द्वादश प्रकृतयः उदये भवन्ति ॥ २७६ ॥

२० उपशान्त कषायमें अनुदय तिरसठ, उदय उनसठ और व्युच्छित्ति दो । अतः क्षीणकषायमें अनुदय पैसठ, उदय सत्तावन, व्युच्छित्ति सोलह । किन्तु तीर्थंकरका उदय होनेसे संयोग-  
केवलीमें अनुदय अस्सी और उदय बयालीस, व्युच्छित्ति तीस । अतः अयोगकेवलीमें अनुदय एक सौ दस और उदय बारह है ॥२७५॥

ऊपर कहे उदय और अनुदयको दो गाथाओंसे कहते हैं—

२५ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें क्रमसे एक सौ सतरह, ५ सौ ग्यारह, एक सौ, एक सौ चार, सतासी, इक्यासी, छिहत्तर, बहत्तर, छियासठ, साठ, उनसठ, सत्तावन, बयालीस और बारह प्रकृतियोंका उदय होता है ॥२७६॥

आ मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळनुदयप्रकृतिगळु यथाक्रमविदं पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादश पंचोत्तरत्रिंशदेकषडधिक चत्वारिंशत्पंचाशत् षट्पंचाशत् द्वित्रिपंचाधिकषष्ट्यशोति द्विगुणपंचाधिक पंचाशत्प्रकृतिगळपुवु ।

अनंतरमुदयप्रकृतिगळुदीरणेयं पेळवपरु :—

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।

मोत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ॥२७८॥

उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वतो न विद्यते विशेषः मुक्त्वा त्रिस्थानं प्रमत्तयोग्ययोगिनां च ॥

उदयवक्कमुदीरणेयं स्वामित्वविदं विशेषमिल्ल । प्रमत्तसयोगायोगिगळ त्रिस्थानमं विट्टु ई मूळं गुणस्थानंगळोळं विशेषमुटल्लदन्त्यत्र सर्व्वगुणस्थानंगळोळुदयवक्कमुदीरणेयं स्वामित्वविदं विशेषमिल्लेबुदत्थं ॥ १०

अनंतरमा त्रिस्थानदोळु विशेषमावुदेदोडे पेळवपरु :—

तीसं बारस उदयुच्छेदं केवलिनमेगदं किच्चा ।

सादमसादं च तहिं मणुवाउगमवणिदं किच्चा ॥२७९॥

त्रिंशद्द्वादशोदयोच्छेदं केवलिनोरेकीकृत्य । सातमसातं च तस्मिन्मनुष्यायुष्यं चापनोतं कृत्वा ॥ १५

केवलिनोः सयोगायोगकेवलिगळ उदयोच्छेदं उदयव्युच्छित्तिं त्रिंशद्द्वादश मूवत्तु पन्नेरडुगळु एकीकृत्य कूडि तस्मिन् अदरोळ ४२ । सातमसातं च सातप्रकृतिपुमसातप्रकृतिपुमं मनुष्यायुष्यं मनुष्यायुष्यकमुमेब मूळं प्रकृतिगळिदमपनोतं कृत्वा कळेयत्पट्टुदं माडि ३९ ॥

तेषु अनुदयः यथाक्रमं पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकषडधिकचत्वारिंशत्पंचाशत्षट्पंचाशत्तद्विंशत्त्रिंशत्पंचाधिकषष्ट्यशोतिद्विगुणपंचपंचाशत्प्रकृतयो भवन्ति ॥ २७७ ॥ अथोदयप्रकृतीनामुदीरणमाह— २०

उदयस्य उदीरणायाश्च स्वामित्वाद्विशेषो न विद्यते प्रमत्तयोग्ययोगिनां मुक्त्वा अन्यत्र विशेषो नेत्यर्थः ॥ २७८ ॥ तत्र को विशेषः ? इति चेदाह—

सयोगयोगयोः उदयव्युच्छित्तिं त्रिंशद्द्वादश एकीकृत्य ४२ तत्र सातासातमनुष्यायुषि अपनेतव्यानि ३९ ॥ २७९ ॥ २५

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें क्रमसे पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, छियालीस, पचास, छप्पन, बासठ, तिरसठ, पैंसठ, अस्सी और एक सौ दस प्रकृतियोंका अनुदय होता है ॥२७७॥

आगे उदय प्रकृतियोंकी उदीरणा कहते हैं—

उदय और उदीरणाके स्वामीपनेमें कोई अन्तर नहीं है । प्रमत्त, सयोगी और अयोगी इन तीन गुणस्थानोंको छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें उदयके समान ही उदीरणा जानना ॥२७८॥ ३०

इन गुणस्थानोंमें विशेषता कहते हैं—

सयोगी और अयोगीमें उदय व्युच्छित्ति क्रमसे तीस और बारह है । उनको एकत्र करके उनमेंसे साता, असाता और मनुष्यायु षटाइए ॥२७९॥



अवणिदतिप्पयडोणं यमत्तविरदे उदीरणा होदि ।

णत्थित्ति अजोगिजिणे उदीरणा उदयपयडोणं ॥२८०॥

अपनीतत्रिप्रकृतीनां प्रमत्तविरते उदीरणा भवति । नास्तीत्ययोगिजिने उदीरणा उदय-  
प्रकृतीनां ॥

५ अयोगिकेवलजिननोळुदयप्रकृतिगळुगुदीरणेयिल्लप्पुदरिदं सयोगायोगिकेवळिगळु मूवत्तुं  
पन्नेरडुमुदयव्युच्छित्तिं कूडि नात्त्वत्तेरडोळु सातासातप्रकृतिगळुं मनुष्यायुष्यमुं कळेदु वप्पु-  
वरिदमा कळेदु मूहं प्रकृतिगळु प्रमत्तसंयतनोळु व्युच्छित्तिगळुप्पुवु । अदु कारणमाणि प्रमत्त-  
संयतनोळेदु प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळुप्पुवु । शेष मूवतो भत्तु प्रकृतिगळुगुदीरणे सयोगकेवलि-  
भट्टारकगुणस्थानवोळक्कुं । ३९ ॥

१० अप्रमत्तादिगुणस्थानंगळोळामूहं प्रकृतिगळुगुदीरणेयिल्लेकेंदोडे प्रमादरहितरप्पुदरिदं  
संक्लिष्टरोळल्लवा मूहं प्रकृतिगळुगुदीरणे घटिसदप्पुदरिदमी विशिष्टशुद्धरोळु तदुदीरणेगसंभव-  
मप्पुदरिदं ॥

अनंतरं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळुदीरणायुच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळदपरः -

पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव ।

१५ इगिदुग सोळुगुदालं उदीरणा होति जोगंता ॥२८१॥

पंच नवैकसप्तदशाष्टाष्टौ च चतुः षट्कं षट्चैव । एक द्विकषोडशैकान्तचत्वारिंशदुदीरणा  
भवन्ति योग्यताः ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियाणि सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानमवसानमादत्रयोदशगुणस्थानं-  
गळोळु यथाक्रमविदमुदीरणा व्युच्छित्तिप्रकृतिगळु पंच नव एक सप्तदश अष्ट अष्ट चतुः षट्क

२० षट् च एक द्विक षोडश एकान्तचत्वारिंशत् प्रकृतिगळुप्पुवंतागुत्तं विरलुदीरणाप्रकृतिगळुमनु-

अयोगिजिने उदयप्रकृतीनां उदीरणा नास्ति इति तदपनीतप्रकृतित्रयस्य प्रमत्तसंयते व्युच्छित्तिर्भवति  
ततः कारणात् प्रमत्तेऽष्टौ व्युच्छिद्यन्ते । शेषैकोनचत्वारिंशदुदीरणा सयोगे एव नाप्रमत्तादिषु तत्त्रयोदीरणास्ति  
अप्रमत्तादिवात् । संक्लिष्टेभ्योऽन्यत्र तदसंभवाच्च ॥ २८० ॥ अथोदीरणाव्युच्छित्तिमाह -

सयोगपर्यंतत्रयोदशगुणस्थानेषु यथाक्रमं उदीरणाव्युच्छित्तिः पंचनवैकसप्तदशाष्टाष्टचतुःषट्कषट्कैक-

२५ अयोग केवलीमें उदय प्रकृतियोंकी उदीरणा नहीं होती । इसलिए घटायी हुई तीन  
प्रकृतियोंकी उदीरणा व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है । अतः प्रमत्तसंयतमें आठकी उदीरणा  
व्युच्छित्ति होती है । ब्यालीसमें-से तीन घटानेपर शेष रही उनतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणा  
व्युच्छित्ति सयोगकेवलीमें ही होती है । उन तीनकी उदीरणा अप्रमत्त आदि गुणस्थानोंमें  
नहीं होती, क्योंकि वे अप्रमत्तादि रूप हैं । इनकी उदीरणा संक्लेश परिणामोंसे होती है,  
३० संक्लेश परिणामोंके बिना इनकी उदीरणा नहीं होती ॥२८०॥

आगे उदीरणा व्युच्छित्ति कहते हैं-

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगी पर्यन्त तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे उदीरणा व्युच्छित्ति पाँच,

उदीरणा प्रकृतिगळं योजिसत्त्वपुण्यमद्वैतदोडे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु उदीरणा प्रकृतिगळं नूरहदिनेळु ११७ । अनुदीरणा प्रकृतिगळं तीर्थमुनाहारकद्विकमुं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतिगळं पंचप्रकृतिगळं उदीरणा प्रकृतिगळं पुत्रु ५ ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टि

उदीरणा प्रकृतिगळं नूरपन्नोदु १११ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ओभत्तुगूडिदनुदीरणा ५

प्रकृतिगळं इषत्तु । शेषानुपूर्व्यगळं मूरसहितमागि अनुदीरणा प्रकृतिगळं यिषत्तमूरवरोळं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं कळेदुदीरणा प्रकृतिगळोळं कूडुत्तं विरलु अनुदीरणा प्रकृतिगळिषत्तेरडु २२ । उदीरणा प्रकृतिगळं १०० ॥ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळोदु गूडियनुदीरणा प्रकृति-

गळिषत्तमूरवरोळं सम्यक्त्वप्रकृतियुमानुपूर्व्यचतुष्कमुमं कळेदुदीरणा प्रकृतिगळोळं कूडुत्तं विरलु अनुदीरणा प्रकृतिगळं पदिनेदु १८ । उदीरणा प्रकृतिगळं नूरनात्कु १०४ ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु १०

पदिनेळु गूडियनुदीरणा प्रकृतिगळं सूवत्तदु ३५ । उदीरणा प्रकृतिगळं भतेळु ८७ ॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळु सातासातमनुष्यायुष्यं गूडिदुदीरणा व्युच्छित्तिप्रकृतिगळं दु ८ ॥ देशसंयतनुदीरणा व्युच्छित्तिगळं दु गूडिदातननुदीरणा प्रकृतिगळं सूवत्तदु गूडि नात्वत्तमूरवरोळु आहारकद्विकमुं कळेदुदीरणा प्रकृतिगळोळं कूडुत्तं विरलु अनुदीरणा प्रकृतिगळं नात्वत्तोदु ४१ । उदीरणा-

द्विकषोडशेकान्नचत्वारिंशत्प्रकृतयः स्युः । तस्यां सत्यां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने उदीरणा सप्तदशोत्तरशतं । १५

अनुदीरणा तीर्थमुनाहारकद्विकसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वानि पंच । सासादनेऽनुदीरणा मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तिनारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा एकादश । उदीरणा एकादशोत्तरशतं । सम्यग्मिथ्यादृष्टी अनुदीरणा नव शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदीरणाद्द्वाविंशतिः । उदीरणा जतं । असंयते अनुदीरणा एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यं चतुर्गुणोदीरणा दष्टादश । उदीरणा चतुस्तशतं । देशसंयतेऽनुदीरणा सप्तदश संयोज्य पंचत्रिंशत् । उदीरणा सप्ताशीतिः । प्रमत्तेऽनुदीरणा अष्टौ मिलित्वा आहारकद्विकोदीरणादेकचत्वारिंशत् । उदीरणा २०

नौ, एक, सतरह, आठ, आठ, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह तथा उनतालीस प्रकृतियोंकी होती हैं ।

१. इस प्रकार व्युच्छित्ति होनेपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदीरणा एक सौ सतरह, अनुदीरणा तीर्थकर, आहारकद्विक, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति पाँच की ।

२. सासादनमें । अनुदीरणा मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पाँच और नरकानुपूर्व्यकी यहाँ २५ उदीरणा न होनेसे ५ + ५ + १ मिलकर ग्यारह । उदीरणा एक सौ ग्यारह । व्युच्छित्ति नौ ।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उदीरणा होनेसे तथा शेष तीन आनुपूर्व्यकी उदीरणा न होनेसे अनुदीरणा ११ + ९ + ३ = २३ - १ = बाईस । उदीरणा सौ । व्युच्छित्ति एक ।

४. असंयतमें सम्यक्त्व प्रकृति और चारों आनुपूर्व्यियोंकी उदीरणा होनेसे २२ + १ = २३ - ५ = अनुदीरणा अठारह । उदीरणा एक सौ चार, व्युच्छित्ति सतरह । ३०

५. देशसंयतमें अनुदीरणा १८ + १७ = पैंतीस । उदीरणा सत्तासी, व्युच्छित्ति आठ ।

६. प्रमत्तसंयतमें आहारकद्विककी उदीरणा होनेसे अनुदीरणा ३५ + ८ = ४३ - २ = इकतालीस । उदीरणा इक्यासी, व्युच्छित्ति आठ ।

- प्रकृतिगळेणभत्तो'दु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळें 'दुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु' नात्वत्तो'भत्तु ४९ ।  
 उदीरणाप्रकृतिगळे'पत्त मूरु ७३ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु' नात्कुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळ-  
 ध्वत्तमूरु ५३ । उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तो'भत्तु ६९ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु' आरुगूडियनु-  
 दीरणाप्रकृतिगळध्वत्तो'भत्तु ५९ । उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्त मूरु ६३ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान-  
 ५ दोळारुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्त'दु ६५ । उदीरणाप्रकृतिगळ'वत्त एळु ५७ ॥ उपशान्तकषाय-  
 गुणस्थानदोळु' ओ'दुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६ । उदीरणाप्रकृतिगळु' अध्वत्तारु ५६ ॥  
 क्षीणकषायगुणस्थानदोळु' येरदुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु' अरुवत्ते'दु ६८ । उदीरणाप्रकृतिगळ-  
 ध्वत्तनालकु ५४ ॥ सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु' पदिनारुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळे'भत्त-  
 नात्वकरोळु' तीर्थमं कळे'दुदीरणाप्रकृतिगळोळु' कूडुत्तं विरलु' अनुदीरणाप्रकृतिगळे'भत्त मूरु  
 १० ८३ । उदीरणाप्रकृतिगळु' मूवत्तो'भत्तु ३९ ॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु' मूवत्तो'भत्तु-  
 गूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु' नूरिप्पत्तेरडु १२२ । उदीरणाप्रकृतिगळिल्लुदीरणे' ये'बुवेने'दोडपव-  
 पाचनमुदीरणा' ये'दुदीरणालक्षणम'पुर्दारिदं दीर्घकालदोळल्लुदुदयिसदग्रनिषेकंगळ' द्रव्यमनपकर्षि-  
 सिको'डल्पस्थितिकंगळ'पधस्तननिषेकंगळोळमुदयावळिपोळ' पुगिसि उदयमुखदिनवर फलमननु-  
 भविसियनंतरसमयदोळु' दितनिषेकं कर्मस्वरूपमं त्यजिसि पुद्गलांतररूपदिदं परिणमिसुवंतु  
 १५ माळकुमे'बुदर्थं ॥

- एकाशीतिः । अप्रमत्तेऽनुदीरणा अष्टौ मिलित्वा एकान्नपंचाशत् । उदीरणा त्रिसप्ततिः । अपूर्वकरणेऽनुदीरणा  
 चतस्रो मिलित्वा त्रिपंचाशत् उदीरणा एकान्नषष्टिः । अनिवृत्तिकरणेऽनुदीरणा षट् संयोज्य एकान्नषष्टिः ।  
 उदीरणा त्रिषष्टिः । सूक्ष्मसांपराये नुदीरणा षट् संयोज्य पंचषष्टिः । उदीरणा सप्तपंचाशत् । उपशान्तकषायेऽ-  
 नुदीरणा एका संयोज्य षट्षष्टिः उदीरणा षट्पंचाशत् । क्षीणकषायेऽनुदीरणा द्विसंयोज्य अष्टषष्टिः, उदीरणा  
 २० चतुःपंचाशत् । सयोगकेवलिन्यनुदीरणा षोडश संयोज्य तीर्थकृदुदीरणात् व्यशीतिः, उदीरणा एकान्नचत्वारि-  
 षत् । अयोगकेवलिनि अनुदीरणा एकोन्नचत्वारिषत् मिलित्वा द्वाविंशत्युत्तरशतं, उदीरणा नास्ति ।  
 उदीरणा नाम अपक्वपाचनं दीर्घकाले उद्देष्यतोऽग्रनिषेकानपकृष्य अल्पस्थितिकाधस्तननिषेकेषु उदयावल्यां

७. अप्रमत्तमें अनुदीरणा ४१ + ८ = उनचास । उदीरणा तिहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।  
 ८. अपूर्वकरणमें अनुदीरणा ४९ + ४ = तरेपन । उदीरणा उनसठ । व्युच्छित्ति छह ।  
 २५ ९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदीरणा ५३ + ६ = उनसठ, उदीरणा तिरसठ । व्युच्छित्ति छह ।  
 १०. सूक्ष्म साम्परायमें अनुदीरणा ५९ + ६ = पैसठ, उदीरणा सत्तावन । व्युच्छित्ति एक ।  
 ११. उपशान्त कषायमें अनुदीरणा ६५ + १ = छियासठ । उदीरणा छप्पन । व्युच्छित्ति दो ।  
 १२. क्षीणकषायमें अनुदीरणा ६६ + २ = अडसठ । उदीरणा चौवन । व्युच्छित्ति सोलह ।  
 १३. सयोगकेवलीमें तीर्थकर प्रकृतिकी उदीरणा होनेसे अनुदीरणा ६८ + १६ =  
 ३० ८४ - १ = तेरासी । उदीरणा उनतालीस । व्युच्छित्ति उनतालीस ।  
 १४. अयोगकेवलीमें अनुदीरणा ८३ + ३९ = एक सौ बाईस । उदीरणा नहीं है ।  
 उदीरणाका अर्थ है अपक्वपाचन । अर्थात् दीर्घकालमें उदयमें आनेवाले 'कर्म' परमाणुमें-से  
 अग्रिम निषेकोंका अपकर्षण करके, अल्पस्थितिवाले नीचेके निषेकोंमें देकर उदयावलीमें लाकर

अनंतरमुक्तोदीरणानुदीरणा प्रकृतिगळ संख्येयं गाथाद्वयदिदं पेळदपरु :—

सत्तरसेककारखचदुसहियसयं सगिगिसीदितियसदरी ।

णवतिणिसट्ठि सगळकवण्ण चउवण्णमुगुदालं ॥२८२॥

सप्तदशैकादशखचतुःसहितशतं सप्तैकाशीतिः त्रिसप्ततिर्नव त्रिषष्टिः सप्त षट्पंचाशत् चतुः-  
पंचाशदेकान्न चत्वारिंशत् मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानमवसानमाद पदिमूरुगुण-  
स्थानंगळोळु यथाक्रमविदमदीरणप्रकृतिगळु सप्तदश एकादश शून्य चतुःसहितशतंगळु सप्ताशीति-  
एकाशीतित्रिसप्तति नवषष्टि त्रिषष्टि सप्तपंचाशत् षट्पंचाशत् चतुःपंचाशत् एकान्नचत्वारिंशत्-  
संख्याप्रमितंगळपुवु ॥

पंचैककारसवावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं ।

तेवण्णेककुणसट्ठो पणळककड सट्ठि तेसीदी ॥२८३॥

पंचैकादश द्वाविंशत्यष्टादश पंचत्रिंशदेकनव चत्वारिंशत्त्रिपंचाशदेकान्नषष्टि पंच षडष्ट-  
षष्टिस्थ्यशीतिः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु अनुदीरणप्रकृतिगळु यथाक्रमदिदं पंच एकादश द्वाविंशति  
अष्टादश पंचत्रिंशत् एकचत्वारिंशत् नवोत्तरचत्वारिंशत् त्रिपंचाशत् एकान्नषष्टि पञ्चषष्टि  
षट्षष्टि अष्टषष्टि त्र्यशीतिसंख्याप्रमितंगळपुवु ।

|                 | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ   |
|-----------------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|-----|
| उदीरणा<br>व्यु. | ५   | ९   | १   | १७  | ८  | ८   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ३२ | ०   |
| उदीरणा          | ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७३ | ६९ | ६३ | ५७ | ५६ | ५४   | ३९ | ०   |
| अनुदीरणा        | ५   | ११  | २२  | १८  | ३५ | ४१  | ४९ | ५३ | ५९ | ६५ | ६६ | ६८   | ८३ | १२२ |

दत्त्वा उदयमुखेन अनुभूय कर्मरूपं त्याजयित्वा पुद्गलांतररूपेण परिणामयतीत्यर्थः ॥ २८१ ॥

अथोक्तोदीरणानुदीरणप्रकृतिसंख्याः गाथाद्वयेनाह—

चतुर्दशगुणस्थानेषु यथाक्रमं सप्तदशैकादशशून्यचतुःसहितशतानि सप्ताशीतिरेकाशीतित्रिसप्ततिर्नव-  
षष्टिः त्रिषष्टिः सप्तपंचाशत्षट्पंचाशच्चतुःपंचाशदेकान्नचत्वारिंशदुदीरणा भवति । पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादश-  
पंचत्रिंशदेकचत्वारिंशन्नवोत्तरचत्वारिंशत्त्रिपंचाशदेकान्नषष्टिपंचषष्टिषट्षष्ट्यष्टषष्टिस्थ्यशीतिसंख्या च अनुदी-

उदयरूपसे उनको भोगकर, कर्मरूपसे छुड़ाकर अन्य पुद्गलरूपसे परिणामाता है ।

आगे दो गाथाओंसे उदीरणा और अनुदीरणा प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, एक सौ,  
एक सौ चार, सतासी, इक्यासी, तिहत्तर, उनहत्तर, तरेसठ, सत्तावन, छप्पन, चौवन, और  
उनतालीसकी उदीरणा होती है ॥२८२॥

यितु गुणस्थानदोलुदयत्रिभंगियुमुदीरणत्रिभंगियुं पेलत्पट्टुदिन्ननंतरं गत्यादिमार्गणे-  
गलोलुदयत्रिभंगियं पेलत्पक्रमिसि गत्यादिगलोलु पेळ्व क्रमदि पेळ्वपरु :—

गदियादिसु जोग्गाणं पयडिप्पहुडीणमोघसिद्धानं ।

सामित्तं णेदव्वं कमसो उदयं समासेज्ज ॥२८४॥

५ गत्यादिषु योग्यानां प्रकृतिप्रभृतीनामोघसिद्धानां । स्वामित्वं नेतव्यं क्रमज्ञः उदय  
समाश्रित्य ॥

गत्यादिमार्गणंगळोलु योग्यंगळप्प प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशंगळो गुणस्थानदोलु पेळ्व  
सिद्धंगळप्पुवक्के स्वामित्वमागमोक्तक्रमदिदमुदयमनाधयिसि नडसत्पडुगुमवेतेवोडे अल्लि मुन्नं  
परिभाषेयं गाथापंचकदिदं पेळ्वपरु :—

१० गदि आणुआउउदओ सपदे भूपुण्णवादरे ताओ ।

उच्चुदओ णरदेवे थीणतिगुदओ णरे तिरिये ॥२८५॥

गत्यानुपूर्व्यायुदयः सपदे भूपूर्णवादरे आतपः । उच्चोदयो तरदेवयोः स्थानगृह्णितयोदयो  
नरे तिरिचि ॥

१५ रणा भवति ॥ २८२-८३ ॥ एवं गुणस्थानेषूदयोदीरणत्रिभंगीमुक्त्वा इदानीं गत्यादिमार्गणासु उदयोर्भंगी  
वक्तुमनास्तावद्गत्यादिषु तत्क्रममाह—

गत्यादिमार्गणासु योग्यानां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां गुणस्थानसिद्धानां स्वामित्वमागमोक्तक्रमेणो-  
दयमाश्रित्य नेतव्यं ॥ २८४ ॥ तत्र तावदारिभाषां गाथापंचकेनाह—

#### उदयत्रिभंगी रचना

|            | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. | अ. | अ.  |
|------------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|----|-----|
| उदी. व्यु. | ५   | ९   | १   | १७  | ८   | ८    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    | ३९ | ०   |
| उदीरणा     | ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७  | ८१   | ७३ | ६९ | ६३ | ५७  | ५६ | ५४    | ३९ | ०   |
| अनुदीरणा   | ५   | ११  | २२  | १८  | ३५  | ४१   | ४९ | ५३ | ५९ | ६५  | ६६ | ६८    | ८३ | १२२ |

२० तथा पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, उनचास, तरेपन, उनसठ,  
पैसठ, छियासठ, अइसठ, तथा तेरासीको अनुदीरणा होती है ॥२८३॥

इस प्रकार गुणस्थानोंमें उदयत्रिभंगी और उदीरणा त्रिभंगी कहकर अब गति आदि  
मार्गणाओंमें उदयत्रिभंगी कहनेका विचार रखकर प्रथम गति आदिमें उदयका क्रम  
कहते हैं—

२५ गुणस्थानोंमें सिद्धयोग्य प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागका—स्वामीपना गति आदि  
मार्गणाओंमें आगमके अनुसार उदयकी अपेक्षा लाना चाहिए ॥२८४॥

प्रथम पाँच गाथाओंसे परिभाषा कहते हैं—

विवक्षितभवप्रथमसमयदोळे गत्यानुपूर्व्यायुद्दयः विवक्षितगतितदानुपूर्व्यं तत्संबंध्या-  
युष्योदयं सपदे सदृशस्याने ओम्मोदळेकजीवनोळुदयिसुगुमे'बुदर्थं । भूपूर्णबादरे आतपः पृथ्वी-  
कायिकबादरपर्याप्तकजीवनोळे आतपनामकर्मोदयमवकुं । उच्चोदयो नरदेवयोः उच्चैर्गोत्र-  
कर्मोदयं मनुष्यरोळं देवकर्कळेनितुभेदमनितरोळमवकुं । स्त्यानगृद्धित्रयोदयो नरे तिरश्चि स्त्यान-  
गृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचलावरणत्रयोदयं मनुष्यरोळं तिष्यचरोळमुदयिसुगुमितरगतिद्वयोदो- ५  
दयमितले'बुदर्थं । अल्लियं :—

संखाउगणरतिरिये इंदियपज्जत्तमादु थीणतियं ।

जोग्गमुदेदु वज्जिय आहारविगुव्वणुट्ठवगे ॥२८६॥

संख्यातायुन्नरतिरश्चो'रिन्द्रियपर्याप्तेस्तु स्त्यानगृद्धित्रयं । योग्यमुदेतुं वज्जित्वाहार विकुर्व-  
णोत्थापके ॥

१०

तु मत्ते संख्यातवर्षायुष्यरूप कर्मभूमिसंभूतमनुष्यतिष्यंचरगळोळिन्द्रियपर्याप्तिविषं  
मेले स्त्यानगृद्धित्रयमुदयिसत्के योग्यमवकुमल्लियं मनुष्यरोळुमाहारकऋद्धियुं वैक्रियिकऋद्धियु-  
मितलदरोळे तदुदयमरियल्पडुगुं ।

अयदापुण्णे ण हि थी-संढो वि य धम्मणारयं मुच्चा ।

थीसंढयदे कमसो णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू ॥२८७॥

१५

असंयत्तापूर्णं न हि स्त्री, षंडोपि च धर्मनारकं मुक्त्वा । स्त्रीषंडाऽसंयते क्रमशो नानुपूर्व्यं  
चत्वारि चरम त्रीण्यानुपूर्व्याणि ॥

विवक्षितभवप्रथमसमये एव तद्गतितदानुपूर्व्यतदायुष्योदयः सपदे सदृशस्याने युगपदेवैकजीव उदे-  
तोत्यर्थः । भूकायिकबादरपर्याप्ते एव आतपनामोदयः उच्चैर्गोत्रोदयो मनुष्ये सर्वदेवभेदे च । स्त्यानगृद्धित्रयो-  
दयो मनुष्ये तिरश्चि च नेतरश्चेत्यर्थः ॥ २८५ ॥ तत्रापि—

२०

तु पुनः संख्यातवर्षायुष्के कर्मभूमिमनुष्यतिरश्चि इन्द्रियपर्याप्तेरपरि स्त्यानगृद्धित्रयमुदययोग्यं ।  
तत्रापि मनुष्ये आहारकवैक्रियिकऋद्धयभावे एव ॥ २८६ ॥

विवक्षित भवके प्रथम समयमें ही उस भव सम्बन्धी गति, आनुपूर्वी और आयुका  
उदय एक साथ ही एक जीवके होता है और वह समान रूपसे होता है अर्थात् तीनों भी एक  
ही गति सम्बन्धी होते हैं । जिस गतिका उदय होगा उसी गति सम्बन्धी आयु और आनु- २५  
पूर्वीका भी उदय होगा । तथा बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवके ही आतप नामकर्मका  
उदय होता है । उच्चगोत्रका उदय मनुष्य और सब प्रकारके देवोंमें होता है । स्त्यानगृद्धि  
आदि तीन निद्राओंका उदय मनुष्य और तिर्यचोंमें होता है, अन्यत्र नहीं होता ॥२८५॥

संख्यात वर्षकी आयुवाले कर्मभूमिया मनुष्यों और तिर्यचोंमें इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण  
होनेके पश्चात् स्त्यानगृद्धि आदि तीन उदय होनेके योग्य हैं । किन्तु मनुष्योंमें भी आहारक- ३०  
ऋद्धि और वैक्रियिकऋद्धिकी उत्थापना करनेके कालमें स्त्यानगृद्धि आदि तीनका उदय नहीं  
होता ॥२८६॥

निर्वृत्यपर्थाप्तकनप्पसंयत सम्यग्दृष्टियोऽस्त्रीवेदोदयं न हि यित्लेकेदोडा असंयतसम्यग्-  
दृष्टि स्त्रीयाणि पुट्टनप्पुर्दिरदं, मत्तमपर्थाप्तासंयतसम्यग्दृष्टियोऽस्त्रीयाणि च न हि षंडवेदोदयमु-  
मित्लेकेदोडातं षंडनागियुं पुट्टनप्पुर्दिरदमित्तुसर्गविधियप्पुर्दिरदं प्राग्बद्धनरकायुष्यनप्प मनुष्य-  
तिर्यचाऽसंयतसम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वमं विराधिसदे धम्मं योऽस्त्री नारकनागि पुट्टदुग्मप्पुर्दिरदमित्तु  
५ धम्मं य नारकापर्थाप्तासंयतसम्यग्दृष्टियं बिट्ठु शेष्ठापर्थाप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळोऽस्त्रीयाणि च न हि षंडवेदोदय-  
मित्तु कारणाणि स्त्रीवेदिगळं षंडवेदिगळमुप्पसंयतसम्यग्दृष्टिगळोऽस्त्रीयाणि यथाक्रमदिदमानु-  
पूष्यचतुष्टयमुमं नरकानुपूष्यमं कळेदु चरमानुपूष्यत्रितयमुमुदयमित्लेकेदोडानुपूष्यमुत्तरभव-  
प्रथमसमयदोऽदयिसुगुमप्पुर्दिरदमा कालदोडा स्त्रीवेदोदयमुं नपुंसकवेदोदयमुमळं जीवंगळ  
स्त्रीयुं षंडहमक्कुमप्पुर्दिरदं ॥

१० इगिर्विगलथावरचऊ तिरिये अपुण्णो णरे वि संघडणं ।

ओरालदु णरतिरिण वेगुव्वदु देवणेइये ॥२८८॥

एकविकलं स्थावर चत्वारि तिरश्चि अपूर्णं नरे पि संहननमौदारिकद्वयं नरतिरश्चोर्वैक्रि-  
यिकद्वयं देवनारकयोः ॥

एकेन्द्रियजातिनामकर्ममुं द्वौन्द्रियत्रौन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनामत्रितयमुं स्थावरसूक्ष्मापर्थाप्त-  
१५ साधारणचतुष्कमुमं प्रकृतिगळदयं तिर्यग्गतिजरप्प तिर्यचरोळ्येदयिसुगुं । अपर्थाप्ताम-  
कर्म मनुष्यगतिजरप्प मनुष्यरोळमुदयिसुगुं । संहननषट्कमुमौदारिकद्वयमुं मनुष्यरोळं तिर्यच-  
रोळमुदयिसुगुं । वैक्रियिकद्वयं सुररोळं नारकरोळमुदयिसुगुं ।

निर्वृत्यपर्थाप्तासंयते स्त्रीवेदोदयो नहि असंयतस्य स्त्रीत्वेनानुत्पत्तेः । षंडवेदोदयोऽपि च नहि षंडत्वे-  
नापि तस्यानुत्पत्तेः । अयमुत्सर्गविधिः प्राग्बद्धनरकायुस्तिर्यग्मनुष्ययोः सम्यक्त्वेन समं धर्मायामुत्पत्तिसंभवात्  
२० तेन असंयते स्त्रीवेदिनि चतुर्णां, षंडवेदिनि त्रयाणां चानुपूर्वाणां उदयो नास्ति ॥ २८७ ॥

एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनामकर्मस्थावरसूक्ष्मापर्थाप्तासाधारणानि तिर्यक्षु एव उदययोग्यानि अपर्थाप्त-  
मनुष्येऽपि । संहननषट्कमौदारिकद्वयं च तिर्यग्मनुष्येष्वेव । वैक्रियिकद्वयं सुरनारकेष्वेव ॥ २८८ ॥

निर्वृत्यपर्थाप्तक असंयतमें स्त्रीवेदका उदय नहीं होता, क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि  
मरकर स्त्री पर्यायमें जन्म नहीं लेता । निर्वृत्यपर्थाप्तक असंयतमें नपुंसक वेदका भी उदय  
२५ नहीं होता क्योंकि वह मरकर नपुंसक उत्पन्न नहीं होता । किन्तु यह उत्सर्ग विधि है ।  
क्योंकि जिस मनुष्य या तिर्यचने पहले नरकायुका बन्ध किया है वह यदि सम्यक्त्वके साथ  
मरण करता है तो उसकी उत्पत्ति धर्मा नामक प्रथम नरकमें होती है । अतः असंयत स्त्री-  
वेदीके चारों आनुपूर्वीका और असंयत नपुंसकवेदीके नरक बिना तीन आनुपूर्वीका उदय  
नहीं होता ॥२८७॥

३० एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जाति नामकर्म तथा स्थावर सूक्ष्म  
अपर्थाप्त और साधारण तिर्यचांमें ही उदय योग्य हैं । किन्तु अपर्थाप्त प्रकृति मनुष्योंमें भी  
उदययोग्य है । छह संहनन, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग तिर्यच और  
मनुष्योंमें ही उदय योग्य है । तथा वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांग देवों और  
नारकोंमें ही उदय योग्य है ॥२८८॥

तेजतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो वादरेस पुण्णेसु ।

सेसाणं पयडीणं ओयं वा होदि उदओ दु ॥२८९॥

तेजस्त्रिकोनतिर्घ्यभूद्योतो वादरेषु पूर्णेषु । शेषाणां प्रकृतीनामोघवद्भवत्युदयस्तु ॥

तेजस्कायिकमुं वायुकायिकमुं साधारणवनस्पतिकायिकमुमेबी जीवत्रितयोनतिर्घ्यचरु  
बादरपर्याप्तजीवंगळोच्छोतनामकर्ममुदयिसुगुं । तु मत्ते शेषप्रकृतिगळुदयक्रमं गुणस्थानदोळु ५  
पेळदंत्येयकु- । अनंतरमो परिभाषासूत्रपंचकप्रणीतप्रकृत्युदयनियमं मनदोळव धारिसिद्धा तंगे  
नरकादिगतिचतुष्टयदोळुदयप्रकृतिगळं पेळल्वेडि मुत्तं नरकगतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरु :

थीणतिथीपुरिसूणा घादी गिरयाउणीचवेयणियं ।

णामे सगवचिठाणं गिरयाणू णारयेसुदया ॥२९०॥

स्त्यानगृद्धित्रयं स्त्रीपुरुषोनाति घातीनि नरकायुर्नीचवेदनीयं नाम्नि स्ववाचिस्थानं १०  
नारकानुपूर्व्यनारकेषूदयाः ॥

स्त्यानगृद्धित्रयं स्त्रीवेद पुंवेदमेबी पंचप्रकृतिगळं कळेदु शेषघातिगळु नात्वत्तेरडुं ४२ ।  
नारकायुष्मुं १ । नीचैर्गोत्रमुं १ सातासातवेदनीयद्वितयमुं २ । नामकर्मदोळु नारकरुगळ भाषा-  
पर्याप्तिस्थानदिप्पत्तो भत्तुप्रकृतिगळुं २९ । नारकानुपूर्व्यमुमेव षडुत्तरसप्ततिप्रकृतिगळु नारक-  
गुदययोग्यप्रकृतिगळुपुवु ७६ ॥ १५

अनंतरं नारकरुगळभाषापर्याप्तिस्थानद यिप्पत्तो भत्तु प्रकृतिगळुवावुवे'दोडे पेळदपरु :—

तेजोवायुसाधारणवनस्पत्यूनशेषबादरपर्याप्तिर्यक्षु उद्योतः । तु-पुनः शेषप्रकृत्युदयक्रमो गुणस्थान-  
वद् भवेत् ॥ २८९ ॥ एवं पंचपरिभाषा सूत्रैरुदयनियमं परिज्ञाप्य चतुर्गतिषु उदयप्रकृतीर्वक्तुं प्राक्  
नरकगतावाह—

स्त्यानगृद्धित्रयस्त्रीपुंवेदोनघातीनि द्वाचत्वारिंशत् । नरकायुर्नीचगोत्रसातासातवेदनीयानि नामकर्मणि २०  
नारकभाषापर्याप्तिस्थानस्यैकान्तत्रिंशत् नारकानुपूर्व्यं चेति षट्सप्ततिनारकोदययोग्यानि ॥ २९० ॥ तदेकान्त-  
त्रिंशतमाह—

तेजस्काय, वायुकाय, साधारण वनस्पतिकायके सिवाय शेष बादर पर्याप्त तिर्यचोमे  
उद्योत प्रकृतिका उदय होता है । शेष प्रकृतियोंके उदयका अनुक्रम गुणस्थानवत्  
जानना ॥२८९॥

इस प्रकार पाँच परिभाषा सूत्रोंसे उदयका नियम कहकर चार गतियोंमें उदय-  
प्रकृतियोंका कथन करनेके लिए पहले नरकगतिमें कहते हैं—

स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बिना घातिकर्मोंकी शेष बयालीस  
प्रकृतियाँ, नारकायु, नीचगोत्र, साता और असाता वेदनीय, तथा नारकी जीवोंके भाषा-  
पर्याप्तिके स्थानमें होनेवाली नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियाँ और नारकानुपूर्वी, ये छिहत्तर ३०  
प्रकृतियाँ नरकगतिमें उदय योग्य हैं ॥२९०॥

उन उनतीस प्रकृतियोंको कहते हैं—



वेगुब्बतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहु डणिमिणपंचिदी ।

णिरयगदि दुब्भगागुरुतसवण्णचऊ य वचिठाणं ॥२९१॥

वैक्रियिकतेजः स्थिरशुभद्विकं दुर्गतितुंडनिर्माणपंचेन्द्रियनरकगति दुर्भगागुःत्रसवण-  
चतुष्टयाति च वचः स्थानं ॥

५ वैक्रियिकद्विकमु २ । तैजसद्विकमु २ स्थिरद्विकमु २ शुभगद्विकमु २ । अप्रशस्तविहायो-  
गतियुं १ तुंडसंस्थानमुं १ निर्माणनाममुं १ । पंचेन्द्रियजातिनाममुं १ दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्ति-  
चतुष्कमुं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं ४ त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरचतुष्कमुं ४ ।  
वर्णगंधरसस्पर्शचतुष्कमुं ४ । इन्नु यिप्पत्तोभत्तुप्रकृतिगळु २९ नारकर वचः पट्ठाप्तिस्थान-  
दोळप्पु वु ।

१० अनंतरं धर्मेय नारकगुदयव्युच्छित्तिगळं पेळदपरः—

मिच्छमणंतं मिस्सं मिच्छादिदिण कमा छिदी अयदे ।

विदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ ॥२९२॥

मिथ्यात्वमनंतानुबन्धिनो मिश्रं मिथ्यादृष्ट्यादित्रये क्रमाच्छित्तिरसंयते । द्वितीयकषाया  
दुर्भगाणादेयद्विकायुन्तारक चत्वारि ॥

१५ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वं उदयव्युच्छित्तियक्कुं । सासादनोळु अनंतानुबन्धिकषाय-  
चतुष्टयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं । मिश्रनोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं । मिन्नुक्त-  
क्रमदिदमसंयतसम्यग्दृष्टियोळु द्वितीयकषायोदयमुं दुर्भगसुमनादेयमुमयशस्कीर्तियुं नरकायमुंध्य  
नरकगतियुं तत्प्रायोग्यापूर्व्यमुं वैक्रियिकशरीरनाममुं तदंगोपांगनाममुमितु कूडि पन्नरडुं प्रकृति-  
गळुदयव्युच्छित्तियप्पुवु ।

२० वैक्रियिकद्विकं तैजसद्विकं स्थिरद्विकं शुभद्विकं अप्रशस्तविहायोगतिः तुंडसंस्थानं निर्माणं पंचेन्द्रियं  
नरकगतिः दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्तयः अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासाः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीराणि  
वर्णगंधरसस्पर्शश्च इत्येकान्तविशन्नारकाणां वचःपर्याप्तिस्थाने भवन्ति ॥ २९१ ॥ अथ धर्मानारकोदय-  
व्युच्छित्तिमाह—

मिथ्यात्वं अनंतानुबन्धिवचुष्कं सम्यग्मिथ्यात्वं च क्रमेण मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानत्रये व्युच्छित्तिः ।

२५ वैक्रियिकद्विकं, तैजसं, कामाणि, स्थिरं, अस्थिरं, शुभं, अशुभं, अप्रशस्तं, विहायोगतिः,  
तुण्डकं, संस्थानं, निर्माणं, पंचेन्द्रियं, नरकगतिः, दुर्भगः, दुःस्वरः, अनादेयः, अयशस्कीर्तिः ये चारः,  
अगुरुलघुः, उपघातः, परघातः, उच्छ्वासः ये चारः, त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक ये चारः, वर्णः, गन्धः,  
रसः, स्पर्श ये चार इति प्रकारं ये अनतीस प्रकृतियां नारकी जीवोंके वचन पर्याप्तिके स्थानमें  
उदयमें आती हैं ॥२९१॥

३० आगे धर्मा नामक प्रथम नरकमें उदय व्युच्छित्ति कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनन्तानु-  
बन्धी चतुष्ककी तथा मिश्रमें सम्यग्मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है । और असंयतमें

यितु व्युच्छित्तिगुणानुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोषानुदयप्रकृतिगुणं मिश्रप्रकृतिगुणं  
सम्यक्त्वप्रकृतिमन्त्रेण प्रकृतिगुणानुदयगुणेषु २ । उदयप्रकृतिगुणेषु नात्कु ७४ ॥ सासादन-  
गुणस्थानदोषानुत्तं मिथ्यात्वं गूडिदनुदयप्रकृतिगुणं सूरवरोत्तं नरकानुपूर्व्यं कूडिदोषानुदय-  
प्रकृतिगुणं ४ । उदयप्रकृतिगुणं नरकानुपूर्व्यं रहितमेतत्तरेण ७२ । मिश्रगुणस्थानदोषानुत्तं नात्कुगूडि-  
यनुप्रकृतिगुणं टरोत्तं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदुदयदोषानुत्तं विरलु अनुदयप्रकृतिगुणं ७ ।  
उदयप्रकृतिगुणरुक्ते भत्तु ६९ । असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोषानुत्तं ओदुगूडियनुदयप्रकृतिगुणं टव-  
रोत्तं सम्यक्त्वप्रकृतियुग्मं नारकानुपूर्व्यमुग्मं कळेदुदयदोषानुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगुणं ६ ।  
उदयप्रकृतिगुणेषु ७० । यितु घर्मे नारकगुणानुदयव्युच्छित्त्युदयानुदयप्रकृतिगुणो मिथ्यादृष्ट्यादि  
नात्कुं गुणस्थानगुणानुत्तं संवृष्टिः—

| गुणस्थान | मि | सा | मि | अ  |
|----------|----|----|----|----|
| व्यु     | १  | ४  | १  | १२ |
| उ        | ७४ | ७२ | ६९ | ७० |
| अ        | २  | ४  | ७  | ६  |

अनंतरं द्वितीयादि षट् पृथ्वीगुणानुत्तं प्रकृत्युदयानुदयोदयव्युच्छित्तिगुणं पेळदपः—

विद्यादिसु छसु पुढविसु एवं णवरि य असंजदहाणे ।

णत्थि णिरयाणुपूर्वी तिस्से मिच्छेव वोच्छेदो ॥२९३॥

द्वितीयादिषु षट्पृथ्वीष्वेवं त्रीनमसंयतस्थाने । नास्ति नारकानुपूर्व्यं तस्य मिथ्यादृष्ट्यावेव  
व्युच्छित्तिः ॥

असंयते द्वितीयकषायचतुष्कदुर्भंगानादेयशस्कीतिनारकायुनरकगतिद्वानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीरतदंगोपांगानि  
द्वादश । एवं सति मिथ्यादृष्ट्यानुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती उदयः चतुःसप्ततिः । सासादनेऽनुदयः मिथ्यात्वनर-  
कानुपूर्व्यं मिलित्वा चतस्रः, उदयः द्वादसप्ततिः । मिश्रेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् सप्त,  
उदयः एकान्नसप्ततिः । असंयतेऽनुदयः एका निक्षिप्य सम्यक्त्वप्रकृतिनारकानुपूर्व्यादयात् षट्, उदयः सप्ततिः  
॥ २९२ ॥ अथ द्वितीयादिपृथ्वीष्वह—

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, दुर्भंग, अनादेय, अयशस्कीति, नरकायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी,  
वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग इति बारहकी व्युच्छित्ति होती है ।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनुदय मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका, उदय  
चौहत्तरका । सासादनमें मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी मिलकर चारका अनुदय । उदय बहत्तर ।  
चारकी व्युच्छित्ति ।

३. मिश्रमें—सासादनमें व्युच्छित्ति चार और अनुदय चारमें-से सम्यक् मिथ्यात्वका  
उदय होनेसे अनुदय सात, उदय उनहत्तर, व्युच्छित्ति एक ।

४. असंयतमें—मिश्रमें एककी व्युच्छित्ति और अनुदय सातमें-से सम्यक्त्व प्रकृति  
और नरकानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय छह, उदय सत्तर ॥२९२॥

- वंशे भोदलागिर्द्दं पृथिव्यगळोळं घर्ममं योळु पेळदंते उदययोग्यप्रकृतिगळेपत्तार ७६ । असंयतगुणस्थानदोळु विशेषमुंटावुदेदोडे नरकानुपूर्व्योदयमितलेकेदोडे असंयतसम्यग्दृष्टि-  
प्राग्बद्धनारकायुध्यानादोडे द्वितीयादिपृथिव्यगळोळु पुट्टनदुकारणदिदमा नारकानुपूर्व्यमं तंदु मिथ्या-  
दृष्टियोळु व्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्यच्छित्तिप्रकृतिगळेरड २  
५ उदयप्रकृतिगळेपत्त नाळकु ७४ । अनुदयप्रकृतिगळु । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं सम्यक्त्वप्रकृतियु-  
मेवेरडु प्रकृतिगळपुवु २ । सासादनगुणस्थानदोळु एरडुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाळकु ४ । उदय-  
प्रकृतिगळेपत्तेरडु ७२ । मिश्रगुणस्थानदोळु नाळकु गूडियनुदयप्रकृतिगळे'टवरोळु मिश्रप्रकृतियं  
कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ । उदयप्रकृतिगळरुवत्तो'भत्तु ६९ ।  
असंयतगुणस्थानदोळो'दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळे'टवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु  
१० कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु उदयप्रकृतिगळरुवत्तो'भत्तु ६९ । यितु वंशादि षट् पृथिव्यगळ  
मिथ्यादृष्टयादि नाळकुं गुणस्थानंगळोळुक्तोदयव्युच्छित्ति उदयानुदयप्रकृतिगळेगे संदृष्टि :—

| ०   | मि | सामि | अ     |
|-----|----|------|-------|
| दयु | २  | ४    | १ ११  |
| उ   | ७४ | ७२   | ६९ ६९ |
| अ   | २  | ४    | ७ ७   |

अनंतरं तिर्यग्गतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरु :—

- वंशादिषु षट् पृथ्वीषु घर्मावत् षट्सप्ततिः उदययोग्याः । अर्णयते नारकानुपूर्व्योदयो नहि प्राग्बद्ध-  
नरकायुक्तस्यापि सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्तेः । ततः नारकानुपूर्व्येण सह मिथ्यादृष्टी व्युच्छित्तिः द्वयम् । उदयः चतुः-  
१५ सप्ततिः । अनुदयः सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतौ । सासादने द्वयं संयोज्य अनुदयः चतस्रः । उदयः द्वासप्ततिः ।  
मिश्रेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य मिश्रप्रकृत्युदयात्सप्त, उदयः एकान्नसप्ततिः । असंयतेऽनुदयः एकां संयोज्य  
सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् सप्त । उदयः एकान्नसप्ततिः ॥ २९३ ॥ अथ तिर्यग्गताबाह—

आगे द्वितीयादि पृथिवियोंमें कहते हैं—

- २० वंशा आदि पृथिवियोंमें घर्माके समान उदय योग्य प्रकृतियाँ छिहत्तर । किन्तु असंयत  
गुणस्थानमें नरकानुपूर्विका उदय नहीं होता, क्योंकि जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध किया है  
ऐसा सम्यग्दृष्टी भी वंशा आदिमें उत्पन्न नहीं होता । इसलिए मिथ्यादृष्टी गुणस्थानमें  
नरकानुपूर्विकी व्युच्छित्ति होनेसे दोकी व्युच्छित्ति होती है और उदय चौहत्तर तथा अनुदय  
सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिका होता है । इन दोमें दोकी व्युच्छित्ति मिलानेसे  
सासादनमें अनुदय चारका और उदय बहत्तरका । सासादनमें चारकी व्युच्छित्तिमें चारका  
२५ अनुदय जोड़नेसे आठ होते हैं । इसमें-से मिश्र प्रकृतिका उदय होनेसे मिश्रगुणस्थानमें अनुदय  
सातका और उदय उनहत्तरका । मिश्रमें एककी व्युच्छित्ति है उसमें सात मिलानेसे आठ  
होते हैं । इसमें-से सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय सातका और उदय  
उनहत्तरका है ॥ २९३ ॥

तिरिए ओघो सुरणिरयाळ उच्चमणुदुहारदुगं ।

वेगुन्वळककतित्थं णत्थि हु एमेव सामण्णे ॥२९४॥

तिरिश्च ओघः सुरवरनरकायूषि उच्च मनुष्यद्विकमाहारद्विकं । वैक्रियिकषट्कं तीर्थं नास्ति खलु एवमेव सामान्ये ॥

तिर्यग्गतितिर्यगोऽष्टौ सामान्यादिदं गुणस्थानदोळु पेळदंतेयक्कुमदुकारणमाणि नूरिप्पत्तेरुदय प्रकृतिगळप्पुववरोळु देवायुष्यमुं १ । मनुष्यायुष्यमुं नारकायुष्यमुं १ । उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ वैक्रियिकषट्कमुं ६ । तीर्थंकरनाममुं १ मेव पविनय्दुं १ प्रकृतिगळुदयमिल्लेकंदोडे तिर्यग्गतिजरोळा पविनय्दुं प्रकृतिगळुदयं विरुद्धमप्पुदरिदमवं कळेदोडुदय योग्यप्रकृतिगळु नूरेळु १०७ । सामान्यतिर्यग्चहं पंचैद्वित्यतिर्यग्चहं पर्याप्ततिर्यग्चहं योनिमत्तिर्यग्चहं लब्धपर्याप्ततिर्यग्चहमेव पंचविधतिर्यग्चरोळु सामान्यतिर्यग्चरुगळो नूरेळु प्रकृतिगळुदययोग्यगळप्पुवु १०७ । तिर्यग्गतिजरोऽष्टौ गुणस्थानपंचकमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानदोळु तिरिए ओघो येविदरिदं पणणवेत्यादिउदयव्युच्छित्तिगळरियलपडुगुमप्पुदरिदं । मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळदु ५ । उदयप्रकृतिगळु नूरदु १०५ । अनुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेवरडेयक्कुं २ । सासादनगुणस्थानदोळदु गूडियनुदय प्रकृतिगळु ७ । उदयप्रकृतिगळु नूर १०० । उदयव्युच्छित्तिगळो भत्तु ९ । मिश्रगुणस्थादोळो भत्तुगूडिदुदयप्रकृतिगळु पविना-

तिर्यग्गताओघः गुणस्थानवत् द्वाविंशत्युत्तरशतं । तत्र देवमनुष्यनरकायूषि उच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकमाहारद्विकं वैक्रियिकषट्कं तीर्थंकरत्वं चेति पंचदश न इत्युदययोग्याः सप्तोत्तरशतं । १०७ । सामान्यतिर्यग् एवमेव सप्तोत्तरशतमेव । गुणस्थानानि पंच । तिरियो ओघो इति पणणवेत्यादि व्युच्छित्तयः तेन मिथ्यादृष्टो व्युच्छित्तिः पंच । उदयः पंचोत्तरशतं । अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । सासादने अनुदयः पंच संयोज्य सप्त ।

प्रथम नरक रचना

| मि. | सा. | मि. | अ. |
|-----|-----|-----|----|
| १   | ४   | १   | १२ |
| ७४  | ७२  | ६९  | ७० |
| २   | ४   | ७   | ६  |

द्वितीयादि नरक रचना

| मि. | सा. | मि. | अ. |
|-----|-----|-----|----|
| २   | ४   | १   | ११ |
| ७४  | ७२  | ६९  | ६९ |
| २   | ४   | ७   | ७  |

आगे तिर्यग्गतियें कहते हैं—

तिर्यग्गतियें ओघ अर्थात् गुणस्थानोंकी तरह उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से देवायु, मनुष्यायु, नरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थंकर इन पन्द्रहका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ सात हैं ।

सामान्य तिर्यग्चोमें इसी प्रकार उदय योग्य प्रकृतियाँ एक सौ सात हैं । तथा गुणस्थान पाँच हैं ।

१. मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदय एक सौ पाँच, अनुदय दो मिश्र और सम्यक्त्व । व्युच्छित्ति पाँच ।

रवरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिपुदयंगळोळु तिर्यगानुपूर्व्यं तेगदु  
अनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पदिनाह १६ । उदयप्रकृतिगळु तोभत्तोदु ९१ ।  
उदयव्युच्छित्तियुं मिश्रप्रकृतियोदेयकुं १ । असंयतगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतिगूडिदनुदयप्रकृतिगळु  
पदिनेळवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं तिर्यगानुपूर्व्यं मुं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृति-  
५ गळु पदिनधु १५ । उदयप्रकृतिगळु तोभत्तेरडु ९२ । उदयव्युच्छित्तियुं द्वितीयकषायचतुष्कं  
४ । तिर्यगानुपूर्व्यं मुं १ । दुर्भगनाममु १ मनादेयनाममुं मयशस्कीतिनाममु १ मितेंदु प्रकृतिगळ-  
पुवु । ८ देशसंयतगुणस्थानदोळा येदुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पतमूर २३ । उदयप्रकृतिगळेभत्त-  
नाल्कु ८४ । उदयव्युच्छित्तियुं मुन्नं गुणस । नदोळु पेळव तृतीयकषायचतुष्कं ४ तिर्यगायुष्य-  
मुमुद्योतमुं तीचैर्गोत्रमुं तिर्यग्गतिमेंबेदुं प्रकृतिगळपुवु ८ । संदृष्टि :—

सामान्य तिर्यच १०७

| अ    | मि  | सा  | मि | अ  | दे |
|------|-----|-----|----|----|----|
| व्यु | ५   | ९   | १  | ८  | ८  |
| उ    | १०५ | १०० | ९१ | ९२ | ८४ |
| अ    | २   | ७   | १६ | १५ | २३ |

१० अनंतरं पंचेन्द्रिय-तिर्यचरोळं तत्पर्याप्तकरोळं पेळवपह :—

उदयः शतं । व्युच्छित्तिर्नव । मिश्रगुणस्थानेऽनुदयः नव तिर्यगानुपूर्व्यं च संयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् षोडश ।  
उदयः एकनवतिः । व्युच्छित्तिरेका । असंयतेऽनुदयः मिश्रं संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यगानुपूर्व्योदयात् पंचदश ।  
उदयः द्वावनवतिः । व्युच्छित्तिः द्वितीयकषायचतुष्कतिर्यगानुपूर्व्यदुर्भगानादेयायशस्कीर्त्याऽष्टौ । देशसंयते  
अनुदयः अष्टौ संयोज्य त्रयोविंशतिः । उदयः चतुरशीतिः । व्युच्छित्तिः गुणस्थानोक्ता अष्टौ ॥ २९४ ॥ अथ  
१५ पंचेन्द्रियतत्पर्याप्तकयोराह—

२. मिथ्यादृष्टिके अनुदय और व्युच्छित्तिको मिलानेसे सासादनमें अनुदय सात, उदय सौ, व्युच्छित्ति नौ ।

३. सासादनके अनुदय और व्युच्छित्तिको मिलानेसे सोलहमें तिर्यचानुपूर्वीको मिलानेसे तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय सोलह । उदय इक्यानवे ।  
२० व्युच्छित्ति एक ।

४. मिश्रमें अनुदय सोलह और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे सतरहमें-से सम्यक्त्व प्रकृति और तिर्यचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय पन्द्रह । उदय बानवें । व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यानारण चतुष्क, तिर्यचानु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीति इन आठ की ।

५. असंयतके अनुदय पन्द्रह और व्युच्छित्ति आठको जोड़नेसे देश संयतमें तेईसका  
२५ अनुदय । उदय चौरासी । व्युच्छित्ति पंचम गुणस्थानमें कहीं आठ ॥२९४॥

अब पंचेन्द्रिय तिर्यच और पर्याप्तक तिर्यचोंमें कहते हैं—

स्थावरदुग्गसाधारणताविगिविगलूण ताणि पंचक्खे ।

इत्थि अपज्जत्तूणा ते पुण्णे उदयपयडीओ ॥२९५॥

स्थावरद्वयसाधारणातपैकविकलोनानि तानि पंचाक्षे । स्थवपय्याप्तोनानि तानि पूर्णं उदयप्रकृतयः ॥

स्थावरसूक्ष्मद्वयमुं २ । साधारणशरीरनाममुं १ । आतपनाममुं १ । येकेंद्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियजातिनामचतुष्टयमुं ४ मितेंदु प्रकृतिगळिदमूनितमप्पमुं पेळद सामान्यतिर्य्यचरुगळगुदय-योग्यंगळु नूरेळं प्रकृतिगळे पंचेंद्रियतिर्य्यचरुगळगुदययोग्यप्रकृतिगळु तो भत्तो भत्तप्पवु । २९ ॥ अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ मिथ्यात्वमुमपर्याप्तनाममुमेरडुमुदयव्युच्छित्तिगळु २ । उदय-प्रकृतिगळु तो भत्तेळु २७ । मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेवेरडुमुदय प्रकृतिगळप्पवु २ । सासा-दनगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळनंतानुबंधिचतुष्कमक्कुं ४ । उदय प्रकृतिगळु तो भत्तडु २५ । १०  
एरडुगूडिदनुदय प्रकृतिगळु नाल्कु ४ । मिश्रगुणस्थानदोळ मिश्रप्रकृतियो देयुदयव्युच्छित्तियक्कु १ । मुदयप्रकृतिगळु तो भत्तो दु २१ । नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळे दु ८ । असंयतगुणस्थानदोळुदय-व्युच्छित्तिगळे दु ८ । ओ दुगूडियनुदयप्रकृतिगळो भत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्वयमुमं कळे दुदयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ । उदयप्रकृतिगळु तो भत्तेरडु २२ । देशसंयत-गुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळे दु ८ । अनुदयगळे दुगूडि पदिनडु १५ । उदयप्रकृतिगळे भत्त १५  
नाल्कु ८४ । संदृष्टि :-

स्थावरसूक्ष्मसाधारणातपैकेंद्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियोनसामान्यतिर्य्यगुक्ताः पंचेंद्रियतिरिच उदय-योग्याः एकोनशतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वापर्याप्तं २ उदाः सप्तनवतिः । अनुदयः मिश्रसम्य-क्त्वप्रकृती । सासादने व्युच्छित्तिरनंतानुबंधिचतुष्कं । उदयः पंचनवतिः । द्वयं संयोज्य अनुदयः चतस्रः । मिश्रे मिश्रं व्युच्छित्तिः । उदयः एकनवतिः, चतस्रः संयोज्य अनुदयोऽष्टौ । असंयते व्युच्छित्तिः अष्टौ एकां २०  
निक्षिप्यानुदयः सम्यक्त्वतिर्य्यगानुपूर्व्वोदयतमः । उदयः द्वावनवतिः । देशसंयते व्युच्छित्तिरष्टौ, अनुदयः अष्टौ

सामान्य तिर्यचके उदय योग्य एक सौ सातमें-से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियको घटानेपर पंचेन्द्रिय तिर्यचमें उदय योग्य निन्यानवे २९ हैं । उनमें-से—

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दो, मिथ्यात्व और अपर्याप्त । उदय सत्तानवे । अनुदय दो २५ मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति ।

२. मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति दो और अनुदय दोको मिलानेसे सासादनमें अनुदय चार । उदय पंचानवें । व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी चार ।

३. सासादनमें अनुदय चार और व्युच्छित्ति चारको मिलानेसे तथा मिश्र प्रकृतिका उदय और तिर्यचानुपूर्वीका अनुदय होनेसे मिश्रमें अनुदय आठ । उदय इक्यानवे । व्युच्छित्ति ३० एक मिश्रप्रकृति की ।

४. मिश्रमें अनुदय आठ और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे नौ हुए । उनमें-से सम्यक्त्व और तिर्यचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय सात । उदय बानवे । व्युच्छित्ति आठ ।

## पंचेन्द्रिय ९९

| ०    | मि | सा | मि | अ  | दे |
|------|----|----|----|----|----|
| व्यु | २  | ४  | १  | ८  | ८  |
| उ    | ९१ | ९५ | ९१ | ९२ | ८४ |
| अ    | २  | ४  | ८  | ७  | १५ |

- स्त्रीवेदमु १ मपर्याप्तमु १ रहितमप्य पंचेन्द्रिययोग्यप्रकृतिगळे पर्याप्तपंचेन्द्रियोदययोग्य-  
प्रकृतिगळु तो भत्ते ९७ । अलि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छितिमिथ्यात्वप्रकृतिगो देयकुं  
१ । अनुदयप्रकृतिगळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुमेरडपुवु २ । उदयप्रकृतिगळु तो भत्ते ९५  
९५ । सासादनगुणस्थानदोळुदयव्युच्छितिगळनंतानुबन्धिकायवतुष्कमे ४ यकुं । ओ दुगूडिदनुदय  
५ प्रकृतिगळु मूर ३ । उदयप्रकृतिगळु तो भत्तनात्कु ९४ । मिश्रगुणस्थानदोळुदयव्युच्छिति मिश्र-  
प्रकृतियो देयकुं १ । नात्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळुळरोळु मिश्रप्रकृतियुं कळुदुदयप्रकृतिगळोळु  
कूडियुदयप्रकृतिगळोळु तिर्यगानुपूर्व्यसं कलेदनुदयप्रकृतिगळोळु कूडुतं विरलनुदयप्रकृतिगळे ७ ।  
उदयप्रकृतिगळु तो भत्तु ९० । असंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छितिगळे ८ । ओ दुगूडिदनुदय-  
१० प्रकृतिगळे ६ । उदयप्रकृतिगळु तो भत्तो ९१ । देशसंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छितिगळे ८ ।

निक्षिप्य पंचदश, उदयश्चतुर्शीतिः ।

- स्त्रीवेदापर्याप्तोनपंचेन्द्रियतिर्यगुक्तास्तत्पर्याप्तस्य उदययोग्याः सप्तनवतिः । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छितिः  
मिथ्यात्वं । अनुदयः सम्यक्त्वमिश्रप्रकृती । उदयः पंचनवतिः । सासादने व्युच्छितिरनंतानुबन्धिकायवतुष्कं । एकां  
संयोज्य अनुदयस्तिष्ठः । उदयश्चतुर्नवतिः । मिश्रे व्युच्छितिः मिश्रं । अनुदयः चतुष्कं तिर्यगानुपूर्व्यं च  
१५ संयोज्य मिश्रोदयात् सति । उदयः नवतिः । असंयते व्युच्छितिः अष्टौ । अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वतिर्य-  
गानुपूर्व्यादयात् षट्, उदयः एकनवतिः । देशसंयते व्युच्छितिः अष्टौ । अनुदयः अष्टौ संयोज्य चतुर्दश ।

५. असंयतके अनुदय सात और व्युच्छिति आठको मिलानेसे देशसंयतमें अनुदय पन्द्रह । उदय चौरासी । व्युच्छिति आठ ।

पंचेन्द्रिय तिर्यचके उदय योग्य निन्यानवेमें-से स्त्रीवेद और अपर्याप्तको घटानेपर  
२० पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यचके उदय योग्य सत्तानवे ।

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिति एक मिथ्यात्व । अनुदय दो सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति  
उदय पंचानवे ।

२. सासादनमें अनुदय तीन । व्युच्छिति अनन्तानुबन्धी चतुष्क । उदय चौरानवे ।

३. सासादनके अनुदय तीनमें उसकी व्युच्छिति चारको मिलानेसे तथा उसमें  
२५ तिर्यचानुपूर्वीको जोड़ने और मिश्रके उदयमें आनेसे मिश्रगुणस्थानमें अनुदय सात । उदय  
नववे । व्युच्छिति एक मिश्र की ।

एंदु गूडियनुदयप्रकृतिगलु पदिनाल्लु १४ । उदयप्रकृतिगलेणभत्तमूरु ८३ । संदृष्टि :—

पर्याप्तपंचेन्द्रिय ९७

| ०        | मि | सा | मि | अ  | दे |
|----------|----|----|----|----|----|
| व्युच्छि | १  | ४  | १  | ८  | ८  |
| उदी      | ९५ | ९४ | ९० | ९१ | ८३ |
| अनु      | २  | ३  | ७  | ६  | १४ |

पुंसंदूणिस्थिजुदा जोणिणिए अविरदे ण तिरियाणू ।

पुणिणदरे थी थीणति परघाददु पुण्णउज्जोवं ॥२९६॥

पुंसंदोनस्त्रीयुताः योनिमत्यामविरते न तिर्यंगानुपूर्व्यं पूर्णंतरस्मिन् स्त्री स्त्यानगृद्धित्रय परघातद्वय पूर्णोद्योतं ॥

योनिमतिरित्यं चरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु पंचेन्द्रियपर्याप्तितिर्यं चरुगळु योग्यप्रकृतिगळु तो भत्तेळरोळु पुवेदमुमं षढवेदमुमं कळेदु स्त्रीवेदमुमं कूडुत्तं विरलु तो भत्तारु प्रकृतिगळुपुवु ९६ । अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छिति मिथ्यात्वप्रकृतियोदेयक्कुं १ । सासादन-नोळुदयव्युच्छित्ति यनंतानुबंधितुष्टं ४ तिर्यंगानुपूर्व्यं कूडियदपुवु १५ । एकंदोडे जोणिणिए अविरदे ण तिरियाणू एंदु तिर्यंगानुपूर्व्यं सासादननोळे व्युच्छित्तियागलुवेळकुमपु-दरिवं । मिश्रनोळुदयव्युच्छिति मिश्रप्रकृतियोदेयक्कुं १ । असंयतनोळु व्युच्छित्तिगळु

उदयस्थ्यशीतिः ॥ २९५ ॥

योनिमतिर्यंशु उदययोग्याः पंचेन्द्रियपर्याप्तोक्तसप्तनवत्यां पुषंडवेदावपनीय स्त्रीवेदे निक्षिप्ते षण्णवति-भंवति । तत्र व्युच्छित्तयः मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वं । सासादने अनंतानुबंधितुष्टं तिर्यंगानुपूर्व्यं चेति पंच । कुतः ? अविरदे णतिरियाण्वित्युक्तत्वात् । मिश्रे-मिश्रं । असंयते तिर्यंगानुपूर्व्याभावात् सप्त । देशसंयते गुण-

४. मिश्रके अनुदय सात और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे आठमें-से सम्यक्त्व और तिर्यंचानुपूर्विका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय छह । उदय इक्यानवे । व्युच्छित्ति आठ ।

५. असंयतके अनुदय छहमें उसकी व्युच्छित्ति आठ जोड़नेसे देशसंयतमें अनुदय चौदह । उदय तेरासी । व्युच्छित्ति आठ ॥२९५॥

पंचेन्द्रिय पर्याप्तके उदययोग्य सत्तानवेमें-से पुरुष वेद और तपुंसक वेदको घटाकर स्त्रीवेदको जोड़नेसे योनिमत तिर्यंचमें उदय योग्य छियानवे होती हैं । उनमें-से ।

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्वकी । अनुदय दो सम्यक्त्व और मिश्र । उदय चौरानवे ।

२. सासादनमें अनुदय तीन । उदय तिरानवे । व्युच्छित्ति पाँच अनन्तानुबन्धी चार



तिर्यंगानुपूर्व्यरहितमपुर्दारिद्रेण प्रकृतिगळपुवु । ७ ॥ देशसंयतनोदयव्युच्छित्तिगळु तस्य  
गुणस्थानदोळ पेळदेटे प्रकृतिगळपुवु ८ ॥ यितु व्युच्छित्तिगळरियलपडुत्तं विरलु योनिमति  
तिरिश्च मिथ्यादृष्टियोलानुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतिगळु २ । उदयप्रकृतिगळु  
तो भत्तनाल्लु ९४ । सासादनगुणस्थानदोळ ओ वुंगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूरु ३ । उदयप्रकृतिगळु  
तो भत्तमूरु ९३ । मिश्रगुणस्थानदोळवुगूडियनुदयप्रकृतिगळु टरोळु मिश्रप्रकृतियुं कळेदुदय-  
प्रकृतिगळोळ कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ । उदयप्रकृतिगळेळु भत्तो भत्तु ८९ । असंयतगुण-  
स्थानदोळो वुगूडियनुदयप्रकृतिगळे टरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं कळेदुदयप्रकृतिगळोलु कूडुत्तं  
विरलनुदयप्रकृतिगळेलु ७ । उदयप्रकृतिगळेळु भत्तो भत्तु ८९ । देशसंयतगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदय-  
प्रकृतिगळु पदिनाल्लु १४ । उदयप्रकृतिगळेळु भत्तेरडु ८२ । संदृष्टि :

योनिमत्तिर्यंच ९६

| गु   | मि | सा | मि | अ  | दे |
|------|----|----|----|----|----|
| व्यु | १  | ५  | १  | ७  | ८  |
| उ    | ९४ | ९३ | ८९ | ८९ | ८२ |
| अ    | २  | ३  | ७  | ७  | १४ |

पूर्णेतरस्मिन् लब्धपर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यंचरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु योनिमतितिरिश्चयोळु  
पेळदुदययोग्यप्रकृतिगळतो भत्ताररोळु स्त्रीवेदमुमं स्थानगृद्धित्रितयमुमं परघातनाममुच्छवास-  
स्थानोक्ता अष्टौ । एवं सति मिथ्यादृष्टानुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदयः चतुर्नवतिः । सासादनेऽनुदयः  
एका संयोज्य तिस्रः । उदयस्त्रिनवतिः । मिश्रेऽनुदयः पंच संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त । उदयः एकान्ननवतिः ।  
असंयतेऽनुदयः एका संयोज्य सम्यक्त्वोदयात्सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । देशसंयतेऽनुदयः सप्त संयोज्य चतुर्दश,  
उदयो द्व्यशोतिः ।

लब्धपर्याप्तपंचेन्द्रियतिरिश्च उदययोग्या योनिमत्तिर्यंगुक्तषण्णवत्यां स्त्रीवेदः स्थानगृद्धिप्रयं परघातः

और तिर्यंचानुपूर्वी । क्योंकि पूर्वमें कहा है कि अविरत सम्यग्दृष्टी मरकर स्त्री तिर्यंच नहीं होता ।

२० ३. सासादनके अनुदय तीनमें उसकी व्युच्छित्ति पाँच मिलानेसे आठमें-से मिश्रका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय सात । व्युच्छित्ति एक मिश्र । उदय नवासी ।

४. असंयतमें अनुदय सात; क्योंकि मिश्र अनुदयमें गयी और सम्यक्त्व प्रकृति उदयमें आ गयी । उदय नवासी । तिर्यंचानुपूर्वीके न होनेसे व्युच्छित्ति सात ।

२५ ५. असंयतके अनुदय सातमें उसकी व्युच्छित्ति सात जोड़नेसे देशसंयतमें अनुदय चौदह । उदय ब्यासी । व्युच्छित्ति आठ ।

योनिमत तिर्यंचके उदययोग्य छियानवेमें स्त्रीवेद, स्थानगृद्धि आदि तीन, परघात, उच्छवास, पर्याप्त, उद्योत, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त बिहायोगति, यशस्कीति,

नाममुमं पर्याप्तिनाममुमं उद्योतनाममुमं ॥

सरगदिदु जसादेज्जं आदीसंठाणसंहदी पणमं ।

सुभगं सम्मं मिस्सं हीणा तेअपुण्णसंठजुदा ॥२६७॥

स्वरगतिद्वयं यशस्कीत्यदियमाद्यसंस्थानसंहननपंचकं सुभगं सम्यक्त्वं मिश्रं हीनास्ताः अपूर्णषड्युताः ॥

सुस्वरदुस्वरद्वयमुं २ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्वयमुं २ यशस्कीत्तियुं १ आदेयनाममुं १ आद्यसंस्थानपंचकमुं ५ आद्यसंहननपंचकमुं ५ सुभगनाममुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ मिश्रप्रकृतियुं १ मितिप्पत्तेळु २७ प्रकृतिगळं कळदेपर्याप्तिनाममुमं षठवेदमुमं कूडुत्तं विरलेप्पत्तोदु प्रकृतिगळुदययोग्यगळप्पु ७१ वेकंदोडे लब्धपर्याप्तकजीवनोळी कळदे प्रकृतिगळुदययोग्यगळल्-लप्पुदरिदं । लब्धपर्याप्तजीवंगळनितुं मिथ्यादृष्टिगळयेप्पुदरिदमा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदे-यक्कुं ।

अनंतरं मनुष्यगतियोलुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरहः—

मणुवे ओघो थावर-तिरियादावदुग-एयवियलिंदी ।

साहरणिदराउतियं वेगुन्वियळक्क परिहीणो ॥२९८॥

मानवे ओघः स्थावरतिर्यगातपद्वयैकविकलेंद्रियसाधारणेतराद्युस्त्रितयं वैक्रियिकषट्क-परिहीनः ॥

उच्छ्वासः पर्याप्तं उद्योतः ॥ २९६ ॥

सुस्वरदुःस्वरद्वयं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती यशस्कीतिः आदेयं आद्यपंचसंस्थानपंचसंहनानि सुभगं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृति चेति सप्तविंशतिमपनीय अपर्याप्तषट्कवेदयोर्निक्षेपे एकसप्ततिः उदययोग्या भवन्ति । गुणस्थानमाद्यमेव ॥ २९७ ॥ मनुष्यगतावाह—

आदेय, आदिके पाँच संस्थान, आदिके पाँच संहनन, सुभग, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्रप्रकृति, ये सत्ताईस घटाकर अपर्याप्त और नपुंसक वेद मिलानेसे उदययोग्य इकहत्तर होती हैं । गुणस्थान एक प्रथम ही होता है ॥२९६-२९७॥

सामान्य तिर्यंच रचना १०७

पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच ९७

योनिमती तिर्यंच रचना ९६

| मि. | सा. | मि. | अ. | दे. |
|-----|-----|-----|----|-----|
| ५   | ९   | १   | ८  | ८   |
| १०५ | १०० | ९१  | ९२ | ८४  |
|     |     | १६  | ५  | २३  |

| मि. | सा. | मि. | अ. | दे. |
|-----|-----|-----|----|-----|
| १   | ४   | १   | ८  | ८   |
| ९५  | ९४  | ९०  | ९१ | ८३  |
| २   | ३   | ७   | ६  | १४  |

| मि. | सा. | मि. | अ. | दे. |
|-----|-----|-----|----|-----|
| १   | ५   | १   | ७  | ८   |
| ९४  | ९३  | ८९  | ८९ | ८२  |
| २   | ३   | ७   | ७  | १४  |

आगे मनुष्यगतिमें कहते हैं—

मनुष्यगतियोळु मनुष्यहं चतुर्विधमप्परल्लि सामान्यमनुष्यरोळु उदययोग्यप्रकृतिगळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ स्थावरद्वयमुं २ तिर्यग्गतिद्वयमुं २ आतपद्वितयमुं २ एकेंद्रिय द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिचतुष्कमुं ४ साधारणशरीरनाममुं १ नरकतिर्यग्देवायुष्यमे-  
बितरायुस्त्रितयमुं ३ । वैक्रियिकषट्कमुं ६ मेवी विंशतिप्रकृतिगळु २० कळोद शेषप्रकृतिगळु  
नूरैरडप्पु १०२ वल्लि :—

मिच्छमपुण्णं छेदो अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे ।

विदियकसायणराणू दुब्भगअणादेज्ज अज्जसयं ॥२९९॥

मिथ्यात्वमपूर्णं छेदोऽनंतानुबन्धिमिश्रं मिथ्यादित्रिषु असंयते । द्वितीयकषायनरानुपूर्व्यं  
दुर्भंगानादेयायशस्कीर्तिः ॥

१० मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्याप्तिनाममुमेबरडुं छेदः व्युच्छित्तियक्कु  
सासादननोळु अनंतानुबन्धिकषायचतुष्कं छेदमक्कुं ४ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियोदे छेदमक्कु  
१ । मितु मिथ्यादृष्ट्यादि मूरुगुणस्थानंगळोळु छेदमरियत्पडुगुमसंयतनोळु द्वितीयकषाय-  
चतुष्कमुं ४ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ दुर्भंगनाममुं १ अनादेयताममुं १ अयशस्कीर्तिनाममुं १ मितेदु  
प्रकृतिगळु छेदमक्कु ॥

१५ देसे तदियकसाया णीचं एमेव मणुससामण्णे ।

पज्जत्तेवि य इत्थीवेदापज्जत्तपरिहीणो ॥३००॥

देशव्रते तृतीयकषाया नीचमेवमेव मनुष्यसामान्ये । पर्याप्तेपि च स्त्रीवेदाऽपर्याप्त  
परिहीनं ॥

मनुष्याश्चतुर्विधाः तत्र सामान्यमनुष्ये उदययोग्याः सामान्योदयप्रकृतिषु १२२ स्थावरद्वयं तिर्यग्गति-  
२० द्वयं आतपद्वयं एकेंद्रियादिजातिचतुष्कं साधारणशरीरं नरकतिर्यग्देवायुषि वैक्रियिकषट्कं चेति विंशतिमपनीय  
शेषद्व्युत्तरशतं १०२ ॥ २९८ ॥ तत्र—

मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वमपर्याप्तं चेति द्वयं व्युच्छित्तिः । सासादने अनंतानुबन्धिचतुष्कं मिश्रे मिश्रप्रकृतिः ।  
असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भंगमनादेयमयशस्कीर्तिश्चेत्यष्टौ ॥ २९९ ॥

२५ मनुष्यके चार भेद हैं । उनमें सामान्य मनुष्यमें उदय योग्य सामान्य उदय प्रकृति  
१२२ में-से स्थावर सूक्ष्म, तिर्यग्गति, तिर्य्चानुपूर्वी, आतप उद्योत, एकेंद्रिय आदि चार  
जाति, साधारण शरीर, नरकायु, तिर्य्चायु, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति देवानु-  
पूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग ये बीस घटानेपर शेष एक सौ दो उदय योग्य  
हैं ॥२९८॥

तहाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति होती है ।

३० सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार की, मिश्रमें मिश्रमोहनीय की, असंयतमें अप्रत्या-  
ख्यानावरण कषाय चार, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भंग, अनादेय अयशस्कीर्ति इन आठकी व्युच्छित्ति  
होती है ॥२९९॥

देशसंयतनोऽतृतीयकषायचतुष्क ४ मुं नीचैर्गोत्रमु १ मे'बय्दुं प्रकृतिगळु छेदमक्कुं ५ । मेले प्रमत्तसंयतम्बोदलंगोडु ई प्रकारदिवं सामान्यमनुष्यरोलु छेदमयोगिकेवलभट्टारकपय्यंतमरितल्पडुगुं । संदृष्टि :—

सामान्यमनुष्ययोग्याः १०२ ॥

| ०    | मि | सा | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ  |
|------|----|----|----|----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|----|
| व्यु | २  | ४  | १  | ८  | ५  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ३० | १२ |
| उ    | १७ | १५ | ११ | १२ | ८४ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५२ | ५७   | ४२ | १२ |
| अ    | ५  | ७  | ११ | १० | १८ | २१  | २६ | ३० | ३६ | ४२ | ४३ | ४५   | ६० | ९० |

इल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारकद्वयमुं २ तीर्थकरत्नाममुमय्दुमनुदयप्रकृतिगळुपुवु ५ । उदयप्रकृतिगळु तो'भत्तेळु ९७ । सासादनगुणस्थानदोळु एरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळु ७ । उदयंगळु ९५ तो'भत्तय्दु । मिश्रगुणस्थानदोळु नालकुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पन्नो'दरोळु मिश्रप्रकृतियुं कलेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिमनुष्यानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कलेदनुदयंगळोळु कूडुत्तविरलनुदयप्रकृतिगळु पन्नो'दु ११ । उदयप्रकृतिगळु तो'भत्तो'दु ११ । असंयतगुणस्थानदोळो'दु गूडियनुदयप्रकृतिगळु पन्नोरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं १० मनुष्यानुपूर्व्यमुं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्त विरलनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १० । उदयप्रकृतिगळु तो'भत्तेरडु ९२ । देशसंयतगुणस्थानदोळु एरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळु पदिने'दु १८ । उदयप्रकृति-

देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कं नीचैर्गोत्रं चेति पंच । उपरि प्रमत्तादिषु 'पंच यः चउरलकळच्चेव इगिदुगसोलततीसंवारसेति' प्रागुक्त एव छेदो ज्ञातव्यः । तत्र मिथ्यादृष्टौ अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्नानि ५, उदयः सप्तनवतिः । सासादने द्वे मिलित्वा अनुदयः सप्त । उदयः पंचनवतिः । मिश्रे अनुदयः चतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकादश । उदयः एकनवतिः । असंयते अनुदयः एकं मिलित्वा सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्याद्याद् दश । उदयः द्वानवतिः । देशसंयते अष्टौ संयोज्य अनुदयः अष्टादश उदयश्च-

देशसंयतमें तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय चार और नीचगोत्रकी व्युच्छित्ति होती है । आगे प्रमत्तादिमें पूर्वमें कही व्युच्छित्ति जानना ।

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्रप्रकृति, सम्यक्त्व प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थकर ये पाँच । उदय सत्तानवे ।

२. सासादनमें इन पाँचमें दो व्युच्छित्ति मिलनेसे अनुदय सात । उदय ९५ ।

३. सासादनके अनुदय सातमें उसकी चार व्युच्छित्ति मिलानेपर ग्यारहमें मनुष्यानुपूर्वीके अनुदयमें जानेसे और मिश्रके उदयमें आनेसे मिश्रमें अनुदय ग्यारह । उदय इक्यानवे । व्युच्छित्ति एक ।

४. मिश्रके अनुदय ग्यारहमें उसकी एक व्युच्छित्ति मिलनेसे बारहमें सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय दस । उदय बानवे । व्युच्छित्ति आठ ।

- गुणस्थानदोळाल्कु ८४ । प्रमत्तगुणस्थानदोळ अदुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूररोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळ कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तो'दु २१ उदयप्रकृतिगळेणभतो'दु ८१ । अप्रमत्त-  
गुणस्थानदोळाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तारु २६ उदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६ । अपूर्वकरण गुण-  
स्थानदोळाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळ सुवत्तु ३० । उदयप्रकृतिगळ एप्पत्तेरडु ७२ । अनिवृत्तिकरण-  
५ गुणस्थानदोळाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळ सुवत्तारु ३६ उदयप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६ । सूक्ष्मसांपरायगुण-  
स्थानदोळाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळ नाल्वत्तेरडु ४२ । उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६० । उपशान्तकषायगुण-  
स्थानदोळाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळ नाल्वत्तमूह ४३ । उदयप्रकृतिगळध्वत्तो'भत्तु ५९ । क्षीणकषाय-  
गुणस्थानदोळाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळाल्वत्तयडु ४५ । उदयप्रकृतिगळयत्तेळु ५७ । सयोगकेवलि-  
भट्टारकगुणस्थानदोळ पदिनारुगूडियनुदयप्रकृतिगळरुवत्तो'दरोळु तीर्थकरनाममं कळेदुदयंगळोळ  
१० कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तु ६० । उदयंगळ नाल्वत्तेरडु ४२ । अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थान-  
दोळ सुवत्तुगूडियनुदयप्रकृतिगळ तो'भत्तु ९० । उदयंगळ पन्नेरडु १२ । पज्जत्तेविषयपर्यापक-  
मनुष्यरोळं स्त्रीवेदमनुष्यपर्यापितनामममं सामान्यमनुष्ययोग्यप्रकृतिगळ नूरैरडरोळु कळेयुत्तं  
विरलु शेषनूहं प्रकृतिगळ पर्याप्तमनुष्योदययोग्यप्रकृतिगळप्युवु १०० ॥ अल्लि मिथ्यादृष्टि-

- तुरशीतिः । प्रमत्ते अनुदयः पंच संयोज्य आहारकद्वयोदयादेकविंशतिः । उदयः एकाशीतिः । अप्रमत्तेऽनुदयः  
१५ पंच संयोज्य षड्विंशतिः । उदयः षट्सप्ततिः । अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदयस्त्रिंशत् । उदयः  
द्वासप्ततिः । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत् । उदयः (षट्-)षष्टिः । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य  
अनुदयः द्वाचत्वारिंशत् । उदयः षष्टिः । उपशान्तकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिचत्वारिंशत् । उदयः  
एकान्नषष्टिः । क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचचत्वारिंशत् । उदयः सप्तपंचाशत् । सयोगेनुदयः षोडश  
संयोज्य तीर्थकरत्वोदयात् षष्टिः । उदयः द्वाचत्वारिंशत् । अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः नवतिः । उदयो  
२० द्वादश । तथा पर्याप्तमनुष्येऽपि च स्त्रीवेदापर्याप्तोऽसामान्यमनुष्योक्तप्रकृतयः उदययोग्या भवन्ति । १०० ।

५. असंयतके अनुदय दसमें उसकी आठ व्युच्छित्ति मिलानेसे देशसंयतमें अनुदय  
अठारह । उदय चौरासी । व्युच्छित्ति पाँच ।  
६. देशसंयतके अनुदय अठारहमें उसकी पाँच व्युच्छित्ति मिलानेसे तेइस हुए । उनमें-  
से आहारकद्विका उदय होनेसे प्रमत्तमें अनुदय इक्कीस । उदय इक्यासी । व्युच्छित्ति पाँच ।  
२५ ७. अप्रमत्तमें अनुदय २१ + ५ = छब्बीस । उदय छिहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।  
८. अपूर्वकरणमें अनुदय २६ + ४ = तीस । उदय बहत्तर । व्युच्छित्ति छह ।  
९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदय ३० + ६ = छत्तीस । उदय छियासठ । व्युच्छित्ति छह ।  
१०. सूक्ष्म साम्परायमें अनुदय ३६ + ६ = बयालीस । उदय साठ । व्युच्छित्ति एक ।  
११. उपशान्तकषायमें अनुदय ४२ + १ = तैंतालीस । उदय उनसठ । व्युच्छित्ति दो ।  
३० १२. क्षीणकषायमें अनुदय ४३ + २ = पैतालीस । उदय सत्तावन । व्युच्छित्ति सोलह ।  
१३. संयोगीमें अनुदय तीर्थकरका उदय होनेसे ४५ + १६ = ६१ - १ = साठ ।  
उदय बयालीस । व्युच्छित्ति तीस ।  
१४. अयोगीमें अनुदय ६० + ३० = नब्बे । उदय बारह । व्युच्छित्ति बारह । तथा पर्याप्त  
मनुष्यमें भी सामान्य मनुष्यमें उदय योग्य । एक सौ दोमें-से स्त्रीवेद और अपर्याप्तको

गुणस्थानदोळु मिथ्यात्वप्रकृतिप्रोदे छेदमक्कुं १। सासादननोळु नाल्के ४। मिश्रनोळोदे १  
 असंयतनोळोदु ८। देशसंयतनोळुदु ५। प्रमत्तसंयतनोळुदु ५। अप्रमत्तसंयतनोळु नाल्कु ४।  
 अपूर्वकरणनोळारु ६ अनिवृत्तिकरणनोळुदु ५ एकेर्दोडे—स्त्रीवेदकळेदुवपुदरिदं मेलेल्लेडेयोळं  
 सामान्यमनुष्यनोळे तंतयक्कुमितु च्छेदंगळरियल्पडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्र-  
 प्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारद्विकमुं तीर्थंकरनाममुमितडुं प्रकृतिगळनुदयंगळपुवु ५। ५  
 उदयप्रकृतिगळु तो भत्तडु ९५। सासादनगुणस्थानदोळोदु गूडियनुदयप्रकृतिगळारु ६। उदय-  
 प्रकृतिगळु तो भत्तनाल्कु ९४। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयप्रकृतिगळु पत्तरोळु मिश्र-  
 प्रकृतियं कळेदुवयप्रकृतिगळोळु कूडि मनुष्यानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु  
 कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १०। उदयप्रकृतिगळुतो भत्तु ९०। असंयतगुणस्थानदोळु ओं दु  
 गूडियनुदयंगळु पन्नो वरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं मनुष्यानुपूर्व्यंमुं कळेदुवयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं १०  
 विरलनुदयंगळो भत्तु ९। उदयंगळु तो भत्तो वु ९१। देशसंयतगुणस्थानदोळोदु गूडियनुदयप्रकृति-  
 गळु पबिनेलु १७। उदयंगळे भत्तमूरु ८३। प्रमत्तसंयतनोळुदु गूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तेरडोळु

तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं, सासादने चतस्रः, मिश्रे एका, असंयते अष्टौ, देशसंयते पंच, प्रमत्ते पंच,  
 अप्रमत्ते चतस्रः, अपूर्वकरणे षट्, अनिवृत्तिकरणे पंचैव स्त्रीवेदस्यापनयनात्। उपरि सर्वत्रापि सामान्य-  
 मनुष्यवत् छेदो ज्ञातव्यः। एवं सति मिथ्यादृष्टौ अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकतीर्थकरत्त्वानि ५। उदयः १५  
 पंचनवतिः। सासादने एका संयोज्य अनुदयः षट्। उदयः चतुर्नवतिः। मिश्रे अनुदयः चतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं  
 च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयादस। उदयो नवतिः। असंयते अनुदयः एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानु-  
 पूर्व्योदयाम्भव। उदय एकनवतिः। देशसंयते अष्टौ संयोज्य अनुदयः सप्तदश। उदयस्थशीतिः। प्रमत्ते

घटानेपर उदययोग्य सौ। व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सासादनमें चार,  
 मिश्रमें एक, असंयतमें आठ, देशसंयतमें पाँच, प्रमत्तमें पाँच, अप्रमत्तमें चार, अपूर्वकरणमें २०  
 छह, अनिवृत्तिकरणमें भी पाँच क्योंकि स्त्रीवेद उदयमें नहीं है। ऊपर सर्वत्र सामान्य  
 मनुष्यके समान व्युच्छित्ति जानना। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थकर इन पाँचका। उदय  
 पिचानवे। व्युच्छित्ति एक।

२. सासादनमें अनुदय पाँचमें एक मिलानेसे छह। उदय चौरानवे।

३. मिश्रमें छहमें चार मिलानेसे तथा मिश्रके उदयमें आने और मनुष्यानुपूर्वीके  
 अनुदयमें जानेसे अनुदय दस। उदय नब्बे। २५

४. असंयतमें दसमें एक मिलानेसे तथा सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीके उदय-  
 में आनेसे अनुदय नौ। उदय इकानवे।

५. देशसंयतमें नौमें आठ मिलानेसे अनुदय सतरह। उदय तेरासी। ३०

आहारकद्वयम् कलेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तु २० । उदयप्रकृति-  
गळेण्भत्तु ८० ।

- अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तय्दु २५ । उदयप्रकृतिगळेप्पत्तय्दु ७५ ।  
अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तो भत्तु २९ । उदयप्रकृतिगळेप्पत्तो दु  
७१ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु भूवत्तय्दु ३५ । उदयंगळरुवत्तय्दु ६५ ।  
सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तु ४० । उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६० ।  
उपशांतकषायगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तो दु ४१ । उदयंगळय्वत्तो भत्तु ५९ ।  
क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरदुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तुमूरु ४३ । उदयंगळय्वत्तेळु ५३ ।  
सयोगिकेवलभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळय्वत्तो भत्तरोळु तीर्थमं कलेदुदयदोळु  
१० कूडलनुदयंगळय्वत्ते दु ५८ । उदयंगळु नाल्वत्तेरदु ४२ । अयोगिकेवलभट्टारकगुणस्थानदोळु भूव-  
त्तुगूडियनुदयंगळु एण्भत्ते दु ८८ । उदयंगळु पन्नेरदु १२ । संहष्टिः—

पद्यमिमानुष्ययोग्यं १०० ॥

| ०     | मि | सा | मि | अ  | वे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ  |
|-------|----|----|----|----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|----|
| व्यु. | १  | ४  | १  | ८  | ५  | ५   | ४  | ६  | ५  | १  | २  | १६   | ३० | १२ |
| उ     | ९५ | ९४ | ९० | ९१ | ८३ | ८०  | ७५ | ७१ | ६५ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ | १२ |
| अ     | ५  | ६  | १० | ९  | १७ | २०  | २५ | २२ | ३५ | ४० | ४१ | ४३   | ५८ | ८८ |

- अनुदयः पंच संयोज्य आहारकद्वयोदयाद्विंशतिः । उदयः अशीतिः । अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः  
पंचविंशतिः । उदयः पंचसप्ततिः । अपूर्वकरणे चत्तसः संयोज्य अनुदयः एकान्नत्रिंशत् । उदयः एकसप्ततिः ।  
१५ अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः पंचत्रिंशत् । उदयः पंचषष्टिः । सूक्ष्मसांपराये पंच संयोज्य अनुदयः  
चत्वारिंशत् । उदयः षष्टिः । उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः एकचत्वारिंशत् । उदयः एकान्नषष्टिः ।  
क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः त्रिचत्वारिंशत् । उदयः सप्तपंचाशत् । सयोगे अनुदयः षोडश संयोज्य  
तीर्थोदयादष्टापंचाशत् । उदयः द्वाचत्वारिंशत् । अयोगे त्रिंशत् संयोज्य अनुदयः— अष्टाशीतिः, उदयो  
द्वादश ॥ ३०० ॥

- २० ६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय बीस । उदय अस्सी ।  
व्युच्छित्ति पाँच ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय पच्चीस । उदय पिचहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय उनतीस । उदय इकहत्तर । व्युच्छित्ति छह ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पैंतीस । उदय पैंसठ । व्युच्छित्ति पाँच ।

- २५ १०. सूक्ष्म साम्परायमें पाँच मिलाकर अनुदय चालीस । उदय साठ । व्युच्छित्ति एक ।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय इकतालीस । उदय उनसठ । व्युच्छित्ति दो ।

मनुसिणि एत्थीसहिदा तिथ्यराहारपुरिससंखणा ।

पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१॥

मनुष्यां स्त्रीसहितास्तोत्थंकराहारपुरुषषण्डोनाः । पूर्णतर इव अपूर्णे स्वानुपूर्व्यगत्यापुर्ण्ये ॥

मानुषियोऽदययोग्यप्रकृतिगळु तो भत्तारपुर्वेते दोडे पर्याप्तमनुष्यनोलु पेळुदययोग्य-  
प्रकृतिगळुनूररोळु स्त्रीवेदमुं कूडि तोत्थंकरनाममुमनाहारकद्वयमुमं पुरुषवेदमुमं षण्डवेदमुमं नित्यदु  
प्रकृतिगळु कळेदोडे तावन्मात्रमेवपुर्वारिदं । अल्लि मिथ्यादृष्टियोऽदयच्छेदं मिथ्यात्वप्रकृतियोदे-  
यक्कुं १ । सासादननोळुनंतानुबन्धिचतुष्टयमुमसंयतनोळु मनुष्यानुपूर्व्योदयमिल्लपुदरिनविल्लि  
व्युच्छित्तियक्कुमंतदु ५ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियोदे छेदमक्कु-१ । मसंयतनोळु द्वितीय-  
कषायचतुष्टयमुं ४ दुर्भगमुमनादेयमुमयशस्कीत्तियुमितेळु प्रकृतिगळु दयच्छेदमक्कुं । ७ । देश-  
संयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ नीचैर्गोत्रमुमितदुं प्रकृतिगळु दयव्युच्छित्तियैपुवु । ५ ।

मानुष्यदययोग्यप्रकृतयः षणवतिः पर्याप्तमनुष्योक्तशते स्त्रीवेदं निक्षिप्य तीर्थंकरत्वाहारकद्वयपुंषण्डवेदा-  
नामपनयनात् । तत्र मिथ्यादृष्टौ उदयव्युच्छेदो मिथ्यात्वं । सासादने अनंतानुबन्धिचतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च  
असंयतेऽनुदयात् । मिश्रे मिश्रप्रकृतिः । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कदुर्भगनादेयायशस्कीर्तयः । देशसंयते तृतीय-  
कषायचतुष्कं नीचैर्गोत्रं च । प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयमेव । अप्रमत्तापूर्वकरणयोः गुणस्थानवत् चतुःषट् । अनिवृत्ति-  
करणभागभागेषु क्रमेण स्त्रीवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपशान्तकषाये वज्रनाराचं  
नाराचं । क्षीणकषाये षोडश । सयोगे त्रिंशत् । अयोगे तीर्थंकरत्वाभावात् एकादश । एवं सति मिथ्यादृष्टौ

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय तैतालीस । उदय सत्तावन । व्युच्छित्ति सोलह ।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय अंठावन । उदय बयालीस । व्युच्छित्ति तीस ।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय अठासी । उदय बारह ॥३००॥

मानुषीके उदययोग्य प्रकृतियाँ छियानवे । क्योंकि पर्याप्त मनुष्यके कही गयी सौ  
प्रकृतियोंमें-से तीर्थंकर, आहारकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद घटाकर स्त्रीवेद मिलानेसे  
छियानवे होती हैं । उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी उदय व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें  
अनंतानुबन्धी चतुष्क और मनुष्यानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होती है ; क्योंकि यहाँ असंयतके  
मनुष्यानुपूर्वीका उदय नहीं होता । मिश्रमें मिश्र प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है । असंयतमें  
दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति । देशसंयतमें तीसरी  
प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क और नीच गोत्र । प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन । अप्रमत्त  
और अपूर्वकरणमें गुणस्थानोंकी तरह चार और छह । अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें स्त्रीवेद  
और अवेदभागमें संज्वलन क्रोध मान माया ।

सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्म लोभ । उपशान्त कषायमें वज्रनाराच नाराच । क्षीणकषायमें  
सोलह । सयोगीमें तीस और तीर्थंकरका अभाव होनेसे अयोगीमें बारह । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका । उदय चौरानवे ।

२. सासादनमें एक मिलानेसे अनुदय तीन । उदय तिरानवे । व्युच्छित्ति पाँच ।

१. मं त्रंगलेयप्पुं । २. मं त्तिगळु ५ ।



प्रमत्तसंयतनोऽऽस्त्यानगृद्धिप्रयमेयुदयव्युच्छित्तियक्कु-३ । मप्रमत्तनोऽमपूव्वकरणनोऽं गुण-  
स्थानदोऽपेऽऽ नाल्कु ४ मारु ६ मुदयव्युच्छित्तियगळप्पुवु । अनिवृत्तिकरणन भागभागे गळोऽऽ  
स्त्रीवेदमुं १ संज्वलनक्रोधमुं १ संज्वलनमानमुं १ संज्वलनमायेयुरमितु नाल्कुं ४ प्रकृतिगळ्दय-  
व्युच्छित्तियप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायनोऽऽ सूक्ष्मलोभमोदे व्युच्छित्तियक्कु १ सुपशांतकषायनोऽऽ  
५ वज्रनाराचनाराचशरीरसंहननद्वितयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ ।

क्षीणकषायनोऽऽ गुणस्थानदोऽपेऽऽ निद्रेयुं १ प्रचलेयुं १ जानावरणपंचकेमु ५ मंतराय-

पंचकमुं ५ दर्शनावरणचतुष्टयमु ४ मिस्तु पदिनाहं प्रकृतिगळ्दयव्युच्छित्तियगळप्पुवु १६ । सयोगि-  
केवलभट्टारकनोऽऽ गुणस्थानदोऽपेऽऽ ३० सूवत्तुं प्रकृतिगळ्दयव्युच्छित्तियगळप्पुवु । ३० । अयोगि-  
केवलभट्टारकनोऽऽन्यतरवेदनीयादि पन्नो'दु' प्रकृतिगळ्दयव्युच्छित्तियगळप्पु ११ वेके'दोडे मानुषि-

१० योऽऽ तीर्त्थोदयमित्तलप्पुदरिदं । यितुदयव्युच्छित्तियगळरियत्पडुत्तं विरलल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थान-  
दोऽऽ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळ २ । उदयंगळु तो'भत्त नाल्कु प्रकृतिगळु,  
९४ । सासादनगुणस्थानदोऽऽ'दुगूडियनुदयंगळु मूरु ३ । उदयंगळुतो'भत्तमूरु ९३ । मिश्रगुण-  
स्थानदोऽऽ अदुगूडियनुदयप्रकृतिगळे'दरोऽऽ मिश्रप्रकृतियं कळे'दुदयदोऽऽ कूडुत्तं विरलनुदय-  
प्रकृतिगळे'दु उदयप्रकृतिगळे'भत्तो'भत्त ८९ । असंयतगुणस्थानदोऽऽ'दुगूडियनुदयंगळे'दरोऽऽ  
१५ सम्यक्त्वप्रकृतियं कळे'दुदयंगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयंगले'दु उदयंगले'भत्तो'भत्त ८९ । देशसंयत-  
गुणस्थानदोल्लेगूडियनुदयप्रकृतिगळु पदिनाल्कु १४ । उदयंगले'भत्तेरडु ८२ । प्रमत्तगुणस्थान-  
दोऽऽ'दुगूडियनुदयंगळो'दुगुद्विपत्तु १९ । उदयंगले'पत्ते'लु ७७ । अप्रमत्तगुणस्थानदोल्लेगूडियनु-  
दयंगळे'पत्तेरडु २२ । उदयंगळे'पत्तनाल्कु-७४ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोऽऽ नाल्कुगूडियनुदय-  
गळे'पत्ताह २६ । उदयंगळे'पत्तु ७० । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोऽऽ'दुगूडियनुदयंगळु सूवत्ते-

२० अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदयः चतुर्नवतिः । सासादने एकं संयोज्यानुदयः त्रीणि । उदयः त्रिनवतिः ।  
मिश्रे अनुदयः पंच संयोज्य मिश्रप्रकृत्युदयात्सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । असंयते अनुदयः एकां संयोज्य  
सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात्सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । देशसंयते सप्त संयोज्य अनुदयः चतुर्दश उदयः द्व्यशीतिः ।  
प्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः एकान्नविंशतिः । उदयः सप्तसप्ततिः । अप्रमत्ते त्रीणि संयोज्य अनुदयः  
द्वाविंशतिः उदयः चतुःसप्ततिः । अपूर्वकरणे चत्वारि संयोज्य अनुदयः षड्विंशतिः । उदयः सप्ततिः ।

२५ ३. मिश्रमें पाँच मिलाकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय सात । उदय नवासी ।  
व्युच्छित्ति एक ।

४. असंयतमें एक मिलानेसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय सात ।  
उदय नवासी । व्युच्छित्ति सात ।

५. देशसंयतमें सात मिलाकर अनुदय चौदह । उदय बयासी ।

३० ६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय उन्नीस । उदय सतत्तर । व्यु. तीन ।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय बाईस । उदय चौहत्तर । व्यु. चार ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय छब्बीस । उदय सत्तर । व्यु. छह ।

रडु ३२ । उदयंगलवृत्तनालकु ६४ । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोलु नालकुगूडियनुदयंगलु सूवत्ताह ३६ । उदयंगलवृत्त ६० । उपशान्तकषायगुणस्थानदोलो दुगूडियनुदयंगलु सूवत्तेळु ३७ । उदयंगलवृत्तो भत्तु ५९ । क्षीणकषायगुणस्थानदोलेरडु गूडियनुदयप्रकृतिगलु सूवत्तो भत्तु ३९ । उदयंगलवृत्तेळु ५७ । सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोलु पदिनारुगूडियनुदयंगलवृत्तडु ५५ । उदयंगलु नालवत्तो दु ४१ । अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोलुसूवत्तुगूडियनुदयंगलेभत्तडु ८५ । उदयंगलु पन्नो दे ११ के दोडे तीर्थोदयमिल्लप्पुदरिदं संदृष्टि :—

योनिमतिमनुष्योदययोगप्रकृतिगळु ९६

| ०    | मि | सा | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ  |
|------|----|----|----|----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|----|
| व्यु | १  | ५  | १  | ७  | ५  | ३   | ४  | ६  | ४  | १  | २  | १६   | ३० | ११ |
| उ    | २४ | २३ | ८९ | ८९ | ८२ | ७७  | ७४ | ७० | ६४ | ६० | ५९ | ५७   | ४१ | ११ |
| अ    | २  | ३  | ७  | ७  | १४ | १९  | २२ | २६ | ३२ | ३६ | ३७ | ३९   | ५५ | ८५ |

पूर्वोत्तरवदपूर्णे स्वानुपूर्व्यंगत्यायुर्ज्ये । मनुष्यलब्धपर्याप्तमिथ्यादृष्टियोलुदययोग्यप्रकृतिगळु तिर्यंचमिथ्यादृष्टिलब्धपर्याप्तकनोलु पेळ्वंते एप्पत्तो दु ७१ प्रकृतिगळप्पु वल्लि तिर्यंगानुपूर्व्यमं तिर्यंगगतिनाममं तिर्यंगायाण्यमुमं कलेदु मनुष्यानुपूर्व्यममं मनुष्यगतिनाममं मनुष्यायुष्यमं कूडुबुर्बो विशेषमरियत्पडुगुं ।

अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः द्वात्रिंशत् । उदयः चतुःषष्टि । सूक्ष्मसांपराये चत्वारि संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत् । उदयः षष्टिः । उपशान्तकषाये एकां संयोज्य अनुदयः सप्तत्रिंशत् । उदयः एकान्नषष्टिः । क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः एकान्नचत्वारिंशत् । उदयः सप्तपंचाशत् । सयोगे षोडश संयोज्य अनुदयः पंचपंचाशत् । उदयः एकचत्वारिंशत् । अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः पंचाशीतिः । उदयः एकादश तीर्थाभावात् ।

मनुष्यलब्धपर्याप्ते उदयप्रकृतयः तिर्यंगलब्धपर्याप्तवदेकसप्ततिः । तत्र तिर्यंचः आनुपूर्व्यंगत्यायुषि नहि । मनुष्यस्य तानि ज्ञातव्यानि ॥ ३०१ ॥

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय बत्तीस । उदय चौंसठ । व्यु. चार ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें चार मिलाकर अनुदय छत्तीस । उदय साठ । व्यु. एक ।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतीस । उदय उनसठ । व्यु. दो ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनतालीस । उदय सत्तावन । व्यु. सोलह ।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर अनुदय पचपन । उदय इकतालीस ।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय पचासी । उदय ग्यारह क्योंकि तीर्थकरका अभाव है ।

मनुष्य लब्धपर्याप्तकमें उदय प्रकृतियाँ लब्धपर्याप्तककी तरह इकहत्तर । इतनी विशेषता है कि यहाँ तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचगति और तिर्यंचायुके स्थानमें मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यगति और मनुष्यायुका उदय होता है ॥३०१॥

अनंतरं भोगभूमिजमनुष्यरोळं तिर्यचरोलपुदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिवं पेळदपरः—

मणुसोधं वा भोगे दुर्भगचउणीच-संह-थीणतियं ।

दुग्गदितित्यमपुण्णं संहदि-संठाणचरिमपणं ॥३०२॥

हारदुहीणा एवं तिरिये मणुदुच्चगोदमणुवाउं ।

अवणिय पक्खिव णीचं तिरियदु-तिरियाउ-उज्जोवं ॥३०३॥

मनुष्यौघवदभोगे दुर्भगचउणीचषडस्थानगृद्धित्रयं दुग्गतितीर्थमपूर्णं संहननसंस्थान चरम पंच ॥

आहारद्वयहीनाः एवं तिरश्चिच मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायुरपनीय प्रक्षिप नीचं तिर्यग्द्वय तिर्यगायुख्योतं ॥

- १० भोगभूमिजमनुष्यरुगळपुदययोग्य प्रकृतिगळ नूरिप्पत्तेरडरोळ १२२ । स्थावरद्विकमुं २ । तिर्यग्द्विकमुं २ । आतपद्विकमुं २ मेकेंद्वियमुं १ । विकलत्रयमुं ३ साधारणशरीरनाममुं १ मित-  
रायुस्त्रितयमुं वैक्रियिकषट्कमुं ६ मितिप्पत्तं प्रकृतिगळं २० कळेदु मनुष्यौघदोळ नूरैरडे'तंते  
इल्लियुमवरोळ दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीतियुं नीचैर्गोत्रमुं षड्वेदमुं स्थानगृद्धित्रितयमुम-  
प्रशस्तविहायोगतियुं तीर्थकरनाममुमपर्याप्तनाममुं चरमसंहनन पंचकमुं चरमसंस्थान पंचकमुं  
१५ साहारकद्वयमुमितिप्पत्तनालकु प्रकृतिगळ २४ भोगभूमिमनुष्यरोळदयिसुवत्तलपुदरिदमिवं कळेदोडे  
प्पत्तेंदु प्रकृतिगळप्पुवु ७८ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळ मिथ्यात्वप्रकृतियो'दे छेदमक्कुं १ । सासादनोळ-  
नंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे छेदमक्कुं ४ । मिश्रनोळ मिश्रप्रकृतियो'दे १ छेदमक्कु १ मसंयतनोळ  
द्वितीयकषायचतुष्टयं मनुष्यानुपूर्वमुमित्युं प्रकृतिगळगे व्युच्छित्तियक्कु ५ मंतानुत्तं विरलु  
मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितेरडु प्रकृतिगळनुदयंगळ २ । उदयं-

२० अथ भोगभूमिमनुष्यतिरश्चोर्गाथाद्वयेनाह—

भोगभूमिमनुष्याणां मनुष्यौघवदिति द्व्युत्तरशतं । तत्रापि दुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीतिनीचैर्गोत्रषड-  
वेदस्थानगृद्धित्रयाप्रशस्तविहायोगतितीर्थकरत्वापर्याप्तचरमपंचसंहननपंचसंस्थानाहारकद्वयं न इत्युदययोग्य-  
प्रकृतयः अष्टसप्ततिः । तत्र मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वं छेदः । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं । मिश्रे मिश्रप्रकृतिः ।

### योनिमन्मनुष्य रचना ९६

| मि. | आ. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | व. | क्षी. | स. | अ. |
|-----|----|-----|----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|----|----|
| १   | ५  | १   | ७  | ५   | ३    | ४  | ६  | ४  | १   | २  | १६    | ३० | ११ |
| २४  | ९३ | ८९  | ८९ | ८२  | ७७   | ७४ | ७० | ६४ | ६०  | ५९ | ५७    | ४१ | ११ |
| २   | ३  | ७   | ७  | १४  | १९   | २२ | २६ | ३२ | ३६  | ३७ | ३९    | ५५ | ८५ |

२५ आगे दो गाथाओंसे भोगभूमिके मनुष्य और तिर्यचोंमें कहते हैं—

भोगभूमिके मनुष्योंमें सामान्य मनुष्यकी तरह एक सौ दो उदययोग्य हैं । किन्तु उन एक सौ दोमें-से भी दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र, नपुंसकवेद, स्थानगृद्धि आदि तीन, अप्रशस्तविहायोगति, तीर्थकर, अपर्याप्त, अन्तके पाँच संहनन और

गळप्पत्तार ७६ । सासादनगुणस्थानबोळो दुगूडियनुदयंगळ मूळ ३ । उदयंगळेप्पत्तार ७५ । मिश्र-  
गुणस्थानबोळ, नालकुगूडियनुदयंगळेळरोळ, मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळ, कूडिमत्तमुदयंगळोळ  
मनुष्यानुपूर्व्यंमं कळेवनुदयंगळोळ, कूडत्तं विरलनुदयंगळेळ, ७ । उदयंगळेप्पत्तो दु ७१ । असंयत-  
गुणस्थानबोळो दु गूडियनुदयंगळे टरोळ, सम्यक्त्वप्रकृतिधुमं मनुष्यानुपूर्व्यंमुमं कळेदुदयंगळोळ  
कूडत्तं विरलनुदयंगळार ६ उदयंगळेप्पत्ते रेडु ७२ संदृष्टिः—

|      | मि | सा | मि | अ  |
|------|----|----|----|----|
| व्यु | १  | ४  | १  | ५  |
| उ    | ७६ | ७५ | ७१ | ७२ |
| अ    | २  | ३  | ७  | ६  |

“एवं तिरश्च मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायुष्य” से बी नालकुं प्रकृतिगळं कळेदु नीचैर्गोत्रमुं  
तिर्यंगद्वयमुं तिर्यंगायायुष्यमुद्योतमुमेब प्रकृतिपंचकमं कूडत्तं विरलु भोगभूमितिर्ग्यचरोळ-  
वययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तो भत्तु ७५ । मिथ्यादृष्टियोळ मिथ्यात्वप्रकृतियोदे व्युच्छित्तिवक्कु १ ।  
सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे व्युच्छित्तिवक्कु ४ । मिश्रनोळ मिश्रप्रकृतियोदे व्युच्छित्ति-  
वक्कु-१ । असंयतनोळ द्वितीयकषायचतुष्कमुं तिर्यंगानुपूर्व्यंमुमितयदे प्रकृतिगळ व्युच्छित्ति-  
वक्कु ५ । मितागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानबोळ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतिधुमेरेडुमनु-  
दयंगळ २ उदयंगळेप्पत्तेळ ७७ । सासादनगुणस्थानबोळो दुगूडियनुदयंगळ ३ । उदयंगळेप्पत्तार

असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं मनुष्यायुष्य ५ । तथासति मिथ्यादृष्टी मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती अनुदयः । उदये  
षट्सप्ततिः । सासादने एकां संयोज्य अनुदये त्रिणि । उदये पंचसप्ततिः । मिश्रे अनुदये चतुर्भिर्मनुष्यानुपूर्व्यं  
संयोज्य मिश्रोदयात्सप्त । उदये एकसप्ततिः । असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्योदयात्  
षट् । उदये द्वासप्ततिः ।

पाँच संस्थान तथा आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य प्रकृतियाँ अठहत्तर हैं ।  
वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार,  
मिश्रमें मिश्रप्रकृति और असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार मनुष्यायु इन पाँचकी व्युच्छित्ति  
होती है । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुदय । उदय छिहत्तर । व्यु. १ ।
२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन । उदय पचहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।
३. मिश्रमें सासादनमें अनुदय तीनमें चार व्युच्छित्ति तथा मनुष्यानुपूर्वी मिलाकर  
तथा मिश्रका उदय होनेसे एक घटाकर सातका अनुदय है । उदय इकहत्तरका ।
४. असंयतमें एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे  
दो घटाकर अनुदय छह । उदय बहत्तर ।

१. म 'र्यंगलं कलेदु नीचैर्गोत्र तिर्यग्विद्वक तिर्यंगायायुद्योतमुमेब । २. म 'वक्कु मिथ्या' ।

७६। मिश्रगुणस्थानदोळु तात्कुगुडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळेळु कूडि सत्तमु-  
दयंगळेळु तिर्यगानुपूळ्यंमं कळेदनुदयंगळेळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७। उदयंगळेळुपत्तेरडु  
७२। असंयतगुणस्थानदोळु दुगुडियदयंगळे'रोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्यगानुपूळ्यंमं कळेदुदयं-  
गळेळु विरलनुदयंगळेळु ६। उदयप्रकृतिगळेळुपत्त मूर ७३। संदृष्टिः

भोगभूमि तिर्यंच योग्य ७९

| ०    | मि | सा | मि | अ  |
|------|----|----|----|----|
| व्यु | १  | ४  | १  | ५  |
| उ    | ७७ | ७६ | ७२ | ७३ |
| अ    | २  | ३  | ७  | ६  |

एवं तिरश्च मनुष्यद्वयोच्चैर्भोगमनुष्यायुष्यपत्तीय नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्वयतिर्यगायुष्योत्तेषु निक्षिप्ते भोग-  
भूमितियक्षु उदययोग्या एकोनासीतिः । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः । सासादने अनन्तानुबन्धितुष्कं ।  
मिश्रे मिश्रप्रकृतिः । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं तिर्यगायुश्च ५ । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वे  
अनुदयः । उदये सप्तसप्ततिः । सासादने एकां संयोज्य अनुदये त्रयं । उदये षट्सप्ततिः । मिश्रे अनुदयः  
१० चतुर्भिस्तिर्यगानुपूष्यं संयोज्य मिश्रोदयात्सप्त । उदयो द्वासप्तति । असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्व-  
प्रकृतितिर्यगानुपूष्योदयात् षट् उदयः त्रिसप्ततिः ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥

इसी प्रकार तिर्यचमें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र और मनुष्यायु घटाकर  
नीचगोत्र तिर्यचगति तिर्यचानुपूर्वी, तिर्यचायु और उद्योत मिलानेपर भोगभूमि तिर्यचोंमें  
उदययोग्य अन्यासी ७९ हैं । उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है । सासादन-  
१५ में अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्रप्रकृति और असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार  
तथा तिर्यचायु पाँचकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय । उदय सतहत्तर । व्युच्छित्ति एक ।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन । उदय छिहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।

३. मिश्रमें तीनमें चार व्युच्छित्ति और तिर्यचानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे

२० अनुदय सात । उदय बहत्तर । व्युच्छित्ति एक ।

४. असंयतमें सातमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और तिर्यचानुपूर्वीका उदय होने-

से अनुदय छह । उदय तिहत्तर ॥ ३०२-३०३ ॥

भोगभूमि मनुष्य रचना ७८

| मि. | सा. | मि. | अ. |
|-----|-----|-----|----|
| १   | ४   | १   | ५  |
| ७६  | ७५  | ७१  | ७२ |
| २   | ३   | ७   | ६  |

भोगभूमि तिर्यच रचना ७९

| मि. | सा. | मि. | अ. |
|-----|-----|-----|----|
| १   | ४   | १   | ५  |
| ७७  | ७६  | ७२  | ७३ |
| २   | ३   | ७   | ६  |

अनंतरं देवगतिर्योद्धययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरः—

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जुण सुरचउसुराउं ।

खिव देवे णेवित्थी इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य ॥३०४॥

भोगवत्सुरे नरचतुर्णरायुर्वज्जोर्ण सुरचतुः सुरायुः । क्षिप देवे नैव स्त्री स्त्रियां न पुरुष-  
वेदश्च ॥

भोगभूमिजरोळ पेळदंते सुररोळमुदययोग्यप्रकृतिगळेपत्तेटप्पुववरोळ मनुष्यगतिद्वयमु-  
सौदारिकद्वयमुमेव नरचतुष्टयमुमं नरायुष्यमुमं वज्रकृषभनाराचशरीरसंहननमुमंतारं प्रकृति-  
गळोळं कळेदोडेणत्तेरउवरोळ देवगतिद्वितयं वैक्रियिकद्वितयमुमेव सुरचतुष्कमुं सुरायुष्यमितेवुं  
प्रकृतिगळं कूडुत्तं विरलु सामान्यदेवोदययोग्य प्रकृतिगळेपत्तेळु ७७ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु  
मिथ्यात्वप्रकृतियोदे व्युच्छित्तियक्कुं १ । सासादननोळन्तानुबधिकषायचतुष्टयमे व्युच्छित्तियक्कुं १०  
४ । मिथनोळु मिश्रप्रकृतियोदे छेदमक्कुं १ । असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं सुरचतुष्कमुं  
सुरायुष्यमुमितो भत्त ९ प्रकृतिगळु व्युच्छित्तियप्पुजितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु  
मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतिपुमेरडुमनुदयंगळु २ । उदयंगळेपत्तयु ७५ । सासादनगुणस्थान-  
दोळोडु गूडियनुदयंगळु सूर ३ । उदयप्रकृतिगळेपत्त नाल्कु ७४ । मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु-  
गूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडिदेवानुपूळ्यंमुमं उदयंगळोळु कळेवनु-  
दयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७ । उदयप्रकृतिगळेपत्तु ७० । असंयतगुणस्थानदोळोडु-  
गूडियनुदयप्रकृतिगळेटरोळु सम्यक्त्वप्रकृतिपुमं देवानुपूळ्यंमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनु-

अथ देवगतावाह—

सुरेषु भोगभूमिजदिति अष्टसप्ततिः । तत्र मनुष्यगतिद्वयोदारिकद्वयनरायुर्वज्रकृषभनाराचसहनान्यवनीय  
देवगतिद्वयवैक्रियिकद्वयसुरायुस्तु निक्षिप्तेषु सामान्यदेवोदययोग्याः सप्तसप्ततिः । तत्र मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वं २०  
व्युच्छित्तिः । सासादने अनन्तानुबधिकतुष्कं । मिश्रे मिश्रं । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कसुरचतुष्कसुरायुषि । एवं  
सति मिथ्यादृष्टी अनुदये मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदये पंचसप्ततिः । सासादने एकां संयोज्य अनुदयस्तिलः ।

आगे देवगतिमें कहते हैं—

देवोंमें भोगभूमिकी तरह अठहत्तर उदययोग्य है । किन्तु उनमें-से मनुष्यगति, मनुष्यानु-  
पूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यायु, वज्रर्षभनाराच संहनन घटाकर २५  
देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग और देवायु मिलानेसे सामान्य-  
देवमें उदययोग्य सतहत्तर ७७ होती हैं । उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती  
है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्र, असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार,  
देवायु, वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांगकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुदय । उदय पचहत्तर ।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन । उदय चौहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।

दयंगलार ६ उदयंगलैप्पत्तोदु संदृष्टि :—

देवसामान्ययोग्य ७७

| ०        | मि | सा | मि | अ  |
|----------|----|----|----|----|
| व्युच्छि | १  | ४  | १  | ९  |
| उदी      | ७५ | ७४ | ७० | ७१ |
| अनु      | २  | ३  | ७  | ६  |

यिल्लि देवगतियोळु देवकर्कळोळु पुंवेदोदयमे देवियरोळु स्त्रीवेदोदयमे नियतोदयमक्कु-  
मप्पुवर्दिदं देवकर्कळोळु स्त्रीवेदमं कळेदोडे सोधर्माद्युपरिमग्रैवेयकावसानमाद सुररोळुदययोग्य  
५ प्रकृतिगळेप्पत्तार ७६ । यिल्लियुं सामान्यसुररोळुवुदोदु कथनमदिल्लियुमरियल्पडुगुं सुगमं ।  
संदृष्टि :—

सोधर्माद्युपरिमग्रैवेयकयोग्य ७६

| ०    | मि | सा | मि | अ  |
|------|----|----|----|----|
| व्यु | १  | ४  | १  | ९  |
| उ    | ७४ | ७३ | ६९ | ७० |
| अ    | २  | ३  | ७  | ६  |

उदये चतुःसप्ततिः । मिश्रे अनुदयः चतुर्भिर्देवानुपूर्व्यं संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त । उदये सप्ततिः । असंयते  
अनुदय एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतिदेवानुपूर्व्योदयात् षट् । उदये एकसप्ततिः ।

देवेषु पुंवेदस्यैवोदयः । देवीषु स्त्रीवेदस्यैवेति नियमात् स्त्रीवेदोपनीते सोधर्माद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु-  
१० दययोग्यप्रकृतयः षट्सप्ततिः । अन्यत्सर्वं सामान्यसुरवत् ज्ञातव्यं । संदृष्टिः—

| सोधर्माद्युपरिमग्रैवे = यो ७६ |      |      |      |     |
|-------------------------------|------|------|------|-----|
| व्यु                          | १    | ४    | १    | ९   |
| उ                             | ७४   | ७३   | ६९   | ७०  |
| अ                             | २ मि | ३ सा | ७ मि | ६ अ |

३. मिश्रमें चार और देवानुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे अनुदय सात ।  
उदय सत्तर । व्यु. एक ।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और देवानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय  
छह । उदय एकहत्तर । तथा देवोंमें पुरुषवेदका ही उदय होता है और देवांगनाओंमें स्त्री-

अनुदिशानुत्तर चतुर्दशविमानंगळोळु पेळदपरु :—

अविरदठाणं एककं अणुदिसादिसु सुरोधमेव हवे ।

भवणतिकपित्थीणं असंजदे णत्थि देवाणू ॥३०५॥

अविरतस्थानमेकमनुदिशादिषु सुरोध एव भवेत् । भवनत्रयकल्पस्त्रीणामसंयते नास्ति देवानुपूर्व्यं ॥

अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळु असंयतगुणस्थानमोदयक्कुमप्पुदरिदमुदययोग्यप्रकृतिगळेप्प-  
त्तेयप्पुवु ७० । भवनत्रयदेवदेवियर्ग कल्पजस्त्रीयर्ग सुरोधमेयक्कुमदुकारणदिदमुदययोग्यप्रकृति-  
गळेप्पत्तेळरोळु ७७ देववर्कळोळलं पुंवेदमे देवियर्गोळलं स्त्रवेदमेयक्कुमदु कारणदिदं विवक्षित  
देवदेवियरोळुदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६ । ई भवनत्रयजरोळं कल्पजस्त्रीयरोळं सम्यग्दृष्टिगळपुट्ट-  
रप्पुदरिदमैतंयतगुणस्थानदोळु देवानुपूर्व्यमं कळंदु सासादननोळुदयव्युच्छित्तिं माडुत्तं विरलु १०  
सासादनसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळदु ५ । असंयतसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळेदु ८ ।  
शेषकथनमनितुं सुगममवकुं । संदृष्टि :—

भवन ३ कल्प स्त्रीयोग्य ७६

| ०    | मि | सा | मि | अ  |
|------|----|----|----|----|
| व्यु | १  | ५  | १  | ८  |
| उ    | ७४ | ७३ | ६९ | ६९ |
| अ    | २  | ३  | ७  | ७  |

॥ ३०४ ॥ अनुदिशादिष्वाह—

अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानेषु असंयतगुणस्थानमेव स्यात् । तेन उदययोग्याः सप्ततिरेव । भवनत्रयदेव- १५  
देवीनां कल्पस्त्रीणां च सुरोध एव इत्युदययोग्याः सप्तसप्ततिः ॥७७॥ केवलदेवेषु देवीषु वा षट्सप्ततिः ॥७६॥  
भवनत्रये कल्पस्त्रीषु च सम्यग्दृष्ट्यनुत्तरसंयतगुणस्थाने देवानुपूर्व्यं नास्तीति सासादने व्युच्छित्तिः पंच ५ ।  
असंयते अष्टौ ८ । शेषं सर्वं सुगमं ।

वेदका ही उदय होता है । अतः देवोंमें स्त्रीवेदके बिना सौधर्मसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक पयन्त  
स्त्रीवेदके बिना छिहत्तर उदययोग्य है । अन्य सब सामान्य देवोंकी तरह जानना ॥३०४॥ २०

अनुदिश आदिमें कहते हैं—

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानोंमें एक असंयत गुणस्थान ही होता है अतः  
वहाँ उदययोग्य सत्तर ही हैं । भवनत्रिकके देव और देवियोंमें तथा कल्पवासी देवांगनाओंमें  
सामान्यदेवकी तरह उदययोग्य सत्तर ७७ हैं । केवल देव और देवियोंमें उदययोग्य  
छिहत्तर हैं । भवनत्रिक और कल्पवासी देवियोंमें सम्यग्दृष्टि मरकर जन्म नहीं लेता इसलिए २५  
असंयत गुणस्थानमें देवानुपूर्विका उदय नहीं होता । उसकी व्युच्छित्ति सासादनमें होनेसे



अनंतरमिन्द्रियमार्गणेषोऽनुदययोग्यप्रकृतिगलं साधात्रयदिदं पेळदपरः—

तिरिय अपुण्णं वेगे परधातचउक्क-पुण्ण-साहरणं ।

एइंदियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदब्बं ॥३०६॥

५ तिरियंगपुण्णंवदेकेंद्रिये परधातचतुष्कपूर्णसाधारणमेकेंद्रिययशः स्त्यानगृद्धितप्रस्थावरयुगलं च मिलितव्यं ॥

रिणमंगोवंगतसं संहदिपंचक्खमेवमिह वियले ।

अवणिय थावरजुगलं साहरणेयक्खमादावं ॥३०७॥

ऋणमंगोपांगत्रससंहननपंचेंद्रियमेवमिह विकले । अपनीय स्थावरयुगलं साधारणैकाक्ष-  
मातपं ॥

१० खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवहुं ।

ओधं सयले साहारणिगिविगलादावथावरदुगूणं ॥३०८॥

क्षिप त्रसदुर्गतिदुःस्वरमंगोपांगं स्वजाति सृपाटिकासंहननं ओघः सकले साधारणैकविकला-  
तपस्थावरद्विकोनः ॥

भवनत्रयकल्पस्त्रीयोग्य ७६

| व्यु | १  | ५  | १  | ८  |
|------|----|----|----|----|
| उ    | ७४ | ७३ | ६९ | ६९ |
| अ    | २  | ३  | ७  | ७  |
|      | मि | सा | मि | अ  |

१५ ३०५ । अर्थेन्द्रियमार्गणायां गाथात्रयेणाह—

पाँचकी व्युच्छित्ति होती है और असंयतमें आठकी व्युच्छित्ति होती है । शेष सब सुगम है ॥३०५॥

सौधर्मादि उपरिग्रै० ७६

|       | मि. | सा. | मि. | अ. |
|-------|-----|-----|-----|----|
| व्यु. | १   | ४   | १   | ९  |
| उदय   | ७४  | ७३  | ६९  | ७० |
| अनुदय | २   | ३   | ७   | ६  |

भवनत्रिक-कल्पस्त्री—७६

|       | मि. | सा. | मि. | अ. |
|-------|-----|-----|-----|----|
| व्यु. | १   | ५   | १   | ८  |
| उदय   | ७४  | ७३  | ६९  | ६९ |
| अनुदय | २   | ३   | ७   | ७  |

आगे तीन गाथाओंसे इन्द्रिय मार्गणामें कहते हैं—

एकेंद्रिये एकेंद्रियमार्गणोद्योग्यप्रकृतिगळु तिर्यंगपर्याप्तपंचेंद्रियजोवंगळगे पेळदेष-  
त्तोडु ७१ प्रकृतिगळपुववरोळ परघातातपोद्योतोच्छ्वासमेव परघातचतुष्कमुमं पर्याप्तनाममुमं  
साधारणशरीरनाममुमनेकेद्रियजातिनाममुमं यशस्कीर्तिनाममुमं स्त्यानगृद्धित्रयमुमं स्थावरमुमं  
सूक्ष्ममुमंनुतु पविमूरं प्रकृतिगळं १३ कूडिदोडेभत्तनाल्कपुव ८४ वरोळु मत्ते ऋणं अंगोपांगमुं  
त्रसनाममुं सृपाटिकासंहननमुं पंचेंद्रियजातिनाममुमं नाल्कु प्रकृतिगळपु ४ ववं कळदोडेभत्त  
प्रकृतिगळपुवु । यिल्लि मिथ्यादृष्टिदोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमातपनाममुं सूक्ष्मापर्याप्तसाधारण-  
शरीरमेव सूक्ष्मत्रयमुमितु तन्न गुणस्थानदोळु पेळद प्रकृतिपंचकमुं मत्तं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं  
परघातनाममुं उद्योतनाममुच्छ्वासनाममुमितारु ६ प्रकृतिगळु सासादननोळुदयमिल्लपुदरिदं  
मिथ्यादृष्टिदोळवं कूडिदोडुवयव्युच्छित्तिगळु पन्नोदेयपुतु ११ । सासादननोळनंतानुबंधितुष्कमु-  
मेकेंद्रियजातिनाममुं स्थावरनाममुमितारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं । ६ । यिल्लि मिथ्यादृष्टि- १०  
गुणस्थानदोळनुदयं शून्यमक्कुमुदयप्रकृतिगळेभत्तु ८० । सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळु पन्नोडु  
११ उदयंगळरुवत्तोभत्तु ६९ । संदृष्टि :—

एकेंद्रिय योग्य ८०

| ०    | मि. | सा. |
|------|-----|-----|
| व्यु | ११  | ६   |
| उ    | ८०  | ६९  |
| अ    | ०   | ११  |

एकेंद्रियमार्गणायां उदययोग्याः तिर्यंगपर्याप्तपंचेंद्रियवदित्येकसमतिः । तत्र परघातातपोद्योतोच्छ्वास-  
पर्याप्तसाधारणैकेंद्रिया यशस्कीर्तिस्थानगृद्धित्रयस्थावरसूक्ष्माणि मेलयित्वा अंगोपांगत्रससृपाटिकासंहननपंचेंद्रिये- १५  
ष्वपनीतोष्वशीतिः स्युः । तत्र मिच्छादावं सुदृढमतिमिति पंच पुनः स्त्यानगृद्धित्रयपरघातोद्योतोच्छ्वासाः  
सासादनानुदयात् षट् च मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः ११ । सासादनेऽनंतानुबंधितुष्कैकेंद्रियस्थावराणि षट् ।  
तथासति मिथ्यादृष्टौ अनुदयः शून्यं । उदयः अशीतिः ८० । सासादने अनुदये एकादश ११ । उदये एकोनस-

एकेन्द्रिय मार्गणामेव उदय योग्य तिर्यंचलव्यपार्याप्तकी तरह इकहत्तर ७१ । किन्तु उसमें  
परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, पर्याप्त, साधारण, एकेन्द्रिय, अयशस्कीर्ति, स्त्यानगृद्धि २०  
आदि तीन, स्थावर और सूक्ष्म मिलाकर औदारिक अंगोपांग, त्रस, सृपाटिका संहनन और  
पंचेन्द्रिय घटानेपर अस्सी होती हैं । उसमें मिथ्यादृष्टिमें ग्यारहकी व्युच्छित्ति होती है—  
मिथ्यात्व, आतप और सूक्ष्म आदि तीन ये पाँच तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात,  
उद्योत, उच्छ्वासका सासादनमें अनुदय होनेसे छहकी व्युच्छित्ति भी मिथ्यादृष्टिमें होती है ।  
सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर छहकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर २५  
मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य, उदय अस्सी ८० । सासादनमें अनुदय ग्यारह ११ । उदय  
उनहत्तर ६९ ।

एवमिह वियले विकलत्रयदोळमिहे एणभत्तं ८० । प्रकृतिगळुदययोग्यंगळपुवलि  
 स्थावरमुं सूक्ष्ममुं साधारणशरीरमेकद्रियजातिनाममुमनातपनाममुमित्तुं ५ प्रकृतिगळं कळेदोडे  
 प्ततद्वपु ७५ ववरोळु असनासमुं अप्रशस्तविहायोगतियुं दुःस्वरनाममुं अंगोपांगनाममुं  
 स्वजातिनाममुं सृपाटिकासंहननमुमित्तारं ६ प्रकृतिगळं प्रक्षेपिसुत विरलेण्तो दुदयप्रकृतिगळुदय-  
 ५ योग्यंगळपु ८१ वलि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्याप्तनाममुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं  
 परघातमुच्छ्वासमुद्योतमप्रशस्तविहायोगतियुं दुःस्वरनाममुमितु पत्तुं प्रकृतिगळगे सासादननोळु-  
 दयमित्तपुदरिदमा प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळपुवु १० । सासादननोळु अनंतानु-  
 वंधिचतुष्कमुं द्वौद्रियादिजातिनामनामप्रितयदोळु स्वजातिनाममोदं तु पंच प्रकृतिगळुदय-  
 व्युच्छित्तियपु ५ वंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयंगळेणभत्तो दु ८१ ।  
 १० सासादन-गुणस्थानदोळनुदयंगळ पत्तुं १० उदयंगळेणत्तो दु ७१ । संदृष्टिः —

विकले ३ यो० ८१

| ०    | मि | सा |
|------|----|----|
| व्यु | १० | ५  |
| उ    | ८१ | ७१ |
| अ    | ०  | १० |

सतिः ६९ । एवमिह वियले-विकलत्रये अशीति संस्थाप्य तत्र स्थावरसूक्ष्मसाधारणैर्केन्द्रियातपानपनीय  
 त्रसाप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वरांगोपांगस्वजातिसृपाटिकासंहननेषु प्रक्षेपेषु एकाशीतिरुदययोग्या भवन्ति ।  
 तत्र मिथ्यात्वपर्याप्तस्त्यानगृद्धित्रयं पुनः परघातोच्छ्वासीद्योताप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वराः सासादने अनुदयात्  
 मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः । १० । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं स्वैकतरजातिश्चेति पंच । एवं सति मिथ्यादृष्टा-  
 १५ वनुदये शून्यं । उदये एकाशीतिः ८१ । सासादने अनुदये १० । उदये एकसप्ततिः ७१ ।

इसी प्रकार विकलत्रयमें अस्सीमें-से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतप-  
 को घटाकर त्रस, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर औदारिक अंगोपांग, सृपाटिका संहनन  
 और अपनी-अपनी जाति ( दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ) मिलानेपर उदययोग्य इक्यासी  
 होती हैं ।

२० विकलत्रयमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उच्छ्वास,  
 उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरका सासादनमें अनुदय होनेसे मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति  
 दस १० । सासादनमें अनंतानुबन्धी चार और अपनी-अपनी जाति इस तरह पाँच । ऐसा  
 होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य । उदय इक्यासी । सासादनमें अनुदय दस और उदय  
 इकहत्तर ।

सकलेंद्रियंगलोळ ओषः सायान्योदयप्रकृतिगळ नूरिप्यत्तेरडरोळ १२२ साधारणैकेंद्रिय विकलत्रयातपस्थावरसूक्ष्ममेबेंदुं ८ प्रकृतिगळं कळेदोडुदययोग्यप्रकृतिगळ नूरपदिनाल्कप्पु ११४ वल्लि पंचेन्द्रियत्वं चतुर्गतिसाधारणमप्पुवरिवं चतुर्दशगुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळ मिथ्यात्वमुमपर्याप्तिनाममुमेबेरडुं प्रकृतिगळगुदयच्छेदमक्कुं २। सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमे छेदमक्कुं ४। मिश्रनोळं मिश्रप्रकृतिये छेदमक्कु-१ असंयतनोळ द्वितीयकषायचतुष्टयादिपदिनेळं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तयक्कुं १७। देशसंयतनोळ एंडु प्रकृतिगळगुदयच्छेदमक्कुं ८। मेले प्रमत्तादि नवगुणस्थानंगळोळ सामान्यगुणस्थानदोळपेळदंतय्कुं ५ नाल्कु ४ मार ६ मार ६ मोडु १ मेरडु २ पविनारं १६ सूक्तं ३० पत्तेरडुं १२ प्रकृतिगळो यथाक्रमविदमुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्प्रकृतिगुमाहारकद्वयमुं तीर्थमुमितय्कुं प्रकृति- गळगुदयमक्कुं ५। उदयप्रकृतिगळ नूरोभत्तु १०९। सासादनगुणस्थानदोळ एरडु गूडियनुदय प्रकृतिगळेळ ७। अवरोळ नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळ कलेदनुदयंगळोळ कूडुत्तं विरलनुदयंगळे ८। उदयंगळ नूरा १०६। मिश्रगुणस्थानदोळ नाल्कु गूडिदनुदयंगळ पत्तेरडरोळ शेषानुपूर्व्यंगळ मूरुमनुदयंगळोळ कळेदनुदयंगळोळ कूडुत्तमनुदयंगळोळ मिश्रप्रकृतियनुयंगळोळ कूडुत्तं विरलनु- दयंगळ पदिनाल्कु १४। उदयंगळ नूर १००। असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडिदनुदयंगळ पदिनय-

सकलेंद्रियेषु ओषः द्वाविंशत्युत्तरशतं १२२। तत्र च साधारणैकेंद्रियविकलत्रयातपस्थावरसूक्ष्मेज्व- १५ पनीतेषु उदययोग्यं चतुर्दशोत्तरशतं ११४। गुणस्थानानि चतुर्दश। तत्र मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वापर्याप्तिद्वयं छेदः २। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रप्रकृतिः १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कादिसप्तदश १७। देशसंयतेष्टी। प्रमत्तादिषु गुणस्थानवत् पंच ५ चत्वारि ४ षट् ६ षट् ६ एवं १ द्वे २ षोडश १६ त्रिंशत् ३० द्वादश १२। तथासति मिथ्यादृष्टी मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वाऽनुदयः। उदये त्वोत्तरशतं १०९। सासादनेऽनुदयः द्वयं नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अष्टौ ८। उदयः षडुत्तरशतं १०६। मिश्रेऽनुदयः चत्वारि २० ४ शेषानुपूर्व्यद्वयं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयाच्चतुर्दश १४। उदये शतं। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य

पंचेन्द्रियेभ्यो गुणस्थानकी तरह उदय योग्य एक सौ बाईस १२२ में से साधारण, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म घटानेपर उदययोग्य एक सौ चौदह ११४। गुणस्थान चौदह। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति २। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार ४। मिश्रमें मिश्र प्रकृति १। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण आदि सतरह १७। देशसंयतमें आठ ८। प्रमत्त आदिमें गुणस्थानकी तरह पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, अहारकद्विक और तीर्थकरका अनुदय। उदय एक सौ नौ १०९। व्युच्छित्ति दो।

२. सासादनमें पाँचमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ। उदय एक सौ छह १०६। व्यु० ४

३. मिश्रमें आठमें चार तथा शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रप्रकृतिः उदय होनेसे अनुदय चौदह। उदय सौ। व्यु. एक।

१. म कूडिमत्तमनुदयंगं ।

- रोळु चतुर्गतिगळोळमसंयतसम्यग्दृष्टि पुट्टुगुमपुवरिदमानुपूर्यचतुष्कमुमं सम्यक्त्वप्रकृतियुमनि-  
तपुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ कूडुत्तं विरलनुदयंगळ पत्तं १० । उदयप्रकृतिगळु नूरनाल्कु  
१०४ देशसंयतगुणस्थानदोळ पदिनेळुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळु २७ । उदयंगळेभत्तेळु ८७ । प्रमत्त-  
गुणस्थानदोळु एंडुगूडियनुदयप्रकृतिगळु सूवत्तय्दरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळ कूडुत्तं  
५ विरलनुदयंगळु सूवत्तमूर ३३ । उदयंगळेभत्तोडु ८१ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडियनुदय-  
गळु सूवत्तेडु ३८ । उदयंगळेप्पत्ताह ७६ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु  
नाल्वत्तेरडु ४२ । उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु  
नाल्वत्तेडु ४८ । उदयंगळरुवत्ताह ६६ । सूक्ष्मसांपराप्रगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळय्वत्त नाल्कु  
५४ । उदयंगळरुवत्तु ६० । उपशांतकषायगुणस्थानदोळोडुगूडियनुदयंगळय्वत्तय्दु ५५ । उदयंगळ-  
१० य्वत्तोभत्तु ५९ । क्षीणकषायगुणस्थानदोळु एरडुगूडियनुदयंगळय्वत्तेळु ५७ । उदयंगळुमय्वत्तेळु  
५७ । सयोगिकेवलभट्टारकनोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळेप्पत्तमूररोळु तीर्थकरनाममं कळेदुदय-  
गळोळ कूडुत्तं विरलनुदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ । उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२ । अयोगिकेवलभट्टारक-

- चतुरानुपूर्यसम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्दश १० । उदयः चतुस्तरशतं १०४ । देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः सप्त-  
विंशतिः २७ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्ते अनुदयः अष्ट संयोज्य आहारकद्वयोदयात्त्रयस्त्रिंशत् ३३ । उदय  
१५ एकाशीतिः । ८१ । अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयोऽष्टाविंशत् ३८ । उदयः षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणे  
चत्वारि संयोज्य अनुदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२ । उदयः द्वासप्ततिः ७२ । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य  
अनुदयः अष्टाचत्वारिंशत् ४८ । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः चतुःपंचाशत् ५४ ।  
उदयः षष्टिः ६० । उपशान्तकषाये एकां संयोज्य अनुदये पंचपंचाशत् ५५ । उदये एकान्तषष्टिः ५९ ।  
क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदये सप्तपंचाशत् ५७ । उदयेऽपि सप्तपंचाशत् ५७ । संयोगे अनुदयः षोडश  
२० संयोज्य तीर्थकरत्वोदयाद् द्वासप्ततिः ७२ । उदयं द्वाचत्वारिंशत् ४२ । अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदये

४. असंयतमें एक मिलाकर तथा चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय दस । उदय एक सौ चार । व्यु. सतरह ।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय सत्ताईस । उदय सतासी । व्यु. आठ ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय तैंतीस, क्योंकि आहारकद्वयका उदय है । उदय  
२५ इक्यासी । व्यु. पाँच ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय अड़तीस । उदय छिहत्तर । व्यु. चार ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय बयालीस । उदय बहत्तर । व्यु. छह ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय अड़तालीस । उदय छियासठ ।

१०. सूक्ष्मसांपरायमें छह मिलाकर अनुदय चौवन । उदय साठ । व्यु. एक ।

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय पचपन । उदय उनसठ । व्यु. दो ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय सत्तावन । उदय भी सत्तावन । व्यु. सोलह ।

१३. संयोगीमें सोलह मिलाकर अनुदय बहत्तर क्योंकि तीर्थकरका उदय है । उदय बयालीस । व्यु. तीस ।

गुणस्थानदोळ, भूवतुगुडियनुदयप्रकृतिगळ नूरैरडु १०२ । उदयंगळ पन्नैरडु १२ । संदृष्टि :—  
सकलेंद्रिययोग्य ११४

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|-----|
| व्यु | २   | ४   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६३० | १२ |     |
| उ    | १०९ | १०६ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ | १२  |
| अ    | ५   | ८   | १४  | १०  | २७ | ३३  | ३८ | ४२ | ४८ | ५४ | ५५ | ५७   | ७२ | १०२ |

अनंतरं कायमार्गणोळुदययोग्यप्रकृतिगळं द्व्यर्द्धगाथासूत्रादिदं पेळवपरु :—

एयं वा पणकाए ण हि साधारणमिणं च आदावं ।

दुसु तद्दुगमुज्जोवं कमेण चरिमम्मि आदावं ॥३०९॥

एकेंद्रियवत्पंचकाये न हि साधारणमिदं चातपः द्वयोस्तद्वयमुद्योतः क्रमेण चरमे आतपः ॥

एकेंद्रियवत्पंचकाये एकेंद्रियमार्गणोळु पेळवते अय्दुं कायमार्गणोळुदययोग्यप्रकृति-  
गळभत्तपुवु ८० । अदेते दोडे सामान्योदयप्रकृतिगळ १२२ । नूरिप्पत्तेरडोळु नारकायुष्यमुमं  
१ । देवायुष्यमुमं १ । मनुष्यायुष्यमुमं १ । उच्चैर्गोत्रमुमं १ । मनुष्यद्विकमुमं २ । आहारक-  
द्विकमुमं २ । वैक्रियिकषट्कमुमं ६ । तीर्त्यमुमं १ । विकलत्रयमुमं ३ । स्त्रीवेदमुमं १ । पुरुषवेदमुमं १०  
१ । स्वरद्वयमुमं २ । विहायोगतिद्वयमुमं २ । आदेयनाममुमं १ । संस्थानाद्यपंचकमुमं ५ । संहतन-  
षट्कमुमं ६ । सुभगनाममुमं १ । सम्यक्त्वप्रकृतियुमं १ । मिश्रप्रकृतियुमं १ । औदारिकांगोपांगमुमं  
१ । त्रसनाममुमं १ । पंचेंद्रियजातिनाममुमं १ । नितु नाल्वत्तेरडु प्रकृतिगळं कळेदोडेतावन्मात्रं-  
गळपुवदरिदं । अल्लि साधारणमं कळेदोडे पृथ्वीकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पतो भत्तपुवु ७९ ।

(८०)

मत्तमा एगभत्तुप्रकृतिगळोळु ई साधारणमुमं आतपनाममुमं कळेदोडकायिकोदययोग्यप्रकृति- १५

द्व्युत्तरशतं १०२ । उदयो द्वादश । ३०६-३०८ ॥ अथ कायमार्गणायामाह—

एकेंद्रियमार्गणावत् पंचकायमार्गणायामशोतिः ८० । तत्र साधारणेऽपनीते पृथ्वीकायिकोदययोग्या

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय एक सौ दो । उदय बारह ॥३०६-३०८॥

विकलत्रय रचना

सकलेन्द्रिय योग्य ११४

| मि.सा. | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू.उ. | क्षी.स. | अ.  |
|--------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-------|---------|-----|
| १० ५   | २   | ४   | १   | १७  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १ २   | १६३०    | १२  |
| ८१ ७१  | १०९ | १०६ | १०० | १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६० ५९ | ५७ ४२   | १२  |
| ०१८    | ५   | ८   | १४  | १०  | २७  | ३३   | ३८ | ४२ | ४८ | ५४ ५५ | ५७ ७२   | १०२ |

आगे कायमार्गणामें कहते हैं—

एकेन्द्रिय मार्गणाकी तरह पाँच कायमार्गणामें उदययोग्य अस्सी ८० । उसमें-से

क-६१

(८०)

- गळेपत्ते टप्पुवु ७८ । मत्तमा एणभत्तुं प्रकृतिगळोळु असाधारणातपद्वयसहितमाणि उद्योतनाममुमं कळेदोडे तेजस्कायिकवायुकायिकमेंवेरडेडोळमेपत्तेळुमेपत्तेळु प्रकृतिगळुद्वययोग्यगळपुवु । ते ७७ । वा ७७ । मत्तं क्रमेण चरिमम्मि आदावं ण हि वनस्पतिकायिकंगळोळाएणभत्तरोळातप-  
 ५ नाममोदं कलेदोडुद्वययोग्यप्रकृतिगळेपत्तो भत्तपुवु ७९ । अंतागुत्तं विरलु पृथ्वीकायिकोद्वययोग्य-  
 १० प्रकृतिगळेपत्तो भत्तु ७९ । गुणस्थानंगळेरडपुवेतेदोडे ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहमगे य तेजदुगे एदितु पारिशेषिक न्यायदिदं पृथ्वीकायिकंगळोळं अण्कायिकंगळोळं वनस्पतिकायिकं-  
 गळोळं सासादनसस्यगृष्टि पुट्टुगुमपुदरिदमल्लि पुट्टुवसासादनंगवस्थानकालमुत्कृष्टदिदमारा-  
 वलि जघन्यदिदमेकसमयमेयपुदरिदं तद्गुणस्थानदोळुद्वययोग्यमत्तद मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतप-  
 नाममुं १ सूक्ष्मनाममुं १ अपर्याप्तनाममुमेंब नात्कुं ४ प्रकृतिगळुं विद्रियपर्याप्तियिदं मेलुद्वयसुव  
 १० स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ । उच्छ्वासपर्याप्तियिदं मेलुद्वयसुव उच्छ्वासनाममुं १ शरीरपर्याप्तियिदं  
 मेलुद्वयसुव परघातनाममु १ मुद्योतनाममुं १ मितु पत्तुं प्रकृतिगळुं मिथ्यादृष्टिदोळुद्व्युच्छित्ति-  
 यक्कुं १० । सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममु १ मितारं  
 प्रकृतिगळुगुद्वयव्युच्छित्तियक्कु ६ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुनुदयं शून्यमुदयप्रकृति-  
 गळेपत्तो भत्तु ७९ । सासादनगुणस्थानदोळुनुदयंगळु पत्तु १० उदयंगळरुवत्तो भत्तु ६९ । संदृष्टि :

- १५ एकान्नाशीतिः । ७९ । पुनस्तत्राशीत्यां साधारणातपद्वयेऽपनीतेऽण्कायिकोद्वययोग्या अष्टसप्ततिः ७८ । पुनस्तत्रा-  
 शीत्यां साधारणातपोद्योतत्रयेऽपनीते तेजोवातकायिकयोर्द्वययोग्याः सप्तसप्ततिः ७७ । पुनः क्रमेण चरिमम्मि  
 आतपेऽपनीते वनस्पतिकायिके उद्वययोग्याः एकान्नाशीतिः ७९ । तथासति पृथ्वीकायिकोद्वययोग्या एकान्ना-  
 शीतिः ७९ । गुणस्थानद्वयं कुतः ? णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहमगे य तेजदुगे । इति पारिशेष्यात् पृथ्व्य-  
 ष्प्रत्येकवनस्पतिषु सासादनस्योत्पत्तेः । तत्रोत्पन्नसासादनस्य तद्गुणस्थाने उद्वययोग्यानि मिथ्यात्वात्तपसूक्ष्मा-  
 २० पर्याप्तानि इन्द्रियपर्याप्त्युपर्युद्वययोग्यस्यानगृद्धित्रयं उच्छ्वासपर्याप्त्युपर्युद्वययोग्योच्छ्वासः शरीरपर्याप्त्युपर्युद्वय-  
 योग्यपरघातोद्योतो एवं दश मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १० । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियस्थावरं

- साधारण घटानेपर पृथ्वीकायिकमें उद्वययोग्य उन्नासी ७९ । पुनः अस्सीमें-से साधारण और  
 आतप घटानेपर अण्कायिकमें उद्वययोग्य अठहत्तर । पुनः अस्सीमें-से साधारण, आतप और  
 उद्योत घटानेपर तेजकाय और वायुकायमें उद्वययोग्य सतहत्तर । पुनः क्रमसे अन्तिममें  
 २५ आतप घटानेपर वनस्पतिकायिकमें उद्वययोग्य उन्नासी । ऐसा होनेपर पृथ्वीकायिकके  
 उद्वययोग्य उन्नासी । गुणस्थान दो क्योंकि आगममें कहा है कि सासादन मरण करके  
 अपर्याप्त, साधारणकाय, सूक्ष्मकाय, तेजकाय और वायुकायमें उत्पन्न नहीं होता । अतः  
 वह पृथ्वीकाय, अण्काय और प्रत्येक वनस्पतिमें ही उत्पन्न होता है । उनमें उत्पन्न सासादन-  
 के उस गुणस्थानमें ये दस प्रकृतियाँ उद्वययोग्य नहीं हैं—मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त  
 ३० ये चार । तथा सासादन तो निर्वृत्यपर्याप्त दशमें ही रहता है और स्त्यानगृद्धि आदि तीन  
 इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उद्वययोग्य होती हैं । इसी तरह उच्छ्वासका उद्वय भी  
 उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही होता है । परघात और उद्योत शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर  
 ही उद्वययोग्य है अतः इन छहका उद्वय भी यहाँ सासादनमें नहीं होता । इससे इनकी

पृथ्वी० यो० ७९

| ०।०  | मि | सा |
|------|----|----|
| व्यु | १० | ६  |
| उ    | ७९ | ६९ |
| अ    | ०  | १० |

अष्कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेपत्ते'दु ७८। मिथ्यादृष्टियोलु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ सूक्ष्म-  
नाममुं १ अपर्याप्तिनाममुं १ स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ परघातनाममुं १ उद्योतनाममुं १ उच्छ्वासनाममु  
१ मितोभत्तुं ९ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं। सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमुं नाल्कु ४ एकेंद्रिय-  
जातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ मितारं ६ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्या-  
दृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयप्रकृतिगळेपत्ते'दु ७८। सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळोभत्तु ९। ५  
उदयंगळरुवतो'भत्तु ६९। संदृष्टि :—

अ० यो० ७८

| ०    | मि | सा |
|------|----|----|
| व्यु | ९  | ६  |
| उ    | ७८ | ६९ |
| अ    | ०  | ९  |

चेति षट् ६। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं। उदयः एकान्नशीतिः ७९ सासादने अनुदयो दश १०।  
उदयः एकान्नसप्ततिः ६९ अष्कायिकोदययोग्याष्टसप्तत्यां ७८ मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं सूक्ष्ममपर्याप्तं  
स्त्यानगृद्धित्रयं परघातोद्योतोच्छ्वासाश्चेति नव। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कैर्केन्द्रियस्थावराणि षट्। तथासति  
मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं उदयोऽष्टसप्ततिः ७८। सासादने अनुदयः नव ९। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९। १०

व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें होती है। अतः मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दस। सासादनमें  
अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय और स्थावर छह। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य।  
उदय उनासी ७९। सासादनमें अनुदय दस। उदय उनत्तर ६९।

अष्कायिकमें उदययोग्य अठत्तर ७८। मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, सूक्ष्म  
अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास इन नौकी। सासादनमें १५  
अनन्तानुबन्धी चार एकेन्द्रिय स्थावर छह। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य।  
उदय अठत्तर ७८। सासादनमें अनुदय नौ ९। उदय उनहत्तर ६९।



अष्कायिकयोग्य ७८ तेजस्कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेळु ७७ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदे-  
वायुकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळु मेप्पत्तेळु ७७ । यिल्लियुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदे वनस्पति-  
कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तो भत्तु ७९ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोल्लु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ । सूक्ष्म-  
नाममुं १ अपर्याप्तनाममुं १ साधारणनाममुं १ स्थानगृद्धित्रितयमुं ३ । परघातनाममुं १ । उच्छ्वास-  
नाममुं १ उद्योतनाममुं १ यितु पत्तुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १० । सासादनदोळु अनंतानु-  
बन्धिचतुष्कमुं ४ एकैन्द्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ मितारुं ६ प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्ति-  
यक्कु ६ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयं गळेप्पत्तो भत्तु ७९ । सासादन-  
सम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १० । उदयप्रकृतिगळरुवत्तो भत्तु ६९ । संदृष्टिः—

वनस्पतियोग्य ७९

| ०    | मि | सा |
|------|----|----|
| व्यु | १० | ६  |
| उ    | ७९ | ६९ |
| अ    | ०  | १० |

१० अन्तरं त्रसकायमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरः—

तेजोवातकायिकोदययोग्याः सप्तसप्ततिः ७७ । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं । वनस्पतिकायिकोदययोग्यैकान्नाशोत्यां  
मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणस्थानगृद्धिद्वयपरघातोच्छ्वासोद्योताः व्युच्छित्तिः १० । सासादने  
अनंतानुबन्धिचतुष्कैकैन्द्रियस्थावराणि ६९ तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं उदयः एकान्नाशोतिः ७९ ।  
सासादनेऽनुदयः दश १० । उदयः एकान्नसप्ततिः । ६९ ॥ ३०९ ॥ अथत्रसकायमार्गणायामाह—

१५ तेजकायिक, वायुकायिकमें उदययोग्य सतहत्तर ७७ । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि एक ।

वनस्पतिकायिकमें उदययोग्य ७९ उन्यासी । मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त,  
साधारण, स्थानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास इन दसकी व्युच्छित्ति । सासा-  
दनमें अनंतानुबन्धी चार स्थावर सूक्ष्म छहकी व्युच्छित्ति । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें  
अनुदय शून्य । उदय उन्यासी ७९ । सासादनमें अनुदय दस १० । उदय उनहत्तर ६९ ॥ ३०९ ॥

२० पृथ्वीकाय रचना ७९ अष्काय रचना ७८ तेजोवातकाय रचना ७७

| मि. | सा. |
|-----|-----|
| १०  | ६   |
| ७९  | ६९  |
| ०   | १०  |

| मि. | सा. |
|-----|-----|
| ९   | ६   |
| ७८  | ६९  |
| ०   | ९   |

| मि. |
|-----|
| ०   |
| ७७  |
| ०   |

आगे त्रसकाय मार्गणामें कहते हैं—

ओघं तसे ण थावरदुग-साहरणेयतावमथ ओघं ।

मणवयणसत्तगे ण हि ताविगिविगलं च थावराणुचळ ॥३१०॥

ओघस्त्रसे न स्थावरद्विक साधारणैकेंद्रियातपं अथ ओघः । मनोवचनसप्तके न हि आतपैक विकलेंद्रियं च स्थावरानुपूर्व्यं चत्वारि ॥

त्रसकायमार्गणोद्योग्यप्रकृतिगळ नूर पदिनेळ ११७ पुवदे ते दोडे केवलमेकेंद्रियो- ५  
दययोग्यंगळप्प स्थावरनाममुं १ सूक्ष्मनाममुं १ साधारणशरीरनाममुं १ एकेंद्रियजातिनाममुं  
१ आतपनाममुं १ नित्यं ५ प्रकृतिगळं सामान्योदयप्रकृतिगळ नूरिप्पत्तेरडरोळ कळेदोडे  
तावन्मात्रंगळपुदरिं १ चतुर्गतिसाधारणमपुदरिं १ त्रसकायमार्गणोद्योग्य गुणस्थानंगळ पदि-  
नाल्कुवपुवलि १४ मिथ्यादृष्टिगळ मिथ्यात्वप्रकृतिपुमपर्याप्रनाममुमितरडे प्रकृतिगळगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं २ । सासादनोळ अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ विकलत्रयमुं ३ मितेळ प्रकृतिगळगुदय- १०  
व्युच्छित्तियक्कुं ७ । मिश्रनोळ मिश्रप्रकृतियो दे व्युच्छित्तियक्कुं १ । असंयतमोदगोडु मेल्लेडे-  
योळ गुणस्थानदोळ पेळदंतेयुदयव्युच्छित्तियगळ पदिनेळ एंदुमपुदु नाल्कुमारुमारुमोडुमेरडुं  
पदिनाहं सूवत्तुं पन्नेरडुगळपुवतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ मिश्रप्रकृतियुं १  
सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ आहारकद्विकमुं २ तीर्थमुं १ मितपुदुं प्रकृतिगळगुदयमक्कुं ५ । उदयंगळ  
नूर पन्नेरडु ११२ । सासादनगुणस्थानदोलेरडु गूडियनुदयंगळेरुळ नारकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळ १५  
कळदनुदयंगळोळ कूडुत्तं विरलनुदयंगळेरु ८ । उदयंगळ नूरो भत्तु १०९ । मिश्रगुणस्थानदोलेळ  
गूडियनुदयंगळ पदिनपरोळ शेषानुपूर्व्यत्रयमं कूडुत्तमल्लि मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळ  
कूडुत्तं विरलनुदयंगळ पदिनेळ १७ । उदयंगळ नूर १०० । असंयतगुणस्थानदोळोडुगूडियनु-

त्रसकायिकोदययोग्यं सप्तदशोत्तरशतं ११७ । कुतः ? स्थावरसूक्ष्मसाधारणैकेंद्रियातपानामैकेंद्रियैवे-  
वोदयात् । गुणस्थानानि चतुर्दश १४ । तत्र मिथ्यादृष्टो मिथ्यात्वापर्याप्तद्वयं व्युच्छित्तिः सासादनेऽनंतानुबंधि- २०  
वतुष्कं विकलत्रयं च । मिश्रे मिश्रं १ । असंयतादिषु गुणस्थानवत् सप्तदशाष्ट पंच चत्वारि षट् षडेकं द्वे  
षोडशं त्रिंशत् द्वादश । तथासति मिथ्यादृष्टवनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वानि ५ । उदयः द्वादशोत्तर-  
शतं ११२ । सासादने अनुदयः द्वे नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अष्टो ८ । उदयः नवोत्तरशतं । मिश्रे अनुदयः

त्रसकायिकमें उदययोग्य एक सौ सतरह ११७ । क्योंकि स्थावर, सूक्ष्म, साधारण  
एकेन्द्रिय और आतपका उदय एकेन्द्रियोंमें ही होता है । गुणस्थान चौदह १४ । उनमें-से २५  
मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्तकी व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनंतानुबन्धो  
चार और विकलत्रय । मिश्रमें मिश्र । असंयत आदिमें गुणस्थानोंकी तरह सतरह, आठ,  
पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र  
सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थकर पाँचका अनुदय । उदय एक सौ बारह ११२ । सासा-  
दनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ । उदय एक सौ नौ । मिश्रमें सात और ३०  
शेष तीन आनुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्र प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय ८ + ७ + ३ = १८ - १ =

दयंगळ पदिनेटरोळ, सम्यक्त्वप्रकृतिगुमं आनुपूर्व्यंचतुष्कमुमं ४ कळदुदयंगळोळ, कूडुत्त विरलनुदयंगळ, पदिमूळ १३। उदयंगळ, नूर नालकु १०४। देशसंयतगुणस्थानदोळ, पदिनेलु-  
गूडियनुदयंगळ ३० सूवत्त, उदयलंभत्तेलु ८७। प्रमत्तगुणस्थानं मोदल्लोडु मेल्लेडेलोळनु-  
दयोदयंगळ, गुणस्थानदोळपेळदंतेयप्पुवु। संदृष्टिः—

## त्रसकाय योग्य ११७

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|-----|
| व्यु | २   | ७   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ३० | १२  |
| उ    | ११२ | १०९ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ | १२  |
| अ    | ५   | ८   | १७  | १३  | ३० | ३६  | ४१ | ४५ | ५१ | ५७ | ५८ | ६०   | ७५ | १०५ |

अथ मनोवचनसप्तके ओघः सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगंगळ नालकुं सत्यासत्योभयवाग्यो-  
गंगळ, सूरुमितेलुं ७ योगंगळगुदययोग्यप्रकृतिगळ, सामान्योदयप्रकृतिगळ, नूरिप्पत्तेरडप्पु १२२  
ववरोलातपनाममुमेकेंद्रियजातियुं विकलत्रयमुं स्थावरमुं सूक्ष्ममुं अपर्याप्तिनाममुं साधारण-

सप्त शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयात् सप्तदश १७। उदयः शतं १००। असंयते अनुदयः  
१० एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यंचतुष्कोदयात् त्रयोदश १३। उदयश्चतुस्तरशतं। १०४। देशसंयते सप्तदश  
संयोज्य अनुदयः त्रिशत् ३०। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तादिषु अनुदयोदयो गुणस्थानवत्। संदृष्टिः—

## त्रसकाययोग्य ११७।

|      | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|-----|
| व्यु | २   | ७   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ३० | १२  |
| उ    | ११२ | १०९ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ | १२  |
| अ    | ५   | ८   | १७  | १३  | ३० | ३६  | ४१ | ४५ | ५१ | ५७ | ५८ | ६०   | ७५ | १०५ |

अथ सत्यादिषु चतुर्षु मनोयोगेषु त्रिषु वाग्योगेषु च ओघः १२२, तत्र आतपैकेंद्रियविकलत्रयस्थावर-

सतरह। उदय सौ। असंयतमें एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व प्रकृति और चारों आनुपूर्विका  
१५ उदय होनेसे अनुदय तेरह। उदय एक सौ चार। देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय तीस।  
उदय सतासी। प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें अनुदय और उदय गुणस्थानवत् जानना ॥३१०॥

## त्रसकाययोग्य ११७

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | मि. | अ. | सू. | उ. | क्षी | स. | अ.  |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|-----|----|-----|----|------|----|-----|
| व्यु. | २   | ७   | १   | १७  | ८   | ५    | ४  | ६   | ६  | १   | २  | १६   | ३० | १२  |
| उ.    | ११२ | १०९ | १०० | १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२  | ६६ | ६०  | ५९ | ५७   | ४२ | १२  |
| अनु.  | ५   | ८   | १७  | १३  | ३०  | ३६   | ४१ | ४५  | ५१ | ५७  | ५८ | ६०   | ७५ | १०५ |

योगमार्गणामें सत्य आदि चार मनोयोगोंमें और सत्य असत्य उभय वचनयोगमें

शरीरमुमेंब स्थावरचतुष्टयम् आनुपूर्व्यचतुष्टयमिति पदिसूत्रं प्रकृतिगलं कळेदोडे नूरोभत्तु  
 प्रकृतिगलुदययोग्यगलपु १०९ वल्लि मिथ्यादृष्टिगळु मिथ्यात्वप्रकृतियो देधुदयव्युच्छित्तियक्कं १ ।  
 सासादनोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयमुदयव्युच्छित्तियक्कं ४ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्ति-  
 यक्कं १ । असंयतनोळु भाषापर्व्यामिथिदं मेलणयोगंगळपुदरिदं नालकुमानुपूर्व्यगळं कळेदु  
 शेष पदिसूत्रं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कं १३ । देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्टयम् तिप्यंग- ५  
 युष्टयम् उद्योतनामम् नोचैर्गोत्रम् तिप्यंगतिनाममुमितेदुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कं ८ ।  
 प्रमत्तगुणस्थानं मोदलागि सयोगिकेवल्लिभट्टारकगुणस्थानपर्व्यंतं पंच य चउरं छक्क छन्नेव इगि  
 दुग सोळस तोसमे दितुदयव्युच्छित्तियगळुपुवयोगिकेवल्लिगुणस्थानदोळु योगमिल्लपुदरिदमल्लिय  
 पक्षेरडुं प्रकृतिगळुगे सयोगिकेवल्लिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमदु कारणमागि सयोगिकेवल्लि-  
 गुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तियगळु नालत्तेरडुप्रकृतिगळपुवु ४२ । अंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टि- १०  
 गुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्थमुमाहारकद्वयमुमितेदुं प्रकृतिगळगुदय-  
 मक्कं ५ । उदयंगळु नूर नालकु १०४ ॥ सासादनगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु आरु ६ । उदय-  
 गळु नूर मूर १०३ । मिश्रगुणस्थानदोळु नालकु गूडियनुदयंगळु हत्तरोळु मिश्रप्रकृतियुं कळेदुदयंगळोळु  
 कूडुत्तं विरलनुदयंगळोभत्तु ९ उदयंगळु नूर १०० । असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु  
 सम्यक्त्वप्रकृतियुं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोभत्तु ९ । उदयंगळु नूर १०० ॥ देश- १५  
 संयतगुणस्थानदोळु पदिसूत्रगूडियनुदयंगळिपत्तेरडु २२ । उदयंगळेभत्तेलु ८७ । प्रमत्तगुणस्थान-

सूक्ष्मपर्याप्तसाधारणचतुरानुपूर्व्याणि उदययोग्यानि नेति नवोत्तरशतं ॥ १०९ ॥ तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं  
 व्युच्छित्तिः । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्टं ४ । मिश्रे मिश्रं १ । असंयते भाषापर्व्याप्तैरपरि योग्यसंभवात्  
 आनुपूर्व्यचतुष्टं विना त्रयोदश १३ । देशसंयते तृतीयकषायचतुष्टं तिर्यंगयुद्योतनोचैर्गोत्रतिर्यंगतयोष्टौ ८ ।  
 प्रमत्तादिसयोगपर्यंतं पंचयचउरछक्कछन्नेव इगिदुगसोलसतीसमिति । अयोगे योगाभावात् तद्वादशानां सयोगे २०  
 एव व्युच्छित्तेर्वाचस्वारिंशत् । ४२ । तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वतीर्थाहारकद्वयमनुदयः ५ । उदयः  
 चतुस्तरशतं १०४ । सासादने एकसंयोगादनुदयः षट् ६ उदयः त्र्युत्तरशतं १०३ । मिश्रेऽनुदयः चतुष्टं

गुणस्थानकी तरह एक सौ बाईसमें-से आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त,  
 साधारण और चार आनुपूर्वी इन तेरहके उदय बिना उदययोग्य एक सौ नौ १०९ ।  
 मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार । मिश्रमें २५  
 मिश्र । असंयतमें चार आनुपूर्वीके बिना तेरह, क्योंकि आनुपूर्वीका उदय तो नवीन  
 भवको गमन करते समय होता है और मनोयोग वचनयोग अपनी पर्याप्ति पूर्ण होनेके  
 पश्चात् होते हैं । इससे यहाँ आनुपूर्वीका उदय नहीं कहा । देससंयतमें तीसरी प्रत्याख्याना-  
 वरण कषाय चार तिर्यंचायु उद्योत नीचगोच और तिर्यंचगति ये आठ ८ । प्रमत्तसे सयोगी-  
 पर्यन्त क्रमसे पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह । अयोगकेवलीमें योगका अभाव ३०  
 होनेसे उसमें व्युच्छिन्न होनेवाली बारह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सयोगकेवलीमें ही होनेसे  
 सयोगीमें बयालीसकी व्युच्छित्ति जानना ।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, तीर्थकर, आहारकद्वय पाँचका अनुदय ।  
 उदय एक सौ चार १०४ । सासादनमें एक मिलनेसे अनुदय छह । उदय एक सौ तीन १०३ ।

दोळें दुगुडियनुदयंगळु सूवतरोळाहारकद्वयसं कळेंदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्ते दु २८ ।  
उदयंगलेभत्तो दु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानमादियामि यथायोग्यमागियमनुदयंगळुमुदयप्रकृतिगळुमो  
प्रकारदिदं नडेमुत्तं विरलु रचनेयितुटक्कं संदृष्टिः—

मनो ४ वा ३ योग्यप्रकृति नूरवो भत्तु १०९ ॥

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|
| व्यु | १   | ४   | १   | १३  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ४२ |
| उ    | १०४ | १०३ | १०० | १०० | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ |
| अ    | ५   | ६   | ९   | ९   | २२ | २८  | ३३ | ३७ | ४३ | ४९ | ५० | ५२   | ६७ |

अनुभयवाभ्योगदोलुमौदारिकाययोगदोलुमुदययोग्यप्रकृतिगलं पेळ्ळपहः—

अणुभयवचि वियलजुदा ओधमुराले ण हारदेवाळु ।

वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाळु ॥३११॥

अनुभयवाचि विकलयुत ओघः औदारिके नाहारदेवायुर्व्वैक्रियिकषट् नरतिर्ग्यगानुपूव्वर्वा-  
पयप्तिनरकायः ॥

१० संयोज्य मिश्रोदयान्तव ९ उदयः शतं । १०० । देशसंयते त्रयोदशसंयोगे अनुदयो द्वाविंशतिः २२ । उदयः  
सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्ते अष्ट संयोज्य आहारकद्वयोदयादनुदयः अष्टविंशतिः २८ । उदयः एकाशीतिः ८१ ।  
अप्रमत्तादिषु अनुदयोदययोरेवं गच्छतोः संदृष्टिः—

मनो ४ वा ३ योग्यप्रकृतयः १०९ ।

| स    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|
| व्यु | १   | ४   | १   | १३  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ४२ |
| उ    | १०४ | १०३ | १०० | १०० | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ |
| अ    | ५   | ६   | ९   | ९   | २२ | २८  | ३३ | ३७ | ४३ | ४९ | ५० | ५२   | ६७ |

॥ ३१० । अनुभयवागौदारिकाययोगयोराह—

१५ मिश्रमें चार मिलनेसे तथा मिश्रका उदय होनेसे अनुदय नौ ९ । उदय सौ १०० । देशसंयतमें  
तेरह मिलनेपर अनुदय बाईस २२ । उदय सत्तासी ८७ । प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारक-  
द्विकका उदय होनेसे अनुदय अट्ठाईस २८ । उदय इक्यासी ८१ । अप्रमत्तादिमें अनुदय और  
उदय इसी प्रकार जानना ॥३१०॥

मनोयोग ४ वचनयोग ३ योग्य प्रकृतियाँ १०९

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. | स. |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|----|
| व्यु. | १   | ४   | १   | १३  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    | ४२ |
| उदय.  | १०४ | १०३ | १०० | १०० | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    | ४२ |
| अनु.  | ५   | ६   | ९   | ९   | २२  | २८   | ३३ | ३७ | ४३ | ४९  | ५० | ५२    | ६७ |

अनुभयवाचि अनुभयवाग्योगदोळु विकलेन्द्रियजातिनामत्रितयमं कूडि नूर पन्नेरडुं प्रकृति-  
गळुदययोग्यंगळपुर्वकं दोडनुभयवाग्योगं विकलत्रयजीवंगळगुंणुंटपुर्दरिदं । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु  
मिथ्यात्वप्रकृ तियो वक्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ । सासादननोळनंतानुबधिकषायचतुष्टयक्कुद.....

..... वक्कमुदयमपुर्दरिवमेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७ ॥  
मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियो वक्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ । असंयतनोळु पविमूरुं प्रकृतिगळुदयव्यु-  
च्छित्तियक्कुं १३ ॥ देशसंयतादिगुणस्थानंगळोळड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस बादाल  
प्रकृतिगळो यथाक्रमदिदमुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्र-  
प्रकृत्यादि पंचप्रकृतिगळगनुदयमक्कुं ५ । उदयंगळु नूरेळु १०७ । सासादनगुणस्थानदोळु ओदु  
गूडियनुदयंगळार ६ उदयंगळु नूराळु १०६ । मिश्रगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदयंगळु पविमूररोळु  
मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नेरडु १२ उदयंगळु नूर १०० ।

असंयतगुणस्थानदोळोळु गूडियनुदयंगळु पविमूररोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळदुदयंगळोळु  
कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नेरडु १२ । उदयंगळु नूर १०० । देशसंयतगुणस्थानदोळु पविमूर-  
गूडियनुदयंगळिप्पत्तडु २५ । उदयंगळेणभतेळु ८७ । प्रमत्तगुणस्थानदोळे दुगूडि यनुदयंगळु मूवत-  
मूररोळु आहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवतोळु ३१ । उदयंगळेणभतोळु  
८१ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळुदुगूडि यनुदयंगळु मूवत्तार ३६ । उदयंगळेप्पत्तार ७६ । अपूर्वकरण-

अनुभयवाग्योगे विकलेन्द्रियत्रये मिलितं द्वादशोत्तरशतं उदययोग्यं विकलत्रयजीवेवपि तद्योगसंभवात् ।  
तत्र मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः १ । सासादने अनंतानुबधिकतुष्कं विकलत्रयं च ७ । मिश्रे मिश्रं १ ।  
असंयते त्रयोदश १३ । देशसंयतादिषु अष्ट पंच चत्वारि षट् षडेकं द्वे षोडश द्वाचत्वारिंशत् । तथा सति  
मिथ्यादृष्टी मिश्रप्रकृत्यादिपंचकमनुदयः, उदयः सप्तोत्तरशतं १०७ । सासादने एकं संयोज्य अनुदयः षट् ६ ।  
उदयः षडुत्तरशतं १०६ । मिश्रे सप्त संयोज्य मिश्रोदयादनुदयो द्वादश १२ । उदयः शतं १०० । असंयते एकं  
संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयः द्वादश १२ । उदयः शतं १०० । देशसंयते त्रयोदश संयोज्य अनुदयः पंचविंशतिः  
२५ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्ते अष्टी संयोज्य आहारकद्वयोदयादनुदयः एकत्रिंशत् ३१ । उदयः एकाशीतिः

अनुभय वचनयोगमें तीन विकलेन्द्रिय मिलानेपर उदययोग्य एक सौ बारह क्योंकि  
विकलत्रय जीवोंमें अनुभय वचनयोग होता है । वहां मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति  
होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और विकलत्रय इस तरह व्युच्छित्ति सात ।  
मिश्रमें मिश्र एक । असंयतमें तेरह १३ । देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह,  
छह, एक, दो, सोलह, बयालीस । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र प्रकृति आदि पाँचका अनुदय । उदय एक सौ सात । व्यु. एक ।
२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय छह । उदय एक सौ छह १०६ । व्यु. सात ।
३. मिश्रमें सात मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय बारह । उदय सौ ।
४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय बारह । उदय सौ ।
५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय पच्चीस । उदय सत्तासी ।
६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्वयका उदय होनेसे अनुदय इकतीस । उदय  
इक्यासी ।

गुणस्थानदोळु नात्कुगूडियनुदयंगळु नात्वत्तु ४० । उदयंगळेष्वत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरण-  
गुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नात्वत्तारु ४६ । उदयंगळरुवत्तारु ६६ । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान-  
दोळारुगूडि यनुदयंगळरुवत्तेरडु ५२ । उदयंगळरुवत्तु ६० ॥ उपज्ञांतकषायगुणस्थानदोळोडु-  
गूडिय नुदयंगळु अत्वत्तमूरु ५३ । उदयंगळरुवत्तोभत्तु ५९ । क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनु-  
५ दयंगळरुवत्तयु ५५ । उदयंगळरुवत्तेळु ५७ ॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पक्किनारुगूडियनु-  
दयंगळेष्वत्तोदरोळु तीर्थमं कळेंदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु एवत्तु ७० । उदयंगळु  
नात्वत्तेरडु ४२ । संदृष्टिः—

## अनुभयवाद्योग प्र० ११२ ॥

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|
| व्यु | १   | ७   | १   | १३  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ४२ |
| उ    | १०७ | १०६ | १०० | १०० | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ |
| अ    | ५   | ६   | १२  | १२  | २५ | ३१  | ३६ | ४० | ४६ | ५२ | ५३ | ५५   | ७० |

८१ । अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत् ३६ । उदयः षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणे चत्सलः संयोज्य  
अनुदयः चत्वारिंशत् ४० । उदयः द्वासप्ततिः ७२ । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६ ।  
१० उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः द्वापंचाशत् ५२ उदयः षष्टिः ६० । उपज्ञांतकषाये  
एकां संयोज्य अनुदयः त्रिपंचाशत् ५३ उदयः एकांनषष्टिः ५९ । क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचपंचाशत्  
५५ । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ । सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयात् अनुदयः सप्ततिः ७० । उदयः  
द्वाचत्वारिंशत् ४२ ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय छत्तीस ३६ । उदय छियत्तर ७६ ।  
८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चालीस ४० । उदय बहत्तर ७२ ।  
९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस । उदय छियासठ ।  
१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय बावन । उदय साठ ६० ।  
११. उपज्ञान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय तिरपन । उदय उनसठ ५९ ।  
१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय पचपन ५५ । उदय सत्तावन ५७ ।  
१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थकरका उदय होनेसे अनुदय सत्तर ७० । उदय  
बयालीस ४२ ।

## अनुभय वचनयोगमें ११२

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. | स. |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|----|
| व्यु. | १   | ७   | १   | १३  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    | ४२ |
| उदय   | १०७ | १०६ | १०० | १०० | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    | ४२ |
| अनुदय | ५   | ६   | १२  | १२  | २५  | ३१   | ३६ | ४० | ४६ | ५२  | ५३ | ५५    | ७० |

औदारिके ओषः औदारिककाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिपत्तेरडप्पु १२२  
ववरोळु, आहारकद्वयमुं देवायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं तिर्यंगानुपूर्व्यमुं १  
अपर्याप्तनाममुं नरकायुष्यमुं कूडि पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळयुत्तं विरलु शेष नूरो भत्तुं प्रकृतिगळो-  
दारिककाययोगयोग्योदयप्रकृतिगळप्पु १०९ वल्लि तिर्यंगमनुष्यगतिद्वयसंबंधियोगमपुर्दारि पदिमूरुं  
गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमवर्जितचतुःप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं । ५  
सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमेकेंद्रियस्थावरविकलत्रयंगळे बो भत्तुं प्रकृतिगळगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं । ९ ॥ मिश्रनोळ मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं । १ ॥ असंयतनोळ द्वितीय-  
कषायचतुष्टयमुं दुर्भगत्रयमुंमि तु एळुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७ ॥ देशसंयतनोळ तृतीय-  
कषायचतुष्कमुं तिर्यंगायायुष्यमुं उद्योतनाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्यंगगतिधुमे बेटुं प्रकृतिगळगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं ८ ॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळु आहारकद्वयोदयमिल्लेके बोडे औदारिककाययोग- १०  
प्रवृत्तंगाहारककाययोगप्रवृत्तियिल्लप्पुर्दारिदं स्त्यानगृद्धित्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ । अप्रमत्तादि-  
गुणस्थानंगळोळु यथाक्रमविदं चउर छक्छ छच्चेव इगि दुग सोळस बादाळप्रकृतिगळगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळाहारकद्वयवर्जितानुदयंगळु मिश्रप्रकृति-  
सम्यक्त्वप्रकृतितीर्थनाममुंमि तु मूरुं प्रकृतिगळप्पुवु । ३ । उदयप्रकृतिगळु नूरारु १०६ ॥ सासादन  
गुणस्थानदोळु नालकुगूडियनुदयंगळेळु ७ उदयंगळु नूरैरडु १०२ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळो भत्तु- १५

औदारिककाययोगे द्वाविंशत्युत्तरशतमध्ये १२२ आहारकद्वयं देवायुः वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यंगानु-  
पूर्व्यं अपर्याप्तं नरकायुश्च उदययोग्यं नेति नवोत्तरशतं १०९ । गुणस्थानानि त्रयोदश । तत्र मिथ्यादृष्टौ  
अपर्याप्तवर्जितव्युच्छित्तिः चत्वारि ४ । सासादने अनंतानुबंधिकषायचतुष्कमेकेंद्रियस्थावरविकलत्रयाणि नव । मिश्रे  
मिश्रं । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं दुर्भगत्रयं च । देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कतिर्यंगायायुश्चोतनीचैर्गोत्रतिर्यंग-  
तयोष्टौ । अस्मिन् योगे आहारकयोगप्रवृत्तिर्नास्तीति प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयं । अप्रमत्तादिषु क्रमेण 'चउरछक्छ- २०  
छच्चेव इगिदुगसोलसबादाळ' एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वतीर्थकरत्वानि ३ । उदयः षडुत्तरशतं  
१०६ । सासादने चतस्रः संयोज्य अनुदयः सप्त ७ । उदयो द्व्युत्तरशतं १०२ । मिश्रे नव संयोज्य मिश्रोदया-

औदारिक काययोगमें एक सौ बाईसमें-से आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु,  
देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग,  
मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंगानुपूर्वी, अपर्याप्त, नरकायु उदययोग्य नहीं हैं अतः एक सौ नौ १०९ २५  
उदययोग्य हैं । गुणस्थान तेरह । उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें अपर्याप्तको छोड़ चारकी व्युच्छित्ति  
होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेंद्रिय, स्थावर और विकलत्रय नौकी  
व्युच्छित्ति है । मिश्रमें मिश्र । असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, दुर्भग आदि तीन ।  
देशसंयतमें प्रत्याख्यानावरण कषाय चार, तिर्यंगाया, उद्योत, तिर्यंगगति, नीचगोत्र ये आठ ।  
औदारिक काययोगमें आहारक काययोगकी प्रवृत्ति न होनेसे प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि ३०  
तीनकी व्युच्छित्ति होती है । अप्रमत्तादिमें क्रमसे चार, छह, छह, एक, दो, सोलह और  
बयालीसकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और तीर्थकर तीनका अनुदय । उदय १०६ ।

२. सासादनमें चार मिलाकर अनुदय सात । उदय एक सौ दो १०२ ।



- गूडियन्प्रकृतिगळ् पदिनाररोळ् मिश्रप्रकृतियं कलेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पदिनय्दु १५ । उदयंगळ् तो भत्त नाल्कु ९४ ॥ असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळ् पदिनाररोळ् सम्यक्त्वप्रकृतियं कलेदुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पदिनय्दु १५ । उदयंगळ् तो भत्तनाल्कु ९४ । देशसंयतगुणस्थानदोळो गूडियनुदयंगळ्पत्तेरड् २२ । उदयंगळ्पत्तेरड् ८७ । प्रमत्तगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळ् भूवत्तु ३० । उदयंगळ्पत्तो भत्तु ७९ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळ् मूरुगूडियनुदयंगळ् भूवत्तमूरु । ३३ । उदयंगळ्पत्तारु ७६ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडियनुदयंगळ् भूवत्तेळ् ३७ । उदयंगळ्पत्तेरड् ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारु गूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तमूरु ४३ । उदयंगळ्स्वत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तो भत्तु ४९ । उदयंगळ्स्वत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळ्पत्तु ५० । उदयंगळ्पत्तो भत्तु ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरड्गूडियनुदयंगळ्पत्तेरड् ५२ । उदयंगळ्पत्तेळ् ५७ ॥ सयोगिकेवलभट्टारकगुणस्थानदोळ् पदिनारुगूडियनुदयंगळ्स्वत्तेटरोळ् तीर्थ्यंमं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ्स्वत्तेळ् ६७ । उदयंगळ् नाल्वत्तेरड् ४२ । संवृष्टिः दनुदयः पंचदश १५ । उदयः चतुर्नवतिः ९४ । असंयते एका संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयः पंचदश १५ । उदयः चतुर्नवतिः ९४ । देशसंयते सप्त संयोज्य अनुदयः द्वाविंशतिः २२ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्ते अष्ट १५ संयोज्य अनुदयः त्रिंशत् ३० । उदयः एकोनाशीतिः । अप्रमत्ते तिस्रः संयोज्य अनुदयः त्रयस्त्रिंशत् ३३ । उदयः षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयः सप्तत्रिंशत् ३७ । उदयः द्वासप्ततिः ७२ । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः त्रिचत्वारिंशत् ४३ । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः एकान्नपंचाशत् ४९ । उदयः षष्टिः ६० । उपशांते एका संयोज्य अनुदयः पंचाशत् ५० । उदयः एकान्नषष्टिः ५९ । क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयो द्वापंचाशत् ५२ । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ । सयोगे षोडश २० संयोज्य तीर्थोदयादनुदयः सप्तषष्टिः ६७ । उदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२ । ३११ ।

३. मिश्रमें नौ मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह १५ । उदय चौरानवे ९४ ।  
 ४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह । उदय चौरानवे ।  
 ५. देशसंयतमें सात मिलाकर अनुदय बाईस २२ । उदय सत्तासी ८७ । व्युच्छित्ति आठ ।  
 ६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय तीस ३० । उदय उन्यासी ७९ । व्युच्छित्ति तीन ।  
 ७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय तैंतीस ३३ । उदय छियत्तर ७६ । व्युच्छित्ति चार ।  
 ८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७ । उदय बहत्तर ७२ । व्युच्छित्ति छह ।  
 ९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय तैंतालीस ४३ । उदय छियासठ । व्युच्छित्ति छह ।  
 १०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय उनचास ४९ । उदय साठ । व्युच्छित्ति एक ।  
 ११. उपशान्तमें एक मिलाकर अनुदय पचास । उदय उनसठ ५९ । व्युच्छित्ति दो ।  
 १२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बावन । उदय सत्तावन । व्युच्छित्ति सोलह ।  
 १३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थकरका उदय होनेसे अनुदय सड़सठ ६७ । उदय बयालीस ॥३११॥

औदारिककाययोगोदययोग्य प्रकृतिगळ १०९ ।

| ०     | मि  | सा  | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  |
|-------|-----|-----|----|----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|
| व्यु. | ४   | ९   | १  | ७  | ८  | ३   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ४२ |
| उ     | १०६ | १०२ | ९४ | ९४ | ८७ | ७९  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ |
| अ     | ३   | ७   | १५ | १५ | २२ | ३०  | ३३ | ३७ | ४३ | ४९ | ५० | ५२   | ६७ |

अन्तरमौदारिकमिश्रकाययोगोदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळवपरुः—

तन्मिस्सेऽ पुण्णजुदा ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं ।

परघादचऊ अयदे णादेज्जदुदुभगं ण संढित्थी ॥३१२॥

तन्मिश्रे अपूर्णयुता न मिश्रस्त्यानगृद्धित्रितयस्वरविहायोगतिद्वयं । परघातचतुष्कमसंयतेऽ- ५  
नादेयद्विकदुर्भगं न षंडस्त्रीवेदौ ॥

साणे तेसिं छेदो वामे चत्तारि चोदसा साणे ।

चउदालं वोच्छेदो अयदे जोगिमि छत्तीसं ॥३१३॥

सासादने तासां छेदो वामे चतस्रः चतुर्दश सासादने । चतुश्चत्वारिंशद्विच्छेदोऽसंयते योगिनि १०  
षट्त्रिंशत् ॥

तन्मिश्रे अपूर्णयुताः औदारिकमिश्रकाययोगिगळोऔदारिककाययोगिगळोळु पेळव नूरो भत्तु  
प्रकृतिगळोळु अपर्याप्तिनामसं कूडि नूरहतुप्रकृतिगळपुववरोळु मिश्रप्रकृतियुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं  
स्वरद्विकमुं विहायोगतिद्विकमुं परघातातपोद्योतोच्छ्वासचतुष्कमुमितु पन्नेरडुं प्रकृतिगळं कळेदु  
शेषउदयप्रकृतिगळु तो भत्ते दुवययोग्यप्रकृतिगळपुवु ९८ । गुणस्थानंगळं नात्कपुवु ४ । सामान्यो-

अथौदारिकमिश्रकाययोगस्य गाथाद्वयेनाह—

तन्मिश्रयोगे औदारिकयोगोक्तनवोत्तरशते अपर्याप्तिं निक्षिप्य मिश्रप्रकृतिः स्त्यानगृद्धित्रयं स्वरद्विकं १५  
विहायोगतिद्विकं परघातातपोद्योतोच्छ्वासाश्चेति द्वादशस्वपनीतेषु अष्टानवतिरुदययोग्याः ९८ । गुणस्थानानि

औदारिक काययोग रचना

|       | मि. | सा. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी | स. |
|-------|-----|-----|-----|----|-----|------|----|----|----|-----|----|------|----|
| व्यु. | ४   | ९   | १   | ७  | ८   | ३    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६   | ४२ |
| उदय   | १०६ | १०२ | ९४  | ९४ | ८७  | ७९   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७   | ४२ |
| अनुदय | ३   | ७   | १५  | १५ | २२  | ३०   | ३३ | ३७ | ४३ | ४९  | ५० | ५२   | ६७ |

औदारिक मिश्रकाययोगमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

औदारिक मिश्रकाययोगमें औदारिकयोगमें कहीं एक सौ नौमें अपर्याप्ति मिलाकर २०  
मिश्र प्रकृति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति,

- द्वयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळाहारकद्विकमुं २ । देवायुष्यमुं १ । वैक्रियिकषट्कमुं ६ । मनुष्य-  
तिर्य्यगानुपूर्व्यद्वितयमुं २ । नरकायुष्यमुं १ । मिश्रप्रकृतियुं १ । स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३ । स्वरद्वयमुं  
२ । विहायोगतिद्वयमुं २ । परघातचतुष्कमुं ४ । चतुर्विंशतिप्रकृतिगळं कळेदु शेषतो भत्तेदु  
प्रकृतिगळे बुदत्थं । ई प्रकृतिगळिप्पत्तनाल्कुमेककळेदुवेदोडे नरकगति देवगतिसंबंधिगळुं पर्याप्त-  
५ काल संबंधिगळुं विग्रहगत्युदययोग्यंगळुमप्पुदरिनो औदारिकमिश्रकाययोगिगळुगुदययोग्यंगळलत्तप्पु-  
दरिदं । असंयते असंयतगुणस्थानदोळनादेयायशस्कीत्तिदुर्भंगषंडस्त्रीवेदंगळे बो पंचप्रकृतिगळुगुदय-  
मिल्ला प्रकृतिगळो सासादननोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतानुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टियोळु पर्याप्तियिदं  
मेलुदयिसुगुमप्पुदरिदमातपनाममं कळेदु शेषमिथ्यात्वप्रकृतिसूक्ष्मत्रितयमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं ४ । चतुर्दश सासादने सासादननोळु अनंतानुबन्धिक्कायचतुष्कमुमेकेन्द्रिय स्थावर-  
१० विकलत्रय अनादेय अयशस्कीत्ति दुर्भंगषंडवेद स्त्रीवेदमेव चतुर्दशप्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं  
१४ । असंयतनोळु द्वितीयक्कायचतुष्टयमुं ४ । देशसंयतादक्षीणक्कायपर्यंतमादगुणस्थानवर्त्ति-  
गळौदारिकमिश्रकाययोगमिल्लप्पुदरिदमा गुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिद देशसंयतनोळुद्योतवर्जित-  
सप्तप्रकृतिगळं ७ प्रमत्तनोळु एनुमिल्लेकेदोडे आहारकद्विकमुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं कळेदुवप्पु-  
दरिदं । अप्रमत्तनोळु नाल्कु ४ । अपूर्वकरणनोळारुं ६ । अनिवृत्तिकरणन षंडस्त्रीवेदद्वयरहित-
- 
- १५ चत्वारि ४ । सामान्योदयप्रकृतिषु आहारकद्विकं देवायुर्वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्य्यगानुपूर्व्यं नरकायुः मिश्रप्रकृतिः  
स्त्यानगृद्धित्रयं स्वरद्वयं विहायोगतिद्वयं परघातचतुष्कं चेति चतुर्विंशतिः कुतो नेति चेत् नरकदेवगतिपर्याप्त-  
कालविग्रहगतिसम्बन्धिनीनामत्रानुदयात् । असंयते अनादेयायशस्कीत्तिदुर्भंगषंडस्त्रीवेदानामुदयो नहि सासादने एव  
व्युच्छित्तेः । तथासति मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सूक्ष्मत्रयं च व्युच्छित्तिः आतपस्य पर्याप्तेरप्युदयात् । सासादने  
अनंतानुबन्धिचतुष्कं एकेन्द्रियस्थावरविकलत्रयानादेयायशस्कीत्तिदुर्भंगषंडस्त्रीवेदाश्चेति चतुर्दश १४ । असंयते  
२० स्वस्य द्वितीयक्कायचतुष्कं तथा क्षीणक्कायातेषु अस्य योगस्याभावादेशसंयतस्योद्योतं विना सप्त । प्रमत्तस्य

परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास ये बारह घटानेपर उदययोग अठानवे ९८ । गुण-  
स्थान चार ।

शंका—सामान्य उदय प्रकृतियोंमें-से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियिकषट्, मनुष्यानु-  
पूर्वी, तिर्य्यचानुपूर्वी, नरकायु, मिश्रप्रकृति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, सुस्वर, दुःस्वर, दो  
२५ विहायोगति, परघातादि चार, इन चौबीसका उदय यहाँ क्यों नहीं है ?

समाधान—यहाँ नरकगति, देवगति, पर्याप्तकाल और विग्रहगति सम्बन्धी प्रकृतियों-  
का उदय नहीं होता ।

असंयतमें अनादेय, अयशस्कीत्ति, दुर्भंग, नपुंसक और स्त्रीवेदका उदय नहीं होता ।  
अतः उनकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व  
और सूक्ष्म आदि तीनकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि आतपका उदय पर्याप्ति पूर्ण होनेपर  
३० होता है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, अनादेय, अयश-  
स्कीत्ति, दुर्भंग, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद इन चौदहकी व्युच्छित्ति है । असंयतमें अपनी अप्रत्या-  
ख्यानावरण कषाय चार तथा क्षीणक्काय गुणस्थान पर्यन्त औदारिक मिश्रयोगका अभाव

चतुःप्रकृतिगळुं ४ सूक्ष्मसांपरायनोदु लोभमुं १ उपशान्तकषायन वज्रनाराचनाराचद्वयमुं २ । क्षीणकषायन पदिनारुं १६ धितसंयतनोळु चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४४ । योगिनि षट्त्रिंशत् सयोगिकेवलिभट्टारकंगे कवाटसमुद्घातदोळीदारिकमिश्रकाययोगमुं ट्पुदरिद-  
मल्लि नात्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळु स्वरद्विकमुं विहायोगतिद्विकमुं परघातमुमुच्छ्वासमुमितारुं  
प्रकृतिगळुगुदयमित्त्वपुदरिदमधं कवाटसमुद्घातयोगियोळु कळेदु शेषप्रकृतिगळु सूवत्तारक्कुदय- ५  
व्युच्छित्तियक्कुं चागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्थकरनाममुमेरडुमनु-  
दयंगळपुवु । उदयंगळु तो भत्तारु ९६ । सासादनगुणस्थानदोळु नात्कुगूडिदनुदयंगळारु ६ । उद-  
यंगळु तो भत्तेरडु ९२ ॥ असंयतगुणस्थानदोळु पदिनात्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु सम्यक्त्व-  
प्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हतो भत्तु । १९ । उदयंगळेप्पत्तो भत्तु ७९ ॥ सयो-  
गिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु नात्वत्तनात्कुगूडियनुदयंगळस्वत्त मूररोळु तीर्थकरनाममं कळेदु- १०  
दयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळस्वत्तेरडु ६२ । उदयप्रकृतिगळु सूवत्तारु ॥३६॥ संदृष्टि :

औदारिक मिश्र० योग्य ९८ ।

| ०    | मि | सा | अ  | स  |
|------|----|----|----|----|
| व्यु | ४  | १४ | ४४ | ३६ |
| उ    | ९६ | ९२ | ७९ | ३६ |
| अ    | २  | ६  | १९ | ६२ |

आहारकद्वयस्त्यानगृद्धित्रयं विना शून्यं । अप्रमत्तस्य चतस्रः । अपूर्वकरणस्य षट् । अनिवृत्तिकरणस्य पंधस्त्री-  
वेदो विना चतस्रः, सूक्ष्मसांपरायस्य लोभः उपशान्तकषायस्य वज्रनाराचनाराचद्वयं । क्षीणकषायस्य षोडश  
चेति चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । योगिनि षट्त्रिंशत् । कपाटसमुद्घातकाले स्वरद्वयविहायोगतिद्वयपरघातोच्छ्वा- १५  
सानामनुदयात् । तथासति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वं तीर्थं चानुदयः, उदयः षण्णवतिः । सासादनेऽनुदयः चतुः-  
संयोगात् षट् । उदयः द्वावतिः ९२ । असंयते चतुर्दश संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् अनुदयः एकान्विशतिः  
१९ । उदयः एकान्नाशीतिः ७९ । सयोगे अनुदये चतुःचत्वारिंशत् संयोज्य तीर्थोदयात् द्वाषष्टिः ६२ । उदयः

होनेसे देशसंयतकी उद्योतके विना सात, प्रमत्तकी आहारकद्वय और स्त्यानगृद्धि आदि  
तीनके न होनेसे शून्य, अप्रमत्तकी चार, अपूर्वकरणकी छह, अनिवृत्तिकरणकी नपुंसकवेद २०  
स्त्रीवेदके विना चार, सूक्ष्म-साम्परायका लोभ, उपशान्तकषायकी वज्रनाराच, नाराच दो,  
क्षीणकषायकी सोलह इस प्रकार चवालीसकी व्युच्छित्ति होती है । सयोगीमें छत्तीसकी  
व्युच्छित्ति होती है; क्योंकि औदारिक मिश्रयोग कपाट समुद्घातके समय होता है और उस  
समय सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, परघात और चच्छ्वासका उदय  
नहीं होता ।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थकरका अनुदय, उदय लियानवे । सासा-  
दनमें चार मिलानेसे अनुदय छह, उदय बानवे । असंयतमें चौदह मिलानेसे तथा सम्यक्त्व

अनंतरं वैक्रियिककाययोगिगळगुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपर :-

देवोघं वेगुळे न सुराणू पक्खिखेज्ज णिरयाळ ।

णिरयगदिहुंडसंठं दुग्गदि दुग्भगचउण्णोचं ॥३१४॥

देवोघो वैक्रियिके न सुरानुपूर्व्यं प्रक्षिपेत्तरकायुर्ध्वरकगतिहुंडसंठं दुर्गतिदुर्भग चतुर्धोचं ॥

- ५ देवोघो वैक्रियिके वैक्रियिककाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ । आ नूरिप्पत्तेरडोळु स्थावरद्विकमु २ । तिथ्यंगद्विकमु २ । आतपद्विकमु २ । एकैन्द्रियजातिनाममुं १ । विकलत्रयमुं ३ । साधारणशरीरमुं १ । मनुष्यायुष्यमुं १ । तिथ्यंगायुष्यमुं १ । नरकायुष्यमुं १ । नारकद्विकमुं २ । अपर्याप्तिनाममुं १ । आहारकद्विकमुं २ । तीर्थंकरनाममुं १ । षंडवेदमुं १ । दुर्भगचतुष्कमुं ४ । नीचैर्गोत्रमुं १ । स्थानगृह्णितयमुं ३ । अप्रशस्तविहायोगतियुं १ । संहनन-  
१० षट्कमुं ६ । चरमसंस्थानपंचकमुं ५ । औदारिकद्विकमुं २ । मनुष्यद्विकमु २ । मितु नात्वत्तयुं प्रकृतिगळं ४५ । कळेदुशेषमेप्पत्तेळु प्रकृतिगळु देवगतिसामान्योदययोग्यप्रकृतिगळप्पुबु ७७ । देवोघो वैक्रियिके देवगतिसामान्योदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेळरोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदेप्पत्तारोळु नरकायुष्यमुं १ नरकगतियुं १ हुंडसंस्थानमुं १ षंडवेदमुं १ अप्रशस्तविहायोगतियुं १ । दुर्भग-  
चतुष्कमुं ४ । नीचैर्गोत्रमुं-१ मितुं पत्तुं प्रकृतिगळं १० प्रक्षिपेत् कूडुवुवंतु कूडुत्तं विरलु वैक्रियिक-  
१५ काययोगोदययोग्यप्रकृतिगळेभत्तार ८६ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियोदयकुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं १ ॥ सासादननोळु अनंतानुबन्धिचतुष्टयकुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ मिश्रनोळु मिश्र-  
प्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ देवगतियुं १ नरकगतियुं १ वैक्रियिकद्विकमुं २ । नरकायुष्यमुं १ देवायुष्यमुं १ दुर्भगत्रयमु ३ मितु पविमूरं प्रकृतिगळगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं १३ । संतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियु-  
२० मितेरडुं १ प्रकृतिगळगुदयमक्कुं । उदयंगळेभत्तनात्कु ८४ । सासादनगुणस्थानदोळो दुग्गडियनु-

षट्त्रिंशत् ३६ । ३१२ । ३१३ । अथ वैक्रियिककाययोगस्याहु—

देवगतिसामान्योक्तसप्तसप्तत्यां देवानुपूर्व्यमपनोय नरकायुः नरकगतिहुंडसंस्थाने षंडवेदः अप्रशस्तविहा-  
योगतिदुर्भगचतुष्कं नीचैर्गोत्रं चेति दशसु प्रक्षिप्तेषु वैक्रियिककाययोगोदययोग्याः षडशोतिः ८६ । तत्र  
मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिमिथ्यात्वं १ सासादने अनंतानुबन्धिचतुष्कं । मिश्रे मिश्रं । असंयते द्वितीयकषायचतुष्क-

- २५ प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय उन्नीस । उदय उन्यासी ७९ । सयोगीमें अनुदयमें चवालीस  
मिलानेसे तथा तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय बासठ ६२ । उदय छत्तीस ३६ ॥३१२-३१३॥

आगे वैक्रियिक काययोगमें कहते हैं—

- ३० देवगति सामान्यमें कही गयीं सतहत्तर प्रकृतियोंमें-से देवानुपूर्वीको घटाकर नरकायु,  
नरकगति, हुण्डसंस्थान, नपुंसकवेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशः-  
कीर्ति और नीचगोत्र मिलानेपर वैक्रियिक काययोगमें उदययोग्य छियासी ८६ हैं । उसमें  
मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति है । सासादनमें अनंतानुबन्धी चार । मिश्रमें मिश्र ।  
असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार, देवगति, नरकगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग,

दयंगळु मूर ३ । उदयंगळंभत्त मूर ८३ । मिश्रगुणस्थानदोळु नात्कुगूडियनुदयंगळेरौळु मिश्र-  
प्रकृतियं कळेरुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६ । उदयंगळंभत्त ८० ॥ असंयतगुणस्थान-  
दोळो कुगूडियनुदयंगळेरौळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेरुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६ ।  
उदयंगळंभत्त ८० ।

वैक्रियिककाययोग्य ८६—

| ०    | मि | सा | मि | अ  |
|------|----|----|----|----|
| म्यु | १  | ४  | १  | १३ |
| उ    | ८४ | ८३ | ८० | ८० |
| अ    | २  | ३  | ६  | ६  |

अन्तरं वैक्रियिकमिश्रकाययोग्योदयप्रकृतिगळं द्व्यर्धगाथासूत्रविं पेल्लपरः—

वेगुव्वं वा मिस्से ण मिस्स-परघाद-सरविहायदुगं ।

साणे ण हुंडसंठं दुग्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥३१५॥

वैक्रियिकयन्मिश्रे न मिश्र परघातस्वरविहायोगतिद्विकं । सासावने न हुंडसंठं दुग्भगाना-  
देयाऽयशः ॥

णिरयगदि आउणीचं ते खित्तयदेऽवणिज्ज थीवेदं ।

छट्टगुणं वाहारे ण थीणतिय-संठथीवेदं ॥३१६॥

नरकगतिरायुर्जीवं ताः क्षिप्त्वाऽसंयतेऽपनयेत् । स्त्रीवेवं षष्ठगुणवाहारे न स्थानगृद्धित्रयं  
षष्ठस्त्रीवेदं ॥

देवनरकगतिवैक्रियिकद्विकदेवनारकायुर्दुर्भगत्रयाणि १३ । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः २ ।  
उदयश्चतुरशीतिः ८४ । सासादने अनुदये एकसंयोगात्त्रयं ३ उदयस्थ्यशीतिः ८३ । मिश्रे चत्वार्यनुदये संयोज्य  
सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयात् षट् ६ । उदयः अशीतिः ८० । असंयते अनुदये एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात्  
षट् । उदयः—अशीतिः ८० ॥३१४॥ अथ वैक्रियिकमिश्रयोगस्य द्व्यर्धगाथासूत्रेण आह—

देवायु, नरकायु, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तेरह १३ की व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय । उदय चौरासी ८४ ।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन । उदय तेरासी ८३ ।

३. मिश्रमें चार मिलाकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अनुदय होनेसे अनुदय छह ।  
उदय अस्सी ।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय छह । उदय  
अस्सी ८० ॥३१४॥

डेढ़ गाथासे वैक्रियिक मिश्रयोगमें कहते हैं—

वैक्रियिकवन्मिश्रे वैक्रियिककाययोगदोळें तंतें वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळमेणभत्तारप्पुव-  
रोळु मिश्रप्रकृतियुं १। परघातद्विकमुं २। स्वरद्विकमुं २। विहायोगतिद्विकमुं २। मितेळूं  
प्रकृतिगळु न नास्ति यिल्लदु कारणमागियवं कळेयुत्तिरलु येप्पत्तो भत् प्रकृतिगळुदययोग्यंगळपु  
७९ वल्लि मिथ्यादृष्टिगळु मिथ्यात्वप्रकृतियोदे व्युच्छित्तियक्कुं १॥ सासादने सासादननोळु  
५ हुंडसंस्थानमुं षंडवेदमुं दुर्भगत्रयमुं ३ नरकगतियुं १ नरकायुष्यमुं १ नीचैर्गोत्रमुं १। मिते दुं  
प्रकृतिगळुदयमितलेके दोडे :—

णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य येवं नियममुंटप्पुदरिनी वैक्रियिकमिश्रकाययोगि-  
नारकं सासादननिल्लप्पुदरिदमवनातनोळनुदयंगळं माडि यसंयतनोळु कूडुवुदु मतमसंयतनुदय-  
प्रकृतिगळोळु स्त्रीवेदमुं कळेदु सासादननोळुदयव्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु सासादननोळनंतानुबंधि  
१० चतुष्टयमुं स्त्रीवेदमुं मितय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५। असंयतनोळु द्वितीयकषायव-  
तुष्कमुं ४। वैक्रियिकद्विकमुं २। नरकगतियुं १ नरकायुष्यमुं १। देवगतियुं १ देवायुष्यमुं १।  
दुर्भगत्रयमुं ३। मितु पदिमूहं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३। मंतागुत्तं विरलु मिथ्या-  
दृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतिगळुदयमक्कुं १। उदयप्रकृतिगळेप्पत्ते दुं ७८। सासादनगुण-  
स्थानदोळो दुग्गुडियनुदयंगळेरडु २। मत्तंमुं पेळद हुंडसंस्थानाद्यष्टप्रकृतिगळुनुदयदोळु कळेदनु-  
१५ दयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळ पत्तु १०। उदयंगळरुवत्तो भत् ६९॥ असंयतगुणस्थानदो-

वैक्रियिकयोगवत्तन्मिश्रयोगे इति षडशोक्त्यां मिश्रं परघातद्विकं स्वरद्विकं विहायोगतिद्विकं चेत्येकोना-  
शीतिरुदययोग्याः ७९। तत्र मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादने नरकगमनाभावात् हुंडसंस्थानषंडवेद-  
दुर्भगत्रयनरकगतिनरकायुर्नीचैर्गोत्राण्यनुदयं कृत्वा असंयते निक्षिप्य असंयतोदयाच्च स्त्रीवेदमनंतानुबंधिचतुष्कं  
च व्युच्छित्तिं कुर्यात् ५। असंयते द्वितीयकषायवतुष्कं वैक्रियिकद्विकं देवनारकगती तदायुषी दुर्भगत्रयं चेति  
२० त्रयोदश। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः सम्यक्त्वप्रकृतिः १ उदयः अष्टसप्ततिः ७८। सासादनेऽनुदयः सम्यक्त्व-  
प्रकृती मिथ्यात्वं प्रागुक्तहुंडसंस्थानाद्यष्टकं च मिलित्वा दश १०। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९। असंयते

वैक्रियिक मिश्रयोगमें वैक्रियिक योगकी तरह छियासी प्रकृतियां हैं किन्तु उसमें-से  
मिश्र, परघात, उच्छ्वास, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति ये सात न होनेसे  
उदययोग्य अन्यासी ७९ हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादन  
२५ मरकर नरकमें नहीं जाता इसलिए सासादनमें हुण्ड संस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, दुःस्वर,  
अनादेय, नरकगति, नरकायु और नीचगोत्रका उदय नहीं होता। इसलिए इन्हें असंयतमें  
रखना। वहीं इनका उदय होता है। अतः सासादनमें स्त्रीवेद और अनन्तानुबन्धी चार  
मिलकर पाँचकी व्युच्छित्ति होती है। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, वैक्रियिक  
शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, नरकगति, देवायु, नरकायु, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय इन  
३० तेरहकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय सम्यक्त्व प्रकृति एक। उदय अठहत्तर।

२. सासादनमें सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व और पूर्वमें कही हुण्डसंस्थान आदि आठ  
मिलकर अनुदय दस। उदय उनहत्तर ६९।

ळ्युगुडियनुदयंगळ पविनध्वरोळु सस्यक्त्वप्रकृतिपुमं हुंडसंस्थानाद्यष्टप्रकृतिगळुमंतु ओभत्तं प्रकृतिगळं कळबुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६ । उदयंगळेप्पत्त मूरु ७३ । संदृष्टि :

वै० मि० योग्य ७९

| ०    | मि | सा | अ  |
|------|----|----|----|
| व्यु | १  | ५  | १३ |
| उ    | ७८ | ६९ | ७३ |
| अ    | १  | १० | ६  |

षष्ठगुणवदाहारे आहारककाययोगदोलुदययोग्यप्रकृतिगळु प्रमत्तगुणस्थानदोलु पेळवेणभत्तो वे प्रकृतिगळपुववरोळु स्त्यानगृद्धित्रितपुं ३ षंडवेदुं १ स्त्रीवेदमुं १ ।

दुग्गदिदुस्सरसंहदि ओरालदु चरिमपंचसंठाणं ।

ते तन्मिस्से सुस्सर परघाददुसत्थगदिहोणा ॥३१७॥

दुग्गतिदुस्वरसंहननौदारिकद्विक चरम पंचसंस्थानं । ताः तन्मिश्रे सुस्वरपरघातद्विकशस्त-  
गतिहोनाः ॥

अप्रशस्तविहायोगतिपुं १ । दुःस्वरनाममुं १ । संहननषट्कमुं ६ औदारिकद्विकमुं २ । चरम- १०  
पंचसंस्थानंगळु ५ मितु विंशतिप्रकृतिगळारहारककाययोगिप्रमत्तसंयतनोलुदयायोग्यंगळपुवद्विमव  
कळदोडे शेषमखवत्तो दु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळपुवु ६१ । तास्तन्मिश्रे आहारकमिश्रकाययोगि-  
प्रमत्तसंयतनोळा प्रकृतिगळखवत्तो देयपुववरोळु सुस्वरमुं १ परघातोच्छ्वासद्वितयमुं २ । प्रशस्त-  
विहायोगतिपु १ । मनिनु नालकुं प्रकृतिगळं कळदोडे शेषप्रकृतिगळवत्तेळुदययोग्यंगळपुवु ५७ ॥

अनुदयः पंच मिलित्वा सस्यक्त्वप्रकृतिहुंडसंस्थानाद्यष्टकोदयात् षट् ६ । उदयस्त्रिसप्ततिः ७३ । आहारक- १५  
काययोगे षष्ठगुणस्थानोक्तैकाशीत्यां ८१ स्त्यानगृद्धित्रयं षंडवेदः स्त्रीवेदः नास्ति ॥ ३१५-३१६ ॥

अप्रशस्तविहायोगतिः दुःस्वरं संहननषट्कमौदारिकद्विकं चरमपंचस्थानानीति विंशतिर्नेत्युदययोग्याः  
एकान्तषष्टिः ६१ । तन्मिश्रयोगे ता एवैकषष्टिः सुस्वरपरघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगित्यूनाः सप्तपंचाशद्-

३. असंयतमें मिथ्यात्व और सासादनमें व्युच्छित्ति पाँच मिलकर अनुदय छह । क्योंकि  
यहाँ सस्यक्त्व प्रकृति और हुण्ड संस्थान आदि आठका उदय है । अतः उदय तिहत्तर । २०

आहारक काययोगमें छठे गुणस्थानमें उदययोग्य इक्यासी ८१ मेंसे स्त्यानगृद्धि  
आदि तीन, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर, संहनन छह, औदारिक  
शरीर, औदारिक अंगोपांग, अन्तके पाँच संस्थान ये बीस उदय योग्य नहीं हैं । अतः उदय-  
योग्य इकसठ । आहारक मिश्रयोगमें इकसठमेंसे सुस्वर, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त  
विहायोगतिका उदय न होनेसे उदययोग्य सत्तावन है ॥३१५-३१६॥ २५



अनंतरं कार्मणकाययोगोदययोग्यप्रकृतिगळं नाथाद्वयदिदं वेळदपरु :—

ओधं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारालदुग मिससं ।

उवघादपणविगुव्वदु थीणतिसंठाण-संहदी णत्थि ॥३१८॥

ओधः कार्मणे स्वरगतिप्रत्येकाहारौदारिक द्विकमिश्रं उपघातपंचवैक्रियिकद्विकस्त्यानगृद्धि-

५ त्रितयसंस्थानसंहननं नास्ति ॥

कार्मणे ओधः कार्मणकाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडप्पुवधरोळु सुस्वर-  
दुस्वरद्विकमुं २ । प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्विकमुं २ । प्रत्येकसाधारणशरीरद्विकमुं २ । आहारका-  
हारकांगोपांगद्विकमुं २ । औदारिकौदारिकांगोपांगद्विकमुं २ । मिश्रप्रकृतियुं १ । उपघातपरघाता-  
तपोद्योतोच्छ्वासपंचकमुं ५ । वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगद्विकमुं २ । स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३ । संस्थान-  
१० षट्कमुं ६ । संहननषट्कमुं ६ । मितु मूवत्तमूरं प्रकृतिगळं ३३ कळंदोडे शेषप्रकृतिगळेभत्तोभत्तु-  
दययोग्यगळप्पुवु ८९ वल्लि । अनादिसंसारदोळु विग्रहगतिगळमविग्रहगतिगळं मिथ्यादृष्टि-  
गुणस्थानमादियाणि सयोगकेवलिगुणस्थानमवसानमाणि पदिमूरं गुणस्थानगळोळु कार्मणशरीरवके  
निरंतरोदयमुंटागुत्तं विरलु विग्रहगतौ कर्मयोगः एदितु सूत्रारंभकेदोडे सिद्धे सत्यारंभो नियमाय  
एंदु विग्रहगतौ कर्मयोग एव नान्यो योगः एदितोयवधारणमरियत्पडुगुमदु कारणमाणि पूर्यंभव-  
१५ शरीरत्यागदिदमुत्तरभवविग्रहग्रहणात्थमाणि गतिविग्रहगतिगळपुदरिदमा विग्रहगतिगळु वत्तिमुवरु  
मिथ्यादृष्टि सासादनासंयतसम्यग्दृष्टिगळे ब मूरं गुणस्थानवत्तिगळागळे वेळकुमा विग्रहगतिगळु

वन्ति । ५७ ॥३१७॥ अथ कार्मणयोगस्य नाथाद्वयेनाह—

कार्मणयोगे उदयप्रकृतयः द्वाविंशत्युत्तरशते सुस्वरदुस्वरे प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती प्रत्येकसाधारणे  
आहारकतदंगोपांगे औदारिकतदंगोपांगे मिश्रप्रकृतिः उपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासाः वैक्रियिकतदंगोपांगे  
२० स्त्यानगृद्धित्रयं संस्थानषट्कं संहननषट्कं च नेत्येकान्नवन्तिः ८९ ।

ननु अनादिसंसारे विग्रहाविग्रहगत्योमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतगुणस्थानेषु कार्मणस्य निरंतरोदये सति  
'विग्रहगतौ कर्मयोगः' इति सूत्रारंभः कथं ? सिद्धे सत्यारम्भमाणो विधिनियमायेति विग्रहगतौ कर्मयोग एव

आगे दो गाथाओंसे कार्मण काययोगमें कहते हैं—

कार्मण काययोगमें सामान्य उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त  
२५ और अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, औदारिक  
शरीर, औदारिक अंगोपांग, मिश्रप्रकृति, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास,  
वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, संस्थान छह, संहनन छह इन  
तीसका उदय न होनेसे उदययोग्य जवासी ८९ ।

शंका—अनादि संसारमें विग्रहगति हो या अविग्रह गति हो उनमें मिथ्यादृष्टि आदि  
सयोगकेवली पर्यन्त सब गुणस्थानोंमें कार्मणका निरन्तर उदय रहता है । तब तत्त्वार्थ सूत्र-  
३० में विग्रहगतिमें कर्मयोग होता है ऐसा कथन क्यों किया ?

समाधान—'सिद्ध होते हुए भी जो विधि आरम्भ की जाती है वह नियमके लिए होती

वर्तिसद सयोगकेवलि भट्टारकगुणस्थानमिल्लि ये'तक्कुमे'दडे 'कर्मयोगो विग्रहगतावेव' एंबी नियममिल्लप्पुदरिदमा विग्रहगतियोळु वर्तिसद प्रतरलोकपूरणत्रिसमयसमुद्घातसयोगकेवलि- भट्टारकगुणस्थानदोळं कार्मणकाययोगमेयक्कुमप्पुदरिदमी कार्मणकाययोगदोळु नाल्कुं गुण- स्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १। सूक्ष्मनाममुं १। पथ्याप्रनाममुमितु मूरं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३।

सासादननोळु पेळ्दपरः—

साणे श्रीवेदछिदी गिरयदुणिरयाउगं ण तियदसयं।

इमिवण्णं पणवीसं मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो ॥३१९॥

सासादने स्त्रीवेदच्छेदः नरकद्विकनरकायुषं त्रिकं दशकमेकं पंचाशत्पंचविंशतिस्मिथ्याविषु चतुर्षु विच्छेदः ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोळनंतानुबंधिचतुष्टयमु ४ मेकेंद्रियजातिनाममुं १। स्थावरनाममुं १ विकलत्रयमुं ३ स्त्रीवेदमुमितु पत्तुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १०।

असंयतनोळु वैक्रियिकद्विकवर्जितमाणि पदिनय्दुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १५। मेळे देशसंयताविभीणकषायावसानमाद गुणस्थानवर्तितगळोळु केवलकार्मणकाययोगमिल्लप्पु- दरिदमा देशसंयतनोळुद्योतरहितप्रकृतिसमकमुं ७। आहारकद्वितयमुं २। स्थानगृद्धित्रयमु ३ मी योगदोळु कलेदुवप्पुदरिदं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु शून्यमक्कुं १। मप्रमत्तगुणस्थानदोळंतिम- १५ सहननत्रयवर्जितसम्यक्त्वप्रकृतियो'दु १ अपूर्वकरणन षण्णोकायंगळं ६ अनिवृत्तिकरणन स्त्रीवेदं

नान्यो योगः, इत्यवधारणार्थः। तेन पूर्वभवशरीरं त्यक्त्वोत्तरभवग्रहणार्थं गच्छताऽपि तत्र मिथ्यादृष्टिसासाद- नासंयतगुणस्थानानि स्युः। तर्हि सयोगगुणस्थाने कथं कर्मयोगः? विग्रहगतावेवेत्यनियमात् प्रतरलोकपूरण- त्रिसमयेऽपि तत्संभवात् ॥ ३१८ ॥

तन्मिथ्यादृष्ट्यादिवचतुर्गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिः—। मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सूक्ष्ममपर्याप्तं चेति त्रयं। २० सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं स्त्रीवेदश्चेति दश। असंयते वैक्रियिकद्विकं विना है' इस नियमके अनुसार यह कथन 'विग्रहगतिमें कार्मणयोग ही होता है, अन्य योग नहीं होता' यह अवधारण करनेके लिए किया है।

शंका—पूर्वभवंका शरीर त्यागकर आगामी भव धारण करनेके लिए जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। विग्रहगतिमें मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थान होते २५ हैं। तब सयोगकेवली गुणस्थानमें कार्मणयोग कैसे है?

समाधान—विग्रहगतिमें ही कार्मणयोग होता है ऐसा नियम नहीं किया है अतः प्रतर और लोक पूरण समुद्घातके तीन समयोंमें कार्मण योग होता है ॥३१८॥

उसमें मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त इन तीनकी होती है। सासादनमें अनन्तानु- ३० बन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, स्त्रीवेद दसकी होती है। असंयतमें वैक्रियिकके

- सासादननोऽप्युच्छित्तिर्यादुदपुर्दारिद्रं तद्विजितप्रकृतिपञ्चकमुं ५ । सूक्ष्मसांपरायन लोभमोदुं १ । उपशान्तकषायन यरेडुं वज्रनाराचनाराचसंहननंगळु २ कळेदुवपुर्दारिद्रमल्लि शून्यमक्कुं । क्षीण-  
कषायन पदिनारु १६ मितु गूडियसंयतसम्यग्दृष्टिओळु एकपञ्चाशत्प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं  
५१ । सयोगिकेवल्लिभट्टारकगुणस्थानदोळु नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळु वज्रर्षभनाराचसंहननमुं १  
५ स्वरद्विकमुं २ । विहायोगतिद्विकमुं २ । औदारिकद्विकमुं २ । संस्थानषट्कमुं ६ । उपघात-  
परघातोच्छ्वासत्रितयमुं ३ । प्रत्येकशरीरमुं १ मितु पदिनेळुं १७ प्रकृतिगळं कळेदु शेषपञ्च-  
विंशतिप्रकृतिगळुगुदय व्युच्छित्तियक्कुं २५ । अंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्व-  
प्रकृतियुं तीर्थमुमेरडुमनुदयंगळु २ उदयंगळेऽभत्तेलु ८७ । सासादनगुणस्थानदोळु मूरु गूडियनु-  
दयंगळुदपुववरोळु गिरयदुगिरयाउगं गत्थि एंदु नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुमनितु मूरुं ३  
१० प्रकृतिगळनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदु अनुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेदु ८ । उदयंगळे-  
ऽभत्तोदु ८१ । असंयतगुणस्थानदोळु पत्तु गूडियनुदयंगळु पदिनेटरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं  
नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुमनितु नालकुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळे पवि-  
नालकु १४ । उदयंगळेऽपत्तदु ७५ । सयोगिकेवल्लिभट्टारकगुणस्थानदोळेकपञ्चाशत्प्रकृतिगळकूडि-

- स्वस्य पंचदश । पुनः क्षीणकषायांतातां केवलतद्योगाभावादुद्योतं विना सप्त । आहारकृद्विकस्थानगृद्वित्रयं  
१५ विना शून्यं अतिमसंहननत्रयं विना सम्यक्त्वप्रकृतिः षण्णोकषायाः स्त्रीवेदस्य सासादने छेदात् पञ्च, लोभः  
वज्रनाराचनाराचाभावात् शून्यं षोडश च मिलित्वा एकपञ्चाशत् । सयोगे वज्रर्षभनाराचसंहननस्वरद्विकविहा-  
योगतिद्विकौदारिकद्विकसंस्थानषट्कोपघातपरघातोच्छ्वासप्रत्येकशरीराणि राशो नेति पञ्चविंशतिः । तथा सति  
मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वतीर्थकृत्वे अनुदयः २ । उदयः सप्ताशीतिः । सासादने अनुदयः त्रयं 'गिरयदु गिरयाउगं  
गत्थीति त्रयं च मिलित्वाष्टौ । उदयः एकाशीतिः । असंयते दश मिलित्वा सम्यक्त्वनरकद्विकनरकायुष्यदयाच्चतु-  
२० विना अरन्ती शेष पन्द्रह । पुनः क्षीणकषाय पर्यन्त कर्मण काययोग नहीं होता इससे ऊपरके  
गुणस्थानोंकी व्युच्छित्ति यहाँ ही करनी चाहिए । सो देशविरतकी उद्योत विना सात, प्रसक्तकी  
आहारकद्विक और स्थानगृद्वि आदि तीनके न होनेसे शून्य, अप्रसक्तकी तीन संहननके विना  
केवल एक सम्यक्त्व प्रकृति, अपूर्वकरणकी छह नोकषाय, अनिवृत्तिकरणकी पाँच क्योंकि  
२५ स्त्रीवेदकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही जाती है, सूक्ष्मसाम्परायका लोभ, उपशान्त मोह सम्बन्धी  
वज्रनाराच और नाराचका अभाव होनेसे शून्य, क्षीणकषायकी सोलह इस तरह सब मिलकर  
असंयतमें इक्यावनकी व्युच्छित्ति होती है । सयोगीमें बयालीसमें-से वज्रर्षभनाराच संहनन,  
सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह  
संस्थान, उपघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीरके न होनेसे पच्चीसकी व्युच्छित्ति होती है ।  
ऐसा होनेपर—

- ३० १. मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थकर दोका अनुदय । उदय सप्तासी । व्यु. तीन ।  
२. सासादनमें नरकगतिद्विक और नरकायुका उदय न होनेसे पाँचमें तीन मिलाकर  
आठका अनुदय । उदय इक्यासी ।  
३. असंयतमें दस मिलाकर सम्यक्त्व, नरकद्विक और नरकायुका उदय होनेसे अनुदय  
चौदह । उदय पचहत्तर ।

यनुदयंगळवत्तय्दरनोळ् तीर्थंमं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळवत्तनाल्कु ६४ । उदयंगळिप्पत्तय्कु २५ । संदृष्टिः—

कर्मणं० काय यो० योग्य ८९

| ०    | मि | सा | अ  | स  |
|------|----|----|----|----|
| व्यु | ३  | १० | ५१ | २५ |
| उ    | ८७ | ८१ | ७५ | २५ |
| अ    | २  | ८  | १४ | ६४ |

अनंतरं वेदमार्गणं पेळवपरुः—

मूलोषं पुंवेदे थावरचउणिरयजुगलतिस्थयरं ।

इगिविगलं थीसंढं तावं निरयाउगं णत्थि ॥३२०॥

मूलोषः पुंवेदे स्थावरचतुर्भरकयुगळ तीर्थंकरं । एकविकलं स्त्रीषंढमातपो नरकायुर्नास्ति ॥

पुंवेदोळ् मूलोषं नूरिप्पत्तेरडरोळ् १२२ स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणचतुष्कमुं ४ । नरकद्विकमुं २ तीर्थरनाममुं १ । एकेन्द्रियजातियुं १ । विकलत्रयमुं ३ । स्त्रीवेदमुं १ षंढवेदमुं १ मातपनाममुं १ नरकायुष्यमुं पदिनय्कु १५ । प्रकृतिगळुदयमिल्लव कारणमवं कळेदु शेष्णूरेळ् १० प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु १०७ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळ् मिथ्यात्वप्रकृतिगोदक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं

दर्श १४ । उदयः पंचसप्ततिः । सयोगे-अनुदयः एकपंचाशतं मिलित्वा तीर्थोदयाच्चतुःषष्टिः ६४ । उदयः पंचविशतिः ॥ ३१९ ॥ अथ वेदमार्गणायामाह—

पुंवेदे मूलोषः द्वाविंशत्युत्तरशतं । तत्र स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि नरकद्विकं तीर्थंकरस्वमेकेन्द्रियं विकलत्रयं स्त्रीषंढवेदो आतपो नरकायुर्नेति सप्तोत्तरशतमुदययोग्यं १०७ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं १५

१३ सयोगीमें इक्यावन मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौसठ । उदय पन्चीस ॥३१९॥

औदारिक मिश्रकाययोग ९८

| मि. | सा. | अ. | स. |
|-----|-----|----|----|
| ४   | १४  | ४४ | ३६ |
| ९६  | ९२  | ७९ | ३६ |
| २   | ६   | १९ | ६२ |

वैक्रियिक मिश्र ७९

| मि. | सा. | अ. |
|-----|-----|----|
| १   | ५   | १३ |
| ७८  | ६९  | ७३ |
| १   | १०  | ६  |

कर्मणकाययोग ८९

| मि. | सा. | अ. | स. |
|-----|-----|----|----|
| ३   | १०  | ५१ | २५ |
| ८७  | ८१  | ७५ | २५ |
| २   | ८   | १४ | ६४ |

अथ वेदमार्गणमें कहते हैं—

पुरुषवेदमें गुणस्थानकी तरह एक सौ बाईसमें-से स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, २० नरकद्विक, तीर्थंकर, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, आतप और नरकायु इन

- १ ॥ सासादननोऽनंतानुबन्धिकषायचतुष्ककुदयव्युच्छित्तिवक्तुं ४ ॥ मिश्रनोऽऽ मिश्रप्रकृतिव्युदय-  
व्युच्छित्तिवक्तुं १ । असंयतनोऽऽ द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ वैक्रियिकद्विकमुं २ । सुरद्विकमुं २  
सुरायुष्यमुं १ । मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ । तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ । दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तित्रितयमुं ३  
मितु पदिनात्कुं प्रकृतिगुणदयव्युच्छित्तिवक्तुं १४ ॥ देशसंयतं मोदलागियपूर्वकरणगुणस्थान-  
५ पथ्यंतमड ८ पंच य ५ च ७२ ४ छक्क ६ प्रकृतिगुणदयव्युच्छित्तिवक्तु । अनिवृत्तिकरण सवेद-  
प्रथमभागेयोऽऽ पुंवेदमुं १ । संज्वलनक्रोधमुं १ । संज्वलनमानमुं १ । संज्वलनमायेयुं १ मितु  
नाल्कुं ४ । सूक्ष्मसांपरायन लोभमुं १ । उपशांतकषायन वज्रनाराचसंहननद्वितयमुं २ । क्षीण-  
कषायन पदिनाहं १६ । सयोगायोगिकेवलभट्टारकद्वितयतोत्थरहित नालवतोऽऽ प्रकृतिगुण-  
कडियनिवृत्तिकरणनोऽऽदयव्युच्छित्तिगुणरुवत्तनाल्कु ६४ । एकं बोडे पुंवेदोदयमेलिलवरमुं दलिलवरमा  
१० मार्गर्णोयपुर्दारिदं मेलण प्रकृतिगुणल्लमनिवृत्तिकरणनोऽऽ व्युच्छित्तिगुणपुवपुर्दारिदं । मिथ्या-  
दृष्टिगुणस्थानदोऽऽ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुमितु नालकुं प्रकृतिगुणानुदय-  
मक्तुं ४ । उदयंगळु नूर मूर १०३ । सासादनगुणस्थानदोऽऽ दुगूडियनुदयंगळु ५ । उदय-  
प्रकृतिगुण नूररडु १०२ । मिश्रगुणस्थानदोऽऽ नालकुगूडियनुदयंगळो भत्तरोऽऽ मिश्रप्रकृतियुं  
कळेदुदयंगळो कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नोदु ११ । उदयंगळु तो भत्तार ९६ । असंययगुणस्थान-  
१५ दोऽऽ दुगूडियनुदयंगळु पन्नरडोऽऽ सम्यक्त्वप्रकृतियुमं १ तिर्य्यगमनुष्यदेवानुपूर्व्यंगळु मूरम-

- व्युच्छित्तिः १ । सासादने अनंतानुबन्धिकषायचतुष्कं ४ । मिश्रे मिश्रं । असंयतं द्वितीयकषायचतुष्कं वैक्रियिकद्विकं  
सुरद्विकं सुरायुः मनुष्यतिर्य्यगानुपूर्व्यं दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तयस्वेति चतुर्दश १४ । देशसंयतादिचतुषु क्रमेणाष्टौ  
पंच चत्वारि षट् । अनिवृत्तिकरणसवेदप्रथमभागे पुंवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः सूक्ष्मलोभः वज्रनाराचनाराचे  
षोडश तीर्थकरत्वं विनैकचत्वारिंशच्चेति चतुःषष्टिः ६४ । मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयानुदयः ४  
२० उदयः व्युत्तरशतं । १०३ । सासादने एकां संयोज्य अनुदयः पंच ५ । उदयो द्व्युत्तरशतं १०२ । मिश्रेऽनुदयः  
चतुष्कमानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकादश ११ । उदयः षण्णवतिः । ९६ । असंयतेऽनुदयः एकं

- पन्द्रहका उदय न होनेसे उदय योग्य एक सौ सात हैं । उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी  
व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार । मिश्रमें मिश्र । असंयतमें अप्रत्या-  
ख्यानावरण कषाय चार वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, मनुष्यानु-  
२५ पूर्वी, तिर्य्यचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति ये चौदह १४ । देशसंयत आदि चार  
गुणस्थानोंमें क्रमसे आठ, पाँच, चार और छह । अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेद भागमें  
पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध मान माया, सूक्ष्म लोभ, वज्रनाराच नाराच संहनन, क्षीणकषाय  
सम्बन्धी सोलह और तीर्थकरके बिना केवली सम्बन्धी इकतालीस इन चौंसठकी व्युच्छित्ति  
होती है क्योंकि अनिवृत्तिकरणके सवेद भागसे आगे वेदका उदय न होनेसे वेदमें नौ  
३० ही गुणस्थान होते हैं । अतः—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विक चार ४ का अनुदय । उदय १०३ ।
२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय पाँच । उदय एक सौ दो १०२ ।
३. मिश्रमें अनुदय चार और तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे ग्यारह ११ । उदय छियानवे ९६ ।

नंतु नाल्कु प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ, कूडिदोडनुदयंगळेंदु ८ । उदयंगळ, तो भो भत्त ९९ ॥  
देशसंयतगुणस्थानदोळ, पदिनाल्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२ । उदयंगळेभत्तदु ८५ । प्रमत्त-  
संयतगुणस्थानदोळेंदुगूडियनुदयंगळ, सूवत्तरोळारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळ, कूडुत्तं विरलनुदय-  
गळिप्पत्तेरडु २८ । उदयंगळेप्पत्तो भत्त ७९ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळदुगूडियनुदयंगळ, सूवत्तमूर  
३३ । उदयंगळेप्पत्तनाल्कु ७४ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळ, नाल्कुगूडियनुदयंगळ, सूवत्तेळु ३७ ।  
उदयंगळेप्पत्त ७० ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळ, प्रथमसवेदभागोळारुगूडियनुदयंगळ, नाल्वत्त-  
मूर ४३ । उदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४ ॥ संहृष्टिः—

पुंवेदयोग्यं १०७ ।

| ०    | मि  | सा  | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  |
|------|-----|-----|----|----|----|-----|----|----|----|
| व्यु | १   | ४   | १  | १४ | ८  | ५   | ४  | ६  | ६४ |
| उ    | १०३ | १०२ | ९६ | ९९ | ८५ | ७९  | ७४ | ७० | ६४ |
| अ    | ४   | ५   | ११ | ८  | २२ | २८  | ३३ | ३७ | ४३ |

अनंतरं स्त्रीवेदोळदययोग्यं गळं षंडवेदक सहितमागि पेळदपरः—

मिलित्वा सम्यक्त्वतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वोदयादष्टो । उदयो नवनवतिः । देशसंयते चतुर्दश संयोज्यानुदयो १०  
द्वाविंशतिः २२ । उदयः पंचाशतिः । ८५ । प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्वयोदयानुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदय  
एकोनाशतिः ७९ । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रयस्त्रिंशत् ३३ । उदयः चतुःसप्ततिः । ७४ । अपूर्वकरणे  
चतस्रः संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७ । उदयः सप्ततिः ७० । अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे षट् संयोज्यानुदयः  
त्रिचत्वारिंशत् ४३ । उदयः चतुःषष्टिः । ६४ । ३२० । अथ स्त्रीषंडवेदयाराह—

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व, तिर्यचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानु- १५  
पूर्वीका उदय होनेसे आठ ८ । उदय निन्यानवे ।

५. देशसंयतमें चौदह मिलाकर अनुदय बाईस २२ । उदय पिचासी ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय अठाईस २८ ।  
उदय उनासी ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तैंतीस ३३ । उदय चौहत्तर ७४ ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७ । उदय सत्तर ७० ।

९. अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें छह मिलाकर अनुदय तैंतालीस । उदय  
चौसठ ६४ ॥ ३२० ॥

पुरुषवेद रचना १०७

| मि. | सा. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. |
|-----|-----|-----|----|-----|------|----|----|----|
| १   | ४   | १   | १४ | ८   | ५    | ४  | ६  | ६४ |
| १०३ | १०२ | ९६  | ९९ | ८५  | ७९   | ७४ | ७० | ६४ |
| ४   | ५   | ११  | ८  | २२  | २८   | ३३ | ३७ | ४३ |

इत्थीवेदेवि तद्वा हारदु-पुरिसूणमिथिसंजुत्तं ।

ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुंसुराउतिथयरं ॥३२१॥

- स्त्रीवेदेवि तथा आहारकद्विक पुरुषोत्तम स्त्रीवेदसंयुतं । ओघः षडे न हि सुराहारद्वय स्त्री-  
पुरुषसुरायस्तीर्थकरं ॥ स्त्रीवेदेवि तथा स्त्रीवेददोळं पुरुषवेददोळं पेळद नूरेळं प्रकृतिगळपुवव-  
५ रोळाहारकद्विकं पुवेदमंतु मूरं प्रकृतिगळं कळेदु स्त्रीवेदमं कूडुत्तं विरलुदययोग्यप्रकृतिगळ  
नूरधु १०५ । मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमोदे व्युच्छित्तियक्कुं १ । सासादननोळनंतानुबंधि  
कषायचतुष्टयमुं ४ देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्व्यत्रयमुं ३ मितेळु प्रकृतिगळदयव्युच्छित्तियक्कुं ।  
मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ । असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं ४ देवगतिमुं  
१ वैक्रियिकद्विकमुं २ । देवायुष्यमुं १ दुर्भंगानादेयायशस्कीर्तित्रयमुं ३ मितु पन्नोदुं प्रकृतिगळगु-  
१० दयव्युच्छित्तियक्कुं ११ । देशसंयतनोळु तन्न गुणस्थानदोळपेळदेदुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं  
८ ॥ प्रमत्तसंयतनोळाहारकद्विकमिलेत्केदोडी स्त्रीवेदोदयसंक्लिष्टरोळाहारकद्विपुट्टदग्गुदरिदं ।  
स्त्यानगृद्धित्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ । अप्रमत्तनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमुं ३ मंतु  
नाल्कुं ४ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ । अपूर्वकरणनोळु षण्णोकषायंगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं  
६ । अनिवृत्तिकरणनोळरुवत्तनाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६४ । मंतागुत्तं विरलु मिथ्या-  
१५ दृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमंवेरडुं प्रकृतिगळगुदयमक्कुं २ । उदयंगळु नूर  
मूर १०३ । सासादनगुणस्थानदोळोदुगुडियनुदयंगळु मूर ३ । उदयंगळु नूरेरडु १०२ । मिश्र-  
गुणस्थानदोळेळुगुडियनुदयंगळु हतरोळु मिश्रप्रकृतियुं कळेदुदयंगळोलु कूडुत्तं विरलनुदयंगळो-

- स्त्रीवेदेवि तथा पुंवेदोक्तं सप्तोत्तरशतं । तत्र आहारकद्विकं पुवेदं चापनोय स्त्रीवेदे निक्षिप्ते  
उदययोग्याः पंचोत्तरशतं १०५ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः । सासादनेनंतानुबंधिचतुष्टकं देव-  
२० मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्याणि चेति सप्त ७ । मिश्रे मिश्रं १ । असंयते द्वितीयकषायाः देवगतिः वैक्रियिकद्वयं देवायुः  
दुर्भंगानादेयायशस्कीर्तयश्चेत्येकादश ११ । देशसंयते स्वकीयाष्टौ ८ । प्रमत्ते संक्लिष्टत्वादाहारकद्वर्चनुद्गमात्  
स्त्यानगृद्धित्रयमेव ३ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं च । ४ । अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६ । अनिवृत्ति-  
करणे चतुःषष्टिः ६४ । तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः २ । उदयस्युत्तरशतं १०३ । सासादने

आगे स्त्रीवेद और नपुंसक वेदमें कहते हैं—

- २५ स्त्रीवेदमें भी पुरुषवेदकी तरह एक सौ सातमें-से आहारकद्विक और पुरुषवेदको  
घटाकर स्त्रीवेद मिलानेपर उदय योग्य एक सौ पाँच हैं । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी  
व्युच्छित्ति है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार तथा देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी  
मिलकर सात । मिश्रमें मिश्र । असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, वैक्रियिकद्विक, देवायु,  
दुर्भंग, अनादेय, अयशःकीर्ति ये ग्यारह । देशसंयतमें अपनी आठ । प्रमत्तमें संक्लेश परिणाम  
३० होनेसे स्त्रीवेदके साथ आहारक द्विका उदय न होनेसे स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी ही  
व्युच्छित्ति होती है । अप्रमत्तमें सम्यक्त्व और अन्तके तीन संहनन चार । अपूर्वकरणमें छह  
नाकषाय । अनिवृत्तिकरणमें चौंसठ ६४ । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व दोका अनुदय । उदय एक सौ तीन ।

भत्तु ९ । उदयंगळु तोभत्तारु ९६ । असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु सम्यक्त्व-  
प्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळो भत्तु ९ । उदयंगळु तो भत्तारु ९६ ॥ देशसंयत-  
गुणस्थानदोळु पन्नो दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तु २० । उदयंगळेणभत्तु ८५ । प्रमत्तसंयतगुणस्थान-  
दोळो दु गूडियनुदयंगळिप्पत्तु २८ । उदयंगळेप्पत्तेळु ७७ अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयं-  
गळु मूवत्तो दु ३१ । उदयंगळेप्पत्तनाल्लु ७४ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्लुगूडियनुदयं-  
गळु मूवत्तु ३५ । उदयंगळप्पत्तु ७० । अनिवृत्तिकरणन सवेदभागोयोळारुगूडियनुदयंगळु  
नाल्लुत्तो दु ४१ । उदयंगळरुवत्त नाल्लु ६४ । संदृष्टिः—

स्त्रीवेदयोग्यं १०५

| ०    | मि  | सा  | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  |
|------|-----|-----|----|----|----|-----|----|----|----|
| व्यु | १   | ७   | १  | ११ | ८  | ३   | ४  | ६  | ६४ |
| उ    | १०३ | १०२ | ९६ | ९६ | ८५ | ७७  | ७४ | ७० | ६४ |
| अ    | २   | ३   | ९  | ९  | २० | २८  | ३१ | ३५ | ४१ |

ओघः षंढे षंढवेदोळु सामान्योदयंगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ सुरद्विकमुं २ आहारक-  
द्विकमुं २ । स्त्रीवेदमुं १ । पुंवेदमुं १ । देवायुष्यमुं १ । तीर्थकरनाममुमिते दु ८ प्रकृतिगळं कळेदु १०  
नूर पविनाल्लु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ११४ ववरोळु मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १

एकं संयोज्य अनुदयः त्रयं ३ । उदयो द्व्युत्तरशतं १०२ । मिश्रेऽनुदयः सप्त संयोज्य मिश्रोदयान्नव ९ ।  
उदयः षण्णवतिः ९६ । असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयान्नव । उदयः षण्णवतिः । देशसंयते एकादश  
संयोज्य अनुदयो विंशतिः २० । उदयः पंचाशतिः ८५ । प्रमत्तेऽष्टसंयोज्यानुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदयः  
सप्तसप्ततिः ७७ । अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयः एकत्रिंशत् ३१ । उदयश्चतुःसप्ततिः ७४ । अपूर्वकरणे चतुष्कं १५  
संयोज्य अनुदयः पंचत्रिंशत् ३५ । उदयः सप्ततिः ७० । अनिवृत्तिकरणसवेदभागे षट् संयोज्य अनुदय  
एकचत्वारिंशत् ४१ । उदयश्चतुःषष्टिः ।

ओघः षंढे—तत्र सुरद्विकमाहारकद्विकं स्त्रीवेदः पुंवेदो देवायुस्तोर्थकरत्वं च तेति चतुर्दशोत्तरशतमुदय-

२. सासादनमें अनुदय दोमें एक मिलाकर तीन । उदय एक सौ दो ।
३. मिश्रमें सात मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय नौ । उदय छियानवे ९६ । २०
४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय नौ । उदय छियानवे । व्युच्छित्ति ग्यारह ।
५. देशसंयतमें ग्यारह मिलाकर अनुदय बीस । उदय पिचासी । व्यु. ८ ।
६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय अठाईस । उदय सतहत्तर ७७ । व्यु. ३ ।
७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय इकतीस ३१ । उदय चौहत्तर ७४ । व्यु. ४ । २५
८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय पैतीस ३५ । उदय सत्तर ७० । व्यु. ६ ।
९. अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें छह मिलाकर अनुदय इकतालीस । उदय ६४ ।  
नपुंसकवेदमें गुणस्थानवत् एक सौ बाईसमेंसे देवगति, देवानुपूर्वी, आहारकद्विक,



- आतपमुं १ सूक्ष्मत्रयमुं ३ मित्यदुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । सासादनोनलनंतानुबंधि-  
चतुष्कमुं ४ । एकेंद्रियजातिपुं १ । स्थावरमुं १ । विकलत्रयमुं ३ । मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ । तिर्यगानु-  
पूर्व्यमुं १ मितु पन्नो दु प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ११ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियो वे व्युच्छित्ति-  
यक्कु १ । असंयतनोळु द्वितीयकषायमुं नाल्कु ४ वैक्रियिकद्विकमुं २ नरकद्विकमुं २ । नरकायुष्यमुं  
५ १ । दुर्भगत्रयमुं ३ मितु पन्नोरडुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२ । देशसंयतगुणस्थानदोळु  
तन्न गुणस्थानदेदुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८ ॥ प्रमत्तसंयतनोळु स्त्यानगृद्धित्रयवकुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अप्रमत्तनोळु तन्न गुणस्थानद सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमुमितु नाल्कु  
प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ अपूर्वकरणनोळु षण्णोकषायंगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥  
अनिवृत्तिकरणन षंडवेदभागेयोळु अरुवत्त नाल्कुप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६४ । मितागुत्तं  
१० विरलु मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळु मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयमनुदयमक्कुं २ । उदयंगळु नूर हन्नोरडु  
११२ । सासादनगुणस्थानदोळु अय्दु गूडियनुदयंगळोळु मत्तं नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु  
कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोळु ८ उदयंगळु नूरारु १०६ । मिश्रगुणस्थानदोळु  
पन्नो दुगूडियनुदयंगळु हत्तो भत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पवि-  
नेदु १८ । उदयंगळु तो भत्तारु ९६ ॥ असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु हत्तो भत्तरोळु  
१५ सम्यक्त्वप्रकृतियुं नरकानुपूर्व्यमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पविनेलु १७ । उदयं-

- योग्याः ११४ । तन्न मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमातपः सूक्ष्मत्रयं चेति व्युच्छित्तिः पंच । सासादने अनंतानुबंधि-  
चतुष्कमेकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्यं चेत्येकादश ११ । मिश्रे मिश्रं १ । असंयते द्वितीयकषाय-  
चतुष्कं, वैक्रियिकद्विकं नरकगतिः तदानुपूर्व्यं नरकायुर्दुर्भगत्रयं चेति द्वादश १२ । देशसंयते स्वकीयाष्टौ ८ ।  
प्रमत्ते स्त्यानगृद्धत्रयं ३ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतिः अंतिमसंहननत्रयं च ४ । अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६ ।  
२० अनिवृत्तिकरणे षंडवेदभागे चतुःषष्टिः । ६४ । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वद्वयमनुदयः उदयो  
द्वादशोत्तरशतं । ११२ । सासादनेऽनुदयः पंच नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वाष्टौ ८ । उदयः षडुत्तरशतं १०६ ।  
मिश्रेऽनुदय एकादश मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयादष्टादश १८ । उदयः षण्णवतिः ९६ । असंयते एकां संयोज्य

- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, देवायु और तीर्थकर न होनेसे उदययोग्य एक सौ चौदह ११४ । वहाँ  
मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, आतप और सूक्ष्मादि तीन मिलकर पाँचकी व्युच्छित्ति है ।  
२५ सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेंद्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यगानुपूर्वी  
ग्यारह । मिश्रमें मिश्र । असंयतमें दूसरी कषाय चार, वैक्रियिकद्विक, नरकगति, नरकानुपूर्वी,  
नरकायु, दुर्भग आदि तीन सब बारह १२ । देशसंयतमें आठ । प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि  
तीन । अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृति, अन्तिम तीन संहनन सब चार । अपूर्वकरणमें छह नो-  
कषाय । अनिवृत्तिकरणके नपुंसक वेद भागमें चौंसठ ६४ । ऐसा होनेपर—  
३० १. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय । उदय एक सौ बारह ।  
२. सासादनमें पाँच तथा नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ । उदय एक सौ छह ।  
३. मिश्रमें अनुदय ग्यारह मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अठारह । उदय ९६ ।

गळु तो भत्तेळु ९७ । देशसंयत गुणस्थानदोळु पन्नोरडुगूडियनुदयंगळिप्पत्तो भत्तु २९ । उदयंगळे-  
भत्तु ८५ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु दुगूडियनुदयंगळु सूवत्तेळु ३७ । उदयंगळेप्पत्तेळु ७७ ॥  
अप्रमत्तगुणस्थानदोळु गूडियनुदयंगळु नाल्वत्तु ४० । उदयंगळु येप्पत्तनाळु ७४ । अपूर्वकरण-  
गुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तनाळु ४४ । उदयंगळेप्पत्तु ७० । अनिवृत्तिकरण-  
गुणस्थानदोळारु गूडियनुदयंगळवत्तु ५० । उदयंगळवत्त नाळु ६४ । संदृष्टिः—

षड्योग्यं ११४

| ०    | मि  | सा  | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  |
|------|-----|-----|----|----|----|-----|----|----|----|
| व्यु | ५   | ११  | १  | १२ | ८  | ३   | ४  | ६  | ६४ |
| उ    | ११२ | १०६ | ९६ | ९७ | ८५ | ७७  | ७४ | ७० | ६४ |
| अ    | २   | ८   | १८ | १७ | २९ | ३७  | ४० | ४४ | ५० |

अनंतरं कषायमार्गणयोऽनुदययोग्यप्रकृतिगलं पेळवपरुः—

सम्यक्त्वप्रकृतिनरकानुपूर्वोद्दयानुदयः सप्तदश १७ । उदयः सप्तनवतिः । ९७ । देशसंयते द्वादश संयोज्या-  
नुदयः एकान्तत्रिंशत् २९ । उदयः पंचासीतिः ८५ । प्रमत्तसंयतेऽष्ट संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७ । उदयः  
सप्तसप्ततिः ७७ । अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदयश्चतुःसप्ततिः ७४ । अपूर्वकरणे  
चतस्रः संयोज्य अनुदयश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । उदयः सप्ततिः ७० । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः  
पंचाशत् ५० उदयश्चतुःषष्टिः । ६४ । ३२१ । अथ कषायमार्गणायामाह—

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और नरकानुपूर्विका उदय होनेसे अनुदय सत्तरह । उदय सत्तानवे । व्यु. १२ ।

५. देशसंयतमें बारह मिलाकर अनुदय उनतीस २९ । उदय पिचासी ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय सैंतीस । उदय सत्तहत्तर ७७ । व्यु. ३ ।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय चालीस ४० । उदय चौहत्तर ७४ । व्यु. ४ ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चवालीस ४४ । उदय सत्तर ७० । व्यु. ६ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पचास ५० । उदय चौंसठ ॥३२१॥

स्त्रीवेद रचना १०५

| मि. | सा. | मि  | अ. | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. |
|-----|-----|-----|----|-----|------|----|----|----|
| १   | ७   | १११ | ८  | ३   | ४    | ६  | ६४ |    |
| १०३ | १०२ | ९६  | ९६ | ८५  | ७७   | ७४ | ७० | ६४ |
| २   | ३   | ९   | २० | २८  | ३१   | ३५ | ४१ |    |

नपुंसकवेद रचना ११४

| मि. | सा. | मि  | अ. | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. |
|-----|-----|-----|----|-----|------|----|----|----|
| ५   | ११  | ११२ | ८  | ३   | ४    | ६  | ६४ |    |
| ११२ | १०६ | ९६  | ९७ | ८५  | ७७   | ७४ | ७० | ६४ |
| २   | ८   | १८  | १७ | २९  | ३७   | ४० | ४४ | ५० |

कषाय मार्गणामें कहते हैं—

तित्थयरमाणमायालोह चउक्कूणमोधमिह कोहे ।

अणरहिदे णिगिविगलं तावअण कोहाणुथावरचउक्कं ॥३२२॥

तीर्थकरमाणमायालोभचतुष्कोन ओध इह कोधे । अनंतानुबंधि रहितेनैकविकलत्रयातपा-  
नंतानुबंधिक्रोधानुपूर्व्यस्थावर चतुष्कं ॥

५ इह ई क्रोधकषायमार्गणयोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ यितर  
कषायद्वादशप्रकृतिगळु तीर्थकरनाममु १ मितु पविमूरं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरोभत्तु १०९  
प्रकृतिगळुदयययोग्यंगळप्पुवु १०९ ।

अळिळ मिथ्यादृष्टियोळु तन्न गुणस्थानद पंचप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । सासादन-  
नोळनंतानुबंधि क्रोधमुं १ एकेंद्रियजातियुं १ स्थावरनाभमुं १ विकलत्रयमु ३ मितारुं प्रकृतिगळु-  
१० दयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ । असंयतनोळप्रत्याख्यान-  
क्रोधमुं १ वैक्रियिकषट्कमुं ६ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ तिर्यगानुपूर्व्यमुं १ । सुरायुष्यमुं १ नारका-  
युष्यमुं १ दुर्भगत्रयमुं ३ मितु पदिनाळकुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४ । देशसंयतनोळु  
प्रत्याख्यानक्रोधमुं १ तिर्यगायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्गोत्रमुं २ तिर्यग्गतिमुं २ मितय्दुं प्रकृति-  
गळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । प्रमत्तसंयतनोळाहारकद्वयमुं २ स्त्यानगृद्धित्रयमु ३ संतय्दुं प्रकृति-  
१५ गळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । अप्रमत्तनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं २ अंतिमसंहननत्रितयमुं ३ मितु  
नाळकुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ अपूर्वकरणनोळु नोकषायषट्ककुदयव्युच्छित्तियक्कुं  
६ ॥ अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागवेदत्रयमुं ३ । द्वितीयक्रोधकषायभोगेयोळु संज्वलनक्रोधमुं १ मंतु  
नाळकुं ४ सूक्ष्मसांपरायन लोभं कळेदुदप्पुर्वरिवमळिळ शून्यमुं उपशांतकषायन वज्रनाराचनाराच-

इह क्रोधकषायमार्गणायां सामान्योदयः इतरद्वादशकषायतीर्थन्यूनः, तेन नवोत्तरशतं भवति । तत्र  
२० मिथ्यादृष्टौ स्वकीया पंच व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंतानुबंधिक्रोधः एकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं चेति षट् ६ ।  
मिश्रे मिश्रं १ । असंयतेऽप्रत्याख्यानक्रोधो वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्यं सुरनारकायुषो दुर्भगत्रयं चेति  
चतुर्दश १४ । देशसंयते प्रत्याख्यानक्रोधः तिर्यगायुद्योतो नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेति पंच ५ । प्रमत्तसंयते  
आहारकद्वयं स्त्यानगृद्धित्रयं चेति पंच ५ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं चेति चतुष्कं ४ । अपूर्वकरणे  
नोकषायषट्कं ६ । अनिवृत्तिकरणे प्रथमभागस्य वेदत्रयं । द्वितीयभागस्य संज्वलनक्रोधः । सूक्ष्मसांपरायस्य

२५ - क्रोध कषाय मार्गणामें सामान्य उदय एक सौ बार्हसमें-से अन्य बारह कषाय और  
तीर्थकर घटानेपर एक सौ नौ १०९ है । उसमें मिथ्यादृष्टीमें अपनी पाँचकी व्युच्छित्ति है ।  
सासादनमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, एकेन्द्रिय, स्थावर और विकलत्रय छह । मिश्रमें मिश्र ।  
असंयतमें अप्रत्याख्यान क्रोध, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक,  
गनुष्यानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी, देवायु, नरकायु, दुर्भग आदि तीन चौदह १४ । देशसंयतमें  
३० प्रत्याख्यान क्रोध, तिर्यचायु, उद्योत, नीचगोत्र और तिर्यचगति पाँच । प्रमत्तसंयतमें  
आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, पाँच । अप्रमत्तमें सम्यक्त्व, अन्तिम तीनसंहनन सब ४ ।

संहननद्वयमुं २। क्षीणकषायन पदिनारुं १६ सयोगायोगकेऽल्लिगळ तीर्थरहितमप्य नास्वत्तो'दु  
प्रकृतिगळ ४१ अंतरवत्तमूहं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तिवक्कं ६३। अंतागुत्तं विरळु मिथ्यादृष्टि-  
गुणस्थानदोलु मिश्रप्रकृतियुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १। आहारकद्विकमुं २ मितु नाळकुं प्रकृतिगळनु-  
दयंगळप्पुवु ४। उदयंगळु नूरय्दु १०५। सासादनगुणस्थानदोलय्दु गूडियनुदयंगळो भत्तरोळु  
नरकानुपूर्व्यमनुदयदोळकळेवनुदयंगळोळु कूडिदोडनुदयंगळु पत्तु १०। उदयंगळु तो भत्तो भत्तु ५  
९९। मिश्रगुणस्थानदोलारुगूडियनुदयंगळु पदिनाररोळु मिश्रप्रकृतियुं कलेदुदयंगळोळु कूडि  
मत्तमुदयंगळोळु शेवानुपूर्व्यत्रितयमं कलेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिने'दु १८।  
उदयंगळु तो भत्तो'दु ९१। असंयतगुणस्थानदोळो'दुगूडियनुदयंगळु पत्तो भत्तरोळु सम्यक्त्व-  
प्रकृतियुमानुपूर्व्यचतुष्कमंतय्दु प्रकृतिगळं गलेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाळकु  
१४। उदयंगळु तो भत्तय्दु ९५॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनाळकुगूडियनुदयंगळिप्पत्ते'दु २८। १०  
उदयंगळेभत्तो'दु ८१॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तमूररोळु आहारक-  
द्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तो'दु ३१। उदयंगळु एप्पत्ते'दु ७८॥ अप्रमत्त-  
गुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु ३६ मूवत्तारु। उदयंळेप्पत्त मूरु ७३॥ अपूर्वकरणगुणस्थान-

लोभापनयनात् शून्यं। उपशांतकषायस्य वज्रनाराचनाराचो। क्षीणकषायस्य षोडश। सयोगस्य तीर्थं  
विनैकचत्वारिंशच्चेति त्रिषष्टिः ६३। तथासति-मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकान्यनुदयः। उदयः १५  
पंचोत्तरशतं १०५। सासादने पंच नरकानुपूर्व्यं चैत्यनुदयो दश १०। उदयः एकान्नशतं ९९। मिश्रे अनुदयः  
षट् शेवानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रादयादष्टादश १८ उदय एकनवतिः। असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वानु-  
पूर्व्यचतुष्कोदयाच्चतुर्दश, उदयः पंचनवतिः ९५। देशसंयते चतुःसंयोज्यानुदयेऽष्टाविंशतिः। उदयः एकाशीतिः।  
८१। प्रमत्तसंयते पंच संयोज्याहारकद्विकोदयादेकविंशत् ३१। उदयोऽष्टाससतिः। ७८। अप्रमत्ते पंच

अपूर्वकरणमें नोकषाय छह। अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें तीन वेद। दूसरे भागमें संज्वलन २०  
क्रोध। सूक्ष्म साम्परायके लोभको मूलमें न रखनेसे शून्य, उपशान्त कषायके वज्रनाराच  
नाराच, क्षीणकषायकी सोलह, सयोगीकी तीर्थकरके बिना इकतालीस ये सब ६३।  
ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय। उदय एक सौ पाँच।

२. सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय दस। उदय निन्यानवे। २५  
व्युच्छित्ति छह।

३. मिश्रमें छह और तीन आनुपूर्वी मिलाकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय  
अठारह १८। उदय इकानवे ९१।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय  
चौदह। उदय पिचानवे ९५। व्यु. १४।

५. देशसंयतमें चौदह मिलाकर अनुदय अठाईस। उदय इक्यासी ८१।

६. प्रमत्त संयतमें पाँच मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय इकतीस ३१।  
उदय अठहत्तर ७८।

दोळ, नाळकुण्डियनुदयंगळ, नालवत्तु ४० । उदयंगळरुवत्तो भत्तु ६९ ॥ अनिवृत्तिकरणन द्वितीय-  
क्रोधकषायभागेयोळ, आरुगूडियनुदयंगळ नालवत्तारु ४६ । उदयंगळरुवत्तमूरु ६३ । अनंतानु-  
बन्धिरहिते अनंतानुबन्धिरहितनोळु एकेंद्रियजातिनाममुं १ विकलत्रयमु ३ मातपनाममु १ अनंता-  
नुबन्धिक्रोधमु १ मानुपूर्व्यचतुष्कमु ४ स्थावरसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणचतुष्कमु ४ मितु पदिनाळकुं  
५ प्रकृतिगळं मिथ्यादृष्टियुदयप्रकृतिगळ, नूरय्दरोळ, १०५ कळेदु शेष तो भत्तो दु प्रकृतिगळनंतानु-  
बन्धिरहितमिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळपुवु ९१ । संदृष्टि :—

### क्रोधमानमायेगळगे योग्य १०९

| ०        | मि  | सा | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  |
|----------|-----|----|----|----|----|-----|----|----|----|
| व्युच्छि | ५   | ६  | १  | १४ | ५  | ५   | ४  | ६  | ६३ |
| उद       | १०५ | ९९ | ९१ | ९५ | ८१ | ७८  | ७३ | ६९ | ६३ |
| अनु      | ४   | १० | १८ | १४ | २८ | ३१  | ३६ | ४० | ४६ |

### लो ४ यो १०९

| ०    | मि  | सा | मि | अ  | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | स  |
|------|-----|----|----|----|----|-----|----|----|----|----|
| व्यु | ५   | ६  | १  | १४ | ५  | ५   | ४  | ६  | ३  | ६० |
| उ    | १०५ | ९९ | ९१ | ९५ | ८१ | ७८  | ७३ | ६९ | ६३ | ६० |
| अ    | ४   | १० | १८ | १४ | २८ | ३१  | ३६ | ४० | ४६ | ४९ |

संयोज्यानुदयः षट्त्रिंशत् ३६ । उदयः त्रिसप्ततिः ७३ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० ।  
१० उदय एकान्नसप्ततिः ६९ । अनिवृत्तिकरणे द्वितीयक्रोधकषायभागे षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६ ।  
उदयस्त्रिषष्टिः । अनंतानुबन्धिरहिते तु एकेंद्रियविकलत्रयात्पानंतानुबन्धिक्रोधानुपूर्व्यचतुष्कस्थावरसूक्ष्मापर्याप्त-

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय छत्तीस ३६ । उदय तिहत्तर ७३ ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चालीस ४० । उदय उनहत्तर ६९ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें दूसरे क्रोधकषाय भागमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस ।

१५ उदय त्रेसठ ।

अनन्तानुबन्धिरहित क्रोधमें मिथ्यादृष्टिमें उदययोग्य एक सौ पाँचमें-से एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, अनन्तानुबन्धी क्रोध, आनुपूर्वी चार, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये चौदह नहीं होतीं । अतः उदय प्रकृतियाँ इक्यानवे ९१ हैं ।

विशेषार्थ—जो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आता है

एवं माणादितिये मदिसुद अण्णाणगे दु सगुणोघं ।

वेभंगेवि ण ताविगिविगलिंदी थावराणुचऊ ॥३२३॥

एवं मानावित्रये मतिश्रुताज्ञानके तु स्वगुणोघः । विभंगेपि नातापैकविकलेंद्रियस्थावरानु-  
पूष्यं चत्वारि ॥

एवं मानावित्रये क्रोधचतुष्कदोळेंतंते मानचतुष्कदोळं मायाचतुष्कदोळमितरकषाय- ५  
द्वादशप्रकृतिगळं तीर्थमुमंतु पदिमूरं प्रकृतिगळं कळेदु नूरो भत्तु नूरो भत्तु गळप्पुवु । १०९ ।  
१०९ । अबु कारणमागि क्रोधदोळे रचने पेळत्पट्टुदु । लोभमक्कुमंते यितरकषायद्वादशप्रकृति-  
गळं तीर्थमुं कळेदु योग्यंगळु नूरो भत्तु प्रकृतिगळप्पुवु १०९ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानावसान-  
मागि पत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु । मतिश्रुताज्ञानयोस्तु मत्ते कुमतिकुश्रुतज्ञानंगळोळु सामान्यदिदं  
पेळदु नूरिप्पत्तेरडरोळाहारकद्विकमुं २ तीर्थमुं १ मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळु २ मंतदुं कळेदु शेष- १०  
प्रकृतिगळुदययोग्यंगळु नूर हदिनेळु ११७ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतपनाममुं १  
सूक्ष्मत्रयमुं ३ नरकानुपूष्यंमुं १ मंतरां प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । सासादननोळु तन्न

साधारणानि मिथ्यादृष्ट्युदयपंचोत्तरशते नेत्येकैकनवतिरुदयप्रकृतयो भवन्ति ॥३२२॥

एवं क्रोधचतुष्कदन्मानचतुष्के मायाचतुष्के च द्वादश, इतरकषायतीर्थं नेति नवोत्तरशतं तेन तद्रचना २५  
क्रोधरचनेव ज्ञातव्या । लोभेऽपि तथैव तत्त्रयोदशप्रकृत्यभावात् उदययोग्यं नवोत्तरशतं । सूक्ष्मसांपरायांतानि  
गुणस्थानानि । १०९ । कुमतिकुश्रुतज्ञानयोः पुनः द्वाविंशत्युत्तरशते आहारकद्वयतीर्थमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतयो नेति

उसके कुछ काल तक अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता । उसके उस कालमें इक्यानवे प्रकृतियोंका उदय होता है ॥३२२॥

क्रोधकषाय रचना १०९

| मि. | सा. | मि. | अ. | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. |
|-----|-----|-----|----|-----|------|----|----|----|
| ५   | ६   | १   | १४ | ५   | ५    | ४  | ६  | ६३ |
| १०५ | ९९  | ९१  | ९५ | ८१  | ७८   | ७३ | ६९ | ६३ |
| ४   | १०  | १८  | १४ | २८  | ३१   | ३६ | ४० | ४६ |

क्रोधचतुष्ककी तरह मानचतुष्क और माया चतुष्कमें भी अन्य बारह कषाय और २०  
तीर्थकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं । अतः उनकी रचना क्रोध कषायकी रचनाकी  
तरह ही जानना । लोभमें भी तेरह प्रकृतियोंका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं ।  
किन्तु गुणस्थान सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त होते हैं ।

कुमति और कुश्रुतज्ञानमें एक सौ बाईसमें-से आहारकद्विक, तीर्थकर, मिश्र और

१.

| मि |
|----|
| १  |
| ९१ |
| ०  |

गुणस्थानदोभत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिवक्तुं ९ । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयंगळिल्लं ।  
उदयंगळु नूर हदिनेळु ११७ । सासादनगुणस्थानदोळारुगुडियनुदयंगळारेयप्पुवु ६ । उदयंगळु  
नूर हन्नोडु १११ । संदृष्टि :—

कु० कु० योग्य ११७

| ०    | मि  | सा  |
|------|-----|-----|
| व्यु | ६   | ९   |
| उ    | ११७ | १११ |
| अ    | ०   | ६   |

विभंगे वि विभंगज्ञानदोळं आतपनाममुं १ । एकेंद्रियजातिनाममुं १ । विकलेंद्रियत्रयमुं  
५ ३ । स्थावर सूक्ष्मापर्याप्त साधारणचतुष्कमुं ४ आनुपूर्व्यचतुष्कमुं ४ मंतु पविमूरप्रकृतिगळुसं पेळ्व  
कुमतिकुश्रुतज्ञानयोग्यंगळु नूर हदिनेळारोळु ११७ कळोदोडे नूर नाल्कुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु  
१०४ ॥ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमोदे व्युच्छित्तिवक्तुं १ । सासादननोळनंतानुबधिकषाय-  
चतुष्टयवक्तुदयव्युच्छित्तिवक्तुं ४ । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयमित्तल । उदयंगळु नूर नाल्कु  
१०४ ॥ सासादनगुणस्थानदोळोदनुदयमक्तुं १ । उदयंगळु नूर मूर १०३ ॥ संदृष्टि :—

१० सप्तदशोत्तरशतमुदययोग्यं । ११७ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वातपसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानुपूर्व्यचतुष्कानीति चतुस्तर-  
शतमुदययोग्यं । १०४ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंतानुबधिकचतुष्कं ४ । मिथ्यादृष्टा-  
वनुदयो नास्ति । उदयः चतुस्तरशतं १०४ । सासादने एकमनुदयः १ । उदयस्युत्तरशतं १०३ ॥ ३२३ ॥

विभंगेऽप्येवमेव तथापि नातपैकेंद्रियविकलत्रयस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानुपूर्व्यचतुष्कानीति चतुस्तर-  
शतमुदययोग्यं । १०४ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंतानुबधिकचतुष्कं ४ । मिथ्यादृष्टा-  
१५ वनुदयो नास्ति । उदयः चतुस्तरशतं १०४ । सासादने एकमनुदयः १ । उदयस्युत्तरशतं १०३ ॥ ३२३ ॥

सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ सतरह ११७ हैं । उनमें मिथ्यादृष्टिमें  
मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मादि तीन और नरकानुपूर्वी इन छहकी व्युच्छित्ति होती है ।  
सासादनमें अपनी नौकी व्युच्छित्ति होती है ।

१. मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनुदय नहीं है । उदय एक सौ सतरह ११७ ।

२० २. सासादनमें अनुदय छह । उदय एक सौ ग्यारह १११ ।

विभंगमें भी ऐसा ही जानना । किन्तु आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म,  
अपर्याप्त, साधारण और चार आनुपूर्वीका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ चार १०४ ।

मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी और सासादनमें अनन्तानुबन्धी चारकी व्युच्छित्ति होती  
है । मिथ्यादृष्टिमें अनुदय नहीं है । उदय एक सौ चार १०४ ।

२५ सासादनमें एकका अनुदय । उदय एक सौ तीन १०३ ॥ ३२३ ॥

विभंगयोग्य १०४

| ०।०  | मि  | सा  |
|------|-----|-----|
| व्यु | १   | ४   |
| उ    | १०४ | १०३ |
| अ    | ०   | १   |

संज्ञाणपंचयादी दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं ।

मणपज्जवपरिहारे णवरि ण संदित्थिहारदुगं ॥३२४॥

संज्ञानपंचकादिदर्शनमार्गणापदपर्यंतं स्वगुणौघः । मनःपर्ययपरिहारयोः नवीनं न षंडस्या-  
हारद्विकं ॥

संम्यग्ज्ञानपंचकादि दर्शनमार्गणास्थानपर्यंतं स्वगुणौघमेयक्कुमदेते'दोडे मतिश्रुतावधि- ५  
ज्ञानत्रितयंगळोळसंयताविक्षीणकषायगुणस्थानपर्यंतं नवगुणस्थानंगळप्पुवत्ति मिथ्यादृष्टि-  
गुणस्थानदुदयव्युच्छित्तिगळट्ठुं ५ सासादनननवकमुं ९ । मिश्रन मिश्रप्रकृतियुं १ । तीर्थकरनामभु  
१ मितु पदिनारं प्रकृतिगळं कळेव शेषनूरारु प्रकृतिगळदययोग्यंगळप्पुवु । १०६ । अल्लि असंयत-  
नोळु तन्न गुणस्थानदोळु पेळ्ळद्वितीयकषायादिपदिनेळुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तिवक्कु १७ ।  
देशसंयतादिगळोळु अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तिवप्पु- १०

संज्ञानपंचकाद् दर्शनमार्गणापर्यंतं स्वगुणौघ एव तद्यथा—मतिज्ञानादित्रये गुणस्थानानि असंयतादीनि  
नव । उदयप्रकृतयः मिथ्यादृष्ट्यादित्रयस्य व्युच्छित्तिः पंचदश तीर्थकरत्वं च नेति षडुत्तरशतं १०६ । तत्रा-  
संयते स्वस्य सप्तदश व्युच्छित्तिः १७ । तत्र देशसंयतादिषु 'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोळस' तथासति

कुमति-कुश्रुत रचना

| मि. | सा. |
|-----|-----|
| ६   | ९   |
| ११७ | १११ |
| ०   | ६   |

विभंग रचना

| मि. | सा. |
|-----|-----|
| १   | ४   |
| १०४ | १०३ |
| ०   | १   |

पाँच सम्यग्ज्ञानसे लेकर दर्शनमार्गणा पर्यन्त अपने गुणस्थानवत् जानना । जो इस  
प्रकार है—

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञानमें गुणस्थान असंयतसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त नौ ।  
उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति ५ + ९ + १ =  
पन्द्रह और तीर्थकरका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ छह १०६ ।

वहाँ असंयतमें अपनी सतरहकी व्युच्छित्ति होती है । देशसंयत आदिमें आठ, पाँच,  
चार, छह, छह, एक, दो, सोलहकी व्युच्छित्ति है ।



वंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विककनुदमबकुं २ । उदयंगळ नूर नालकु १०४ ॥ देश-  
संयतगुणस्थानदोळ पदिनेळ गूडियनुदयंगळ हत्तो भत्त १९ । उदयंगळेभत्तेळ ८७ । प्रमत्तसंयत-  
गुणस्थानदोळे दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळरोळ २७ आहारकद्विकमं कळेदुदयंगळोळ कूडुत्तं विरलनु-  
दयंगळिप्पत्तदु २५ । उदयंगळेभत्तो दु ८१ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळदुगूडियनुदयंगळ मूवत्त ३० ।  
५ उदयंगळेप्पत्तारु ७६ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळ नालकु गूडियनुदयंगळ मूवत्त नालकु ३४ ।  
उदयंगळेप्पत्तेरु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ नालवत्त ४० । उदयंगळरु-  
वत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ नालवत्तारु ४६ । उदयंगळरुवत्त ६० ॥  
उपशान्तकषायगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळ नालवत्तेळ ४७ । उदयंगळरुवत्तो भत्त ५९ ॥ क्षीण-  
कषायगुणस्थानदोळेरु गूडियनुदयंगळ नालवत्तो भत्त ४९ । उदयंगळरुवत्तेळ ५७ । संदृष्टिः—

मतिभ्रुतावधि यो० १०६

| ०    | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी |
|------|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|
| व्यु | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   |
| उ    | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   |
| अ    | २   | १९ | २५  | ३० | ३४ | ४० | ४६ | ४७ | ४९   |

- १० असंयते आहारकद्विकमनुदयः २ उदयश्चतुस्तरशतं १०४ । देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः एकान्नविंशतिः ।  
उदयः सप्ताशीतिः । ८७ । प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदये पंचविंशतिः २५ । उदयः एकाशीतिः ।  
८१ । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रिंशत् ३० । उदयः षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्यानुदय-  
श्चतुस्त्रिंशत् ३४ । उदयो द्वासप्ततिः । अनिवृत्तिकरणे षट्संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदयः षट्षष्टिः  
६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६ । उदयः षष्टिः ६० । उपशान्तकषाये एका-  
१५ संयोज्यानुदयः सप्तचत्वारिंशत् ४७ । उदयः एकान्नषष्टिः ५९ । क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयः एकान्नपंचाशत्  
४९ । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ ।

४. असंयतमें आहारकद्विकका अनुदय । उदय एक सौ चार १०४ ।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय उन्नीस । उदय सत्तासी ८७ ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विका उदय होनेसे अनुदय पच्चीस । उदय

२० इक्यासी ८१ ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तीस ३० । उदय छिहत्तर ७६ ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चौतीस ३४ । उदय बहत्तर ७२ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चालीस । उदय छियासठ ।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस । उदय साठ ।

२५ ११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतालीस । उदय उनसठ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनचास । उदय सत्तावन ।

मनःपर्ययज्ञानोऽन्तः मणपञ्जवे णवरि ण संद्वितीयो हारदुगं ए'दितु नाल्कुं प्रकृतिगळं प्रमत्त-  
संयतनुदयप्रकृतिगळेभत्तो'दरोऽन्तः ८१ कळेदोदुदययोग्य प्रकृतिगळेपत्तेऽन्तः ७७ । गुणस्थानगळ  
प्रमत्तादिसप्तप्रमितंगळपुवलि प्रमत्तसंयतनोऽन्तः स्त्यानगृद्धित्रयंकुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अप्रमत्त-  
संयतनोऽन्तः तन्न गुणस्थानद नाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ अपूर्वकरणनोऽन्तः तन्न  
गुणस्थानद षण्णोकषायंगळदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥ अनिवृत्तिकरणनोऽन्तः पुंवेदमुं संज्वलनक्रोधा- ५  
द्वित्रितयमुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोऽन्तः सूक्ष्मलोभकुदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं १ । उपशांतकषायनोऽन्तः तन्न गुणस्थानद वज्रनाराचनाराचद्वयंकुदयव्युच्छित्ति-  
यक्कुं २ ॥ क्षीणकषायनोऽन्तः तन्न गुणस्थानद द्विचरमसमयदोऽन्तः निद्राप्रचलेगळं २ चरम समयदोऽन्तः  
ज्ञानावरणपंचकमु-५ । मंतरायपंचकमुं ५ दर्शानचतुष्कमुं नाल्कु ४ मंतु पदिनारं प्रकृतिगळगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कु १६ । मंतागुतं विरलु प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोऽन्तःनुदयं शून्यं उदयंगळेपत्तेऽन्तः ७७ ॥ १०  
अप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोऽन्तःनुदयंगळं मूळ ३ । उदयंगळेपत्तनाल्कु ७४ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोऽन्तः  
नाल्कुगूडियनुदयंगळेऽन्तः ७ । उदयंगळेपत्तु ७० ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोऽन्तःगूडियनुदयंगळं  
पदिमूळ १३ । उदयंगळस्वस्त नाल्कु ६४ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोऽन्तः नाल्कुगूडियनुदयंगळं  
पदिनेऽन्तः १७ । उदयंगळं अरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोऽन्तःगूडियनुदयंगळं हदिने'दु

मनःपर्ययज्ञाने-संद्वितीयोहारदुगं जेति तच्चतुष्के प्रमत्तोदयैकाशोत्थामपनीते सप्तसप्ततिः ७७ । गुणस्था- १५  
नानि प्रमत्तादीनि सप्त । तत्र प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयं व्युच्छित्तिः ३ । अप्रमत्ते स्वस्य चतुष्कं ४ । अपूर्वकरणे  
षण्णोकषायाः ६ । अनिवृत्तिकरणे पुंवेदः संज्वलनक्रोधाद्वित्रयं च ४ । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपशांत-  
कषाये वज्रनाराचनाराचद्वयं २ । क्षीणकषाये द्विचरमसमये निद्राप्रचले, चरमे ज्ञानावरणपंचकं अंतरायपंचकं  
दर्शनावरणचतुष्कं च मिलित्वा षोडश १६ । एवं सति प्रमत्तेऽनुदयः शून्यं । उदयः सप्तसप्ततिः ७७ ।  
अप्रमत्तेऽनुदयस्त्रयं ३ । उदयश्चतुःसप्ततिः ७४ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयः सप्त ७ । उदयः सप्ततिः २०  
७० । अनिवृत्तिकरणे षट्संयोज्यानुदयस्त्रयोदश १३ । उदयश्चतुःषष्टिः ६४ । सूक्ष्मसांपराये चतुष्कं संयोज्या-

मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्त संयममें उदययोग्य इक्यासीमें-से नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और  
आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य सतहत्तर ७७ । गुणस्थान प्रमत्तादि सात । उनमें-से  
प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी व्युच्छित्ति । अप्रमत्तमें अपनी चारकी व्युच्छित्ति । अपूर्व-  
करणमें छह नोकषाय । अनिवृत्तिकरणमें पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध आदि तीन । सूक्ष्म २५  
साम्परायमें सूक्ष्मलोभ । उपशान्तकषायमें वज्रनाराच और नाराच । क्षीण कषायमें द्विचरम  
समयमें निद्रा प्रचला, चरम समयमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय  
मिलकर सब सोलह १६ । ऐसा होनेपर—

६. प्रमत्तमें अनुदय शून्य । उदय सतहत्तर ७७ ।
७. अप्रमत्तमें अनुदय तीन । उदय चौहत्तर ७४ ।
८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सात । उदय सत्तर ७० ।
९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय तेरह । उदय चौसठ ।

१८ । उदयंगलव्यक्तो भवति । ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळङ्गुडियनुदयंगलिप्पत्तु २० । उदयंगल-  
व्यक्तेळु ५७ ॥ संदृष्टि-मनःपर्ययज्ञानयोग्य ७७ ।

| ०    | प्र | अ  | अ  | अ  | सु | उ  | क्षी |
|------|-----|----|----|----|----|----|------|
| व्यु | ३   | ४  | ६  | ४  | १  | २  | १६   |
| उ    | ७७  | ७४ | ७० | ६४ | ६० | ५९ | ५७   |
| अ    | ०   | ३  | ७  | १३ | १७ | १८ | २०   |

केवलज्ञानदोळु योग्योदय प्रकृतिगळु नाल्वत्तेरडु ४२ । गुणस्थानद्वितीयमल्लि सयोगिकेवलि-  
भट्टारकगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळु सूचत्तु ३० । अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पन्नेरडु/  
५ १२ । संदृष्टि-केवलिद्वययोग्य ४२ ।

| ०    | स  | अ  |
|------|----|----|
| व्यु | ३० | १२ |
| उ    | ४२ | १२ |
| अ    | ०  | ३० |

नुदयः सप्तदश १७ । उदयः षष्टिः ६० । उपशान्तकषाये एकं संयोज्यानुदयोऽष्टादश १८ । उदय एकान्तषष्टिः  
५९ । क्षीण कषाये द्वे संयोज्यानुदयो विंशतिः २० । उदयः सप्तपञ्चाशत् ५७ ।

केवलज्ञाने उदययोग्या द्वाचत्वारिंशत् ४२ । तत्र सयोगे व्युच्छित्तिः त्रिंशत् । अयोगे द्वादश ।  
संदृष्टिः—

केवलिद्वययोग्यः ४२

|      | स  | अ  |
|------|----|----|
| व्यु | ३० | १२ |
| उ    | ४२ | १२ |
| अ    | ०  | ३० |

१०

१०. सूक्ष्म साम्परायमें चार मिलाकर अनुदय सतरह । उदय साठ ६० ।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय अठारह । उदय उनसठ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बीस । उदय सत्तावन ।

केवलज्ञानमें उदययोग्य बयालीस । उसमें-से सयोगीमें व्युच्छित्ति तीस । अयोगीमें  
बारह ।

संयममार्गणयोऽसामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयदोऽसु योग्यगळु प्रमत्तगुणस्थानदेषभ-  
तोऽसु प्रकृतिगळप्यु ८१ बल्लि गुणस्थानगळं नालकु । प्रमत्तसंयतादिव्युच्छित्तिगळु पंच य चउर  
छक्क छच्चेव एवो उदयव्युच्छित्तिगळु । प्रमत्तगुणस्थानदोऽनदयं शून्यमक्कुं । उदयगळेषभतोऽसु  
८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थान दोळप्यु प्रकृतिगळनुदयंगळु ५ । उदयगळेषत्तार ७६ ॥ अपूर्वकरणगुण-  
स्थानदोऽसु नालकुगूडियनुदयंगळो भत्तु ९ । उदयगळेषत्तार ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारु- ५  
गूडियनुदयंगळु पदिनप्यु १५ । उदयगळरुवत्तार ६६ । संदृष्टि । सा० छे० योग्य ८१ ।

| ०    | प्र | अ  | अ  | अ  |
|------|-----|----|----|----|
| व्यु | ५   | ४  | ६  | ६  |
| उ    | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ |
| अ    | ०   | ५  | ९  | १५ |

परिहारविशुद्धसंयमदोऽसु परिहारे णवरिण संद्विस्थिहारदुगं एवितो नालकुं प्रकृतिगळं  
कळेदु शेषप्रकृतिगळेषत्तारद्वययोग्यगळं ७७ । प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वितयमेयक्कुं संदृष्टि :—

संयममार्गणायां सामायिकछेदोपस्थापनयोऽदययोग्याः प्रमत्तस्यैकाशीतिः ८१ । गुणस्थानानि प्रमत्ता-  
दीनि चत्वारि । व्युच्छित्तयः पंचयचउरछक्कछच्चेव । प्रमत्तेऽनुदयः शून्यं । उदय एकाशीतिः ८१ । अप्रमत्ते- १०  
ऽनुदयः पंच ५ । उदयः षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयो नव ९ । उदयो द्वासप्ततिः ।  
७२ । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः पंचदश १५ उदयः षट्षष्टिः ६६ । परिहारविशुद्धो बंदिस्थिहारदुगं  
नेति तच्चतुष्केऽपनीते सप्तसप्ततिरुदयोग्याः ७७ । प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थाने द्वे । संदृष्टिः—

संयमज्ञानत्रय रचना १०६

मनःपर्ययज्ञान रचना ७७

केवलज्ञान रचना ४२

| अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी |
|-----|-----|------|----|----|-----|----|------|
| १७  | ८   | ५    | ४  | ६६ | १   | २  | १६   |
| १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६  | ६० | ५९   |
| २   | १९  | २५   | ३० | ३४ | ४०  | ४६ | ४९   |

| प्र. | अ  | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. |
|------|----|----|----|-----|----|-------|
| ३    | ४  | ६  | ४  | १   | २  | १६    |
| ७७   | ७४ | ७० | ६४ | ६०  | ५९ | ५७    |
| ०    | ३  | ७  | १३ | १७  | १८ | २०    |

| स. | अ. |
|----|----|
| ३० | १२ |
| ४२ | १२ |
| ०  | ३० |

संयममार्गणामे सामायिक और छेदोपस्थापनामे उदययोग्य प्रमत्तसंयमकी इक्यासी  
८१ । गुणस्थान प्रमत्त आदि चार । व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, चार, छह, छह । प्रमत्तमे अनुदय १५  
शून्य । उदय इक्यासी । अप्रमत्तमे अनुदय पाँच, उदय छिहत्तर । अपूर्वकरणमे चार मिलाकर  
अनुदय नौ । उदय बहत्तर ७२ । अनिवृत्तिकरणमे छह मिलाकर अनुदय पन्द्रह । उदय  
छियासठ ६६ ।

परिहार विशुद्धिमे स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य

| परिहारयो ७७ |     |    |
|-------------|-----|----|
| ०           | प्र | अ  |
| व्यु        | ३   | ४  |
| उ           | ७७  | ७४ |
| अ           | ०   | ३  |

सूक्ष्मसांपरायसंयमोदययोग्यप्रकृतिगळरुवत्तु ६० । सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमोदेयवक्तुं । यथाख्यातसंयमोदयप्रायोग्य प्रकृतिगळ उपशान्तकषायगुणस्थानदव्यक्तोभत्तरोळु तीर्थमंकूडियरु वत्तु प्रकृतिगळपुवु ६० गुणस्थानंगळ नात्कप्पुवल्लियुपशान्तकषायनोळु वञ्जनाराचशरीरसंहनन-  
 ५ द्रव्यकुदयव्युच्छित्तिवक्तुं २ ॥ क्षीणकषायनोळु तन्न गुणस्थानद पदिनारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति-  
 यवक्तुं ११६ ॥ सयोगिकेवल्लिभट्टारकगुणस्थानदोळु तद्गुणस्थानद भूवत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति-  
 यवक्तुं ३० ॥ अयोगिकेवल्लिभट्टारकनोळु तद्गुणस्थानद पन्नेरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिवक्तुं-  
 मंतामुत्तं विरलुपशान्तकषायगुणस्थानदोळु तीर्थमोदनुदयमवक्तुं १ । उदयंगळरुवत्तोभत्तु ५९ ॥  
 क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळ ३ । उदयंगळरुवत्तेळु ५७ ॥ सयोगिकेवल्लिभट्टारक-  
 गुणस्थानदोळु परिनारुगूडियनुदयंगळ हत्तोभत्तरोळु तीर्थमं कळवुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं

१ परि = यो ७७

प्र अ

| व्यु | ३  | ४  |
|------|----|----|
| उ    | ७७ | ७४ |
| अ    | ०  | ३  |

१० सूक्ष्मसांपरायस्योदयः षष्टिः ६० । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानम् । यथाख्यातसंयमस्योदयः उपशान्तकषायस्य  
 एकान्नषष्ट्यां तीर्थं मिलित्वा षष्टिः ६० । गुणस्थानान्युपशान्तकषायादीनि चत्वारि । तत्रोपशान्तकषाये वञ्जना-  
 राचनाराचद्वयं व्युच्छित्तिः । क्षीणकषाये षोडश । सयोगे त्रिंशत् । अयोगे द्वादश । तथा सति उपशान्तकषाये  
 तीर्थमनुदयः १ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ । क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयस्त्रयं । ३ । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ ।

१५ सप्तहत्तर ७७ । गुणस्थान दो प्रमत्त और अप्रमत्त । सूक्ष्मसाम्परायमें उदय साठ । एक गुण-  
 स्थान सूक्ष्म साम्पराय । यथाख्यातसंयममें उपशान्तकषायमें उदययोग्य उनसठमें तीर्थकर  
 मिलाकर उदययोग्य साठ । गुणस्थान उपशान्तकषाय आदि चार । उनमेंसे उपशान्त कषायमें  
 वञ्जनाराच और नाराच दोकी व्युच्छित्ति । क्षीण कषायमें सोलह । सयोगीमें तीस ।  
 अयोगीमें बारह । ऐसा होनेपर—

उपशान्तकषायमें तीर्थकरका अनुदय । उदय उनसठ ५९ । क्षीणकषायमें दो मिलाकर

विरलनुदयंगळु पदिनेदु १८ । उदयंगळु नाल्वत्तेरदु ४२ ॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु  
मूवत्तुगुडियनुदयंगळु नाल्वत्तेदु ४८ । उदयंगळु पन्नेरदु १२ ॥ संदृष्टि :-

यथाख्यात योग्य ६०

| ० | उ  | क्षी | स  | अ  |
|---|----|------|----|----|
| अ | २  | १६   | ३० | १२ |
| उ | ५९ | ५७   | ४२ | १२ |
| अ | १  | ३    | १८ | ४८ |

देशसंयमदोळु देशसंयतगुणस्थानदुदयप्रकृतिगळेभत्तेळु ८७ उदययोग्यंगळुपुवु ॥ गुण-  
स्थानमुमा देशसंयतगुणस्थानमो देयक्कुं । असंयमदोळु तीर्थकरनाममुमाहारकद्वयमुममंतु मूरं ५  
प्रकृतिगळं कळेदु शेषप्रकृतिगळु नूर हत्तो भत्तुदययोग्यंगळुपुवु ११९ वल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि-  
यागि नाल्कुं गुणस्थानंगळुपुवुल्लि संतम्म गुणस्थानद पण णव इगि सत्तरस प्रकृतिगळमे यथा-  
संख्यमागियुदयव्युच्छित्तिगळपुवुंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्व-  
प्रकृतिपुमेरदुमनुदयंगळु २ । उदयंगळु नूरहदिनेळु ११७ । सासादनगुणस्थानदोळुदुगुडियनु-  
दयंगळेळरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळेळु कळेवनुदयंगळेळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेदु ८ । उदयंगळु १०  
नूर हत्तोदु १११ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळो भत्तु गूडियनुदयंगळु हदिनेळरोळु मिश्रप्रकृतियुं कळेदु-  
दयंगळेळु कूडि सत्तमुदयंगळेळु शेषानुपूर्व्यत्रयं कळेवनुदयंगळेळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु  
हत्तो भत्तु १९ । उदयंगळु नूर १०० । असंयतगुणस्थानदोळोदुगुडियनुदयंगळुपुवुत्तरोळु सम्यक्त्व-

सयोगे अनुदयः । षोडश संयोज्य तीर्थोदयादष्टादश १८ । उदयो द्वाचत्वारिंशत् ४२ । अयोगे त्रिंशत्  
संयोज्यानुदयोऽष्टाचत्वारिंशत् ४८ । उदयो द्वादश १२ । देशसंयमे तद्गुणस्थानस्य सप्ताशीतिरुदययोग्याः ८७ । १५  
गुणस्थानं तदेव । असंयमे तीर्थकरत्वमाहारकद्वयं विना शेषकान्निविशत्युत्तरशतमुदययोग्यं ११९ । मिथ्यादृ-  
ष्ट्यादिगुणस्थानानि चत्वारि । व्युच्छित्तयः 'पणणव इगिसत्तरस' । तथा सति मिथ्यादृष्टी मिश्रं सम्यक्त्वं  
चानुदयः । उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादनेऽनुदयः पंच नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वाष्टौ ८ । उदय  
एकादशोत्तरशतं १११ । मिश्रेऽनुदयो नव शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकान्निविशतिः १९ ।

अनुदय तीन । उदय सत्तावन । सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थकरका उदय होनेसे अनुदय २०  
अठारह । उदय बयालीस । अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय अड़तालीस ४८ । उदय  
बारह १२ ।

देशसंयममें उसी गुणस्थानमें उदययोग्य सतासी । वही एक गुणस्थान होता है ।  
असंयममें तीर्थकर और आहारकद्विक बिना उदय योग्य एक सौ उन्नीस । गुणस्थान मिथ्या-  
दृष्टि आदि चार । व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह । ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें २५  
मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय । उदय एक सौ सतरह । सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी  
मिलाकर अनुदय आठ । उदय एक सौ ग्यारह । मिश्रमें नौ और शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर,

प्रकृतियुं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमित्यदुं प्रकृतिगणं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदित्यदु  
१५ । उदयंगळु नूर नाल्कु १०४ ॥ संदृष्टिः—

असं० योग्य ११९ ॥

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|
| व्यु | ५   | ९   | १   | १७  |
| उ    | ११७ | १११ | १०० | १०४ |
| अ    | २   | ८   | १९  | १५  |

दर्शनमार्गणियोळु चतुर्दृशनयोग्योदयप्रकृतिगळु सामान्योदययोग्यप्रकृतिगळु नूरिप्तेरड-  
रोळुः—

५

चक्षुष्मि ण साधारणताविगिवितिजाइ थावरं सुहुमं ।

किण्णदुमे सुगुणोघं मिच्छे णिरयाणु वोच्छेदो ॥३२५॥

चक्षुषि न साधारणातपैकद्वित्रिजातिस्थावरं सूक्ष्मं कृष्णद्विके स्वगुणौघः मिथ्यावृष्टौ नार-  
कानुपूर्व्यव्युच्छेदः ॥

साणे सुराउ सुरगदिदेवतिरिक्खाणु वोच्छिदी एवं ।

काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुवोच्छेदो ॥३२६॥

१०

सासादने सुरायुः सुरगतिदेवतिर्यगानुपूर्व्विव्युच्छित्तिरेवं । कापोते असंयतगुणस्थाने  
निरयतिर्यगानुपूर्व्विव्युच्छित्तिः ॥

साधारणनाममुं १ । आतपनाममुं १ । एकेंद्रियजातियुं १ । द्वीन्द्रियजातियुं १ । त्रीन्द्रिय-  
जातियुं १ । स्थावरनाममुं १ । सूक्ष्मनाममुं १ । तीर्थकरनाममुं १ मितेदुं ८ । न न संति ये दिवं

१५ उदयः शतं १०० । असंयते एकं मिलित्वा सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात्पंचदश १५ । उदयश्चतुस्तरशतं  
१०४ ॥ ३२४ ।

दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शने साधारणमातप एकेंद्रियं द्वीन्द्रियं त्रीन्द्रियं स्थावरं सूक्ष्मं तीर्थकरत्वं च नेति

मिश्रका उदय होनेसे अनुदय उज्जीस । उदय सौ । असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और  
आनुपूर्वी चारका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह । उदय एक सौ चार ॥३२४॥

२० दर्शनमार्गणामें चक्षुर्दर्शनमें साधारण, आतप, एकेंद्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय,  
सामायिक छेदोप. ८१ परि. वि. ७७ यथाख्यात ६० असंयम ११९

|       | प्र. अ. अ. अ. |
|-------|---------------|
| व्यु. | ५ ४ ६ ६       |
| उदय   | ८१ ७६ ७२ ६६   |
| अनु.  | ० ५ ९ १५      |

| प्र. अ. |
|---------|
| ३ ४     |
| ७७ ७४   |
| ० ३     |

| उ. क्षी | स. | अ. |
|---------|----|----|
| २ १६    | ३० | १२ |
| ५९ ५७   | ४२ | १२ |
| १ ३     | १८ | ४८ |

| मि. | सा. | मि. | अ   |
|-----|-----|-----|-----|
| ५   | ९   | १   | १७  |
| ११७ | १११ | १०० | १०४ |
| २   | ८   | १९  | १५  |

कळेयलु शेष नूर पविनालकुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ११४ । गुणस्थानंगळुं मिथ्यादृष्टियादियानि  
क्षीणकषायवसानमाणि पन्नेरडप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्याप्तनाममुमितेरडुं  
प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ ॥ सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुं ४ चतुरिन्द्रियजाति-  
नाममुमितवुं ५ प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ ॥ मिश्रं मोदल्लोडु क्षीणकषायगुणस्थान-  
पर्यंतं यथासंख्यमाणि इगि सत्तरसं अडपंचय चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृति- ५  
गळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियु-  
माहारकद्वयमुमितु नालकुं प्रकृतिगळुगुदयमक्कुं ४ । उदयंगळु नूर हत्तु ११० ॥ सासादनगुणस्थान-  
दोळेरडुगुडियनुदयंगळाररोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेवनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरल-  
नुदयंगळोळु ७ । उदयंगळु नूरेळु १०७ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळुगुडियनुदयंगळु पन्नरडरोळु मिश्र-  
प्रकृतियुं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोळु शेषानुपूर्व्यत्रयं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं १०  
विरलनुदयंगळु पविनालकु १४ । उदयंगळु नूर १०० । असंयतगुणस्थानदोळोडुगुडियनुदयंगळु  
पविनद्वरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमनंतवुं प्रकृतिगळुं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं  
विरलनुदयंगळुं पत्तुं १० । उदयंगळु नूर नालकु १०४ ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पविनेळुगुडियनु-  
दयंगळिप्पत्तेळु २७ । उदयंगळेभत्तेळु ८७ ॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळेरडुगुडियनुदयंगळु सूवत्तद्व-  
रोळाहारकद्वयं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु सूवत्तमूर ३३ । उदयंगळेभत्तोडु ८१ ॥ १५

चतुर्दशोत्तरशतमुदययोग्यं ११४ । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश १२ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वा-  
पर्याप्तव्युच्छित्तिः २ । सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं चतुरिन्द्रियं च ५ । मिश्रात् क्षीणकषायपर्यंतं इगिसत्तरसं  
अडपंचयचउरछक्कछच्चेवइगिदुगसोलस व्युच्छित्तयः । तथा सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं आहारकद्वयं  
चानुदयः, उदयो दशोत्तरशतं ११० । सासादने द्वे नरकानुपूर्व्यं च\*मिलित्वानुदयः सप्त ७ । उदयः सप्तोत्तर-  
शतं १०७ । मिश्रेऽनुदयः पंच शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयान्चतुर्दश १४ । उदयः शतं १०० । २०  
असंयतेऽनुदयः एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयाद्दश १० । उदयश्चतुस्तरशतं १०४ । देशसंयते  
सप्तदश संयोज्यानुदयः सप्तविंशतिः २७ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्वयोदयादनुदयश्च-

स्थावर, सूक्ष्म और तीर्थकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ चौदह ११४ हैं । गुणस्थान  
मिथ्यादृष्टि आदि बारह हैं । उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति  
होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और चौइन्द्रिय पाँच । मिश्रसे क्षीणकषायपर्यन्त २५  
क्रमसे एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो और सोलहकी व्युच्छित्ति  
होती है ।

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय है । उदय एक सौ  
दस ११० ।

२. सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय सात । उदय एक सौ सात । ३०

३. मिश्रमें अनुदय पाँच और शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर तथा मिश्रका उदय होनेसे  
चौदह १४ । उदय एक सौ १०० ।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और चारों आनुपूर्वीका उदय होनेसे  
दस १० । उदय एक सौ चार १०४ ।



अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्लोडु क्षीणकषायगुणस्थानपथ्यतं केलगण गुणस्थानंगल्लुदयव्युच्छित्तिगल्लु-  
अननुदयंगल्लुमं कूडिदोडे मेलण मेलण गुणस्थानदप्रकृतिगल्लुक्कुं । केळगण गुणस्थानदुदयव्युच्छित्ति-  
गल्लं कळेदुदयप्रकृतिगल्लु मेलण गुणस्थानदुदयप्रकृतिगल्लुपुवेव व्याप्तिपरियत्पडुगुं । संदृष्टियोळी  
व्याप्तिपरिव्यक्तमल्लि भाविसुवुवु ॥ संदृष्टि :—

## चक्षुर्दर्शनयोग्य ११४

| ०     | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी |
|-------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|
| व्यु. | २   | ५   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   |
| उ     | ११० | १०७ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५२ | ५७   |
| अ     | ४   | ७   | १४  | १०  | २७ | ३३  | ३८ | ४२ | ४८ | ५४ | ५५ | ५७   |

५ यस्त्रिंशत् ३३ उदयः एकाशीतिः ८१ । अप्रमत्ताक्षीणकषायपर्यन्तमवस्तनव्युच्छित्यनुदययोग उपरितनानुदयः  
स्यात् । अवस्तनव्युच्छित्तो स्वोदयेऽपनीतायामुपरितनोदयः स्यात् इति व्याप्तिर्जातिव्या । संदृष्टि :—

## चक्षुर्दर्शनोदययोग्यः ११४ ॥

|       | मि  | सा  | मि  | अ   | द  | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी |
|-------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|
| व्यु. | २   | ५   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   |
| उ     | ११० | १०७ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५२ | ५७   |
| अ     | ४   | ७   | १४  | १०  | २७ | ३३  | ३८ | ४२ | ४८ | ५४ | ५५ | ५७   |

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय सत्ताईस । उदय सत्तासी ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय तैंतीस ३३ । उदय इक्क्यासी ८१ ।

१० ७. अप्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त नीचेकी व्युच्छित्ति और अनुदयको मिलानेपर ऊपर-  
का अनुदय होता है । और नीचेकी व्युच्छित्तिको अपने उदयमें घटानेपर ऊपरका उदय होता  
है । ऐसी व्याप्ति जानना चाहिये । उसकी संदृष्टि—

## चक्षुर्दर्शनमें उदययोग्य ११४

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|
| व्यु. | २   | ५   | १   | १७  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    |
| उ.    | ११० | १०७ | १०० | १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५२ | ५७    |
| अनु.  | ४   | ७   | १४  | १०  | २७  | ३३   | ३८ | ४२ | ४८ | ५४  | ५५ | ५७    |

अचक्षुर्दृशनमार्गणयोऽलु तीर्थंकरनामरहितसामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तो'डु १२१ । गुणस्थानगळु मिथ्यादृष्टिमोदलामि पन्नेरडु गुणस्थानगळपुवु । मिथ्यादृष्ट्यादिगळोळु यथाक्रमविद-  
मुदयव्युच्छित्तिगळु पण णव इगि सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस  
प्रकृतिगळपुवतागुसं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वय-  
मुमंतु नालकुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं । ४ । उदयंगळु नूरहदिनेळु ११७ । सासादननोळयुं ५  
कूडियनुदयंगळु ओ'भत्तरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळे वनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु  
पत्तुं १० । उदयंगळु नूर हन्नो'डु १११ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळो'भत्तुगूडियनुदयंगळु हत्तो'भत्तरोळु  
मिश्रप्रकृतियं कळेवुदयंगळोळु कूडिमत्तमुदयप्रकृतिगळोळानुपूर्व्यत्रितयं कळे वनुदयप्रकृतिगळोळु  
कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तो'डु २१ । उदयंगळु नूर १०० ॥ असंयतगुणस्थानदोळु ओ'दुगूडियनु-  
दयंगळु यिप्पत्तेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमनानुपूर्व्यचतुष्कमुमंतु पंचप्रकृतिगळं कळेदुदय- १०  
प्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनेळु १७ । उदयंगळु नूर नालकु १०४ ॥ देशसंयतगुण-  
स्थानदोळु पदिनेळु गूडियनुदयंगळु भूवत्तनालकु ३४ । उदयंगळु णभत्तेळु ८७ । प्रमत्तगुणस्थान-  
दोसे'दुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेरडरोळु आहारकद्विकमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुद-  
यंगळु नाल्वत्तु ४० । उदयंगळु ये'भत्तो'डु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्लो'डु क्षीणकषायगुण-

अचक्षुर्दर्शने तीर्थंकरत्वं नेत्युदयप्रकृतयः एकविंशत्युत्तरशतं १२१ । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि १५  
द्वादश, व्युच्छित्तयः 'पणवइगिसत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' एवं सति मिथ्यादृष्टौ  
मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयान्यनुदयः ४ । उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादनेऽनुदयः पंच नारकानुपूर्व्यं च  
मिलित्वा दश १० । उदय एकादशोत्तरशतं १११ । मिश्रेऽनुदयो नवानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेक-  
विंशतिः २१ । उदयः शतं १०० । असंयतेऽनुदय एका संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात्सप्तदश १७ ।  
उदयश्चतुस्तरशतं १०४ । देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् ३४ उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्तेऽष्ट २०  
संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयश्चत्वारिंशत् । उदय एकाशीतिः ८१ । अप्रमत्तात् क्षीणकषायपर्यंतमनुदयः

अचक्षुर्दर्शनमें तीर्थंकरका उदय न होनेसे उदय प्रकृतियाँ एक सौ इक्कीस १२१ हैं । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि बारह । व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय ४ । उदय एक सौ २५ सतरह ।
२. सासादनमें अनुदय पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर दस १० । उदय एक सौ ग्यारह ।
३. मिश्रमें अनुदय नौ और तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस । उदय सौ १०० ।
४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे ३० सतरह १७ । उदय एक सौ चार १०४ ।
५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय चौतीस ३४ । उदय सतासी ८७ ।
६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय चालीस । उदय ८१ ।

स्थानपर्यन्तमनुदयंगळु यथाक्रमदिक् नाल्वत्तद्दु ४५ । नाल्वत्तो भत्तु ४९ । अय्वत्तद्दु ५५ । अरुवत्तो दु ६१ । अरुवत्तेरदुं ६२ । अरुवत्तनाल्कु ६४ मप्पुवु । उदयंगळु छसदरिदुसदरि छावट्टिसट्टी णव वण्णास सगवण्णास मुमप्पुवु । संदृष्टिरचने । अचक्षुदर्शनयोग्य १२१ ।

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|
| व्यु | ५   | ९   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   |
| उ    | ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   |
| अ    | ४   | १०  | २१  | १७  | ३४ | ४०  | ४५ | ४९ | ५५ | ६१ | ६२ | ६४   |

- अवधिदर्शनमार्गणेषोळु अवधिज्ञानदोळे तंते मिथ्यादृष्टिय अद्दुं ५ सासावननो भत्तुं ९  
 ५ मिश्रनो दुं १ तीत्यंमु १ मंतु पविनारं १६ प्रकृतिगळं कळेदुळिद नूरां प्रकृतिगळु वययोग्यंगळपुवु  
 १०६ । अल्लियसंयतादिगुणस्थानंगळो भत्तपुवसंयतं मोदलागि यथाक्रमविदमुदयव्युच्छित्तिगळु  
 सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोलस प्रकृतिगळपुवसंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानं  
 मोदलो दुं क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्तं यथाक्रमदिदगनुदयंगळे रेदुं २ । पत्तो भत्तु १९ । यिप्पत्तद्दु  
 २५ । मूवत्तुं ३० । मूवत्तनाल्कु ३४ । नाल्वत्तुं ४० । नाल्वत्तारं ४६ । नाल्वत्तेळुं ४७ । नाल्वत्तो-  
 १० भत्तुं ४९ । प्रकृतिगळपुवु । उदयंगळु चदुसहियसयं नूरनाल्कु १०४ । सगसोवि ८७ । इगिसोवि

पंचचत्वारिंशत् ४५ । एकान्नपंचाशत् ४९ । पंचपंचाशत् ५५ । एकषष्टिः । द्वाषष्टिः ६२ चतुषष्टिः ६४ ।  
 उदयाः छसदरीदुसदरीछावट्टिसट्टिणववण्णाससगवण्णास ।

- अवधिदर्शनमार्गणायां अवधिज्ञानवत् षडुत्तरशतमुदययोग्यं । गुणस्थानानि नव । व्युच्छिरायः सत्तरसं  
 अडपंचयचउरछक्कछच्चेवइगिदुगसोलस । तथा सति अनुदयाः द्वयं २ । एकोनविंशतिः १९ । पंचविंशतिः  
 १५ २५ । त्रिंशत् ३० । चतुस्त्रिंशत् ३४ । चत्वारिंशत् ४० । षट्चत्वारिंशत् ४६ । सप्तचत्वारिंशत् । ४७ ।

अप्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त अनुदय क्रमसे पैतालीस ४५, उनचास ४९, पंचपन ५५,  
 इकसठ ६१, बासठ ६२, चौसठ ६४ । उदय क्रमसे छियत्तर ७६, बहत्तर ७२, छियासठ ६६,  
 साठ ६०, उनसठ ५९, सत्तावन ५७ । संदृष्टि—

अचक्षुदर्शन रचना १२१

| मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. |
|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|
| ५   | ९   | १   | १७  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    |
| ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    |
| ४   | १०  | २१  | १७  | ३४  | ४०   | ४५ | ४९ | ५५ | ६१  | ६२ | ६४    |

- अवधिदर्शन मार्गणामें अवधिज्ञानकी तरह एक सौ छह उदययोग्य हैं । गुणस्थान  
 २० चारसे बारह तक नौ होते हैं । व्युच्छित्तियाँ क्रमसे सत्तरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक,  
 दो, सोलह । ऐसा होनेपर अनुदय क्रमसे दो २, उन्नीस १९, पच्चीस २५, तीस ३०, चौतीस

८१। छसदरी ७६। दुसदरी ७२। छावट्टी ६६। सट्टी ६०। णववण्णास ५९। सगवण्णास ५७।  
प्रकृतिगळपुवु। संदृष्टि। अवधिदर्शनयो० १०६ :—

| ०    | अ   | वे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी |
|------|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|
| व्यु | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   |
| उ    | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   |
| अ    | २   | १९ | २५  | ३० | ३४ | ४० | ४६ | ४७ | ४९   |

केवलदर्शनमार्गणोळ केवलज्ञानमार्गणोळ तंतैयक्कुमल्लियुदप्रयोग्यंगळु नात्वत्तेरडु  
प्रकृतिगळपुवु ४२। सयोगायोगिकेवल्लिगुणस्थानद्वयमक्कुं। संदृष्टि। केवलदर्शनयोग्य ४२

| ०    | स  | अ  |
|------|----|----|
| व्यु | ३० | १२ |
| उ    | ४२ | १२ |
| अ    | ०  | ३० |

एकान्नपंचाशत् ४९। उदयाः बहुसहियसयं १०४। सगसीदि ८७। इगिसीदि ८१। छसदरी ७६। दुसदरी ७२।  
छावट्टि ६६। सट्टि ६०। णववण्णास ५९। सगवण्णास ५७। केवलदर्शने केवलज्ञानवत्।  
संदृष्टि :—

केवलदर्शनयोग्य ४२

|      | स  | अ  |
|------|----|----|
| व्यु | ३० | १२ |
| उ    | ४२ | १२ |
| अ    | ०  | ३० |

३४, चालीस ४०, छियालीस ४६, सैंतालीस ४७, उनचास ४९। उदय क्रमसे एक सौ चार १०४, सत्तासी ८७, इक्कासी ८१, छियत्तर ७६, बहत्तर ७२, छियासठ ६६, साठ ६०, उनसठ ५९, सत्तावन ५७। केवलदर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना। संदृष्टि—

- लेख्यामार्गणयोळु किण्हदुगे सगुणोघं मिच्छे गिरयाणु बोच्छेदो एँदितु कृष्ण नील लेख्या-  
 द्वयमार्गणयोळु' तीत्यमुमाहारकद्वयमुमितु सूरं प्रकृतिगळं कळेदुळिव सामान्योदयप्रकृतिगळ  
 नूरहतो भत्तु प्रकृतिगळपुवु ११९ । मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्गुणस्थानगळपुवेकंदोडयदोति छलेस्साओ  
 एँदितु पेळत्पटदुदपुदरिदं । मिथ्यादृष्टियोळु तन्न प्रकृतिगपंचकमुं नरकानुपूर्व्यमुंमंतारं प्रकृति-  
 ५ गळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । एकंदोडे गिरयं सासण सम्मो ण गच्छदि एँदु सासादननोळा नरकानु-  
 पूर्व्योदयमिल्ल । मिथ्रनोळावानुपूर्व्यंगळगमुदयमिल्लपुदरिनल्लियुं नरकानुपूर्व्योदयमिल्ल ।  
 असंयतसम्पदृष्टि द्वितीयादिपृथ्वीगळोळु पुट्टनपुदरिवमी तृतीयादिपृथ्वीसंबंधि नीलकृष्णलेख्या-  
 द्वयमार्गणयोळसंयतगे नरकानुपूर्व्योदयमिल्लदु कारणभाणि मिथ्यादृष्टियोळे तदुदयव्युच्छित्ति-  
 यक्कुमपुदरिदं ॥ सासादननोळु तन्न गुणस्थानदो भत्तु ९ असंयतनत्तिणि बंद सुरद्विकमुं २ ।  
 १० सुरायुष्यमुं १ । तिर्यंगानुपूर्व्यमुमितु त्रयोदशप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३ ॥ मिथ्रनोळु  
 मिथ्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ ॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ । नरकगतिनाममुं १  
 नरकायुष्यमुं १ वैक्रियिकद्वयमुं २ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ । दुर्भगत्रयमुं ३ मितु पन्नोरदु प्रकृतिगळगु-  
 दयव्युच्छित्तियक्कुं १२ ॥ तिर्यंगानुपूर्व्योदयमसंयतनोळे किल्ले दोडे भोगापुण्णगसम्मे काउस्स

- लेख्यामार्गणायां कृष्णनीलयोस्तीर्थकृदाहारकद्वयं च नेत्युदययोग्यप्रकृतयः एकान्नविंशतिशतं । गुण-  
 १५ स्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि । कुतः ? 'अयदोति छलेस्साओ' इत्युक्तत्वात् । मिथ्यादृष्टौ स्वस्य  
 पंच नरकानुपूर्व्यं च व्युच्छित्तिः ६ सासादनस्य नरकगमनाभावात् । मिथ्रस्यानुपूर्व्यानुदयात्, असंयतस्य  
 द्वितीयादिपृथ्वीष्वनुत्पत्तेरिव तदानुपूर्व्यस्यात्रैव छेदात् । सासादने स्वस्य नव, असंयतागतसुरद्विकसुरायुस्तिर्य-  
 गानुपूर्व्याणि च १३ । मिथ्रे मिथ्रं १ । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं नरकगतिस्तदायुर्वैक्रियिकद्वयं मनुष्यानुपूर्व्यं

अवधिदर्शन रचना १०६

| अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. |
|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|
| १७  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    |
| १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    |
| २   | १९  | २५   | ३० | ३४ | ४० | ४६  | ४७ | ४९    |

केवलदर्शन ४२

| स. | अ. |
|----|----|
| ३० | १२ |
| ४२ | १२ |
| ०  | ३० |

- लेख्या मार्गणामे कृष्ण और नीलमें तीर्थकर और आहारकाद्विकका उदय न होनेसे  
 २० उदययोग्य प्रकृतियाँ एक सौ उन्नीस । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार; क्योंकि आगममें  
 कहा है कि असंयत गुणस्थान पर्यन्त छह लेख्या होती हैं ।

- मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर व्युच्छित्ति छह । क्योंकि सासा-  
 दन तो मरकर नरकमें नहीं जाता । मिथ्रमें आनुपूर्वीका उदय नहीं होता, और असंयत मरकर  
 दूसरे आदि नरकमें उत्पन्न नहीं होता । इसलिए नरकानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें ही  
 २५ होती है । सासादनमें अपनी नौ तथा असंयत सम्बन्धी देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु और  
 तिर्यचानुपूर्वी मिलकर तेरह १३ । मिथ्रमें मिथ्र एक । असंयतमें दूसरी कषाय चार, नरक-  
 गति, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब बारह १२ ।

जहणियं हवे नियमा एंडु तिर्यंगानुपूर्व्योदयमिल्ल । देवनारकसम्यग्दृष्टिगळु कर्मभूमियोळु पुटदुवरादोडं तिर्यंगतियोळुपुटदरु । मनुष्यानुपूर्व्योदयमसंयतसम्यग्दृष्टियोळं तेंदोडे नरकादिवं वप्पं सम्यग्दृष्टिगे कर्मभूमियोळुत्पत्तिनियममुंठपुदरिवं तन्मनुष्यभवप्रथमकालदोळंतमुंहुतं-पय्यंतं पूर्वभवलेश्येयपुदरिवं मनुष्यानुपूर्व्योदयं कृष्णनोललेश्याऽसंयतनोळक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोलु मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळुदयमक्कुं २ उदयंगळु नूर पदिनेळु ११७ ॥ ५  
सासादनगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळे दु ८ । उदयंगळु नूर हसो दु १११ । मिश्र गुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पतोदरोळु कूडिमत्तमुदयप्रकृतिगळोळु मनुष्यानुपूर्व्यं कळेदनुउदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पतो दु २१ । उदयंगळु तो भतेंदु ९८ ॥ असंयतगुणस्थानदोळो दु गूडियनुदयंगळिप्पतेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यंमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरल-नुदयंगळिप्पत्तु २० । उदयंगळु तो भतो भत्तु ९९ । संदृष्टि :—

कृ० ती० यो ११९

| ०        | मि  | सा  | मि | अ  |
|----------|-----|-----|----|----|
| व्युच्छि | ६   | १३  | १  | १२ |
| उद       | ११७ | १११ | ९८ | ९९ |
| अनु      | २   | ८   | २१ | २० |

दुर्भगत्रयं च १२ । तिर्यंगानुपूर्व्यं कुतो न ? 'भोगापुण्यगसम्मे काउत्स जहणियं हवे' इति नियमात् देवनारका-संयतस्य तु तिर्यक्स्वनुत्पत्तेः । मनुष्यानुपूर्व्यं कथं स्यात् ? नरकादागच्छत्सम्यग्दृष्टेः कर्मभूम्युत्पत्तिनियमात्पुन-प्रथमकालांतर्मुहूर्तं पूर्वभवलेश्यासद्भावात् । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वेऽनुदयः, उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादने षट् संयोज्यानुदयोऽष्टौ ८ । उदय एकादशोत्तरशतं १११ । मिश्रेऽनुदयः त्रयोदश मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रीदयादेकविंशतिः २१ । उदयोऽष्टानवतिः ९८ । असंयतेऽनुदय एकं मिलित्वा सम्यक्त्वमनुष्यानु- १५

शंका—यहाँ तिर्यंगानुपूर्वी क्यों नहीं है ?

समाधान—आगममें कहा है—'भोगभूमियाँ निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टिके कापोत लेश्याका जघन्य अंश होता है,' ऐसा नियम होनेसे देव और नारक असंयत तिर्यंगोंमें उत्पन्न नहीं होता ।

शंका—तब मनुष्यानुपूर्वीका उदय यहाँ कैसे सम्भव है ?

समाधान—नरकसे आनेवाला सम्यग्दृष्टी नियमसे कर्मभूमिके मनुष्योंमें उत्पन्न होता है और उसके भवके प्रथम अन्तर्मुहूर्त कालमें पूर्व भवकी लेश्या रहती है इससे यहाँ असंयतमें मनुष्यानुपूर्वीका उदय सम्भव है । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व दोका अनुदय । उदय एक सौ सतरह ।

२. सासादनमें छह मिलाकर अनुदय आठ ८ । उदय एक सौ ग्यारह १११ ।

३. मिश्रमें अनुदय तेरह और मनुष्यानुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस २१ ।

उदय अठानवे ९८ ।

- कपोतलेइयामागंगेयोऽनुदययोग्यंगळ कृष्णनीललेइयाद्वयोळेंतंते नूर हत्तोभत्तु ११९ । मिथ्यादृष्ट्यादि नाळकुं गुणस्थानंगळपुवु । मिथ्यादृष्टियोळु तन्न गुणस्थानद प्रकृतिपंचकवकुदय-  
व्युच्छित्तियक्कं ५ ॥ सासादननोळं तन्न गुणस्थानद नवप्रकृतिगळु ९ । असंयतनत्ताणिवंद सुर-  
द्विकमुं २ सुरायुष्यमुं १ मंतु पन्नरडुं प्रकृतिगळुगुदयव्यच्छित्तियक्कं १२ ॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृति-  
५ गुदयव्युच्छित्तियक्कं ॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ नरकद्विकमुं २ । नरकायुष्यमुं १  
वैक्रियिकद्विकमुं २ । तिर्यंगमनुष्यानुपूर्व्यद्विकमुं २ दुर्भगत्रयमुं ३ मंतु पदिनाळकुं प्रकृतिगळुगुदय-  
व्युच्छित्तियक्कं १४ । मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रसम्यक्त्व प्रकृतिद्वयवकुदय-  
मवकुं २ । नूर हदिनेळु प्रकृतिगळुगुदयमवकुं ११७ ॥ सासादनगुणस्थानदोळुदुग्गुडियनुदयंगळेंदोळु  
नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेंदु ८ । उदयंगळु नूर  
१० हन्नोदु १११ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळु पन्नरडुग्गुडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयं-  
गळोळु कूडुत्तमुदयप्रकृतिगळोळु आनुपूर्व्यद्वयं २ कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळि-  
प्पत्तोदु २१ । उदयंगळु तोभत्तेंदु ९८ ॥ असंयतगुणस्थानदोळोदुग्गुडियनुदयंगळिप्पत्तरडोळु  
सम्यक्त्वप्रकृतियं मूरानुपूर्व्यंगळुमंतु नाळकुं प्रकृतिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनु-  
दयंगळु पदिनेदु १८ । उदयंगळु नूरोदु १०१ ॥ संदृष्टिः—

१५ पूर्व्योदयाद् विशतिः २० । उदय एकान्तशतं ९९ ।

- कपोतलेइयामागंगेयोऽनुदययोग्यं कृष्णनीलवदेकान्तविशतिशतं ११९ । गुणस्थानानि आद्यानि चत्वारि ।  
तत्र मिथ्यादृष्टौ निजपंच व्युच्छित्तिः । सासादने स्वकीयनवासंयतागतसुरद्विकसुरायुषी च १२ । मिश्रे मिश्रं  
१ । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं नरकद्विकं तदायुर्वैक्रियिकद्विकं तिर्यंगमनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं च ११४ । एवं  
सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वे अनुदयः उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादने पंच नरकानुपूर्व्यं च  
२० मिलित्वाऽनुदयोऽष्टौ ८ । उदय एकादशोत्तरशतं १११ । मिश्रेऽनुदयो द्वादशानुपूर्व्यद्वयं च संयोज्य मिश्रोदयादे-  
कविशतिः २१ । उदयोऽष्टानवतिः ९८ । असंयतेऽनुदयः एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यत्रयोदयादष्टादश १८ ।  
उदय एकोत्तरशतं १०१ ।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे बीस  
२० । उदय नित्यानवे ९९ ।

- २५ कपोत लेइयामें उदययोग्य कृष्ण-नीलकी तरह एक सौ उन्नीस । गुणस्थान आदिके  
चार । उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँचकी व्युच्छित्ति । सासादनमें अपनी नौ तथा असंयत  
सम्बन्धी देवगति, देवानुपूर्वी और देवायु मिलाकर १२ ।

मिश्रमें मिश्र एक । असंयतमें दूसरी कषाय चार, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु,  
वैक्रियिकद्विक, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब चौदह । ऐसा होनेपर ।

- ३० १. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय । उदय एक सौ सतरह ११७ ।

२. सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय आठ ८ । उदय एक सौ  
ग्यारह ।

३. मिश्रमें अनुदय बारह और दो आनुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे  
इक्कीस २१ । उदय अठानवे ९८ ।

कपोत यो० ११९ ।

| गु   | मि  | सा  | मि | अ   |
|------|-----|-----|----|-----|
| व्यु | ५   | १२  | १  | १४  |
| उ    | ११७ | १११ | ९८ | १०१ |
| अ    | २   | ८   | २१ | १८  |

भवनत्रयदेवकर्कळनिर्गमपदार्थाप्तकालबोळु अशुभलेश्यात्रयमे शरीरपर्याप्तिपिदं भेले तेजोलेइयाजघन्यांशमेयपुर्दारिवमशुभलेश्यात्रयासंयतसम्यग्दृष्टिभवनत्रयबोळु पुट्टनपुर्दारिदं देव-  
द्विकमुं १ देवायुष्यमुं १ सासादनसम्यग्दृष्टियोळुदधव्युच्छित्तियादुवेकंबोडे अशुभलेश्यात्रय  
सासादनना भवनत्रयबोळु पुट्टदुवनपुर्दारिवमंते पेळल्पदुदु ॥

साणे सुराउसुरगदिदेवतिरिक्खाणु वोच्छिदी एवं ।

काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुवोच्छेदो ॥३२६॥

सासादने सुरायुः सुरगति देवगतितिर्यगानुपूर्व्यव्युच्छित्तिरेवं । कापोते असंयतगुणं नरक-  
तिर्यगानुपूर्व्यव्युच्छेदः ॥

अबु कारणमाणि कृष्णनीललेश्याद्वय सासादननोळु सुरायुष्यमुं सुरगतियुं देवानुपूर्व्यमुं  
तिर्यगानुपूर्व्यमुं मंतु नालकुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरला सासादननोळु १०  
पविमूरं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३ ॥ एवं काओदे कपोतलेश्ययोळमित नूर हत्तो भत्तं  
प्रकृतिगळदययोग्यंगळप्पु ११९ । वा कपोतलेश्याऽसंयतगुणस्यानबोळु नरकानुपूर्व्यमुं

भवनत्रयदेवानामपर्याप्तकाले अशुभलेश्यात्रयं । पर्याप्तिरेपरि तेजोलेइयाजघन्यांशः । अशुभलेश्यात्रया-  
संयतानां भवनत्रयाऽनुत्पत्तेर्देवद्विकं देवायुः सासादने व्युच्छित्तिः तादृक् सासादनानां तत्रोत्पत्तेः ॥३२५॥  
तथैवाह—

ततः कारणात्कृष्णनीलयोः सासादने सुरगत्यायुरानुपूर्व्यतिर्यगानुपूर्व्याणि व्युच्छित्तिरेवं सति त्रयोदश

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व और तीन आनुपूर्वीका उदय  
होनेसे अठारह १८ । उदय एक सौ एक १०१ ।

भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके अपर्याप्त अवस्थामें तीन अशुभ लेश्या होती  
हैं । और पर्याप्त होनेपर तेजोलेइयाका जघन्य अंश होता है । तीन अशुभलेश्यावाले असंयत २०  
सम्यग्दृष्टी मरकर भवनत्रिकमें उत्पन्न नहीं होते । इसलिए देवगति, देवानुपूर्वी और देवायु-  
की व्युच्छित्ति सासादनमें कही है; क्योंकि अशुभलेश्यावाले सासादन सम्यग्दृष्टि भवनत्रिकमें  
उत्पन्न हो सकते हैं ॥३२५॥

वही कहते हैं—

इसी कारणसे कृष्ण और नीलमें सासादन गुणस्थानमें देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, २५  
और तिर्यचानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होनेसे तेरहकी व्युच्छित्ति होती है ।



तिर्यगानुपूर्व्यमुमेरडु मुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवंतागुत्तं विरला कपोतलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिप्रथम-  
पृथिव्योळु पुट्टुवनप्पुवरिदं द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ नरकद्विकमुं २ वैक्रियिकद्विकमुं २  
नारकायुष्यमुं १ तिर्यगानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमुं ३ मनुष्यानुपूर्व्यमुं पदिनाल्लुं प्रकृतिगळ्पुदय-  
व्युच्छित्तिवकुमे दितु पेळल्पट्टुदप्पुवरिदं ।

५ अनंतरं शुभलेश्यात्रयमार्गणयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळवपः—

तेउतिए सगुणोधं णादाविगिगिगल थावरचउवकं ।

णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे ॥३२७॥

तेजस्त्रये स्वगुणौघः नातापैकविकलस्यावरचतुष्कं । नरकद्वयतवायुस्तिर्यगानुपूर्व्यं नरानु-  
पूर्व्यं न मिथ्यादृष्टिद्विके ॥

१० तेजःपद्मशुक्ललेश्यात्रयमार्गणयोळु स्वगुणौघमक्कुमल्लियातपनाममुं १ एकेन्द्रियजातियुं  
१ विकलत्रयमुं ३ स्थावरमुं १ । सूक्ष्ममुं १ अपर्याप्तमुं १ साधारणशरीरमुं १ नरकद्विकमुं २ ।  
नरकायुष्यमुं १ । तिर्यगानुपूर्व्यमुं १ यितु पदिमूर्धं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरो भत्तुं प्रकृतिगळ-  
दय योग्यगळप्पुवत्ति । तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयदोळु तीर्थं कळेदु योग्यप्रकृतिगळ नूरेदु

१३ । एवं कपोतलेश्यायामपि एकान्तविंशतिशतमुदययोग्यं भवति ११९ । तदसंयते गुणस्थाने नरकतिर्यगानु-  
१५ पूर्व्यं व्युच्छित्तिरेवं सति तदसंयतप्रथमपृथ्यामुत्पद्यते तेन द्वितीयकषायचतुष्कं नरकद्विकवैक्रियिकद्विकं नारकायु-  
स्तिर्यगानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं मनुष्यानुपूर्व्यं चेति चतुर्दश व्युच्छित्तिरित्युक्तं ॥३२६॥ अथ शुभलेश्यात्रयस्याह—

तेजःपद्मशुक्ललेश्यासु स्वगुणौघः । तत्रातप एकेन्द्रियं विकलत्रयं स्थावरं सूक्ष्ममपर्याप्तं साधारणं नरकद्विकं  
तवायुस्तिर्यगानुपूर्व्यं च नेति नवोत्तरशतमुदययोग्यं भवति । तत्रापि तेजःपद्मयोस्तीर्थकरत्वं नेत्यष्टोत्तरशतं

इसी प्रकार कापोत लेश्यामें भी उदययोग्य एक सौ उन्नीस ११९ हैं । वहाँ असंयत  
२० गुणस्थानमें नरकानुपूर्वी और तिर्यचानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर कापोत-  
लेश्यावाला असंयत प्रथम नरकमें उत्पन्न होता है अतः दूसरी कषाय चार, नरकगति,  
नरकानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, तिर्यचानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन और मनुष्यानुपूर्वी  
इन चौदहकी व्युच्छित्ति कही है ॥३२६॥

कृष्णनील रचना ११९

|       | मि. | सा. | मि. | अ. |
|-------|-----|-----|-----|----|
| व्यु. | ६   | १३  | १   | १२ |
| उदय   | ११७ | १११ | ९८  | ९९ |
| अनुदय | २   | ८   | २१  | २० |

कापोत रचना ११९

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  |
|-------|-----|-----|-----|-----|
| व्यु. | ५   | १२  | १   | १४  |
| उदय   | ११७ | १११ | ९८  | १०१ |
| अनु.  | २   | ८   | २१  | १८  |

आगे तीन शुभ लेश्याओंमें कहते हैं—

२५ तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यामें अपने गुणस्थानवत् जानना । उत्तमें आतप, एकेन्द्रिय,  
विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु और  
तिर्यचानुपूर्वीका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं । उनमें भी तेजोलेश्या और पद्म-

१०८। मिथ्यादृष्ट्यावि सप्तगुणस्थानं भङ्गपुवलि मिथ्यादृष्टिगोळु मिथ्यात्वप्रकृतियो देवदय-  
व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्क मुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळु  
मिश्रप्रकृतियो देवकुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरवतुष्कमुं ४  
सुरायुष्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमुं ३ मंतु त्रयोदशप्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं  
१३॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायमुं तिर्यग्गायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्गोत्रं १ तिर्यग्गतिमुं १ ५  
मंतं दुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळाहारद्विकमुं २। स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ मंतु  
पंचप्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृतिपुमंतिमसंहननत्रयमुमंतु  
नाल्कुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियु  
सम्यक्त्वप्रकृतियु आहारकद्विकमुं २ णराणू ण मिच्छ दुये येदु मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ मंत्यदुं प्रकृति-  
गळगनुदयंगळक्कुं ५। उदयंगळ नूर मूर १०३॥ सासादनगुणस्थानदोळो दुग्गडियनुदयंगळार ६। १०  
उदयंगळ नूररडु १०२॥ मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळ हतरोळु मिश्रप्रकृतियं  
कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयंगळोळु देवानुपूर्व्यं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळ  
पत्तु १०। उदयंगळ तो भत्तेदु ९८॥ असंयतगुणस्थानदोळो दुग्गडियनुदयंगळ पत्तोदरोळु  
सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यं देवानुपूर्व्यं मुमनंतु मूरं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु

१०८। गुणस्थानानि सप्ताद्यानि। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः १। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं ४। १५  
मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायाः सुरद्विकं वैक्रियिकद्विकं सुरायुमनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश।  
देशसंयते तृतीयकषायास्तिर्यग्गायुष्योत्तो नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेत्यष्टौ ८ प्रमत्ते आहारकद्विकं स्त्यानगृद्धियं  
चेति पंच ५। अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं चेति चत्वारि ४। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वमाहा-  
रकद्विकं 'णराणू ण मिच्छदुये' इति मनुष्यानुपूर्व्यं चेति पंचानुदयः ५ उदयस्थितरशतं १०३। सासादने एकं  
संयोज्यानुदयः षट् उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रेऽनुदयः चतुष्कं देवानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयाद्दश १०। २०  
उदयोऽष्टानवतिः ९८। असंयतेऽनुदये एकं संयोज्य सम्यक्त्वमनुष्यदेवानुपूर्व्योदयादष्टौ ८। उदयः शतं १००।

लेख्यामे तीर्थकरका उदय होनेसे एक सौ आठका उदय है। गुणस्थान आदिके सात होते हैं।  
उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार।  
मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, देवायु,  
मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब तेरह १३। देशसंयतमें तीसरी कषाय चार, तिर्यचायु, २५  
उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यचगति आठ। प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन आहारकद्विक ५।  
अप्रमत्तमें सम्यक्त्व और अन्तके तीन संहनन सब चार। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और मनुष्यानुपूर्वी मिलकर अनुदय  
पाँच। उदय एक सौ तीन १०३।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय छह। उदय एक सौ दो १०२।

३. मिश्रमें अनुदय चार और देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे दस १०।  
उदय अठानवे ९८।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय  
होनेसे आठ ८। उदय सौ १००।

कूडुत्तं विरलनुदयंगळं दु ८ । उदयंगळु नूरु १०० । देशसंयतगुणस्थानदोळु पविमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तो दु २१ उदयंगळेभत्तेळु ८७ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळे दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तो भत्तु अवरोळाहारकद्विकमं कळे दुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तेळु २७ उदयंगलेभत्तो दु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळुदुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेरदु ३२ ॥ उदयंगलेप्पत्तारु ७६ ॥ संहृष्टि :—

तेज० पद्य० योग्य १०८ ।

| ०    | मि  | सा  | मि | अ   | दे | प्र | अ  |
|------|-----|-----|----|-----|----|-----|----|
| व्यु | १   | ४   | १  | १३  | ८  | ५   | ४  |
| उ    | १०३ | १०२ | ९८ | १०० | ८७ | ८१  | ७६ |
| अ    | ५   | ६   | १० | ८   | २१ | २७  | ३२ |

- ५ शुक्ललेश्यामागर्गणयोळु योग्यप्रकृतिगळु नूरो भत्तु १०९ । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं सोवलागि पविमूरुं गुणस्थानंगळपुवलि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियो देयुदयव्युच्छित्ति १ । सासादननोळनंतानुबधिकषायचतुष्कमुदयव्युच्छित्तिवक्कुं ४ ॥ मिथनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तिवक्कुं १ ॥ असंयतगुणस्थानदोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ मनुष्यानुपूष्यमुं १ दुर्भगत्रयमुमितु पविमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिवक्कुं १३ ॥ देशसंयतावि-
- १० गुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिवं अडपंचय चउर छक्क छच्चेव इगिदुगसोळस बुवाळ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिवक्कुमंतानुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृति सम्यक्त्वप्रकृति आहारद्विक तीर्त्यकरनाम णराणू ण मिच्छदुगे एंदु मनुष्यानुपूष्यमुंमुं षट्प्रकृतिगळनुदयंगळु ६ उदयंगळु

देशसंयते त्रयोदश संयोज्यानुदयः एकविंशतिः २१ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयः सप्तविंशतिः २७ । उदय एकाशीतिः । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयो द्वाविंशत् ३२ । उदयः

१५ षट्सप्ततिः ७६ ।

शुक्ललेश्यायां—उदययोग्यं नवोत्तरशतं १०९ । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश १३ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंतानुबधिकषायचतुष्कं । मिश्रे मिश्रं । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं, सुरचतुष्कं, सुरायुर्मनुष्यानुपूष्यं दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश १३ । देशसंयतादिषु यथाक्रमं 'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव

५. देशसंयतमे तेरह मिलाकर अनुदय इक्कीस २१ । उदय सत्तासी ८७ ।

२० ६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय सत्ताईस, उदय इक्कासी ८१ ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय बत्तीस ३२ । उदय छियत्तर ७६ ।

शुक्ललेश्यामें उदययोग्य एक सौ नौ १०९ । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि तेरह । मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार । मिश्रमें मिश्र ।

२५ असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन ये तेरह । देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह,

नूर मूर १०३ । सासादनगुणस्थानदोळु ओ दुगूडियनुदयंगळु ७ । उदयंगळु नूररेडु १०२ ॥ मिश्र-  
गुणस्थानदोळु नालकुगूडियनुदयंगळु पन्नोदरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदय-  
प्रकृतिगळोळु देवानुपूर्व्यं कळेदुदयंगळोळु कुडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नोदु । उदयंगळु  
तोभत्तेदु ९८ ॥ असंयतगुणस्थानदोळोदु गूडियनुदयंगळु पन्नोरडोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं  
देवानुपूर्व्यं मनुष्यानुपूर्व्यमन्तु मूरं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोभत्तु ९ । ५  
उदयंगळु नूर १०० ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२ । उदयंगळेभ-  
त्तेळु ८७ ॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळोदु गूडियनुदयंगळु मूवत्तरोळु आहारद्विकमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं  
विरलनुदयंगळिप्पत्तेदु २८ । उदयंगळेभत्तोदु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळोदु गूडियनुदयंगळु  
मूवत्तमूर ३३ उदयंगळेप्पत्तारु ७६ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नालकु गूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु  
३७ । उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु आरुगूडियनुदयंगळु नालवत्तमूर ४३ । १०  
उदयंगळरुवत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नालवत्तोभत्तु ४९ उदयंग  
ळरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषाय गुणस्थानदोळोदु गूडियनुदयंगळवत्तु ५० । उदयंगळवत्तोभत्तु-

इगिदुगसोलसवादाळ' । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकतीर्थकरत्वाति 'णराणू ण मिच्छङ्कुने' इति  
मनुष्यानुपूर्व्यं चेत्यनुदयः ६ । उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३ । सासादने एकं संयोज्यानुदयः सप्त ७ । उदयो द्व्युत्तर-  
शतं १०२ । मिश्रेऽनुदये चतुष्कं देवानुपूर्व्यं च संयोज्य मिश्रोदयादेकादश उदयोऽष्टानवतिः ९८ । असंयते एकं १५  
संयोज्य सम्यक्त्वदेवमनुष्यानुपूर्व्योदयान्नव ९ उदयः शतं १०० । देशसंयते त्रयोदश संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः  
२२ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदय एकाशीतिः  
८१ । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रयस्त्रिंशत् ३३ । उदयः षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयः  
सप्तत्रिंशत् ३७ । उदयो द्वाप्ततिः ७२ । अनिवृत्तिकरणेऽनुदयस्त्रिचत्वारिंशत् ४३ । उदयः षट्षष्टिः ६६ ।  
सूक्ष्मसांपराये षट्संयोज्यानुदय एकान्नपंचाशत् ४९ । उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकं संयोज्यानुदयः २०

छह एक, दो, सोलह तथा बयालीस । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थकर, मनुष्यानुपूर्वी, इन छहका अनुदय । उदय एक सौ तीन ।
२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय सात । उदय एक सौ दो ।
३. मिश्रमें अनुदय चार और देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे ग्यारह । २५ उदय अठानवे ।
४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व, देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय नौ । उदय एक सौ १०० ।
५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय बाईस २२ । उदय सत्तासी ८७ ।
६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय अठाईस । उदय ३० इक्यासी ।
७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तैंतीस । उदय छियत्तर ।
८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७ । उदय बहत्तर ७२ ।
९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदय तैंतालीस ४३ । उदय छियासठ ६६ ।

५९ । क्षीणकषायगुणस्थानदोळ रेडु गूडियनुदयंगळध्वत्तेरडु ५२ । उदयंगळध्वत्तेळ ५७ ॥ सयोगि-  
केवलभट्टारकगुणस्थानदोळ पदिनारुगूडियनुदयंगळध्वत्तेरडोळ तीर्थमं कळ दुदयंगळोळ  
कूडुत्तं विरलनुदयंगळध्वत्तेळ ६७ । उदयंगळ नालवत्तरडु ४२ । संदृष्टि :—

शुक्ललेइयायोग्य १०९

| ०    | मि  | सा  | मि | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  |
|------|-----|-----|----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|
| व्यु | १   | ४   | १  | १३  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ४२ |
| उ    | १०३ | १०२ | ९८ | १०० | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ |
| अ    | ६   | ७   | ११ | ९   | २२ | २८  | ३३ | ३७ | ४३ | ४९ | ५० | ५२   | ६७ |

भन्विदरुवसमवेदगखइए सुगुणोघमुवसमे खइए ।

ण हि सम्ममुवसमे पुण णादितियाणू य हारदुगं ॥३२८॥

भव्येत्तरोपशमवेदकक्षायिके स्वगुणौघः उपशमे क्षायिके न हि सम्यक्त्वमुपशमे पुनन्तादित्र-  
यानुपूठ्यं चाहारकद्विकं ॥

भव्यमार्गणोयोळनितरमभव्यमार्गणोयोळमुपशमसम्यक्त्वमार्गणोयोळं वेदकसम्यक्त्वमार्ग-  
णोयोळं क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणोयोळं स्वगुणौघमवकुमुपशमदोळं सम्यक्त्वप्रकृतियिल्लेके दोडे  
१० उपशमसम्यक्त्वदोळ दर्शनमोहत्रयके प्रशस्तोपशममुट्पुदरिदमुदयकके बारदु । क्षायिकसम्यक्त्व-  
दोळ दर्शनमोहत्रयं क्षपियिसत्पट्पुदरिद नष्टमादुदप्पदरिदं । मत्तमुपशमसम्यक्त्वदोळ

पंचाशत् ५० । उदयः एकान्तषष्टिः ५९ । क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयो द्वापंचाशत् ५२ । उदयः सप्तपंचाशत्  
५७ । सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयादनुदयः सप्तषष्टिः ६७ । उदयो द्वाचत्वारिंशत् ४२ ॥ ३२७ ॥

भव्याभव्योपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु स्वगुणौघः किंतु उपशमसम्यक्त्वे दर्शनमोहस्य प्रशस्तो-

१५ १०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय उनचास ४९ । उदय साठ ६० ।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय पचास ५० । उदय उनसठ ५९ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बावन ५२ । उदय सत्तावन ५७ ।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय सड़सठ । उदय  
२० बयालीस ॥३२७॥

तेज-पद्मलेइया १०८

शुक्ललेइया १०९

| मि. | सा. | मि | अ.  | दे. | प्र. | अ. |
|-----|-----|----|-----|-----|------|----|
| १   | ४   | १  | १३  | ८   | ५    | ४  |
| १०३ | १०२ | ९८ | १०० | ८७  | ८१   | ७६ |
| ५   | ६   | १० | ८   | २१  | २७   | ३२ |

| मि. | सा. | मि | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. | स. |
|-----|-----|----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|----|
| १   | ४   | १  | १३  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    | ४२ |
| १०३ | १०२ | ९८ | १०० | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    | ४२ |
| ६   | ७   | ११ | ९   | २२  | २८   | ३३ | ३७ | ४३ | ४९  | ५० | ५२    | ६७ |

भव्य, अभव्य, उपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व मार्गगाओं-  
में अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना । किन्तु उपशम सम्यक्त्वमें दर्शनमोहका प्रशस्त उपशम

नरकतिथ्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमुमाहारकद्विकमुमिल्लेके'दोडे' प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु प्राग्बद्धनरक-  
तिथ्यग्मनुष्यायुष्यरावोडं मरणमिल्लेके'दोडे' :—

मिस्ताहारस्सयाखवगा चडमाणपढमपुव्वा य ।

पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥

अणसंजोविमिच्छे मुहुत्त अंतोत्ति णत्थि मरणं तु ।

कदकरणिज्जं जाव दु सवपरट्टाण अट्ठपदा ॥

निवृत्यपथ्याप्रकरं आहारकमिश्रकायकं क्षपकरुगळुमुपशमश्रेण्यारोहणप्रथमभागापूर्व-  
करणं प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळुं सप्तमपृथ्वीगुणप्रतिपन्नरुगळुं न मरंति मरणमनेन्दर ।  
अनंतानुबन्धिं विसंजोयिसि मिथ्यात्वमं पोद्दिववगंळगमंतम्मुहूर्तंपर्यंतं मरणमिल्ल । दर्शनमोह-  
क्षपकंगे कृतकृत्यत्वमंनेवरमंनेवरं मरणमिल्ल । तु शब्दादिदं बद्धदेवायुष्यरुगळुपशमश्रेण्यारोहणमं माडि मत्तमवतरणदोळुपशांतकषायगुणस्थानाद्यपूर्वकरणगुणस्थानावसानदोळु मर-  
णमावोडे देवासंयतरपरवु कारणदिव प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु नरकतिथ्यामनुष्यानुपूर्व्यो- १०

पशमात् क्षायिकसम्यक्त्वे च क्षयात् सम्यक्त्वप्रकृतिर्न । पुनः उपशमसम्यक्त्वे नरकतिथ्यग्मनुष्यानुपूर्व्याहारकद्विक-  
मपि न, प्राग्बद्धतदायुषामपि तन्नामरणात् ॥ ३२८ ॥

निवृत्यपर्याप्ता आहारकमिश्रकायाः क्षपका उपशमश्रेण्यारोहकप्रथमभागापूर्वकरणाः प्रथमोपशम- १५  
सम्यक्त्वाः सप्तमपृथ्वीगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियन्ते । अनंतानुबन्धिकषायान्विसंयोज्य मिथ्यात्वं प्राप्तस्यांतर्मुहूर्त-  
पर्यंतं<sup>३</sup> दर्शनमोहक्षपके च कृतकृत्यत्वं यावत्तावन्मरणं नास्ति । तुशब्दाद्बद्धदेवायुषका उपशमश्रेण्यवतरणेऽपूर्व-  
करणगुणस्थानावसाने म्रियन्ते तदा देवासंयता एव जायन्ते ततो न प्रथमोपशमसम्यक्त्वे नरकतिथ्यग्मनुष्यानुपूर्व्यो-

होनेसे और क्षायिक सम्यक्त्वमें क्षय होनेसे सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय नहीं होता । पुनः  
उपशम सम्यक्त्वमें नरकानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी तथा आहारकद्विकका उदय २०  
नहीं होता, क्योंकि पूर्वमें जिन्होंने इन आयुओंका बन्ध किया है उनका भी उपशम सम्यक्त्व-  
में मरण नहीं होता ॥३२८॥

बही कहते हैं—

निवृत्यपर्याप्त अवस्थावालोंका, आहारक मिश्रकायवालोंका, क्षपक श्रेणीवालोंका  
उपशमश्रेणिपर चढ़े हुए अपूर्वकरणके प्रथम भागवालोंका, प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टियोंका, और २५  
सातवें नरकमें ऊपरके गुणस्थानोंमें स्थित जीवोंका मरण नहीं होता । तथा अनंतानुबन्धी  
कषायका विसंयोजन करके जो पीछे मिथ्यात्वमें आता है उसका एक अन्तर्मुहूर्त तक मरण  
नहीं होता । दर्शन मोहका क्षय करनेवालेके जबतक कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिपना होता है  
तबतक मरण नहीं होता । 'तु' शब्दसे जिन्होंने पूर्वमें देवायुका बन्ध किया है वे उपशम श्रेणी  
से उतरनेपर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त मरते हैं तो मरकर असंयत सम्यग्दृष्टि देव ही होते ३०  
हैं । अतः प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें नरकानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी और मनुष्यानुपूर्वी का उदय

१. द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळु नरकतिथ्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमिल्लेदोडं प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळीयानुपूर्व्यत्रयं  
षट्सर्द ए'दोडे' पेलदपड—कृतकृत्यवेदकस्य प्रथमांतर्मुहूर्तं पर्यंतं मरणं नास्ति । गुणस्थानच्युतिर्गतिच्युति-  
रित्युभयं । सवपरमट्टाणं । २. द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळे'बुहु' सुपाठं ॥ ३. ब'तं' मरणं नास्तीति द' ।

वयमितल । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वबोलाबोडे देवायुष्यमं बिट्ठु शेषायुष्यंगळगे सत्त्वमितलेके बोडे उपशमश्रेण्यारोहणनिमित्तमागि सातिशयाप्रमत्तसंयतं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमं कैकोळगुमपुर्वरिव-  
मणुवदमहव्वदाई ण लहइ देवाउगं मोत्तु मे वो नियममुंठपुर्वरिवमा मूर मायुष्यंगळगे सत्त्वमितलदु  
कारणदिवमा मूर मानुपूठयंगळगुवयमितल । प्रथमोपशमसम्यक्त्वबोळं, द्वितीयोपशमसम्यक्त्व-  
५ बोलमाहारकऋद्धिप्राप्तरिल्लपुर्वरिवमाहारकद्विकक्कमुवयमितले वरिउवितरियत्पडुत्तं विरलु भव्य  
मार्गणोयाळु मूलौघमपुर्वरिवमुवययोग्यप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ गुणस्थानंगळुमल्लि पवि-  
नालकुमपुवु । मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिवमुवयव्युच्छित्तियुवयानुवयप्रकृतिगळु  
मुन्नं गुणस्थानबोळु पेळवत्ते रचनाविशेषमं माडुत्तं विरलु संदृष्टि :—

भव्य मा० योग्य १२२ ।

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|-----|
| व्यु | ५   | ९   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ३० | १२  |
| उ    | ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ | १२  |
| अ    | ५   | ११  | २२  | १८  | ३५ | ४१  | ४६ | ५० | ५६ | ६२ | ६३ | ६५   | ८० | ११० |

१० दयः । द्वितीयोपशमसम्यक्त्ववेगि देवायुविना न शेषायुःसत्त्वं उपशमश्रेण्यारोहणार्थं सातिशयाप्रमत्तेनैव तत्सम्यक्त्वस्य स्वीकरणात् 'अणुवदमहव्वदाई ण लहइ देवाउगं मोत्तु' इति नियमात् न तदानुपूर्व्यत्रयस्य सत्त्वं । तत् उदयोऽपि न । उभयोपशमसम्यक्त्वे आहारकऋद्धिप्राप्ते न तद्विकोदयः । तथा सति भव्यमार्गणायां मूलौघ इत्युदययोग्यं द्वाविंशत्युत्तरशतं । गुणस्थानानि चतुर्दश । व्युच्छित्त्यादि गुणस्थानवत् । संदृष्टि :—

भव्यमार्ग = योग्य १२२ ।

|      |     |     |     |     |    |    |    |    |    |    |    |    |    |     |
|------|-----|-----|-----|-----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|-----|
| व्यु | ५   | ९   | १   | १७  | ८  | ५  | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६ | ३० | १२  |
| उ    | ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७ | ८१ | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७ | ४२ | १२  |
| अ    | ५   | ११  | २२  | १८  | ३५ | ४१ | ४६ | ५० | ५६ | ६२ | ६३ | ६५ | ८० | ११० |

नहीं होता । द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें भी देवायुके विना शेष आयुका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि उपशम श्रेणिपर आरोहण करने के लिए सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव ही  
१५ द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको स्वीकार करता है । और अणुवत् महावत् देवायुके सिवाय अन्य आयुका बन्ध करनेवाले के होते नहीं, ऐसा नियम है । अतः उपशम सम्यक्त्वमें देव बिना तीन आनुपूर्वी का सत्त्व नहीं होता । इसीसे उदय भी नहीं होता । दोनों ही उपशम सम्यक्त्वोंमें आहारकऋद्धि प्राप्त नहीं होती । अतः उपशम सम्यक्त्वमें आहारकद्विकका उदय नहीं होता ।

ऐसा होनेपर भव्य मार्गणामें उदययोग्य एक सौ बाईस । गुणस्थान चौदह ।  
२० व्युच्छित्ति आदि गुणस्थानवत् जानना । संदृष्टि—

अभ्यस्यमार्गणेष्वोक्त मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदयवकुमलिल सामान्योदययोदयप्रकृतिगळ नूर  
 दितेळु ११७। उपशमसम्यक्त्वमार्गणेष्वोक्तसंयतनोळुदयप्रकृतिगळ नूर नात्करोळु णादि  
 तियाणू य हारदुगमंडु नरकातिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयं सम्यक्त्वप्रकृतिगळं नूत्तुं प्रकृतिगळं  
 कळेदु शेष नूर प्रकृतिगळुदययोग्यगळपुत्रु १०० ॥ असंयताद्यष्टगुणस्थानं गळपुत्रुल्लियसंयतनोळु  
 द्वितीयकषायचतुष्कं ४ सुरचतुष्कं ४ सुरायुष्यं १ नरकायुष्यं १ नरकगतिनामं १ ५  
 दुर्भगत्रयं ३ मंतु पदिनात्कं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिवकुं १४। यिल्लि प्रथमोपशमसम्यक्त्वा-  
 पेक्षेयिदं नरकगतिं तदायुष्यमरियत्पडुं ॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कं ४ तिर्यंगा-  
 युष्यं १ उद्योतं १ नीचैर्गोत्रं १ तिर्यग्गतिं १ अंतेंदुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिवकुं ८  
 मिल्लिपुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षेयिदमो तिर्यंगापुराविप्रकृतिचतुःकोदयमरियत्पडुं ॥ प्रमत्त-  
 संयतनोळु उभयोपशमसम्यक्त्ववोळमाहारकद्विप्राप्तरिल्लपुत्रिरिनाहारकद्वयं कळेदु स्त्यान- १०  
 गृद्वित्रयवर्कमैयुदयव्युच्छित्तिवकुं ३ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृतिगळुदयमिल्लपुत्रिदमव

अभ्यस्यमार्गणायामेकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं । उदयप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतं ११७ । उपशमसम्यक्त्व-  
 मार्गणायामसंयतोदये चतुस्तरशते 'णादितियाणूयहारदुगं' इत्याद्यानुपूर्व्यत्रयं सम्यक्त्वप्रकृतिश्च नेति शतमुदय-  
 योग्यं १०० । गुणस्थानान्यसंयतादीन्यष्टौ । तत्रासंयते द्वितीयकषायचतुष्कं सुरनारकायुषी नरकगतिर्देवगति- १९  
 द्विकं । वैक्रियिकद्विकं दुर्भगत्रयं चेति चतुर्दश व्युच्छित्तिः १४ । अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षया नरकगति-  
 दायुषी जातव्ये । देशसंयते तृतीयकषायाः तिर्यंगाद्युद्योती नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेत्यष्टौ । अत्रापि तदपेक्षयैव  
 तिर्यंगायाव्युच्छित्तिं जातव्यं । प्रमत्तसंयते उभयोपशमसम्यक्त्वेऽप्याहारकद्वयप्राप्तेस्तद्द्वयाभावात् स्त्यानगृद्वित्रयं

### अभ्यस्यमार्गणयोग्य १२२

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी | स. | अ.  |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|------|----|-----|
| व्यु. | ५   | ९   | १   | १७  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६   | ३० | १२  |
| उदय   | ११७ | १११ | १०० | १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७   | ४२ | १२  |
| अनुदय | ५   | ११  | २२  | १८  | ३५  | ४१   | ४६ | ५० | ५६ | ६२  | ६३ | ६५   | ८० | ११० |

अभ्यस्यमार्गणामेकं मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है । उदय प्रकृतियाँ एक सौ सतरह ११७।

उपशम सम्यक्त्व मार्गणामे असंयतमे उदययोग्य एक सौ चारमे से आदिकी तीन २०  
 आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न होने से उदययोग्य सौ हैं । गुणस्थान असंयत  
 आदि आठ हैं । उनमें से असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवायु, नरकायु, नरकगति, देवगति,  
 देवानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक और दुर्भग आदि तीन इन चौदहकी व्युच्छित्ति होती है । यहाँ  
 नरकगति और नरकायु प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षासे जानना । देशसंयतमें तीसरी  
 कषाय चार, तिर्यचायु, उद्योत, नीच गोत्र और तिर्यच गति आठकी व्युच्छित्ति । यहाँ भी २१  
 प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा ही तिर्यचायु आदि चार जानना । प्रमत्तसंयतमें दोनों ही  
 उपशम सम्यक्त्वमें आहारकद्विका उदय न होनेसे आहारकद्विकका अभाव है । अतः



- कळेदु चरमसंहननत्रयवक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अपूर्वकरणनोळु षण्णोकषायंगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । अनिवृत्तिकरणनोळु वेदत्रयमुं संज्वलनक्रोधादित्रयमुंमंतारं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभवक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ ॥ उपशान्तकषायनोळु वज्रनाराच नाराचसंहननद्विकवक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ मंतगुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळुनुदयंगळु शून्यमेकदोडं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुं २ तीर्थमुं राशिगोळकळेदुवप्पुवरिव उदयंगळु नूढ ॥ वेद्यसंयतगुणस्थानदोळु पविनात्कुगूडियनुदयंगळु पविनात्कयप्पुवु १४ । उदयंगळुभत्तारु ८६ ॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरु २२ । उदयंगळुप्पत्तेरु ७८ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूढ गूडियनुदयंगळिप्पत्तेरु २५ । उदयंगळुप्पत्तेरु ७९ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु मूढ गूडियनुदयंगळिप्पत्तेरु २८ । उदयंगळुप्पत्तेरु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु मूढत्तनालु ३४ । उदयंगळुवत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तु ४० । उदयंगळुवत्तु ६० ॥ उपशान्तकषायवीतरागछद्यस्यगुणस्थानदोळु ओदुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तोदु प्रकृतिगळुप्पुवु ४१ । उदयप्रकृतिगळुवत्तोभत्तप्पुवु ५९ । संदृष्टि :—

- व्युच्छित्तिः ३ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृत्यभावाच्चरमसंहननत्रयं ३ । अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६ । अनिवृत्तिकरणे वेदत्रयं संज्वलनक्रोधादित्रयं च ६ । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपशान्तकषाये वज्रनाराचनाराचद्विकं । एवं सत्यसंयतेऽनुदयः शून्यं सम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थापनयनात् । उदयः शतं १०० । देशसंयतेऽनुदयश्चतुर्दश १४ उदयः षडशीतिः ८६ । प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः २२ । उदयोऽष्टसप्ततिः ७८ । अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयः पंचविंशतिः २५ । उदयः पंचसप्ततिः । अपूर्वकरणे त्रयं संयोज्यानुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदयो द्वासप्ततिः ७२ । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् ३४ । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदयः षष्टिः ६० । उपशान्तकषाये एकां संयोज्यानुदय एकचत्वारिंशत् ४१ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ ।

स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी व्युच्छित्ति होती है । अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृतिका अभाव होनेसे अन्तके तीन संहनन की व्युच्छित्ति है । अपूर्वकरणमें छह नोकषाय । अनिवृत्तिकरणमें तीन वेद और तीन संज्वलनकषाय । सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभ । उपशान्त कषायमें वज्र नाराच और नाराच संहननकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होने पर—

- २५ ४ असंयतमें अनुदय शून्य क्योंकि सम्यक्त्व, तीर्थकर और आहारक द्विक नहीं है । उदय सौ १०० ।  
 ५ देश संयतमें अनुदय चौदह १४ । उदय छियासी ८६ ।  
 ६ प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय बाईस २२ । उदय अठहत्तर ७८ ।  
 ७ अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय पचीस । उदय पचहत्तर ७५ ।  
 ३० ८ अपूर्वकरणमें तीन मिलाकर अनुदय अठाईस २८ । उदय बहत्तर ७२ ।  
 ९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चौतीस ३४ । उदय छियासठ ।  
 १०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय चालीस ४० । उदय साठ ६० ।  
 ११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय इकतालीस ४१ । उदय उनसठ ५९ ।

उपशमसम्यक्त्वयोग्यप्रकृतिगळ १०० ।

| ०    | अ   | दे | ग  | अ  | अ  | अ  | सू | उ  |
|------|-----|----|----|----|----|----|----|----|
| व्यु | १४  | ८  | ३  | ३  | ६  | ६  | १  | २  |
| उ    | १०० | ८६ | ७८ | ७५ | ७२ | ६६ | ६० | ५२ |
| अ    | ०   | १४ | २२ | २५ | २८ | ३४ | ४० | ४१ |

वेदकसम्यक्त्वमार्गणेषोऽस्तु स्वगुणौघमपुर्दारिद्रं मिथ्यादृष्टिय प्रकृतिपंचकमुं ५ सासादन-  
नवकमुं ९ मिश्रन मिश्रमुं १ तोत्थंमु १ मितु पविनारं प्रकृतिगळं कळडु शेषस्वगुणौघमुदययोग्य-  
प्रकृतिगळ नूरारु १०६ । असंयतादिनालकुं गुणस्थानगळपुवल्लि असंयतकृतकृत्यवेदकंगे  
चतुर्गतिवमुं टपुर्दारिद्रं । तदपेक्षेयि तद्गुणस्थानदोळिर्षं नालकानुपूर्व्यंगळुगूडि पदिनेळु प्रकृति-  
गळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १७ ॥ देशसंयतनोऽस्तु तन्न गुणस्थानवेदुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५  
८ ॥ प्रमत्तसंयतनोऽस्तु आहारकऋद्धियुं टपुर्दारिद्रं तन्न गुणस्थानवप्रकृतिपंचककुदयव्युच्छित्ति-  
यक्कुं ५ ॥ अप्रमत्तसंयतनोऽस्तु तन्न गुणस्थानव नालकुं ४ मेलं वेदकसम्यक्त्वमिल्लपुर्दारिद्रम-  
पूर्वकरणनारुं ६ अनिवृत्तिकरणनारुं ६ सूक्ष्मसांपरायनोदुं उपशांतकषायनरेडुं २ क्षीणकषायन  
पविनारुं १६ सयोगकेवलिभट्टारक मूवत्तुं ३० अयोगिकेवलिभट्टारकन पत्तोदुं ११ मंतु एप्पत्तारं  
प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७६ । मंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकक्कनुदय- १०  
मक्कु २ मुदयंगळु नूर नालकु १०४ । देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळु गूडियनुदयंगळु पत्तो भत्तु  
१९ । उदयंगळुभत्तेळु ८७ ॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळे दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळरोळाहारक-

वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां स्वगुणौघः इति मिथ्यादृष्ट्यादित्रयस्य पंचनवैकतीर्थं च नेत्युदययोग्यं  
षडुत्तरशतं १०६ । असंयतादिचतुर्गुणस्थानानि । तत्रासंयते कृतकृत्यवेदकस्य चतुर्गतिषु संभवात्तदपेक्षया  
चत्वार्यानुपूर्व्यापीति सप्तदश व्युच्छित्तिः । देशसंयतेऽष्टौ ८ । प्रमत्ते आहारकषिसद्भावात्पंच । अप्रमत्ते १५  
चतस्रः । उपरितनाश्च षट्षडेका द्वे षोडश त्रिंशदेकादश मिलित्वा षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणादिषु  
तत्सम्यक्त्वाभावात् । एवं सत्यसंयते आहारकद्विकमनुदयः । उदयश्चतुस्तरशतं १०४ । देशसंयते सप्तदश

वेदक सम्यक्त्व मार्गणामें अपने गुणस्थानवत् जानना । मिथ्यादृष्टि आदि तीन  
गुणस्थानोंमें जिनकी व्युच्छित्ति होती है वे पाँच, नौ और एक तथा तीर्थकरके न होनेसे  
उदय योग्य एक सौ छह १०६ हैं । असंयत आदि चार गुणस्थान होते हैं । उनमेंसे असंयतमें २०  
कृतकृत्य वेदक मरकर चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें उत्पन्न हो सकता है अतः उसकी  
अपेक्षासे चारों आनुपूर्वीका उदय होता है । इससे असंयतमें व्युच्छित्ति सतरह १७ । देश  
संयतमें आठ ८ । प्रमत्तमें आहारक ऋद्धि सम्भव होनेसे पाँच ५ । अप्रमत्तमें चार तथा  
ऊपरके गुणस्थानोंकी छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और ग्यारह मिलकर छियत्तर ।  
क्योंकि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें वेदक सम्यक्त्व नहीं होता । ऐसा होने पर—

४. असंयतमें आहारकद्विकका अनुदय । उदय एक सौ चार १०४ ।

द्विकमं कळदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तयु २५ । उदयंगळेभत्तोडु ८१ । अप्रमत्त-  
गुणस्थानदोळदुगूडियनुदयंगळु भूवत्तु ३० । उदयंगळेप्पत्तारु ७६ ॥ संदृष्टिः—

वेदक योग्य १०६

| ०    | अ   | दे | प्र | अ  |
|------|-----|----|-----|----|
| व्यु | १७  | ८  | ५   | ७६ |
| उ    | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ |
| अ    | २   | १९ | २५  | ३० |

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गगण्योळु मिथ्यादृष्टि ५ सासादनन ९ मिथन १ सम्यक्त्वप्रकृति १ अंतु  
पदिनारं प्रकृतिगळं कळदु शेषनूरां प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुतु १०६ । अल्लि असंयतादि पन्नोडुं  
५ गुणस्थानंगळप्पुवल्लि असंयतनोळु तन्न गुणस्थानद पदिनेळुं :—

खाइयसम्मो देसो णर एव तदो तहि ण तिरियाऊ ।

उज्जोवं तिरियगदी तेसिं अयदम्मि वोच्छेदो ॥३२९॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो नर एव ततस्तस्मिन्न तिर्यंगागुह्योतस्तिर्यग्गतिस्तैरसंयते  
व्युच्छेदः ॥

१० क्षायिकसम्यग्दृष्टिपप देशसंयतं मनुष्यनेयपुर्दारिमल्लि तिर्यंगागुह्यमुमुद्योतनाममुं  
तिर्यग्गतियुमंतु मूरं प्रकृतिगळुगुदयमातनोळिल्लदु कारणमागियसंयतगुणस्थानदोळा मूरं प्रकृति-  
गळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुमप्पुर्दारिमउ सहितमागिप्पत्तु प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कु २० ॥

संयोज्यानुदय एकान्नविंशतिः १९ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्तेऽनुदयेऽष्टसंयोज्याहारकद्विकोदयात्  
पंचविंशतिः २५ । उदय एकाशीति ८१ । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रिंशत् ३०, उदयः षट्सप्ततिः ७६ ।

१५ क्षायिकसम्यक्त्वमार्गगायां मिथ्यादृष्ट्यादित्रयस्य पंचदश सम्यक्त्वं च नेत्युदययोग्यं षडुत्तरशतं  
१०६ । असंयताद्येकादश गुणस्थानानि । तत्रासंयते स्वस्य सप्तदश १७ ॥ १—२ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो मनुष्य एव ततः कारणात्तत्र तिर्यंगागुह्योतस्तिर्यग्गतिश्चेति श्रीपुदये न

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय उन्नीस १९ । उदय सत्तासी ८७ ।

६. प्रमत्तमें अनुदय आठ मिलाकर तथा आहारकद्विकका उदय होनेसे पच्चीस ।

२० उदय ८१ ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तीस ३० । उदय छियत्तर ७६ ।

क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणामें मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें व्युच्छिन्न हुई पन्द्रह  
तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके न होनेसे उदय योग्य एक सौ छह १०६ । असंयतसे लेकर ग्यारह  
गुणस्थान होते हैं । असंयतमें अपनी सतरह ॥३२८॥

२५ देश संयत गुणस्थानमें क्षायिक सम्यग्दृष्टो मनुष्य ही होता है, तिर्यंच नहीं होता ।  
इस कारणसे पंचम गुणस्थानमें तिर्यंचायु, उद्योत और तिर्यंचगति इन तीनका उदय यहाँ

देशसंयतनोळा मूरं प्रकृतिगळं कळदुवपुर्दारदं तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ नीचैर्गोत्रमुमंतयुं  
प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ ॥ प्रमत्तसंयतनोळ तन्न गुणस्थानद पंचप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्ति-  
यक्कुं ५ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळ सम्यक्त्वप्रकृति क्षपिधिसत्पट्टदुदपुर्दारदमदं कळदु शेष मूरं  
प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अपूर्वकरणं मोदल्गोडु छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस तीसं  
बारस प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु असंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकमुं २ ५  
तीर्थंमुमनुदयमक्कुं ३ ॥ उदयंगळ नूर मुरु १०३ ॥ देशसंयतनोळिप्पतुगूडियनुदयंगळिप्पत्तमूर  
२३ ॥ उदयंगळ पत्तमूर ८३ ॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळयु गूडियनुदयंगळिप्पत्तं टरोळ आहारक-  
द्विकमं कळदुवयंगळोळ कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तार २६ ॥ उदयंगळंभत्त ८० ॥ अप्रमत्तगुण-  
स्थानदोळयु गूडियनुदयंगळ मूवत्तोडु ३१ ॥ उदयंगळंप्पत्तयु ७५ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळ  
मूरगूडियनुदयंगळ मूवत्तनाल्कु ३४ उदयंगळंप्पत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनु- १०  
दयंगळ नाल्वत्तु ४० ॥ उदयंगळरुवत्तार ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारु गूडियनुदयंगळ  
नाल्वत्तार उदयंगळरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळोडुगूडियनुदयंगळ नाल्वत्तेळ ४७ ॥  
उदयंगळवत्तोभत्त ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु डुगूडियनुदयंगळ नाल्वत्तोभत्त ४९ ॥

संति तेन तत्त्रयस्य तत्सप्तदशभिः सहासंयतगुणस्थाने एव व्युच्छित्तिः २० । देशसंयते तत्त्रयाभावात् तृतीय-  
कषाया नीचैर्गोत्रं चेति पंचैव ५ । प्रमत्ते स्वस्य पंच ५ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतेः क्षपितत्वात्त्रयं । अपूर्व- १५  
करणादिषु 'छक्कछच्चेव इगिदुगसोलसतीसंवारस' एवं सत्यसंयते आहारकद्विकं तीर्थं चानुदयः । उदयस्थितर-  
शतं १०३ । देशसंयते विंशति संयोज्यानुदयस्त्रयोविंशतिः २३ । उदयस्थितेति ८३ । प्रमत्ते पंच संयोज्या-  
हारकद्विकोदयादनुदयः षड्विंशतिः २६ । उदयोऽशीतिः ८० । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदय एकत्रिंशत् ३१ ।  
उदयः पंचसप्ततिः ७५ । अपूर्वकरणे तिस्रः संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् उदयो द्वासप्ततिः । अनिवृत्तिकरणे षट्  
संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६ । २०  
उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदयः सप्तचत्वारिंशत् ४७ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ ।

नहीं होता । अतः इन तीनोंकी व्युच्छित्ति भी सतरहके साथ असंयत गुणस्थानमें होती है ।  
अतः असंयतमें व्युच्छित्ति बीस २० है । और देशसंयतमें इन तीनका अभाव होनेसे  
तीसरी कषाय चार और नीचगोत्र इन पाँचकी व्युच्छित्ति होती है । प्रमत्तमें अपनी पाँच ।

अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय हो जानेसे तीन । अपूर्वकरण आदिमें क्रमसे छह, २५  
छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह ।

४. असंयतमें आहारक द्विक और तीर्थकरका अनुदय । उदय एक सौ तीन ।

५. देश संयतमें बीस मिलाकर अनुदय तेईस २३ । उदय तेरासी ८३ ।

६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर आहारक द्विकका उदय होनेसे अनुदय छब्बीस २६ ।  
उदय अस्सी ८० ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय इकतीस ३१ । उदय पिचहत्तर ।

८. अपूर्वकरणमें तीन मिलाकर अनुदय चौतीस । उदय बहत्तर ७२ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चालीस । उदय छियासठ ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस । उदय साठ ।

उदयंगलवत्तेळु ५७ ॥ सयोगकेवलिगुणस्थानदोळ पदिनारु गूडियनुदयंगलरुवत्तधरोळ तीर्थंकर  
नामसं कळेदुदयंगलोळु कूडुत्तं विरलुनुदयंगलरुवत्तनाल्कु ६४ । उदयंगळु नाल्वत्तरडु ४२ ॥  
अयोगिकेवलि भट्टारकगुणस्थानदोळुसूवत्तुगूडियनुदयंगळु तो भत्तनाल्कु ९४ ॥ उदयंगळु पन्नरडु  
१२ । संदृष्टि :—

क्षायिक यो० १०६ ।

| ०    | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  | अ  |
|------|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|----|
| व्यु | २०  | ५  | ५   | ३  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ३० | १२ |
| उ    | १०३ | ८३ | ८०  | ७५ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ | १२ |
| अ    | ३   | २३ | २६  | ३१ | ३४ | ४० | ४६ | ४७ | ४९   | ६४ | ९४ |

- ५ क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदय एकान्तपंचाशत् ४९ । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ । सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थो-  
दयादनुदयः चतुःषष्टिः, उदयो द्वाचत्वारिंशत् । अयोगे त्रिशत् संयोज्यानुदयश्चतुर्णवतिः ९४ । उदयो  
द्वादश १२ ॥ ३२९ ॥

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतालीस । उदय उनसठ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनचास । उदय सत्तावन ।

- १० १३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौसठ ६४ । उदय  
बयालीस ।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय चौरानवे । उदय बारह ॥ ३२९ ॥

उपशम सम्यक्त्व रचना १००

| अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. |
|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|
| १४  | ८   | ३    | ३  | ६  | ६  | १   | २  |
| १०० | ८६  | ७८   | ७५ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ |
| ०   | १४  | २२   | २५ | २८ | ३४ | ४०  | ४१ |

वेदक सम्यक्त्व रचना १०६

| अ.  | दे. | प्र. | अ. |
|-----|-----|------|----|
| १७  | ८   | ५    | ४  |
| १०४ | ८७  | ८१   | ७६ |
| २   | १९  | २५   | ३० |

क्षायिक सम्यक्त्व रचना १०६

| अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. | स. | अ. |
|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|----|----|
| २०  | ५   | ५    | ३  | ६  | ६  | १   | २  | १६    | ३० | १२ |
| १०३ | ८३  | ८०   | ७५ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    | ४२ | १२ |
| ३   | २३  | २६   | ३१ | ३४ | ४० | ४६  | ४७ | ४९    | ६४ | ९४ |

सेसाणं सगुणोघं सण्णस्स वि णत्थि ताव साहरणं ।

थावर-सुहुमिगिविगलं असण्णणो वि य ण मणुदुच्चं ॥३३०॥

शेषाणां स्वगुणोघः संज्ञितश्च नास्त्यातप साधारणं । स्थावरसूक्ष्मैकविकलमसंज्ञितोपि च न मनुष्यद्वयोच्चं ॥

शेषमिथ्यादृष्टिसासादन मिश्ररुचिगळ्णे स्वगुणोघमकुमल्लि मिथ्यारुचिगळ्णे मिश्रप्रकृति- ५  
सम्यक्त्वप्रकृति आहारकद्वयतीर्थकर नाममंतद्वं प्रकृतिगळं कळेंदु नूरपदिनेळं प्रकृतिगळुदय-  
योग्यंगळप्पुवु ११७ ॥ सासादनरुचिगळ्णा प्रकृतिपंचकमुं ५ मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ सूक्ष्मापर्याप्त-  
साधारणत्रयमुमातपनाममुं नरकानुपूर्व्यमुं पन्तोदु प्रकृतिगळं कळेंदु नूर पन्तोदु प्रकृतिगळु-  
दययोग्यंगळप्पुवु १११ । मिश्ररुचिगळ्णा पन्तोदु प्रकृतिगळोळु मिश्रप्रकृतियं कळेंदु शेष पत्तुं प्रकृति-  
गळं १० । अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ । एकेंद्रियजातियुं १ स्थावरनाममुं १ विकलत्रयमुं ३ तिर्यंगानु- १०  
पूर्व्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ देवानुपूर्व्यमुं १ मितिप्पत्तेरडु प्रकृतिगळं कळेंदु शेष नूरं प्रकृति-  
गळुदययोग्यंगळप्पुवु १०० संज्ञिमार्गण्योळु आतपनाममुं १ साधारणशरीरनाममुं १ स्थावर-  
नाममुं १ सूक्ष्मनाममुं १ मेकेंद्रियजातिनाममुं १ विकलेंद्रियजातित्रयमुं ३ तीर्थकरनाममुं मि-  
तोभत्तं प्रकृतिगळं कळेंदु शेष नूर पदिमूरं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ११३ ॥ मिथ्यावृष्ट्यादि-  
पन्नेरडुं गुणस्थानंगळप्पुवेकेंदोड सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानंगळ्णे संज्ञित्वमिल्लेकेंदोडे “संज्ञितः १५  
समनस्कः” एवितु समनस्क रल्लप्पु दरिदं । अंतादोडऽमनस्करेकल्लेंदोडे तिर्यंचरुगळ्णल्लवम-  
नस्कव्यपदेशमिल्लप्पुवरिदं । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ अपर्याप्तिनाममुं १ मित्तेरडुं

शेषाणां मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुचीनां स्वगुणोघः । तत्र मिथ्यारुचीनां मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थ-  
करत्वानि नेत्युदययोग्यं सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादनरुचीनां तत्पंचकं मिथ्यादृष्टिः व्युच्छित्तिपंचकं २०  
नरकानुपूर्व्यं च नेत्येकादशोत्तरशतं १११ । मिश्ररुचीनां मिश्रं विना ता एव दश पुनः अनंतानुबंधिचतुष्कमेक-  
द्रियं स्थावरं विकलत्रयं तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्वाणि च नेति शतं १०० ।

संज्ञिमार्गणायामातपसाधारणस्थावरसूक्ष्मैकेंद्रियविकलत्रयतीर्थकरत्वानि नेति त्रयोदशशतमुदययोग्यं । ११३ । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश । सयोगायोगी न संज्ञिनो भावमनोरहितत्वात् । नाप्यसंज्ञिनो

शेष मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र सम्यक्त्वमें अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना । २५  
उनमें से मिथ्यारुचिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थकरके न होनेसे उदययोग्य  
एक सौ सतरह ११७ हैं । सासादनरुचिमें वे पाँचों, मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पाँच और  
नरकानुपूर्वी नहीं होनेसे उदय योग्य एक सौ ग्यारह हैं । मिश्ररुचिमें मिश्रके विना दस ऊपर  
कही तथा अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय स्थावर, विकलत्रय, तिर्यचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी,  
देवानुपूर्वी ये बाईस न होनेसे उदय योग्य सौ हैं । इन सबमें अपना-अपना एक ही गुण-  
स्थान होता है ।

संज्ञिमार्गणामें आतप, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलत्रय और तीर्थकरके ३०  
न होनेसे उदययोग्य एक सौ तेरह हैं । गुणस्थान मिथ्यादृष्टिसे लेकर बारह हैं । सयोगकेवली  
और अयोगकेवली संज्ञी नहीं हैं क्योंकि उनके भावमन नहीं होता । और न वे असंज्ञी हैं

- प्रकृतिगुणद्वयव्युच्छित्तियक्कुं २ ॥ सासादननोऽनंतानुबंधिकषायचतुष्कवकुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ मिश्रनोऽऽ मिश्रप्रकृतिगुणद्वयव्युच्छित्तियक्कुं १ असंयतं मोदलोऽडु क्षीणकषायावसानमाव गुण-  
स्थानगळोऽऽ सत्तरस १७ अड ८ पंचय ५ चउर ४ छक्क ६ छच्चेव ६ इगि १ दुग २ सोऽस १६  
प्रकृतिगुणद्वयव्युच्छित्तियगळपुवु । मत्तं सयोगायोगिकेवल्लिगुणस्थानद्वयव नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोऽऽ  
५ तीत्यंमं कळदु शेष नाल्वत्तोऽदु प्रकृतिगळगे क्षीणकषायगुणस्थानदोऽदुदय व्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं  
विरला क्षीणकषायगुणस्थानदोऽदुवत्तेळुं प्रकृतिगळगुणद्वयव्युच्छित्तियक्कु-५७ । मल्लि मिथ्या-  
दृष्टिगुणस्थानदोऽऽ मिश्रप्रकृतियं १ सम्यक्त्वप्रकृतियु १ माहारकद्विकमु २ मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळ-  
नुदयमयक्कु ४ । उदयंगळ नूरु भत्तु १०९ ॥ सासादनगुणस्थानदोऽदुदुगुडियनुदयंगळारोऽऽ ६  
मरुः नुपूव्व्यमनुदयंगळोऽऽ कळदेननुदयंगळोऽऽ कूडुत्तं विरलनुदयंगळोऽऽ ७ । उदयंगळ नूरु  
१० १०६ ॥ मिश्रगुणस्थानदोऽऽ नाल्कु गुडियनुदयंगळ पन्नोदरोऽऽ मिश्रप्रकृतियं कळदुदयंगळोऽऽ  
कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोऽऽ तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूव्व्यत्रयमं कळदेननुदयंगळोऽऽ कूडुत्तं विरलनुदयंगळ  
पविमूरु १३ । उदयंगळ नूरु १०० ॥ असंयतगुणस्थानदोऽऽदुगुडियनुदयंगळ पविनाल्करोऽऽ  
सम्यक्त्वप्रकृतियुमनानुपूव्व्यचतुष्कमुमनंतदुं प्रकृतिगळ कळदुदयप्रकृतिगळोऽऽ कूडुत्तं विरल-  
नुदयंगळोऽऽ भत्तु ९ । उदयंगळ नूरु नाल्कु १०४ ॥ देशसंयतगुणस्थान मोदलोऽडु यो प्रकार-  
१५ दिननुदयोदयंगळं यथाक्रमविदमिप्पत्तारुमेभत्तेळु ८७ ॥ मूवत्तेरडु ३२ मेभत्तोऽदु ८१ । मूवत्तेळु

- तिर्यग्मयोऽन्यत्र तद्व्यपदेशाभावात् । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमपर्याप्तं चेति द्वयं व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंता-  
नुबंधिचतुष्कं ४ । मिश्रे मिश्रं १ । असंयतादिषु 'सत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' सयोगा-  
योगस्य विना तीर्थकरत्वमेकचत्वारिंशत् । ४१ । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वमाहारकद्विकं चानुदयः  
४ उदयो नवोत्तरशतं १०९ । सासादने द्वे नरकानुपूव्वं च मिलित्वानुदयः सप्त ७ । उदयः षडुत्तरशतम्  
२० १०६ । मिश्रेऽनुदयश्चतस्रः तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूव्व्याणि च संयोज्य मिश्रोदयात्त्रयोदश । १३ । उदयः शतं । १०० ।  
असंयते एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूव्व्यचतुष्कोदयादनुदयो नव ९ । उदयरचतुस्तरशतं १०४ । देशसंयतादिष्वेव-

- क्योंकि असंयती व्यपदेश तिर्यचोमें ही होता है, अन्यत्र नहीं होता । उनमें मिथ्यादृष्टि गुण-  
स्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दो की व्युच्छित्ति है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार ४ ।  
मिश्रमें एक मिश्र । असंयतादिमें क्रमसे सत्तरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो,  
२५ सोलह तथा सयोगी अयोगीकी तीर्थकर बिना इकतालीस मिलाकर १६ + ४१ = सत्तावन ।  
ऐसा होने पर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विक चारका अनुदय । उदय एक सौ  
नौ १०९ ।

२. सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय सात । उदय एक सौ छह ।

३. मिश्रमें अनुदय चार और तिर्यचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी मिलाकर  
३० मिश्रका उदय होनेसे तेरह १३ । उदय सौ १०० ।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय  
नौ ९ । उदय एक सौ चार १०४ ।

मेष्पतारं ३७ । ७६ । नालवत्तोदुर्मेष्पत्तेरद् ४१ । ७२ । नालवर्त्तळुमखवतारु ४७ । ६६ ।  
अयवत्तमूख मखवत्तु ५३ । ६० । अयवत्तनालकुमयवत्तोभत्तु ५४ । ५९ । अयवत्तारुमयवर्त्तळु ५६ ।  
५७ । प्रकृतिगलप्पुवु । संहृष्टि :—

संज्ञि यो० ११३

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी |
|------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|
| व्यु | २   | ४   | १   | १७  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | ५७   |
| उ    | १०९ | १०६ | १०० | १०४ | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   |
| अ    | ४   | ७   | १३  | ९   | २६ | ३२  | ३७ | ४१ | ४७ | ५३ | ५४ | ५६   |

असंज्ञिगणोवि य ण मणुदुच्चं ॥

वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभग आउतियं ।

आहारे सगुणोघं णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ ॥३३१॥

वैक्रियिकषट्पंचसंहनन संस्थान सुगमन सुभगायुस्त्रयं ३ । आहारे स्वगुणौघः नविनं न  
सर्वानुपूर्व्याणि ॥

असंज्ञिमार्गणयोळु मनुष्यद्विकमु २ । मुच्चैर्गोत्रमुं १ वैक्रियिकषट्कमुमारु ६ माद्यसंहनन-  
पंचकमु ५ माद्यसंस्थानपंचकमुं ५ प्रशस्तविहायोगतियुं १ सुभगत्रयमु ३ । नरकमनुष्यदेवायुस्त्रयमुं १०

मनुदयोदयो यथाक्रमं षड्विंशतिः सप्ताशीतिः २६, ८७ । द्वात्रिंशत् एकाशीतिः ३२, ८१ । सप्तत्रिंशत् षट्  
सप्ततिः । ३७।७६ । एकचत्वारिंशद् द्वासप्ततिः ४१।७२ । सप्तचत्वारिंशत् षट्षष्टिः ४७ । ६६ । त्रिपंचाशत्  
षष्टिः ५३ । ६० । चतुःपंचाशत् एकान्नषष्टिः । ५४ । ५९ । षट्पंचाशत् सप्तपंचाशत् । ५६ । ५७ ॥३३०॥

असंज्ञिमार्गणायां मनुद्विकमुच्चैर्गोत्रं वैक्रियिकषट्कमाद्यसंहननपंचकम धसंस्थानपंचकं प्रशस्तविहायो-

५. इसी प्रकार देशसंयत आदिमें अनुदय और उदय क्रमसे २६, ८७ । बत्तीस ३२, १५  
इक्यासी ८१ । सैंतीस ३७, छियत्तर ७६ । इकतालीस ४१, बहत्तर ७२ । सैंतालीस ४७,  
छियासठ ६६ । तिरपन ५३, साठ ६० । चौवन ५४, उनसठ ५९ । छप्पन ५६, सत्तावन ५७  
जानना ॥३३०॥

संज्ञीमार्गणारचना ११३

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|
| व्यु. | २   | ४   | १   | १७  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | ५७    |
| उ.    | १०९ | १०६ | १०० | १०४ | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    |
| अनु.  | ४   | ७   | १३  | ९   | २६  | ३२   | ३७ | ४१ | ४७ | ५३  | ५४ | ५६    |

असंज्ञी मार्गणामें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग,  
देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, आदिके पाँच संहनन, आदिके पाँच संस्थान, २०



- ३ यित्तिप्पत्तारं प्रकृतिगळं २६ मिथ्यादृष्टिय तूर पदिनेळुं प्रकृतिगळोळु कळदु शेष तो भत्तोडु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ९१ । गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानंगळेरडेयप्पुवत्ति मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतयनाममुं १ सूक्ष्मत्रयमुं ३ मितयुं प्रकृतिगळुं ५ स्त्यान-  
यानगृद्धित्रयमुं ३ परघातोद्योतोच्छ्वासत्रयमुं ३ दुःस्वरमुं १ मप्रशस्तविहायोगतियुं १ मितेदुं  
५ प्रकृतिगळगे सासादननोळुदयमित्तलेकं दोडा सासादनन भवप्रथमदोळु काळं जघन्यदिद मेकसमय-  
मुत्कृष्टदिदमारावळिकालमप्पुदरिदमा प्रकृत्यष्टकं तंतम्म पर्याप्तियिदं मेलल्लुदयिसदप्पुवरिनात-  
नोळा प्रकृतिगळगुदयमित्तलप्पुदरिदं मिथ्यादृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळेप्पुवतागुत्तं विरला मिथ्या-  
दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळु पदिमूरु १३ ॥ सासादननोळु तन्न गुणस्थानदोभत्तुं प्रकृति-  
गळगुदयव्युच्छित्तियक्कु-९ मंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयंगळु  
१० तो भत्तोडु ९१ । सासादनगुणस्थानदोळु पदिमूरु प्रकृतिगळगुदयमक्कुं १३ । उदयप्रकृति-  
गळप्पत्तेडु ७८ ॥ संदृष्टिः—

असंज्ञि यो० ९१ ।

| ०    | मि | सा |
|------|----|----|
| व्यु | १३ | ९  |
| उ    | ९१ | ७८ |
| अ    | ०  | १३ |

- गतिः सुभगत्रयं नरकमनुष्यदेवाग्रंषि च मिथ्यादृष्टिः सप्तदशोत्तरशते नेत्येकनवतिरुदययोग्याः ९१ । गुणस्थान-  
द्वयं । तत्र मिथ्यादृष्टी स्वस्य पंच पुनःस्त्यानगृद्धित्रयपरघातोद्योतोच्छ्वासदुःस्वराप्रशस्तविहायोगतीनां  
पर्याप्तैर्युदयनियमात्, सासादने स्तोककालत्वात्तदघटनात् सा अष्टौ च व्युच्छित्तिः । १३ । सासादने स्वस्य  
१५ नव ९ । तथा सति मिथ्यादृष्टानुदयः शून्यं । उदय एकनवतिः ९१ । सासादने त्रयोदश संयोज्यानुदयः  
त्रयोदश १३ । उदयोऽष्टसप्ततिः ७८ ।

- प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, नरकायु, मनुष्यायु, देवायु ये छव्वीस प्रकृतियाँ  
मिथ्यादृष्टिके उदय योग्य एक सौ सतरहमें से नहीं होतीं । अतः उदय योग्य इक्यानवें ९१  
हैं । गुणस्थान दो हैं । उनमें से मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँच और स्त्यानगृद्धि आदि तीन,  
२० परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दुःस्वर, अप्रशस्त विहायोगति ये प्रकृतियाँ पर्याप्ति पूर्ण होनेके  
बाद उदयमें आती हैं और सासादनका काल थोड़ा होनेसे वहाँ इनका उदय सम्भव नहीं  
है अतः इन आठकी व्युच्छित्ति मिलकर तेरहकी होती है । सासादनमें अपनी नौ । ऐसा होने  
पर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य । उदय इक्यानवें ९१ । सासादनमें तेरह मिलाकर अनुदय  
तेरह । उदय अठहत्तर ७८ ।

आहारे स्वगुणौघः आहारमार्गणौघोऽसामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिपत्तेरडरोळु १२२  
नाल्लुमानुपूर्व्यंगळं कळेदु शेष नूर पदिने दुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळपु ११८ वल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि  
पदिमूरं गुणस्थानंगळपुवु । मिथ्यादृष्टिओळु तन्न पुणस्थानदयं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं  
५ । सासादननोळु तन्न गुणस्थानदोभत्तं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ९ ॥ मिश्रनोळु मिश्र-  
प्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कु १ । असंयतनोळानुपूर्व्यचतुष्टयमं कळेदुळिद पदिमूरं प्रकृतिगळुगु- ५  
दयव्युच्छित्तियक्कुं १३ ॥ देशसंयतादिगळोळु अड ८ । पंच य ५ चउर ४ छक्क ६ छच्चेव ६  
इगि १ दुग २ सोळस १६ बादाळ ४२ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टि-  
गुणस्थानदोळु तीर्थमुमाहः कट्टिकमुं २ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितयुं प्रकृतिगळुगुदय-  
मक्कु ५ उदयप्रकृतिगळु नूर पदिमूरं ११३ । सासादनगुणस्थानदोळयदु गूडियनुदयंगळु हत्तु १० ।  
उदयंगळु नूर दुं १०८ । मिश्रगुणस्थानदोळोभत्तगूडियनुदयंगळु हत्तोभत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं १०  
कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हदिने दुं १८ । उदयंगळु नूर १०० ॥ असंयतगुण-  
दोळोदुगूडियनुदयंगळु हत्तोभत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनु-  
दयंगळु हदिने दुं १८ । उदयंगळु नूर १०० ॥ देशसंयतादि सयोगिकेवल्लिपय्यंतं यथासंख्यमागियनु-  
दयंगळुमुदयंगळु मूवत्तोदु मेणेभत्तेळु ३२ । ८७ । मूवत्तेळुमेणेभत्तोदु ३७ । ८१ ॥ नाल्वत्तेरडु-  
मेप्पत्ताहं ४२।७६ । नाल्वत्तारुमेप्पत्तेरडु ४६ । ७२ । अय्वत्तेरडुमरुवत्तारु ५२।६६ ॥ अय्वत्तेरडु- १५  
मरुवत्तु ५८ । ६० । मय्वत्तोभत्तु मय्वत्तोभत्तु ५९।५९ । अरुवत्तोदु मय्वत्तेळुं ६१ । ५७ ।

आहारमार्गणायां—द्वाविंशत्युत्तरशते चतुरानुपूर्व्यं नेत्यष्टादशोत्तरशतमुदययोग्यं । ११८ । गुणस्था-  
नानि त्रयोदश १३ । तन्न मिथ्यादृष्ट्यादित्रये स्वस्य पंच नवैकं व्युच्छित्तिः । असंयते त्रयोदश १३ ।  
आनुपूर्व्यचतुष्टयस्यापनोत्तत्वात् । देशसंयतादिषु—‘अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इमिदुगसोलसवादाळ’ एवं सति  
मिथ्यादृष्टौ तीर्थमाहारकट्टिकं मिश्रं सम्यक्त्वं चेति पंचानुदयः ५ । उदयस्त्रयोदशशतं ११३ । सासादने पंच २०  
संयोज्यानुदयो दश १० उदयोऽष्टोत्तरशतं १०८ । मिश्रे नव संयोज्य मिश्रोदयादनुदयोऽष्टादश १८ । उदयः  
शतं १०० । असंयते एका संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयोऽष्टादश १८, उदयः शतं १०० । देशसंयतादिष्वनु-  
दयोदयो एकत्रिशत् ३१ । सप्ताशीतिः ८७ । सप्तत्रिंशत् ३७ । एकाशीतिः ८१ । द्वाचत्वारिंशत् ४२ ।  
षट्सप्ततिः ७६ । षट्चत्वारिंशत् ४६ । द्वासप्ततिः ७२ । द्वापंचाशत् ५२, षट्षष्टिः ६६ । अष्टपंचाशत्

आहारमार्गणामें एक सौ बाईसमें से चार आनुपूर्वी न होनेसे उदय योग्य एक सौ २५  
११८ । गुणस्थान तेरह । मिथ्यादृष्टि आदि तीनमें अपनी पाँच, नौ और एककी व्युच्छित्ति  
है । असंयतमें तेरह क्योंकि चार आनुपूर्वी नहीं हैं । देशसंयत आदिमें कमसे आठ, पाँच,  
चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, बयालीस । ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें तीर्थकर, आहारक-  
ट्टिक, मिश्र, सम्यक्त्व, पाँचका अनुदय । उदय एक सौ तेरह ११३ । सासादनमें पाँच  
मिलाकर अनुदय दस । उदय एक सौ आठ । मिश्रमें नौ मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे ३०  
अनुदय अठारह । उदय सौ १०० । असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे  
अनुदय अठारह, उदय सौ १०० । देश संयत आदिमें अनुदय और उदय क्रमसे इकतीस ३१,  
सतासी ८७ । सैंतीस ३७, इक्यासी ८१ । बयालीस ४२, छियत्तर ७६ । छियालीस ४६,

एष्यत्तारुं नात्वत्तरडुं ७६।४२ । प्रकृतिगळप्पुवु । संदृष्टिः—

आहारमार्गणा यो० ११८ ।

| ०     | मि  | सा  | मि  | अ   | दे | प्र | अ  | अ  | अ  | सू | उ  | क्षी | स  |
|-------|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|----|----|----|----|------|----|
| व्यु. | ५   | ९   | १   | १३  | ८  | ५   | ४  | ६  | ६  | १  | २  | १६   | ४२ |
| उ     | ११३ | १०८ | १०० | १०० | ८७ | ८१  | ७६ | ७२ | ६६ | ६० | ५९ | ५७   | ४२ |
| अ     | ५   | १०  | १८  | १८  | ३१ | ३३  | ४२ | ४६ | ५२ | ५८ | ५९ | ६१   | ७६ |

कम्मेषाणाहारे पयडोणं उदयमेवमादेसे ।

कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३३२॥

काम्मर्णे इवानाहारे प्रकृतीनामुदय एवमादेशे । कथितोयं बलमाधवचंद्राच्चित्तनेमिचंद्रेण ॥

- ५ काम्मर्णे यिवानाहारे अनाहारमार्गणेषोळु काम्मर्णकाययोगबोळेतंतं स्वरद्विकमुं २ विहायोगतिद्विकमुं २ प्रत्येकसाधारणद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ मौदारिकद्विकमुं २ मिश्रप्रकृतियु १ सुपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासपंचकमुं ५ । वैक्रियिकद्विकमुं २ । स्थानगृद्धिअयमुं ३ संस्थानषट्कमुं ६ । संहननषट्कमुं ६ मितु मूवत्तमूरु ३३ प्रकृतिगळं कळेदेणभत्तो भत्तुप्रकृतिगळुवययोग्यंगळप्पुवु ८९ ॥ गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगायोगिकेवलिगुणस्थानमे वितय्हुं ५ गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्याप्तनाममुं सूक्ष्मनाममुंमितु मूरु प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ । सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुं ४ मेकेन्द्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ विकलअयमुं ३ मितो भत्तु प्रकृतिगळु । स्त्रीवेदमित्तिये व्युच्छित्तियक्कुमेके बोड-

५८ । षष्टिः, ६० । एकान्नषष्टिरेकान्नषष्टिः ५९ । ५९ । एकषष्टिः सप्तपंचाशत् । ६१ । ५७ । षट्सप्त-  
तिर्द्वाषत्वारिंशत् । ७६ । ४२ ॥ ३३१ ॥

- १५ अनाहारमार्गणायां काम्मर्णकाययोगवत्स्वरविहायोगतिप्रत्येकाहारकौदारिकद्विकानि मिश्रप्रकृत्युपघात-  
परघातातपोद्योतोच्छ्वासा वैक्रियिकद्विकं स्थानगृद्धिअयं संस्थानषट्कं संहननषट्कं च नेत्येकान्ननवतिरुदय-  
योग्याः ८९, गुणस्थानानि पंच । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तसूक्ष्माणि व्युच्छित्तिः ३ । सासादने-

बहत्तर ७२ । वावन ५२, छियासठ ६६ । अठावन ५८, साठ ६० । उनसठ ५९, उनसठ ५९ ।  
इकसठ ६१, सत्तावन ५७ । छियत्तर ७६, बयालीस ४२ ॥३३१॥

- २० अनाहार मार्गणामै काम्मर्णकाययोगकी तरह सुस्वर, दुस्वर, प्रशस्त अप्रशस्त विहा-  
योगति, प्रत्येक, साधारण, आहारकद्विक, औदारिकद्विक, मिश्रप्रकृति, उपघात, परघात,  
आतप, उद्योत, उच्छ्वास, वैक्रियिकशरीर अंगोपांग, स्थानगृद्धि आदि तीन, छह संस्थान,  
छह संहनन ये तैतीस न होनेसे उदय योग्य नवासी ८९ हैं । गुणस्थान पाँच हैं । उनमें-से  
मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, अपर्याप्त, सूक्ष्म तीनकी व्युच्छित्ति है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी

संयतं स्त्रीयाणि पुट्टनपुट्टरिदमंतु पत्तं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १० ॥ असंयतनोळु वैक्रियिकद्वितयरहितमाणि तन्न गुणस्थानदोळु पंचदशप्रकृतिगळु १५ उद्यातरहितमाणि देश-संयतनोळु ७ प्रमत्तनल्लि शून्यमप्रमत्तन सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ अपूर्वकरणन नोकषायषट्कमुं ६ अनिवृत्तिकरणन स्त्रीवेदरहितप्रकृतिपंचकमुं ५ सूक्ष्मसांपरायन लोभमुं १ उपशांतकषायनोळु शून्यं क्षीणकषायन पदिनार १६ मितिगिवणप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५१ ॥ सयोगकेवल ५ योळु वेदनीयमोदुं निर्माणनाममुं १ स्थिरास्थिरद्विकमुं २ शुभाशुभद्विकमुं २ तैजसकामर्मण-द्विकमुं २ वर्णचतुष्कमुं ४ अगुरुलघुकमुं १ मितु पदिमूरु प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३ ॥ अयोगिकेवलियोळु वेदनीयमोदुं १ मनुष्यगतिनाममुं १ पंचेंद्रियजातिनाममुं १ सुभगनाममुं १ त्रसत्रयमुं ३ मादेयनाममुं १ ॥ यशस्कीर्तिनाममुं १ तीर्थंकरनाममुं १ मनुष्यायुष्यमुं १ उच्चै-र्गोत्रमुं १ मे ब पत्नेरहुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२ ॥ १०

अंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ तीर्थंकरनाममुं १ मितेरहुं प्रकृतिगळगुदयमक्कुं २ ॥ उदयप्रकृतिगळगुदयमक्कुं ८७ ॥ सासादनगुणस्थानदोळु मूरु गूडियनुदयंगळुदरोळु नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुमनुदयप्रकृतिगळोळु कळुदेनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलदयंगळुदु ८ ॥ उदयंगळुदु ८१ ॥ असंयतगुणस्थानदोळु पत्तुगूडियनुदयंगळु पदि-नंटरोळु १८ सम्यक्त्वप्रकृतियुं तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्यंत्रितयमुं ३ मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळ १५ कळुदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाल्कु १४ उदयंगळुदु ७५ ॥ सयोग-

अनंतानुबंधचतुष्कमेकेन्द्रियं स्थावरं विकलत्रयं स्त्रीवेदश्चेति दश १० ॥ असंयते वैक्रियिकद्विकं विना पंचदश उद्योतं विना सप्त शून्यं सम्यक्त्वप्रकृतिः नोकषायषट्कं स्त्रीवेदं विना पंच सूक्ष्मलोभः शून्यं षोडश चेत्येक-पंचाशत् ५१ ॥ सयोगे सातासातैकतरनिर्माणस्थिरास्थिरशुभाशुभतैजसकामर्मणानि वर्णचतुष्कमगुरुलघुकं चेति त्रयोदश १३ ॥ अयोगे स्वस्य द्वादश १२ ॥ एवं सति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वं तीर्थं चानुदयः ॥ उदयः सप्ताशीतिः २० ८७ ॥ सासादनेऽनुदयस्त्रयं नरकद्विकं नरकायुश्च मिलित्वाष्टौ ८ ॥ उदय एकाशीतिः ८१ ॥ असंयते दश संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्योदयादनुदयश्चतुर्दश १४ ॥ उदयः पंचसप्ततिः ७५ ॥ सयोगे एकपंचाशत्

चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय और स्त्रीवेद दसकी व्युच्छित्ति है । असंयतमें वैक्रियिक-द्विकके विना पन्द्रह, उद्योतके विना सात, शून्य, सम्यक्त्वप्रकृति, छह नोकषाय, स्त्रीवेद विना पाँच, सूक्ष्म लोभ, शून्य, सोलह ये सब मिलकर इक्यावन ५१ । सयोगीमें साता या असाता, २५ निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस, कामर्ण, वर्णादि चार, अगुरुलघु ये तेरह । अयोगीमें अपनी बारह । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थंकरका अनुदय । उदय सत्तासी ८७ ।

२. सासादनमें अनुदय तीन नरकगति नरकानुपूर्वी, नरकायु मिलकर आठ । उदय इक्यासी ८१ ।

४. असंयतमें दस मिलाकर सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय चौदह १४ । उदय पचहत्तर ७५ । ३०

१. म युमं नारकद्विकमुं नरकायुष्यमुममंतु ।

केवलगुणस्थानदोळटवत्तो दुगूडियनुदयंगळखत्तदरोळु तीर्थकरनाममं कळ बुदयप्रकृतिगळोळु  
कूडुत्तं विरलनुदयंगळखत्तनालकु ६४ उदयप्रकृतिगळिप्पत्तदु २५ । अयोगिकेवलगुणस्थानदोळ  
पदिमूगूडियनुदयंगळप्पत्तेळ ७७ । उदयंगळ पन्नेरडु १२ । संदृष्टि :—

अनाहार यो० ८९

| ०    | मि | सा | अ  | स  | अ  |
|------|----|----|----|----|----|
| व्यु | ३  | १० | ५१ | १३ | १२ |
| उ    | ८७ | ८१ | ७५ | २५ | १२ |
| अ    | २  | ८  | १४ | ६४ | ७७ |

एवमादेशे इंतु मार्गणास्थानदोळ प्रकृतीनामुदयः प्रकृतिगळुदयं । अयं इदु । बलमाधव-  
चंद्राचिचतनेमिचंद्रेण प्रत्यक्षवंदकरप्प बलदेवनुं नारायणनुमेदिवर्गाळिदमच्चिसलपट्ट नेमितीर्थकर-  
परमदेवनिदं । कथितः पेल्लपट्टदु । बलदेवणोनि श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवनिदमुमच्चिसलपट्ट नेमि-  
चंद्रसिद्धान्त चक्रवर्तिगळिदमुं मेणु पेल्लपट्टदु । उदयप्रकरणं समाप्तमादु ॥

सारत्रयनेत्रत्रयमारोलु गोम्मटव वृत्तिमणिदपणमा । मारहरंगल्लदे पेलसारमे जात्यंधकगे  
दृग्द्वितयंगं ॥

१० गंभीररचनेगल परिरंभणेयं विडिसितोरिदुदने बुधर्पा- । रंभिसि गोम्मटवृत्ति सुवंभोलियि-  
नोडयि मोहवज्राचळमं ॥

संयोज्य तीर्थोदयादनुदयश्चतुःषष्टिः ६४ उदयः पंचविंशतिः २५ । अयोगे त्रयोदश संयोज्यानुदयः सप्ततिः ७७ ।  
उदयो द्वादश । एवं मार्गणास्थाने उदयः, बलदेवनारायणाचितनेमितीर्थकरेण बलदेवभ्रातृश्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा-  
चितनेमिचंद्रसिद्धान्तचक्रवर्तिना वा कथितः । इत्युदयप्रकरणं समाप्तं ॥३३२॥

१५ १३-१४ सयोगीमें इक्यावन मिलाकर तीर्थकरका उदय होनेसे अनुदय चौसठ ६४ ।  
उदय पचीस २५ । अयोगीमें तेरह मिलाकर अनुदय सतहत्तर ७७ । उदय बारह १२ ।

इस प्रकार मार्गणास्थानमें उदयका कथन बलदेव और नारायणसे पूजित नेमिनाथ  
तीर्थकरने अथवा बलदेव भाई और श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवसे पूजित नेमिचन्द्र सिद्धान्त  
चक्रवर्ती ने किया ॥३३२॥

उदय प्रकरण समाप्त

२०

आहारक रचना ११८

अनाहारक रचना ८९

| मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ. | अ. | अ. | सू. | उ. | क्षी. | स. |
|-----|-----|-----|-----|-----|------|----|----|----|-----|----|-------|----|
| ५   | ९   | १   | १३  | ८   | ५    | ४  | ६  | ६  | १   | २  | १६    | ४२ |
| ११३ | १०८ | १०० | १०० | ८७  | ८१   | ७६ | ७२ | ६६ | ६०  | ५९ | ५७    | ४२ |
| ५   | १०  | १८  | १८  | ३१  | ३७   | ४२ | ४६ | ५२ | ५८  | ५९ | ६१    | ७६ |

|       | मि. | सा. | अ. | म. | अ. |
|-------|-----|-----|----|----|----|
| व्यु. | ३   | १०  | ५१ | १३ | १२ |
| उ.    | ८७  | ८१  | ७५ | २५ | १२ |
| अ.    | २   | ८   | १४ | ६४ | ७७ |

अनंतर प्रकृतिसत्त्वम गुणस्थानदोळ पेळवपह :—

तित्याहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छयादितिये ।

तस्सत्तकम्मियाणं तद्गुणस्थानं ण संभवइ ॥३३३॥

तीर्थाहारा युगपत्सर्वं तीर्थं न मिथ्यादृष्ट्याश्चित्रे । तत्सत्त्वकर्मणां तद्गुणस्थानं न संभवति ॥

तीर्थाहारा युगपन्न तीर्थकरनाममुनाहारकद्वयमुं मिथ्यादृष्टियोलु एकजीवापेक्षयिवं युगपत्सत्त्वमित्तल । अदे ते दोडे तीर्थसत्त्वमुळनोळाहारकद्वयसत्त्वमित्तल । आहारकद्वयसत्त्वमुळनोळु तीर्थसत्त्वमित्तल । उभयसत्त्वमुळ जीवनी मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोर्दंनपुर्विरव । नानाजीवापेक्षयिवं युगपत्सत्त्वमुंदु । अदु कारणमागि मिथ्यादृष्टियोलु नूरनात्वत्ते दुं प्रकृतिगळिगे सत्त्वमवकुं १४८ ॥ सासावननोळु सव्वं न तीर्थमुनाहारकद्वयमुमेकजीवापेक्षयिवमुं नानाजीवापेक्ष- १०  
यिवमुं युगपत्क्रमविवमुं सत्त्वमित्तल । मिश्रनोळु तीर्थनामसत्त्वं न यिल्लेकेपोडे तत्सत्त्वकर्मणां आ तीर्थाहाराकद्वयसत्त्वयुतजीवंगळो तद्गुणस्थानं न संभवति तीर्थाहाराकद्वयं युगपत्संभविषुव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुं तीर्थमुनाहारकद्वयमुं संभविषुव सासावनगुणस्थानमुं तीर्थं संभविषुव मिश्रगुणस्थानमुं संभविसव्वपुवदुकारणमागि मिथ्यादृष्टियोलु नूरनात्वत्ते दुं प्रकृतिसत्त्वमं १४८ । सासावननोळु नूरनात्वत्तधु प्रकृतिसत्त्वमं १४५ । मिश्रनोळु नूरनात्वत्तेलु प्रकृतिसत्त्वमुमवकुं १४७॥ १५

अथ प्रकृतिसत्त्वं गुणस्थानेष्वाह—

मिथ्यादृष्टी तीर्थकृत्वसत्त्वे आहारकद्वयसत्त्वं न, आहारकद्वयसत्त्वे च तीर्थकृत्वसत्त्वं न, उभयसत्त्वे तु मिथ्यात्वाश्रयणं न । तेन तद्द्वयं तत्र युगपदेकजीवापेक्षया न । नानाजीवापेक्षयास्ति (ततोऽष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं-सत्त्वं) । सासादने तदुभयमपि एकजीवापेक्षयाऽनेकजीवापेक्षया च क्रमेण युगपद्वा सत्त्वं नेति (पंचचत्वारिंशदुत्तरशतं १४५) । मिश्रे तीर्थकृत्वसत्त्वं न (सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं सत्त्वं १४७) । कुतः ? तत्सत्त्वकर्मणां २०  
जीवानां तद्गुणस्थानं न संभवतीति कारणात् ॥ ३३३ ॥

आगे गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंकी सत्ता कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जिसके तीर्थकरकी सत्ता होती है उसके आहारकद्विककी सत्ता नहीं होती और जिसके आहारकद्विककी सत्ता होती है उसके तीर्थकरकी सत्ता नहीं होती । जिसके दोनोंकी सत्ता होती है वह मिथ्यात्वमें आता ही नहीं । इसलिए ये दोनों २५  
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक साथ एक जीवकी अपेक्षा नहीं हैं । किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षासे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थकर और आहारकद्विक दोनोंकी सत्ता होनेसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस १४८ है । सासादनमें ये दोनों ही एक जीव और नाना जीवकी अपेक्षा क्रमसे या एक साथ नहीं रहते अतः वहाँ सत्त्व एक सौ पैतालीस । मिश्रमें तीर्थकरकी सत्ता न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस; क्योंकि जिनके इन प्रकृतियोंकी सत्ता होती है उनके ये ३०  
गुणस्थान नहीं होते ॥३३३॥

चत्वारिंशे खेताईं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।

अणुवदमहव्वदाईं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥३३४॥

चतुर्णां क्षेत्राणामायुर्बन्धेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुर्मुक्त्वा ॥

चतुर्गतिगळायुर्बन्धमावुर्दारिदं जीवक्के सम्यक्त्वमक्कु मल्लि देवगतिगायुर्बन्धमागिईं  
५ जीवक्कणुव्रतमहाव्रतंगळु संभविमुक्त्वा देवायुष्यमं बिट्ठुळिद नरकतिर्यग्मनुष्यायुष्यंगळु बन्धमाव  
भुज्यमान तिद्यच्चनणुव्रतमं पड्येत्तेरेयं । भुज्यमानमनुष्यनावोऽणुव्रतमहाव्रतंगळं पड्येत्तेरेयने-  
कं बोडा गतित्रयबध्यमानायुष्यगळंग अणुव्रतमहाव्रतपरिणामकारणविशुद्धिकषायपरिणामस्थानो-  
व्यंगळु संभविसवप्पुर्दारिदं ॥

णिर्यतिरिक्खसुराउग सत्ते ण हि देससयलवदिखवगा ।

अयदचउवकं तु अणं-अणियट्ठीकरणचरिमम्मि ॥३३५॥

१०

नरकतिर्यग्देवायुःसत्त्वे न हि देशसकलव्रतिक्षपकाः असंयतचतुष्कं त्वनंतानुबंधिनोऽनिवृ-  
त्तिकरणचरमे ॥

नरकायुष्यसत्त्वमुं तिद्यंगायुष्यसत्त्वमुं देवायुष्यसत्त्वमुं भुज्यमानबध्यमानोभयप्रकारदिवं  
सत्त्वमुंदागुत्तं विरलु यथासंख्यमागि देशव्रतिगळुं सकलव्रतिगळुं क्षपकं न हि इल्ल । तु सत्तम-

१५

चतुर्णां क्षेत्राणां गतीनां संबध्यायुर्बन्धेनापि जीवस्य सम्यक्त्वं भवति । तत्र देवगत्यायुर्मुक्त्वा शेषक-  
तरगतिबद्धायुष्कस्तिर्यङ् अणुव्रतं मनुष्योऽणुव्रतं महाव्रतं वा न लभते तेषां तत्तद्व्रतपरिणामकारणविशुद्धिकषाय-  
परिणामस्थानोदयासंभवात् ॥ ३३४ ॥

नरकतिर्यग्देवायुस्सु भुज्यमानबध्यमानोभयप्रकारेण सत्त्वेषु सत्सु यथासंख्यं देशव्रताः सकलव्रताः क्षपका

२०

चारों क्षेत्र अर्थात् गति सम्बन्धी आयुका बन्ध करनेपर भी जीवके सम्यक्त्व हो  
सकता है । किन्तु देवगति सम्बन्धी आयुको छोड़कर शेष गतियोंमें-से किसी एक गतिकी  
आयुका बन्ध करनेवाले तिर्यंचके अणुव्रत और मनुष्यके अणुव्रत अथवा महाव्रत नहीं हो  
सकते; क्योंकि उनके उन-उन व्रतरूप परिणामोंके कारण विशुद्ध कषाय स्थानोंकी उत्पत्ति  
असम्भव है ।

२५

विशेषार्थ—यदि पहले चारों आयुमें-से किसी भी आयुका बन्ध हो चुका हो और  
पीछे सम्यक्त्वको धारण करे तो उसमें कोई दोष नहीं है । ऐसा हो सकता है । किन्तु यदि  
पहले नरकायु या तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध हुआ हो तो पीछे अणुव्रत या महाव्रत धारण  
नहीं कर सकता । एक देवायुका बन्ध पहले हुआ हो तो अणुव्रत महाव्रत धारण करना  
सम्भव है । इसका कारण यह है कि अन्य आयुका बन्ध कर लेनेवाले जीवोंके ऐसे विशुद्ध  
परिणाम नहीं होते जो व्रत परिणामके कारण होते हैं । यह कथन परभवकी आयुका बन्ध  
कर लेनेवालोंकी दृष्टिसे है । परभवकी आयुका बन्ध जिसने नहीं किया है वह तो उसी  
३० भवसे मोक्ष भी जा सकता है ॥३३४॥

जिस वर्तमान आयुको जीव भोगता है उसे भुज्यमान कहते हैं और परभवकी जो  
आयु बाँधी उसे बध्यमान कहते हैं । भुज्यमान और बध्यमान दोनों प्रकारकी नरकायु,

नतानुबन्धि कषायगच्छन् । असंयतचतुष्कं असंयतसम्यग्दृष्टिवादियाणि नाल्कुं गुणस्थानवर्ति-  
गच्छ । अनिवृत्तिकरणचरमे अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयवके द्वादशकषायनोकषायस्वरूपकरण  
विसंयोजनविधानदोळु दोरेकोळ्व करणलब्धियोळधःप्रवृत्तापूर्वनिवृत्तिकरणपरिणामगळोळा  
व्युत्पत्त्यनिवृत्तिकरणचरमसमयदोळु :--

जुगवं संजोगित्ता पुणोवि अणियट्टिकरणवहुभागं ।

बोलिय कमसो मिच्छं मिस्सं सम्मं खवेइ कमे ॥३३६॥

युगपद्विसंयोज्य पुनरप्यनिवृत्तिकरणबहुभागं । नीत्वा क्रमशो मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं  
क्षपयति क्रमे ॥

अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कमनक्रमविदं युगपदोम्मोदलोळं अनिवृत्तिकरणपरिणामकालांत-  
र्म्मूर्तचरमसमयदोळं परप्रकृतिरूपविदं विसंयोजिसि अंतर्म्मूर्तकालं विश्रमिसि । पुनरपि  
मतमनन्तानुबन्धिविसंयोजनविधानदोळेतंत दर्शनमोहक्षपणोद्योगदोळु दोरेकोळ्व करणलब्धियो-  
ळधःप्रवृत्तापूर्वनिवृत्तिकरणगळोळा व्युत्पत्त्यनिवृत्तिकरणकालांतर्म्मूर्तसंख्यातबहुभागं

२१४ कळिदेकभागावशेषमादागळा प्रथमसमयं मोदळ्ळोडु मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वप्रकृति येव  
दर्शनमोहत्रयं यथाक्रमं क्षपयिसुगुमंतु क्षपयिसि असंयतादियावा नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगच्छ

नैव स्युः । तु—पुनः, असंयतादिवतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽनिवृत्तिकरणपरिणामकालांतर्म्मूर्तचरमसमयेऽनन्तानुबन्धि-  
कषायचतुष्कं—॥ ३३५ ॥

युगपदेव विसंयोज्य द्वादशकषायनोकषायरूपेण परिणमय्य अंतर्म्मूर्तकालं विश्रम्य पुनरप्यनन्तानुबन्धि-  
विसंयोजनवदर्शनमोहक्षपणोद्योगेपि स्वीकृतकरणलब्धावधःप्रवृत्तापूर्वनिवृत्तिकरणेषु तदुत्पत्त्यनिवृत्तिकरण-

१-८

कालांतर्म्मूर्तसंख्यातबहुभागं २१४ अतीत्येकभागे प्रथमसमयात्प्रभृतिमिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिः क्रमेण क्षप-

तिर्यंचायु और देवायुका सत्त्व होनेपर क्रमसे देशव्रत, महाव्रत और क्षपकश्रेणी नहीं होती ।  
अर्थात् सुज्यमान या बध्यमान रूपसे नरकायुका सत्त्व होनेपर अणुव्रत नहीं हो सकते ।  
सुज्यमान और बध्यमान रूपसे तिर्यंचायुका सत्त्व होनेपर महाव्रत नहीं हो सकते । और  
सुज्यमान या बध्यमान रूपसे देवायुका सत्त्व होनेपर क्षपकश्रेणी नहीं होती ।

असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एक गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी चार और  
दर्शनमोहनीय तीन इन सातोंकी सत्ताका नाश करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है । सो कैसे  
नाश करता है यह कहते हैं—प्रथम तीन करण करता है । उनमें-से अनिवृत्तिकरणके  
अन्तर्म्मूर्तकालके अन्तमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक साथ विसंयोजन करता है उन्हें  
बारह कषाय और नोकषायरूप परिणमाता है । विसंयोजन करके अन्तर्म्मूर्त तक विश्राम  
करता है । फिर दर्शनमोहको नष्ट करनेके लिए पुनः अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-  
करण करता है । अनिवृत्तिकरणके काल अन्तर्म्मूर्तमें संख्यातसे भाग दें । संख्यात बहुभाग  
प्रमाण काल बीत जानेपर जब एक भाग काल शेष रहे तब उसके प्रथम समयसे लगाकर



- क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परंतागुत्तं विरलु । तीर्थाहारकंगळक्रमदोळु सत्त्वरहितमाणि एकजीवापेक्षे-  
यिदं क्रमविदं सत्त्वमवकुमदं तं दोडाहारकद्वयमनुद्वेल्लनं माडिब मिथ्यादृष्टि बद्धतरकायुष्यनसंयत-  
नाणि तीर्थमं कट्टि द्वितीयतृतीयपृथ्वीगळगे पोपागळु सम्यक्त्वमं विराधिसुगुमप्पुदरिदं ॥ नाना-  
जीवापेक्षेयिनक्रमवि मिथ्यादृष्टियोळु नूर नाल्वत्तेदुं प्रकृतिगळगे सत्त्वमवकुं ॥ १४८ ॥ सासादन-  
नोळा प्रकृतिप्रयक्के क्रमाक्रमदोळं सत्त्वमिल्लप्पुदरिदं नूरनाल्वत्तय्बु प्रकृतिगळगे सत्त्वमवकुं  
१४९ ॥ मिश्रनोळु तीर्थसत्त्वरहितमाणि नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिगळगे सत्त्वमवकुं १४७ ॥ असंयत-  
सम्यग्दृष्टियोळु सप्तप्रकृतिगळ सत्त्वमनुळळवगं नूरनाल्वत्तेदुं प्रकृतिसत्त्वमवकुं १४८ ॥ देशसंयत-  
नोळुमंते नरकायुष्यजित नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिसत्त्वमवकुं १४७ ॥ प्रमत्तसंयतनोळुमंते नरकतिर्य-  
गायुष्यरहितमाणि नूरनाल्वत्ताद प्रकृतिसत्त्वमवकुं १४६ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळुमंते नूरनाल्वत्तादं  
१० प्रकृतिसत्त्वमवकुं १४६ ॥ मत्तमसंयताविचतुर्गुणस्थानवर्तितगळु तद्भवकर्मक्षयभागिगळु क्षपकश्रेण्या-  
यति । ततः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । तथा सति मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने कश्चिदाहारकद्वयमुद्वेल्य नरकायुष्यवा-  
संयतो भूत्वा तीर्थं बद्ध्वा द्वितीयतृतीयपृथ्वीगमनकाले पुनर्मिथ्यादृष्टिर्भवतीत्येकजीवे क्रमेण नानाजीवे युगपत्ती-  
र्थद्वाराः स्युः इति तत्र सत्त्वमष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं १४८ । सासादने क्रमाक्रममायां तदसत्त्वात् पंचचत्वारिंश-  
दुत्तरशतं १४९ । मिश्रे तीर्थकृदसत्त्वात्सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं । असंयते सप्तप्रकृतिसत्त्वजीवानामष्टचत्वारिंश-  
१५ दुत्तरशतं । १४८ । देशसंयते तेषामेव नरकायुरसत्त्वात्सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं १४७ । प्रमत्तसंयते तेषामेव  
नरकतिर्यगायुरसत्त्वात् षट्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४६ । अप्रमत्तेऽपि तथैव षट्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४६ ।

पहले मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय करता है, उसके पश्चात् मिश्रका और उसके पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय करता है । तब क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें सत्ता कहते हैं—

- २० मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक ही जीवके आहारकद्विक और तीर्थकरका सत्त्व क्रमसे कैसे पाया जाता है यह कहते हैं । किसी जीवने ऊपरके गुणस्थानोंमें आहारकका बन्ध किया । पीछे मिथ्यात्व गुणस्थानमें आकर आहारकद्विकका उद्वेलन कर दिया । पीछे नरकायु-  
का बन्ध करके असंयत गुणस्थानमें जाकर तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया । पश्चात् दूसरे या तीसरे नरकमें जानेके समय मिथ्यादृष्टि हो गया । इस प्रकार एक ही जीवके मिथ्यात्व  
२५ गुणस्थानमें क्रमसे पहले आहारकद्विकका और उसकी उद्वेलना-बन्धका अभाव करनेके पश्चात् तीर्थकरका सत्त्व होता है । किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षा एक साथ दोनोंका सत्त्व पाया जाता है । किसी जीवके आहारकद्विकका सत्त्व पाया जाता है और किसीके तीर्थकरका सत्त्व पाया जाता है । इस तरह मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थकर और आहारकद्विकका सत्त्व भी पाया जानेसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस है ।
- ३० सासादनमें आहारकद्विक और तीर्थकरका सत्त्व किसी भी प्रकारसे नहीं है । अतः सत्त्व एक सौ पैतालीस है । मिश्रमें तीर्थकरका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस है । असंयतादिमें जिन उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्क और तीन दर्शनमोहकी सत्ता पायी जाती है उनकी अपेक्षा असंयतमें एक सौ अड़तालीसका सत्त्व है । देशसंयतमें नरकायुके बिना एक सौ सैंतालीस, प्रमत्तमें नरकायु  
३५ तिर्थचायुके बिना एक सौ छियालीस तथा अप्रमत्तमें भी एक सौ छियालीसका सत्त्व है ।

रोहणं मातृपथगुणपूर्वकरणगुणस्थानबोळु नूर भूवत्तेदु प्रकृतिसत्त्वमवकु-१३८। मेकेदोड अवद्धायुष्यरूप भुज्यमानमनुष्यायुष्यर असंयतादि चतुर्गुणस्थानंगळोळेल्लियाबोडं सप्तप्रकृतिगळं किडिसि क्षपकश्रेण्यारोहणं मातृपरप्पुर्वारिवमपूर्वकरणगुणस्थानबोळु सप्तप्रकृतिगळं नरकतिथ्यं गेवायुष्यत्रयमुमंतु दशप्रकृतिगळसत्त्वमवकुं १० ॥

मिच्छे सासणमिस्से सुणं एक्केवकगं तु बिट्ठाणे ।

विरदापमत्तपुठ्वे सुणण्डसुणं च बोच्छिण्णा ॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानं मोवल्गोडु मेलण गुणस्थानंगळोळु क्षपियिसुव प्रकृतिगळ क्रममं पेळदपरः—

सोलहैविकिगिछवकं चदुसेवकं वादरे अदो एवकं ।

खीणे सोलमजोगे बावत्तरि तेरुवंतंते ॥३३७॥

षोडशाष्टकैकषट्कं चतुर्वेकं वादरेऽतः एकं । क्षीणे षोडशायोगे द्वासप्ततिस्त्रयोदशोपांतंते ॥

बादरे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानबोळु क्रमविदं षोडश अष्ट एक एक षट्कं चतुर्वेकं नात्केडे-  
योळोदोदवके सत्त्वव्युच्छित्तियवकुं । १ । १ । १ । १ । अतः अत्तिदं मेले सुद्धमे सूक्ष्मसांपरायनोळु  
एकं ओडु सत्त्वव्युच्छित्तियवकुं १ । क्षीणे षोडश क्षीणकषायनोळु पविनारं प्रकृतिगळु सत्त्वव्युच्छि-  
त्तियप्पुवु १६ ॥ सयोगेवलियोळु सत्त्वव्युच्छित्तिसून्यमवकुमयोगकेवलियोळु उपांते द्विचरमसमय-  
बोळु द्वासप्ततिप्रकृतिगळु सत्त्वव्युच्छित्तिगळप्पुवु ७२ । अंते चरमसमयबोळु त्रयोदश पविमूरं  
प्रकृतिगळु सत्त्वव्युच्छित्तियप्पुवु १३ ।

क्षपकश्रेण्यारूढानामपूर्वकरणेऽष्टत्रिंशदुत्तरशतं । १३८ । सप्तप्रकृतीनामसंयतादिचतुर्गुणस्थानेष्वेकत्र क्षपितस्या-  
नरकतिथ्यं गेवायुषां चावद्धायुष्यत्वेनासत्त्वात् ॥ ३३६ ॥ अनिवृत्तिकरणादिषु क्षययोग्यानां क्रममाह—

अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने क्रमेण षोडशाष्टवेकमेकं षट्कं चतुर्वेकं सत्त्वव्युच्छित्तिः । अत उपरि सूक्ष्म-  
सांपरायेव्येकं । क्षीणे षोडश । सयोगे शून्यं । अयोगे द्विचरमसमये द्वासप्ततिः, चरमसमये त्रयोदश ॥३३७॥

किन्तु इन गुणस्थानोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टीके सात-सात प्रकृति कम होती है । अपूर्वकरणादिमें  
दो श्रेणी हैं—एक क्षपकश्रेणि और एक उपशमश्रेणि । प्रथम क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा कहते हैं—  
जिसके परभवकी आयुका बन्ध नहीं होता वही जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहण करता है ।  
अतः उसके नरक, तिर्यंच, देव तीन आयुका सत्त्व नहीं होता । तथा असंयतादि गुणस्थानमें  
सात प्रकृतियोंका क्षय करके वह क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है । इस तरह दस प्रकृतियोंका  
सत्त्व न होनेसे अपूर्वकरणमें एक सौ अड़तीस सत्त्व होता है ॥३३५-३३६॥

आगे अनिवृत्तिकरण आदिमें क्षययोग्य प्रकृतियोंको कहते हैं—

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, और चार स्थानोंमें  
एक-एक प्रकृतिकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है । उससे ऊपर सूक्ष्म साम्परायमें एक, क्षीण  
कषायमें सोलह, सयोगीमें शून्य, अयोगीमें द्विचरम समयमें बहत्तर और अन्त समयमें  
तेरहकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ॥३३७॥

आ षोडशादिप्रकृतिगळवाउबेदोडे पेळदपरु :—

णिरयतिरिक्खदु वियलं थीणतिगुज्जोव-ताव-एइंदी ।

साहरणसुहुमथावर सोलं मज्झिमकसायट्ठं ॥३३८॥

- नरकतिर्यग्द्विक विकलं स्थानगृद्धिप्रकोद्योतातपैर्केन्द्रियाणि । साधारणसूक्ष्मस्थावर-  
५ षोडशमध्यमकषायाष्टौ ॥ नरकद्विकमुं २ । तिर्यग्द्विकमुं २ । विकलेंद्रियत्रितयमुं ३ । स्थानगृद्धि-  
त्रयमुं ३ । उद्योतनाममुं १ । आतपमुं १ । एकेंद्रियजातिनाममुं १ साधारणशरीरनाममुं १ । सूक्ष्म-  
नाममुं १ स्थावरनाममुं १ मितु षोडशप्रकृतिगळप्पुवु । मध्यमकषायाष्टौ अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-  
मध्यमकषायाष्टकमक्कुं । ८ ॥

संदित्थिछक्कसाया पुरिसो कोहो य माण मायं च ।

१० थूले सुहुमे लोहो उदयं वा होदि खीणम्मि ॥३३९॥

षंडस्त्रीषट्कषायाः पुरुषः क्रोधश्च मानं माया च । स्थूले सूक्ष्मे लोभः उदयवद्भवति क्षीणे ॥

- क्रमविदं षंडवेदमुं स्त्रीवेदमुं नोकषायषट्कमुं पुंवेदमुं संज्वलनक्रोधमुं संज्वलनमानमुं  
संज्वलनमायेयुमिबु स्थूले अनिवृत्तिकरणनोळु व्युच्छित्तिप्रकृतिक्रमपक्कुं । सूक्ष्मे सूक्ष्मसांपराय-  
नोळु लोभः सूक्ष्म संज्वलनलोभमोदे सत्वव्युच्छित्तिपक्कुं । क्षीणे क्षीणकषायनोळु उदयवद्भवति  
१५ उदयदोळु पेळद षोडशप्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळप्पुवु । सयोगकेवलियोळु सत्वव्युच्छित्ति-  
शून्यमप्पुदरिदमयोगिकेवलिगुणस्थाननदुपातांतदोळु सत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं गाथाद्वयविदं पेळदपरु ।

ताः षोडशादिप्रकृतयः काः ? इति चेदाह—

नरकद्विकं तिर्यग्द्विकं विकलत्रयं स्थानगृद्धित्रयमुद्योतः आतपः एकेंद्रियं साधारणं सूक्ष्मं स्थावरं चेति  
षोडश । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषाया अष्टौ ८ ॥ ३३८ ॥

- २० क्रमेण षंडवेदः स्त्रीवेदो नोकषायषट्कं पुंवेदः संज्वलनक्रोधः संज्वलनमानः संज्वलनमाया एताः स्थूले  
अनिवृत्तिकरणे व्युच्छिन्ता भवन्ति । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मसंज्वलनलोभः, क्षीणकषाये उदयवत्षोडश, सयोगे

विशेषार्थ—जहाँ जिन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है उससे ऊपर उन प्रकृतियों-  
की सत्ताका अभाव होता है ।

आगे उन सोलह आदि प्रकृतियोंको कहते हैं—

- २५ नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, विकलत्रय, स्थानगृद्धि आदि तीन,  
उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर इन सोलहकी व्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणके  
प्रथम भागमें होती है । अप्रत्याख्यान कषाय चार और प्रत्याख्यान कषाय चार इन आठ  
मध्यम कषायोंकी दूसरे भागमें व्युच्छित्ति होती है ॥३३८॥

- नपुंसकवेदकी तीसरे भागमें, स्त्रीवेदकी चौथे भागमें, छह नोकषायोंकी पाँचवें भाग-  
३० में, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमायाकी छठे, सातवें, आठवें और  
नवमें भागमें क्रमसे व्युच्छित्ति होती है । इस प्रकार छसीसकी व्युच्छित्ति स्थूल अर्थात्  
अनिवृत्तिकरणमें होती है । सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति है । क्षीणकषायमें

देहादीकस्संता थिरसुहसरसुरविहायदुग्दुभगं ।

णिमिणं जसणादेज्जं पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ ॥३४०॥

अणुदयतदियं णोचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा ।

उदयगत्तार णराणू तेरस चरिमम्मि वोच्छिण्णा ॥३४१॥

देहादिस्पृशिताः स्थिरशुभस्वरसुरविहायोगतिद्विक दुर्भगं निर्माणायशस्कीर्त्यनादेयं ५  
प्रत्येकापूर्णं अगुरुचनलः ॥

अनुदयतृतीयं नीचप्रयोगिद्विचरमे सत्त्वव्युच्छित्तयः । उदयगतद्वादशनरानुपूर्व्यं त्रयोदश  
चरमे व्युच्छिन्नाः ॥

देहादिस्पृशिताः शरीरपंचकमुं ५ बंधनपंचकमुं ५ संघातपंचकमुं ५ संस्थानषट्कमुं ६ ।  
अंगोपांगत्रितयमुं ३ । संहननषट्कमुं ६ । वर्णपंचकमुं ५ । गंधद्विकमुं २ । रसपंचकमुं ५ । १०  
स्पर्शषट्कमुं ८ । स्थिरद्विकमुं २ । शुभद्विकमुं २ । स्वरद्विकमुं २ । सुरद्विकमुं २ । विहायोगति-  
द्विकमुं २ । दुर्भगनाममुं १ । निर्माणनाममुं १ । अयशस्कीर्तियुं १ । अनादेयमुं १ । प्रत्येकशरीरमुं १  
अपय्यप्रिनाममुं १ । अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं ४ । अनुदयवेदनीयमुं १ । नीचैर्गोत्रमुं १  
मितेष्पत्तेरदुं प्रकृतिगळयोगिद्विचरमसमयसत्त्वव्युच्छित्तिगळप्पुवु । चरमसमयसत्त्वव्युच्छित्ति-  
प्रकृतिगळु सत्त्वगुणस्यानवोळुवयिसुत्तिहं 'तृतीयैकादि द्वादश प्रकृतिगळु' मनुष्यानुपूर्व्यमुमितु १५  
पदिमूरं प्रकृतिगळप्पुवु । अंतागुत्तं विरलनिवृत्तिकरणन प्रथमभागवोळु असत्त्वंगळु पत्तु १० ।  
सत्त्वप्रकृतिगळु नूर मूवत्ते'दु १३८ । आद्वितीयस्थानवोळु पदिनारुगूडिपसत्त्वप्रकृतिगळु

शून्यं ॥ ३३९ ॥

पंचशरीरपंचबंधनपंचसंघातषट्संस्थानत्र्यंगोपांगषट्संहननपंचवर्णद्विगंधपंचरसाष्टस्पृशिताः स्थिरशुभसु-  
स्वरसुरविहायोगतिद्विकानि दुर्भगं निर्माणमयशस्कीर्तिरनादेयं प्रत्येकमपर्याप्तमगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासा २०  
अनुदयवेदनीयं नीचैर्गोत्रं चेति द्वादशपत्तिरयोगिद्विचरमसमये सत्त्वव्युच्छित्तिः । चरमसमये उदयगततृतीयैकादि-  
द्वादशः मनुष्यानुपूर्व्यं चेति त्रयोदश । एवं सत्त्वनिवृत्तिकरणप्रथमभागे असत्त्वं दश सत्त्वमष्टात्रिंशदुत्तरशतं,

उदय व्युच्छित्तिकी तरह पाँच ज्ञानाचरण, चार दर्शनाचरण, पाँच अन्तराय, निद्रा और  
प्रचला इन सोलहकी सत्त्व व्युच्छित्ति है । सयोगीमें सत्त्व व्युच्छित्ति नहीं है ॥३३९॥

पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, २५  
पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर,  
देहगति, देवानुपूर्वी, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय,  
प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, जिसका उदय न हो वह एक  
वेदनीय और नीच गोत्र इन बहत्तरकी अयोगकैबलीके द्विचरम समयमें सत्त्व व्युच्छित्ति  
होती है । अन्तिम समयमें जिनका उदय अयोगीमें होता है वह कोई एक वेदनीय, मनुष्य-

१. तदियेकं मणुगदि पत्तिदिय शुभग तसतिगदेज्जं ।

जसतिस्थं मणुगवु उच्चं च अजोगिचरिमम्मि ॥

- यिप्पत्तार २६ । सत्त्वंगळू नूरिप्पत्तेरडु १२२ । तृतीयस्थानवोळो दुगूडियसत्त्वंगळू मूवत्तनाल्कु ३४ । सत्त्वप्रकृतिगळू नूरहविनाल्कु ११४ । चतुर्थस्थानवोळू ओ दु गूडियसत्त्वंगळू मूवत्तयु ३५ । सत्त्वंगळू नूरहविमूर ११३ । पंचमस्थानवोळो दु गूडियसत्त्वंगळू मूवत्तार ३६ । सत्त्वप्रकृतिगळू ११२ ॥ षष्ठस्थानवोळारुगूडियसत्त्वंगळू नात्त्वत्तेरडु ४२ । सत्त्वंगळू नूरार १०६ सप्तमस्थानवो-  
 ५ लो दु गूडियसत्त्वंगळू नात्त्वत्तमूर ४३ । सत्त्वंगळू नूरयु १०५ ॥ अष्टमस्थानवोळो दुगूडियसत्त्वंगळू नात्त्वत्तनाल्कु ४४ । सत्त्वंगळू नूर नाल्कु १०४ ॥ नवमस्थानवोळो दुगूडियसत्त्वंगळू नात्त्वत्तयु ४५ । सत्त्वंगळू नूर मूर १०३ सूक्ष्मसांपरायणस्थानवोळो दु गूडियसत्त्वंगळू नात्त्वत्तार ४६ । सत्त्वंगळू नूर घेरडु १०२ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानवोळू सूक्ष्मलोभगूडियसत्त्वंगळू नात्त्वत्तेळु ४७ । सत्त्वंगळू नूरो दु १०१ ॥ सयोगकेवलिगुणस्थानवोळू पविनारुगूडियसत्त्वंगळू अरुवत्तमूर ६३ । सत्त्वंगळेणभ-  
 १० तयु ८५ । अयोगिकेवलिगुणस्थानद्विचरमसमयपर्यंतमसत्त्वप्रकृतिगळू मरुवत्तमूर ६३ । सत्त्व-  
 प्रकृतिगळेणभत्तयु ८५ ॥ चरमसमयवोळेपत्तेरडुगूडि नूर मूवत्तयव सत्त्वंगळू १३५ ॥ सत्त्वंगळू पविमूर १३ ॥ संदृष्टि :—

- तद्वितीयस्थाने षोडश संयोज्यासत्त्वं षड्विंशतिः सत्त्वं द्वाविंशत्युत्तरशतं । तृतीयस्थानेऽष्टौ संयोज्यासत्त्वं चतुस्त्रिंशत्, सत्त्वं चतुर्दशोत्तरशतं । चतुर्थस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशत्, सत्त्वं त्रयोदशोत्तरशतं ।  
 १५ पंचमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं षट्त्रिंशत्, सत्त्वं द्वादशोत्तरशतं । षष्ठस्थाने षट्संयोज्यासत्त्वं द्वाचत्वारिंशत्, सत्त्वं षडुत्तरशतं । सप्तमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं त्रिचत्वारिंशत्, सत्त्वं पंचोत्तरशतं । अष्टमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत्, सत्त्वं चतुस्तरशतं । नवमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं पंचचत्वारिंशत्, सत्त्वं त्र्युत्तरशतं । सूक्ष्मसांपराये एकां संयोज्यासत्त्वं षट्चत्वारिंशत् सत्त्वं द्व्युत्तरशतं । क्षीणकषाये सूक्ष्मलोभं संयोज्यासत्त्वं सप्तचत्वारिंशत् । सत्त्वमेकोत्तरशतं । सयोगे षोडश संयोज्यासत्त्वं त्रिषष्टिः सत्त्वं पंचाशीतिः ।  
 २० अयोगे द्विचरमसमयपर्यंतमसत्त्वं त्रिषष्टिः सत्त्वं पंचाशीतिः, चरमसमये द्वासप्तति संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशदुत्तर-  
 शतं, सत्त्वं त्रयोदश । ॥ ३४०-३४१ ॥

गति पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और मनुष्यानुपूर्वी इन तेरहकी सत्त्व व्युत्पत्ति होती है । ऐसा होनेपर—

- अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें असत्त्व दस । सत्त्व एक सौ अड़तीस । उसके दूसरे  
 २५ भागमें सोलह मिलाकर असत्त्व छब्बीस, सत्त्व एक सौ बाईस । उसके तीसरे भागमें आठ मिलाकर असत्त्व चौतीस, सत्त्व एक सौ चौदह । उसके चौथे भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतीस, सत्त्व एक सौ तेरह । उसके पाँचवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व छतीस, सत्त्व एक सौ बारह । उसके छठे भागमें छह मिलाकर असत्त्व बयालीस, सत्त्व एक सौ छह । उसके सातवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व तैंतालीस, सत्त्व एक सौ पाँच । उसके आठवें भागमें  
 ३० एक मिलाकर असत्त्व चवालीस, सत्त्व एक सौ चार । उसके नौवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैतालीस, सत्त्व एक सौ तीन । सूक्ष्म साम्परायमें एक मिलाकर असत्त्व छियालीस, सत्त्व एक सौ दो । क्षीणकषायमें एक सूक्ष्म लोभ मिलाकर असत्त्व सैंतालीस, सत्त्व एक सौ एक । सयोगीमें सोलह मिलाकर असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व पिचासी । अयोगीके द्विचरम समय

| *    | मि  | सा  | मि  | अ   | वे  | प्र | अ   | अ   | अ   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   | ०   |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| व्यु | ०   | ०   | ०   | १   | १   | ०   | ८   | ०   | १६  | ८   | १   | १   | ६   | १   | १   | १   |
| उ    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४७ | १४६ | १४६ | १२८ | १२८ | १२२ | ११४ | ११३ | ११२ | १०६ | १०५ | १०४ |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   | १   | २   | २   | १०  | १०  | २६  | ३४  | ३५  | ३६  | ४२  | ४३  | ४४  |

| ०   | स   | क्षी | स  | अ  | अ   |
|-----|-----|------|----|----|-----|
| १   | १   | १६   | ०  | ७२ | १३  |
| १०३ | १०२ | १०१  | ८५ | ८५ | १३  |
| ४५  | ४६  | ४७   | ६३ | ६३ | १३५ |

अनंतरमुक्तसत्त्वासत्त्वंगळं पेळवपरु :—

णभतिगिणभह्मि दोहोदसदससोलङ्गादिहीनेसु ।

सत्ता हवन्ति एवं असहायपरकमुद्दिष्टं ॥३४२॥

नभस्येकनभ एक द्विद्वि दश दश षोडशाष्टकादिहीनेषु । सत्त्वानि भवन्त्येवमसहायपराक्रमो-  
द्दिष्टं ॥

नभः मिथ्यादृष्टियोलु असत्त्वं शून्यमवकुं । त्रि सासादनोलसत्त्वं मूरवकुं ३ । एक मिश्र-  
नोलोदवकुं १ । नभः असंयतनोलसत्त्वं शून्यमवकुं १ । एकदेशसंयतनोलु असत्त्वमोदवकुं १ ।  
द्वि प्रमत्तसंयतनोलसत्त्वमेरडवकुं २ । द्वि अप्रमत्तसंयतनोलसत्त्वमेरडवकुं २ । दश अपूर्वकरण-  
नोलसत्त्वं पत्तु १० । दश अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागदोलसत्त्वं पत्तु १० । षोडशाष्टकादिहीनेषु  
अनिवृत्तिकरणद्वितीय तृतीयादिभागादिगोलु षोडशाष्टकादिगोलु हीरंगळामुत्तं विरलु सत्त्वानि १०  
भवन्ति सत्त्वंगळु पूर्वोक्तक्रमविदमप्युधेदितसनायपराक्रमनप्य श्रीधीरवर्द्धमानस्यामिदिवं पेळलपट्टु-

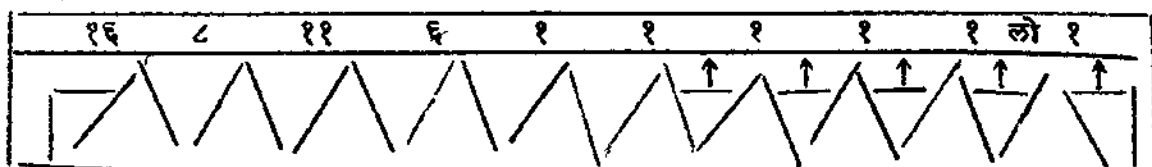
अयोक्तसत्त्वासत्त्वं प्राह—

मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं । सासादने त्रिकं । मिश्रे एकं । असंयते शून्यं । देशसंयते एकं । प्रमत्ते द्वयं ।  
अप्रमत्ते द्वयं अपूर्वकरणे दश । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे दश । द्वितीयतृतीयादिभागेषु षोडशाष्टकादिहीनेषु  
पूर्वोक्तक्रमेण सत्त्वानि स्थिरित्यसहायपराक्रमेण वर्धमानस्त्वामिना प्ररूपितं । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानोक्तषोडशा-

पर्यन्त असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व पिचासी । अन्तिम समयमें बहत्तर मिलाकर असत्त्व एक सौ  
पैतीस, सत्त्व तेरह ॥३४०-३४१॥ आगे उक्त सत्त्व-असत्त्वको कहते हैं—

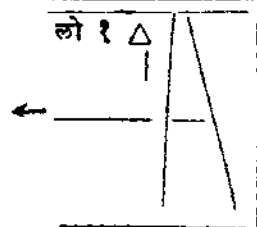
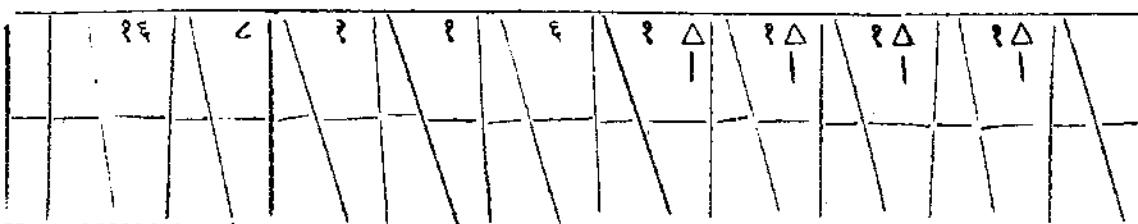
असत्त्व मिथ्यादृष्टिमें शून्य, सासादनमें तीन, मिश्रमें एक, असंयतमें शून्य, देश-  
संयतमें एक, प्रमत्तमें दो, अप्रमत्तमें दो, अपूर्वकरणमें दस, अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें  
दस, दूसरे तीसरे आदि भागोंमें सोलह. आठ आदि मिलानेपर असत्त्व होता है । सो २०  
सत्त्व प्रकृतियोंमें-से असत्त्व प्रकृतियोंको घटानेपर उस-उस गुणस्थानमें सत्त्व प्रकृति पूर्वोक्त

वनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळ पेळल्पट्ट खोडशाष्टकाविसत्त्वव्युच्छित्तिगळ क्षपणाविधानरचना ।  
संदृष्टि :—



यित्ति बावरसंज्वलनलोभमनिवृत्तिकरणनिवं क्षपयितलपट्टुदेते दोडे सूक्ष्मकृष्टिकरणम-  
निवृत्तिकरणनोळवकुमवरवयं सूक्ष्मसांपरायनोळवकुमेबी विशेषमरियलपडुगुं । ई क्षपणाविधान-  
५ दोळदयवंतमप्प पुवेवाविगळ्ळोदु निषेकमोदेसमयकालस्थितियवकुमेरडु निषेकंगळेरडे समय-  
कालस्थितिगप्पुवित्यावि । मत्तमनुबयंगळप्प नपुंसकवेदाविकम्मंप्रकृतिगळ क्षपितावशेषोच्छिष्टा-  
वलिमात्रनिषेकंगळो परमुखोदयत्वविद समयाधिकावलिमात्रसमयस्थितियवकुमेते दोडोदु निषेक-

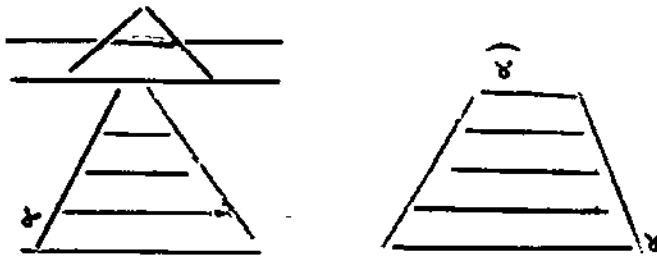
ष्टकाविसत्त्वव्युच्छित्तीनां क्षपणाविधानरचनासंदृष्टिः ।



अत्रानिवृत्तिकरणे बादरलोभं क्षपयति सूक्ष्मकृष्टीः करोति । ताः कृष्टयः सूक्ष्मसांपराये उदयंतोति  
१० जातव्यं । अस्मिन् क्षपणाविधाने उदयागतपुंवेदादीनामेकनिषेकः एकसमयस्थितिकः । द्वी निषेकौ द्विसमय-  
स्थितिकावेवं क्रमः । अनुदयगतनपुंसकवेदादीनां च क्षपितावशेषोच्छिष्टस्य समयाधिकावलिः स्थितिः स्यात्,

क्रमानुसार जानना । ऐसा असहाय पराक्रमके धारी श्री वर्धमान स्वामीने कहा है । यहाँ  
अनिवृत्तिकरणमें बादर लोभका क्षपण करता है । उस लोभकी सूक्ष्मकृष्टि करता है । वे सूक्ष्म-  
कृष्टियाँ सूक्ष्मसाम्परायमें उदयमें आती हैं ऐसा जानना । इस क्षपणाविधानमें उदयमें आये  
५ पुरुषवेद आदिका एक निषेक तो एक समयकी स्थितिवाला होता है । दो निषेक दो समयकी  
स्थितिवाले होते हैं । ऐसा क्रम जानना । जिनका उदय नहीं है उन नपुंसकवेद आदिकी  
क्षयके बाद अवशेष उच्छिष्ट रही सर्वस्थिति एक समय अधिक आवली प्रमाण है क्योंकि वहाँ  
एक निषेक दो समयकी स्थितिवाला है । दो निषेक तीन समयकी स्थितिवाले हैं इत्यादि  
क्रम पाया जाता है अतः उच्छिष्टावलीसे एक समय अधिक स्थिति जानना । उदयको अप्राप्त

मेरु समयकालस्थितियक्कुमेरु निषेकंगळु मूर समयकालस्थितिगळपुवित्यादिक्रममुंटपुवदरिद-  
मनुदयंगळो परमुखोदयत्वादिवं समसमयोदयनिषेकंगळोदोदु निषेकंगळु स्थितोत्क संक्रमविद  
संक्रमिसि पोपुवेदितु स्वमुखोदयपरमुखोदयविशेषमरियत्पडुगु । संदृष्टि :—



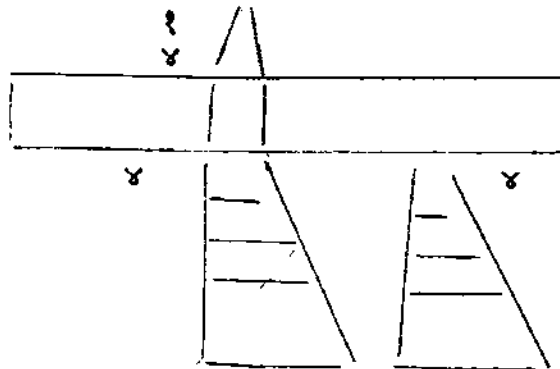
अनंतरमेकविशति चारित्रमोहनीयोपशमविधानक्रममं पेळवपरु :—

खवणं वा उवसमणे णवरि य संजलण पुरिसमज्झमि ।

मज्झिम दो दो कोहादीया कमसोवसंता हु ॥३४३॥

अपणे वोपशमने नवीनं संज्वलनपुरुषमव्ये, मध्यम द्वी द्वी क्रोधादि कषायौ क्रमश उप-  
जातो खलु ॥

एकनिषेको द्विसमयस्थितिकः, द्वी निषेको त्रिसमयस्थितिकाविति क्रमस्य सद्भावात् । अनुदयगतानां परमुखोदय-  
त्वेन समयसमयोदया एकैकनिषेकाः स्थितोक्तसंक्रमेण संक्रम्य गच्छन्तीति स्वमुखपरमुखोदयविशेषोऽवसंतव्यः । १०  
संदृष्टि:—



॥३४२॥ अथैकविशतिचारित्रमोहनीयोपशमविधानक्रममाह—

नपुंसक वेद आदिका परमुख उदयके द्वारा समान समयोंमें उदयरूप एक-एक निषेक कहे  
क्रमानुसार संक्रमण रूप होता है । इस प्रकार स्वमुख और परमुख उदयमें विशेष जानना ।  
जो प्रकृति अपने रूपमें ही उदयमें आती है उसमें स्वमुख उदय है । जो प्रकृति अन्यरूप हो १५  
उदयमें आवे वहाँ परमुख उदय है ॥३४२॥

आगे चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंके उपशम करनेका विधान कहते हैं—



क्षपणाविधानदोळ पेल्लदंते उपशमनविधानदोळ सत्वमवकुं । विशेषमुंटावुवेंदोडे संज्वलनकषायपुंवेदोपशमनमध्यदोळ मध्यमंगळप्य अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधादिकषायद्वय-  
द्वयंगळपशमिसत्पडुवुवु क्रमदिदमदेंतेदोडे पुरुषवेदोपशमनानंतरं पुंवेदनवकबंध सहितमागि  
मध्यमक्रोधकषायद्वयमुपशमिसत्पडुगुं । तदनंतरं संज्वलनक्रोधमुपशमिसत्पडुगुमनंतरमा संज्वलन-

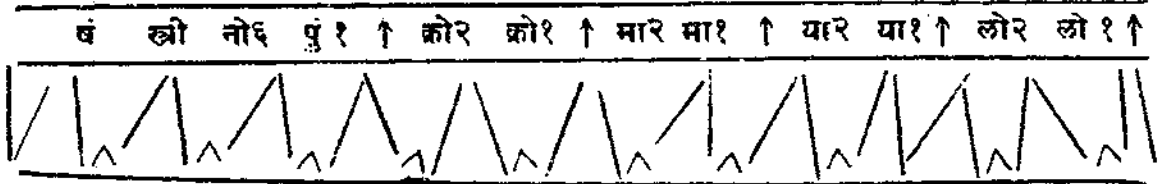
- ५ क्रोधनवकबंधसहितमागि मध्यममानकषायद्विकमुपशमिसत्पडुगुं । तदनंतरमा संज्वलनमान-  
मुपशमिसत्पडुगु । मनंतरमा मानसंज्वलन नवकबंधसहितमागि मध्यममायाकषायद्वयमुपशमि-  
सत्पडुगुं । तदनंतरं मायासंज्वलनकषायमुपशमिसत्पडुगुं । मनंतरं मायासंज्वलन नवकबंधसहित-  
मागि मध्यमलोभकषायद्वयमुपशमिसत्पडुगुं । तदनंतरं संज्वलनबादर लोभमुपशमिसत्पडुगुंमो-  
विशेषमिनितेपोसतु । मोहनोयकर्ममोदकल्लकुळिवेळं कर्मंगळपशमविधानमिल्लपुदरिं  
१० नपुंसकवेदाविगळगुपशमविधानमरियत्पडुगु । संदृष्टिः—

- क्षपणावदुपशमविधानेऽपि सत्त्वं स्यात् । किंतु संज्वलनकषायपुंवेदमध्ये मध्यमा अप्रत्याख्यानप्रत्या-  
ख्यानाः द्वौ द्वौ क्रोधादयः क्रमेणोपधाताः खलु । तद्यथा—पुंवेदोपशमनानंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यमक्रोधद्व-  
यमुपशमयति । तदनंतरं संज्वलनक्रोधमुपशमयति । तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यममानद्वयमुपशमयति ।  
तदनंतरं संज्वलनमानमुपशमयति । तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यममायाद्वयमुपशमयति । तदनंतरं संज्व-  
१५ लनमायामुपशमयति । तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यमलोभद्वयमुपशमयति । तदनंतरं संज्वलनबादरलोभ-  
मुपशमयति इति विशेषो मोहनोयस्यैव शेषकर्मणामुपशमनविधानाभावात् । नपुंसकवेदादीनामुपशमविधाने  
संदृष्टिः—

- क्षपणाकी तरह ही उपशम विधानका भी क्रम है । किन्तु विशेष इतना है कि संज्वलन  
कषाय और पुरुषवेदके मध्यमें मध्यके अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो-दो क्रोधादिका  
२० क्रमसे उपशम होता है । वही कहते हैं—

नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह और पुरुषवेदका क्रमसे उपशम होता है । पीछे  
पुरुषवेदका उपशम करनेके अनन्तर जो नवीन बन्ध हुआ उस सहित अप्रत्याख्यान और  
प्रत्याख्यान क्रोधके युगलका उपशम करता है ।

- तत्काल पुरुषवेदका जो नवीन बन्ध हुआ उसके निषेक पुरुषवेदका उपशमन करनेके  
२५ कालमें उपशम करने योग्य नहीं हुए थे । क्योंकि अचलावलीमें कर्मप्रकृतिको अन्यरूप परिण-  
माना अशक्य होता है । इससे पुरुषवेदके निषेक मध्यम क्रोधयुगलका उपशम करनेके कालमें  
उपशम किये जाते हैं । इसी प्रकार संज्वलन क्रोधादिके भी नवकबन्धका स्वरूप जानना ।  
अनन्तर संज्वलन क्रोधका उपशम करता है । उसके अनन्तर उस संज्वलन क्रोधके नवीन-  
बन्ध सहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मान युगलका उपशम करता है । उसके अनन्तर  
३० संज्वलन मानका उपशम करता है । उसके अनन्तर संज्वलन मानके नवीनबन्ध सहित  
मध्यम अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मायायुगलका उपशम करता है । उसके अनन्तर  
संज्वलन मायाका उपशम करता है । उसके अनन्तर संज्वलन मायाके नवीनबन्ध सहित  
मध्यम अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभको उपशमाता है । उसके अनन्तर बादर संज्वलन  
लोभको उपशमाता है । यह विशेष केवल मोहनीय कर्मका ही जानना, क्योंकि मोहनीयके



गिरयादिसु पयडिडिदि-अणुभागपदेस-मेदमिणसस ।

सत्तसस य सामित्तं णेदव्वमदो जहाजोग्गं ॥३४४॥

नरकाविषु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रवेश भेदभिन्नस्य । सत्त्वस्य च स्वामित्वं नेतव्यमितो यथा-  
योग्यं ॥

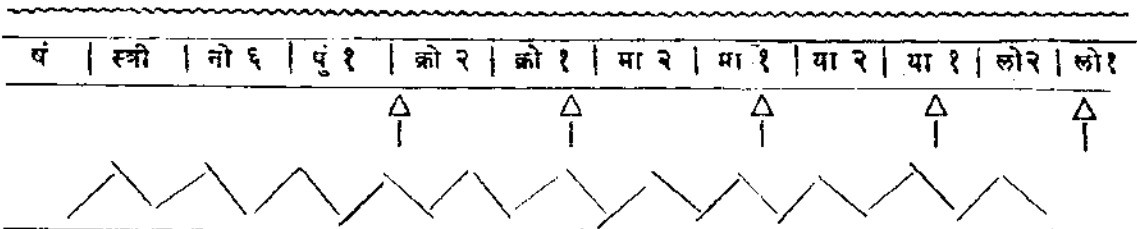
नरकगत्यादिमार्गणास्थानंगळोळु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रवेशभेदविं चतुर्विधमप्य सत्त्वको  
स्वामित्वमित्तिदं मेलं यथायोग्यमाणि नेतव्यमवकुं ।

अनंतरं परिभाषयं देवदपरुः—

तिरिये ण तित्थसत्तं गिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिणिण ।

आऊणि होंति सत्ता सेसं ओघादु जाणेज्जो ॥३४५॥

तिरिचि न तीर्थसत्त्वं नरकाविषु त्रयचतुष्क चतुस्त्रीणि । आयुंषि भवन्ति सत्त्वानि शेषमो- १०  
घातु ज्ञातव्यं ॥



इतः परं नरकगत्यादिमार्गणानु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रवेशभेदभिन्नस्य चतुर्विधसत्त्वस्य स्वामित्वं  
यथायोग्यं नेतव्यं ॥३४४॥ अथ परिभाषामाह—

सिवाय अन्य कर्मोका उपशम नहीं होता । इस प्रकार उपशम श्रेणिमें मोहको उपशमाता है  
उसकी सत्ताका नाश नहीं होता । अतः अपूर्वकरणसे उपशान्त गुणस्थान पर्यन्त उपशम १५  
श्रेणिवालेके नरकायु तिर्यचायु बिना एक सौ छियालीसकी सत्ता रहती है । किन्तु क्षायिक  
सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणिवालेके एक सौ अड़तीसकी सत्ता अपूर्वकरणसे उपशान्त कषाय पर्यन्त  
रहती है । तथा जिसके आयुबन्ध नहीं हुआ हो उस क्षायिक सम्यग्दृष्टीके असंयत आदि  
चार गुणस्थानोंमें भी एक सौ अड़तीस ही की सत्ता होती है ॥३४३॥

यहाँसे आगे नरक गति आदि मार्गणाओंमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चार २०  
प्रकारके भेदसे भिन्न कर्मोंके सत्त्वको यथायोग्य घटाना चाहिए ॥३४४॥

आगे परिभाषा कहते हैं—

तिर्य्यग्नोऽन्तु तीर्थसत्त्वमिल्ल । नरकगतिर्योऽन्तु देवायुष्यं पोरगाणि भुज्यमान नरकायुष्य-  
सहितमाणि बद्धमानतिर्य्यग्ननुष्यायुष्यद्विकं गूडि मूरायुष्यं सत्त्वमक्कुं ३ । तिर्य्यग्नतिर्योऽन्तु  
भुज्यमानतिर्य्यगायुष्यं सहितमाणि बध्यमाननरकतिर्य्यग्ननुष्यदेवायुष्यंगळु नाल्कुं सत्त्वंगळक्कुं  
४ ॥ मनुष्यगतिर्योऽन्तु भुज्यमानमनुष्यायुष्यं सहितमाणि बध्यमान नरकतिर्य्यग्ननुष्यदेवायुष्यंगळु  
५ नाल्कुं सत्त्वंगळक्कुं । देवगतिर्योऽन्तु भुज्यमानदेवायुष्यं सहितमाणि बध्यमानतिर्य्यग्ननुष्यायुष्यं-  
गूडि मूरायुष्यंगळु सत्त्वंगळक्कुं ३ ॥ शेषप्रकृतिसत्त्वं सर्वं गुणस्थानदत्तणिवं ज्ञातव्यमक्कुं ।

अनंतरं नरकगतिर्योऽन्तु सत्त्वप्रकृतिगळं पेळदपरः—

ओषं वा णेरइए ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति ।

छट्ठित्ति मणुस्साऊ तिरिए ओषं ण तित्थयरं ॥३४६॥

१० ओषवन्नैरयिके न सुरायुस्तोत्थंमस्ति तृतीया पर्यंतं । षष्ठी पर्यंतं मनुष्यायुस्तिरश्च्योषो  
न तीर्थकरं ॥

नारकनोऽन्तु गुणस्थानवोऽन्तु पेळद देवायुष्यंज्जितसत्त्वकर्मप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळुमक्कुं  
१४७ । मल्लि तृतीयपृथ्वीपर्यंतं तीर्थसत्त्वमुंदु । चतुर्थ्यादिपृथ्वीगळोऽन्तु तीर्थरहितमाणिगा  
नूर नाल्वत्ताहं प्रकृतिगळो १४६ सत्त्वमक्कुं । आरनेय मघविपर्यंतं मनुष्यायुष्यं सत्त्वमुंदु ।

१५ माघविर्योऽन्तु मनुष्यायुष्यंज्जित नूरनाल्वत्तयु प्रकृतिगळु सत्त्वमक्कुं १४५ ॥ अल्लि घम्मवि मूरं

तिर्य्यग्नजीवे तीर्थकृत्वसत्त्वं न स्यात् । नरकगतौ भुज्यमाननरकायुष्यं बध्यमानतिर्य्यग्ननुष्यायुषी चेति त्रयमेव,  
न देवायुः । तिर्य्यग्नतौ भुज्यमानतिर्य्यगायुः बध्यमाननरकतिर्य्यग्ननुष्यदेवायुषीति चत्वारि । मनुष्यगतौ भुज्य-  
मानमनुष्यायुष्यं बध्यमाननरकतिर्य्यग्ननुष्यदेवायुषीति चतुष्कं । देवगतौ भुज्यमानदेवायुष्यं बध्यमानतिर्य्यग्ननुष्यायुषी  
इति त्रयं । शेषप्रकृतिसत्त्वं सर्वं गुणस्थानवज्ज्ञातव्यं ॥३४५॥ अथ नरकगतौ सत्त्वमाह—

२० नारके गुणस्थानवन्न देवायुरिति सप्तचत्वारिंशच्छतं । तत्रापि तृतीयपृथ्वीपर्यंतं तीर्थसत्त्वमस्ति न  
चतुर्थ्यादिष्विति षट्चत्वारिंशच्छतं । तत्रापि षष्ठपृथ्वीपर्यंतं मनुष्यायुःसत्त्वमस्ति न माघव्यामिति पञ्चचत्वा-

तिर्य्यच जीवमें तीर्थकर प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता । नरकगतिमें भुज्यमान नरकायु,  
बध्यमान तिर्य्यचायु अथवा मनुष्यायु इस प्रकार तीन आयुका ही सत्त्व होता है, देवायुका  
नहीं । तिर्य्यचगतिमें भुज्यमान तिर्य्यचायु बध्यमान नरकायु, तिर्य्यचायु, मनुष्यायु, देवायु इस  
२५ प्रकार चारों आयुका सत्त्व होता है । मनुष्यगतिमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु  
तिर्य्यचायु, मनुष्यायु, देवायु, इस प्रकार चारों आयुका सत्त्व है । देवगतिमें भुज्यमान  
देवायु बध्यमान तिर्य्यचायु या मनुष्यायु इस प्रकार तीन आयुका सत्त्व है ।

विशेषार्थ—जिस आयुको जीव भोग रहा है उसे भुज्यमान कहते हैं । और आगामी  
भवमें उदय आनेके योग्य जिस आयुका बन्ध होता है उसे बध्यमान कहते हैं । शेष  
३० प्रकृतियोंका सत्त्व गुणस्थानोंमें जैसा कहा है उसी प्रकार जानना ॥३४५॥

आगे नरकगतिमें सत्ता कहते हैं—

नरकगतिमें गुणस्थानवत् जानना । वहाँ देवायुका सत्त्व नहीं है, इससे सत्त्व योग्य  
एक सौ सैंतालीस है । तथा तीर्थकरका सत्त्व तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है, अतः

पृथिव्यलोळु योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तेळपु १४७ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळसत्त्वं शून्यं सत्त्वं नूर नात्वत्तेळु १४७। सासादननोळु तीर्थमुमाहारकद्विकमुसत्त्वमक्कु। सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्थमोदे असत्त्वमक्कु १। सत्त्वगळु नूर नात्वत्तारु १४६। असंयतगुणस्थानदोळु असत्त्वं शून्यमक्कु। सत्त्वंगळु तीर्थमुमाहारकद्वयमुं सहितमागि नूरनात्वत्तेळु १४७। संदृष्टि :—

घन्मे वंसे मेघयोग्य १४७।

| ०      | मि  | सा  | मि  | अ   |
|--------|-----|-----|-----|-----|
| सत्त्व | १४७ | १४४ | १४६ | १४७ |
| अस     | ०   | ३   | १   | ०   |

अंजनेयादियागि मघवि पर्यंतं मूरं पृथिव्यलोळु योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु तीर्थमुं देवायुष्यमुं पोरगागि योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तारपु १४६ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळसत्त्वं शून्यं। सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तारु १४६॥ सासादनगुणस्थानदोळाहारकद्विकमसत्त्वमक्कु २। सत्त्वंगळु नूरनात्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु आहारकद्विकं सहितमागि नूरनात्वत्तारं सत्त्वप्रकृतिगळक्कु १४६। असंयतगुणस्थानदोळसत्त्वं शून्यं। सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तारु १४६। १०  
संदृष्टि :—

रिशच्छतं। तत्र घर्मादित्रयसत्त्वे १४७। मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं। सत्त्वं सर्वं। सासादने तीर्थाहारद्वयं असत्त्वं। सत्त्वं चतुश्चत्वारिशच्छतं। मिश्रे तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं षट्चत्वारिशच्छतं। असंयते असत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४७।

अंजनादित्रयसत्त्वे १४६ मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४६। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं सत्त्वं च चतुश्चत्वारिशच्छतं। मिश्रे असत्त्वं शून्यं सत्त्वमाहारकद्वयसद्भावात् सर्वं १४६। असंयते असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४६। १५

चतुर्थ आदि पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ छियालीस है। वहाँ भी मनुष्यायुका सत्त्व छठी पृथ्वी तक है अतः सातवीं माघवी पृथ्वीमें एक सौ पैतालीसका सत्त्व है। इस प्रकार घर्मा आदि तीन पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस है। सो मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य है अर्थात् नहीं है। सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें तीर्थकर और आहारकद्विकका असत्त्व। सत्त्व एक सौ चवालीस। मिश्रमें तीर्थकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ छियालीस। असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस। २०

अंजना आदि तीन पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ छियालीस। मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस। सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस। मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व आहारकद्विककी सत्ता होनेसे सब १४६। असंयतमें असत्त्व २५

अं। अ। म। यो० १४६

| ०      | मि  | सा  | मि  | अ   |
|--------|-----|-----|-----|-----|
| सत्त्व | १४६ | १४४ | १४६ | १४६ |
| अस     | ०   | २   | ०   | ०   |

माघवियोळ मनुष्यायुष्यमुं तीर्थमुं देवायुष्यमुं पौरगाणि नूर नात्वत्तद्वुं योग्यसत्त्व-  
प्रकृतिगळकु १४५ ॥ मल्लि मिथ्यादृष्टियोळसत्त्वं शून्यं । सत्त्वंगळु नूरनात्वत्तद्वुं १४५ ।  
सासादननोळाहारकद्वयमसत्त्वं २ । सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तमूर १४३ ॥ मिश्रगुणस्थानवोळ-  
सत्त्वं शून्यं । सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तद्वुं १४५ ॥ असंयतगुणस्थानवोळु असत्त्वं शून्यं । सत्त्व-  
५ प्रकृतिगळु नूरनात्वत्तद्वुं १४५ । संवृष्टिः—

माघवि योग्यं १४५

| ० | मि  | सा  | मि  | अ   |
|---|-----|-----|-----|-----|
| स | १४५ | १४३ | १४५ | १४५ |
| अ | ०   | २   | ०   | ०   |

तिर्यग्गोष्ठो न तीर्थकरं-तिर्यग्गतियोळु तीर्थरहितसामान्यसत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्व-  
त्तेळपु १४७ वल्लि सामान्यपंचेंद्रियपर्व्याप्त योनिमतितिर्यग्चरुगळो योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु  
नूरनात्वत्तेळु १४७ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु असत्त्वं शून्यं । सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तेळु

माघवीसत्त्वे १४५ मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४५ । सासादने आहारकद्वयमसत्त्वं सत्त्वं  
१० निश्चत्वारिंशच्छतं । मिथ्येऽसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४५ । असंयतेऽसत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४५ ।

तिर्यग्गतौ ओष्ठो, न तीर्थकरमिति सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं

शून्य, सत्त्व सब १४६ । माघवीमें सत्त्व १४५ । मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व सब १४५ ।  
सासादनमें आहारकद्वयका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैंतालीस । मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व  
सब एक सौ पैंतालीस । असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ पैंतालीस ।

धर्मादि १४७

अंजनादि १४६

माघवी १४५

|         | मि. | सा. | मि. | अ.  |
|---------|-----|-----|-----|-----|
| सत्त्व  | १४७ | १४४ | १४६ | १४७ |
| असत्त्व | ०   | २   | १   | ०   |

| मि. | सा. | मि. | अ.  |
|-----|-----|-----|-----|
| १४६ | १४४ | १४६ | १४६ |
| ०   | २   | ०   | ०   |

| मि. | सा. | मि. | अ.  |
|-----|-----|-----|-----|
| १४५ | १४३ | १४५ | १४५ |
| ०   | २   | ०   | ०   |

१५ तिर्यग्गतिमें तीर्थकरके न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें  
असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ पैंतालीस । सासादनमें आहारकद्वयका असत्त्व, सत्त्व एक

१४७। सासादननोळु आहारकद्विकमसत्त्वं २। सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तद्दु १४५॥ मिश्र-  
गुणस्थानदोळसत्त्वं शून्यं। सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तेळु १४७। असंयतगुणस्थानदोळु नरका-  
युष्यमुं मनुष्यायुष्यमुं सत्त्वव्युच्छित्तिवक्कुमेकंदोडे आ प्रकृतिद्वयसत्त्वमुळुळनोळुणुवतं घटि इस-  
वपुदरिदं। देशसंयतनोळा प्रकृतिद्वयवक्के सत्त्वमिल्लपुदरिदं असत्त्वं शून्यं। सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तेळु  
१४७। देशसंयतनोळु व्युच्छित्तिद्वयमसत्त्वमक्कुं २। सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तद्दु १४५। ५  
संहृष्टि :—

सा। सं। प। योनि योग्य १४७

| ०    | मि  | सा  | मि  | अ   | दे  |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|
| व्यु | ०   | ०   | ०   | २   | १   |
| उ    | १४७ | १४५ | १४७ | १४७ | १४५ |
| अ    | ०   | २   | ०   | ०   | २   |

एवं पंचतिरिक्खे पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाळु।

ओधं मणुसतिएसुवि अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ॥ ३४७॥

एवं पंचतिर्यंक्षु पूर्णंतरस्मिन्नस्तः नरकदेवायुषी ओधो मनुष्यत्रयेष्वप्यपूर्णंके पुनर-  
पूर्णं इव ॥

एवं पंच तिर्यंक्षु ई सामान्यतिर्यंचंगे पेळुदंते सामान्यपंचेंद्रियपर्याप्तक योनिमतिअपर्याप्त- १०  
करं ब पंचप्रकार तिर्यंचरुगळनिवर्गामक्कुमल्लि लब्धपर्याप्तकतिर्यंचंगो नरकायुष्यमुं देवायु-  
ष्यमुं तिर्यंगतियोळु सत्त्वविरुद्धमप्य तीर्थंममितु मूर्खं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूर नात्वत्तद्दु  
प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४५। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदेवक्कुं १ मेकंदोडे 'णहि सासणो अपुण्णे येव

१४७। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। मिश्रे असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४७। असंयते १५  
नारकमनुष्यायुषी व्युच्छित्तिः, तत्सत्त्वेऽणुव्रताघटनात्। असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। देशसंयते  
तद्द्वयमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं ॥ ३४६॥

एवं तिर्यंक्षु सामान्यपंचेंद्रियपर्याप्तयोनिमदपर्याप्तपंचविधतिर्यंक्ष्वपि भवति। तत्र लब्धपर्याप्ते तु नरक-  
देवायुषी अपि नेति सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिरेव। कुतः ? 'णहि सासणो अपुण्णे' इति

सौ पैतालीस। मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैतालीस। असंयतमें नरकायु और २०  
मनुष्यायुकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि उनके सत्त्वमें अणुव्रत नहीं होते। असत्त्व शून्य,  
सत्त्व एक सौ सैतालीस। देशसंयतमें नरकायु मनुष्यायुका असत्त्व, सत्त्व एक सौ  
पैतालीस ॥ ३४६॥

इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, योनिमत्-  
तिर्यंच और अपर्याप्ततिर्यंचोंमें जानना। इतना विशेष है कि लब्धपर्याप्त तिर्यंचमें नरकायु

१. भुज्यमानतिर्यंगाव्युच्छित्तिः ॥

५ गुणस्थानदोळु तीर्थमुमाहारद्विकं पोरगाणि नूरनाल्वत्तेदु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४५ ॥ मिश्र-  
गुणस्थानदोळु तीर्थं पोरगाणि नूर नाल्वत्तेदु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४७ । असंयतगुणस्थानदोळु  
नूरनाल्वत्तेदु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४८ । देशसंयतनोळु नरकायुष्यमुं तिर्थ्यायुष्यमुं जद्वयमान-  
मनुष्यायुष्यमुं पोरगाणि नूर नाल्वत्तारं प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४९ । प्रमत्तसंयतनोळमंते नूरनाल्वत्तारं  
प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४६ । अप्रमत्तसंयतनोळमंते नूर नाल्वत्तारं प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४६ । क्षपक-  
० श्रेण्यपूर्वकरणनोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यं पोरगाणि शेषमूरायुष्यंगळं सप्रप्रकृतिगळं कूडि पत्तुं  
प्रकृतिगळवज्जितमाणि नूर सूवत्तेदुं प्रकृतिसत्त्वमक्कुं-१३८ । मुपशमश्रेण्यपेक्षोयिदं नरकतिर्यगायु-  
द्वयरहितं नूरनाल्वत्तारं १४६ क्षायिकसम्यक्त्वमं कुरुतु नूर सूवत्तेदुं प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १३८ ।  
उपशमकश्रेणियोळु क्षपकश्रेणियोळं दर्शनमोहक्षपणयिल्लपुवरिदं । श्रेणियिदं केळगण अबद्धायुष्य-  
रूप मनुष्यासंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु नूर सूवत्तेदुं प्रकृतिसत्त्वरोळरेकंदोडा नाल्कुं गुण-  
५ स्थानदोळल्लियादोडं दर्शनमोहक्षपणयक्कुमपुवरिदं । अपूठवकरणगुणस्थानदिदं मेलण गुणस्थान-  
वर्णियनिवृत्तिकरणनोळमंते क्षपकश्रेण्यपेक्षयिल्लदुपशमश्रेण्यपेक्षोयिदं नूरनाल्वत्तारं १४६ नूर

नियमात् । मनुष्यगतौ सामान्यपर्याप्तकयोनिमत्त्रिविधमनुष्येष्वोषः किंतु योनिमत्क्षपकेष्वेव विशेषः, तेन शेषद्वये सत्त्वं मष्टत्वारिशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ नानाजीवापेक्षया सत्त्वं सर्वं । सासादने तीर्थाद्वारा नेति पंचचत्वारिशच्छतं । मिश्रे तीर्थं नेति सप्तचत्वारिशच्छतं । असंयते सर्वं । देशसंयते प्रमत्ताप्रमत्तयोश्च न नरकतिर्यगायुषी बध्यमानदेवायुर्भुज्यमानमनुष्यायुश्चेति षट्चत्वारिशच्छतं । क्षपकापूर्वकरणे भुज्यमानमनुष्यायुरस्तीति शेषायुस्त्रयसप्तप्रकृत्यभावादष्टत्रिंशच्छतं । उपशमश्रेण्यपेक्षया नरकतिर्यगायुरभावात् षट्चत्वारिशच्छतं । क्षायिकसम्यक्त्वं प्रत्यष्टिंशच्छतं । अबद्धायुर्भुज्यमानादित्युर्वर्णि तत्प्रत्यष्टिंशच्छतं । अनिवृत्तिकरणे उपशमश्रे-

और देवायुके भी न होनेसे सत्त्व एक सौ पैतालीस । और गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है, क्योंकि 'ण हि सासणो अपुण्णे' इस नियमके होनेसे उसमें सासादन गुणस्थान नहीं होता ।

२५ मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य, पर्याप्तक मनुष्य और योनिमत् मनुष्योंमें गुणस्थानवत् जानना । किन्तु योनिमत् मनुष्योंमें क्षपक श्रेणीमें ही विशेष है । शेष दोनोंमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । उनमें मिथ्यादृष्टिमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंका सत्त्व है । सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विक न होनेसे सत्त्व एक सौ पैतालीस । मिश्रमें तीर्थंकरके न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस । असंयतमें सबका सत्त्व है । देशसंयत और प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें नरकायु तिर्थंकायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस । वहाँ ३० बध्यमान देवाय और मज्ज्यमान मनुष्यायका ही सत्त्व होता है ।

क्षपक अपूर्वकरणमें केवल भुज्यमान मनुष्यायुका ही सत्त्व होनेसे शेष तीन आयु और क्षायिक सम्भ्यक्त्व होनेसे मोहनीयकी सात प्रकृतियोंके न होनेसे सत्त्व एक सौ अड़तीस । चपशम श्रेणिकी अपेक्षा नरकायु तिर्यचायुका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस और

सूवर्त्तं दु १३८ प्रकृतिसत्त्वमक्कुं । क्षपकश्रेण्यपेक्षेयिदं प्रथमभागदोळु नूर सूवर्त्तं दु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १३८ । द्वितीयभागदोळु नूरिप्पत्तेरडु प्रकृतिसत्त्वमक्कु १२२ । मेकं दोडे आ प्रथमभागचरम-  
समयदोळु षोडश प्रकृतिगळु क्षपिसत्त्वदुवुवुवरिदं । तृतीयभागदोळुमते मध्यमाष्टकषाय-  
रहितमागि नूर पदिनाल्कु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं ११४ । चतुर्थभागदोळु षड्वेदरहितमागि नूर पदिमूर  
प्रकृतिसत्त्वमक्कुं ११३ । पंचमभागदोळु स्त्रीवेदरहितमागि नूर हर्नेरडु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं ११२ । ५  
षष्ठभागदोळु षण्णोकषायवर्जित नूराहं प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १०६ । सप्तमभागदोळु पुंवेदरहित-  
मागि नूरडु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १०५ ॥ अष्टमभागदोळु संज्वलनक्रोधवर्जितचतुर्दशतत्त्वप्रकृति-  
सत्त्वमक्कुं १०४ ॥ नवमभागदोळु संज्वलनमानरहितत्र्यधिकशतप्रकृतिसत्त्वमक्कुं १०३ ।  
सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु संज्वलनमायारहितमागि नूरेरडु प्रकृतिसत्त्वमक्कु १०२ । उपशम-  
श्रेण्यपेक्षेयिदं नूर नाल्वत्ताहं १४६ नूरसूवर्त्तं दु १३८ प्रकृतिसत्त्वमक्कु । उपशान्तकषायगुणस्थानदोळु १०  
नूर नाल्वत्ताहं १४६ नूर सूवर्त्तं दु १३८ प्रकृतिसत्त्वमक्कुं । क्षीणकषायनोळु संज्वलनलोभरहित-  
मागि नूरो दु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १०१ । सयोगिकेवलियोळु निद्राप्रचलादि षोडशप्रकृतिरहितमागि

ण्यपेक्षया षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टत्रिंशच्छतं च क्षपकश्रेण्यपेक्षया प्रथमभागे अष्टत्रिंशच्छतं द्वितीयभागे द्वाविंश-  
तिसतं षोडशानां तत्प्रथमभागचरमसमये एव क्षपणात् । तृतीयभागे मध्यमाष्टकषायाभावाच्चतुर्दशशतं ।  
चतुर्थभागे षड्वेदाभावात्तत्त्वयोदशशतं । पंचमभागे स्त्रीवेदाभावाद् द्वादशशतं । षष्ठमभागे षण्णोकषाया- १५  
भावात् षडुत्तरशतं । सप्तमभागे पुंवेदाभावात्पंचोत्तरशतं । अष्टमभागे संज्वलनक्रोधाभावाच्चतुर्दशशतं ।  
नवमभागे संज्वलनमानाभावात्त्र्युत्तरशतं । सूक्ष्मसांपरायं संज्वलनमायाभावात् द्व्युत्तरशतं । उपशमश्रेण्य-  
पेक्षया षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टचत्वारिंशच्छतं च । उपशान्तकषाये द्वाचत्वारिंशच्छतं, अष्टत्रिंशच्छतं च । क्षीण-  
कषाये संज्वलनलोभाभावादेकोत्तरशतं । सयोगे निद्राप्रचलादिषोडशाभावात् पंचांशोतिः । अयोगे द्विचरमसम-

क्षायिक सम्यग्दृष्टीके एक सौ अड़तीस । जिस मनुष्यने परभवकी आयु नहीं बाँधी है और २०  
क्षायिक सम्यग्दृष्टी है उसके असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें भी एक सौ अड़तीसका सत्त्व  
होता है । अनिवृत्तिकरणमें उपशम श्रेणिकी अपेक्षा सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ  
अड़तीस । क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा प्रथम भागमें एक सौ अड़तीस । और इस प्रथम भागके  
अन्तिम समयमें सोलह प्रकृतियोंका क्षय होनेसे दूसरे भागमें सत्त्व एक सौ बाईस । और  
इस दूसरे भागके अन्तिम समयमें मध्यकी आठ कषायोंका क्षय होनेसे तीसरे भागमें सत्त्व २५  
एक सौ चौदह । इसी प्रकार चतुर्थ भागमें नपुंसक वेदका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ  
तेरह । स्त्रीवेदका अभाव होनेसे पंचम भागमें सत्त्व एक सौ बारह । छह नोकषायोंका  
अभाव होनेसे छठे भागमें सत्त्व एक सौ छह । पुरुषवेदका अभाव होनेसे सातवें भागमें एक  
सौ पाँच । संज्वलन क्रोधका अभाव होनेसे आठवें भागमें एक सौ चार । संज्वलन मानका  
अभाव होनेसे नवम भागमें एक सौ तीन ।

सूक्ष्म सांपरायमें संज्वलन मायाका अभाव होनेसे एक सौ दो । उपशमश्रेणिकी  
अपेक्षा सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस । उपशान्त कषायमें एक सौ छिया-  
लीस और एक सौ अड़तीस । क्षीण कषायमें संज्वलन लोभका अभाव होनेसे एक सौ एक । ३०



येभत्तद्बु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं ८५ । अयोगिकेवलिविचरमसमयबोळु तावन्मात्रमे येभत्तद्बु प्रकृत-  
सत्त्वमक्कुं ८५ । चरम समयबोळु एप्पत्तेरडु प्रकृतिरहितमाणि पदिसूद प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १३ ।  
संदृष्टि-मनुष्यसामान्यपर्याप्तयोग्य सत्त्वप्रकृतिगळु १४८ ।

|      | मि  | सा  | मि  | अ   | वे  | प्र | अ   | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| व्यु | ०   | ०   | ०   | २   | ०   | ०   | ८   | ०   |
| स    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४६ | १४६ | १४६ | १३८ |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   | २   | २   | २   | १०  |

|       | अनि | १६        | ८     | १   | १   | ६   | १   | १   | १       |
|-------|-----|-----------|-------|-----|-----|-----|-----|-----|---------|
| उ १४६ | १३८ | उ १३८।१४६ | अ १३८ | १२२ | ११४ | ११३ | ११२ | १०६ | १०५।१०४ |
| २     | १०  |           | १०    | २५  | ३४  | ३५  | ३६  | ४२  | ४३।४४   |

| १   | सू=       | १   | उ       | की   | सयोग | अयो | अयो | सिद्ध   |
|-----|-----------|-----|---------|------|------|-----|-----|---------|
| १०३ | उ १३८।१४६ | १०२ | १३८।१४६ | १०१  | ८५   | ८५  | १३  | ०       |
| ४५  | १०        | २   | ४६      | १०।२ | ४७   | ६३  | ६३  | १३५।१४८ |

योनिमतिमनुष्यनोळु विशेषमाउयेंदोळे अपकश्रेणियोळु तीर्थसत्त्वमित्ता । तीर्थकर-

- ५ सत्त्वप्रमत्तनोळु सत्त्वव्युच्छित्तियक्कुं । अपूर्वकरणनोळु सत्त्वप्रकृतिगळु नूरसूवत्तोळु १३७ ।  
असत्त्वं पत्तुं १० । अनिवृत्तिकरणनोळु प्रथमभागबोळु सत्त्वंगळु १३७ । असत्त्वंगळु १० ॥  
द्वितीयभागबोळु षोडश प्रकृतिगळुगूडियसत्त्वंगळु इप्पत्ताळ २६ । सत्त्वंगळु नूरिप्पत्तोळु १२१ ।

यांत च निद्राप्रचलादिषोडशाभावात्पंचाशीतिः । चरमसमये द्वासप्तत्यभावात्पयोदश ।

- १० यानिमन्मनुष्ये तु क्षपकश्रेण्यां न तीर्थं, तीर्थसत्त्ववत्तोऽप्रमत्ताकुपरि स्त्रीवेदित्वासंभवात् । अपूर्वकरणे  
सत्त्वं सप्तत्रिंशच्छतं । असत्त्वं दश । अनिवृत्तिकरणे प्रथमभागे सत्त्वं सप्तत्रिंशच्छतं । असत्त्वं दश । द्वितीयभागे

सयोगकेवलीमें निद्रा प्रचला आदि सोलहका अभाव होनेसे पचासी । अयोग केवलीके  
द्विचरम समयमें निद्रा प्रचलादिके न होनेसे पिचासी । अन्तिम समयमें बहत्तरके न होनेसे  
सत्त्व तेरह ।

- १५ योनिमत् मनुष्यमें क्षपक श्रेणिमें तीर्थकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि जिनके तीर्थकर  
सत्ता होती है उनके अप्रमत्त गुणस्थानसे ऊपर स्त्रीवेदपना नहीं होता । अतः अपूर्वकरणमें

१. भावस्त्री ये बुदत्थं यित्तिल तात्पर्यमेनेदोळे सित्वयरो दब्बभावपुंवेधी एंभी वचनदि चरमभव-  
तीर्थकरं भावबोळु स्त्रीयत्तलनप्पुदरि क्षपकश्रेणियोळु भावस्त्रीगे तीर्थकरसम्बमित्तु बुदु युक्तमित्तागुत्तिरला  
भावस्त्रीयप्प अप्रमत्तनोळु तीर्थकरसत्त्वव्युच्छित्तिये तु षट्ठिसुगुमेदोळे तृतीयजन्मदाळु तीर्थकर नामवंचमं  
माळपजीवं द्रव्यदोळु पुंवेदिये भावबोळु पुंवेदियं स्त्रीवेदियुमप्पनप्पुदरिवेदरिबुदु ॥

तृतीयभागदोळु अष्ट प्रकृतिगळुगूडियसत्वंगळु सूवत्त नाल्कु ३४ । सत्वंगळु नूर हृदिमूर ११३ ।  
चतुर्थभागदोळु ओडु गूडियसत्वंगळु सूवत्तय्दु ३५ । सत्त्वप्रकृतिगळु नूर हर्नरडु ११२ ।  
पंचमभागदोळोदुगूडियसत्वंगळु सूवत्तार ३६ सत्वंगळु नूर हन्नोडु १११ । षष्ठ भागदोळु  
आरुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तरडु ४२ । सत्वंगळु नूरय्दु १०५ । सप्तमभागदोळोदुगूडियसत्वंगळु  
नाल्वत्तमूर ४३ । सत्वंगळु नूरनाल्कु १०४ । अष्टमभागदोळोदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तनाल्कु ५  
४४ । सत्त्वप्रकृतिगळु नूर मूर १०३ । नवमभागदोळोदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तय्दु ४५ । सत्त्व-  
प्रकृतिगळु नूररडु १०२ । सूक्ष्मसांपरायनोळु लोभव्युच्छित्तियक्कुं । असत्वंगळु संज्वलनमाये-  
गूडि नाल्वत्तार ४६ । सत्वंगळु नूरोडु १०१ । क्षीणकषायनोळु लोभगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेळु  
४७ । सत्वंगळु नूर १०० । सयोगकेवलियोळु हृदिनारुगूडियसत्वंगळु अरुवत्तमूर ६३ ।  
सत्वंगळु येणभत्तनाल्कु ८४ । अयोगिकेवलिय द्विचरमसमयदोळु असत्वंगळरुवत्त मूर ६३ । १०  
सत्वंगळणभत्तनाल्कु ८४ । चरमसमयदोळसत्वंगळु येणत्तरडुगूडि नूर सूवत्तय्दु १३५ । सत्वंगळु  
पन्नरडु १२ । संदृष्टि :—

षोडश संयोज्यासत्त्वं षड्विंशतिः । सत्त्वमेकविंशतिशतं । तृतीयभागे अष्ट संयोज्याऽसत्त्वं चतुस्त्रिंशत् सत्त्वं  
त्रयोदशशतं । चतुर्थभागे एकं संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशत् सत्त्वं द्वादशशतं । पंचमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं षट्त्रिंशत्  
सत्त्वमेकादशशतं । षष्ठभागे षट् संयोज्यासत्त्वं द्वाचत्वारिंशत् सत्त्वं पंचोत्तरशतं । सप्तमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं १५  
त्रिचत्वारिंशत्, सत्त्वं चतुरश्रशतं । अष्टमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत्, सत्त्वं श्रुत्तरशतं । नवमभागे  
एकं संयोज्यासत्त्वं पंचचत्वारिंशत्, सत्त्वं द्वचुत्तरशतं । सूक्ष्मसांपराये लोभव्युच्छित्तिः, असत्त्वं संज्वलनमायां  
संयोज्य षट्चत्वारिंशत्, सत्त्वमेकोत्तरशतं । क्षीणकषाये लोभं संयोज्यासत्त्वं सप्तचत्वारिंशत्, सत्त्वं शतं । सयोगे  
षोडश संयोज्यासत्त्वं त्रिषष्टिः, सत्त्वं चतुरशीतिः । अयोगे द्विचरमसमये असत्त्वं त्रिषष्टिः, सत्त्वं चतुरशीतिः ।  
चरमसमयेऽसत्त्वं द्वासप्तति संयोज्य पंचत्रिंशदुत्तरशतं, सत्त्वं द्वादश । २०

सत्त्व एक सौ सैंतीस, असत्त्व दस । अनिवृत्तिकरणमें प्रथम भागमें सत्त्व एक सौ सैंतीस ।  
असत्त्व दस । दूसरे भागमें सोलह मिलाकर असत्त्व छब्बीस, सत्त्व एक सौ इक्कीस ।  
तीसरे भागमें आठ मिलाकर असत्त्व चौतीस, सत्त्व एक सौ तेरह । चतुर्थ भागमें एक  
मिलाकर असत्त्व पैतीस, सत्त्व एक सौ बारह । पंचम भागमें एक मिलाकर असत्त्व छतीस,  
सत्त्व एक सौ ग्यारह । छठे भागमें छह मिलाकर असत्त्व बयालीस, सत्त्व एक सौ पाँच । २५  
सप्तम भागमें एक मिलाकर असत्त्व तैंतालीस, सत्त्व एक सौ चार । अष्टम भागमें एक मिला-  
कर असत्त्व चवालीस, सत्त्व एक सौ तीन । नवम भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैतालीस,  
सत्त्व एक सौ दो । सूक्ष्म साम्परायमें लोभकी व्युच्छित्ति होती है । तथा संज्वलन मायाको  
मिलाकर असत्त्व छियालीस, सत्त्व एक सौ एक । क्षीण कषायमें लोभ मिलाकर असत्त्व  
सैंतालीस, सत्त्व सौ । सयोगीमें सोलह मिलाकर असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व चौरासी । अयोगीके ३०  
द्विचरम समयमें असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व चौरासी । अन्तिम समयमें बहत्तर मिलाकर असत्त्व  
एक सौ पैतीस, सत्त्व बारह ।

## योनिमति क्षपकयोग्य प्रकृतिगण्ड १३७ ।

| *    | अपु | अ   |     |     |     |     |     |     |     |     | सू  | क्षी | सयो |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|------|-----|
| व्यु | ०   | १६  | ८   | १   | १   | ६   | १   | १   | १   | १   | १   | १६   | ०   |
| स    | १३७ | १३७ | १२१ | ११३ | ११२ | १११ | १०५ | १०४ | १०३ | १०२ | १०१ | १००  | ८४  |
| अ    | १०  | १०  | २६  | ३४  | ३५  | ३६  | ४२  | ४३  | ४४  | ४५  | ४६  | ४७   | ६३  |

| अयोगि केवलि | *   |
|-------------|-----|
| ७२          | १२  |
| ८४          | १२  |
| ६३          | १३५ |

अपुण्णमे पुण अपुण्णेव मनुष्यलब्धपर्याप्तनोळु तिर्यंचलब्धपर्याप्तमे पेळवंते तीर्थमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमाणि नूनात्त्वत्तदु प्रकृतिसत्त्वमुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुमक्कुं । मि १४५ ॥

अनंतरं देवगतियोळु पेळवपरु :—

५ लब्धपर्याप्तकमनुष्ये पुनस्तिर्यंचलब्धपर्याप्तकवत्तीर्थनरकदेवायूषि नेति सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिरेव ॥३४७॥ अथ देवगतावाह—

## मनुष्य १४८ सत्त्व

|       | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे. | प्र. | अ.  | अ.  | अ.  | अ.  |     |     |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| व्यु. | ०   | ०   | ०   | ०   | १   | ०    | ८   |     | १६  | ८   | १   | १   |
| स.    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४७ | १४६  | १४६ | १३८ | १३८ | १२२ | ११४ | ११३ |
| प्र.  | ०   | ३   | १   | ०   | १   | २    | २   | १०  | १०  | २६  | ३४  | ३५  |

|     |     |     |     |     | सू. | उ.  | उ.  | क्षी. | स. | अ. | अ.  |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-------|----|----|-----|
| ६   | १   | १   | १   | १   | १   |     |     | १६    |    | ७२ | १३  |
| ११२ | १०६ | १०५ | १०४ | १०३ | १०२ | १४६ | १३८ | १०१   | ८५ | ८५ | १३  |
| ३६  | ४२  | ४३  | ४४  | ४५  | ४६  | २   | १०  | ४७    | ६३ | ३३ | १३५ |

लब्धपर्याप्तक मनुष्यमें तिर्यंच लब्धपर्याप्तककी तरह तीर्थकर नरकायु और देवायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है ॥३४७॥ देवगतिमें कहते हैं—

ओघं देवे ण हि निरयाऊ सारोत्ति होदि तिरियाऊ ।

भवणतियक्कप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ॥३४८॥

ओघो देवे न हि नरकायुः सहस्रारपर्यन्तं भवति तिर्यगायुः । भवतत्रयकल्पवासिस्त्रीषु न तीर्थंकर सत्त्वं ॥

देवगतिष्वोक्तं सौधर्मादिसहस्रारकल्पपर्यन्तं द्वादश कल्पंगळोक्तं योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु नरका- ५  
युर्वर्जितमागि सामान्यसत्त्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेळुं योग्यंगळधुषु १४७ । अल्लि मिथ्यादृष्टि-  
योळु तीर्थमसत्त्वमक्कुमेकोदोडे 'किण्ह दुग सुह तिलेस्सिय वामे वि ण तित्थयरसत्तमे' नियम-  
मुंढणुदर्दिदं सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६ । असत्त्व १ । सासादननोळु तीर्थंकरसुमाहारकट्टिक-  
मुमसत्त्वमक्कुं ३ । सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तनाल्लु १४४ । मिथ्यगुणस्थानदोळु तीर्थमसत्त्व-  
मक्कुं १ । सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६ । असंयतगुणस्थानदोळु नूर नाल्वत्तेळु सत्त्वमक्कुं १०  
१४७ । सत्त्वं शून्यं । संदृष्टिः—

सौधर्मादिकल्प योस्य १४७ ।

| व्यु | मि  | सा  | मि  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४६ | १४४ | १४६ | १४७ |
| अ    | १   | ३   | १   | ०   |

आनतादि चतुःकल्पंगळोळं नवग्रैवेयकंगळोळं नरकतिर्यगायुर्द्वयरहितमागि सत्त्वयोग्यंगळु  
नूर नाल्वत्तारु प्रकृतिगळधु १४६ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्थमसत्त्वमक्कुं १ । सत्त्वंगळु नूर

देवगती ओघः किंतु नरकायुर्नहि पुनः सहस्रारपर्यन्तमेव तिर्यगायुरस्ति न तत उपरि, तेन सौधर्मा- १५  
दिसहस्रारपर्यन्तं द्वादशकल्पेषु सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टी तीर्थं न 'किण्हदुगसुहतिलेस्सिय  
वामेवि ण तित्थयरसत्त' मिति नियमात् सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं, असत्त्वमेकं । सासादने तीर्थाहारा असत्त्वं ।  
सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं । मिथ्ये तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं । असंयते सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं,  
असत्त्वं शून्यं ।

आनतादिचतुःकल्पेषु नवग्रैवेयकेषु च नरकतिर्यगायुषो नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टा-

देवगतिमें नरकायुका सत्त्व नहीं है तथा सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त ही तिर्यचायुका सत्त्व २०  
रहता है । अतः सौधर्मसे लेकर सहस्रार पर्यन्त बारह स्वर्गोंमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस ।  
वहाँ मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि ऐसा नियम है कि कृष्ण, नील तथा  
तीन शुभश्रेष्ठोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता । अतः सत्त्व एक सौ  
छियालीस । असत्त्व एक । सासादनमें तीर्थंकर और आहारकट्टिकका असत्त्व, सत्त्व एक  
सौ चवालीस । मिथ्यमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ छियालीस । असंयतमें सत्त्व एक २५  
सौ सैंतालीस असत्त्व शून्य ।

आनत आदि चार स्वर्गोंमें और नौ ग्रैवेयकोंमें नरकायु तिर्यचायुका सत्त्व न होनेसे

नाल्वत्तद्दु १४५ । सासादनगुणस्थानदोळु तीर्थंकरमाहारकद्विकमुमसत्त्वंगळपुवु ३ । सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तद्दु १४३ । मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्थंमसत्त्वमक्कु १ । सत्त्वंगळु नूरनाल्वत्तद्दु १४५ । असंयतगुणस्थानदोळसत्त्वं शून्यमक्कु ० । सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तार १४६ । संदृष्टिः—

आनतादि १३ योग्य १४६ ।

| व्यु | मि  | सा  | मि  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४५ | १४३ | १४५ | १४६ |
| अ    | १   | ३   | १   | ०   |

अनुदिशानुत्तर चतुर्दशविमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळोळु नरकतिथ्यंगायायुर्द्वयमं कळदु सत्त्वयोग्य-  
५ गळु नूर नाल्वत्तार १४६ । भवनत्रयदोळं कल्पजस्त्रीयरोळं तीर्थंकरत्वमुं नरकायुष्यमुं रहित-  
मागि योग्यसत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तारपुवु १४६ । अलि मिथ्यादृष्टियोळु सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तार १४६ । असत्त्वंगळु शून्यं । सासादनगुणस्थानदोळाहारकद्विकमसत्त्वमक्कु २ । सत्त्वंगळु नूर-  
नाल्वत्तनालकु १४४ । मिश्रगुणस्थानदोळु असत्त्वं शून्यं । सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तार १४६ ॥ असंयत-  
गुणस्थानदोळसत्त्वं शून्यं । सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तार १४६ ॥ संदृष्टिः ।

भवनत्रय कल्पज स्त्री यो० १४६ ।

| व्यु | मि  | सा  | मि  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४६ | १४४ | १४६ | १४६ |
| अ    | ०   | २   | ०   | ०   |

१० वसत्त्वं तीर्थं, सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं । सासादने असत्त्वं तीर्थाशाराः सत्त्वं त्रिचत्वारिंशच्छतं । मिश्रे तीर्थंमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं । असंयते असत्त्वं शून्यं, सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं ।

नवानुदिशपंचानुत्तरविमानसम्यग्दृष्टिषु नरकतिथ्यंगायायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं । भवनत्रयदेवेषु कल्पस्त्रीषु च तीर्थंनरकायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं तदेव, असत्त्वं शून्यं । सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं, सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं । मिश्रासंयतयोरसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं ।

१५ सत्त्व एक सौ छियालीस । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैतालीस । सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ तैतालीस । मिश्रमें तीर्थंकर-  
का असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैतालीस । असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस ।

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासीदेव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं । उनके नरकायु-  
तिथ्यंगायाका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस । भवनत्रिक देवोंमें और कल्पवासी  
२० देवांगनाओंमें तीर्थंकर और नरकायु न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें

अनंतरमिन्द्रियमार्गणयोऽं कायमार्गणयोऽं प्रकृतिगळं पेळदपरः—

ओघं पंचकखतसे सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा ।

तेउदुगे ण णराऊ सव्वत्थुव्वेत्तलणा वि हवे ॥३४९॥

ओघं पंचाक्षत्रसे शेषेन्द्रियकायिके अपूर्णवत् । तेजोदिके न नरायुः सर्वत्रोद्वेल्लनापि भवेत् ॥

यिन्द्रियमार्गणयोऽं कायमार्गणयोऽं यथासंख्यमाणि पंचाक्षदोळं त्रसकायिकदोळं ओघः सामान्यगुणस्थानदोळं पेळदक्रममक्कुमदु कारणदिदं योग्यसत्त्वप्रकृतिगळं नूर नात्वत्तेटमप्पुवु १४८ । अल्लि मिथ्यदुष्टादिचतुर्दशगुणस्थानंगळप्पुवु ॥ संदृष्टिः—

| व्यु | मि. | सा. | मि. | अ   | १   | दे १ | प्र ० | अ८  | अ०  | अ१६ | ८   | १   | १   | ६ |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|------|-------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|---|
| स    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४७ | १४६  | १४६   | १३८ | १३८ | १२२ | ११४ | ११३ | ११२ | → |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   | १   | २    | २     | १०  | १०  | २६  | ३४  | ३५  | ३६  |   |

|     |     |     |    |      |     |     |         |    |      |     |  |  |  |
|-----|-----|-----|----|------|-----|-----|---------|----|------|-----|--|--|--|
| १   | १   | १   | १  | सू १ | उ०  | ०   | क्षो १६ | स० | अ ७२ | १३  |  |  |  |
| १०६ | १०५ | १०४ | ०३ | १०२  | १४६ | १३८ | १०१     | ८५ | ८५   | १३  |  |  |  |
| ४२  | ४३  | ४४  | ४५ | ४६   | २   | १०  | ४७      | ६३ | ६३   | १३५ |  |  |  |

॥३४८॥ अर्थेन्द्रियमार्गणायामाह—

इन्द्रियकायमार्गणयोः पंचाक्षे त्रसे च ओघः इति सत्त्वमष्टवत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि चतुर्दश । तद्वचना सामान्योक्तैव ज्ञातव्या । संदृष्टिः—

पंचेन्द्रियत्रसकायिकयोर्योग्याः सत्त्वप्रकृतयः १४८ ।

| व्यु | मि. | सा. | मि. | अ.  | दे १ | प्र. | अ८  | अ.  | अ१६ | अ८  | १   | १   |   |
|------|-----|-----|-----|-----|------|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|---|
| स    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४७  | १४६  | १४६ | १३८ | १३८ | १२२ | ११४ | ११२ | → |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   | १    | २    | २   | १०  | १०  | २६  | ३४  | ३५  |   |

|     |     |     |     |     |      |     |     |         |    |      |     |  |  |
|-----|-----|-----|-----|-----|------|-----|-----|---------|----|------|-----|--|--|
| ६   | १   | १   | १   | १   | सू १ | उ   | ०   | क्षो १६ | स. | अ ७२ | १३  |  |  |
| १२२ | १०६ | १०५ | १०४ | १०३ | १०२  | १४६ | १३८ | १०१     | ८५ | ८५   | १३  |  |  |
| ३   | ४२  | ४३  | ४४  | ४५  | ४६   | २   | १०  | ४७      | ६३ | ६३   | १३५ |  |  |

सत्त्व एक सौ छियालीस, असत्त्व शून्य । सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस । मिश्र और असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस ॥३४८॥

सौधर्मादि द्वादशमें १४७

आनतादि नवमेवेयक १४६

|         | मि. | सा. | मि. | अ.  |
|---------|-----|-----|-----|-----|
| सत्त्व  | १४६ | १४५ | १४६ | १४७ |
| असत्त्व | १   | ३   | १   | ०   |

| मि. | सा. | मि. | अ.  |
|-----|-----|-----|-----|
| १४५ | १४३ | १४५ | १४६ |
| १   | ३   | १   | ०   |

शेषेन्द्रियकायिके अपूर्णवत् एकैन्द्रियविकलत्रयपृथ्विकायिक अष्कायिक वनस्पतिकायिकं-  
गळोळु लब्धपर्याप्तकंगे पेळदंतं तीर्थकरत्वमुं नारकायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमाणि योग्य-  
सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तय्दु १४५ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तय्दु १४५ ।  
असत्त्वं शून्यं ॥ सासादननोळाहारकद्वयमसत्त्वमवकुं २ । सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तमूरु । १४३ ॥

५ संहतिः—

ए । वि ३ । पु । अ । व । योग्य १४५ ।

|   |     |     |
|---|-----|-----|
| ० | मि  | सा  |
| स | १४५ | १४३ |
| अ | ०   | २   |

तेजोद्विके न नरायुः तेजस्कायिकंगळोळु वायुकायिकंगळोळं मनुष्यायुष्यं सत्त्वमितलदु  
कारणमणि योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तनाल्कपु १४४ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदयवकु-  
मेकं दोडे-ण हि सासणो अपुण्णे साहारण सुहुमगे य तेउदुगे येबो नियममुंठपुदरिदं । सर्वत्रोद्वे-  
ल्लनापि भवेत् त्रिन्द्रियमार्गणयोळं कायमार्गणयोळं सर्वत्र परप्रकृतिस्वरूपपरिणमनलक्षण-  
१० मुद्वेल्लनमूरियत्तपडुगु । मुद्वेल्लनमेबुदेनंदोडे नेणुतुदियिदं हुरि विचिचि नेण्कडुबंते पदिमूरं

शेषैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियपृथ्व्यवनस्पतिकायिकेषु लब्धपर्याप्तवतीर्थनरकदेवायुरभावात् सत्त्वं पंचचत्वारि-  
शच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं पंचचत्वारिशच्छतं, असत्त्वं शून्यं । सासादने आहारकद्वयमसत्त्वं, सत्त्वं  
त्रिचत्वारिशच्छतं ।

तेजोद्विके मनुष्यायुराणि नेति सत्त्वं चतुश्चत्वारिशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमेकमेव । 'णहि  
१५ सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगं' इति नियपात् । सर्वत्र इन्द्रियमार्गणायां कायमार्गणायां चोद्वेल्लनापि

इन्द्रिय मार्गणामें कहते हैं—

इन्द्रिय और कायमार्गणामें पंचेन्द्रिय और त्रसकायमें गुणस्थानवत् सत्त्व एक सौ  
अड़तालीस । गुणस्थान चौदह । उनमें सब रचना गुणस्थानोंकी तरह ही जानना । शेष  
एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पृथ्वी अप् वनस्पतिकायिकोंमें लब्धपर्याप्तककी  
२० तरह तीर्थकर नरकायु और देवायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ पैतालीस । वहाँ मिथ्या-  
दृष्टिमें सत्त्व एक सौ पैतालीस, असत्त्व शून्य । सासादनमें आहारकद्वयका असत्त्व, सत्त्व  
एक सौ तैतालीस ।

तेजकाय वायुकायमें मनुष्यायु भी नहीं होती अतः सत्त्व एक सौ चवालीस । उनमें  
एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है क्योंकि ऐसा नियम है कि लब्धपर्याप्तक, साधारण-  
२५ वनस्पति, सूक्ष्मकाय, तेजकाय वायुकायमें सासादन गुणस्थान नहीं होता । तथा सर्वत्र इन्द्रिय  
मार्गणा और कायमार्गणामें उद्वेल्लना भी होती है । जैसे रस्सीको बलपूर्वक उधेड़नेसे उसका  
रस्सीपना नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जिन प्रकृतियोंका बन्ध किया था उनको उद्वेल्लन भाग-

प्रकृतिगळु संक्लिष्टजीवंगळिदमुद्वेल्लन भागहारद्विदसपकर्षितिकोडु परप्रकृतिस्वरूपमपंतु माडि कडिसत्पडुगुमदमुद्वेल्लनमंबुदु । आ उद्वेल्लनप्रकृतिगळाउर्वेदोडे पेळदपर :—

हारदु सम्मं मिस्सं सुरदुग नारयचउक्कमणुकमसो ।

उच्चागोदं मणुदुगमुच्चेन्लिज्जंति जीवेहि ॥३५०॥

मुंदे विस्तरमागियुद्वेल्लनविधानं पेळत्पडुगुमोसत्त्व प्रकरणदोळु प्रसंगायातमपुवर्दिदमा- ५  
हारकद्विकमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं सुरद्विकमुं नारकचतुष्कमुं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्य-  
द्विकमुमेव पदिमूरं प्रकृतिगळुक्तक्रमद्विदं जीवंगळिदमुद्वेल्लनविधानद्विदं केडिसत्पडुगुवावाव  
जीवंगळावाव प्रकृतिगळुगुद्वेल्लनमं माळपुर्वेदोडे पेळदपर :—

चदुगदिमिच्छे चउरो इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे ।

सिय अत्थि णत्थि सत्तं सपदे उत्पण्णठाणेवि ॥३५१॥

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ चतस्रः एकविकले षडपि तिस्रस्तेजोद्विके स्यादस्ति नास्ति सत्त्वं १०  
स्वपदे उत्पन्नस्थानेपि ॥

चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टियोळु नालकु । एकेन्द्रियविकलत्रयंगळोळार । तेजोद्विकदोळु मूह-  
प्रकृतिगळु । स्वस्थानदोळमुत्पन्नस्थानदोळं स्यात्सत्त्वंगळुं स्यादसत्त्वंगळुमपुवदेतेदोडे तोत्थं-  
करत्त्वमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं संतत्रमिल्लद चतुर्गतिय संक्लिष्टमिथ्यादृष्टि जीवनाहारक- १५  
द्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु नूरनाल्वत्तमूर प्रकृतिगळु सत्त्वमक्कु-१४३ । मवरोळु

भवेत् बत्त्वजरज्जुभावविनाशवत् प्रकृतेरुद्वेल्लनभागहारेणापकृष्य परप्रकृतितां नीत्वा विनाशनमुद्वेल्लनं ॥३४९॥  
ताः प्रकृतीराह—

उद्वेल्लनविधानं विस्तरेण वक्ष्यमाणमप्यत्र प्रसंगायातं आहारद्विकं सम्यक्त्वप्रकृतिः मिश्रप्रकृतिः सुरद्विकं २०  
नारकचतुष्कं उच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकं चेति त्रयोदश प्रकृतयः क्रमेणोद्वेल्लयंते ॥३५०॥ कैर्जीविः का इति चेदाह—

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ चतस्रः । एकविकलेन्द्रियेषु षट् । तेजोद्विके तिस्रः । स्वस्थाने उत्पन्नस्थाने च सत्त्वं  
स्यादस्ति स्यान्नास्ति । तद्यथा—

हारके द्वारा अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप करना और इस प्रकारसे उनको नष्ट करनेका २५  
नाम उद्वेल्लन है ॥३४९॥

आगे उद्वेल्लना प्रकृतियोंको कहते हैं—

आगे उद्वेल्लनाका विधान विस्तारसे कहेंगे । फिर भी यहाँ प्रसंगवश कहते हैं ।  
आहारकद्विक, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी,  
वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ये तेरह प्रकृतियों-  
की क्रमसे उद्वेल्लना की जाती है ॥३५०॥

कौन जीव किस प्रकृतिकी उद्वेल्लना करता है, यह कहते हैं— ३०

चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीवोंके चार, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके छह और तेजकाय  
वायुकायके तीन प्रकृतियाँ स्वस्थान और उत्पन्न स्थानमें कोई प्रकारसे हैं और कोई प्रकारसे

१. च बत्त्वरजोरयादुद्वेल्लनेनैव प्रकृते ।



- सम्यक्त्वप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे नूर नात्वत्तरडु सत्वमक्कु १४२ । मवरोळु सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे नूरनात्वत्तो दु प्रकृतिसत्वमक्कु १४१ मितु स्वस्थानदोळु चतुर्गतिम मिथ्यादृष्टिगळोळु द्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु सत्त्वंगळपुवुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु नूर नात्वत्तयडु प्रकृतिसत्वमक्कु १४५ । मुत्पन्नस्थानदोळे केन्द्रिय द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिय पृथ्वीकायिक अप्कायिक-
- ५ वनस्पतिकायिकमे ब समस्थानदोळं नूर नात्वत्तयडुं नूर नात्वत्तमूरं नूर नात्वत्तरडुं नूर नात्वत्तो दुं प्रकृतिसत्वमपुवु । अल्ल एक विकलत्रयंगळु सुरद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु स्वस्थानदोळु नूरमूवत्तो भत्तु प्रकृतिसत्वमक्कुमवरोळु नारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु स्वस्थानदोळु नूर मूवत्तयडु प्रकृतिसत्वमक्कु-१३५ । मुत्पन्नस्थानदोळु तेजस्कायिक वायुकायिकंगळोळु मनुष्यायुष्यं रहितभाणि नूर नात्वत्तनाळुं नूर नात्वत्तरडुं नूर नात्वत्तो दुं नूर नात्वत्तुं नूर-
- १० मूवत्ते दुं नूर मूवत्तनाळुं सत्त्वंगळपुवल्लि उच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु नूर मूवत्तमूर प्रकृतिगळु स्वस्थानदोळु सत्वमक्कुमवरोळु नरकद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु नूर मूवत्तो दु प्रकृतिगळु स्वस्थानदोळु सत्वमक्कुमुत्पन्नस्थानदोळे केन्द्रियादिसप्तस्थानंगळोळु नूर मूवत्तमूरं नूर मूवत्तो दुं सत्वमपुवु । संदृष्टि :—

तीर्थकरनरकदेवायुरसत्वचातुर्गतिकसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टेराहारकद्विके उद्वेल्लिते त्रिचत्वारिंशच्छतं सत्त्वं ।

- १५ पुनः सम्यक्त्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां द्वाचत्वारिंशच्छतं । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां एकचत्वारिंशच्छतं, स्वस्थाने स्यात् । अकृतोद्वेल्लनस्य तस्य पंचचत्वारिंशच्छतमेव । उत्पन्नस्थाने एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियपृथ्वीववनस्पतिकायिकेषु तानि चत्वारि सत्त्वानि । पुनः सुरद्विके उद्वेल्लिते स्वस्थाने एकोनचत्वारिंशच्छतं । पुनर्नारकचतुष्के उद्वेल्लिते स्वस्थानं पंचत्रिंशच्छतं । उत्पन्नस्थाने तेजोद्विके मनुष्यायुरभावाच्चतुश्चत्वारिंशच्छतं द्वाचत्वारिंशच्छतं एकचत्वारिंशच्छतं चत्वारिंशच्छतं अष्टात्रिंशच्छतं चतुस्त्रिंशच्छतं च । पुनः स्वस्थाने
- २० नहीं हैं । अर्थात् यदि उद्वेल्लना न हुई तो इनका सत्त्व होता है और उद्वेल्लना हुई तो सत्त्व नहीं होता; जिसके तीर्थकर, नरकायु देवायुका सत्त्व नहीं है ऐसे चारों गतिके संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवके आहारकद्विककी उद्वेल्लना करनेपर एक सौ तैंतालीसका सत्त्व होता है । पुनः सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेल्लना करनेपर एक सौ बयालीसका और मिश्रमोहनीयकी उद्वेल्लना करनेपर एक सौ इकतालीसका सत्त्व स्वस्थानमें होता है । उद्वेल्लना न करनेपर
- २५ उसके एक सौ पैतालीसका ही सत्त्व होता है । उत्पन्न स्थानमें एकोन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकायमें वे चारों सत्त्व एक सौ पैतालीस, एक सौ तैंतालीस, एक सौ बयालीस, एक सौ इकतालीस होते हैं । पुनः देवगति देवानुपूर्वीकी उद्वेल्लना करनेपर स्वस्थानमें एक सौ उनतालीसका सत्त्व होता है । पुनः नारक चतुष्ककी उद्वेल्लना करनेपर स्वस्थानमें एक सौ पैतीसका सत्त्व होता है । उत्पन्न स्थानमें तेजकाय
- ३० वायुकायमें मनुष्यायुका भी सत्त्व न होनेसे बिना उद्वेल्लना हुए सत्त्व एक सौ चवालीस, आहारकद्विककी उद्वेल्लना होनेपर एक सौ बयालीस, सम्यक्त्वके उद्वेल्लना होनेपर एक सौ इकतालीस, मिश्र प्रकृतिकी उद्वेल्लना होनेपर एक सौ चालीस, देवद्विककी उद्वेल्लना होनेपर एक सौ अड़तीस, नारक चतुष्ककी उद्वेल्लना होनेपर एक सौ चौतीसका सत्त्व होता है । पुनः स्वस्थानमें उच्चगोत्रकी उद्वेल्लना करनेपर तेजकाय वायुकायमें सत्त्व एक सौ तैंतीस होता है,

| ए।       | द्वि। | त्रि। | च।   | पृ।  | अ।   | व।    | योग्य १४५ |
|----------|-------|-------|------|------|------|-------|-----------|
| स्वस्थान | आ २   | सं १  | मि १ | मि १ | सु २ | नार ४ | उत्पन्न ॥ |
| ४५       | १४३   | १४२   | १४२  | १४१  | १३९  | १३५   | १३३       |

| तेजो द्विक योग्य १४४ |     |      |      |      |      |     |     |
|----------------------|-----|------|------|------|------|-----|-----|
| *                    | अ २ | सं १ | मि १ | सु २ | ना ४ | उ १ | म २ |
| १४४                  | १४२ | १४१  | १४०  | १३८  | १३४  | १३३ | १३१ |

अनंतरं योगमार्गणयोग्योऽसत्त्वप्रकृतिगणं पेक्षदपरः—

पुण्येकारसजोगे साहारय मिस्सगे वि सगुणोद्यं ।

वेगुन्विमिस्सेवि य णवरि ण माणुस तिरिक्खाळ ॥ ३५२ ॥

पूर्णकादशयोगेष्वआहारकमिश्रकेऽपि स्वगुणौघः वैक्रियिकमिश्रेऽपि च नवीनं न मानुष-  
तिर्व्यगायुषो ॥

पूर्णकादशयोगेषु नाल्कु मनोयोगंगळु नाल्कु वाग्योगंगळु मौदारिक वैक्रियिकाहारकमुर्मंब  
पर्याप्तिकादश योगंगळोळमाहारकमिश्रकाययोगदोळं स्वगुणौघमवकुमल्लि मनोवागौदारिकमेवो-  
भत्तुं योगंगळोळु सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्त्वत्ते दु १४८ गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिमोदलागि पदिमूरं  
गुणस्थानंगळपुवु । संदृष्टिः—

जचैर्गति उद्वेलिते त्रयस्त्रिंशच्छतं । पुनः नरकद्विके मनुष्यद्विके (?) उद्वेलिते एकत्रिंशच्छतं इदमंत्यसंभवद्वयं १०  
उत्पन्नस्यानेऽप्येकोद्रियादिसप्तस्त्वप्यस्ति ॥ ३५१ ॥ अथ योगमार्गणायामाह—

पूर्णकादशयोगेषु चतुर्भनश्चतुर्वागीदारिकवैक्रियिकाहारकयोगेषु आहारकमिश्रे च स्वगुणौघः इत्याद्येषु  
नवषु सत्त्वमष्टत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानानि त्रयोदश । तस्य संदृष्टिः—

और मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर एक सौ इकतीसका सत्त्व होता है । ये अन्तके दोनों  
सत्त्व एक सौ तैंतीस और एक सौ इकतीस उत्पन्न स्थानमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, १५  
चौइन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, वनस्पतिकायमें भी होते हैं ।

विशेषार्थ—ऊपर दो सत्त्व कहे हैं—स्वस्थान सत्त्व और उत्पन्न स्थानमें सत्त्व ।  
विवक्षित पर्यायमें उद्वेलनाके बिना या उद्वेलना होनेसे जो सत्त्व होता है वह स्वस्थान सत्त्व  
है । और उस सत्त्वके साथ आगामी पर्यायमें जो उत्पत्ति होती है वहाँ उस सत्त्वको उत्पन्न  
स्थानमें सत्त्व कहते हैं ॥

आगे योग मार्गणामें कहते हैं—

चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक वैक्रियिक आहारक इन ग्यारह पूर्णयोगमें  
तथा आहारकमिश्रमें अपने-अपने गुणस्थानोंकी तरह जानना । इनमेंसे आदिके नौ योगोंमें  
सत्त्व एक सौ अड़तालीस है और गुणस्थान बारह अथवा तेरह होते हैं । उसकी रचना

| व्यु | मि० | सा० | मि० | अ १ | दे १ | प्र० | अ० ८ | अ०  | अ १६ | ८   | १   | १   | ६   |
|------|-----|-----|-----|-----|------|------|------|-----|------|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४७  | १४६  | १४६  | १३८ | १३८  | १२२ | ११४ | ११३ | ११२ |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   | १    | २    | २    | १०  | १०   | २६  | ३४  | ३५  | ३६  |

|     |     |     |     |      |     |         |     |
|-----|-----|-----|-----|------|-----|---------|-----|
| १   | १   | १   | १   | सू १ | उ   | क्षी १६ | स०  |
| १०६ | १०५ | १०४ | १०३ | १०२  | १४६ | १३८     | १०१ |
| ४२  | ४३  | ४४  | ४५  | ४६   | २   | १०      | ४७  |

आहारककाययोगदोळं तन्मिश्रकाययोगदोळं नरकतिर्यंगाद्युद्धयवज्जितमाणि प्रमत्तसंयत-  
नोळ नूरनाल्वता६ सत्वमक्कु १४६ । वैक्रियिककाययोगदोळु नूर नाल्वत्ते दु प्रकृतिगळु सत्वमक्कु  
१४८ मल्लि मिथ्यादृष्टिओळु नूरनाल्वत्ते दु प्रकृतिसत्वमक्कुमेक दोडे तोर्थसत्वयुक्तंगे तृतीयपृथ्वि-  
पय्यंतं गमनमुंठपुर्दारिदं । सासादननोळु नूर नाल्वतय्हु प्रकृतिसत्वमक्कु १४५ । मसत्वंगळु मू६  
३ । मिश्रनोळु नूरनाल्वत्तेळु सत्वमक्कु १४७ मसत्वमो दु १ । असंयतनोळु नूर नाल्वत्ते दु सत्व-  
मक्कु । १४८ । संदृष्टि :— वैक्रियिक काययोग १४८

| ० | मि  | सा  | मि  | अ   |
|---|-----|-----|-----|-----|
| स | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ |
| अ | ०   | ३   | १   | ०   |

मनो ४ । वायुयोग ४ । औदारिक काययोग १ । योग्य १४८ ।

| व्यु | मि  | सा  | मि  | अ १ | द १ | प्र० | अ० ८ | अ०  | अ १६ | ८   | १   |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|------|------|-----|------|-----|-----|
| स    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४७ | १४६  | १४६  | १३८ | १३८  | १२२ | ११४ |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   | १   | २    | २    | १०  | १०   | २६  | ३४  |

|     |     |     |     |     |     |      |     |     |         |    |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|------|-----|-----|---------|----|
| १   | ६   | १   | १   | १   | १   | सू १ | उ   | ०   | क्षी १६ | स  |
| ११३ | ११२ | १०६ | १०५ | १०४ | १०३ | १०२  | १४६ | १३८ | १०१     | ८५ |
| ३५  | ३६  | ४२  | ४३  | ४४  | ४५  | ४६   | २   | १०  | ४७      | ६३ |

आहारकतन्मिश्रयोर्नरकतिर्यंगाद्युभवात् प्रमत्ते षट्चत्वारिंशच्छतं । वैक्रियिकयोगेऽष्टचत्वारिंशच्छतं ।

तत्र मिथ्यादृष्टो सत्त्वं सर्वं तीर्थकरसत्त्वयुक्तस्य तृतीयपृथ्व्यंतं गमनात् । सासादने पंचचत्वारिंशच्छतं सत्त्वं,

ऊपर टीकाके अद्वसार जानना । आहारक आहारक मिश्रमें नरकायु तिर्यचायुका असत्त्व  
१० होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस है । गुणस्थान एक प्रमत्त ही होता है । वैक्रियिक योगमें  
सत्त्व एक सौ अड़तालीस । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सबका सत्त्व है क्योंकि तीर्थकरकी सत्तावाला  
मरकर नरकमें तीसरी पृथ्वी तक जाता है । सासादनमें सत्त्व एक सौ पैतालीस, असत्त्व

वैक्रियिकमिश्रकाययोगबोळु मिथ्यादृष्टियोळु तिर्यग्मनुष्यायुर्वर्जितमाणि नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्त्वमक्कु १४६ । मल्लियुमसत्त्वं शून्यमक्कु । सासादननोळु नरकायुर्वर्जितमणि मुन्नन मूर्धं प्रकृतिगळुगूडियसत्त्वंगळु नालकु ४ । सत्त्वंगळु नूरनाल्वत्तेरडु १४२ । असंयतनोळु नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्त्वमक्कु । संहृष्टि :—

वै० मि० का० योग्य १४६

| ० | मि  | सा  | अ   |
|---|-----|-----|-----|
| स | १४६ | १४२ | १४६ |
| अ | ०   | ४   | ०   |

औदारिक मिश्रकाययोगबोळु सत्त्वप्रकृतिगळं पेळदपरु :—

ओरालमिस्सजोगे ओधं सुरणिरय आउगं णत्थि ।

तम्मिस्सवामगे ण हि तित्थं कम्मेवि सगुणोधं ॥३५३॥

औदारिकमिश्रयोगे ओधः सुरनारकायुष्मास्ति । तन्मिश्रवामे न हि तीर्थं कर्मणोऽपि स्वगुणोधः ॥

औदारिकमिश्रकाययोगबोळु सामान्य सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेरडोळु सुरनारकायुर्द्वयमं १० कळवु शेष नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्त्वमक्कु १४६ । मल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्थंकर सत्त्वमिल्ले- के बोर्ड तीर्थसत्त्वमुळु जीवनीदारिकमिश्रकाययोगि तीर्थंकरकुमारनप्पुर्दारु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं

असत्त्वं त्रयं । मिश्रे सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं, असत्त्वमेकं । असंयते सत्त्वं सर्वं ।

तन्मिश्रयोगे तिर्यग्मनुष्यायुषी नेति मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं असत्त्वं शून्यं । सासादने नरकायुस्तत्रयं च नेत्यसत्त्वं चत्वारि सत्त्वं द्वाचत्वारिंशत् शतं । असंयते सत्त्वं षट्चत्वारिंशत् शतं ॥३५२॥ १५

औदारिकमिश्रयोगस्याह—  
औदारिकमिश्रयोगे सामान्यसत्त्वं किंतु सुरनारकायुषी न स्तः इति षट्चत्वारिंशत् शतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं पंचचत्वारिंशत् शतं, तन्मिश्रवामे तीर्थं नहीत्युक्तत्वात् । असत्त्वमेकं । सासादने असत्त्वं त्रयं,

तीन । मिश्रमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस, असत्त्व एक । असंयतमें सबका सत्त्व है ।

वैक्रियिक मिश्रयोगमें तिर्यचायु मनुष्यायुका सत्त्व नहीं होता । अतः मिथ्यादृष्टिमें २० सत्त्व एक सौ छियालीस, असत्त्व शून्य । सासादनमें नरकायु तथा आहारकद्विक और तीर्थंकरके न होनेसे असत्त्व चार, सत्त्व एक सौ बयालीस । असंयतमें सत्त्व एक सौ छियालीस ॥३५२॥

औदारिक मिश्रयोगमें कहते हैं—

औदारिक मिश्रयोगमें सामान्यवत् सत्त्व है । किंतु देवायु नरकायुके न होनेसे एक २५ सौ छियालीसका सत्त्व है । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस, क्योंकि औदारिक मिश्रमें मिथ्यादृष्टिके तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता, ऐसा कहा है । अतः असत्त्व एक ।

संभविसद्वपुर्वरिदं तन्मिश्रवामे न हि तीर्थमदितु पेळल्पट्टुदु । अल्लि नूर नात्वत्तट्टु सत्वमक्कु  
१४५ । मसत्वमोट्टु । सासादननोळ् असत्त्वं मूरु ३ । सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तमूरु १४३ । असंयतनोळ्  
सत्त्वं नूर नात्वत्तारु १४६ । सयोगकेवलियोळ् सत्त्वंगळ्णभत्तट्टु ८५ । असत्त्वंगळ्णभत्तोट्टु ६१ ।  
संहृष्टि :—

औ० मि० योग्य १४६ ।

| ० | मि   | सा  | अ   | स  |
|---|------|-----|-----|----|
| स | १४५  | १४३ | १४६ | ८५ |
| अ | ती १ | ३   | ०   | ६१ |

५ काम्मणे स्वगुणोघः काम्मणकाययोगोळ् चतुर्गतिसाधारणमपुर्वरिदं भुज्यमाननाल्का-  
युग्मंगळ् संभविसुवपुर्वरिदं सत्वप्रकृतिगळ् नूरनात्वत्तेट्टु १४८ । मिथ्यादृष्टियोळ् नूरनात्वत्तेट्टु  
१४८ । सासादननोळ् नूरनात्वत्तनाल्कु १४४ । सत्वमसत्त्वंगळ् तीर्थमुमाहारकद्विकमुं नरकायुष्यमुं  
नाल्कपुवु ४ । असंयतनोळ् सत्त्वंगळ् नूर नात्वत्तेट्टु १४८ । सयोगकेवलियोळ् सत्त्वंगळ्णभत्तट्टु  
८५ । असत्त्वंगळ्णभत्तमूरु ६३ । संहृष्टि :—

काम्मणकाययोग्य १४८ ।

| * | मि  | सा  | अ   | स  |
|---|-----|-----|-----|----|
| स | १४८ | १४४ | १४८ | ८५ |
| अ | ०   | ४   | ०   | ६३ |

१० अनंतरं वेदादिमार्गणेगळोळ् सत्वप्रकृतिगळ् व्याप्तियागि पेळ्वपरु :—

सत्त्वं त्रिचत्वारिंशत् शतं । असंयतेऽसत्त्वं शून्यं सत्त्वं षट्चत्वारिंशत् शतं । सयोगे सत्त्वं पंचाशीतिः ।  
असत्त्वमेकषष्टिः ।

काम्मणयोगे चतुर्गतिभुज्यमानायुःसंभवात् मिथ्यादृष्टौ सत्त्वमष्टवत्वारिंशत् शतं, सासादने सत्त्वं  
चतुश्चत्वारिंशत् शतं, असत्त्वं तीर्थाहारनरकायूषि । असंयते सत्त्वमष्टवत्वारिंशत् शतं । सयोगे सत्त्वं  
पंचाशीतिः । असत्त्वं त्रिषष्टिः ॥३५३॥ अथ वेदमार्गणादिष्वार्ह—

१५ सासादनमे असत्त्व तीन, सत्त्व एक सौ तैतालीस । असंयतमे असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ  
छियालीस । सयोग केवलीमें सत्त्व पिचासी, असत्त्व इकसठ ।

काम्मणकाय योगमें चारों गति सम्बन्धी भुज्यमान आयुका सत्त्व सम्भव है अतः  
मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । सासादनमें सत्त्व एक सौ चबालीस । असत्त्वमें  
तीर्थकर, आहारकद्विक, नरकायु ये चार । असंयतमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । सयोगीमें  
सत्त्व पिचासी, असत्त्व त्रेसठ ॥३५३॥

वेदादाहारोत्ति य सगुणोघं णवरि संढथीखवगे ।

किण्हुदुगसुहतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयर सत्तं ॥३५४॥

वेदादाहारपर्यन्तं स्वगुणौघः नवीनं षण्ढस्त्रीक्षपके । कृष्णद्विकशुभत्रयलेश्यायामेपि न तीर्थकर सत्त्वं ॥

वेदत्रयदोळु पुंवेदमार्गणयोळु सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तं दु १४८ । मिथ्यादृष्टि ५  
मोदलो दु सामान्यदिवं पदिनालकुं गुणस्थानगळपुविल्लि गुणस्थानदोळपेळदंते सत्त्वप्रकृति-  
गळवकुं । षण्ढस्त्रीक्षपके षण्ढवेदमार्गणयोळं स्त्रीवेदमार्गणयोळं गुणस्थानदोळपेळदंते नूर नाल्वत्तं दु  
प्रकृतिसत्त्वमल्लि क्षपकश्रेणियोळु तीर्थकरसत्त्वमिल्लेके दोडे तीर्थकरसत्त्वमुळळजीवं तद्वेदो-  
दयसंक्लेशविदं क्षपकश्रेणियनेरुवुविल्लिदु कारणमागियपूवर्धकरणं तीर्थरहितमागि नूर मूवत्तेळु  
प्रकृतिसत्त्वमवकुं । शेष विधानमिनिनुमनिवृत्तिकरणादिगळोळु गुणस्थानदोळु पेळदंते सत्त्वप्रकृति- १०  
गळु ओ दुगुंदियप्पुवु । संदृष्टियुं गुणस्थानदोळपेळदंतेयप्पुदरिदं बरयलपट्टुविल्लि । कषायमार्गण-  
योळु क्रोधमानमायाकषायंगळगनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्तमो भत्तं गुणस्थानगळपुवु । योग्य-

वेदमार्गणातः आहारमार्गणापर्यन्तं स्वगुणौघः इति पुंवेदे सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं । गुणस्थानानि चतुर्दश । रचना गुणस्थानोक्तैव ।

षण्ढस्त्रीवेदयोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं किंतु क्षपकश्रेण्यां न तीर्थकरसत्त्वं तत्सत्त्वे तदुदयसंक्लेशस्य १५  
तत्रारोहणाभावात्, तेनापूर्वकरणादिषु सत्त्वमेकैकहीनं स्यात् ।

वैक्रियिक काययोग १४८

|        | मि. | सा. | मि. | अ.  |
|--------|-----|-----|-----|-----|
| सत्त्व | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ |
| अस.    | ०   | ३   | १   | ०   |

वैक्रियिक मिश्र १४६

|  | मि. | सा. | अ.  |
|--|-----|-----|-----|
|  | १४६ | १४२ | १४६ |
|  | ०   | ४   | ०   |

औदारिक मिश्र १४६

|  | मि. | सा. | अ.  | सयो. |
|--|-----|-----|-----|------|
|  | १४५ | १४३ | १४६ | ८५   |
|  | १   | ३   | ०   | ६१   |

कार्मण १४८

|  | मि. | सा. | अ.  | स. |
|--|-----|-----|-----|----|
|  | १४८ | १४४ | १४८ | ८५ |
|  | ०   | ४   | ०   | ६३ |

आगे वेदमार्गणा आदिमें कहते हैं—

वेदमार्गणासे आहारमार्गणा पर्यन्त अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना । पुरुषवेदमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान चौदह । रचना गुणस्थानवत् । नपुंसक स्त्रीवेदमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । किन्तु क्षपक श्रेणीमें तीर्थकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि तीर्थकरका सत्त्व होनेपर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयके साथ संक्लेश परिणामी जीव क्षपक श्रेणीपर आरोहण नहीं कर सकता । अतः अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें सत्त्व एक-एक

- सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वर्त्तें दु १४८ । लोभकषायमार्गणेयोळमंत सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वर्त्तें दु १४८ । मिथ्यादृष्ट्यावि सूक्ष्मसांपरायपर्यंतं गुणस्थानंगळपुवु । संदृष्टियुं विशेषमिल्लपुवर्गि गुणस्थानदोळु पेळदंतेंयक्कुं । ज्ञानमार्गणेयोळु कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानंगळोळु सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वर्त्तें दु १४८ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु असत्त्वं शून्यं सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वर्त्तें दु १४८ । सासादननोळु असत्त्वं मूर ३ । सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वर्त्तें दु १४५ । मतिश्रुतावधिज्ञान-  
त्रयदोळु सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वर्त्तें दु १४८ । गुणस्थानंगळु असंयतादिनवकमक्कुमल्लि गुणस्थानदोळु पेळदंतें संदृष्टियरियल्पडुगुं । मनःपर्ययज्ञानमार्गणेयोळु नरकतिर्यगायुष्यं पोरगाणि योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु १४६ । प्रमत्तसंयतावि सप्तगुणस्थानंगळपुवु । संदृष्टियुं गुणस्थानदोळुपेळदंतेंयक्कुं । केवलज्ञानमार्गणेयोळु योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु भत्तयु ८५ ।
- १० सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयमक्कुं । गुणस्थानातीतरप्प सिद्धरमोळरु ॥ संयममार्गणेयोळु असंयमयोग्यप्रकृतिगळु नूर नात्वर्त्तें दु १४८ । अल्लि मिथ्यादृष्ट्यादियाणि चतुर्गुणस्थानंगळपुवु । संदृष्टिः—

## असंयमयोग्य १४८

| ० | मि  | सा  | मि  | असं |
|---|-----|-----|-----|-----|
| स | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ |
| अ | ०   | ३   | १   | ०   |

कषायमार्गणायां सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं । गुणस्थानानि क्रोधादित्रयेऽनिवृत्तिकरणांतानि नव । लोभे सूक्ष्मसांपरायांतानि दश संदृष्टिगुणस्थानवत् ।

- १५ ज्ञानमार्गणायां कुमतित्रये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्ट्यावसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं । सासादनेऽसत्त्वं त्रयं । सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं । मतित्रये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव । संदृष्टिस्तदुक्तैव । मनःपर्यये नरकतिर्यगायुरभावात्सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि सप्त, संदृष्टिस्तद्वत् । केवलज्ञाने सत्त्वं पंचाशीतिः सयोगायोगगुणस्थानद्वयं । गुणस्थानातीताः सिद्धाः ।

संयममार्गणायामसंयमे सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि । संदृष्टिस्त-

- २० हीन होता है । कषाय मार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान क्रोध, मान, मायामें अनिवृत्तिकरणपर्यन्त नौ । लोभमें सूक्ष्म सांपराय पर्यन्त दश । रचना गुणस्थानवत् जानना । ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञानमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । वहाँ मिथ्या-  
दृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्वमें सब । सासादनमें असत्त्व तीन, सत्त्व एक सौ पैतालीस । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान असंयत आदि  
२५ नौ । रचना गुणस्थानवत् । मनःपर्ययमें नरकायु तिर्यचायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस । गुणस्थान प्रमत्त आदि सात । रचना गुणस्थानवत् । केवलज्ञानमें सत्त्व पचासी । दो गुणस्थान सयोग केवली और अयोगकेवली । सिद्धोंके कोई गुणस्थान नहीं होता ।

१. व 'नि रचना गुणस्थानोक्ता । २. व गुणस्थाने सयोगायोगे ।

देशसंयमबोळु सत्वप्रकृतिगळु नरकायुष्यं पोरगाणि नूर नाल्वत्तेळु १४७ । देशसंयतगुण-  
स्थानमोर्देयक्कुं । सामायिकछेदोपस्थापनसंयमद्वयबोळु नरकतिर्यंगायुर्द्वयरहितमाणि नूर  
नाल्वत्ताळु सत्वप्रकृतिगळुप्पुवु १४६ । प्रमत्तसंयतादि नाल्कु गुणस्थानंगळुप्पुवु । संदृष्टियुं  
गुणस्थानबोळु पेळवंतैयक्कुं । परिहारविशुद्धिसंयमबोळु सत्वप्रकृतिगळु नरकतिर्यंगायुर्द्वयं  
पोरगाणि योग्यसत्त्वंगळु नूरनाल्वत्ताळु १४६ । 'परिहारं पमदिवरे' एंदु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतगुण- ५  
स्थानद्वयमयप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायसंयतबोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमोर्देयक्कुं । सत्वप्रकृतिगळु  
नूररडु १०२ । यथाख्यातसंयममार्गणोळु नाल्कु गुणस्थानंगळुप्पुवळिल्ल उपशांतकषायनोळु  
सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्ताळु १४६ नूरमूवत्तेंदुमप्पुवु १३८ । क्षीणकषाय वीतरागच्छास्थनोळु  
सत्त्वंगळु नूरुवु १०१ । सयोगिकेवलभट्टारकनोळु एणभत्तडु सत्वप्रकृतिगळु ८५ । अयोगि-  
केवलभट्टारकनद्विचरमसमयबोळु सत्वप्रकृतिगळुणभत्तडु ८५ । चरमसमयबोळु पविनू १३ । १०  
संदृष्टि :-

यथाख्यात योग्य १४६

| ० | उ   | क्षी १६ | स०  | अ ७२ | १३  |
|---|-----|---------|-----|------|-----|
| स | १४६ | १३८     | १०१ | ८५   | ८५  |
| अ | ०   | ८       | ४५  | ६१   | १३३ |

दर्शनमार्गणोळु चक्षुरचक्षुर्दृशनद्वयबोळु नूरनाल्वत्तेंदु सत्वप्रकृतिगळु १४८ । मिथ्या-  
बुद्ध्यादि द्वावशगुणस्थानंगळोळं गुणस्थानबोळु पेळवंतै सत्वप्रकृतिगळुप्पुवु । अवधिदर्शनबोळु

दुक्कैव । देशसंयते सत्त्वं नरकायुरभावात्सप्तचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानं तन्नाम । सामायिकछेदोपस्थापनयोर्नर-  
कतिर्यंगायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि चत्वारि । संदृष्टिस्तदुक्तैव । परिहार- १५  
विशुद्धौ सत्त्वं तदायुर्द्वयामावात् षट्चत्वारिंशच्छतं गुणस्थानं प्रमत्ताप्रमत्तद्वयं । सूक्ष्मसांपरायै गुणस्थानं  
तस्मात्तैव सत्त्वं द्रयुत्तरशतं । यथाख्याते गुणस्थानानि चत्वारि तत्रोपशांतकषाये सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं  
अष्टत्रिंशच्छतं च । क्षीणकषायं एकोत्तरशतं । सयोगे पंचाशीतिः । अयोगे द्विचरमसमयांतं पंचाशीतिः,  
चरमसमये त्रयोदश ।

संयममार्गणामै असंयममै सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि २०  
चार । रचना गुणस्थानवत् । देशसंयतमै सत्त्व नरकायुका अभाव होनेसे एक सौ सैंतालीस  
गुणस्थान एक देशसंयत ही होता है । सामायिक और छेदोपस्थापना संयममै नरकायु तिर्यंचायु-  
के न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस । गुणस्थान प्रमत्त आदि चार । रचना गुणस्थानवत् ।  
परिहार विशुद्धि संयममै भी नरकायु तिर्यंचायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस ।  
गुणस्थान दो प्रमत्त और अप्रमत्त । सूक्ष्म साम्परायमै गुणस्थान एक सूक्ष्म साम्पराय नामक २५  
होता है । सत्त्व एक सौ दो । यथाख्यात संयममै गुणस्थान चार । उनमें-से उपशान्त कषायमें  
सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस । क्षीणकषायमै सत्त्व एक सौ एक । सयोगी-  
मै सत्त्व पिचासी । अयोगीमै द्विचरम समयपर्यन्त पिचासी, अन्तिम समयमै तेरह ।



योग्यसत्त्वप्रकृतिगळू नूरनाल्वत्ते टप्पुवु १४८ । अल्लि असंयतादिनवगुणस्थानंगळप्पुवल्लि गुणस्थानवोळू पेळवंते सत्त्वप्रकृतिगळप्पुवु । केवलदर्शनमार्गणयोळू केवलज्ञानवंते सत्त्वप्रकृतिगळप्पुवु । सयोगायोगिगुणस्थानद्वितयमवकुं । लेश्यामार्गणयोळू “किण्ह दुग वामे ण तित्थयरसत्तं” एंदितु कृष्णनीललेश्याद्वयवोळू सत्त्वप्रकृतिगळू नूर नाल्वत्ते टप्पुवु १४८ ॥ अल्लि मिथ्यादृष्ट्यावि नालकुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळू तीर्थमसत्त्वमवकुं । सत्त्वप्रकृतिगळू नूर नाल्वत्ते-  
५ ळप्पु १४७ । वेके दोड तीर्थसत्त्वपुक्तमनुष्यासंयतंगशुभलेश्यात्रयवोळू तीर्थबंधप्रारंभमिल्लमेसलानुं बद्धनरकायुष्यंगे द्वितीयतृतीयपृथ्विगळोळू पुट्टुवडे सम्भवत्त्वमं किडिसि मिथ्यादृष्टियाणि कपोतलेश्यायिबं पोकुमप्पुवरिवमी कृष्णनीललेश्याद्वयवोळू मिथ्यादृष्टि तीर्थसत्त्वमुळ्ळनिल्ले-  
वरियल्पडुगुं । संदृष्टि :—

कृ० नी० योग्य १४८

| ० | मि   | सा  | मि   | अ   |
|---|------|-----|------|-----|
| स | १४७  | १४५ | १४७  | १४८ |
| अ | ती १ | ३   | ती १ | ०   |

१० दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानान्याद्यानि द्वादश । संदृष्टिस्तदुक्तैव । अवधिदर्शने सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव । रचना सदुक्तैव । केवलदर्शने तज्ज्ञानवत् ।

लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलयोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि । तत्र किण्हदुगवामे ण तित्थयरसत्तमितिमिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं । अशुभलेश्यात्रये तीर्थबंधप्रारंभाभावात् ।  
१ बद्धनरकायुषोऽपि द्वितीयतृतीयपृथ्व्योः कपोतलेश्यायैव गमनात् । संदृष्टिः—

कृष्ण नी = योग्य १४८

| व्यु | मि   | सा  | मि   | अ   |
|------|------|-----|------|-----|
| स    | १४७  | १४५ | १४७  | १४८ |
| अ    | ती १ | ३   | ती १ | ०   |

दर्शन मार्गणामे चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शनमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान आदिके बारह । रचना गुणस्थानवत् । अवधिदर्शनमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान असंयत आदि नौ । रचना गुणस्थानवत् । केवलदर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना ।

लेश्यामार्गणामे कृष्ण और नीलमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि  
२० आदि चार । कृष्ण नीलमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थकरकी सत्ताका अभाव कहा है, क्योंकि तीन अशुभ लेश्याओंमें तीर्थकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता । तथा जिसने नरकायुका बन्ध किया है वह मरकर दूसरी तीसरी पृथ्वीमें यदि जाता है तो कपोतलेश्यासे ही जाता है ।

कपोतलेश्यामार्गणयोळु योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तेटु १४८। गुणस्थानंगळु नाल्कप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तेटु १४८। सासादननोळु नूर नात्वत्तय्दु १४५। मिश्रनोळु नूर नात्वत्तेळु १४७॥ असंयतनोळु सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तेटु १४८। संदृष्टिः— कपोतयोग्य १४८।

| व्यु | मि  | सा  | मि  | अ   |
|------|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   |

तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयोळु सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नात्वत्तेटु १४८। गुणस्थानंगळु- ५  
प्पुवल्लि “सुहृत्तिलेस्सिय वामे वि ण तित्थयरसत्तं” येदितु तेजःपद्मलेश्यामिथ्यादृष्टियोळु  
तीर्थसत्त्वमिल्लेकेदोडे नरकगतिगमनाभिमुखसंक्लिष्टजोडंगलगल्लदे सम्यक्त्वविराधनेयिल्लदु  
कारणमागि शुभलेश्यात्रययुक्तंगे सम्यक्त्वविराधनेयिल्लप्पुदरिदमी शुभलेश्याद्वयोळु तीर्थसत्त्व-  
मुळळ मिथ्यादृष्टियिल्लेदरियत्पडुगुमप्पुदरिदं सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तेळु १४७। सासादन-  
नोळु सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तय्दु १४५। मिश्रनोळु सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनात्वत्तेळु १४७। असंयत- १०  
नोळु सत्त्वंगळु नूरनात्वत्तेटु १४८। देशसंयतनोळु सत्त्वंगळु नरकायुध्यं पोरगागि नूरनात्वत्तेळु  
१४७। प्रमत्तसंयतनोळु नरकतिथ्यंगायुद्धयं पोरगागि सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तारु १४६। अप्रमत्त-  
नोळु सत्त्वंगळु नूर नात्वत्तारु १४६। संदृष्टिः—

कपोतलेश्यायां मिथ्यादृष्टौ सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। सासादने पंचचत्वारिंशत् शतं। मिश्रे सप्त-  
चत्वारिंशत् शतं। असंयते सर्वं। तेजःपद्मलेश्ययोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं गुणस्थानानि सप्त। तत्र १५  
सुहृत्तियलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तमिति तन्मिथ्यादृष्टौ तीर्थसत्त्वं नास्ति, कुतः? नरकगमनाभिमुखसंक्लिष्ट-  
म्योज्येषां सम्यक्त्वविराधनाभावेन शुभलेश्यात्रये तद्विराधनासंभवात्। तेषु तन्मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सप्तचत्वारिंशत्  
शतं। सासादने पंचचत्वारिंशत् शतं। मिश्रे सप्तचत्वारिंशच्छतं। असंयते अष्टचत्वारिंशच्छतं देशसंयते नरका-  
युक्विना सप्तचत्वारिंशच्छतं। प्रमत्ते नरकतिथ्यंगायुषी विना षट्चत्वारिंशत् शतं। अप्रमत्तेऽपि तथैव षट्चत्वा-

अतः कृष्णनीलमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक सौ सैंतालीसका सत्त्व होता है। कपोत लेश्यामें २०  
मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। सासादनमें सत्त्व एक सौ पैतालीस। मिश्रमें सत्त्व  
एक सौ सैंतालीस। असंयतमें एक सौ अड़तालीस।

तेज और पद्मलेश्यामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान सात। आगममें कहा है  
कि शुभ तीन लेश्याओंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थकरका सत्त्व नहीं होता, अतः मिथ्या-  
दृष्टिमें तीर्थकरकी सत्ता नहीं है क्योंकि जो तीर्थकरकी सत्तावाला नरक जानेके अभिमुख २५  
होता है उसके ही सम्यक्त्वकी विराधना होती है। अतः तीन शुभलेश्याओंमें सम्यक्त्वकी  
विराधना संभव नहीं है। इससे मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें एक सौ  
पैतालीस। मिश्रमें एक सौ सैंतालीस। असंयतमें एक सौ अड़तालीस। देशसंयतमें नरकायुके  
बिना एक सौ सैंतालीस। प्रमत्तमें नरकायु तीर्थचायुके बिना एक सौ छियालीस। अप्रमत्तमें

तेजःपद्म० योग्य १४८ ।

| व्यु | मि   | सा  | मि  | अ १ | दे १ | प्र | अ   |
|------|------|-----|-----|-----|------|-----|-----|
| स    | १४७  | १४५ | १४७ | १४८ | १४७  | १४६ | १४६ |
| अ    | ती १ | ३   | १   | ०   | १    | २   | २   |

शुक्ललेख्यामार्गणयोः योग्यसत्त्वगण १४८ । गुणस्थानगण मिथ्यादृष्ट्यादियोगि पविमूरपु  
बलियुं मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोः तीर्थसत्त्वमिल्ल । कारणं मुपेन्द्रदेयकं । सत्त्वगण नूरनाल्ब-  
तेः १४७ । सासादनादि गुणस्थानगणोः गुणस्थानदोःपेन्द्रदेयकं । संदृष्टिः—

शुक्ललेख्यायोग्य १४८

| व्यु | मि   | सा  | मि  | अ १ | दे १ | प्र | अ ८ | अ   | अ १६ | ८   | १   | १   |
|------|------|-----|-----|-----|------|-----|-----|-----|------|-----|-----|-----|
| स    | १४७  | १४५ | १४७ | १४८ | १४७  | १४६ | १४६ | १३८ | १३८  | १२२ | ११४ | ११३ |
| अ    | ती १ | ३   | १   | ०   | १    | २   | २   | १०  | १०   | २६  | ३४  | ३५  |

|     |     |     |     |     |      |     |         |    |
|-----|-----|-----|-----|-----|------|-----|---------|----|
| ६   | १   | १   | १   | १   | सू १ | उ ० | क्षी १६ | स  |
| ११२ | १०६ | १०५ | १०४ | १०३ | १०२  | १४६ | १०१     | ८५ |
| ३६  | ४२  | ४३  | ४४  | ४५  | ४६   | २   | ४७      | ६३ |

भक्ष्यमार्गणयोः गुणस्थानदोः पेन्द्रदेय योग्यसत्त्वप्रकृतिगण नूरनाल्बतेः १४८ ।  
५ गुणस्थानगण पविनाल्बकुम्पुवु । संदृष्टियुं गुणस्थानदोःपेन्द्रदेयकं विशेषमिल्ल ॥

रिशत् शतं ।

शुक्ललेख्यायां सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश । तत्रापि  
मिथ्यादृष्टी तीर्थासत्त्वात् सत्त्वं सप्तचत्वारिंशत् शतं । सासादनादिषु गुणस्थानोक्तैव संदृष्टिः ।

भक्ष्यमार्गणायां सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं । गुणस्थानानि चतुर्दश, संदृष्टिस्तदुक्तैव ॥३५४॥

१० भी इसी प्रकार एक सौ छियालीस ।

शुक्ल लेख्यामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि तेरह । यहाँ  
भी मिथ्यादृष्टिमें तीर्थकरका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस । सासादन आदिमें  
रचना गुणस्थानवत् जानना ।

भक्ष्य मार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान चौदह । रचना गुण-  
स्थानवत् ॥३५४॥

१. ब सासादनादौ गुणस्थानवत् ।

अभ्यव्यमार्गणयोळ पेळवपह :-

अभव्वसिद्धे णत्थि हे सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं ।

आहारचउक्कस्सवि असण्णिजीवे ण तित्थयरं ॥३५५॥

अभ्यव्यसिद्धे नास्ति खलु सत्त्वं तीर्थंकरसम्यक्त्वमिश्राणामाहारचतुष्कस्याप्यसंज्ञिजीवे न तीर्थंकरं ॥

अभ्यव्यमार्गणयोळ तीर्थंकरसम्यक्त्वमिश्राणामाहारचतुष्कस्यमेवेळं प्रकृतिगळ्णे सत्त्वमित्ते-  
कंदोडे अभ्यव्यजीवंगे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्याभिव्यक्तिसर्वकालबोळं संभविसदपुर्वारिवं मिथ्या-  
दृष्टिगुणस्थानमोवेयक्कुं । १४१ ॥ सम्यक्त्वमार्गणयोळ मिथ्यारुचिगळ्णे सत्त्वप्रकृतिगळ्णे  
नूरनात्वत्तं दु १४८ । सासादनरुचिगळ्णे सत्त्वप्रकृतिगळ्णे नूरनात्वत्तं दु १४५ । मिथ्यारुचिगळ्णे  
सत्त्वप्रकृतिगळ्णे १४७ । उपशमसम्यक्त्वबोळ्णे सत्त्वप्रकृतिगळ्णे नूरनात्वत्तं दु १४५ । अल्लि असंयत- १०  
गुणस्थानमादियाणि उपशांतकषायगुणस्थानावसानमागि ये दुं गुणस्थानंगळ्णुवु । संदृष्टि :-

उपशमसम्यक्त्वबोळ्णे योग्य १४८

| व्यु | अ १ | दे १ | प्र | अ   | अ   | अ   | सू  | उ   |
|------|-----|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४८ | १४७  | १४६ | १४६ | १४६ | १४६ | १४६ | १४६ |
| अ    | ०   | १    | २   | २   | २   | २   | २   | २   |

अभ्यव्यमार्गणायां तीर्थंकरसम्यक्त्वमिश्राणामाहारचतुष्कस्य च सत्त्वं नास्ति, तस्य सम्यग्दर्शनाद्य-  
भिव्यक्तेः सर्वकालेऽप्यसंभवात् । गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिसंज्ञं । सत्त्वमेकचत्वारिंशच्छतं ।

सम्यक्त्वमार्गणायां—मिथ्यारुचीनां सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । सासादनरुचीनां पंचचत्वारिंशच्छतं ।  
मिथ्यारुचीनां सप्तचत्वारिंशच्छतं । उपशमसम्यक्त्वबोळ्णेऽष्टचत्वारिंशच्छतं । तत्रासंयताद्युपशान्तकषायान्तान्यष्टौ १५  
गुणस्थानानि । संदृष्टिः —

उपशमसम्यक्त्वयोग्य १४८

| व्यु | अ १ | दे १ | प्र | अ   | अ   | अ   | सू  | उ   |
|------|-----|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४८ | १४७  | १४६ | १४६ | १४६ | १४६ | १४६ | १४६ |
| अ    | ०   | १    | २   | २   | २   | २   | २   | २   |

अभ्यव्य मार्गणामे तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय और आहारक शरीर  
अंगोपांग, बन्धन संघातका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि उसके सम्यग्दर्शन आदिकी अभिव्यक्ति  
कभी भी नहीं होती । गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि होता है । सत्त्व एक सौ इकतालीस ।

१. च सर्वदापि तस्य सम्यग्दर्शनाभिव्यक्त्यभावात् ।

वेदकसम्यक्त्वमार्गणयोऽनु सत्वप्रकृतिगण्ड नूर नात्वत्तोऽनु असंयतादिचतुर्गुणस्थानगण्डपुत्रु।  
संदृष्टिः—

वेदक सम्यक्त्वयोग्य १४८ ।

| व्यु | अ १ | दे १ | प्र | अ   |
|------|-----|------|-----|-----|
| स    | १४८ | १४७  | १४६ | १४६ |
| अ    | ०   | १    | २   | २   |

क्षाधिकसम्यक्त्वमार्गणयोऽनु सत्वप्रकृतिगण्ड सप्तप्रकृतिरहितमाणि नूरनात्वत्तोऽनु  
१४१ । अलि असंयतनोऽनु नरकायुष्यमुं तिर्यगायुष्यमुं सत्वव्युच्छित्तियपुत्रेकोऽनु क्षायिक-  
५ सम्यग्दृष्टि देशसंयतं मनुष्यनेयपुत्रु कारणमाणि सत्त्वंगण्ड नूर नात्वत्तोऽनु । देशसंयतनोऽनु सत्व-  
प्रकृतिगण्ड नूर सूवत्तोऽनु भत्तु १३९ । अप्रमत्तमसंयतनोऽनु क्षपकश्रेण्यपेक्षेयिदं देवायुष्यं सत्वव्युच्छित्ति-  
मवकु १ । सत्वप्रकृतिगण्ड नूर सूवत्तोऽनु भत्तु १३९ । अपूर्वकरणनोऽनु भयश्रेण्यपेक्षेयिदं सत्त्वंगण्ड नूर  
सूवत्तेऽनु १३८ । अनिवृत्तिकरणं मोदलोऽनु गुणस्थानवोऽनुपेक्षदंते सत्त्वंगण्डपुत्रु । संदृष्टिः—

वेदकसम्यक्त्वे सत्त्वमष्टत्वारिच्छतं । असंयतादिचतुर्गुणस्थानानि । संदृष्टिः—

वेदकयोग्य १४८

| व्यु | अ १ | दे १ | प्र ० | अ ० |
|------|-----|------|-------|-----|
| स    | १४८ | १४७  | १४६   | १४६ |
| अ    | ०   | १    | २     | २   |

१० क्षायिकसम्यक्त्वे सत्त्वं सप्तप्रकृत्यभावादकचत्वारिच्छतं । तत्रासंयते नरकतिर्यगायुषी व्युच्छित्तिः ।  
कुतः ? क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतो मनुष्य एवेति कारणात् । सत्त्वमेकचत्वारिच्छतं । देशसंयते एकान्नचत्वा-  
रिच्छतं । प्रमत्तेऽप्येकान्नचत्वारिच्छतं । अप्रमत्ते क्षपकश्रेण्यपेक्षया देवायुर्व्युच्छित्तिः । सत्त्वमेकोनचत्वा-  
रिच्छतं । अपूर्वकरणे उभयश्रेण्यपेक्षयाऽष्टत्रिच्छतं । अनिवृत्तिकरणादिषु गुणस्थानवत् ।

१५ सम्यक्त्व मार्गणामे मिथ्यारुचि जीवोमे सत्त्व एक सौ अड़तालीस । सासादन रुचि  
जीवोमे तीर्थकरके बिना एक सौ सैतालीस । उपशम सम्यक्त्वमे सत्त्व एक सौ अड़तालीस ।  
वहाँ असंयतसे लेकर उपशान्त कषाय पर्यन्त आठ गुणस्थान होते हैं । वेदक सम्यक्त्वमे  
सत्त्व एक सौ अड़तालीस गुणस्थान असंयत आदि चार । क्षायिक सम्यक्त्वमे सत्त्व एक सौ  
इकतालीस क्योंकि मोहनीय सम्बन्धी सात प्रकृतियोंका अभाव है । वहाँ असंयत गुण-  
स्थानमे नरकायु तिर्यचायुकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत  
२० मनुष्य ही होता है । सत्त्व एक सौ इकतालीस । देशसंयतमे सत्त्व एक सौ उनतालीस ।  
प्रमत्तमे भी एक सौ उनतालीस । अप्रमत्तमे क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा देवायुकी व्युच्छित्ति

क्षायिकसम्बन्धयोग्य १४१ ।

| व्यु | अ २ | वे  | प्र | अ १ | अ   | अ १६ | ८   | १   | १   | ६   | १   | १   |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| स    | १४१ | १३९ | १३९ | १३९ | १३८ | १३८  | १२२ | ११४ | ११३ | ११२ | १०६ | १०५ |
| अ    | ०   | २   | २   | २   | ३   | ३    | १९  | २७  | २८  | २९  | ३५  | ३६  |

|     |     |      |     |         |    |      |     |
|-----|-----|------|-----|---------|----|------|-----|
| १   | १   | सू १ | उ ० | क्षी १६ | स  | अ ७२ | १३  |
| १०४ | १०३ | १०२  | १३८ | १०१     | ८५ | ८५   | १३  |
| ३७  | ३८  | ३९   | ३   | ४०      | ५६ | ५६   | १२८ |

संज्ञिमार्गणयोः सामान्यसत्त्वप्रकृतिगुण नूरनाल्वत्तेऽङ्ग १४८ । अल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि  
यागि पन्नेरडुं गुणस्थानगळपुवुळ्ळिदंतेनुं विशेषमिल्ल ॥ असंज्ञिमार्गणयोः असंज्ञिजीवे ण  
तित्थयरमेदितु तीर्थसत्त्वं पोरगाणि नूर नाल्वत्तेऽङ्ग सत्त्वप्रकृतिगळपुवु नूरनाल्वत्तेऽङ्ग १४७ ।  
अल्लि मिथ्यादृष्टियोः सत्त्वंगळ नूरनाल्वत्तेऽङ्ग १४७ सासादननोः नूरनाल्वत्तेऽङ्ग १४५ ॥  
आहारमार्गणयोः पेळदपर । सत्त्वप्रकृतिगळ नूरनाल्वत्तेऽङ्गपुवु १४८ । वल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि-  
यागि सयोगिकेवल्लिगुणस्थानपर्यंतं पदिमूरं गुणस्थानगळपुवु मत्तोऽङ्ग विशेषमिल्ल । गुणस्थान-  
दोळ्ळेदंते संदृष्टियुमवकुं । अनाहारमार्गणयोः पेळदपर :—

कम्मेवाणाहारे पयडीणं सत्त्वमेवमादेसे ।

कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३५६॥

काम्मणमिवानाहारे प्रकृतीनां सत्त्वमेवमादेशे । कथितमिदं बलमाधवचंद्राच्चित्तनेमि-  
चंद्रेण ॥

संज्ञिमार्गणायां सामान्यसत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश विशेषो न ।

असंज्ञिमार्गणायां 'ण' तित्थयरमिति सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं । मिथ्यादृष्ट्यादि तथा । सासादने  
पंचचत्वारिंशच्छतं ।

आहारमार्गणायां—सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि सयोगांतानि त्रयोदश । विशेषो १५  
नास्ति ॥३५५॥

अनाहारमार्गणार्थां काम्मणयोगवत्, संदृष्टिः—

होती है । सत्त्व एक सौ उनतालीस । अपूर्वकरणमें उपशमश्रेणी तथा क्षपक श्रेणीकी अपेक्षा  
एक सौ अड़तीसका सत्त्व । अनिवृत्तिकरण आदिमें गुणस्थानवत् जानना ।

संज्ञी मार्गणामें सामान्यसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि २०  
बारह । अन्य कोई विशेष नहीं है । असंज्ञिमार्गणामें तीर्थकर न होनेसे सत्त्व एक सौ  
सैंतालीस । मिथ्यादृष्टिमें भी सत्त्व एक सौ सैंतालीस । सासादनमें एक सौ पैतालीस ।

आहारमार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । गुणस्थान सयोगीपर्यन्त तेरह । कोई  
विशेष नहीं है ॥३५५॥

कम्मेवि सगुणोधर्मे वितु काम्मंणकाययोगदोळ पेळदंतताहारमार्यण्योळ सत्त्वप्रकृति-  
गळप्पुवु । संदृष्टि :—

| व्यु | मि  | सा  | अ   | स  | अ ७२ | अ १३ |
|------|-----|-----|-----|----|------|------|
| स    | १४८ | १४४ | १४८ | ८५ | ८५   | १३   |
| अ    | ०   | ४   | ०   | ६३ | ६३   | १३५  |

यितुक्तप्रकारविदं मार्गणास्थानदोळ, प्रकृतिगळ सत्त्वमिवु प्रत्यक्षवन्दकरप्प बलदेववासुदेव-  
रुगळिदच्चिसत्त्वट्ट नेमिचंद्रतीर्थकर परमभट्टारकरिव पेळल्पट्टुदु । मेणाबलदेवणनिदं श्रीमाधव-  
५ चन्द्र त्रैविद्य देवरुगळिदमुं पूजिसत्त्वट्ट नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिगळिदं पेळल्पट्टुदु ॥

सो मे तिहुवणमहिओ सिद्धो बुद्धो निरंजणो निच्चो ।

दिसदु वरणाणलाहं बुद्धजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥३५७॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धो बुद्धो निरंजनो नित्यः । दिशतु वरज्ञानलाभं बुधजनपरि-  
प्राथितं परमशुद्धं ॥

अनाहारयोग्य १४८

| व्यु | मि  | सा  | अ   | स  | अ ७२ | १३  |
|------|-----|-----|-----|----|------|-----|
| स    | १४८ | १४४ | १४८ | ८५ | ८५   | १३  |
| अ    | ०   | ४   | ०   | ६३ | ६३   | १३५ |

१० एवं मार्गणास्थाने प्रकृतिसत्त्वमिदं प्रत्यक्षवन्दारम्यां बलदेववासुदेवारम्यामचितनेमिचंद्रतीर्थकरेण अथवा  
बलदेवभ्रात्रा श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवेनाचितनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिना निरूपितं ॥३५६॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धो बुद्धो निरंजनो नित्यः दिशतु वरज्ञानलाभं बुधजनपरिप्राथितं  
परमशुद्धं ॥३५७॥

अनाहार मार्गणामें कार्मणकाययोगकी तरह जानना । इस प्रकार मार्गणास्थानमें  
१५ यह प्रकृतियोंका सत्त्व प्रत्यक्ष वन्दना करनेवाले बलदेव और वासुदेवसे पूजित नेमिचन्द्र  
तीर्थकरने कहा है । अथवा बलदेव भ्राता और श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवसे अर्चित नेमिचन्द्र  
सिद्धान्तचक्रवर्तिने कहा है ॥३५६॥

वे श्री नेमिनाथ भगवान् जो तीनों लोकोंके द्वारा पूजित हैं, सिद्ध, बुद्ध, निरंजन और  
नित्य हैं मुझे वह परम शुद्ध उत्कृष्ट ज्ञान दें, जो ज्ञान ज्ञानीजनोंके द्वारा प्रार्थनीय है, ज्ञानी-  
२० जन जिसे चाहते हैं ॥३५७॥

इंतु भगवदहंत्परमेश्वर चारुचरणारविद्वंद्वंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्राय राजगुरु  
मंडलाचार्यमहावादीश्वररायवादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमद्वर्मभूषण भट्टा-  
रकदेवप्रिय सधर्मनुं श्रीमदभयसूरिसिद्धान्तचक्रवर्त्तिश्रीपावपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केश-  
वर्णविरचितमग्न गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्मकांडबन्धोदयसत्त्वयुक्तस्तवं  
महाधिकारं प्ररूपितमाबुबु ॥

इत्याचार्यनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां  
कर्मकांडे बन्धोदयसत्त्वप्ररूपणो नाम द्वितीयोऽधिकारः ॥२॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अहंन्त देव  
परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी  
श्री अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी भूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-  
के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका  
तथा उसकी अनुसारिणी पं. टीकरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक  
भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत  
बन्धोदय सत्त्वनिरूपण नामक दूसरा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१॥



## अथ सत्त्वस्थानभंगाधिकारः ॥३॥

णमिऊण वहुमाणं कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं ।

पयडीण सत्तठाणं ओघे भंगे समं वोच्छं ॥३५८॥

नत्वा वर्द्धमानं कनकनिभं देवराजपरिपूज्यं । प्रकृतीनां सत्त्वस्थानं ओघे भंगे समं वक्ष्यामि ॥

कनकवर्णं देवराजपरिपूज्यनुसम्प श्रीवीरवर्द्धमानस्वामिं नमस्कारमं माडि प्रकृतिगळ

५ सत्त्वस्थानमं गुणस्थानगळु भंगसहितमागि पेळदपनु ।

किं स्थानं को वा भंगः एंवितं दोड संख्याभेदेनैकस्मिन्जीवे युगपत्संभवत्प्रकृतिसमूहः स्थानं । अभिन्नसंख्यानां प्रकृतीनां परिवर्तनं भंगः । संख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भंगः एंवितु स्थान-लक्षणमुं भंगलक्षणमुसरियत्पडुगुं । गुणस्थानदोळु स्थानभंगगळं पेळव प्रकारमं पेळदपरुः—

कनकवर्णं देवराजपरिपूज्यं श्रीवीरवर्द्धमानस्वामिं नत्वा प्रकृतीनां सत्त्वस्थानं गुणस्थानेषु भंगसहितं  
१० वक्ष्यामि । किं स्थानं ? को वा भंगः ? संख्याभेदेनैकस्मिन् जीवे युगपत्संभवत्प्रकृतिसमूहः स्थानं । अभिन्नसंख्यानां प्रकृतीनां परिवर्तनं भंगः, संख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भंगः ॥३५८॥ गुणस्थानेषु स्थानभंगप्रतिपादन-प्रकारमाह—

स्वर्णके समान रूपरंगवाले और देवोंके राजा इन्द्रके द्वारा पूजनीय श्री वर्द्धमान स्वामीको नमस्कार करके प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानको गुणस्थानोंमें भंगके साथ कहूँगा । स्थान  
१५ किसे कहते हैं और भंगका क्या स्वरूप है यह कहते हैं—

एक समयमें एक जीवके संख्या भेदको लिये हुए जो प्रकृतियोंका समूह पाया जाता है उसे स्थान कहते हैं । और समान संख्यावाली प्रकृतियोंमें जो प्रकृतियोंका परिवर्तन होता है उसे भंग कहते हैं । अथवा संख्या भेदसे समानता रहते हुए भी प्रकृति भेद होनेसे भंग होता है ॥३५८॥

२० विशेषार्थ—एक जीवके एक कालमें जितनी प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है उनके समूहका नाम स्थान है । सो जहाँ अन्य-अन्य संख्याको लिये प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है वहाँ अन्य-अन्य स्थान कहा जाता है । जैसे किन्हीं जीवोंके एक सौ छियालीसकी सत्ता पायी जाती है और किन्हीं जीवोंके एक सौ पैंतालीसकी सत्ता पायी जाती है तो यहाँ दो स्थान हुए । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । और जहाँ एक ही स्थानमें प्रकृतियाँ बदल जाती हों  
२५ तो उसे भंग कहते हैं । जैसे किन्हीं जीवोंके मनुष्यायु और देवायुके साथ एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है किन्हीं जीवोंके तिर्यचायु नरकायुके साथ एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है । सो यहाँ स्थान तो एक ही हुआ क्योंकि संख्या समान है ।

१. सत्त्वस्थाननिरूपणा-संख्याप्रकृतिभ्यां भेदे स्थानं । २. संख्यैकत्वे प्रकृतिभेदे भंगः ।

आयुर्बन्धाबंधभेदमकाऊण वर्णनं पठमं ।

भेदेण य भंगसमं प्ररूपणं होदि विदियम्मि ॥३५९॥

आयुर्बन्धाऽब्धनभेदमकृत्वा वर्णनं प्रथमं । भेदेन च भंगसमं प्ररूपणं भवति द्वितीयस्मिन् ॥

अयुर्बन्धाबंधभेदमं माडदे प्रथमवर्णनमक्कुं । द्वितीयदोळायुर्बन्धाबंधभेददोडने भंगसहित-  
मार्गि प्ररूपणमक्कुमल्लि प्रथमपक्षदोळु पेळदपरु :—

सर्वं तिगेग सर्वं चेगं छसु दोणि चउसु छदस य दुगे ।

छत्सगदालं दोसु तिसट्टी परिहीण पयडिसत्तं जाणे ॥३६०॥

सर्वं त्रिकैकं सर्वं चैकं षट्सु द्वे चतुर्षु षट् दशकं द्विके । षट् समचत्वारिणत् द्वयोस्त्रिषष्टि  
परिहीनप्रकृतिसत्त्वं जानीहि ॥

मिथ्यादृष्टिप्रोळु सर्वं नूर नालवत्तेटुं प्रकृतिसत्त्वमक्कुं । सासादननोळु तीर्थमुमाहारक- १०  
द्विकमेव त्रिहीनसर्वप्रकृतिसत्त्वमक्कुं । मिथ्रनोळु तीर्थरहितमाणि सर्वप्रकृतिसत्त्वमक्कुं ।  
असंयतनोळु सर्वं नूरनालवत्तेटुं प्रकृतिसत्त्वमक्कुं । देशसंयतनोळु एकं नरकायुष्यं रहितमाणि  
सर्वप्रकृतिसत्त्वमक्कुं । षट्सु द्वे प्रमत्ताप्रमत्तरुगुमुपशमकापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसां-  
परायोपशांतकषायरेबाहं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नरकतिर्यंगायुष्यमेबेरडु प्रकृतिहीनसर्व-  
प्रकृतिसत्त्वमक्कुं । चतुर्षु षट् मत्तमुपशमकापूर्वनिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरेब नालकुं १५

आयुर्बन्धाबंधभेदमकृत्वा प्रथमं वर्णनं भवति । द्वितीयस्मिन्नायुर्बन्धाबंधभेदेन सह भंगसहितं प्ररूपणं  
भवति ॥३५९॥ तत्र प्रथमपक्षे प्राह—

मिथ्यादृष्टी सत्त्वं सर्वमष्टचत्वारिणश्छत्तं । सासादने तदेव तीर्थाहारकद्विकहीनं । मिथ्रे तीर्थहीनं ।  
असंयते सर्वं । देशसंयते नरकायुर्हीनं । प्रमत्तादिषु षट्सु नरकतिर्यंगायुर्हीनं । पुनरपूर्वकरणादिषु चतुर्षु

किन्तु भंग अन्य हुआ क्योंकि प्रकृति बदल गयी है । पहलेमें मनुष्यायु देवायुकी सत्ता है २०  
और दूसरेमें तिर्यचायु नरकायुकी सत्ता है । इसी प्रकार सर्वत्र अन्य-अन्य प्रकृतियोंकी  
संख्या होनेसे स्थान भेद होता है । और एक ही स्थानमें कोई प्रकृति अन्य-अन्य होनेसे  
भंग भेद होता है ॥३५८॥

आगे गुणस्थानोंमें स्थान और भंगके भेदोंका प्रकार कहते हैं—

आयुके बन्ध अथवा अबन्धका भेद न करके पहला वर्णन है और दूसरे वर्णनमें २५  
आयुके बन्ध और अबन्धके भेदके साथ भंगसहित वर्णन है ॥३५९॥

उनमें-से प्रथम पक्षका वर्णन करते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व सब एक सौ अड़तालीस है । सासादनमें तीर्थकर और आहारक-  
द्वयसे बिना एक सौ पैतालीसका सत्त्व है । मिथ्रमें तीर्थकरके बिना एक सौ सैंतालीसका  
सत्त्व है । असंयतमें सब एक सौ अड़तालीसका सत्त्व है । देशसंयतमें नरकायुके बिना एक ३०  
सौ सैंतालीसका सत्त्व है । प्रमत्त आदि छह गुणस्थानोंमें उपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा नरकायु  
तिर्यचायुके बिना एक सौ छियालीसका सत्त्व है । पुनः अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें

गुणस्थानंगळोळु नरकतिर्यंगायायुष्यंगळु अनंतानुबन्धितचतुष्टयमेवाहं रहितमाणि प्रत्येकं सर्व-  
प्रकृतिसत्त्वमवकुं । दशकद्विके क्षपकापूर्वकरणानिवृत्तिकरणरेवेरडुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं  
नरकतिर्यग्देवायुष्यंगळु सप्तप्रकृतिगळु मंतु दशप्रकृतिहीनसर्वप्रकृतिसत्त्वमवकुं । द्वयोः षट् सप्त-  
चत्वारिंशत् सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषायरेवेरडुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं सोलहद्विकगि छक्कं  
५ चतुसेकमेव नात्वत्तारं लोभसहितमाणि नात्वत्तेळु हीनमाणि सर्वप्रकृतिसत्त्वमवकुं ।  
द्वयोस्त्रिषष्टिपरिहीनप्रकृतिसत्त्वं सयोगायोगकेवलिगुणस्थानद्वयोळु घातिगळु नात्वत्तेळु । नाम-  
कर्मदोळु पदिमूर आयुष्यंगळु मूरितु त्रिषष्टिहीनप्रकृतिसत्त्वं प्रत्येकमवकुं । च शब्दद्विद्वययोग-  
केवलिचरमसमयदोळु नूरमूवत्तयु प्रकृतिहीनमाणि पदिमूर प्रकृतिसत्त्वमवकुं मंदितु त्वं जानीहि  
शिष्य नीनरि येदु संबोधिसत्त्वपट्टुदु । आ हीनप्रकृतिगळं पेळवपरु :—

१०

सासण मिस्से देसे संजमदुग सामगेसु णत्थी य ।

तित्थाहारं तित्थं णिरयाऊ णिरयतिरियआउ अणं ॥३६१॥

सासादनमिश्रयोद्देशसंयते संयतद्विकोपशमकेषु नास्ति च । तीर्थाहारं तीर्थं नरकायुर्नरक-  
तिर्यंगायुरनंतानुबन्धिनः ॥

सासादननोळं मिश्रनोळं देशसंयतनोळं संयतद्विकदोळमुपशमकरोळं हीनप्रकृतिगळु

१५ यथाक्रमद्विद्वं तीर्थाहारत्रिकमुं तीर्थमुं नरकायुष्यमुं नरकतिर्यंगायायुष्यंगळु नरकतिर्यंगायायुष्यंगळुम-

नरकतिर्यंगायायुरनंतानुबन्धितचतुष्कहीनं । क्षपकापूर्वकरणादिद्वये नरकतिर्यग्देवायुःसप्तप्रकृतिहीनं । सूक्ष्मसांपराये  
सोलहद्विकगिछक्कं चतुसेकमिति षट्चत्वारिंशता हीनं । क्षीणकषाये लोभसहितया हीनं । सयोगायोगयोः  
घातिसप्तचत्वारिंशता नामकर्मत्रयोदशभिरायुस्त्रयेण च हीनं । चशब्दादयोगिचरमसमये पंचत्रिंशच्छतहीनं  
जानीहि ॥३६०॥ ता अपनीतप्रकृतीराह—

२०

सासादने मिश्रे देशसंयते संयतद्विके उपशमके चापनीतप्रकृतयः क्रमेण तीर्थाहारत्रयं तीर्थं नरकायुष्यं  
नरकतिर्यंगायायुर्नरकतिर्यंगायायुषी अनंतानुबन्धितचतुष्कं चेति षट् । चशब्दात् क्षपकेषु दस य दुगे इत्यादिनोक्त-

नरकायु, तिर्यचायु और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी  
चतुष्कके बिना एक सौ ब्यालीसका सत्त्व है । क्षपक अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें  
नरकायु, तिर्यचायु, देवायु तथा मोहनीयकी सात प्रकृतियोंके बिना एक सौ अड़तीसका सत्त्व  
२५ है । सूक्ष्म साम्परायमें अनिवृत्तिकरणमें व्युच्छिन्न हुई सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक,  
एक, एक, एकके बिना एक सौ दाका सत्त्व है । क्षीणकषायमें लोभ सहित सैंतालीस बिना  
एक सौ एकका सत्त्व है । सयोगी-अयोगीमें घातिकर्मोंकी सैंतालीस, नामकर्मकी तेरह और  
तीन आयुके बिना पिचासीका सत्त्व है । 'च' शब्दसे अयोगीके अन्तिम समयमें एक  
सौ पैंतीस बिना तेरहका सत्त्व है ॥३६०॥

३०

घटायी हुई प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

सासादन, मिश्र, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्त संयत, और उपशम श्रेणीमें घटायी  
हुई प्रकृतियाँ क्रमसे तीर्थकर और आहारकद्विक ये तीन, तीर्थकर, नरकायु, नरकायु और

१. योगयोः सप्तचत्वारिंशद्घाति त्रयोदशनामत्रयायुःहीनं ।

नंतानुबन्धिचतुष्कमुमंतारं प्रकृतिगळप्पुवु । च शब्दविदक्षपकरोळु दसयदुगे एंदितिवु मोदलागि  
हीनप्रकृतिगळरियल्पडुवुवु । संदृष्टिः—

| व्यु | मि० | सा० | मि० | अ   | दे  | प्र | अ   | अ उ | अ० क्ष | अनिवृत्ति० उ० अ० क्ष |     |     |     |
|------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|--------|----------------------|-----|-----|-----|
| स    | १४८ | १४५ | १४७ | १४८ | १४७ | १४६ | १४६ | १४६ | १४२    | १३८                  | १४६ | १४२ | १३८ |
| अ    | ०   | ३   | १   | ०   | १   | २   | २   | २   | ६      | १०                   | २   | ६   | १०  |

| सूक्ष्म० उ. प. | सूक्ष्म | उ   | क्षी | स   | अ   |    |    |     |
|----------------|---------|-----|------|-----|-----|----|----|-----|
| १४६            | १४२     | १०२ | १४६  | १४२ | १०१ | ८५ | ८५ | १३  |
| २              | ६       | ४६  | २    | ६   | ४७  | ६३ | ६३ | १३५ |

अनंतरं गुणस्थानदोळु स्थानसंख्येयं गाथाद्वयदिदं पेळदपरुः—

विगुणनव चारि अट्टं मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं ।

तिसु उवसमगे संते चउवीसा होंति पत्तेयं ॥३६१॥

चउछक्कदि चउ अट्टं चउ छक्क य होंति सत्तठाणाणि ।

आउगबंधाबंधे अजोगिअंते तदो भंगं ॥३६२॥

द्विगुणनव चतुरष्टौ मिथ्यादृष्टि त्रिके असंयतचतुर्षु चत्वारिंशत् त्रिषूपशमकेषूपशांते च  
चतुर्विंशतिर्भवति प्रत्येकं ॥

चतुःषट्कृति चतुरष्टौ चतुः षट् च भवति सत्त्वस्थानानि । आयुर्बन्धाऽबंधे अयोग्यंते १०  
ततो भंगः ॥

द्विगुण नव मिथ्यादृष्टियोळु अष्टादश स्थानंगळप्पुवु । चतुःसासादनगुणस्थानदोळु नाल्कु  
सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । अष्टौ मिश्रगुणस्थानदोळु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । असंयतचतुर्षु चत्वारिंशत्  
असंयतादि नाल्कु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नाल्वत्तु नाल्वत्तु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । त्रिषूपशमकेषूप-  
शांते च अपूर्वकरणा निवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायरे ब भूवरुमुपशमकरोळमुपशान्तकषायनोळं प्रत्येकं १५  
चतुर्विंशतिः प्रत्येकमिप्पत्तनाल्कु इप्पत्तु नाल्कु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । चतुःक्षयकश्रेणियोळपूष्यं-

प्रकृतयोऽपि ज्ञातव्याः । अथ गुणस्थानेषु स्थानसंख्या गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्टौ सत्त्वस्थानान्यष्टादश, सासादने चत्वारि, मिश्रेऽष्टौ, असंयतादिषु चतुर्षु प्रत्येकं चत्वारिंशत्,  
तिर्यंचायु दो, तथा नरकायु तिर्यंचायु, अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह जानना । 'च' शब्दसे  
क्षपकश्रेणीमें 'दस य दुगे' इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारसे घटायी गयीं प्रकृतियां जानना ॥३६१॥ २०

आगे गुणस्थानोंमें स्थानोंकी संख्या दो गाथाओंके द्वारा कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सत्त्वस्थान अठारह, सासादनमें चार, मिश्रमें आठ, असंयत आदि  
चार गुणस्थानोंमें प्रत्येकमें चालीस, उपशम श्रेणीके तीन गुणस्थानोंमें तथा उपशान्त कषायमें

करणनोळु नाल्कु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । षट्कृति अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु सूत्रताह सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । चतुः सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु नाल्कु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । अष्टौ क्षीणकषायगुणस्थानदोळु दु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । चतुः सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु नाल्कु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु । षट् च भवन्ति सत्त्वस्थानानि अयोगिगुणस्थानदोळारु सत्त्वस्थानंगळप्पुवितायुक्त्वाऽबन्धविवक्षेयोळयोगि-  
५ केवलि गुणस्थानावसानमाद गुणस्थानंगळोळु सत्त्वस्थानंगळ संख्ये पेळत्पट्टु । ततो भंगः अस्ति बळिवरुमा पेळद सत्त्वस्थानंगळगे भंगसंख्ये पेळत्पट्टुगुं :—

पण्णास चार छक्कदि बीससयं अड्डाल दुसु तालं ।

अडवीसा वामट्टी अडचउवीसा य अड चउ अड्डा ॥३६४॥

पंचाशत् द्वादश षट्कृति विशत्युत्तरशतमष्ट चत्वारिंशद्द्वयोश्चत्वारिंशदष्टाविंशतिर्द्विषष्टि-

१० रष्ट चतुस्तरविंशतिश्चाष्टचतुरष्टौ ॥

पंचाशत् मिथ्यादृष्टियोळपदिने दु स्थानंगळगवत्तु भंगंगळप्पुवु । द्वादश सासादनन नाल्कु स्थानंगळगे पन्नेरडु भंगं गळप्पुवु । षट्कृति मिश्रने दु स्थानंगळगे षट्त्रिंशद्भंगंगळप्पुवु । विशत्युत्तरशतं असंयतन नाल्वत्तु स्थानंगळगे नूरिप्पत्तु भंगंगळप्पुवु । अष्टचत्वारिंशत् देशसंयतन नाल्वत्तु सत्त्वस्थानंगळगे नाल्वत्ते दु भंगंगळप्पुवु । द्वयोश्चत्वारिंशत् प्रमत्ताप्रमत्तरुगळ नाल्वत्तु नाल्वत्तु  
१५ सत्त्वस्थानंगळगे नाल्वत्तु नाल्वत्तु भंगंगळप्पुवु । अष्टाविंशतिः अपूर्वकरणनुभयश्रेणिय इप्पत्ते दु सत्त्वस्थानंगळगवत्तु भंगंगळप्पुवु । द्विषष्टिः अनिवृत्तिकरणनुभयश्रेणिय अल्वत्तु स्थानंगळगवत्ते-

त्रिपुणशमकेषूपशांते च प्रत्येकं चतुर्विंशतिः, क्षपकापूर्वकरणे चत्वारि, अनिवृत्तिकरणे षट्त्रिंशत्, सूक्ष्मसांपराये चत्वारि, क्षीणकषायेष्टौ, सयोगे चत्वारि, अयोगे षट् । एवमायुर्बन्धाबन्धविवक्षायामयोग्यतगुणस्थानेषु सत्त्वस्थानान्युक्तानि ॥३६२-३६३॥ ततोऽग्रे तेषां भंगसंख्यामाह—

२० मिथ्यादृष्टादष्टादशस्थानानां भंगाः पंचाशत् । सासादनस्य चतुर्णां द्वादश । मिश्रस्याष्टानां षट्त्रिंशत् । असंयतस्य चत्वारिंशतो विशत्युत्तरशतं । देशसंयतस्य चत्वारिंशतोऽष्टचत्वारिंशत् । प्रमत्तस्याप्रमत्तस्य च चत्वारिंशतश्चत्वारिंशत् । उभयश्रेण्यपूर्वकरणस्याष्टाविंशतेरष्टाविंशतिः । उभयश्रेण्यनिवृत्तिकरणस्य षट्द्विषष्टिः ।

प्रत्येकमें चौबीस सत्त्वस्थान होते हैं । क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणमें चार, अनिवृत्तिकरणमें छत्तीस, सूक्ष्म साम्परायमें चार, क्षीणकषायमें आठ, सयोगीमें चार और अयोगीमें छह  
२५ सत्त्वस्थान होते हैं । इस प्रकार आयुके बन्ध और अबन्धकी विवक्षामें अयोगी पर्यन्त चौदह गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान कहे ॥३६२-३६३॥

आगे इन स्थानोंके भंगोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंके पचास भंग होते हैं । सासादनके चार स्थानोंके बारह भंग होते हैं । मिश्रके आठ स्थानोंके छत्तीस भंग होते हैं । असंयतके चालीस स्थानोंके  
३० एक सौ बीस भंग होते हैं । देशसंयतके चालीस स्थानोंके अड़तालीस भंग होते हैं । प्रमत्त और अप्रमत्तके चालीस स्थानोंके चालीस भंग होते हैं । दोनों श्रेणियों सम्बन्धी अपूर्वकरणके अठाईस स्थानोंके अठाईस भंग होते हैं । दोनों श्रेणी सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणके

रडु भंगगळप्पुवु । अष्टाविंशतिः सूक्ष्मतांपरायनुभयश्रेणिय इप्पत्ते दु सत्त्वस्थानंगळिगप्पत्ते दु भंगगळप्पुवु । चतुर्विंशतिः उपशांतकषायन इप्पत्तनाल्कुं सत्त्वस्थानंगळिगप्पत्तनाल्कुं भंगगळप्पुवु । अष्ट क्षीणकषायन दुं सत्त्वस्थानंगळगे दुं भंगगळप्पुवु । चतुःसयोगिकेवलिय नाल्कुं सत्त्वस्थानंगळगे नाल्कुं भंगगळप्पुवु । अष्टौ अयोगिकेवलिय आरुं सत्त्वस्थानंगळगे दुं भंगगळप्पुवु । संदृष्टिः—

| *      | मि | सा | मि | अ   | वे | प्र | अ  | अपू  | अनि   | सू   | उ  | क्षी | स | अ |
|--------|----|----|----|-----|----|-----|----|------|-------|------|----|------|---|---|
| स्थानं | १८ | ४  | ८  | ४०  | ४० | ४०  | ४० | २४१४ | २४१३६ | २४१४ | २४ | ८    | ४ | ६ |
| भंगः   | ५० | १२ | ३६ | १२० | ४८ | ४०  | ४० | २८   | ६२    | २८   | २४ | ८    | ४ | ८ |

अनंतरं मिथ्यादृष्टियोलु पदिने दुं स्थानंगळगे प्रकृतिसंख्यायनायुर्बन्धाबंधविवक्षेयिषं ५  
वेळदपरः—

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं ।

हीणा सव्वे सत्ता मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं ॥३६५॥

द्वित्रिषदसप्ताष्टनवैकादशसप्तदशैकान्नविंशत्येकविंशतिहीनाः । सर्वसत्त्वानि मिथ्यादृष्टौ १०  
बद्धायुषीतरस्मिन्नेकोनं ॥

बद्धायुषि मिथ्यादृष्टौ बद्धायुष्यनप्प मिथ्यादृष्टियोलु द्विहीन त्रिहीन षड्हीन सप्तहीनाष्ट-  
हीन नवहीनैकादशहीन सप्तवशहीनैकान्नविंशतिहीनैकविंशतिहीनसर्वप्रकृतिसत्त्वमागुत्तं विरलु  
सत्त्वस्थानंगळु पत्तु १० । अबद्धायुष्यनोलु मत्तो दो दु प्रकृतिहीनमागुत्तं विरलु सत्त्वस्थानंगळवुं

उभयश्रेणीसूक्ष्मसांपरायस्याष्टाविंशतेरष्टाविंशतिः । उपशांतकषायस्य चतुर्विंशतेश्चतुर्विंशतिः । क्षीणकषाय-  
स्याष्टानामष्टौ । सयोगिकेवलिनश्चतुर्णां चत्वारः । अयोगिनः षण्णामष्टौ ॥३६४॥ अथ मिथ्यादृष्टावष्टादश- १५  
स्थानानां प्रकृतिसंख्यामायुर्बन्धाबंधविवक्षयाह—

बद्धायुष्के मिथ्यादृष्टौ द्वित्रिषदसप्ताष्टनवैकादशसप्तदशैकान्नविंशतिभिः पृथग्हीने सत्त्वे स्थानानि दश ।

साठ स्थानोंके बासठ भंग होते हैं । दोनों श्रेणीसम्बन्धी सूक्ष्मसाम्परायके अठाईस स्थानोंके  
अठाईस भंग होते हैं । उपशान्तकषायके चौबीस स्थानोंके चौबीस भंग होते हैं । क्षीणकषाय-  
के आठ स्थानोंके आठ भंग होते हैं । सयोगिकेवलीके चार स्थानोंके चार भंग होते हैं । २०  
अयोगिकेवलीके छह स्थानोंके आठ भंग होते हैं ॥३६४॥

आगे मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंकी प्रकृति संख्यामें आयुके बन्ध और अबन्धकी  
विवक्षापूर्वक कहते हैं—

जिसके आगामी आयुका बन्ध हुआ है उसे बद्धायु कहते हैं और जिसके आगामी  
अयुका बन्ध नहीं हुआ उसे अबद्धायु कहते हैं । बद्धायु मिथ्यादृष्टिके सर्व सत्त्वरूप एक सौ २५  
अड़तालीस प्रकृतियोंमें-से दो प्रकृति हीन पहला स्थान है । इसी प्रकार द्वितीयादि स्थान  
क्रमसे तीन, छह, सात, आठ, नौ, ग्यारह, सतरह, उन्नीस और इक्कीस प्रकृति हीन होते हैं ।

पत्तु १०। अंतुं कूडि सत्त्वस्थानंगळिप्पत्तरोळु पुनरुक्तस्थानद्वयसं कळिदु शथ सत्त्वस्थानंगळु पदिने टप्पुवु । संदृष्टिः—

|                   | ०<br>२     | ०<br>३   | ०<br>६   | ०<br>७   | ०<br>८   | ०<br>९   | ०<br>११  | ०<br>१७  | ०<br>१९  | ०<br>२१  |
|-------------------|------------|----------|----------|----------|----------|----------|----------|----------|----------|----------|
| अबद्धायुष्क मि० ८ | १४६<br>अ १ | १४५<br>५ | १४२<br>१ | १४१<br>५ | १४०<br>५ | १३९<br>५ | १३७<br>१ | १३१<br>१ | १२९<br>१ | १२७<br>१ |
| अबद्धायुष्क मि०   | १४५        | १४४      | १४१      | १४०      | १३९      | १३८      | १३६      | १३०      | १२२      | १२७      |
| अं                | १          | ४        | १        | ४        | ४        | ४        | ४        | २        | पुनरुक्त | पुनरुक्त |

इल्लि द्विध्यादिहीन प्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळवपरुः—

तिरियाउगदेवाउगमण्णदराउगदुगं तहा तित्थं ।

देवतिरियाउसहियाहारचउक्कं तु छच्चेदे ॥३६६॥

आउदुगहारतित्थं सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं ।

णारयल्लक्कं च तहा णराउउच्चं च मणुवदुगं ॥३६७॥

तिथ्यंगायाद्वेवायुरन्यतरायुद्विकं तथा तीर्थं । देवतिथ्यंगायाःसहिताहारचतुष्कं तु षट् चैताः ॥

१० आयुद्वयाहारतीर्थं सम्यक्त्वं मिश्रं च तथा च देवद्विकं । नारकषट्कं च तथा नरायुरच्चं च मानवद्विकं ॥

तिथ्यंगायायुष्यमुं देवायुष्यमुर्मं वेरुं अन्यतरायुद्विकमुं तीर्थमुर्मं च मूरं देवायुष्यमुं तिथ्यंगा-  
युष्यमुमाहारचतुष्टयमुर्मं बारुं, अन्यतरायुद्वयं तीर्थमाहारचतुष्टयमुर्मं वेरुं सम्यक्त्वप्रकृतिसहित-  
मप्येदुं मिश्रप्रकृतिसहितमप्योभत्तुं देवद्विकसहितमप्य पन्नोदुं नारकषट्कसहितमप्य पविनेदुं

१५ अबद्धायुष्के पुनरेकैकस्मिन् हीने दश । एवं विंशतिस्थानेषु पुनरुक्तद्वयेऽपनीतेऽष्टादश भवन्ति ॥३६५॥ ताः  
अपनीतप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

तिथ्यं देवायुषी अन्यतरायुषी तीर्थं चेति देवतिथ्यंगायायुषी आहारकचतुष्कं चेति अन्यतरायुषी तीर्थमाहा-

ये दस स्थान तो अबद्धायुके हैं । अबद्धायुके इनमें-से एक-एक अधिक प्रकृति हीन स्थान होते हैं यह भी दस होते हैं । इस प्रकार बीस स्थानोंमें-से दो पुनरुक्त स्थान घटानेपर मिथ्यादृष्टिमें  
२० सब अठारह स्थान होते हैं ॥३६५॥

आगे घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

किसी जीवके तिर्यंचायु-देवायुके बिना एक सौ छियालीसका सत्त्व होता है । किसीके भुज्यमान बध्यमान दो आयुके बिना कोई दो आयु और तीर्थकरके बिना एक सौ पैंतालीस-

१. आहारकशरीरबंधनसंघात अंगोपांगमे'ब । २. च ताः हीनप्र' ।

नरायण्यमुमुचैर्गोत्रमुं सहितमाणि हतो भूतुं मनुष्यद्विकसहितमाविष्पत्तोऽबु रहितमाव सध्वंसत्त्व  
प्रकृतिगळु सत्वस्थानमक्कुमंतु बद्धायुष्यनोळु सत्वस्थानंगळु पत्तु १० । अबद्धायुष्यनोळु भुज्यमा-  
नायुष्यमोदे सत्वमपुवरिना पत्तुं स्थानंगळ प्रकृतिगळोळो दो बायुष्यमं कळु शेषप्रकृतिगळ  
सत्वस्थानंगळु पत्तुं १० । अंतिपत्तुं सत्वस्थानंगळोळु पुनरुक्तस्थानंगळ मुवे पेळलपडुवववं कळु  
शेषसत्वस्थानंगळ पदिने टप्पु १८ वक्क के भंगंगळयवत्तपुववे ते दोडे रचनेयोळु पेळव भंगंगळानु- ५  
सारियाणि परमगुरुपदेशदिदं भंगंगळु पेळलपडुववल्लि प्राग्बद्ध नरकायुष्यनप्प मनुष्य मिथ्यादृष्टि  
गृहीतवेदकसम्यक्त्वनसंयतगुणस्थानवृत्ति केवल्लिद्वयोपांतवोळु षोडशभावनापरिणतं तीर्थंकरयुष्य-  
बंधमं प्रारंभिसि तीर्थसत्कर्मनाणि मरणकालवोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यमंतर्मुहूर्त्तमात्रावशेष-  
मादागळु सम्यग्दर्शनमं विराधिसि मिथ्यादृष्टियादातंगे तिर्यंगायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमाणि

रचतुष्कं चेति ता एव सप्त, सम्यक्त्वप्रकृत्याष्टौ, पुनर्मिश्रप्रकृत्या नव, देवद्विकेनैकादश, नारकषट्केन सप्तदश, १०  
नरायुष्यचैर्गोत्राभ्यामेकान्नविंशतिः, मनुष्यद्विकेनैकविंशतिः, तेषामष्टादशस्थानानां पंचाशद्भंगाः रचनानुसारेण  
परमगुरुपदे शोच्यन्ते—

तत्र कश्चित् प्राग्बद्धनरकायुर्मनुष्यो मिथ्यादृष्टिर्गृहीतवेदकसम्यक्त्वोऽसंयतः केवल्लिद्वयोपांते षोडशभाव-  
नाभिस्तोर्ध्वबंधं प्रारभ्य तत्संकर्मा भूत्वा मरणकाले भुज्यमानायुष्यंतर्मुहूर्त्तंअविष्टे मिथ्यादृष्टिर्जातस्तस्य

का सत्त्व होता है। किसीके देवायु, तिर्यंचायु और आहारक चतुष्कके बिना एक सौ १५  
बयालीसका सत्त्व होता है। किसीके कोई दो आयु, आहारक चतुष्क और तीर्थंकरके बिना  
एक सौ इकतालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त सात और सम्यक्त्व मोहनीयके  
बिना एक सौ चालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त आठ और मिश्र मोहनीयके बिना  
एक सौ उनतालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त नौ और देवगति-देवानुपूर्वी बिना  
एक सौ सैंतीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त ग्यारह तथा नरकगति, नरकानुपूर्वी, २०  
वैक्रियिक शरीर, अंगोपांग बन्धन संघात, इस नारकषट्कके बिना एक सौ इकतीसका सत्त्व  
होता है। किसीके पूर्वोक्त सतरह, नरकायु, उच्चगोत्र इन उन्नीसके बिना एक सौ उनतीसका  
सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त उन्नीस और मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वीके बिना एक सौ  
सत्ताईसका सत्त्व होता है। इस प्रकार ये दस स्थान बद्धायुके जानना। अबद्धायुके केवल  
मुज्यमान आयुकी ही सत्ता होती है, बध्यमान आयुकी सत्ता नहीं होती। अतः पूर्वोक्त सत्त्वमें २५  
एक-एक बध्यमान आयु हीन करनेसे अबद्धायुके भी दस स्थान होते हैं। उनमें-से दो पुनरुक्त  
स्थान घटानेपर मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थान होते हैं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक  
जीवके एक कालमें उक्त प्रकारसे प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है। इससे भिन्न प्रकारसे  
कभी भी नहीं पायी जाती।

अब इन अठारह स्थानोंके पचास भंग परमगुरुके उपदेशानुसार कहते हैं—

जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया है वह मिथ्यादृष्टि मनुष्य वेदक सम्यक्त्वको  
ग्रहण करके असंयत गुणस्थानवर्ती होकर केवली श्रुतकेवलीके पासमें सोलह भावनाओंके ३०



नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कु । मिदो दे भंगमेके दोडे बध्यमानेतर “अमः” तिर्यग्मनुष्यायु-  
ष्यनप्प भुज्यमानमनुष्यायुष्यंगसंयतसम्यग्दृष्टिगे तीर्थबंधप्रारंभं नियमदिदमित्तेके दोडे  
तिथ्यपरबंधप्रारंभया णरा केवळिदुगते एंव नियममुंठप्पुदरिदं । बध्यमानदेवायुष्यनप्प मनुष्याऽ-  
संयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळ्ळे सम्यग्दर्शनच्युतियिल्ल । भुज्यमाननारके बध्यमानमनुष्यायुष्यं  
१ मिथ्यादृष्टियल्लनेके दोडे षण्मासावशेषमागुत्तिरलु बद्धमनुष्यायुष्यंगे गर्भावतरणकल्याणमुंठप्पु-  
दरिदमदु कारणमागि भंगमो दे सिद्धमक्कु । मा जीवं नारकनागि पर्यामिनेरेवने नारकं तम्हूर्त-  
कालपर्यंतं मिथ्यादृष्टियागिद हुंमव द्वावप्पनप्पुर्दरिदं । भुज्यमाननरकायुष्यनल्लवितरतिर्यग्मनुष्य-  
देवायुष्यंगळु सूहं रहितमागि नूर नाल्वत्तद्दु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमिदो दे भंगं । संदृष्टिः—

तिर्यग्देवायुरभावात्षट्चत्वारिंशच्छतं सत्त्वस्थानं भवति । (१) अथ तु भंगः बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुर्भुज्यमान-  
१० मनुष्यायुः संयतयोस्तीर्थबंधप्रारंभभावात्, (२) बध्यमानदेवायुर्मनुष्यासंयतादिवतुर्णां सम्यग्दर्शनप्रनुत्प-  
भावात् । (३) भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुषोमिथ्यादृष्टिर्नस्ति कुतः ? षण्मासावशेषे संभवतीर्थगतस्य  
तदा गर्भावतरणकल्याणसद्भावात् मिथ्यादृष्टित्वाघटनाच्चैव एव । स एव जीवो नारको भूत्वा पर्यामिनेरेव-  
मुंहुतं मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा तिष्ठति तस्यावद्भागुल्लत्वाद्भुज्यमानायुष्यादितरेषामभावात्षट्चत्वारिंशच्छतं सत्त्वस्थानं  
भवति । तत्रापि भंग एक एव । संदृष्टिः—

१५ द्वारा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ कर तीर्थंकरकी सत्तावाला होकर मरणकाल आनेपर  
भुज्यमान आयुमें एक अन्तमुंहुतं शेष रहनेपर मिथ्यादृष्टि हुआ । उस जीवके तिर्यचायु और  
देवायुका अभाव होनेसे एक सौ छियालीस प्रकृतिस्वरूप सत्त्व स्थान होता है । यहाँ भंग  
एक ही होता है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जिस असंयत नम्यग्दृष्टी मनुष्यने  
तिर्यचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता ।  
२० और जिसने देवायुका बन्ध कर लिया है वह असंयत आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य  
सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वमें नहीं आता । तथा भुज्यमान नरकायु और बध्यमान  
मनुष्यायु मिथ्यादृष्टि नहीं होता क्योंकि जिसके तीर्थंकरकी सत्ता है ऐसा नारकी नरकायुके  
छह मास शेष रहनेपर उसका गर्भावतरण कल्याणक होता है तब वह सम्यक्त्वसे च्युत  
होकर मिथ्यादृष्टि नहीं होता । अतः एक सौ छियालीसके सत्त्वमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्य-  
२५ मान नरकायु यह एक ही भंग होता है । तथा अबद्धायुके भुज्यमान एक आयुका सत्त्वके  
सिवाय अन्य आयुका सत्त्व सम्भव नहीं है अतः देवायु, मनुष्यायु, तिर्यचायुके बिना एक सौ  
पैंतालीसका सत्त्वस्थान होता है । उसमें भी भुज्यमान नरकायु यह एक ही भंग होता है ।  
क्योंकि वही भुज्यमान नरकायु तथा तीर्थंकरकी सत्तावाला मनुष्य जब मरकर नरकमें  
उत्पन्न होता है तब उसके निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें एक अन्तमुंहुतं पर्यन्त मिथ्यादृष्टिपना  
३० रहता है । उस अवस्थामें अबद्धायु होनेसे भुज्यमान एक नरकायुके सत्त्वके सिवाय अन्य  
तीन आयुका सत्त्व न होनेसे एक सौ पैंतालीसका सत्त्व होता है, अन्यके नहीं होता ।

१. बद्धतिर्यग्मनुष्यायुष्यदोलु तीर्थसत्त्वं दोरेकोल्लदेंदुमुंदे तावे पेलदपरप्पुदरिदमित्तियुमदे तात्पर्यं ।

२. ब<sup>०</sup> दृष्टिवा भावावेकभंगमेव । स एव जीवो ।

|    |     |
|----|-----|
| ब  | १४६ |
|    | १   |
| अब | १४५ |
|    | १   |

मत्तं द्वितीयबध्यमानायुस्थानदोळु चतुर्गतिगळ विवक्षित भुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्ल-  
वितरायुर्द्वयमुं तीर्थमुमितु मूहं रहितमागि नूरनाल्वतट्टु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु पन्नेरडु भंगंगळप्पु-  
वदे तें दोडे भुज्यमाननारकं बध्यमानतिर्यंगायुष्यनुं १ । भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं  
१ । भुज्यमानतिर्यचं बध्यमाननारकायुष्यनु १ । भुज्यमानतिर्यचं बध्यमानतिर्यंगायुष्यनु १ ।  
भुज्यमानतिर्यचं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १ । भुज्यमानतिर्यचं बध्यमानदेवायुष्यनु १ । भुज्य- ५  
मानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु १ । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्यंगायुष्यनु १ । भुज्यमान-  
मनुष्यं बध्यमानमनुष्यनु १ । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवायुष्यनु १ । भुज्यमानदेवं बध्यमान-  
तिर्यंगायुष्यनु १ । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यनु १ मे दितु द्वादश भंगंगळप्पुबु । संदृष्टिः—

|          |    |    |    |    |    |    |   |    |   |    |    |    |
|----------|----|----|----|----|----|----|---|----|---|----|----|----|
| बध्यमान  | ति | म  | न  | ति | म  | दे | न | ति | म | दे | ति | म  |
| भुज्यमान | ना | ना | ति | ति | ति | ति | म | म  | म | म  | दे | दे |

|    |     |
|----|-----|
| ब  | १४६ |
|    | १   |
| अब | १४५ |
|    | १   |

पुनः द्वितीयं बध्यमानायुःस्थानं चतुर्गतिविवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयाच्छेषायुर्द्वयतीर्थाभावा-  
त्पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिकं । तत्र भंगाः भुज्यमाननारकबध्यमानतिर्यंगायुः १ भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुः २  
२ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमाननरकायुः ३ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानतिर्यंगायुः ४ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुः ५  
५ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानदेवायुः ६ भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननारकायुः ७ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यंगायुः  
८ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानमनुष्यायुः ९ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुः १० भुज्यमानदेवबध्यमानतिर्यंगायुः  
११ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुश्चेति १२ द्वादश भवति । १०

बद्धायुका दूसरा स्थान चारों आयुओंमें-से भुज्यमान और बध्यमान दो आयुके सिवाय १५  
शेष दो आयु और तीर्थकर इन तीनके बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंके सत्त्वरूप होता  
है । वहाँ बारह भंग इस प्रकार हैं—१ भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यचायु, २ भुज्यमान  
नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, ३ भुज्यमान तिर्यचायु बध्यमान नरकायु, ४ भुज्यमान तिर्यचायु  
बध्यमान तिर्यचायु, ५ भुज्यमान तिर्यचायु बध्यमान मनुष्यायु, ६ भुज्यमान तिर्यचायु  
बध्यमान देवायु, ७ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु, ८ भुज्यमान मनुष्यायु बध्य- २०  
मान तिर्यचायु, ९ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु, १० भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान  
देवायु, ११ भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यचायु, १२ भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु ।

ई द्वादश भंगगळोळु भुज्यमानतिर्यंगायुष्यमुं बध्यमानतिर्यंगायुष्यभंगमुं भुज्यमान-  
मनुष्यायुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यभंगमुमिवेरहुं पुनरुक्तभंगगळु । भुज्यमानतिर्यचं बध्यमान-  
नरकायुष्यनुं १ । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनुं १ । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्यंगा-  
युष्यनु १ । भुज्यमानदेवं बध्यमानतिर्यंगायुष्यनुं १ । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १  
५ मित्यहुं भंगगळु समगळु । पुनरुक्तसमविहीनगळु भंगगळपुवरिदं शेषभुज्यमाननारकं  
बध्यमानतिर्यंगायुष्यनु १ । भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १ । भुज्यमानतिर्यचं बध्य-  
मानमनुष्यायुष्यनु १ । भुज्यमानतिर्यचं बध्यमानदेवायुष्यनु १ । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमान-  
देवायुष्यनु १ मैवदु ५ भंगगळगे ग्रहणमक्कुं । संदृष्टिः—

|          |    |    |    |    |    |
|----------|----|----|----|----|----|
| बध्यमान  | ति | म  | म  | दे | दे |
| भुज्यमान | ना | ना | ति | ति | म  |

|          |    |    |    |    |    |    |    |    |   |    |    |    |
|----------|----|----|----|----|----|----|----|----|---|----|----|----|
|          | १  | १  | ०  | ०  | १  | १  | ०  | ०  | ० | १  | ०  | ०  |
| बध्यमा.  | ति | म  | ना | ति | म  | दे | ना | ति | म | दे | ति | म  |
| भुज्यमा. | ना | ना | ति | ति | ति | ति | म  | म  | म | म  | दे | दे |

एतेषु भुज्यमानबध्यमानतिर्यंगायुर्भुज्यमानबध्यमानमनुष्यायुषोः पुनरुक्तत्वात् भुज्यमानतिर्यग्बध्यमान-  
१० नरकायुः १-भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुः २-भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यंगायुः ३-भुज्यमानदेवबध्यमान-  
तिर्यंगायुः ४-भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुषां समत्वाच्च शेषाः पंचैव ग्राह्याः । संदृष्टिः—

|       |    |    |    |    |    |
|-------|----|----|----|----|----|
| बध्य  | ति | म  | म  | दे | दे |
| भुज्य | ना | ना | ति | ति | म  |

इस प्रकार बारह भंग होते हैं । इनमें-से भुज्यमान तिर्यचायु बध्यमान तिर्यचायु तथा  
भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु ये दो भंग पुनरुक्त हैं क्योंकि दोनों भंगोंमें भुज्यमान  
और बध्यमान प्रकृति एक-सी है । शेष दशमें-से भुज्यमान तिर्यचायु बध्यमान नरकायु  
१५ और भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यचायु ये दो भंग समान हैं क्योंकि दोनोंमें ही नरकायु  
और तिर्यचायुकी सत्ता है । इसलिए दोनोंमें-से एक ही भंग लेना । इसी प्रकार भुज्यमान  
मनुष्यायु बध्यमान नरकायु और भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, इन दो भंगोंमें  
समानता है । भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यचायु और भुज्यमान तिर्यचायु बध्यमान  
मनुष्यायु इनमें भी समानता है । भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यचायु और भुज्यमान  
२० तिर्यचायु बध्यमान देवायुमें समानता है, भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु और भुज्यमान  
मनुष्यायु बध्यमान देवायुमें समानता है । अतः एक एक ही भंग गिननेसे पाँच भंग जानना ।

अवध्यमान द्वितीयसत्त्वस्थानबोळु अवध्यायुष्यनं कुरुत्तु विवक्षितायुष्यमो वं कळवु नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्त्वस्थानवक्के भुज्यमाननारकतिर्यग्मनुष्यदेवनुर्मे ब नाल्कु भंगळप्पु-वल्लि प्रत्येकमितरायुस्त्रयमुं तीर्थमुं रहितमाणि नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुं । संदृष्टि :—

|          |          |
|----------|----------|
| बध्यमान  | १४५<br>५ |
| अवध्यमान | १४४<br>४ |

तृतीयबध्यमानायुःस्थानबोळु स्वामियप्प मिथ्यादृष्टिजीवं मुन्नमप्रमत्तगुणस्थानमं पोद्दियाहारक चतुष्टयमनुपाज्जिसर्व सत्त्वरहितं मेणऽप्रमत्तगुणस्थानमं पोद्दिवोनाहारकचतुष्टय-मनुपाज्जिसि क्रमदिदं मिथ्यादृष्टिधागियाहारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडितसत्त्वरहितजीवं मेणु मनुष्यं बद्धनरकायुष्यं गृहीतवेदकसम्यक्त्वसंयतसम्यग्दृष्टिकेवलद्वयोपांतबोळु षोडशभावना-परिणतं तीर्थंकरपुण्यबंधं प्रारंभिसि तीर्थंकर सत्कर्मनाणि मरणकालबोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्य-मंतर्मुहूर्तमात्रावशेषमागुत्तिरलु द्वितीयादितृतीयपृथिव्यपर्यंतं जिगमिषुमिथ्यादृष्टिधागि वत्तिप-

तदवध्यमानायुःस्थानं तदेकं बद्धायुविना चतुश्चत्वारिंशच्छतप्रकृतिकं । तस्य भंगाश्चतुर्गतिभुज्यमाना-युर्मोदाच्चत्वारः । संदृष्टिः—

|      |          |
|------|----------|
| बध्य | १४५<br>५ |
| अव   | १४४<br>४ |

कश्चिन्मिथ्यादृष्टिः प्रागप्रमत्तगुणस्थानं गत्वाऽनुपाजिताहारकचतुष्टयतया तदसत्त्वाऽथवा उपाज्य क्रमेण मिथ्यादृष्टिर्भूत्वोद्विल्य तदसत्त्वः सन् मनुष्यो बद्धनरकायुर्गृहीतवेदकसम्यक्त्वोऽसंयतः केवलद्वयोपांते षोडश-भावनाभिस्तीर्थकरपुण्यबंधं प्रारभ्य तत्सकमा भूत्वा मरणे भुज्यमानायुष्यंतर्मुहूर्तऽवशिष्टे द्वितीयतृतीयपृथ्वीर्ग-

अवध्यायुके दूसरे स्थानमें एक सौ पैतालीसमें-से एक बध्यमान आयुकी सत्ता घटानेसे एक सौ चवालीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होता है । इसमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग जानना ।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव पहले अप्रमत्त गुणस्थानमें गया किन्तु वहाँ उसने आहारक चतुष्कका बन्ध नहीं किया । अतः उसके आहारक चतुष्कका सत्त्व नहीं है । अथवा अप्रमत्त गुणस्थानमें आहारक चतुष्कका बन्ध करके पीछे मिथ्यादृष्टि होकर आहारक चतुष्ककी उद्वेलना कर दी । अतः उसके भी आहारक चतुष्कका सत्त्व नहीं रहा । ऐसा मनुष्य पहले नरकायुका बन्ध करके पीछे वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करके असंयत गुणस्थानवर्ती होकर केवली श्रुतकेवलीके निकट सोलह भावनाके द्वारा तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करके तीर्थंकर-

१. ब अवध्यमानद्वितीयसत्त्वस्थाने चाबद्धायुष्कं प्रति विवक्षितैकंकायुरभावाच्चतुश्चत्वारिंशत्सतम् । तद्भगाश्चत्वारः ।

- निर्दोहे भंगमक्कु । मातंगेतिर्यगायुष्यमुं देवायुष्यमुमाहारकचतुष्टयमुमितारं प्रकृतिरहितमागि  
नूरनात्वत्तेरडु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमितरबद्धतिर्यगमनुष्यायुष्यरोळु तीर्थसत्त्वंदोरकोळळु ।  
बद्धदेवायुष्यं तीर्थकरसत्कर्मनादोडे सम्यक्त्वच्युतियिल्ल । मनुष्यनल्लवितरंगतित्रयबोळु तीर्थकर-  
बन्धप्रारंभमुमितल्लपुदरिदं नरकगतियोळं देवगतियोळं तीर्थकरबन्धमसंयतरुगळोळं तु पेळल्-  
५ पट्टुदेनल्वेड । तीर्थबन्धप्रारंभं मनुष्यगतियोळ्यक्कुं । सम्यक्त्वच्युतियिल्लविहीडुत्कृष्टदिवं  
तीर्थनिरंतरबन्धाद्धे । अंतर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमित-  
मक्कुमपुदरिदं । अल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु मनुष्यायुष्यमं कळ्ळु भुज्यमाननारकं द्वितीय  
तृतीय पृथ्व्योळपय्यामिकालदोळु मिथ्यादृष्टियपुदरिदमातनोळु तिर्यगायुष्यमुं मनुष्यायुष्यमुं  
देवायुष्यमुमाहारकचतुष्टयमुं रहितमागि नूरनात्वत्तोडु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमदोदे भंगमक्कुं ।  
१० संदृष्टिः—

- मिष्यमानमिथ्यादृष्टिः स्यात् तस्य तृतीयं बध्यमानायुःस्थानं तिर्यग्देवायुराहारकचतुष्काभावाद्दानत्वारि-  
शच्छतकं भवति । तस्य भंग एक एव बद्धतिर्यगमनुष्यायुष्ययोस्तीर्थसत्त्वाभावात् । बद्धदेवायुष्ये तत्सत्त्वेऽपि  
सम्यक्त्वप्रच्युत्तभावाच्च । तहि मनुष्य एव तत्प्रारंभे, देवनारकासंयतेऽपि तद्वन्धः कथं ? सम्यक्त्वाप्रच्युता-  
वुत्कृष्टतन्निरंतरबन्धकालस्यांतर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रत्वेन तत्रापि संभ-  
१५ वात् । तदबद्धायुःस्थानं मनुष्यायुरहितमिति तिर्यगमनुष्यदेवायुराहारकचतुष्काभावादेकचत्वारिंशच्छतकं । तस्य  
द्वितीयतृतीयपृथ्व्यपर्याप्तनारकमिथ्यादृष्टेरेव संभवाद् भंग एकः । संदृष्टिः—

- की सत्तासहित हो । तथा भुज्यमान आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर दूसरे-तीसरे नरकमें  
जानेके योग्य मिथ्यादृष्टि हो । उस जीवके तीसरा बद्धायु स्थान तिर्यचायु, देवायु और  
आहारक चतुष्क बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप होता है । उसमें भंग एक ही होता है ।  
२० क्योंकि जिसने तिर्यचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थकरका बन्ध नहीं  
होता । और जिसने देवायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थकरकी सत्ता हो सकती है किन्तु  
वह सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि नहीं होता ।

शंका—यदि मनुष्य ही तीर्थकरके बन्धका प्रारम्भ करता है तो देव और नारक  
असंयत सम्यग्दृष्टीके तीर्थकरका बन्ध कैसे कहा है ?

- समाधान—तीर्थकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ तो मनुष्यके ही होता है । पीछे यदि  
२५ सम्यक्त्वसे भ्रष्ट न हो तो तीर्थकर प्रकृतिका उत्कृष्ट निरन्तर बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक  
आठ वर्षहीन दो पूर्व कोटि अधिक तैत्तीस सागर प्रमाण होनेसे देव नारकी असंयत सम्य-  
ग्दृष्टीके भी उसका बन्ध सम्भव है ।

- तीसरा अबद्धायु स्थान तीन आयु और आहारक चतुष्क बिना एक सौ इकतालीस  
३० प्रकृति रूप है क्योंकि इसमें मनुष्यायुका भी सत्त्व नहीं है । सौ तीर्थकरकी सत्तावाला मनुष्य  
जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया था मिथ्यादृष्टि होकर मरग करके दूसरे-तीसरे नरकमें  
जाकर अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि ही रहता है । उसके भुज्यमान नरकायु रूप एक ही भंग  
होता है । चौथा बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके बिना शेष दो आयु,  
आहारक चतुष्क और तीर्थकरका अभाव होनेसे एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप होता है ।

|          |     |
|----------|-----|
| बध्यमान  | १४२ |
|          | १   |
| अबध्यमान | १४१ |
|          | १   |

चतुर्थबध्यमानायुस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वयमु-  
माहारकचतुष्टयमुं तीर्थकरमुं रहितमागि नूर नाल्वत्तो दु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु मुपेळव द्वादश  
भंगगळोळु पुनरुक्तसमभंगविहीन पंचभंगगळपु ५ वल्लियुमबद्धायुष्यनं कुरुत्तु गतिचतुष्टयंगळो-  
ळितरायुख्यमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु चतुर्गतिजर  
भेददिवं नालकुं भंगगळपु ५ । संहृष्टिः—

|          |     |
|----------|-----|
| बध्यमान  | १४१ |
|          | ५   |
| अबध्यमान | १४० |
|          | ४   |

पंचमबध्यमानायुस्थानदोळु विवक्षित भुज्यमान बध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वयमं  
आहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमिते दु प्रकृतिगळु रहितमाव नूरनाल्वत्तु प्रकृति-  
सत्त्वस्थानदोळुमुं पेळव द्वादशभंगगळोळु पुनरुक्तसमविहीनपंचभंगगळपु ५ वल्लि अबद्धायुष्यनं  
कुरुत्तु गतिचतुष्टयंगळोळितरायुख्यमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितो भत्तु

|   |     |
|---|-----|
| ब | १४२ |
|   | १   |
| अ | १४१ |
|   | १   |

चतुर्थ बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्म्यामितरायुर्द्वयाहारकचतुष्कलीर्थाभावादेकचत्वा- १०  
रिशच्छतकं । तत्र प्रागुक्तद्वादशभंगेषु पुनरुक्तसमभंगान्विहाय पंच भंगा भवन्ति । तदबद्धायुःस्थानं इतरायुस्त्र-  
याहारकचतुष्कलीर्थाभावाच्चत्वारिशच्छतकं । तत्र चातुर्गतिकभेदाद् भंगाश्चत्वारः । संहृष्टिः—

|   |     |
|---|-----|
| ब | १४१ |
|   | ५   |
| अ | १४० |
|   | ४   |

पंचमं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्म्यामितरायुर्द्वयाहारकचतुष्कलीर्थसम्यक्त्वप्रकृ-  
त्यभावाच्चत्वारिशच्छतकं । तत्र प्राग्बद्धायाः पंच । तदबद्धायुःस्थानं एकान्नचत्वारिशच्छतकं । तत्र

वहाँ पूर्वोक्त बारह भंगोंमें-से पुनरुक्त सात भंगोंको छोड़ पाँच भंग होते हैं । चौथा अबद्धायु- १५  
स्थान भुज्यमान बिना तीन आयु आहारक चतुष्क तीर्थकरके बिना एक सौ चालीस प्रकृति-  
रूप होता है । उसमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं ।

पाँचवाँ बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके सिवाय शेष दो आयु  
आहारक चतुष्क, तीर्थकर और सम्यक्त्व मोहनीयका अभाव होनेसे एक सौ चालीस  
प्रकृतिरूप है । उसमें पूर्वोक्त बारह भंगोंमें-से पाँच भंग होते हैं । पाँचवाँ अबद्धायुस्थान

प्रकृतिरहितमाव नूरमूवत्तो भत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु चतुर्गतिजरभेववि नालकु भंगंगळप्पुवु ।  
संदृष्टिः—

|          |          |
|----------|----------|
| बध्यमान  | १४०<br>५ |
| अबध्यमान | १३९<br>४ |

षष्ठबध्यमानस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुद्वयमल्लवितरायुद्वितयमुमाहारक-  
चतुष्टयमुं तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं मितो भत्तं प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूर मूवत्तो-  
५ भत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लि पुनरुक्तसमविहोनचतुर्गतिसंबंधि भंगंगळप्पु ५ मप्पुवल्लि  
अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु चतुर्गतिर विवक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लवितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं  
तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं मितु वडाप्रकृतिरहितमागि नूर मूवत्ते दु प्रकृतिसत्त्वस्थान-  
दोळु चतुर्गतिजर भेवविदं नालकु भंगंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

|          |          |
|----------|----------|
| बध्यमान  | १३९<br>५ |
| अबध्यमान | १३८<br>४ |

चातुर्गतिकभेदाद्भंगारचत्वारः । संदृष्टिः—

|   |          |
|---|----------|
| ब | १४०<br>५ |
| अ | १३९<br>४ |

१० षष्ठं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुस्मामितरायुद्विकाहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिधा-  
भावादेकान्तचत्वारिंशच्छतकं । तत्र प्राग्बद्धाः पंच । तदबद्धायुःस्थानमष्टविंशच्छतकं । तत्र चातुर्गतिक-  
भेदाद्भंगारचत्वारः । संदृष्टिः—

|   |          |
|---|----------|
| ब | १३९<br>५ |
| अ | १३८<br>४ |

पूर्वोक्त एक सौ चालीसमें-से बध्यमान आयुके बिना एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप होता है ।  
उसमें चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं ।

१५ छठा बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके बिना शेष दो आयु आहारक-  
चतुष्क, तीर्थकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीयका अभाव होनेसे एक सौ उनतालीस  
प्रकृतिरूप है । उसके भंग पूर्ववत् पाँच हैं । छठा अबद्धायु स्थान पूर्वोक्त एक सौ उनतालीसमें-  
से बध्यमान आयु बिना एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप है । भंग चार आयुकी अपेक्षा चार

सप्तमबध्यमानायुःस्थानदोळु देवद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिबेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगे भुज्यमान-  
तिर्यंगायायुर्बध्यमानमनुष्यायुष्यमुमल्लदितरनारकदेवायुर्द्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुं  
सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं यितु पन्नोदु प्रकृतिरहितमाणि नूर मूवत्तेळु प्रकृति-  
सत्त्वस्थानदोळु भुज्यमानैकेंद्रियविकलत्रयविशिष्टतिर्यंगायायुष्यं बध्यमानतिर्यंगायायुष्यनुं भुज्यमान-  
तिर्यंगायायुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमे बरडुं भंगंगळोळु पुनरुक्तभंगमं कळबोडो वे भंगमक्कु- ५  
मल्लि अबद्धायुष्यंगे विरक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुं  
सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं पन्नरडु प्रकृतिरहितमाणि नूरमूवत्तार प्रकृतिसत्त्व-  
स्थानदोळु :-

उब्बेल्लददेवदुगे विदियपदे चारि भंगया एवं ।

सपदे पढमो विदियो सो चेव नरेसु उप्पण्णे ॥३६८॥

१०

वेगुब्बदुय रहिदे पंचिदियतिरियजादिसुववण्णे ।

सुरछब्बंधे तदियो नरेसु तब्बंधणे तुरियो ॥३६९॥

उद्बेल्लनमं देवद्विकक के माडिबेकेंद्रियविकलत्रयमिथ्यावृष्टि द्वितीयपदमप्य अबद्धायुष्यस्था-  
नदोळु ई प्रकारं विवं नात्कु भंगंगळधुवाव प्रकारं विवं दोड देवद्विकमनुद्बेल्लनमं माडिबेकेंद्रिय-  
विकलत्रय भवदोळु प्रथम भंगमक्कुमा जीवं मनुष्यनाणि पुट्टि अपर्याप्तकालदोळु “ओराळे वा १५  
मिस्ते ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं । मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरवे अत्थि ॥

एवं नियममुं टप्पुदरिदमा मिथ्यावृष्टि सुरचतुष्कमं कट्टनप्पुदरिवमल्लि द्वितीयभंगमक्कुमे-  
केंदोडे संख्यैकत्वमुं प्रकृतिभेवमुं टप्पुदरिवं वैक्रियिकाष्टकमनुद्बेल्लनमं माविदंतप्य एकेंद्रियविक-

सप्तमं बध्यमानायुःस्थानमुद्बेल्लितदेवद्विककेंद्रियविकलत्रयजीवस्य भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुषी  
त्यक्त्वा नारकदेवायूराहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकाभावात्सर्वात्रिच्छतकं । तत्र भंगः भुज्यमानैकेंद्रिय- २०  
विकलत्रयविशिष्टतिर्यग्बध्यमानतिर्यंगायायुष्कः भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति द्वयोः पुनरुक्तमेकं  
विनैकः ॥ ३६६-३६७ ॥

होते हैं । सातवाँ बद्धायुस्थान जिनके देवद्विककी उद्बेल्लना हुई है ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय  
जीवोंके भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु बिना शेष देवायु नरकायु आहारक चतुष्क,  
तीर्थकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, देवद्विकका अभाव होनेसे एक सौ सैंतीस २५  
प्रकृतिरूप है । वहाँ भंग भुज्यमान एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय सम्बन्धी तिर्यंचायु बध्यमान  
तिर्यंचायु तथा भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु ये दो होते हैं । उनमेंसे भुज्यमान  
तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु पुनरुक्त है । अतः एक ही भंग है ॥३६६-३६७॥

१. यिल्लि संख्यैकत्वमे ते दोडे आ जीवं मनुष्यनाणि पुट्टि अल्लि अपर्याप्तकाल दोळु सुरचतुष्कमं कट्टनप्पुदरि  
पूर्वदल्लि उद्बेल्लनमं माडिद सुरद्विकक के तात्कालिकसत्त्वं घटिसदु । पूर्वदल्लि कट्टिद वैक्रियिकाष्टक ३०  
सत्त्वमुं टप्पुदरि संख्यैकत्वमुं । प्रकृतिभेदमे ते दोडे अल्लि तिर्यंगायायुष्यं भुज्यमानमिल्लि मनुष्यायुष्यमेव



लत्रयजीवं बद्धतिर्यगायुष्यं पंचेन्द्रियतिर्यग्जातियोऽब्दु पुट्टि पर्याप्तिर्यदं मेले सुरषट्कमं कट्टुत्तं विरलु नरकद्विकमनगळकट्टुवनल्लनप्पुदरिदल्लि संख्यैकत्वमुं प्रकृतिभेदमुमुट्टपुदरिदं तृतीयभंगमक्कु मा वैक्रियिकाष्टकमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवं बद्धमनुष्यायुष्यं मनुष्यरोऽब्दु बंदु पुट्टि पर्याप्तिर्यदं मेले सुरषट्कमं कट्टुत्तं विरलु संख्यैकत्वमुं प्रकृतिभेदमुमुट्टपुदरिदं चतुर्थभंगमळकुमे विनु नाल्लु भंगमळपुवु । संदृष्टि :—

|        |          |
|--------|----------|
| बध्य०  | १३७<br>१ |
| अबध्य० | १३६<br>४ |

अष्टमबध्यमानायुःस्थानदोऽब्दु नारकषट्कमनुद्वेल्लनमं माडिदंतपेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगे भुज्यमानतिर्यगायुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्य मल्लदितरसुरनारकायुर्द्वयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुं

तद्वितीयेऽवधायुःस्थाने षट्त्रिंशच्छतकोद्वेल्लितदेवद्विकस्यैकेंद्रियविकलत्रयमिध्यादृष्टेः तस्मिन्नेव भवे भंग एकः । पुनस्तस्यैव मनुष्येषूपन्नस्यापर्याप्तकाले मिध्यादृष्टित्वात्सुरचतुष्टकस्याबंधाद् द्वितीयः, संख्यैकत्व-  
१० प्रकृतिभेदयोस्तद्भावात् । पुनस्तस्यैव वैक्रियिकाष्टके उद्वेल्लिते पंचेन्द्रियतिर्यग्जातावुत्पन्नस्य पर्याप्तिरूपरि सुरषट्कबंधेन नरकद्विकस्याबंधात्तृतीयः । मनुष्येषूपन्नस्य सुरषट्कबंधे चतुर्थः । एवं चत्वारो भंगा भवन्ति ।

सातवाँ अबधायुस्थान एक सौ छत्तीस प्रकृतिरूप है । जिसके देवद्विककी उद्वेल्लना हुई है ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय मिध्यादृष्टि जीवके उसी पर्यायमें आहारक चतुष्टक, तीर्थकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, देवगति, देवानुपूर्वी तथा भुज्यमान तिर्यचायु  
१५ बिना शेष तीन आयु इन बारहके बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व पाया जाता है । अतः एक भंग तो यह हुआ । पुनः वही देवद्विककी उद्वेल्लना करनेवाला एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय मिध्यादृष्टि जीव मरकर मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न हुआ । वहाँ अपर्याप्त अवस्थामें मिध्यादृष्टि होनेसे सुरचतुष्टका बन्ध नहीं होता । अतः पूर्वोक्त नौ और भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु, इस तरह बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व होता है यह दूसरा भंग है । दोनोंमें  
२० संख्या समान होते हुए भी प्रकृतिभेद होनेसे भंग है । पुनः जिसके वैक्रियिक अष्टककी उद्वेल्लना हुई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यचमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर्याप्त अवस्थामें देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, बन्धन, संघात इस सुरषट्कका बन्ध किया और नरकगति नरकानुपूर्वीका बन्ध नहीं किया । वहाँ आहारक चतुष्टक, तीर्थकर, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, नरकगति, नरकानुपूर्वी ये नौ  
२५ और भुज्यमान तिर्यचायु बिना शेष तीन आयु इन बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व पाया जाता है । यह तीसरा भंग है । पुनः वही जीव मरकर मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न

भेदविदं ॥ सुरगति सुरगत्यानुपूर्व्यं वैक्रियिक तदंगोपांगबंधनसंघातरूप सुरषट्क । बंधन संघात द्वयसहित वैक्रियिकषट्क मुपेत्य पदिमूद्वेल्लनप्रकृतिगळेऽब्दु वैक्रियिकवैक्रियिकांगोपांगद्वयोऽब्दु वैक्रियिकबंधनसंघात-  
मंतर्भावि ये बुद्धयः ॥

सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं नारकषट्कमुमंतु सप्तदशप्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरभूव-  
त्तोदु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानतिर्य्यंगायायुष्यं भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमान-  
मनुष्यायुष्यनुमेवं भंगद्वयदोळु पुनरुक्तभंगमनोदं कळोदोडोदे भंगमक्कुमल्लि अबद्धायायुष्यनं कुरुतं  
भुज्यमानतिर्य्यंगायायुष्यमल्लदितरमनुष्यायुष्यं देवायुष्यं नारकायुष्यमाहारकचतुष्टयं तीर्थं सम्यक्त्व-  
प्रकृति मिश्रप्रकृति सुरद्विक नारकषट्कमुमंतुष्टादश प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरभूवत्तु प्रकृतिसत्त्व- ५  
स्थानमक्कुमल्लि:—

नारकछक्कुव्वेल्ले आउगवंधुज्झिदे दुभंगा हे ।

इगिविगलेसिमिभंगो तम्मि णरे विदियमुप्पण्णे ॥३७०॥

नारकषट्कमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगवद्धायायुष्यंगेरडु भंगंगळपुव्वेतोडोडे-  
एक विकलत्रयद स्वस्थानदोळोदु भंगमक्कुमा जीवमनुष्यायुष्यमं कट्टि मनुष्यरोळु वंडु पुट्टि १०  
तदभवप्रथमकालदोळु तावन्मात्र प्रकृतिसत्त्वनपुदरिदमं मनुष्यायुष्यप्रकृति भेदविदमं द्वितीय  
भंगमक्कुं । संदृष्टि—

संदृष्टि:—

|   |     |
|---|-----|
| ब | १३७ |
|   | १   |
| अ | १३६ |
|   | ४   |

अष्टमे बध्यमानायाः स्थाने नारकषट्के उद्वेल्लिते एकेंद्रियविकलत्रयजीवस्य भुज्यमानतिर्य्यंबध्यमानमनु-  
ष्यायुष्यमितरसुरनारकायुराहारकचतुष्टकीर्य्यसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकनारकषट्काभावादेकत्रिंशच्छतके भंगः भुज्य- १५  
मानबध्यमानतिर्य्यंगायायुष्यभुज्यमानतिर्य्यंबध्यमानमनुष्यायुष्यश्चेति भंगद्वये पुनरुक्तमेकं त्यक्त्वैकः ॥३६८-३६९॥

हुआ । वहाँ सुरषट्कका बन्ध होनेपर पूर्वोक्त नौ और भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु,  
इस प्रकार बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व होता है । यह चौथा भंग है । इस प्रकार  
चार भंग हुए । यहाँ सब भंगोंमें संख्या १३६ समान है अतः स्थान एक ही कहा है । और  
प्रकृति बदलनेसे चार प्रकार पाये जाते हैं अतः भंग चार कहे हैं । २०

आठवाँ अबद्धायास्थान नारकषट्ककी द्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय उजीवके  
होता है । सो भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु बिना देव नरक दो आयु, आहारक  
चतुष्टक, तीर्थकर, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानु-  
पूर्वी, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, बन्धन संघात ये नारकषट्क, इन सतरह बिना एक सौ  
इकतीस प्रकृतिरूप जानना । वहाँ भंग दो भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु, भुज्यमान २५  
तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु । इनमें-से भुज्यमान तिर्यंच बध्यमान तिर्यंच पुनरुक्त है । अतः  
एक ही भंग है ॥३६८-३६९॥

आठवाँ अबद्धायास्थान एक सौ तीस प्रकृतिरूप है । उसमें दो भंग हैं । नारकषट्ककी  
द्वेलना किये एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीवके तिर्यंचायु बिना तीन आयु तथा आहारक चतुष्टक

|          |          |
|----------|----------|
| बध्यमान  | १३१<br>१ |
| अबध्यमान | १३०<br>२ |

उच्चैर्गोत्रमनुद्वेलनमं माडिव तेजस्कायिकायुकायिकजीवंगळ नवमबद्धायुष्यसत्व-  
स्थानदोळु भुज्यमानतेजस्काय वायुकाय विशिष्टतिथ्यंगायायुष्यमं बध्यमानतिथ्यंगायायुष्यमुमल्लवितर-  
नारकमनुष्यदेवायुस्त्रितयमुमाहारकचतुष्टयमं तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमु  
नारकषट्कमुमुच्चैर्गोत्रमुमेव हतोभत्तु प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरिपत्तोभत्तु प्रकृतिसत्वस्थान-  
५ दोळु भुज्यमानमं बध्यमानमं तिथ्यंगायायुष्यमप्य तेजोवायुकायिकजीवंगळ भंगमोदेयवकुमदुवुं  
पुनरुक्तभंगमादोडं ग्राह्यमादुवु । अल्लि अबद्धायुष्यनोळाऽऽबद्धायुष्यनोळु पेळुव सत्त्वरहित प्रकृति-  
गळु हतोभत्तु मो जीवनोळु सत्त्वरहितंगळागि नूरिपत्तोभत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमवकुमा तेजोवा-  
युकायिकजीवंगळ स्वस्थानभंगमोदेयवकुमदु पुनरुक्तभंगत्वादिदमग्राह्यमवकु । संदृष्टिः—

|         |                 |
|---------|-----------------|
| बध्यमान | १२९<br>१        |
| अबध्यमा | १२९<br>पुनरुक्त |

तदबद्धायुःस्थाने त्रिशच्छतके भंगः, नारकषट्कोद्वेलितर्केन्द्रियविकलत्रयजीवे एकः । तु—पुनस्तस्मिन्नेव  
१० जीवे मनुष्येषूत्पन्ने प्रथमकाले द्वितीयः । एवं द्वौ भंगौ खलु स्फुटं मनुष्यायुषो भेदात् । संदृष्टिः—

|   |          |
|---|----------|
| ब | १३१<br>१ |
| अ | १३०<br>२ |

उच्चैर्गोत्रोद्वेलिततेजोवातकायिकयोर्नवमं बद्धायुःस्थानं तत्कायविशिष्टभुज्यमानबध्यमानतिथ्यंगायायुष्या-  
मितरायुस्त्रयाहारकचतुष्टयतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकनारकषट्कोच्चैर्गोत्राभावात् एकान्नत्रिशच्छतकं । तत्र  
भुज्यमानबध्यमानतिथ्यंगायायुष्यतेजोवातकायिकभंग एकः । सोऽयं पुनरुक्तोऽपि ग्राह्यः । तदबद्धायुःस्थानमेकान्त-  
त्रिशच्छतकं तत्र तेजोवातयोः स्वस्थानभंग एकः स न ग्राह्यः पुनरुक्तत्वात् । संदृष्टिः—

१५ आदि पन्द्रहके बिना एक सौ तीसका सत्त्व होता है । अतः यह एक भंग हुआ । वही  
एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीव मरकर मनुष्य हुआ । वहाँ अपर्याप्तकालमें मनुष्यायुके बिना  
तीन आयु और आहारक चतुष्क आदि पन्द्रहके बिना एक सौ तीसका सत्त्व पाया जाता है ।  
यह दूसरा भंग हुआ ।

२० नौवाँ बद्धायुस्थान उच्चगोत्रकी उद्वेलना होनेपर तेजकाय वायुकायमें होता है । सो  
पूर्वोक्त एक सौ तीसमें-से उच्चगोत्रका अभाव होनेसे एक सौ उनतीस प्रकृतिरूप होता है ।  
यहाँ भंग एक भुज्यमान तिथ्यंगायायु बध्यमान तिथ्यंगायायु । यह पुनरुक्त है । किन्तु यहाँ कोई अन्य  
भंगका प्रकार न होनेसे इसीको ग्रहण किया है । नौवाँ अबद्धायुस्थान भी एक सौ उनतीस  
प्रकृतिरूप है । अतः बद्धायुस्थानके समान होनेसे पुनरुक्त है । अतः इसका ग्रहण नहीं करना ।

मनुष्यद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिव तेजस्कायिक वातकायिक जीवंगळ वझमबद्धायुष्यसत्व-  
स्थानबोळुचैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिव जीवंगळये पेळव सत्वरहितप्रकृतिगळु हत्तो भत्तुं मनुष्य-  
द्विकमुं कूडिप्पत्तो दु प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरिप्पत्तेळु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्य-  
मानमुं बध्यमानमुं तिर्ध्यगायुष्यमप्प तेजोवायुकायिकजीवन स्वस्थानभंगमो वेयक्कुमदुवुं पुनरुक्त-  
भंगमाबोळं प्राह्यमक्कुं । अल्लि अबद्धायुष्यनोळा बद्धायुष्यनोळु पेळव पिप्पत्तो दु प्रकृतिगळु ५  
सत्वरहितमागि नूरिप्पत्तेळु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुम । तेजोवायुकायिकजीवस्वस्थानभंगमो वे-  
यक्कुमदुवुं पुनरुक्त भंगमप्राह्यमक्कुं । संदृष्टिः—

|          |          |
|----------|----------|
| बध्यमान  | १२७      |
|          | १        |
| अबध्यमान | १२७      |
|          | पुनरुक्त |

ई पेळव सत्त्वस्थानंगळु पविने टरोळं पुनरुक्तसमभंगंगळं कळदु शेषभंगंगळं संख्येयं  
पेळवपरः—

|   |        |
|---|--------|
| ब | १२९    |
|   | १      |
| अ | १२९    |
|   | पुनरु. |

मनुष्यद्विकोद्वेल्लिततेजोवायुकायिकयोदशमं बद्धायुःस्थानं तद्विकेनोच्चैर्गोत्रोद्वेल्लितस्योक्ततदसत्त्वस्था- १०  
भावात्सप्तविंशतिशतकं । तत्रापि भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुष्कतेजोवायुकायिकभंग एकः स च पुनरुक्तोऽपि  
प्राह्यः । तदबद्धायुःस्थानं तदेकविंशतेरभावात्सप्तविंशतिशतकं । तत्र तत्तेजोवायुकायिकस्वस्थानभंग एकः, स  
च पुनरुक्तत्वान्न प्राह्यः । संदृष्टिः—

|        |     |
|--------|-----|
| बध्य   | १२७ |
|        | १   |
| अब     | १२७ |
|        | १   |
| पुनरु. |     |

॥३७०॥ अथोक्ताष्टादशसत्त्वस्थानभंगान् पुनरुक्तसमभंगेभ्यः शेषान् संख्याति—

दसवाँ बद्धायुस्थान मनुष्यद्विककी उद्वेल्लना होनेपर तेजकाय वायुकायके जीवके होता १५  
है । सो पूर्वोक्त एक सौ उनतीसमें-से मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वीके बिना एक सौ सत्ताईस  
प्रकृतिरूप जानना । यहाँ एक ही भंग है । वह पुनरुक्त है फिर भी प्राह्य है । क्योंकि पूर्व  
पुनरुक्त भंग अबद्धायु स्थानमें गभित हो गये थे अतः उनको ग्रहण नहीं किया था । यहाँ  
अबद्धायुस्थानका ही ग्रहण नहीं किया है । अतः पुनरुक्त भंगको ग्रहण किया है ।

दसवाँ अबद्धायुस्थान भी उसी प्रकार एक सौ सत्ताईस प्रकृतिरूप है । सो इस बद्धायु- २०  
स्थान और अबद्धायुस्थानमें संख्या या प्रकृतियोंको लेकर भेद नहीं है । अतः यह स्थान  
ग्रहण नहीं करना ॥३७०॥

विदिये तुरिये पणगे छठे पंचैव सेसगे एककं ।

विदिचउपण छस्सत्तयठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि ॥३७१॥

द्वितीये तुरीये पंचमे षष्ठे पंचैव शेषके एकः । द्वितीयचतुर्थं पंचमषष्ठसप्तमस्थाने चत्वारोऽष्टमे द्वौ ॥

५ द्वितीयचतुर्थपंचमषष्ठबद्धायुश्चतुःसत्त्वस्थानंगळोळु प्रत्येकं पंच पंच भंगंगळप्पुवु । शेषप्रथमतृतीयसप्तमाष्टमनवमदशमस्थानषट्कदोळु प्रत्येकमेकैकभंगमक्कुमबद्धायुःसत्त्वस्थानंगळोटरोळु द्वितीयचतुर्थपंचमषष्ठसप्तमस्थानंगळद्वरोळु प्रत्येकं नालकु नालकु भंगंगळप्पुवष्टमसत्त्वस्थानदोळु एरडु भंगंगळप्पुवु । शेषप्रथमतृतीयस्थानद्वयदोळु प्रत्येकमेकैकभंगमक्कुमंतु कूडि सत्त्वस्थानंगळ मिथ्यादृष्टियोळु पविनेटप्पुवरोळु भंगंगळ पंचाशत्प्रमितंगळप्पुवु ।

१० अनंतरं सासादनगुणस्थानदोळं मिश्रगुणस्थानदोळं बद्धाबद्धायुष्यरुगळं विवक्षिसिकोडु सत्त्वस्थानंगळमनवर भंगंगळ संख्येयुमं गाथाचतुष्टयविदं पेळ्वपरः —

सत्ततिगं सासाणे मिससे तिग सत्त सत्त एयारा ।

परिहीण सव्वसत्तं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७२॥

सप्तत्रिकमासाबावे मिश्रे त्रिकसप्तसप्तैकादश । परिहीणसर्वसत्त्वं बद्धस्येतस्यैरकोनं ॥

१५ सासादनसम्यग्दृष्टियोळु सप्तप्रकृतिसत्त्वमुं त्रिप्रकृतिसत्त्वमुं परिहीणसर्वप्रकृतिसत्त्वस्थानद्वयमक्कुं । मिश्रनोळु त्रि सप्त सप्त एकादश प्रकृतिसत्त्वरहितसर्वप्रकृतिसत्त्वस्थानचतुष्टयमिषु बद्धायुष्यरोळप्पुवु । इतरस्य अबद्धायुष्यंगे अवरोळु प्रत्येकमेकैकप्रकृतिसत्त्वहीनमक्कुमा सासादन-

द्वितीये चतुर्थे पंचमे षष्ठे बद्धायुष्कसत्त्वस्थाने पंच पंच भंगा भवन्ति । शेषप्रथमतृतीयसप्तमाष्टमनवमदशमेकैकैक एव । अबद्धायुःस्थानेषु च द्वितीये चतुर्थे पंचमे षष्ठे सप्तमे चत्वारश्चत्वारः, अष्टमे द्वौ, शेषप्रथमतृतीययोरेकैकः, एवं मिथ्यादृष्टौ सत्त्वस्थानान्यष्टादश । भंगाः पंचाशत् ॥ ३७१ ॥ अथ सासादनमिश्रयोः स्थानभंगसंख्यां गाथाचतुष्केणाह—

सासादने सप्तभिहीनं त्रिभिहीनं च सर्वसत्त्वं बद्धायुष्कस्य । मिश्रे त्रिभिः सप्तभिः सप्तभिरेकादश-

पूर्वमें कहे अठारह स्थानोंके पुनरुक्त और समान भंगोंके बिना जो भंग कहे हैं उनकी संख्या कहते हैं—

२५ दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे बद्धायुष्क स्थानमें पाँच-पाँच भंग होते हैं शेष पहले, तीसरे, सातवें, आठवें, नौवें और दसवें बद्धायुस्थानमें एक-एक भंग होता है । अबद्धायुस्थानमें दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवेंमें चार-चार, आठवेंमें दो, शेष पहले और तीसरेमें एक-एक भंग होता है । इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें स्थान अठारह और भंग पचास होते हैं ॥३७१॥

३० आगे सासादन और मिश्र गुणस्थानमें स्थानों और भंगोंकी संख्या चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

सासादनमें बद्धायुष्कके सर्व सत्त्वमें-से सात हीन और तीन हीन दो स्थान होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टिगल सत्त्वस्थानभंगगळगे संदृष्टि :—

| बध्य. ०    | सासादनगे ० | मिश्रगे ० | ०   | ०   | ०   |
|------------|------------|-----------|-----|-----|-----|
| ७          | ३          | ३         | ७   | ७   | ११  |
| बध्य. १४१  | १४५        | १४५       | १४१ | १४१ | १३७ |
| ५          | १          | ५         | ५   | ५   | ५   |
| अबध्य. १४० | १४४        | १४४       | १४० | १४० | १३६ |
| ४          | २          | ४         | ४   | ४   | ४   |

सासादनगे सत्त्वरहितप्रकृतिगळं पेळवपरु :—

तिस्थाहारचउक्कं अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे ।

हारचउक्कं वज्जिय तिण्णि य केइं समुद्दिहं ॥३७३॥

तीर्थाहारचतुष्कमन्यतरायुद्धिकं च सप्तैतानि । आहारकचतुष्कं विवर्ज्य त्रीणि च कैश्चित्-  
समुद्दिष्टं ॥

तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुद्धंयमल्लदितरायुद्धंयमुमंतु एळं  
प्रकृतिगळ सासादननोळसत्त्वरहितप्रकृतिगळपुवु । अवरोळाहारकचतुष्टयमुं वज्जिसि तीर्थमु-  
मितरायुद्धितयमुं मूरे प्रकृतिगळ सत्त्वरहितंगळाहारकचतुष्टयमुं सत्त्वप्रकृतिगळपुवेवु केलंबरा-  
चाय्यंरुगळिवं पेळत्पदुवु ॥

मिश्रनोळ सत्त्वरहितप्रकृतिगळं पेळवपरु :—

तिस्थण्णदराउदुगं तिण्णिवि अणसहिय तइ य सत्तं च ।

हारचउक्के सहिया ते चेव य होति एयारा ॥३७४॥

तीर्थान्यतरायुद्धिकं त्रीण्यप्यनंतानुबंधिसहितं । तथा च सप्त च आहारकचतुष्केण सहि-  
तानि तानि चैव भवन्त्येकादश ॥

मिश्र हीनं भवति । अबद्धायुष्कस्य पुनरेकैकहीनं भवति ॥ ३७२ ॥ सासादनस्य हीनप्रकृतीराह—

तीर्थमाहारचतुष्टयं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानाम्यामितरायुषी चेति सप्त । तत्राहारकचतुष्के वज्जिते  
तिस्रः तच्चतुष्कसत्त्वं तु कैश्चिदेवोद्दिष्टं ॥ ३७३ ॥ मिश्रस्य ता आह—

मिश्रमें तीन, सात, सात और ग्यारहसे हीन चार स्थान होते हैं । अबद्धायुके स्थान बद्धायुके  
स्थानमें-से एक-एक बध्यमान आयुसे हीन होते हैं ॥३७२॥

सासादनमें घटायी गयी प्रकृतियोंको कहते हैं—

सासादनमें तीर्थकर, आहारक चतुष्क, भुज्यमान और बध्यमानके बिना शेष दो  
आयु इन सातके बिना एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान होता है । उन सातमें  
आहारक चतुष्कको छोड़ देनेपर तीन प्रकृतिहीन दूसरा स्थान एक सौ पैंतालीस रूप होता  
है । इस एक सौ पैंतालीसमें जो आहारक चतुष्कका सत्त्व कहा है वह कुछ आचार्योंके  
मतानुसार कहा है । अन्यथा पूर्वमें सासादन गुणस्थानमें आहारकका सत्त्व नहीं कहा  
है ॥३७३॥

५

१०

१५

२०

२५

तीर्थमुमन्यतरायुद्विकमुमितु मूर्धं प्रकृतिगळं मत्तमनंतानुबधिकषायचतुष्टयं सहितमाणि  
एळुं प्रकृतिगळु तथा च अहंगे आहारकचतुष्टयदोडनयुमेळं प्रकृतिगळुमा अनंतानुबधिकषाय  
चतुष्टयं सहितमाणि एकादश प्रकृतिगळुं सत्वरहितमाणि नालकुं सत्त्वस्थानंगळपुवु ॥

अनंतरमा बद्धाबद्धायुष्यरुगळ सत्त्वस्थानंगळोळु भंगंगळ संख्येयं पेळवपवः—

९

साणे पण इगि भंगा बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव ।

मिस्से पण पण भंगा बद्धस्सियरस्स चउ चउ नेया ॥३७५॥

सासादने पंचैक भंगा बद्धस्येतरस्य चत्वारो द्वौ चैव । मिश्रे पंच पंच भंगा बद्धस्येतरस्य  
चत्वारश्चत्वारो ज्ञेयाः ॥

- सासादननोळ बद्धायुष्यंगैवुमो'दु भंगंगळपुवु । इतरनप्प अबद्धायुष्यंग नालकुमेरडुं  
१० भंगंगळपुवु । मिश्रनोळ बद्धायुष्यंगय्वदु भंगंगळपुवु । इतरनप्प अबद्धायुष्यंग नालकु नालकुं  
भंगंगळपुवु । अवे'ते'दोडे पेळवपडुगुं । चतुर्गंतिय सासादननपुदरिं विवक्षित भुज्यमान  
बद्धयमानायुद्द्वयमल्लवितरायुद्वितयमुं तीर्थमुमाहारकचतुष्टयक चतुष्टयमुमितेळु प्रकृतिगळु  
रहितमाणि नूरनाल्वत्तो'दु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु मुपेळव चतुर्गतिबद्धायुष्यरुगळ द्वादश भंगंगळोळु  
पुनरुक्त समभंगंगळं कळेवु शेष पंच भंगंगळपुवु । अल्लि अबद्धायुष्यं चतुर्गतिजनपुदरिं विवक्षित  
१५ भुज्यमानायुष्यमल्लवितरायुस्त्रितयमुं तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुमंते'दुं प्रकृतिगळु सत्वरहितमाणि  
नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु नालकुं गतिय भुज्यमानायुश्चतुष्टय भेदविदं नालकु भंगंगळपुवुं ।

तीर्थमन्यतरायुषी चेति तिलः । ता एव पुनः अनंतानुबधिकचतुष्केण सप्त वा आहारकचतुष्केण सप्त ।  
अमूः पुनः अनंतानुबधिकचतुष्केणैकादश भवन्ति ॥ ३७४ ॥ अथ तेषु स्थानेषु भंगसंख्यामाह—

- सासादने भंगाः पंचैको बद्धायुष्कस्य । इतरस्य चत्वारो द्वौ । मिश्रे पंच पंच बद्धायुष्कस्य । इतरस्य  
२० चत्वारश्चत्वारः । तद्यथा—एकचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके चतुर्गतिबद्धायुषां द्वादशभंगेषु सप्त पुनरुक्तान्विना पंच

आगे मिश्रगुणस्थानमें घटायी गयी प्रकृतियोंको कहते हैं—

- मिश्रमें तीर्थकर और भुज्यमान बध्यमान बिना दो आयुके एक सौ पैतालीस रूप  
प्रथम-स्थान है । तीन ये और अनन्तानुबन्धी चतुष्क अथवा आहारक चतुष्क बिना एक सौ  
इकतालीस प्रकृतिरूप दूसरा और तीसरा स्थान है । तथा तीन पूर्वोक्त, चार अनन्तानु-  
२५ बन्धी और आहारक चतुष्क इन ग्यारहके बिना एक सौ सैंतीस रूप चतुर्थ स्थान है । ये  
बद्धायुके स्थान हैं । इनमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर अबद्धायुके स्थान होते हैं ॥३७४॥

आगे इनमें भंगोंकी संख्या कहते हैं—

- सासादनमें बद्धायुके भंग पाँच और एक होते हैं । अबद्धायुके चार और दो होते हैं ।  
मिश्रमें बद्धायुके पाँच-पाँच भंग होते हैं । अबद्धायुके चार-चार भंग जानना । वह इस  
३० प्रकार होते हैं—

सासादनमें एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थानमें चारों गतिके बद्धायु जीवोंकी

आ सासादन द्वितीयबद्धायुष्य सत्वस्थानदोळु तीर्थमुमन्यतरायुद्वितयमुमंतु त्रिप्रकृतिगळु सत्त्व-  
रहितमागि नूरनाल्वत्तधु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमर्दिताहारकचतुष्टयसत्त्वमुळळ सासादननुमोळ-  
ने बाचार्यर पक्षदोळु भंगमोदयक्कुमर्दे ते दोडे बद्धदेवायुष्यनुपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्टय  
मनप्रमत्तगुणस्थानदोळुपार्जिसि बळिककं सम्यक्त्वविराधकनादोडल्लियोदे भंगमक्कुमा अबद्धा-  
युष्यनोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यनुपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्टयमनुपार्जिसि अनंतानुबंधि-  
कषायोदयदिवं सासादननाडोळियोदु भंगमक्कुं मुन्नं बद्धदेवायुष्यंगे मरणमादोडे भुज्यमानदेवा-  
युष्यनोळोदु भंगमक्कुं । अंतु अबद्धायुष्यनोळेरडु भंगमप्पुवु । संदृष्टि :—

|       |     |
|-------|-----|
| बद्ध  | १४५ |
|       | १   |
| अबद्ध | १४४ |
|       | २   |

मिथनोळु प्रथम बद्धायुःसत्त्वस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमान बद्धघमानायुद्वयमल्लदितरायु-  
द्वितयमुं तीर्थमुमंतु प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरनाल्वत्तधु प्रकृतिसत्त्वस्थानं मुं पेळ्ळद द्वावशभंग-  
गळोळु पुनरुक्तसमभंगगळं कळेदु शेषमपुनरुक्तभंगगळय्दप्पुवबल्लि अबद्धायुःसत्त्वस्थानदोळु १०

भंगाः । अबद्धायुष्कस्य चत्वारिंशच्छतप्रकृतिके चतुर्गतिभुज्यमानायुर्भेदाच्चत्वारो भंगाः ।

द्वितीये बद्धायुःस्थाने पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके बद्धाहारचतुष्कस्य कस्यचित्सासादनत्वप्राप्तिरित्यु-  
पदेशाश्रयणादेको भंगः । तदबद्धायुष्के भुज्यमानमनुष्यायुष्कस्योपशमसम्यग्दृष्टेरजिताहारकचतुष्कस्थानंतानु-  
बन्धुदयाज्जातसासादनस्यैको भंगः । प्राग्बद्धदेवायुष्कस्य मृत्वा जातभुज्यमानदेवायुष्कस्यैको भंगः, एवं द्वौ ।  
संदृष्टि—

|   |     |
|---|-----|
| ब | १४५ |
|   | १   |
| अ | १४४ |
|   | २   |

मिश्रे प्रथमे बद्धायुःस्थाने पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके प्राग्बद्धादशभंगे सप्तपुनरुक्तान्विता पंच भंगाः ।

अपेक्षा बारह भंगोंमें-से सात पुनरुक्त भंगोंके बिना पाँच भंग होते हैं । अबद्धायुष्कके एक  
सौ चालीस प्रकृतिरूप स्थानमें चारों गति सम्बन्धी भुज्यमान आयुके भेदसे चार भंग होते  
हैं । दूसरे बद्धायुस्थानमें जो एक सौ पैतालीस प्रकृतिरूप है, जिसने आहारक चतुष्कका बन्ध  
किया है ऐसे किसी जीवको सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति होती है इस उपदेशका आश्रय २०  
लेकर एक भंग कहा है । उसके अबद्धायु स्थानमें दो भंग इस प्रकार हैं—भुज्यमान मनुष्यायु-  
वाला उपशम सम्यग्दृष्टि आहारक चतुष्कका बन्ध करके मरकर सासादन हुआ सो एक  
भंग तो यह हुआ । पूर्वमें जिसके देवायुका बन्ध हुआ था ऐसा उपशम सम्यग्दृष्टी आहारक  
चतुष्कका बन्ध करके मरकर देव हो सासादन हुआ । वहाँ भुज्यमान देवायुका सत्त्व होनेसे  
दूसरा भंग हुआ ।

मिश्रगुणस्थानमें बद्धायुके चारों स्थानोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे बारह भंगोंमें-से पाँच-पाँच



विवक्षितभुज्यमानायुष्यमोदल्लदितरायुस्त्रितयं तीर्थमुमंतु प्रकृतिसत्त्वरहितमाणि नूरनाल्वत्तु नूरनाल्वत्तु नाल्कु प्रकृतिसत्त्वस्थानमवकुं । चतुर्गतिजगल भेदादि नाल्कु भंगमवकुं । संदृष्टि :—

|   |     |
|---|-----|
| ब | १४५ |
|   | ५   |
| अ | १४४ |
|   | ४   |

द्वितीयबद्धायुःसत्त्वस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबद्धयमानायुद्वितयमुं तीर्थमुमंतानुबंधि कषायचतुष्टयमुमंतु सप्तप्रकृतिगळु सत्त्वरहितमाणि नूरनाल्वत्तोदु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु मुपेळद पुनरुक्तसमभंगगळं कळदु शेषपंचभंगगळपुवलि अवद्धायुष्यनोळु विवक्षितभुज्यमानायुष्यमोदल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्थमुमंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुमंतेंदु प्रकृतिगळु सत्त्वरहितमाणि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानमवकुमल्लि नाल्कुं गतिगळ भेदादिदं नाल्कुं भंगगळपुवु । संदृष्टि :

|   |     |
|---|-----|
| ब | १४१ |
|   | ५   |
| अ | १४० |
|   | ४   |

तृतीयबध्यमानायुः सत्त्वस्थानदोळु तीर्थमुं भुज्यमानबध्यमानायुद्वितयमल्लदितरायुद्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुमंतेंदु प्रकृतिगळु सत्त्वरहितमाणि नूरनाल्वत्तोदु प्रकृतिसत्त्वस्थानमवकुमल्लि १० पुनरुक्तसमविहीनपंचभंगगळपुवलि अवद्धायुष्यसत्त्वस्थानदोळु भुज्यमानायुः सत्त्वमल्लदितरायुस्त्रयमुं तीर्थमुं आहारक चतुष्टयमुमंतेंदु प्रकृतिसत्त्वरहितमाणि नूरनाल्वत्तुप्रकृतिसत्त्वस्थानमवकुमल्लि गतिचतुष्टयभेदादिदं नाल्कुं भंगगळपुवु । संदृष्टि :—

अवद्धायुःस्थाने चतुर्गतिकभेदाच्चत्वारो भंगा । संदृष्टिः—

|   |     |
|---|-----|
|   | १४५ |
| ब | ५   |
|   | १४४ |
| अ | ४   |

एवं द्वितीयतृतीयचतुर्थबद्धावद्धायुःस्थानेष्वपि पंच चत्वारो भंगा ज्ञातव्याः । अत्र मिश्रजनानुबंध्यसत्त्वं १५ कथमिति चेत् असंयतादिचतुर्वैकथ करणत्रयेण तच्चतुष्कं विसंयोज्य दर्शनमोहक्षयणानभिमुखस्य संकलित-

भंग होते हैं । अवद्धायुके चारों स्थानोंमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार-चार भंग होते हैं ।

शंका—मिश्रमें अनन्तानुबन्धीका असत्त्व कैसे है ?

समाधान—असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एकमें तीन करणोंके द्वारा २० अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन किया । उसके पश्चात् दर्शनमोहनीयकी क्षयणा तो न कर सका और संक्लेश परिणामके द्वारा मिश्र मोहनीयके उदयसे मिश्र गुणस्थानवर्ती हुआ ।

|       |
|-------|
| ब १४१ |
| ५     |
| अ १४० |
| ४     |

मिश्र चतुर्थ्यवध्यमानायुःसत्त्वस्थानबोळु तीर्थमितरायुद्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुमनंतानु-  
बंधिचतुष्टयमुमंतु पन्नोबुं प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरमूवत्तेळु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुं । भंगंगळु-  
मपुनरुवतंगळुमय्यदपुवत्तिल अबद्धायुः—सत्त्वस्थानबोळु तीर्थंमुमितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमु-  
मनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतु द्वादश प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूर मूवत्तार प्रकृतिसत्त्वस्थानबोळु  
गतिचतुष्टय भेदादिदं नाल्कुं भंगंगळपुवु । संवृष्टिः—

|       |
|-------|
| ब १३७ |
| ५     |
| अ १३६ |
| ४     |

ई मिश्रनोळनंतानुबंधिसत्त्वरहितत्वमेते बोडे असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळु अनंता-  
नुबंधिकायचतुष्टयमं करणत्रयकरणपूर्वकं विसंयोजनमं माडिदवगंगळु दर्शनमोहनीयमं क्षपि-  
यिसलभिमुखरत्नद्वयगंगळु संकिलष्टपरिणामदिदं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिदं मिश्रगुणस्थानमं  
पोद्दिपत्तिलयुमनंतानुबंधिकायचतुष्टयं सासादननोळ बंधव्यच्छित्तिगळादुक्पुवद्विदमनंतानुबंधि-  
रहितत्वं मिश्रनोळरियत्पडुगुं ।

१०

इंतु सासादनमिश्रगळणे सत्त्वस्थानंगळ भेदंगळुमनवर भंगंगळुमं पेळदन्तरं असंयतगुण-  
स्थानबोळु मुपेळव नाल्वत्तुं स्थानंगळुगुपपत्तियमनवर भंगंगळु नूरिप्पतक्कं गाथाषट्कदिदं  
पेळववरः—

दुग छक्क सत्त अट्ठं णवरहियं तह य चउपडिं किच्चा ।

णममिमि चउ पणहीणं वद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७६॥

१५

द्विकषट्कसमाष्टौ नवरहितं तथा च चतुः प्रति कृत्वा । नभ एक चतुः पंचहीनं बद्धस्येत-  
रस्यैकोनं ॥

परिणामेन सम्यग्मिथ्यात्वोदयास्तत्र गमनात् । तद्बंधस्य सासादने एव च्छेदात् ॥ ३७५ ॥ अथासंयतोक्तचत्वा-  
रिशास्थानानामुत्पत्ति तद्विशस्युत्तरशतभंगोदय गाथाषट्केनाह—

इसके अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं होता । नवीनबन्ध हो तो सत्त्व हो, किन्तु नवीनबन्धकी २०  
व्युच्छित्ति तो सासादनमें ही हो जाती है ॥३७५॥

आगे असंयत गुणस्थानमें कहे चालीस स्थानोंकी उत्पत्ति और उनके एक सौ बीस  
भंगोंको छह गाथाओंसे कहते हैं—

द्विकषट्कसप्ताष्टनवप्रकृतिरहितपञ्चसत्त्वस्थानंगळं तिर्यक्क्रमविनिरसि मतमा प्रकारदिवं कळकेळगे तिर्यक्कामि नात्कुं पंक्तियं माडि प्रथमपंक्तियोळु शून्यमनद्यं स्थानंगळोळु कळवुदु । द्वितीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु प्रत्येकमो दो दं कळवुदु । तृतीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु प्रत्येक नात्कुं नात्कं कळवुदु चतुर्थपंक्तियोळु पंचमस्थानंगळोळु प्रत्येकं अद्यद्यं कळवुदु कळव नात्कुं पंक्तिगळोळु बद्धायुष्यंगे सत्त्वस्थानंगळिप्पत्तपुवबद्धायुष्यंगे प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपंक्तिय पंच पंच सत्त्वस्थानंगळोळु प्रत्येकमो दो दं कळवुदु तंतम्म पंक्तिगळ कळगे कळगे स्थापिसुत्तं विरलु सत्त्व-स्थानंगळिप्पत्तपुवु । अंतु असंयतंगे सत्त्वनंगळ नात्कत्तपुवु । यिटिल प्रथमपंक्तिद्वयमुं तृतीयपंक्ति-द्वयमुं सतीर्थस्थानंगळपुवितरद्वितीयपंक्तिद्वयमुं चतुर्थपंक्तिद्वितयमुं तीर्थरहितस्थानंगळं वु पेळदपरु :—

१०

तित्थाहारे सहियं तित्थूणं अह य हारचउद्दीणं ।

तित्थाहारचउक्केणूणं इदि चउपडिट्ठाणं ॥३७७॥

तीर्थाहारसहितं तीर्थोनमथ चाहारचतुर्होनं । तीर्थाहारकचतुष्केणोनमिति चतुः प्रतिस्थानं ॥

१५

द्विकषट्कसप्ताष्टनवप्रकृतिरहितपञ्चस्थानानि तिर्यक्क्रमेण विन्यस्य पुनस्तथैवाधोषः चतुःपंक्तौः कृत्वा प्रथमपंक्तौ पञ्चस्थानेषु शून्यमपनयेत् । द्वितीयपंक्तौ एकैकं, तृतीयपंक्तौ चतुष्कं चतुष्कं, चतुर्थपंक्तौ पञ्च पञ्च । एवं बद्धायुष्कस्य विंशतिः सत्त्वस्थानानि । अबद्धायुष्कस्य तथा पञ्चपंक्तौनां पञ्च पञ्च सत्त्वस्थानेषु प्रत्येकमेक-कमपनीय स्वस्वाधःस्थापितेषु विंशतिः, मिलित्वा असंयतस्य चारिंशद्भवति ॥ ३७६ ॥ अथोक्तपंक्तिचतुष्के तीर्थाहारयुतायुतत्वेन विशेषमाह—

२०

दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृति रहित पाँच स्थानोंको बराबर-बराबर लिखकर पुनः उसी प्रकार नीचे-नीचे पाँच स्थानोंकी चार पंक्तियाँ लिखो । उनमें-से प्रथम पंक्तिके पाँच स्थानोंमें शून्य घटाओ । अर्थात् वे पाँचों स्थान ज्योंके त्यों दो, छह, सात, आठ और नौ प्रकृति रहित होते हैं । दूसरी पंक्तिमें-से एक-एक प्रकृति और घटाओ । अर्थात् वे पाँचों स्थान तीन, सात, आठ, नौ, दस रहित जानना । तीसरी पंक्तिके पाँचों स्थानोंमें-से चार-चार प्रकृति घटाना । अर्थात् वे पाँचों स्थान छह, दस, ग्यारह, बारह, तेरह प्रकृति रहित जानना । चौथी पंक्तिमें पाँच-पाँच प्रकृति घटाना । अतः वे पाँचों स्थान सात, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह प्रकृति रहित होते हैं ।

२५

इस प्रकार बद्धायुके बीस स्थान होते हैं । इसी प्रकार अबद्धायुकी चार पंक्तियोंके पाँच-पाँच सत्त्वस्थानोंमें-से प्रत्येकमें बध्यमान आयुरूप एक-एक प्रकृति घटानेपर बीस स्थान होते हैं । सब मिलकर असंयतमें चालीस सत्त्वस्थान होते हैं ॥३७६॥

३०

आगे चारों पंक्तियोंमें तीर्थकर और आहारक चतुष्ककी अपेक्षा जो विशेष है उसे कहते हैं—

प्रथमपंक्तिद्वयस्थानपंचकद्वयं तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुं सहितमवकुं । द्वितीयपंक्तिद्वयस्थानपंचकद्वयं तीर्थकरप्रकृतिसत्त्वरहितमवकुमाहारकचतुष्टयसहितमवकुं । तृतीयपंक्तिद्वयस्थानपंचकद्वयं तीर्थकरप्रकृतिसत्त्वसहितमवकुमाहारकचतुष्टयरहितमवकुं । चतुर्थपंक्तिद्वयस्थानपंचकद्वयं तीर्थकरमुमाहारकचतुष्टयमुं सत्त्वरहितमवकुमितु चतुः प्रतिस्थानमरियल्पद्वयं ॥

अनंतरं दुगच्छकादि सत्त्वहीनप्रकृतिगळं वेळदपरु :—

अण्णदर आउसहिया तिरियाऊ ते च तह य अणसहिया ।

मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण खविदे हवे ठाणा ॥३७८॥

अन्यतरायुःसहितं तिर्यंगायायुस्ते च तथा चानंतानुबंधिसहितं मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं क्रमेण क्षपिते भवेत् स्थानं ॥

अन्यतरायुष्यमो'दु सहितमा' तिर्यंगायायुष्यमा येरडुमनंतानुबंधिसहितमादारु मी याहं १०  
मिथ्यात्वमुं कूडि येळु मी येळुं मिश्रप्रकृति गूडि ये'दु ई ये'दुं सम्यक्त्वप्रकृतिगूडि ओ'भत्तुं  
प्रकृतिगळु रहितंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

प्रथमपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थाहारकचतुष्कसहितं भवति । द्वितीयपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थरहितमाहारकचतुष्टयसहितं भवति । तृतीयपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थसहितमाहारकचतुष्टयरहितं भवति । चतुर्थपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थकराहारकचतुष्टयरहितं भवति । एवं चतुःप्रकृतिकं स्थानं १५  
ज्ञातव्यं ॥ ३७७ ॥ अथ दुगच्छकादिहीनप्रकृतीराह—

तिर्यंगायुरन्यतरायुःसहितं तद्वितीयमनंतानुबंधिसहितं तत्त्वदकं मिथ्यात्वसहितं तत्सप्तकं मिश्रसहितं तदष्टकं सम्यक्त्वसहितनवकमित्यपनीतप्रकृतयो भवति ॥ ३७८ ॥ अथ भंगान् गाथाद्वयेनाह—

बद्धायु और अबद्धायुकी प्रथम दो पंक्तियोंके जो पाँच-पाँच स्थान हैं वे तीर्थकर और २०  
आहारक चतुष्क सहित हैं । बद्धायु और अबद्धायुकी दूसरी दो पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान  
तीर्थकर रहित किन्तु आहारक चतुष्क सहित हैं । बद्धायु और अबद्धायुकी तीसरी दो  
पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थकर सहित किन्तु आहारक चतुष्टय रहित हैं । बद्धायु और  
अबद्धायुकी चतुर्थ दोनों पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थकर तथा आहारक चतुष्कसे रहित  
हैं । अर्थात् प्रथम पंक्तिसे शून्य घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थकर और आहारक चतुष्क २५  
हैं । दूसरीमें एक घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थकर नहीं है, तीसरीमें चार घटानेसे  
मतलब है कि उसमें आहारक चतुष्क नहीं है और चौथीमें पाँच घटानेसे मतलब है कि  
उसमें तीर्थकर भी नहीं है और आहारक चतुष्क भी नहीं है ॥३७९॥

इसे नीचे रचना द्वारा स्पष्ट किया जाता है । प्रत्येक कोठेमें ऊपर प्रकृतियोंका प्रमाण  
है उसके नीचे भंगोंका प्रमाण है ।

| ०          | ०      | ०        | ०        | ०        | ०        | ०        |
|------------|--------|----------|----------|----------|----------|----------|
| सतीर्थ ॥ ० | बंध ॥  | १४६<br>२ | १४२<br>२ | १४१<br>२ | १४०<br>२ | १३९<br>२ |
| सतीर्थ ॥ ० | अबंध ॥ | १४५<br>३ | १४१<br>३ | १४०<br>१ | १३९<br>३ | १३८<br>३ |
| अतीर्थ ॥ ० | बंध ॥  | १४५<br>५ | १४१<br>५ | १४०<br>३ | १३९<br>३ | १३८<br>४ |
| अतीर्थ ॥ ० | अबंध ॥ | १४४<br>४ | १४०<br>४ | १३९<br>१ | १३८<br>४ | १३७<br>४ |
| सतीर्थ ॥ ० | बंध ॥  | १४२<br>२ | १३८<br>२ | १३७<br>२ | १३६<br>२ | १३५<br>२ |
| सतीर्थ ॥ ० | अबंध ॥ | १४१<br>३ | १३७<br>३ | १३६<br>१ | १३५<br>३ | १३४<br>३ |
| अतीर्थ ॥ ० | बंध ॥  | १४१<br>५ | १३७<br>५ | १३६<br>३ | १३५<br>३ | १३४<br>४ |
| अतीर्थ ॥ ० | अबंध ॥ | १४०<br>४ | १३६<br>४ | १३५<br>१ | १३४<br>४ | १३३<br>४ |

बद्धायुस्थान २०, भंग ६०

|             |          |          |          |          |          |
|-------------|----------|----------|----------|----------|----------|
| ती. आ. सहित | १४६<br>२ | १४२<br>२ | १४१<br>२ | १४०<br>२ | १३९<br>२ |
| तीर्थ. रहित | १४५<br>५ | १४१<br>५ | १४०<br>३ | १३९<br>३ | १३८<br>४ |
| आहारक रहित  | १४२<br>२ | १३८<br>२ | १३७<br>२ | १३६<br>२ | १३५<br>२ |
| ती. आ. रहित | १४१<br>५ | १३७<br>५ | १३६<br>३ | १३५<br>३ | १३४<br>४ |

अबद्धायुस्थान २०, भंग ६०

|          |          |          |          |          |
|----------|----------|----------|----------|----------|
| १४५<br>३ | १४१<br>३ | १४०<br>१ | १३९<br>३ | १३८<br>३ |
| १४४<br>४ | १४०<br>४ | १३९<br>१ | १३८<br>४ | १३७<br>४ |
| १४१<br>३ | १३७<br>३ | १३६<br>१ | १३५<br>३ | १३४<br>३ |
| १४०<br>४ | १३६<br>४ | १३५<br>१ | १३४<br>४ | १३३<br>४ |

आगे दो, छह आदि घटायी प्रकृतियोंको कहते हैं—

तियँचायु और कोई एक अन्य आयु ये दो प्रकृति जानना । दो ये और अनन्तानु-  
बन्धी चतुष्क ये छह जानना । इनमें मिथ्यात्व मोहनीय मिलानेसे सात जानना । मिश्र-  
मोहनीय मिलानेसे आठ जानना । सम्यक्त्व मोहनीय मिलानेसे नौ जानना । ये घटाई  
गयी प्रकृतियाँ हैं । अर्थात् बद्धायुकी प्रथम पंक्तिका प्रथम स्थान दो आयु बिना एक सौ  
छियालीस प्रकृतिरूप है । दूसरी पंक्तिका प्रथम स्थान तीर्थकर बिना एक सौ पैतालीस  
प्रकृतिरूप है । तीसरी पंक्तिका प्रथम स्थान आहारक चतुष्क बिना एक सौ बयालीस प्रकृति-  
रूप है । चौथी पंक्तिका प्रथम स्थान आहारक चतुष्क और तीर्थकर बिना एक सौ इकतालीस  
प्रकृतिरूप है । इनमें बध्यमान आयुरूप एक प्रकृति और घटानेपर अबद्धायुके चार स्थान  
होते हैं । इस प्रकार आठ स्थान हुए । इन सबमें अनन्तानुबन्धी चतुष्करूप चार प्रकृतियोंके  
घटानेपर दूसरे आठ स्थान होते हैं । उनमें-से भी मिथ्यात्व घटानेपर तीसरे आठ स्थान

अनंतरं भंगंगळं गाथात्रयदिदं पेळदपरु :—

आदिमपंचङ्काणे दुगदुगभंगा हवन्ति बद्धस्स ।

इयरस्सवि णादव्वा तिगतिग इगि तिणिण तिण्णेव ॥३७९॥

आदिमपंचस्थाने द्विकद्विकभंगा भवन्ति बद्धस्य । इतरस्यापि ज्ञातव्याः त्रिकत्रिकैकत्रित्रयः ॥

मोदल पंचस्थानदोळेरडेरडु भंगंगळपुवु । बद्धायुष्यंगे यितराबद्धायुष्यंगे मूरु मूरु ओडु ५  
मूरु मूरु भंगंगळरियल्पडुवुवु ॥

विदियस्स वि पणठाणे पण पण तिग तिणिण चारि बद्धस्स ।

इयरस्स होति जेया चउ चउ इगि चारि चत्तारि ॥३८०॥

द्वितीयस्यापि पंचस्थाने पंच पंच त्रिकत्रयश्चत्वारो बद्धस्येतरस्य भवन्ति जेयाश्चतुश्चतुरेक- १०  
श्चत्वारश्चत्वारः ॥

द्वितीयपंक्ति पंचस्थानंगळोळु बद्धायुष्यंगे क्रमदिदं पंच पंच त्रिकत्रिकचतुर्भंगंगळपु-  
वितरंगबद्धायुष्यंगे चतुश्चतुरेक चतुश्चतुर्भंगंगळु ज्ञातव्यंगळपुवु ॥

आदिन्ल दससु सरिसा भंगेण य तदिय दसय ठाणाणि ।

विदियस्स चउत्थस्स य दस ठाणाणि य समा होति ॥३८१॥

आद्यतनदशसु सवृजानि भंगेन च तृतीयदशकस्थानानि । द्वितीयायाश्चतुर्थ्याश्च दश- १५  
स्थानानि च भंगैः समानि भवन्ति ॥

प्रथमपंचस्थानेषु बद्धायुष्यस्य द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । अबद्धायुष्यस्य च त्रयस्त्रयः एकस्त्रयस्त्रयो  
भवन्ति ॥ ३७९ ॥

द्वितीयपंक्तेः पंचस्थानेषु बद्धायुष्यस्य पंच पंच त्रयस्त्रयश्चत्वारो भंगा भवन्ति । इतरस्य चत्वार- २०  
श्चत्वार एकश्चत्वारश्चत्वारो भवन्ति ॥ ३८० ॥

आद्येषु बद्धावद्धायुष्यदशस्थानेषूक्तभंगैः तृतीयबद्धावद्धायुष्यदशस्थानभंगाः समानाः । द्वितीयपंक्तेर्बद्धा-  
वद्धायुष्यदशस्थानोक्तभंगैः चतुर्थपंक्तेर्बद्धावद्धायुष्यदशस्थानभंगाः समानाः । एवमसंयतस्य चत्वारिंशत्स्थानेषु

होते हैं । उनमें-से भी मिश्रमोहनीय घटानेपर चौथे आठ स्थान होते हैं । उनमें-से भी  
सम्यक्त्व मोहनीय घटानेपर पाँचवें आठ स्थान होते हैं । इस तरह सब मिलकर असंयतमें  
चालीस सत्त्वस्थान होते हैं ॥३७८॥ २५

आगे दो गाथाओंसे इनमें भंग कहते हैं—

प्रथम पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं । अबद्धायुके पाँच  
स्थानोंमें क्रमसे तीन-तीन, एक, तीन-तीन भंग होते हैं ॥३७९॥

दूसरी पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे पाँच-पाँच, तीन-तीन, चार भंग  
होते हैं । अबद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे चार-चार, एक, चार भंग होते हैं ॥३८०॥ ३०

पहली पंक्ति सम्बन्धी पाँच बद्धायु और पाँच अबद्धायुके दस स्थानोंमें जो भंग कहे हैं  
उन्हींके समान तीसरी पंक्तिके दस स्थानोंमें भंग जानना । तथा दूसरी पंक्ति सम्बन्धी पाँच

- आद्यतनबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळोळु पेळद भंगंगळोडने तृतीयबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळ भंगंगळ समानंगळपुवु । द्वितीयपंक्तिय बद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळोळु पेळद भंगंगळोडने चतुर्थपंक्तियबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळ भंगंगळ समानंगळपुवु । इतंसंयतन नात्वत्तुं स्थानंगळोळु नूरिप्पत्तु भंगंगळपुववर भेद पेळल्पडुगुमदें तें दोडे—बद्धायुष्यनप्प असंयतन
- ५ प्रथमपंक्तिय पंचस्थानंगळु सतीर्थस्थानंगळपुवरिदं भुज्यमानबध्यमानायुष्यमल्लवितरायुष्यमो'दुं तीर्थसत्वमुल्लंगे तिय्यंगायुष्यसत्वमिल्लपुवरिदं तिय्यंगायुष्यमुमंतु प्रकृतिद्वयरहितमागि नूरनात्व-  
त्तारु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवा-  
युष्यनु । भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यनु । भे'बितु नालकुं  
भंगंगळोळु समभंगंगळप्प कडयवेरडुं भंगंगळं बिट्टु भंगद्वयमक्कुमत्तमा स्थानदोळु अनंतानुबंधि
- १० चतुष्टयमं विसंयोजिसिदातंगे अन्यतरायुष्यमो'दुं तिय्यंगायुष्यमुमंतानुबंधिचतुष्कमुमंतु षट्  
प्रकृतिरहितमागि नूरनात्वत्तेरडु प्रकृतिसत्वस्थानदोळं भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु ।

विसंयत्तरसत्तं भंगा भवति । तद्भेद उच्यते—

- बद्धायुष्कस्यासंयतस्य प्रथमपंक्तिपंचस्थानानां सतीर्थत्वात्तिर्यंगायुषा भुज्यमानबध्यमानोभ्यामितरायुषा च रहितषट्चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भंगाः भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुष्कः १ भुज्यमानमनुष्यबध्यमान-  
१५ देवायुष्कः २ भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुष्कः ३ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति चतुर्षु समद्वये  
त्यक्ते द्वौ भंगौ भवतः । तथा विसंयोजितानंतानुबंधिनस्तच्चतुष्कस्यान्यतरायुस्तिर्यंगायुषोद्वाभावाद् द्वाप-  
त्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितमिध्यात्वस्य तस्यैकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितमिश्रस्य चत्वा-  
रिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितसम्पक्त्वप्रकृतेरेकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि तौ भुज्यमानमनुष्यबध्यमान-

- बद्धायु और पाँच अबद्धायुके दस स्थानोंमें जो भंग कहे हैं उन्हींके समान चौथी पंक्तिके दस  
२० स्थानोंमें भंग जानना । इस तरह असंयतके चालीस स्थानोंमें एक सौ बीस भंग होते हैं ।  
अब उन भंगोंको कहते हैं—

- बद्धायु असंयत सम्यग्दृष्टीके पहली पंक्ति सम्बन्धी जो पाँच स्थान हैं वे तीर्थकर  
प्रकृति सहित हैं । और तिर्यंचमें तीर्थकरकी सत्ता नहीं होती । अतः प्रथम पंक्तिके प्रथम  
स्थानमें भुज्यमान या बध्यमान तिर्यंचायु और एक कोई अन्य आयुके बिना एक सौ  
२५ छियालीस प्रकृतिरूप है । उसमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु, भुज्यमान मनुष्यायु  
बध्यमान देवायु, भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, भुज्यमान देवायु बध्यमान  
मनुष्यायु ये चार भंग होते हैं । इनमें-से भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान नरकायु तथा  
भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु भंग समान होनेसे पुनरुक्त है । तथा भुज्यमान  
मनुष्यायु बध्यमान देवायु और बध्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु यह भंग भी समान  
३० होनेसे पुनरुक्त है । अतः दो भंगोंके पुनरुक्त होनेसे शेष दो भंग होते हैं । प्रथम पंक्तिका  
दूसरा स्थान जिसके अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन हुआ उसके अनन्तानुबन्धी चार,  
तिर्यंचायु और एक अन्य आयु इन छह बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप है । जिसके  
मिध्यात्व प्रकृतिका क्षय हुआ है उसके एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान है,  
जिसके मिश्र मोहनीयका क्षय हुआ है उसके एक सौ चालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है ।

भुज्यमानमनुष्यनु बध्यमानदेवायुष्यने ब भंगद्वयमवकु । सा स्थानदोळ मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसि  
सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तिर्प भुज्यमानमनुष्यंगे अन्यतरायुष्यमो'दु' तिर्प्यगायुष्यमुं अनन्ता-  
नुबंधिचतुष्कमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमंतु सप्तप्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूर नाल्वत्तो'दु प्रकृतिसत्त्वस्थान-  
मवकुमल्लियुमा भंगद्वयमेयवकुमा स्थानदोळ मिश्रप्रकृतियं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसुत्त-  
मिर्पातंगितरायुस्तिर्प्यगायुद्वितयमुं अनन्तानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुमंतु'दु ५  
प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळ मुपेळ्दरेड भंगंगळप्पुबु । आ स्थानदोळ  
सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसिदातंगन्यतरायुस्तिर्प्यगायुद्विकमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं दशनमोहनीयत्रित-  
यमुमंतु नवप्रकृतिरहितमागि नूर भूवत्तो'भत् प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळ मुपेळ्द भुज्यमानमनुष्यं  
बद्धनरकदेवायुष्यभेदरेड भंगंगळप्पुदीबद्धायुष्यन स्थानपंचकद केळगण अबद्धायुष्यन पंक्तिय-

नरकायुःभुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुश्चेति द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । तदधस्तनाबद्धायुष्कपंक्ती पंचस्थानेषु १०  
पंचचत्वारिंशच्छतके विसंयोजितान्तानुबंधिनः एकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमाननारकमनुष्यदेवायुर्भेदात्त्रयो  
भंगाः । क्षपितमिथ्यात्वस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्याणामेको भंगः । क्षपितमिश्रस्यैकान्नचत्वा-  
रिंशच्छतके भुज्यमाननरकमनुष्यदेवायुर्भेदात्त्रयो भंगाः कृतकृत्यवेदकतीर्थसत्त्वमनुष्यस्य गतिद्वयजनत्संभवात् ।  
क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरष्टिंशच्छतकेऽपि त एव त्रयो भंगा । असौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिः तस्मिन्नेव भवे चातीनि

और जिसके सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय हुआ है उसके एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप १५  
पाँचवाँ स्थान है । इन चारों स्थानोंमें भी पूर्ववत् भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु  
और भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु ये दो दो ही भंग होते हैं । अबद्धायुके प्रथम  
पंक्ति सम्बन्धी पाँच स्थानोंमें प्रथम स्थान एक सौ पैतालीस प्रकृतिरूप और अनन्तानु-  
बन्धीका विसंयोजन होनेपर दूसरा स्थान एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप है । इन दोनों  
स्थानोंमें भुज्यमान नरकायु मनुष्यायु और देवायुकी अपेक्षा तीन भंग है । तथा २०  
मिथ्यात्वका क्षय होनेपर तीसरा स्थान एक सौ चालीस प्रकृतिरूप है । उसमें भुज्यमान  
मनुष्यायु एक ही भंग होता है । मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप  
चौथा स्थान है । उसमें भुज्यमान नरकायु, मनुष्यायु देवायुकी अपेक्षा तीन भंग हैं । क्योंकि  
तीर्थकरकी सत्तावाला कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी मनुष्य मरकर नरक और देवगतिमें उत्पन्न  
हो सकता है । अतः देवगति और नरकगतिमें भी इस प्रकारका सत्त्वस्थान सम्भव है । २५  
सम्यक्त्व मोहनीयका अभाव होनेपर एक सौ अड़तीसका सत्तारूप पाँचवाँ स्थान होता है ।  
यहाँ भी भुज्यमान नरकायु मनुष्यायु और देवायुकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं । मनुष्यायु  
सहित एक सौ अड़तीस सत्त्वस्थानवाला यह क्षायिक सम्यग्दृष्टी यदि उसी भवमें चातिया  
कर्मोंको नष्ट कर केवली होता है तो उसके गर्भ और जन्मकल्याणक न होकर तप आदि तीन

१. इल्लि क्षायिकनप्पुदरि भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यमुमे'ब ३०  
भंगंगळ कूडि नाल्कु भंगंगळ्ळुळं समभंगंगळ एंदु एरडु भंगंगळ तंगडु येरडे भंगंगळे'बदर्थ' । षट्-  
सप्ताष्टप्रकृतिरहितस्थानदोळ, नाल्कु भंगंगळिगे संभवमिल्लप्पुदरिदेरडे भंगंगळ । एक'दोडे अनंतानुबंधियनु-  
मिथ्यात्वप्रकृतियनुकेडिसि मिश्रप्रकृतियं केडिसद मुन्न मरणमिल्लप्पुदरि ।



- स्थानपंचकदोळु धेळल्पडुगुं । तिथ्यंगायुध्वज्जितविवक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयं  
 ॥ हितभागि नूरनाल्वत्तडु प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु भुज्यमाननारकं मनुष्यं देवनें ब भेददिवं मूरु  
 भंगगळपुवनंतानुबंधितुष्कमुं विसंयोजनमं माडिदातंगेळु प्रकृतिसत्त्वरहितभागि नूरनाल्वत्तोडु  
 प्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनें ब भेददिवं भंगत्रयमक्कुं । मिथ्यात्वप्रकृतियं  
 ५ क्षपिसिदातंगेडु प्रकृतिरहितभागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लिभुज्यमानमनुष्यनोदे  
 भंगमक्कुं । मिथ्यप्रकृतियं क्षपिसिदातंगे नवप्रकृतिसत्त्वरहितभागि नूरमूवत्तोभत्तु प्रकृतिसत्त्व-  
 स्थानमक्कुमल्लियुं तिथ्यंगतिवज्जितभागि भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनें ब भेददिवं भंगत्रयमक्कु-  
 मेकदोडे कृतकृत्यवेदकंगे सतीत्यंगे मनुष्यंगे गतिद्वयजनन संभवमुंटपुदरिदं । सम्यक्त्व  
 प्रकृतियं क्षपिसिदांतोयुं भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुमनंतानुबंधितुष्कमुं मिथ्यात्वादि-  
 १० दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतु दशप्रकृतिसत्त्वरहितभागि नूरमूवत्तेडु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लियुं  
 भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनें ब भेददिवं भंगत्रयमक्कुमी अबद्धायुष्यनप्प सतीत्यंगे नप्प क्षायिक-  
 सम्यग्दृष्टि तद्भवदोळु घातिगळं कडिसिदोडे गर्भवितरणकल्याणमुं जन्माभिषवणकल्याणमु-  
 मिल्ल । अथवा तृतीयभवदोळु घातिगळं कडिसुवडे नियमदिवं देवायुष्यमं कट्टि देवनक्कु-  
 मातंगे पंचकल्याणंगळुमोळुवु । बद्धनरकायुष्यनप्प सतीत्यंगेयुं नारकनागि प्रथमद्वितीयतृतीय-  
 १५ पृथ्विगळोळिपंगरुविंगळु भुज्यमाननरकायुष्यावशेषमादागळु तीत्यंकरविशिष्टमनुष्यायुष्यमं

हंति तदा गर्भवितरणजन्माभिषवणकल्याणे न स्यातां । अथ तृतीयभवे हंति तदा नियमेन देवायुरेव बद्धा  
 देवो भवेत् तस्य पंच कल्याणानि स्युः । यो बद्धनारकायुस्तीर्थसत्त्वः स प्रथमपृथ्व्यां द्वितीयायां तृतीयायां वा  
 जायते । तस्य षण्मासावशेषे बद्धमनुष्यायुष्कस्य नारकोपसर्गनिवारणं गर्भवितरणकल्याणादयश्च भवन्ति ।  
 द्वितीयपंक्ते बद्धायुःपंचस्थानेषु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानाम्यामितरायुर्द्वयतीर्थाभावात्पंचचत्वारिंशच्छतसत्त्व-  
 २० स्थाने विसंयोजितानंतानुबंधिन एकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने च तीर्थासत्त्वचत्वारिंशत्तिसंबंधिद्वादशभंगेषु  
 समभंगेषु समपुनरुक्तान्विना पंच । क्षपितमिथ्यात्वस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्यस्य बध्यमान-

- ही कल्याणक होते हैं । यदि तीसरे भवमें चातिकर्मोंको नष्ट करता है तो नियमसे देवायुको  
 बाँधता है । वहाँ देवायु सहित एक सौ अड़तीसका सत्त्व पाया जाता है । मनुष्य पर्यायमें  
 जन्म लेनेपर उसके पाँच कल्याणक होते हैं । किन्तु जिसने मिथ्यात्वमें नरकायुका बन्ध  
 २५ किया है और उसके तीर्थकरका सत्त्व है तो वह प्रथम द्वितीय या तृतीय नरकमें उत्पन्न होता  
 है उसके एक सौ अड़तीसका सत्त्व होता है । उसकी आयुमें छह महीना शेष रहनेपर  
 मनुष्यायुका बन्ध होता है तथा नरकमें नारकियों द्वारा किये जानेवाले उपसर्गका निवारण  
 और पंचकल्याणक होते हैं ।

- दूसरी पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें विवक्षित भुज्यमान और बध्यमान विना  
 ३० दो आयु और तीर्थकरके बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान है । अनन्तानुबन्धी वा  
 विसंयोजन होनेपर एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप दूसरा स्थान है । इन दोनों स्थानोंमें  
 तीर्थकर प्रकृतिका अभाव होनेसे चारों गति सम्बन्धी बारह भंगोंमें समभंग और पुनरुक्त  
 भंगके बिना पाँच-पाँच भंग जानना । मिथ्यात्वका क्षय होनेपर एक सौ चालीस प्रकृतिरूप

कट्टिदंशे नारकोपसर्गनिवारणमुं गडभावनरणादिकल्याणंगळुमण्डुवु । द्वितीयपंक्तिप्र बट्टायुष्यन  
सत्त्वस्थानपंचकंगळोळु तोत्थंमुं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुद्वितयमुमल्लदिनरायुद्वितयमुमंतु  
त्रिप्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लि तीत्थरहितस्थानमण्डुवरिदं  
चतुर्गतिसंबंधि द्वादशभंगंगळोळु पुनरुक्तसमभंगंगळं कळुदु शेषपंचभंगंगळुपुवु । अनंतानुबंधि- ५  
विसंयोजनमं माडिदातंगे तीत्थंमुमन्यतरायुद्वितयमुं अनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतोळु सत्त्वरहितमागि  
नूरनाल्वत्तोदु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लियुमा पंचभंगंगळुपुवु । मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसि  
मिश्रप्रकृतियं क्षपियिसुत्तिर्प्पीत मनुष्यनेय्यपुर्दारदमातंगे तीत्थंमुमितरायुद्वितयमुमनंतानुबंधि-  
चतुष्टयमुं मिथ्यात्वमुमंतोदु प्रकृतिरहितमागि नूर नाल्वत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्य-  
मानमनुष्यंगे बध्यमाननरकतिर्यंगमनुष्यदेवनें ब भेदादिदं नाल्कु भंगंगळोळु पुनरुक्तभंगंगोदं  
कळुदु शेषभंगंगळु सूरपुवु । मिश्रप्रकृतियुं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तिर्प्प कृतकृत्य- १०  
वेदकंगं तीत्थंमुमितरायुद्वितयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं कूडि नव  
प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूर सूवत्तो भत्तु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्यमानमनुष्यं बद्धनरक-  
तिर्यंगमनुष्यदेवायुष्यभेदादिदं नाल्कु भंगंगळोळु पुनरुक्तमं कळुदु मूर भंगंगळुपुवु । सम्यक्त्व-  
प्रकृतियं क्षपिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टियाद तीत्थरहितंगे तीत्थंमुमितरायुद्वितयमुमनंतानुबंधि  
चतुष्टयमुं दशनमोहनीयप्रयमुमंतु दशप्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूर सूवत्तोदु प्रकृतिसत्त्वस्थान- १५  
मक्कुमल्लिभुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं । भुज्यमानतिर्य्यं बध्यमानदेवायुष्यनु ।  
भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु । भुज्यमान-  
मनुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु । भुज्यमानमनुष्यनु बध्यमानदेवायुष्यनु । भुज्यमानदेवं बध्यमान-  
मनुष्यायुष्यनुमेवं सप्तभंगंगळोळु भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनें ब पुनरुक्तभंगंगुमं

नरकतिर्य्यकमनुष्यदेवभेदेन चतुर्षु भंगेषु पुनरुक्तमेकं विना त्रयः । क्षपितमिश्रस्यैकान्तचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि २०  
त एव त्रयः । क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरष्टत्रिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुष्कः १ भुज्यमान-  
तिर्य्यबध्यमानदेवायुष्कः २ भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुष्कः ३ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्य्यगायुष्कः ४  
भुज्यमानमनुष्यबध्यमानमनुष्यायुष्कः ५ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुष्कः ६ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्या-

तीसरा स्थान है । वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान नरकायु तिर्य्यायु मनुष्यायु  
देवायुके भेदसे चार भंग होते हैं । उनमें-से भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु भंग एक २५  
ही प्रकृति होनेसे पुनरुक्त है । उसके बिना तीन भंग होते हैं । मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर  
एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है । वहाँ भी उसी प्रकार तीन भंग होते हैं ।  
सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप पाँचवाँ स्थान है । वहाँ  
भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु १ भुज्यमान तिर्य्यायु बध्यमान देवायु २ भुज्यमान  
मनुष्यायु बध्यमान नरकायु ३ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्य्यायु ४ भुज्यमान मनुष्यायु ३०  
बध्यमान मनुष्यायु ५, भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु ६, भुज्यमान देवायु बध्यमान  
मनुष्यायु इन सात भंगोंमें पाँचवाँ भंग पुनरुक्त है क्योंकि एक ही मनुष्यायु है । पहला भंग

भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुर्भवेरुं समभंगं लु  
मनु मूरं भंगं लु कळेदु शेषभंगं लु नाल्कु अप्पुवु । शेषपंचभंगं लु संभवं लु अप्पुवु : संदृष्टि :—

|    |         |                   |                 |         |
|----|---------|-------------------|-----------------|---------|
| ब  | ति । म  | न । ति । म । दे   | न । ति । म । दे | ति । म  |
| भु | ना । ना | ति । ति । ति । ति | म । म । म । म   | दे । दे |
| *  | ० । स   | ० । ० । ० ।       | + । + । पु । +  | ० । स   |

- आ द्वितीयपंक्तिय केळगण अबद्धायुष्यरुळ सत्वस्थानपंचक दोळु विवक्षित भुज्यमाना-  
युष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तोत्थंमुं कूडि नाल्कु प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूर नात्वत्तनाल्कु प्रकृति-  
५ सत्वस्थानमक्कु । मल्लि नाल्कुं गतिजर भेददिदं नाल्कुं भंगं लु अप्पुवु । भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायु-  
स्त्रितयमुं तोत्थंमुमन्तानुबन्धिचतुष्टयमुं अष्टप्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरनात्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थान-  
मक्कु मल्लियुं चतुर्गतिजर भेददिदं नाल्कु भंगं लु अप्पुवु । मिथ्यात्वमं क्षपिसिद सत्वस्थानदोळु  
भुज्यमानमनुष्यायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तोत्थंमुमन्तानुबन्धिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वमुं नव  
प्रकृतिसत्त्वरहितमागि नूरमूवत्तो भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्यमानमनुष्यमल्लदितरगति-  
१० अयजरल्लपुदरिदमोदे भंगमक्कु । मिश्रप्रकृतियुमं क्षपिसि सत्यक्त्वप्रकृतियं क्षपियिसुत्तिर्द्दातनुं  
कृतकृत्यवेदकनुं मेणातगे अन्यतरायुस्त्रितयमुं तोत्थंमुमन्तानुबन्धिचतुष्कमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं  
युष्कश्चेति ७ सप्तभंगेषु पंचमः पुनरुक्तः, प्रथमसप्तमौ च समाविति चत्वारः । शेषाः पंच न संभवन्ति ।  
संदृष्टिः—

|    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |    |
|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| ब  | ति | म  | ना | ति | म  | दे | ना | ति | म  | दे | ति | म  |
| भु | ना | ना | ति | ति | ति | ति | म  | म  | म  | म  | दे | दे |
| ०  | ०  | स  | ०  | ०  | ०  | ०  | ०  | ०  | पु | ०  | ०  | स  |

- तद्वत्तनाबद्धायुष्कपंचस्थानेषु विवक्षितभुज्यमानादितरायुस्त्रयतीर्थाभावे चतुश्चत्वारिंशत्सत्वस्थाने  
१५ विसंयोजितान्तानुबन्धिचतुष्कस्य चत्वारिंशच्छतसत्वस्थाने चतुर्गतिजभेदाच्चत्वारः । क्षपितमिथ्यात्वस्यैकान्त-  
चत्वारिंशत्सत्वस्थाने भुज्यमानमनुष्यादितरगतित्रयजाभावादेकः । क्षपितमिश्रस्याष्टात्रिंशच्छतसत्वस्थाने भुज्य-

- और तीसरा भंग तथा सातवाँ और छठा भंग समान है । इन तीनके बिना चार भंग होते हैं ।  
चारों गति सम्बन्धी जो बारह भंग कहे थे उनमें-से पाँच भंग यहाँ नहीं होते । दूसरी पंक्ति  
सम्बन्धी अबद्धायुके पाँच स्थानोंमें-से भुज्यमान आयु बिना तीन आयु और तीर्थकर बिना  
२० एक सौ चवालीस प्रकृतिरूप पहला स्थान है । अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर एक सौ  
चालीस प्रकृतिरूप दूसरा स्थान है । इन दोनोंमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार-चार

१. मुपेत्त द्वादश भंगं लोळु षट्ठियिमुववु । अय्दु षट्ठियिसव बुदत्थं ॥

मिथप्रकृतियुग्मितु दशप्रकृतिगळु सत्त्वरहितमाणि नूर मूवत्तेडु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्य-  
मानमनुष्यनु कृतकृत्यापेक्षयिदं नारकनु तिर्ध्यचनु देवनुमं ब नालकुं भंगंगळप्पुवु । सम्यक्त्वप्रकृतियुग्मं  
अपिसिद क्षायिक सम्यग्दृष्टिर्ग धितरायुस्त्रितयमुं तीर्थमुमनंतानुबन्धिचतुष्कमुं दर्शनमोहनीयत्रय-  
मंतु पन्नोडु प्रकृतिसत्त्वरहितमाणि नूरमूवत्तेडु प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमल्लियुं चतुर्गतिजरुगळ  
भेवविदं नालकुं भंगंगळप्पुवु । इंतु प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु त्रयोविंशति भंगंगळप्पुवु । ५  
द्वितीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु सप्तत्रिंशद्भंगंगळप्पुवु । इतरतृतीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु प्रथम-  
पंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु पेळ्ळदंते त्रयोविंशति भंगंगळप्पुवु । चतुर्थपंक्तिद्वयद दशस्थानंगळोळु  
द्वितीयपंक्तिद्वयद दशस्थानंगळोळु पेळ्ळद सप्तत्रिंशद्भंगंगळप्पुवंतसंयतगुणस्थानदोळु सत्त्वस्थानंगळु  
नाल्वत्तरोळु पुनरुक्त समविहीनभंगंगळु नूरिप्पत्तप्पुवु ॥

अनंतरं देशसंयतावि गुणस्थानत्रयदोळु भंगंगळं पेळ्ळरु :—

१०

देसतिएसुवि एवं भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो ।

पडिरासि विदियतुरियस्सादीविदियम्मि दो भंगा ॥३८२॥

देशव्रतादित्रयेष्वेवं भंगा एकैके देशव्रतस्य पुनः । प्रतिराशि द्वितीयपुरीयस्यादी द्वितीये  
द्वौ भंगौ ॥

मानमनुष्यः कृतकृत्यवेदकनारकतिर्यग्देवाश्चेति चत्वारः । क्षायिकसम्यग्दृष्टेः सप्तत्रिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि चतु- १५  
तुर्गतिजमेदाच्चत्वारः । एवं इतरतृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु प्रथमपंक्तिद्वयदशस्थानवत्त्रयोविंशतिभूत्वा चतुर्थ-  
पंक्तिद्वयदशस्थानेषु द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानवत्सप्तत्रिंशद्भूत्वा चासंयते चत्वारिंशत्सत्त्वस्थानेषु समपुनरुक्तान्विना  
विंशत्युत्तरशतं भंगाः स्युः ॥३८१॥

देशसंयतादित्रये प्रतिस्थानमेकको भंगः । देशसंयते पुनर्द्वितीयपंक्तिद्वयस्य चतुर्थपंक्तिद्वयस्य च बद्धा-  
बद्धायुषोः प्रथमद्वितीयस्थानबीद्दौ द्वौ भंगौ । तथाहि—

२०

भंग होते हैं । मिथ्यात्वका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान है ।  
वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु एक ही भंग होता है । मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ  
अड़तीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है । वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु और कृतकृत्य वेदक  
सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा भुज्यमान नरकायु तिर्यचायु देवायु इस प्रकार चार भंग होते हैं ।  
सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय होनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टीके एक सौ सैंतीस प्रकृतिरूप पाँचवाँ २५  
स्थान है । वहाँ भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं ।

तीसरी पंक्तिमें पहली पंक्तिके बद्धायु अबद्धायुरूप दस स्थानोंमें आहारक चतुष्कको  
घटानेपर दस स्थान होते हैं । उनमें प्रथम पंक्तिकी तरह तेईस भंग जानना । चौथी पंक्तिमें  
दूसरी पंक्तिके बद्धायु अबद्धायु रूप दस स्थानोंमें आहारक चतुष्करूप चार-चार प्रकृति  
घटानेपर दस स्थान होते हैं । उनमें दूसरी पंक्तिकी तरह सैंतीस भंग होते हैं । इस प्रकार ३०  
असंयतमें सब मिलकर चालीस सत्त्वस्थान और एक सौ बीस भंग होते हैं ॥३८१॥

देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन तीन गुणस्थानोंमें असंयतकी तरह ही चालीस-चालीस  
स्थान होते हैं । और प्रत्येक स्थानमें एक-एक भंग होता है । विशेष इतना है कि देशसंयतमें

- देशसंयतगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळं प्रतिस्थानमे-  
कैकभंगगळपुवु । देशसंयतगुणस्थानदोळु मत्तं द्वितीयपंक्तिद्वयद चतुर्थपंक्तिद्वयद बद्धाबद्धायुष्यरु-  
गळ प्रथम द्वितीयस्थानगळोळु एरडेरडु भंगगळपुवु । अर्धे ते दोडे देशसंयतादिगुणस्थानत्रयदोळम-  
संयतगुणस्थानदोळु पेळदंते दुग छक्क सत्त अटठ णव रहियमे दु तिर्थंगायुष्यमुं नरकायुष्यमुमं-  
५ तेरडु मा घेरडुमनंतानुबंदिचतुष्टयमुमंतरुमा आरं मिथ्यात्वप्रकृतिपुमंतेळुमा एळुं मिश्रप्रकृति-  
पुमंते दुमा एंटुं सम्यक्त्वप्रकृतिपुमंतो भत्तुं प्रकृतिगळु क्रमदिदं सत्त्वरहितगळागि नूर नाल्वत्तारं  
नूरनाल्वत्तेरडुं नूरनाल्वत्तो दु नूरनाल्वत्तु नूरमूवत्तो भत्तुं प्रकृतिस्त्वस्थानगळक्कुमेके दोडे  
असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्तितगळु दशनंमोहनीय अपणाप्रारंभकरपुदरिदमा पंचसत्त्वस्थानगळं  
तिर्थ्यक्कागि केळगे केळगे चतुः प्रतियं माडि स्थापिसिदोडे बद्धायुष्यं सत्त्वस्थानगळपुवल्लि  
१० मत्तो दो दायुष्यगळं कुंदिसियवर केळगे केळगे स्थापिसिदोडबद्धायुष्यं स्थानगळपुवल्लि  
प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानगळोळु तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुं सत्त्वमुटपुदरिदं शून्यमं कळेदु द्वितीय-  
पंक्तिद्वय दशस्थानगळोळु प्रत्येकं तीर्थमो दं कळेदु तृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानगळोळु तीर्थमनिरि-  
सियाहारचतुष्कमं कळेदु चतुर्थपंक्तिद्वय दशस्थानगळोळु तीर्थमुमाहारचतुष्कमुमंते प्रकृतिपंच-  
कमं कळेदु स्थापिसिदे टुं पंक्तिगळ बद्धायुष्यरुगळ पंचपंच स्थानगळोळु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यं  
१५ बद्धदेवायुष्यने बो दो दे भंगगळपुवेके दोडे भुज्यमानमनुष्य देशसंयतादिगळगे देवायुष्यं बध्यमानम-  
ल्लदितरायुस्त्रितयं बध्यमानायुष्यमादोडे देशव्रतमुं महाव्रतमुमिल्लपुदरिदं । अबद्धायुष्यरुगळ पंच

- तद्गुणस्थानत्रयेऽप्यसंयतवद् दुगळक्कसत्तअट्टनव प्रकृतयो हीना भूत्वा पंचस्थानानि तिर्थगघोषश्चतुः-  
प्रतिकं कृत्वा स्याप्यानि बद्धायुष्यस्य भवन्ति । तत्र पुनरेकैकायुरपनीय तेषामवस्थापितेष्वबद्धायुष्यस्य भवन्ति ।  
तत्र प्रथमपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तीर्थाहाराः संतीति शून्यमपनीय द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तीर्थमपनीय  
२० तृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तन्निस्त्रिआहारकचतुष्कमपनीय चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषु भगमपनीय स्थापिताष्टपंक्तीनां  
बद्धायुष्यपंचपंचस्थानेषु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यबद्धदेवायुरित्येक एव, इतरायुस्त्रये बध्यमाने देशमहाव्रताभावात् ।  
अबद्धायुष्यपंचपंचस्थानेषु भुज्यमानमनुष्य इत्येक एव । पुनर्देशसंयते तीर्थरहितद्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु

बद्धायु और अबद्धायुकी दूसरी दो पंक्ति और चौथी दो पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें दो-दो भंग होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

- २५ देशसंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें असंयतकी तरह दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृति  
रहित पाँच स्थान बरोबर लिखकर उनके नीचे-नीचे चार पंक्ति बद्धायुकी करो । और उनके  
नीचे बध्यमान एक-एक आयु घटाकर चार पंक्ति अबद्धायुकी करो । उनमेंसे पहली पंक्ति  
तीर्थकर आहारक सहित है । दूसरी पंक्तिमें तीर्थकर प्रकृति घटाना । तीसरी पंक्तिमें तीर्थकर  
मिलाकर आहारक चतुष्क घटाना । चौथी पंक्तिमें तीर्थकर और आहारक चतुष्क घटाना ।  
३० इस प्रकार बद्धायु अबद्धायुकी आठ पंक्तियोंके चालीस स्थान हुए । उनमेंसे जो बद्धायुके  
बीस स्थान हैं उनमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु यह एक-एक ही भंग होता है ।  
क्योंकि अन्य तीन आयुके बन्धमें देशव्रत और महाव्रत नहीं होते । तथा अबद्धायुके जो बीस  
स्थान हैं उनमें भुज्यमान मनुष्यायु यह एक-एक ही भंग होता है । किन्तु इतना विशेष है कि

पंच स्थानंगळोळु भुज्यमानमनुष्यनैर्बोर्दोर्दे भंगंगळप्पुवु । मत्तं देशसंयत गुणस्थानदोळु तीर्थ-  
रहितंगळप्पु द्वितीयपंक्तिद्वयस्थानंगळोळु चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानंगळोळमवर प्रथमद्वितीय-  
स्थानद्वयंगळोळु भुज्यमानमनुष्यनैर्बद्धदेवायुष्यनु भुज्यमानतिर्य्यचं बद्धदेवायुष्यनैर्बरेडेरडुं भंगंगळुं  
भुज्यमानमनुष्यनैर्भुज्यमानतिर्य्यचमुर्देजियेरडेरडुं भंगंगळप्पुवु । वितागुत्तं विरलु देशसंयतन  
नाल्वत्तं स्थानंगळोळु नाल्वत्तं भुज्यमानमनुष्यनैर्भुज्यमानतिर्य्यचमुर्देजियेरडेरडुं भंगंगळप्पुवु । प्रमत्तसंयतंगं नाल्वत्तं स्थानंगळोळु नाल्वत्तं भंगंग- ५  
ळप्पुवु । अप्रमत्तसंयतंगं नाल्वत्तं स्थानंगळोळु नाल्वत्तं भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि :-

देशसंयतंगे—

प्रमत्तसंयतंगे—

|        | ०<br>२     | ०<br>६   | ०<br>७   | ०<br>८   | ०<br>९   | ०<br>२     | ०<br>६   | ०<br>७   | ०<br>८   | ०<br>९   |
|--------|------------|----------|----------|----------|----------|------------|----------|----------|----------|----------|
| सतीर्थ | ब १४६<br>१ | १४२<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | ब १४६<br>१ | १४२<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ |
|        | अ १४५<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ | अ १४५<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ |
| अतीर्थ | ब १४५<br>२ | १४१<br>२ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ | ब १४५<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ |
|        | अ १४४<br>२ | १४०<br>२ | १३९<br>१ | १३८<br>१ | १३७<br>१ | अ १४४<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ | १३७<br>१ |
| सतीर्थ | ब १४२<br>१ | १३८<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | ब १४२<br>१ | १३८<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ |
|        | अ १४१<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ | अ १४१<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ |
| अतीर्थ | ब १४१<br>२ | १३७<br>२ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ | ब १४१<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ |
|        | अ १४०<br>२ | १३६<br>२ | १३५<br>१ | १३४<br>१ | १३३<br>१ | अ १४०<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ | १३३<br>१ |

चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषु च प्रथमद्वितीयस्थानयोर्भुज्यमानमनुष्यनैर्बद्धदेवायुष्यनुभुज्यमानतिर्य्यचमुर्देजियेरडेरडुं भुज्य-  
मानमनुष्यनैर्भुज्यमानतिर्य्यचो च भवतः । एवं सति देशसंयतस्य चत्वारिंशत्स्थानानामष्टचत्वारिंशद्भंगा  
भवति । तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोस्तु चत्वारिंशत्स्थानानां चत्वारिंशदेव भवतीति ज्ञातव्यं ॥३८२॥ १०

देशसंयतमें तीर्थकर रहित दूसरी पंक्तिके दस स्थानोंमें-से और चौथी पंक्तिके दस स्थानोंमें-  
से पहले और दूसरे दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं । सो बद्धायुकी दूसरी और चौथी  
पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु, भुज्यमान तिर्य्यायु  
बध्यमान देवायु ये दो-दो भंग होते हैं । तथा अबद्धायुकी दूसरी और चौथी पंक्तिके पहले  
और दूसरे स्थानमें भुज्यमान मनुष्यायु और भुज्यमान तिर्य्यायु ये दो-दो भंग होते हैं । इस ११  
प्रकार देशसंयतमें चालीस स्थानोंके अड़तालीस भंग होते हैं । किन्तु प्रमत्त और अप्रमत्तमें  
चालीस-चालीस स्थानोंके चालीस-चालीस भंग हैं ॥३८२॥

## अप्रमत्तसंयतंग—

| ०<br>२     | ०<br>६   | ०<br>७   | ०<br>८   | ०<br>९   |
|------------|----------|----------|----------|----------|
| ब १४६<br>१ | १४२<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ |
| अ १४५<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ |
| ब १४५<br>१ | १४१<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ |
| अ १४४<br>१ | १४०<br>१ | १३९<br>१ | १३८<br>१ | १३७<br>१ |
| ब १४२<br>१ | १३८<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ |
| अ १४१<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ |
| ब १४१<br>१ | १३७<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ |
| अ १४०<br>१ | १३६<br>१ | १३५<br>१ | १३४<br>१ | १३३<br>१ |

अनंतरमुपशमकरुगळप्प अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायर गळे, ब  
नालकुं गुणस्थानवर्तिगळोळ बद्धाबद्धायुष्यरुगळार्ग सत्वस्थानंगळुमनवर भंगंगळुमं पेळत्वेडि  
मोदलोळपूर्वकरणंगे पेळवपरु :—

दुगच्छककतिणिगवगेणूणाऽपुव्वस्स चउपडिं किच्चा ।

णभमिगि चउपणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३८३॥

द्विकषट्कत्रिवर्गोत्थानमपूर्वकरणस्य चतुः प्रति कृत्वा । नभ एक चतुःपंचरहितं बद्धस्येतर-  
स्यैकोनं ॥

अपूर्वकरणस्य उपशमकापूर्वकरणंगे द्विकषट्कत्रिवर्गमात्रप्रकृतिगळिवमूनमप्प सत्वस्थान-  
त्रितयमं चतुःप्रतिकमं माडि प्रथमपंक्तियोळु शून्यमं द्वितीयपंक्तियोळु तीर्थमोदं तृतीयपंक्तियोळु  
१० आहारकचतुष्टयमं चतुर्थपंक्तियोळाहारकचतुष्टयमु तीर्थमुमंतय्दुं कळेदोडे बद्धायुष्यरुगळार्ग  
सत्वस्थानंगळप्पुव्वबद्धायुष्यरुगळार्ग आ नालकुं पंक्तिगळ तंतम्म केळगोवोदु आयुष्यमं कुंविसि

अयोपशमकचतुष्के वक्तुं तावदपूर्वकरणस्याह—

उपशमकापूर्वकरणस्य द्विकषट्कत्रिवर्गोत्थानत्रयं चतुःप्रतिकं कृत्वा प्रथमपंक्तौ शून्ये द्वितीयपंक्तौ  
तीर्थे तृतीयपंक्तावाहारकचतुष्के चतुर्थपंक्तावुभयस्मिन्चापनीते बद्धायुष्काणां सत्वस्थानानि भवन्ति । अबद्धा-

१५ आगे उपशमश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें कहनेके लिये प्रथम अपूर्वकरणमें कहते हैं—

उपशमक अपूर्वकरणमें दो, छह और तीनका वर्ग नौ इन प्रकृतियोंसे रहित तीन  
स्थानोंकी चार पंक्तियां करो । पूर्ववत् प्रथम पंक्तिमें शून्य घटाना । दूसरी पंक्तिमें एक

स्थापिसिद्धोडवि नाल्कुं पंक्तिगळप्पुवत्ते'दुं पंक्तिगळगे प्रतिपंक्ति प्रकृतिसत्त्वस्थानंगळ मूर मूरागुत्तं विरलिप्पत्तनाल्कुं सत्त्वस्थानंगळप्पुवु ॥

अनंतरं सत्वरहितप्रकृतिगळुमं भंगंगळुमं पेळदपरु :—

णिरयतिरियाउ दोण्णिवि पढमकसायाणि दंसणतियाणि ।

हीणा एदे णेया भंगा एक्केयकगा होति ॥३८४॥

५

नरकतिर्यंगायुर्द्वयमपि प्रथमकषाया दर्शनमोहनीयत्रयाणि हीनान्येतानि ज्ञेयानि भंगा एकैके भवन्ति ॥

नरकायुष्यमुं तिर्थागायुष्यमुमे'बेरडुमा येरडुं प्रथमकषायंगळु नाल्कुमंताह मा आहं प्रकृति- गळुं दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतो भत्तुं प्रकृतिगळु हीनमागि क्रमदिदं नूरनाल्वत्ताहं नूरनाल्वत्तेरडुं नूर मूवत्तो भत्तुं प्रकृतिसत्त्वस्थानत्रितयमप्पुवे'दरियल्लडुवुवु । बद्धायुः स्थानपंक्तिगळु नाल्करोळु १० भुज्यमानमनुष्यं बद्धदेवायुष्यने'बो'दो'दे भंगंगळरियल्लडुवुवु । आ पंक्तिचतुष्टयद तंतम्म केळगण अबद्धायुःस्थानत्रितयचतुःपंक्तिगळोळु भुज्यमानमनुष्यने ये'बो'दो'दे भंगमागुत्तिरलिप्पत्तनाल्कुं स्थानंगळिगप्पत्तनाल्के भंगंगळप्पुवु ॥

युष्काणां तच्चतुःपंक्तीनां स्वस्याधः एकैकस्मिन्नायुष्यपनीते चतुःपंक्तयो भवन्ति । एवमष्टपंक्तीनां प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि भूत्वा चतुर्विंशतिस्थानानि भवन्ति ॥३८३॥ अथ ता हीनप्रकृती भंगांश्चाह—

१५

नरकतिर्यंगायाणी तच्च प्रथमकषायचतुष्कं च तानि च दर्शनमोहत्रयं च भूमिनि क्रमेण षट्चत्वारिंशच्छतद्वाचस्वारिंशच्छतैकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेष्वपनेतव्यानि । बद्धायुःस्थानपंक्तिचतुष्के भुज्यमान- मनुष्यबध्यमानदेवायुरित्येकैक एव भंगः । तत्पंक्तिचतुष्कस्याधः अबद्धायुःस्थानत्रयचतुःपंक्तिषु भुज्यमान- मनुष्य इत्येकैक एव भंगः । एवं सति स्थानानि भंगाश्च चतुर्विंशतिर्भवन्ति ॥३८४॥

तीर्थंकर प्रकृति घटाना । तीसरी पंक्तिमें आहारक चतुष्क घटाना । चौथी पंक्तिमें तीर्थंकर २० और आहारक चतुष्क घटाना । इस तरह बद्धायुके बारह स्थान हुए । और अबद्धायुकी चारों पंक्तियोंमें सब स्थानोंमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर बारह स्थान होते हैं । इस प्रकार आठ पंक्तियोंके तीन-तीन स्थान होनेसे सब चौबीस स्थान होते हैं ॥३८३॥

आगे उन घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम और भंग कहते हैं—

नरकायु तिर्थागायु घटानेपर एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान होता है । दो २५ ये आयु और अनन्तानुबन्धी चतुष्क घटानेपर एक सौ बयालीस रूप दूसरा स्थान होता है । ये छह और तीन दर्शनमोह इन तीनों को घटानेपर एक सौ उनतालीस रूप तीसरा स्थान होता है । इन तीनों स्थानोंकी पूर्ववत् चार पंक्ति करो । तब बद्धायुके बारह स्थान हुए । इन सबमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर अबद्धायुके बारह स्थान होते हैं । इन चौबीस स्थानोंमें भंग एक-एक ही है । बद्धायुके स्थानोंमें तो भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु यह एक भंग ३० है । अबद्धायु स्थानोंमें भुज्यमान मनुष्यायु यह एक ही भंग होता है । इस प्रकार उपशम अपूर्वकरणमें चौबीस स्थान चौबीस भंग होते हैं ॥३८४॥

इसी प्रकार उपशमक अपूर्वकरणकी तरह उपशम श्रेणिके अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-



एवं तिसु उवसमगे खवगापुव्वस्मि दसहि परिहीणं ।

सव्वं चउपडि किञ्चा णमभेक्कं चारि पण हीणं ॥३८५॥

एवं त्रिषूपशमकेषु क्षपकापूर्वकरणे दशभिः परिहीनं । सर्वं चतुः प्रति कृत्वा नभ एकं चत्वारि पंचहीनं ॥

- ५ इतुपशमकापूर्वकरणगे पेळदंते शेषोपशमकानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशान्तकषायरु-  
गळे ब नालकुं गुणस्थानवर्त्तिगळं प्रत्येकमिप्पत्तनालकुं इप्पत्तनालकुं सत्त्वस्थानगळुमिप्पत्तनालकु-  
मिप्पत्तनालकुं भंगगळुमपुव्वितुपशमश्रेणिदोळु नालकुं गुणस्थानवर्त्तिगळं सत्त्वस्थानगळं भंग-  
गळं संदृष्टि इदुः—

| उपशमकचतुष्कवके→ |     | २४।२४।२४।२४। | २४।२४।२४।२४। |
|-----------------|-----|--------------|--------------|
| *               | ०   | ०            | ०            |
|                 | २   | ६            | ९            |
| बद्ध            | १४६ | १४२          | १३९          |
|                 | १   | १            | १            |
| अव              | १४५ | १४१          | १३८          |
|                 | १   | १            | १            |
| बद्ध            | १४५ | १४१          | १३८          |
|                 | १   | १            | १            |
| अव              | १४४ | १४०          | १३७          |
|                 | १   | १            | १            |
| ० बद्ध          | १४२ | १३८          | १३५          |
|                 | १   | १            | १            |
| ४ अव            | १४१ | १३७          | १३४          |
|                 | १   | १            | १            |
| ० बद्ध          | १४१ | १३७          | १३४          |
|                 | १   | १            | १            |
| ५ अव            | १४० | १३६          | १३३          |
|                 | १   | १            | १            |

- क्षपकापूर्वकरणे क्षपकश्रेणियोळु अपूर्वकरणगे भुज्यमानमनुष्यायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितय-  
१० मुमनंतानुबधिकषायचतुष्कमुं दर्शनमोहनोयत्रयमुमनु दशप्रकृतिगळिदं परिहीनमाणि नूर सूवत्ते दु  
प्रकृतिस्थानमेयक्कुमेके दोडसंयतादि नालकुं गुणस्थानवर्त्तिगळे प्रथमकषायचतुष्टयविसंयोजकं

एवमुपशमकापूर्वकरणवत् अनिवृत्तिकरणाद्युपशमकत्रयेऽपि स्थानानि भंगाश्च चतुर्विंशतिश्चतुर्विंश-  
तिर्भवन्ति । क्षपकापूर्वकरणे भुज्यमानमनुष्यायुष्यादितरायुस्त्रयानंतानुबधिकचतुष्कदर्शनमोहत्रयाभावात्सत्त्वस्थान-

- साप्पराय और उपशान्त मोह नामक गुणस्थानोंमें भी स्थान और भंग चौबीस-चौबीस  
१५ होते हैं ।

क्षपक अपूर्वकरणमें भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु-अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तीन  
दर्शनमोह इन दस रहित एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप एक ही सत्त्वस्थान होता है । उसकी

दर्शनमोहनोद्यत्रयक्षपणाप्रारंभकरुमपुर्वारिदमा दशप्रकृतिगळु क्षपकश्रेणिप्रिदकेळगे कडिसत्त्वदु-  
वपुर्वारिदमपूर्वकरणनोळु नूरमूवत्ते दं प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुमत्तं चतुःप्रतिकसं माडि प्रथमस्थान-  
दोळु तीर्थमाहारकचतुष्टयमुं सत्त्वमुंदे दु शून्यमं कळेदु द्वितीयस्थानदोळु तीर्थमिल्लाहारक  
चतुष्टयसत्त्वमुंदे दो वं कळेदु तृतीयस्थानदोळु तीर्थमुंटाहारकचतुष्टयमिल्ले दु नालकं कळेदु  
चतुर्थसत्त्वस्थानदोळु तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुमिल्ले ददुमं कळेदु प्रकृतिसत्त्वस्थानंगळु नूर- ५  
मूवत्ते दं नूर मूवत्तेळु नूरमूवत्तनालकु नूरमूवत्तमूरं प्रकृतिसत्त्वस्थानंगळु नालकेयपुवु । ई नालकु  
स्थानंगळोळु भुज्यमानमनुष्यनं बो दो वं भंगमापुत्तिरलु नालकु स्थानंगळु नालके भंगंगळपुवु ।  
संदृष्टि :—

| क्ष० अपू |
|----------|
| १३८      |
| १        |
| १३७      |
| १        |
| १३४      |
| १        |
| १३३      |
| १        |

एदे सत्तद्वाणा अणियट्टिस्सवि पुणो वि खविदेवि ।

सोलस अट्टेक्केक्कं छक्केक्कं एक्कमेक्कं तथा ॥३८६॥

१०

एतानि सत्त्वस्थानानि अनिवृत्तेरपि पुनरपि क्षपितेपि षोडशाष्टकैकं षष्टैकमेकमेकं तथा ।

ई क्षपकानिवृत्तिकरणंगे पेळद तालकु सत्त्वस्थानंगळु क्षपकानिवृत्तिकरणंगमपुवु । मत्तं  
षोडश अष्ट एक एक षट्क एक एक एक प्रकृतिगळु क्षपियिसरुपडुत्तं विरलु क्रमदिद नूरिप्पत्तेरडुं

मष्टात्रिशच्छतकं स्यात् । तच्चतुःप्रतिकं कृत्वा प्रथमे तीर्थाहारः समस्तीति शून्यमपनयेत्, द्वितीये तीर्थं, तृतीये  
आहारकचतुष्कं, चतुर्थे उभयं एवं सत्त्वस्थानानि अष्टात्रिशच्छतकसमत्रिशच्छतकचतुस्त्रिशच्छतकत्रयस्त्रिशच्छत- १५  
कानि चत्वारि तेषु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यायुरेवेति भंगं अपि चत्वारः ॥३८५॥

एतानि क्षपकापूर्वकरणोक्तचत्वारि स्थानानि क्षपकानिवृत्तिकरणस्यापि भवन्ति पुनः षोडशाष्टकैकेषु  
षट्कैकैकेषु क्षपितेषु क्रमेण द्वाविंशतिशतकचतुर्दशशतकत्रयोदशशतकद्वादशशतकषडुत्तरशतकपंचोत्तरशतकचतु-

चार पंक्ति करना । प्रथममें तीर्थकर और आहारक चतुष्क हैं अतः शून्य घटाना । दूसरीमें  
तीर्थकर, तीसरीमें आहारक चतुष्क, चौथीमें दोनों घटानेपर एक सौ अड़तीस, एक सौ २०  
सैंतीस, एक सौ चौतीस और एक सौ तैंतीस प्रकृतिरूप चार स्थान होते हैं । उनमेंसे प्रत्येक-  
में भुज्यमान मनुष्यायु एक-एक ही भंग होता है । अतः भंग भी चार ही हैं ॥३८५॥

क्षपक अपूर्वकरणमें जो ये चार स्थान कहे हैं ये क्षपक अनिवृत्तिकरणमें भी होते हैं ।  
फिर सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक प्रकृतियोंका क्षय करनेपर एक सौ बाईस,  
एक सौ चौदह, एक सौ तेरह, एक सौ बारह, एक सौ छह, एक सौ पाँच, एक सौ चार, एक २५

नूरपदिनाल्कुं नूरपदिमूरुं नूरपनेरडुं नूराहं नूरय्कुं नूरनाल्कुं नूरमूरु प्रकृतिसत्वस्थानंगळप्पुववं  
प्रत्येकं चतुःप्रतिकं माडि णभमेक्कं चारि पण परिहीणमं दु स्यापिसुत्तं विरलु संबुष्टिरचन यित्तिक्कुं

|       |     |     |           |     |     |     |     |     |
|-------|-----|-----|-----------|-----|-----|-----|-----|-----|
| स १३८ | १२२ | ११४ | ११३       | ११२ | १०६ | १०५ | १०४ | १०३ |
| अ १   | १२१ | ११३ | ११२<br>२। | १११ | १०५ | १०४ | १०३ | १०२ |
| स १३४ | ११८ | ११० | १०९       | १०८ | १०२ | १०१ | १०० | ९९  |
| अ १३३ | ११७ | १०९ | १०८<br>२। | १०७ | १०१ | १०० | ९९  | ९८  |

अनंतरं अनिवृत्तिकरणन भूवत्तारुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळोळु भंगंगळं गाथाद्वयदिवं  
पेळदपरुः—

- ५ भंगा एकैकका पुण णउंस्सयक्खविदचउसु ठाणेसु ।  
विदियतुरियेसु दोहो भंगा तित्थयरहीणेसु ॥३८७॥
- भंगा एकैके पुनन्नंपुंसकक्षपित चतुषु स्थानेषु । द्वितीयतुर्थयो द्वौ द्वौ भंगौ तीर्थकर  
हीनयोः ॥

ई क्षपकानिवृत्तिकरणसत्वस्थानंगळु भूवत्तारोळं भंगंगळु प्रत्येकमो'वो'वेयप्पुवत्ति  
१० नपुंसकवेदमं क्षपिसिदे नाल्कुं सत्वस्थानंगळोळु तीर्थकरसत्वरहिगळप्प द्वितीयचतुर्थस्थानवोळेर-  
डेरडु भंगंगळप्पुववं ते दोड पेळदपरुः—

एतत्तरशतकश्रुत्तरशतकान्यपि भवन्ति । तानि सर्वाणि चतुःप्रतिकानि कृत्वा णभमेक्कचारिपणहीणमिति स्याप्यानि  
॥३८६॥ अमीषु षट्त्रिंशत्सत्वस्थानेषु भंगान् गाथाद्वयेनाह—

- एतेषु क्षपकानिवृत्तिकरणस्य षट्त्रिंशत्सत्वस्थानेषु भंगः एकैकः तत्र क्षपितनपुंसकवेदचतुःस्थानेषु  
१५ तीर्थकरत्वोन्निद्वितीयचतुर्थयोर्द्वौ द्वौ ॥३८७॥ तद्यथा—

सौ तीन रूप आठ स्थान होते हैं । इनकी चार पंक्ति करके प्रथम पंक्तिमें शून्य, दूसरीमें तीर्थकर, तीसरीमें आहारक चतुष्क, चौथीमें तीर्थकर आहारक चतुष्क घटाना । इस प्रकार चारों पंक्तियोंके बत्तीस स्थान हुए । चार अपूर्वकरणवाले स्थान मिलानेपर क्षपक अनिवृत्तिकरणमें छत्तीस स्थान होते हैं ॥३८६॥

- २० क्षपक इन अनिवृत्तिकरणके छत्तीस स्थानोंमें दो गाथा द्वारा भंग कहते हैं—

क्षपक अनिवृत्तिकरणके छत्तीस स्थानोंमें एक-एक भंग होता है किन्तु इतना विशेष है कि जहाँ नपुंसक वेदका क्षय कहा है उन चार पंक्ति सम्बन्धी चार स्थानोंमें तीर्थकर रहित दूसरी और चौथी पंक्ति सम्बन्धी दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं ॥३८७॥

उन्हें ही कहते हैं—

- २५ १. स्त्रीवेदक्षपणायोग्यचतुर्थस्थान । ऊर्ध्ववागिदं ।

थीपुरिसोदयचडिदे पुव्वं संढं खवेदि थी अत्थि ।

संढस्सुदये पुव्वं थीखविदं संढमत्थित्ति ॥३८८॥

स्त्रीपुरुषोदयचटिते पुव्वं षंडं क्षपयति स्त्रीवेदोस्ति षंडस्योदये पुव्वं स्त्रीक्षपितं षंडम-  
स्तोति ॥

स्त्रीवेदोदयप्रदिदमुं पुरुषवेदोदयविदमुं क्षपकश्रेणियनेरिदवगंगळु मुन्नं षंडवेदमं क्षपिसुवर । ५  
स्त्रीवेदं सत्वमुंदु । षंडवेदोदयविदं क्षपकश्रेणियनेरिदोडे मुन्नं स्त्रीवेदं क्षपितत्पट्टु षंडवेदं सत्व-  
मुंदे वित्तेरडेरडं भंगंगळप्पुव्वतागुत्तं विरलनिवृत्तिकरणगुभयश्रेणियोळं कूडि द्वाषष्टिभंगंगळप्पुव्वु ।  
ई पक्षदोळु क्षपकानिवृत्तिकरणगे मायासत्वरहितस्थानंगळु नात्तिकल । चदुसेक्कं वादरे येदु  
पेळवाचाय्यनं पक्षदोळनिवृत्तिकरणगे मायारहितचतुःस्थानंगळुमोळवु ।

अनंतरं क्षपकसूक्ष्मसांपरायंगं क्षीणकषायंगं सत्वस्थानंगळं पेळवपर :—

१०

अणियट्टिचरिमठाणा चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स ।

ते इमि दोण्णिविहीणं खीणस्सवि होति ठाणाणि ॥३८९॥

अनिवृत्तिचरमस्थानानि चत्वार्यप्येकहीनानि सूक्ष्मस्य । तान्येकद्विहीनानि क्षीणकषाय-  
स्यापि भवन्ति स्थानानि ॥

क्षपकानिवृत्तिकरणन संज्वलनमानरहितमप्य नाल्कुं सत्वस्थानंगळोळु संज्वलनमायेयोदु । १५  
सत्वरहितंगळादुवादोडे सूक्ष्मसांपरायंगे नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुव्वु । संदृष्टि :—

स्त्रीवेदोदयेन पुंवदोदयेन वा क्षपकश्रेणिमाकूडाः पूर्वं षंडवेदं क्षपयति स्त्रीवेदसत्त्वं स्यात् । षंडवेदोद-  
येनाकूडाः पूर्वं स्त्रीवेदं क्षपयति षंडवेदसत्त्वं स्यात् । तेन द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । एवं सत्यनिवृत्तिकरणस्योभय-  
श्रेण्योर्मिलित्वा द्वाषष्टिभंगा भवन्ति । अस्मिन्पक्षे क्षपकानिवृत्तिकरणस्य मायोनचत्वारि स्थानानि न संति  
चदुसेक्के वादरे इति पक्षे संति ॥३८८॥ अथ क्षपकसूक्ष्मसांपरायक्षीणकषाययोराह—

२०

क्षपकानिवृत्तिकरणस्य संज्वलनमानरहितचत्वारि स्थानानि संज्वलनमायाहीनानि भूत्वा सूक्ष्मसांपरायस्य

जो जीव स्त्रीवेद या पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि चढ़ते हैं वे पहले नपुंसक वेदका  
क्षपण करते हैं । उनके पूर्वोक्त दोनों स्थानोंमें स्त्रीवेदका सत्त्व रहता है । किन्तु जो नपुंसक  
वेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणि चढ़ते हैं वे पहले स्त्रीवेदका क्षपण करते हैं उनके नपुंसकवेदका  
सत्त्व रहता है । इससे दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं । इस प्रकार क्षपकके छत्तीस स्थानोंके २५  
अड़तीस भंग और उपशमकके चौबीस भंग मिलाकर अनिवृत्तिकरणमें बासठ भंग होते हैं ।  
इस पक्षमें क्षपक अनिवृत्तिकरणमें माया रहित चार स्थान नहीं होते । किन्तु 'चदुसेक्के  
वादरे' इत्यादि गाथा आगे कहेंगे । उस पक्षकी अपेक्षा ये चार स्थान होते हैं । यह कथन  
आगे करेंगे ॥३८८॥

आगे क्षपक सूक्ष्म साम्पराय और क्षीणकषायमें कहते हैं—

३०

क्षपक अनिवृत्तिकरणमें जो संज्वलन मानरहित चार स्थान कहे थे, उन चार स्थानों-  
में-से संज्वलन मायाको घटानेपर सूक्ष्मसाम्परायके चार स्थान होते हैं । वे एक सौ दो, एक

|      |
|------|
| सू = |
| १०२  |
| १०१  |
| ९८   |
| ९७   |

तान्येकविंशतिनां आ सूक्ष्मसागरायन संज्वलनगच्छरहितस्थानंगळु नालकुं संज्वलनलोभ-  
कषायमोहरिदं हीनंगळुआदौ क्षीणकषायगे द्विचरमसमयपर्यंतं नालकु सत्वस्थानंगळुपुत्रु ।  
संदृष्टिः—

|          |
|----------|
| क्षीण क० |
| द्वि २०  |
| १०१      |
| १००      |
| ९७       |
| ९६       |

ई नालकु स्थानंगळु प्रत्येकं निद्राप्रचलावरणद्वयरहितगळुआदौ क्षीणकषायन चरमसमय-  
५ सत्वस्थानंगळु नालकुपुत्रु । संदृष्टिः—

|          |
|----------|
| क्षी चरम |
| ९९       |
| ९८       |
| ९५       |
| ९४       |

अनंतरं सयोगायोगिकेवलमुणस्थानंगळोळु सत्वस्थानंगळु पेळदपरः—

ते चोदसपरिहीणा जोगिस्त अजोगिचरिमगो वि पुणो ।

वावत्तरिमडसट्टिं दुसु दुसु हीणेषु दुग दुगा भंगा ॥३९०॥

तानि चतुर्दशपरिहीनानि योगिनोऽयोगिचरमेवि पुनर्द्वासप्ततिसष्टषष्टिं द्वयोर्द्वयोर्हीनेषु

१० द्वौ द्वौ भंगौ ॥

भवति । एतानि चत्वारि संज्वलनलोभहीनानि क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्यंतं भवन्ति । एतानि पुनर्द्वाप्रचला-  
रहितानि चरमसमयस्य भवन्ति ॥३८९॥ अथ सयोगायोगयोराह—

१५ सौ एक, अठानवे और सत्तानवे प्रकृतिरूप हैं । इन चारों स्थानोंमें-से संज्वलन लोभ घटाने-  
पर एक सौ एक, एक सौ, सत्तानवे, छियानवे प्रकृतिरूप क्षीणकषायके द्विचरम समय पर्यन्त  
चार स्थान होते हैं । इन चारों स्थानोंमें-से निद्रा प्रचलाको घटानेपर निन्यानवे, अठानवे,  
पंचानवे, चौरानवे प्रकृतिरूप क्षीणकषायके अन्तिम समयमें चार स्थान होते हैं ॥३८९॥

आगे सयोगी-अयोगीमें कहते हैं—

आक्षीणकषायक्षयकन चरमसमयचतुःसत्त्वस्थानंगळोळ प्रत्येकं पविनाल्कुं पविनाल्कुं प्रकृतिगळ क्षपिसलपट्टु सत्त्वरहितंगळागि सयोगकेवलि भट्टारकंगेयुमयोगिकेवलि भट्टारकद्विचरम-समयपर्यंतमुं नाल्कुं नाल्कुं सत्त्वस्थानंगळपुवु । संवृष्टिः—

| सयो० | अयो० द्वि० |
|------|------------|
| ८५   | ८५         |
| ८४   | ८४         |
| ८१   | ८१         |
| ८०   | ८०         |

अयोगिकेवलि चरमेपि पुनः अयोगिकेवलि भट्टारकन चरमसमयदोळ तत्र द्विचरमसमय-चतुःसत्त्वस्थानंगळोळ प्रथमद्वितीयस्थानदोळेप्पत्तेरडुमनेप्पत्तेरडुमं तृतीयचतुर्थस्थानद्वयोळरु-वत्तेडुमरुवत्तेडुं प्रकृतिगळं हीनं माडुत्तिरल्लु शेषप्रकृतिसत्त्वस्थानंगळ अयोगिकेवलिचरमसमय-दोळ पविमूर्हं पन्नेरडुं पविमूर्हं पन्नेरडुमितु नाल्कुं सत्त्वस्थानंगळपुवल्लि पुनरुक्तस्थानद्वयमं बिट्टेरडुमपुनरुक्त स्थानंगळपुवु

| चरम |
|-----|
| १३  |
| २   |
| १२  |
| २   |

अल्लि सातोदयमुळळंगे असातं सत्त्वमिल्ल । असातोदयमुळळंगे सातं सत्त्वमिल्लेदित्तु द्वौ द्वौ भंगौ भवतः आ एरडेरडु भंगंगळपुवु । यित्तु गुणस्थानदोळ प्रकृतिसत्त्वस्थानंगळ भंग-सहितमागि पेळलपट्टुवु ।

तानि क्षीणकषायचरमसमयस्थानानि चतुर्दशप्रकृतिरहितानि सयोगायोगद्विचरमसमयपर्यंतं च भवन्ति । पुनर्द्विचरमचतुःस्थानेषु प्रथमद्वितीययोर्द्विसप्ततौ तृतीयचतुर्थयोरष्टषष्ठ्यां चापनीतायां चरमसमये द्वे त्रयोदशात्मके द्वादशात्मके तत्र पुनरुक्तद्वये त्यक्ते द्वे भवतः । तत्र सातोदययुतस्य नासातसत्त्वमसातोदययुतस्य न सातसत्त्व-मिति द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । एवं गुणस्थानेषु सत्त्वस्थानानि सभंगान्युक्तानि ॥३९०॥

क्षीणकषायके अन्त समय सम्बन्धी चार स्थानोंमें-से ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण चार और अन्तराय पाँच इन चौदह प्रकृतियोंको घटानेपर पिचासी, चौरासी, इक्यासी और अस्सी प्रकृतिरूप चार स्थान सयोगी तथा अयोगीके द्विचरम समय पर्यन्त होते हैं । पुनः अयोगीके द्विचरम समय सम्बन्धी चार स्थानोंमें-से प्रथम और द्वितीयमें बहत्तर तथा तीसरे और चतुर्थमें अडसठ प्रकृति घटानेपर तेरह, बारह, तेरह, बारह ये चार स्थान अयोगीके अन्तिम समयमें होते हैं । इनमें-से दो पुनरुक्त छोड़ देनेपर दो रहते हैं । यहाँ जिसके साता-वेदनीयका उदय होता है उसके साताका ही सत्त्व होता है असाताका सत्त्व नहीं होता । और जिसके असाताका उदय होता है उसके असाताका ही सत्त्व होता है साताका नहीं । अतः इन दोनों स्थानोंमें साता-असाता प्रकृतिके बदलनेसे दो-दो भंग होते हैं । इस प्रकार गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान भंगसहित कहे ॥३९०॥

अनंतरं दुगच्छकतिणिण वग्गेणूणा एदितुपशमकसुगच्छुपशमश्रेणियोळनंतानुबंधिचतुष्टय-  
सहित स्थानाष्टकंगळ पेळत्पट्टुवपुदरिदं तंतम्म पक्षदोळा सत्त्वस्थानाष्टकंगळिल्लेदिप्यादि  
विशेषंगळुमना स्थानभंगसंख्येगळुमं गाथाचतुष्टयदिदं पेळदपरु :—

णत्थि अणं उवसमगे खवगापुन्वं खवित्तु अट्टा य ।

५ पच्छा सोलादीणं खवणं इदि केइ णिदिदुं ॥३९.१॥

नास्त्यनंतानुबन्धुपशमके क्षपकाः पूर्वं क्षपयित्वाष्टौ च । पश्चात् षोडशादीनां क्षपणेति  
कैश्चिन्निर्दिष्टं ॥

श्रीकनकनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्ति तीर्थसंप्रदायदोळुपशम श्रेणियोळुपशमकनर्नाल्वरोळमनंतानु-  
बन्धिचतुष्टयसत्त्वयुताष्टस्थानंगळिल्ल । क्षपकर मध्यमाष्टकषायंगळ मुन्नं क्षपिति बळिवक  
१० षोडशादिप्रकृतिगळ क्षपणयं माळपरंदिनु मत्ते केलंबराचार्यमार्जिदं पेळत्पट्टुदु ॥

अथ दुगच्छकतिणिणवग्गेणूणेत्युपशमकाना सानंतानुबन्धिस्थानाष्टकयुक्तं तत्स्वाक्षे नेत्यादिविशेषं  
तद्भंगसंख्यां च गाथाचतुष्टकेणाह—

श्रीकनकनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तितीर्थसंप्रदाये चतुर्पशमकेष्वनंतानुबन्धिचतुष्कसत्त्वयुतस्थानाष्टकं न स्यात् ।  
क्षपका मध्यमकषायाष्टकं पूर्वं क्षपयित्वा पश्चात् षोडशादीनि क्षपयति इति पुनः कैश्चिदुक्तं ॥३९.१॥

१५ क्षीणकषाय ८ स्थान ८ भंग

सयोगी ४ स्थान ४ भंग

अयोगी ६ स्थान ८ भंग

|     |    |
|-----|----|
| १०१ | ९९ |
| १   | १  |
| १०० | ९८ |
| १   | १  |
| ९७  | ९५ |
| १   | १  |
| ९६  | ९४ |
| १   | १  |

|    |
|----|
| ८५ |
| ८४ |
| ८१ |
| ८० |

| उपान्त | अन्त   |
|--------|--------|
| ८५     | १३     |
| १      | २      |
| ८४     | १२     |
| १      | २      |
| ८१     | १३ पु. |
| १      |        |
| ८०     | १२ पु. |
| १      |        |

आगे ग्रन्थकार कहते हैं कि पूर्वमें जो अनन्तानुबन्धी सहित आठ स्थान उपशम  
श्रेणिमें कहे हैं वे हमारे मतानुसार नहीं हैं—

श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तिके मतानुसार उपशमश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें  
अनन्तानुबन्धी चतुष्कके सत्त्व सहित जो बद्धायु और अबद्धायुकी चार पंक्तियोंमें आठ स्थान  
२० कहे हैं वे नहीं होते । अतः चौबीसके स्थानमें सोलह ही स्थान होते हैं । तथा क्षपक अति-  
वृत्तिकरण पहले तो अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान रूप आठ कषायोंका क्षपण करता है । पीछे  
सोलह आदि प्रकृतियोंका क्षपण करता है ऐसा किन्हीं आचार्योंका मत है ॥३९.१॥

१. उपशमकचतुष्कस्य प्रत्येकं चतुर्विंशतिस्थानानि एकस्यां रचनायां संदर्शितानि । तत्र तिर्यक् त्रिस्थाने  
प्रथमसत्त्वस्थानं द्विहीनं आयुर्द्वयरहितं नत्वनंतानुबन्धिचतुष्कराहत एवं व्याख्यानं पूर्वोक्तप्रकारेण तस्याधः

२५ सप्तसत्त्वस्थानान्यनंतानुबन्धिचतुष्कसहितानि । एवं स्थानाष्टकं अनंतानुबन्धिचतुष्कसत्त्वसहितं प्रणीतं इति  
यावत् ॥

अणियद्विगुणद्व्याणे मायारहितं च ठाणमिच्छंति ।

ठाणा भंगप्रमाणा केइ एवं परूवेति ॥३९२॥

अनिवृत्तिगुणस्थाने मायारहितं च स्थानमिच्छंति । स्थानानि भंगप्रमाणानि केचिदेवं प्ररूपयंति ॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु मायारहितमप्य नालकुं स्थानंगळंगीकरिसत्पट्टुवु । स्थानंगळु भंगप्रमाणंगळे ये दिनु केलंबराचार्यरुगळु पेळवरु । अंतागुत्तं विरलु स्थानभंगसंख्येयं गाथाद्वयदिदं पेळदपरु :—

अठारह चउ अट्टं मिच्छति ए उवरि चाल चउठाणे ।

तिसु उवसमगे संते सोलस सोलस हवे ठाणा ॥३९३॥

अष्टादश चतुरष्टौ मिथ्यादृष्ट्यादित्रये उपरि चत्वारिंशच्चतुः स्थाने त्रिषूपशमकेषूपशांते षोडश षोडश भवेयुः स्थानानि ॥

मिथ्यादृष्टियोळं सासादननोळं मिथ्यनोळं पूर्वोक्तप्रकारदिदं क्रमदि पदिनेटुं नालकुं एट्टं स्थानंगळपुवु । मेले असंयतादि नालकुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नालवत्तुं नालवत्तुं सत्त्वस्थानंगळपुवु । उपशमकम्बूवरोळमुपशांतकषायनोळं प्रत्येकमनंतानुबन्धिसत्त्वपुतबद्धाबद्धायुष्यरुगळे एट्टं स्थानंगळु कुंदि प्रत्येकं षोडश षोडश सत्त्वस्थानंगळपुवु । क्षपकरोळु पूर्वोक्तक्रमदिदमपूर्वकरणनोळु स्थानंगळु नालकु । अनिवृत्तिकरणनोळु संज्वलनमायारहितचतुःस्थानंगळुगूडि नालवत्तु । सूक्ष्मसांपरायनोळुस्थानंगळु नालकु । क्षीणकषायनोळु सत्त्वस्थानंगळुट्टु । सयोगरोळु सत्त्वस्थानंगळु नालकु । अयोगिकेवलिनोळु सत्त्वस्थानंगळारु अरियत्पट्टुवु ॥

अनिवृत्तिगुणस्थाने मायारहितं स्थानचतुष्कमिच्छंति । स्थानानि भंगप्रमाणानीति केचित्प्ररूपयंति ॥३९२॥ एवं सति स्थानभंगसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानत्रये स्थानानि प्राग्बत् क्रमेणाष्टादश चत्वार्यष्टौ भवंति । उपर्यसंयतादिचतुर्षु प्रत्येकं चत्वारिंशच्चत्वारिंशत् उपशमकत्रये उपशांतकषाये चानंतानुबन्धिसत्त्वरहितानि बद्धाबद्धायुष्काणामष्टावष्टौ भूत्वा षोडश षोडश, क्षपके तु पूर्वोक्तक्रमेणापूर्वकरणे चत्वारि अनिवृत्तिकरणे संज्वलनमायारहितचतुर्भिश्चत्वारिंशत्, सूक्ष्मसांपराये चत्वारि, क्षीणकषायेऽष्टौ, सयोगकेवलिनि चत्वारि, अयोगकेवलिनि

तथा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें कोई आचार्य मायाकषायसे रहित चार स्थान मानते हैं । तथा किन्हींका कहना है कि उसमें स्थान भंगोंकी संख्या समान है ॥३९२॥

ऐसा होनेपर स्थान और भंगोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें स्थान पूर्वोक्त प्रकार अठारह, चार और आठ होते हैं । आगे असंयत आदि चार गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येकमें चालीस-चालीस स्थान होते हैं । उपशमश्रेणिके तीन गुणस्थानोंमें और उपशान्तकषायमें अनन्तानुबन्धीके सत्त्वसे रहित बद्धायु अबद्धायु-सम्बन्धी चार-चार पंक्तियोंके आठ-आठ स्थान होनेसे सोलह-सोलह स्थान होते हैं । क्षपकश्रेणिमें पूर्वोक्त क्रमसे अपूर्णकरणमें चार स्थान हैं । अनिवृत्तिकरणमें छत्तीस स्थान तो पूर्वोक्त हैं और संज्वलन माया रहित चार स्थान जो पहले सूक्ष्म साम्परायमें कहे



पण्णेक्कारं छक्कदि वीससयं अट्टदाल दुसु तालं ।

वीसडवण्णं वीसं सोलह् य चारि अट्टेव ॥३९४॥

पंचाशदेकादश षट्कृतिविंशत्युत्तरशतं अष्टचत्वारिंशद्वयोश्चत्वारिंशत् विंशतिरष्टा-  
पंचाशत् विंशतिः षोडशाष्ट चतुरष्टावेव ॥

- १ मिथ्यादृष्टियोऽङ्गं पूर्वोक्तपंचाशद्भंगगळेष्वप्यु । सासादननोऽङ्गं पूर्वोक्तद्वादश भंगगळोऽङ्गं  
अबद्धायुःसत्त्वस्थाननोऽङ्गं मरणमादोऽङ्गं देवापर्याप्तिकर्त्तव्यं भंगं कळदेकादश भंगगळेष्वप्यु । एक-  
दोडा द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिबद्धदेवायुष्यं सासादनगुणस्थानं पोद्दिदोडल्लि मरणमिल्लेदु  
पेळ्वाचार्य्यं पक्षमंगीकृतमप्युदरिदं । मिश्रगुणस्थाननोऽङ्गं मुपेळद षट्त्रिंशद्भंगगळेष्वप्यु ।  
असंयतनोऽङ्गं मुपेळद विंशत्युत्तरशतं भंगगळेष्वप्यु । देशसंयतनोऽङ्गं पूर्वोक्ताष्टाचत्वारिंशद्भंग-  
१० गळेष्वप्यु । प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळोऽङ्गं पूर्वोक्तचत्वारिंशच्चत्वारिंशद्भंगगळेष्वप्यु । अपूर्वक-  
रणनोऽङ्गं उपशमश्रेणिय पदिनारंभंगगळं क्षपकश्रेणिय नात्कुं भंगगळं गूडि विंशतिभंगगळेष्वप्यु ।  
अनिवृत्तिकरणनोऽङ्गं उपशमश्रेणिय पदिनारं भंगगळं क्षपकश्रेणिय मायारहितं चतुर्भंगगळं गूडि  
नात्कुं नपुंसकवेदं क्षपिसिदेड्योऽङ्गं नात्कुं स्थानगळोऽङ्गं तीर्थरहितद्वितीयचतुर्थस्थानगळोऽङ्गं  
स्त्रीषड्वेदसत्त्वकृतभंगगळेरड्युवंतु अष्टापंचाशद्भंगं गळेष्वप्यु । सूक्ष्मसांपरायनोऽङ्गं उपशमश्रेणिय  
१५ षोडश भंगगळं क्षपकश्रेणिय चतुर्भंगगळं कूडि विंशतिभंगगळेष्वप्यु । उपशान्तकषायनोऽङ्गं  
उपशमश्रेणिय पदिनारे भंगगळेष्वप्यु । क्षीणकषायनोऽङ्गं द्विचरमचरमसमयसंयसितत्वस्थानं-  
षट् ॥३९३॥

- ते पूर्वोक्तभंगा मिथ्यादृष्टी पंचाशत् । सासादने द्वादश स्वबद्धायुःस्थानमध्यवर्तिदेवापर्याप्तमेदमु-  
वृत्त्यैकादश, द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिबद्धदेवायुष्यस्य सासादने मरणं नास्तीति पक्षांगीकरणात् । मिश्रे षट्त्रिंशत् ।  
२० असंयते विंशत्युत्तरशतं । देशसंयतेऽष्टाचत्वारिंशत् । प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चत्वारिंशत् चत्वारिंशत् । अपूर्वकरणे  
उपशमके षोडश, क्षपके चत्वारः, मिलित्वा विंशतिः । अनिवृत्तिकरणे उपशमके षोडश, क्षपके षट्त्रिंशत् ।  
मायारहिताः चत्वारः । नपुंसकवेदे क्षपणास्थानस्य चतुर्षु स्थानेषु तीर्थरहितद्वितीयचतुर्थयोः स्त्रीषड्वेदकृती

थे वे अनिवृत्तिकरणमें ही माननेसे चालीस स्थान हैं । सूक्ष्मसांपरायमें चार, क्षीणकषायमें  
आठ, संयोग केवलीमें चार और अयोगकेवलीमें छह पूर्वोक्त स्थान होते हैं ॥३९३॥

- २५ मिथ्यादृष्टिमें पूर्वोक्त भंग पचास हैं । सासादनमें बारह हैं । उनमें-से बद्धायुस्थानमें  
देव अपर्याप्तक भेद निकाल देनेसे ग्यारह भंग होते हैं । क्योंकि जिस द्वितीयोपशम सम्यग्-  
दृष्टी जीवके देवायुका बन्ध हुआ है उसका सासादनमें मरण नहीं होता इस पक्षको स्वीकार  
करनेसे ग्यारह भंग कहे हैं । मिश्रमें छत्तीस, असंयतमें एक सौ बीस, देशसंयतमें अड़तालीस,  
प्रमत्त और अप्रमत्तमें चालीस-चालीस, उपशमक अपूर्वकरणमें सोलह, क्षपकमें चार,  
३० मिलकर बीस । अनिवृत्तिकरण उपशमकमें सोलह, क्षपकमें छत्तीस पूर्वोक्त तथा चार माया  
रहित, तथा नपुंसक वेदकी क्षपणाके चार स्थानोंमें-से तीर्थकर रहित दूसरे और चौथे  
स्थानमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके बदलनेसे दो-दो भंग हुए । इस तरह १६ + ३८ + ४ सब

गळें टक्कमे दु भंगगळपुवु । सयोगकेवलियोळु नाल्के भंगगळपुवु । अयोगिकेवलियोळु द्विचरम-  
चरमसमयसत्त्वस्थानगळारक्कमे दु भंगगळपुवेके दोडे चरमसमयवोळु सातासातसत्त्वभेदविचरमेरु  
भंगगळधिकंगळपुवरिवं इल्लि संदृष्टि रचनाविशेषमिदु ।

| *     | मि | सा | मि | अ   | दे | प्र | अ  | अ        | अ         | सू     | उ  | क्षी | स | अ   |
|-------|----|----|----|-----|----|-----|----|----------|-----------|--------|----|------|---|-----|
| स्थान | १८ | ४  | ८  | ४०  | ४० | ४०  | ४० | उ १६क्ष४ | उ १६क्ष४० | उ १६।४ | १६ | ८    | ४ | ४।२ |
| भंग   | ५० | ११ | ३६ | १२० | ४८ | ४०  | ४० | २०       | ५८        | २०     | १६ | ८    | ४ | ८   |

एवं सत्तद्वाणं सविस्तरं वर्णयं मए सम्मं ।

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ णिन्नुदि सोक्खं ॥३९५॥

एवं सत्त्वस्थानं सविस्तरं वर्णितं मया सम्यक् । यः पठति शृणोति भावयति स प्राप्नोति  
निर्वृतेः सौख्यं ॥

इंतु सत्त्वस्थानं सविस्तरमाणि येमिदं वर्णिसत्पट्टदु । सम्यक् अवनोर्ध्वनोदुगुं केळुगुं  
भाविसुगुमातं मोक्षसुखमनेन्दुगुं ॥

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।

सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तद्वाणं समुद्धिदं ॥३९६॥

वरेंद्रनंदिगुरोः पाश्वे श्रुत्वा सकलसिद्धांतं । श्रोतकनंदिगुरुणा सत्त्वस्थानं समुद्धिष्टं ॥

द्वौ एवमष्टपंचाशत् । सूक्ष्मसांपराये उपशमके षोडश, क्षपके चत्वारः, मिलित्वा विंशतिः । उपशान्तकषाये  
षोडश । क्षीणकषाये द्विचरमचरमसमयाष्टस्थानानामष्टौ । सयोगे चत्वारः । अयोगे द्विचरमसमयस्थानषट्क-  
स्थाष्टौ, चरमसमये सातासातसत्त्वभेदेन भंगद्वयस्याधिक्यात् ॥३९४॥

एवं सत्त्वस्थानं सविस्तरं मया वर्णितं सम्यक् यः पठति शृणोति भावयति स मोक्षसुखं  
प्राप्नोति ॥३९५॥

मिलकर अठावन भंग होते हैं । सूक्ष्म साम्परायमें उपशमकमें सोलह, क्षपकमें चार मिलकर  
बीस । उपशान्त कषायमें सोलह । क्षीणकषायमें द्विचरम और चरम समय सम्बन्धी आठ  
स्थानोंमें आठ । सयोगीमें चार । अयोगीमें द्विचरम और चरम समय सम्बन्धी छह स्थानों-  
में आठ भंग; क्योंकि चरम समयमें साता और असाताके सत्त्वके भेदसे दो भंग अधिक  
होते हैं ॥३९४॥

इस प्रकार मैंने सत्त्व स्थानका विस्तारसे सम्यक् वर्णन किया । जो इसे पढ़ता है,  
सुनता है, भाता है वह निर्वाण सुखको पाता है ॥३९५॥

श्रेष्ठरूपिद्रवणंदिभट्टारक पादवंदोऽसकलसिद्धान्तमं केऽदु श्रीकनकनंदिसिद्धान्तचक्रवर्ति-  
गर्हितं सत्त्वस्थानं सम्यक्कागि पेठत्पट्टु ॥

जह चक्रेण य चक्की छखंडं साहियं अविघ्नेण ।

तह मइचक्रेण मया छखंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

५ यथा चक्रेण चक्रिणा षट्खंडं साधितं अविघ्नेन । तथा मतिचक्रेण मया षट्खंडं साधितं  
सम्यक् ॥

एतौगळ चक्रदिदं चक्रवर्तियि षट्खंडक्षेत्रमविघ्नदिदं साधिसत्त्वपट्टुदंत मतिचक्रदिदमस्मि  
जीवस्थानभुद्रकबंध । बंधस्वामित्व । वेदनाखंड । वर्गणाखंड । महाबंधमं ब षट्खंडं सिद्धान्तशास्त्रं  
सम्यग्विघ्नरहितमागि साधिसत्त्वपट्टु ॥

० इंतु भगवदहंत्परमेश्वरचारुचरणारविद्वंद्वंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्राजगुरु-  
मंडलाचार्य महाबाद वादीश्वरराय वादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धान्त-  
चक्रवर्ति श्रीपादपंकजराजोरजितललाटपट्ट श्रीमत्केशवर्ण विरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति  
जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोऽसकलकनकनंदिषट्त्रिंशत्पाथागुणस्थानप्रकृतिसत्त्वस्थानभंग-  
स्वरूपनिरूपणमहाधिकारं निरूपितमादु ॥

१५ सूरिमतलिकाश्रीमदिद्रवणंदिभट्टारकपाश्वे सकलसिद्धान्तं श्रुत्वा श्रीकनकनंदिसिद्धान्तचक्रवर्तिभिः सत्त्व-  
स्थानं सम्यक् प्ररूपितं ॥३९६॥

यथा चक्रेण चक्रवर्तिना षट्खण्डक्षेत्रमविघ्नेन साधितं तथा मतिचक्रेण मया जीवस्थानभुद्रकबंधबंध-  
स्वामित्ववेदनाखंडवर्गणाखंडमहाबंधमदेषट्खंडसिद्धान्तशास्त्रं सम्यक् साधितं ॥३९७॥

इत्याचार्यश्रोतेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकांडे

२० कनकनंदिकृतसत्त्वस्थानभंगप्ररूपणो नाम तृतीयोऽधिकारः ॥३॥

आचार्यश्रेष्ठ श्री इन्द्रनन्दि भट्टारकके पास सकल सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दि  
सिद्धान्त चक्रवर्तीके द्वारा सत्त्व स्थान सम्यक् रूपसे कहा गया ॥३९६॥

२५ जैसे चक्रवर्ती चक्रके द्वारा छह खण्डोंको बिना विघ्नबाधाके साधता है । उसी प्रकार  
मैंने मतिरूपी चक्रके द्वारा जीवस्थान भुद्रकबंध, बन्ध स्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड  
और महाबन्धके भेदसे षट्खण्ड रूप सिद्धान्त शास्त्रको सम्यक् रूपसे साधा है ॥३९७॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव  
परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महाबादी

श्री अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-

के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका

३० तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक

भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकासे कनकनन्दि आचार्यकृत

सत्त्वस्थान भंग प्ररूपण नामक तीसरा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

## भारतीय ज्ञानपीठ के

### महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

(धर्म, दर्शन एवं सिद्धान्त ग्रन्थ)

#### षट्खण्डागम-परिशीलन

—पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

#### समीचीन जैन धर्म

—सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

#### गोम्मतसार (जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड)

—आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

—सम्पा. : डॉ. आ.ने. उपाध्ये

—अनु. : सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

#### पंचास्तिकायसार (प्राकृत-अँग्रेजी)

—सम्पा.-अनु. : प्रो. ए. चक्रवर्ती

#### समयसार (प्राकृत-अँग्रेजी)

—सम्पा.-अनु. : प्रो. ए. चक्रवर्ती

#### षड्दर्शनसमुच्चय (संस्कृत-हिन्दी)

—हरिभद्र सूरि

—सम्पा.-अनु. : प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

#### नयचक्र (प्राकृत-हिन्दी) : माइल धवल

—सम्पा.-अनु. : पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

#### योगसारप्राभृत (संस्कृत-हिन्दी) : अमितगति

—सम्पा.-अनु. : पं. जुगलकिशोर मुख्तार

#### सर्वार्थसिद्धि (संस्कृत-हिन्दी)

—आचार्य पूज्यपाद

—सम्पा.-अनु. : पं. फूलचन्द्र शास्त्री

#### तत्त्वार्थवार्तिक (संस्कृत-हिन्दी) भाग 1,2

—भट्ट अकलंक

—सम्पा.-अनु. : प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

#### पाहुडदोहा : मुनि रामसिंह

—सम्पा. अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

## **भारतीय ज्ञानपीठ**

स्थापना : सन् 1944

### **उद्देश्य**

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान  
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

### **संस्थापक**

**स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन**

**स्व. श्रीमती रमा जैन**

### **अध्यक्ष**

**श्रीमती इन्दु जैन**

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003